आयुर्वेदिक एव तिब्बी ग्रन्थमाला-२

यूनानी द्रव्यगुणादर्श

(प्रथम खण्ड)

[मूलभूत सिद्धात, परिभाषा, भेषज कल्पनादि]

लेखक
वैद्यराज हकीम दलजीत सिह

आयुर्वेदिक एव तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश
लखनऊ

प्रस्तावना

आयुर्वेद-जगत्में अनेक वर्षोसे उपयुक्त ग्रन्थो विशेषकर पाठ्य-पुस्तकोका अभाव अनुभव किया जा रहा है। प्राचीन सहिताएँ तथा उनकी व्याख्याएँ और टीकाएँ भी अप्राप्य होती जा रही है। साथ ही आयुर्वेदिक एव यूनानी साहित्यको समृद्ध करनेकेलिए प्राचीन उपयोगी पाण्डुलिपियोको भी प्रकाशमें लानेकी आवश्यकता अनुभवकी जा रही है। आयुर्वेद एव यूनानीकी उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकोका अभाव विशेषरूपसे तवसे खटकने लगा जवसे कि विभिन्न प्रदेशोमें आयुर्वेद और यूनानीके महाविद्यालय स्थापित किये गये और उनमें विषयानुसार पाठ्यक्रमका निर्धारण किया गया। प्राचीन उपलब्ध सहिताओंमें विभिन्न विषयोकी सामग्री यत्र-तत्र बिखरी हुई है और उसको सकलित कर उसके आधारपर उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकोंके निर्माणकी अत्यन्त आवश्यकता है। आयुर्वेद एव यूनानीके विकासकेलिए उपर्युक्त कार्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

अत उत्तर प्रदेशीय आयुर्वेदिक एव यूनानी पुन सगठन समिति (१९४७)की सस्तुतिको ध्यानमें रखते हुए उत्तर प्रदेशीय शासनने वर्ष १९४९-'५०के वित्तीय वर्षमें शासनादेश स० ५७१८ बी/वी—२ आर-सी। १९४९, दिनाक २८-२-'५०के द्वारा आयुर्वेदिक एव तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेशकी स्थापना निम्न उद्देश्योकी पूर्तिकेलिए की—

(१) प्राचीन आयुर्वेदिक एव यूनानी साहित्यका सकलन, सम्पादन तथा प्रकाशन।

(२) प्राचीन आयुर्वेदिक एव यूनानी पुस्तको तथा अन्य उपादेय चिकित्सासम्बन्धी साहित्यका विदेशी भाषाओसे अनुवाद कराना और उसे प्रकाशित करना।

(३) आयुर्वेद एव यूनानी तिवके विद्यार्थियोंके लिए उपयुक्त स्तरकी पाठ्य-पुस्तकोंका हिन्दीमें निर्माण।

यह भी निश्चय किया गया कि अकादमी एक परामर्शदात्री समितिके रूपमें कार्य करेगी तथा उपयुक्त विद्वानोको पाठ्य-पुस्तकोंके लेखन तथा प्राचीन एव आधुनिक पुस्तकोको हिन्दीमें अनुवाद करनेके लिए आमन्त्रित करेगी और उपयुक्त अधिकारी विद्वानो द्वारा उनका परीक्षण कराकर यदि वे निर्धारित स्तरकी हुई तो शासनकी स्वीकृति लेकर लेखको और सम्बन्धित विद्वानोंको उपयुक्त पुरस्कार भी प्रदान करेगी। अकादमीका एक पृथक् पुस्तकालय भी स्थापित करनेकी स्वीकृति शासन द्वारा दी गयी।

किन्तु उपर्युक्त कायकेलिए प्रारम्भमें जो कर्मचारि-वर्ग तथा अनुदान शासन द्वारा स्वीकृत किया गया वह इतना पर्याप्त नही था कि उपयुक्त पाठ्यपुस्तकोंको लिखाकर या अनुवाद कराकर इनके प्रकाशनका कार्य भी अकादमी आरम्भ कर सके। इसलिए प्रारम्भमें कई वर्षो तक अकादमी केवल प्रत्येक वर्ष प्रकाशित पुस्तको पर ही लेखकोको प्रोत्साहनार्थ कुछ धन-राशि पुरस्कारके रूपमें प्रदान करती रही।

वर्ष १९६८-'६९में शासनने शासनादेश स० ५१४९ ग/५-३७९/६६, दिनाक ७-३-१९६८ के अन्तर्गत उपयुक्त पुस्तकोंके प्रणयन और उनके प्रकाशनके लिए अतिरिक्त अनुदानका प्राविधान किया

तथा एक सम्पादक, एक अनुसधान-सहायक एव एक पुस्तकाध्यक्षके पदोका भी सृजन किया। अत अकादमीने अव अधिकारी विद्वानोंसे उपयुक्त ग्रथ लिखाकर तथा अनुवाद कराकर उन्हें प्रकाशित करानेका कार्य भी अपने हाथमें लिया है जिसके फलस्वरूप यूनानी तिवसे सम्वन्धित यह ग्रन्थ पाठकोकी सेवामें प्रस्तुत है। अकादमीका यह द्वितीय प्रकाशन है। इसके पूर्व वह शुद्ध आयुर्वेदीय विषयपर आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा लिखित "प्राकृत दोप विज्ञान" नामक ग्रन्थ प्रकाशित कर चुकी है।

यह बात सर्वविदित है कि अतीतमें यूनान (आधुनिक ग्रीस), मिस्र, सीरिया, ईरान आदि देशोंके साथ भारतके घनिष्ठ सास्कृतिक सवध स्थापित थे और पारस्परिक सम्पर्कसे भारतीय ज्ञान-विज्ञानका आलोक इन देशोमे फैला था। सिकन्दर महान्के समयमे भी आयुर्वेद एक अत्यत विकसित और समुन्नत चिकित्साशास्त्र माना जाता था और उसका प्रभाव यूनान और उसकी चिकित्सा-पद्धति पर भी पडा था। यूनानके प्रभावसे अरव देशोमें जो चिकित्सा-पद्धति विकसित हुई वह यूनानी तिवके नाम-से प्रसिद्ध हुई। इस्लामके अभ्युदयकालमे (आठवी तथा नवी) शताब्दीमें विद्याप्रेमी बगदादके विद्वान् खलीफाओं द्वारा भारतसे आयुर्वेदके अनेक प्रतिष्ठित चिकित्सकोंको सम्मानपूर्वक आमन्त्रित किया गया और उनकी सहायतासे भारतके चिकित्साशास्त्रके अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोको अरवी भाषामें रूपातरित कराया गया जिससे यूनानी चिकित्सा-पद्धतिके विकासमें पर्याप्त योगदान मिला। इस प्रकार यूनानी चिकित्सा-पद्धतिपर भारतीय आयुर्वेदशास्त्रका पर्याप्त प्रभाव रहा है। इस्लामके साथ-साथ यूनानी चिकित्सा-पद्धतिका भी इस देशमें आगमन हुआ और मुस्लिम शासको विशेषकर मुगल शासको-के कालमें उसका भारतीय चिकित्सा-पद्धतिके सहयोगसे और भी अधिक विकास और प्रसार हुआ। इस प्रकार यूनानी तिवभी इस देशकी ही चिकित्सा-पद्धति वन गई और अव भारतीय उपमहाद्वीपके अतिरिक्त सम्भवत अन्यत्र इस पद्धतिका प्रसार नही रहा है।
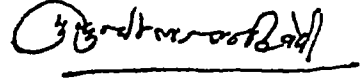
यूनानी तिवके अधिकाश ग्रन्थ अरवी, फारसी या उर्दूमें ही अधिक उपलब्ध है। देशके अधिकाश भागमें अव राष्ट्रभाषा हिन्दी शनै शनै शिक्षाका माध्यम होती जा रही है। अत यह आव-श्यक है कि यूनानी तिवके ग्रन्थोका भी हिन्दीमें प्रकाशन किया जाय जिससे कि उसका और अधिक प्रचार और प्रसार हो। आयुर्वेद और यूनानी तिवमें भाषा तथा देश-कालकी स्थितिके अनुसार भले ही भिन्नता प्रतिभासित हो, वास्तवमे इन दोनो चिकित्सा-पद्धतियोमें बहुत कुछ समानता है और उन्होंने एक दूसरेके विकासमे पर्याप्त योगदान दिया है। यदि यूनानी तिवके ग्रन्थ हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओमें सुलभ हो तो आयुर्वेद और यूनानी तिवका तुलनात्मक अध्ययन और उनका समन्वय सुगम हो सकता है और ये दोनो पद्धतियाँ एक दूसरेके और भी निकट आ सकती हैं और एक दूसरे की पूरक वन सकती है।

उपर्युक्त तथ्यको ध्यान में रखकर ही वैद्यराज हकीम दलजीत सिंहने आयुर्वेद तथा यूनानी तिव दोनोका ही गम्भीर अध्ययन और मनन किया है और अपनी साधनाके फलस्वरूप उन्होने अनेक ग्रन्थोकी रचना की है। प्रस्तुत ग्रन्थ भी उनके गम्भीर चिन्तन तथा साधनाका ही फल है। इस ग्रथमें हकीमजी ने यूनानी तिवके मूलभूत सिद्धातोका प्रतिपादन तथा यूनानी ग्रन्थोंमें वर्णित विभिन्न द्रव्योंके गुण, कर्म एव उपयोगकी भलीभाँति व्याख्या सरल एव सुवोध शैलीमें की है। अपने कथन और तर्ककी पुष्टिमें उन्होने आवश्यकतानुसार सस्कृत, अरबी, फारसी तथा उर्दू ग्रन्थोमें प्रतिपादित विभिन्न आचार्योंके मतोके भी प्रचुर उदाहरण तथा प्रमाण दिये है जिससे ग्रन्थ की उपादेयता और वढ गई है।

अत इस ग्रन्थके प्रथम खडको प्रकाशित करते हुए हमारा यह विश्वास है कि इस प्रकारके प्रकाशनका हिन्दी-जगतमे यथेष्ट स्वागत होगा और इसके अध्ययनसे आयुर्वेद तथा यूनानी तिबके चिकित्सको, छात्रो तथा अनुरागियो को लाभ पहुँचेगा । ऐसे उपयोगी ग्रन्थके लेखनकेलिए हकीम दलजीत सिह बधाईके पात्र हैं ।

प्रस्तुत पुस्तकके मुद्रण तथा उसके कलेवरको सुन्दर एव आकर्षक बनानेमें श्री तरुण भाई, सचालक जीवन शिक्षा मुद्रणालय, वाराणसीने हमे पर्याप्त सहयोग प्रदान किया है। अत मैं उनका भी धन्यवाद करता हूँ ।

लखनऊ
२१-८-७२

अध्यक्ष
आयुर्वेदिक एव तिब्बी अकादमी, उत्तरप्रदेश

लेखकके दो शब्द

चिकित्साविज्ञानके उद्भवका सूत्रपात मानवजातिके अस्तित्वके साथ हुआ है। तबसे इसके विकासक्रमकी अक्षुण्ण धारा चल रही है। ऐतिहासिक पर्यालोचन एवं प्रचलित परम्पराओंसे प्रतीत होता है कि चिकित्साविज्ञान-के क्षेत्रमें आयुर्वेद, यूनानी एवं आधुनिक (एलोपैथी) चिकित्सापद्धतियाँ तीन प्रमुख शृंखलाओंके रूपमें अपने मौलिक सामान्यताओंके साथ-साथ अपनी-अपनी विशेषताओंको लेकर एक शृंखलाकी तीन कड़ियोंकी भाँति हैं। अतः स्पष्ट है, कि यूनानी चिकित्सापद्धति, जो मध्यवर्ती कड़ीकी भाँति है, अपने पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कड़ियोंको सम्बद्ध करनेमें कितना महत्त्वपूर्ण है। किन्तु, इस विज्ञानका साहित्य मुख्यतः अरबी, फारसी भाषाओंमें होनेसे भाषाकी दुरूहताके कारण अन्य भाषा-भाषी जिज्ञासुओं द्वारा इस ज्ञानका समुचित उपयोग भी कठिन-सा ही रहा है। अतएव समस्त यूनानी साहित्यको भारतकी सर्वाधिक प्रचलित भाषामें उपलब्ध किए जानेकी आवश्यकताका अनुभव बड़ी जिज्ञासाके साथ किया जाता रहा है। अनेक क्षेत्रोंसे लेखकने प्रेरणा प्राप्त कर उक्त कमीकी पूर्ति करनेका जो संकल्प एवं व्रत लिया था, उसके फलस्वरूप लेखककी अनेक रचनाएँ प्रसिद्ध हो चुकी है। द्रव्यगुणविषय अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी एवं आवश्यक होनेसे इस पर एक विस्तृत एवं सर्वांगीण ग्रंथकी आवश्यकताका, जो अध्ययन-अध्यापन एवं संदर्भ आदि सभी दृष्टिकोणोंकी पूर्ति कर सके, अनुभव किया जा रहा था।

सुतरां उत्तरप्रदेशीय भारतीय चिकित्सापरिषद्के तत्कालीन अध्यक्ष सम्माननीय सभासदस्य श्रीमान् र० वि० धुलेकर महाभागाने मुझसे यूनानी पाठ्यग्रंथोंको हिंदीमें ढालनेका आग्रह एवं अनुरोध किया जिसको ध्यानमें रखकर मैंने सर्वप्रथम यूनानी द्रव्यगुणविज्ञान नामक द्रव्यगुणविषयक ग्रंथका प्रणयन किया जो आचार्यप्रवर धन्वन्तरिकल्प स्वर्गवासी श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य महानुभावके प्रयत्नसे और उन्हींके तत्वावधानमें निर्णय-सागर प्रेस बंबईसे प्रकाशित होकर प्रसिद्ध हुआ। इस ग्रंथकी आयुर्वेद, यूनानी तथा पाश्चात्य वैद्यकके विद्वानों एवं मनीषियोंने तथा आयुर्वेदीय पत्र-पत्रिकाओंने मुक्तकंठसे भूरि-भूरि प्रशंसा की और इसे पाठ्य एवं संदर्भ ग्रंथके सर्वथा उपयुक्त होना स्वीकार किया।

यूनानी द्रव्यगुणविषयक एक प्रामाणिक ग्रंथ लिखकर प्रसिद्ध करानेके उपरांत पुनः उसी विषय पर एक दूसरा ग्रंथ लिखनेकी आवश्यकता क्या? यह प्रश्न पूछा जा सकता है। इसका उत्तर संक्षेपमें यह है कि स्वर्गारोहण-से पूर्व अपने जीवनकालमें ही आचार्यप्रवर आदरणीय श्रीमान् यादवजी त्रिकमजी आचार्य महोदयकी सदिच्छा एवं सत्प्रेरणासे यद्यपि इस विषयपर मैंने यूनानी द्रव्यगुणविज्ञान नामक एक प्रामाणिक ग्रंथका प्रणयन किया था, परंतु उक्त ग्रंथमें यूनानी द्रव्यगुणके आधारभूत सिद्धांत, परिभाषा एवं भैषज्यकल्पना आदि पर ही पर्याप्त स्थान देनेके कारण तदतिरिक्त कतिपय अन्य आवश्यक विषयोंको छोड़ना पड़ा था। अस्तु, औषधाहार द्रव्योंके गुणकर्म-प्रयोग आदिके विवरणकेलिए कम स्थान बच पाया था। कारण श्रीमहाराजकी इच्छाके अनुसार उक्त ग्रंथको, कागज आदिकी अतीव महार्घता एवं दुष्प्राप्यताके कारण केवल एक सहस्र पृष्ठोंके भीतर ही समाप्त करना था। इस हेतु तथा इसलिए भी कि उक्त ग्रंथ पाठ्यग्रंथके लिये लिखा गया था, उसमें इससे अधिक विषयों एवं द्रव्योंके तथा विस्तारसे समावेशकी गुंजाइश संभव न हो सकी।

स्थानकी कमीके कारण ही उक्त ग्रंथमें उस समय सहायक भैषज्य-कल्पना अर्थात् कम्पाउण्डरी तथा कतिपय अन्य आवश्यक प्रकरणों एवं शीर्षकोंका समावेश नहीं किया जा सका। इसी प्रकार यूनानी निघंटुओंमें आये काफी—लगभग तीन-चार सौसे भी अधिक, प्रसिद्ध बहुप्रयुक्त आवश्यक द्रव्य एवं कतिपय अन्य परमावश्यकीय ऐसे द्रव्य एवं विषय भी अवशेष रह गये थे, संपूर्णताकी दृष्टिसे जिनका इस ग्रंथमें सन्निविष्ट होना अपेक्षित ही नहीं, अपितु अनिवार्य प्रतीत हो रहा था। छूट विषयक यह तथ्य बराबर खटकता रहा और मैं निरंतर इस उधेड़-बुनमें पड़ा था कि उक्त सभी तथ्योंका समावेश करते हुए यूनानी द्रव्यगुणविषय पर पृथक् रूपसे एक विस्तृत ग्रंथकी रचना कब और कैसे की जाय?

स्वतन्त्रताप्राप्तिके बाद अपनी लोकप्रिय सरकारने देशको सभी प्रकारकी आवश्यकताओंकी पूर्तिकी दिशामें स्वावलबी बनानेके लक्ष्यसे जिस प्रकार ज्ञान-विज्ञानके अन्य क्षेत्रोंमें अनुसधानकार्यमें सक्रिय प्रोत्साहन दिया है, उसी प्रकार चिकित्सा-विज्ञान, विशेषत भेपज-अनुसधानमें भी अनुसधानकार्यको प्रोत्साहित किया है, जिससे देशी भेषज-भडार एव चिकित्साज्ञानके आगारसे उपयोगी ज्ञानका चयन एव उपबृहण किया जा सके। एतदर्थ सफल शोधकार्यके लिए प्राचीन ज्ञानका आलोचनात्मक पर्यालोचन प्राथमिक आवश्यकता होती है। इसके बिना अपेक्षित सफलताकी सभावना नही की जा सकती। भारत सरकारके स्वास्थ्य मत्रालयने आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सापद्धतियोंमें प्रयुक्त औषधियोके मानकीकरण एव पथप्रदर्शक फार्माकोपिआ ग्रथके निर्माणकी ओर भी जागरूकता प्रदर्शित किया है। यह नितात हर्षका विषय है। इस दिशामें अबतक क्या उपलब्धियाँ हुई हैं, इसका ज्ञान तो लेखक को नही है, किंतु इस दिशामें यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि दोनोंहीके लिए दोनोही पद्धतियोके साहित्यका तुलनात्मक आलोचन-अध्ययन तथा इस प्रकारकी छलनीसे प्राप्त साहित्यकी उपलब्धि इस दिशामें आधारभूत शिला होगी। यही प्रस्तुत यूनानी द्रव्यगुणादर्श ग्रथकी उससे पृथक् रचनाका प्रमुख हेतु है।

ग्रथका स्वरूप—अब प्रस्तुत यूनानी द्रव्यगुणादर्श ग्रथके सबधमें कुछ लिखना उचित जान पड रहा है। सुतरा राष्ट्रभाषा हिंदीमें लिखा हुआ यह यूनानी द्रव्यगुण-विषयक ग्रथ है। प्रस्तुत ग्रथ किसी एक अरबी, फारसी या उर्दूमें लिखे यूनानी ग्रथका अनुवाद नही, अपितु इस विषयके अनेकानेक ग्रथोंके आलोचनात्मक अध्ययन पर आधारित स्वतत्र ग्रथ है जो लेखकके गहन अध्ययन एव अन्वेषणका परिणामरूप है। इसमें यूनानी चिकित्सामें प्रयुक्त, वर्तमान समयमें प्रसिद्ध एव प्राप्य समस्त द्रव्योके गुणकर्म तथा उपयोग आदिका प्रामाणिक सकलन नातिसक्षेपविस्तरेण सरल, सुबोध एव परिष्कृत हिंदीमें किया गया है।

इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ—इसमें प्रत्येक द्रव्यका निर्णय (व्यक्ति—Identification) कर निश्चित एव यथार्थ वैज्ञानिक तथा तदनुसार अन्य भाषाके नाम और वर्णन आदि देनेका प्रयास किया गया है। प्रयत्न यह किया गया है कि इस ग्रथमें एक भी अनावश्यक एव फालतू शब्द नही आने पावे और न ही पुनरुक्ति दोष रह पाये।

इसमें प्रत्येक द्रव्यके यूनानी, अरबी, फारसी, उर्दू, हिंदी, सस्कृत आदि अनेक भाषाके शुद्ध एव सही निश्चित पर्यायनाम तथा अन्यान्य भाषाके तथा स्थानीय एव प्रान्तीय नाम और निर्णीत वैज्ञानिक (Botanical) नाम एव वर्णन और अँगरेजी आदि नाम भी दिये गये हैं।

यह ध्यान रहे कि यूनानी द्रव्यगुणविषयक हमारे ग्रन्थागारमें यद्यपि स्वतन्त्र द्रव्यो पर लिखे गये अनेक अरबी, फारसी और उर्दू ग्रन्थ विद्यमान हैं, तथापि उनमेंसे अधुना फारसी में लिखित मख्जनुल् अद्‌विया और मुहीत आजम तथा उर्दूमें लिखित खजाइनुल् अदविया ही विशेषरूपसे अध्ययनमें रहते हैं और यथासमय इन्हींसे काम लिया जाता है। उपर्युक्त ग्रन्थ फारसी तथा उर्दूमें होनेके अतिरिक्त इतने विस्तृत हैं कि इनसे वैद्यो का सस्कृत तथा हिंदी पठित समाज ही नही, फारसी एव उर्दूपठित हकीमवर्ग भी लाभान्वित नही हो पाता तथा कतिपय लोग विशेषकर विद्यार्थी और नौसिखुए तो परस्परविरोधी मतो (वर्णनो)के चक्करमें पडकर रह जाते हैं। इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त कतिपय अन्य सक्षिप्त यूनानी निघण्टु विषयक ग्रन्थ भी हैं, किन्तु उनमें प्राचीन ग्रन्थोका अनुसरण करके कतिपय द्रव्योके ऐसे गुणकर्म लिखे हुये हैं जो कालान्तरसे लिपिप्रतिलिपि होते आ रहे हैं और अधुना इन द्रव्योंके गुणकर्म तो दूर रहे, इनके अस्तित्वका ही पता नही है। साथ ही इनमें द्रव्योके निर्णय तथा पर्यायनाम देनेमें काफी भूलें हुई है। प्रस्तुत यूनानी द्रव्यगुणादर्श ग्रन्थमें उक्त सभी दोषोके परिहारका प्रयत्न किया गया है।

वर्णनासौकर्यके लिए प्रस्तुत यूनानी द्रव्यगुणादर्श ग्रन्थको पूर्वार्ध और उत्तरार्ध ऐसे दो भागो में विभक्त किया गया है। इसके पूर्वार्ध भागमें यूनानी द्रव्यगुणके आधारभूत सिद्धान्त (कुल्लियात अद्‌विया), परिभाषा और मुख्य एव गौण अर्थात् सहायक भेपजकल्पनाका आयुर्वेदके साथ तुलना करते हुए विशद विवरण किया गया है। प्रयत्न यह किया गया है कि प्रत्येक यूनानी, अरबी अथवा फारसी सज्ञाके लिए आयुर्वेद अथवा सस्कृतका यथार्थ प्रतिशब्द दिया जाय और जिसके समानका आयुर्वेद या सस्कृत वाङ्मयमें कोई यथार्थ प्रतिशब्द नही है उसके लिए

नये शब्दकी रचना की गयी है और यथास्थान डॉक्टरीके भी पर्यायनाम दिये गये है, जिससे यह जाना जा सके कि आयुर्वेदसे यूनानीमें कितना साम्य है और कितना वैषम्य और इनमें अपनी-अपनी विशेषताएँ क्या है ?

इसके उत्तरार्ध विभागको पुन दो खडोमें विभक्त किया गया है । इसके प्रथम खडमें उद्भिज्ज औषधाहार-द्रव्योका अकारादि वर्णक्रमानुसार नातिसक्षेपविस्तरेण सचित्र विवरण किया गया है । इसके द्वितीय खडमें इसके प्रथम खडमें शेष रहे उद्भिज्ज औषधाहार द्रव्योका तथा जाङ्गम औषधाहार द्रव्योका अकारादि वर्णक्रमानुसार और पार्थिव वा खनिज द्रव्योका विशेष क्रमानुसार और समिश्र औषधाहार द्रव्योका अकारादि वर्णक्रमानुसार पृथक्-पृथक् प्रकरणोमे नातिसक्षेपविस्तरेण विवरण किया गया है । एतदतिरिक्त आवश्यक होनेसे अतमें परिशिष्टमें आशिर-पादरोगानुसारिणी द्रव्य-कल्प-योगसूची दी गई है । सर्वांतमें प्रस्तुत ग्रन्थमें आये अरबी-फारसी और सस्कृत आदि भाषानामों और पारिभाषिक शब्दोकी सामान्य विस्तृत हिन्दी वर्णानुक्रमणिका, और लेटिन तथा अगरेजी आदि नामोकी आग्ल वर्णानुक्रमणिका देकर ग्रन्थका समापन किया गया है ।

इस पूर्वार्धके प्रारभिक पृष्ठोमें एक अत्यन्त महत्त्वका 'ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—आयुर्वेद तथा यूनानी वैद्यक' शीर्षक लेख पाठकोकी जानकारी हेतु आवश्यक समझकर दिया है ।

धन्यवाद प्रकाश

उन सभी रचनाओके प्रणेताओंके प्रति आभार एव धन्यवाद प्रकाश करना मैं अपना परम पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनसे यत्किंचित् सहायता इस ग्रथकी रचनामे ली गई है । स्वानुज आयुर्वेदाचार्य डॉ० रामसुशील सिंह शास्त्री एम ए, ए एम् एस, शास्त्री, मौलवी, कामिल, एफ आर ए एस (लन्दन) हमारे विशेष धन्यवादके पात्र हैं जिन्होने प्रूफ आदिके सशोधनमेही नही, अपितु पूरे ग्रथकी प्रेस-प्रतिलिपि तैयार करा उसे टङ्कणित कराने, द्रव्योंके वैज्ञानिक नामो तथा उनके उच्चारणोको अद्यतन रूप देने और चित्रादिकी व्यवस्था कराने आदि नानाप्रकारसे योगदान देकर पुस्तकके शीघ्र, शुद्ध एव सुदर रूपमें प्रकाशित होनेमें विशेष सहायता प्रदान की है, जिसके बिना इस ग्रथका इतना शीघ्र प्रकाशन असभव नही तो कठिन अवश्य था । अपने चिरजीवी सुपुत्र आयुर्वेदाचार्य डॉ० भृगुनाथ सिंह बी ए, एम् एस् (लखनऊ) तथा डी एवाई एम् (हि वि वि वाराणसी) को उनके द्वारा प्रेसलिपि तैयार करने, प्रूफसशोधन, विषय एव शब्दोकी हिंदी वर्णानुक्रमणिका आदि तैयार करनेरूप नानाप्रकारसे प्राप्त सहायताके लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद एव शुभाशीर्वाद अर्पित करता हूँ ।

अन्तमें मैं ग्रथके प्रकाशक, उत्तरप्रदेश राज्यसरकारकी आयुर्वेदिक एव तिब्बी अकादमीका विशेष आभारी हूँ जिसने इस रचनाको प्राथमिकता देकर सम्पूर्ण ग्रथको जो तीन खडोमे होगा, शीघ्र प्रकाशित करनेके लिए सक्रिय निर्णय लिया है ।

आयुर्वेदिक एव तिब्बी अकादमीके अध्यक्ष, निदेशक आयुर्वेद-यूनानी सेवाएँ उत्तरप्रदेश, माननीय श्री मुकुन्दीलालजी द्विवेदी मेरे कम धन्यवादके पात्र नही हैं, जिन्होने इस ग्रथके लिए प्रस्तावना लिखने का अनुग्रह किया है । इतना ही नही, बहुत कुछ यह उनके ही प्रयत्नका सुपरिणाम है कि यह ग्रथ प्रकाशनार्थ स्वीकृत हुआ और इतना शीघ्र प्रकाशित होकर प्रसिद्ध होने जा रहा है ।

अतमें जीवन शिक्षा मुद्रणालय, गोलघर, वाराणसी–१ के सचालक श्री तरुण भाई भी हमारे विशेष धन्यवादके पात्र है जिन्होने ग्रथके शीघ्र, शुद्ध एव सुदररूपमे मुद्रणमें विशेष सतर्कता एव तत्परताके साथ योगदान किया है ।

यह सभव नही कि इस ग्रथमें कमियाँ न हो, कारण मानव अपूर्ण है, पूर्ण तो केवल परमपिता परमात्मा ही है । अस्तु, सहृदय पाठकवृदसे मेरा बिनम्र निवेदन है कि यदि इसमें किसी प्रकार कही कमी दृष्टिगत हो तो, उससे लेखकको अवश्य अवगत करानेकी कृपा करें, जिससे इसके अगले सस्करणमे उनका परिहार किया जा सके ।

आयुर्वेदानुसधान प्रासाद
चुनार, मीरजापुर
७–५–७२

दलजीत सिंह

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

यूनानी वैद्यक तथा आयुर्वेद

'यूनानी' संज्ञा संस्कृत 'यवनानी' शब्दका अपभ्रंश या रूपान्तर है, जो स्वयं संस्कृत 'यवन' संज्ञासे व्युत्पन्न है। तालीफ शरीफी और मुहीत आज़म नामक फारसी निघण्टु ग्रंथोंमें यवन-संज्ञाका व्यवहार मुसलमान, यहूदी और अंगरेज आदिके लिए, जो अहिंदू एवं अनार्य मतावलंबी हैं, किया गया है। परंतु ध्यान रहे कि 'इन्द्रवरुणभव शर्व० ४।१।४९ इत्यादि, पाणिनी सूत्र पर एक वार्तिक है 'यवनाल्लिप्याम—इसका उदाहरण है 'यवनानां लिपिर्यवनानी' (यवनानां भाषा यवनानी—इति हि वैयाकरण)। अतः यह निर्विवाद एवं सुनिश्चित है, कि यूनानी (यावनी—ग्रीक) आक्रमणसे बहुत पूर्व यहांकी जनता और भाषा पर यूनान (यवन—ग्रीस) के संबंधका प्रभाव पड़ा था। इससे यह भी स्पष्ट है कि प्राचीनकालमें ग्रीस (यूनान) मुख्यतः सीरियावालोंके लिए, जैसा कि अशोकके शिलालेखोंसे विदित है, तथा ईरान आदि वालोंके लिए जो भारतबाह्य, वेदबाह्य, विदेशी और विधर्मी हैं, यवनसंज्ञाका व्यवहार होता था। उनके लिए असुर तथा म्लेच्छ संज्ञाका व्यवहार भी प्राचीन शास्त्रोंमें मिलता है। परंतु आजकल तो यवन संज्ञासे ग्रीसवालोंका ही ग्रहण विशेष रूपसे होता है।

इन स्थानोंपर 'यवन' शब्द मुसलमानोंके लिए उपयुक्त नहीं हो सकता, जैसा कि आजकल होता है। उस समय इसलाम धर्म या मुसलमानोंका संसारमें कहीं नाम भी न था। उनकी उत्पत्तिको तो अभी १४०० वर्ष भी पूरे नहीं हुए हैं। अरबी तत्वज्ञान और इसलाम धर्म इन दोनोंका समय लगभग एक ही है, अर्थात् सन् ६२२ ई०। जब इसलामी धर्मगुरु मक्कासे मदीनाको चले गये (हिजरत कर गये), तबसे इसलाम धर्म प्रारंभ होकर सन् १३०० ई० तक उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

अस्तु, यूनानी चिकित्साके नामसे प्रसिद्ध चिकित्सापद्धति जो आज कुछ मुसलमानोंके हाथमें है, अर्थात् अरबी या इसलामी बनाम यूनानी वैद्यक अर्थात् तिब्ब, जिसके ग्रंथ प्रथमतः अरबी तथा फारसी और अब उर्दूमें मिलते हैं, वह मौलिक प्राचीन यूनानी पद्धति नहीं है, अपितु यूनानी (Ionia or Greece) या पुराण ग्रीक और रोमन वैद्यकसे अरबमें पहुँचे हुए ज्ञानका रूपान्तर है। अरबोंके पास अपनी निजी कोई चिकित्सा प्रणाली नहीं थी। उन्होंने सब कुछ यूनानसे ही सीखा और अपनी पद्धति की प्रतिष्ठा, प्राचीनता एवं प्रामाणिकता द्योतित करनेके लिए उसके साथ 'यूनानी' शब्द जोड़ दिया। भारतमें वही प्रसिद्ध है। यूनानीके साथ इनका अपना जैसा व्यवहार एवं संबंध है, तथा ये उसे अपनी ही वस्तु मानते हैं। इसीलिए इनके लिए जो 'यवन' संज्ञाका व्यवहार होता है, वह उचित ही है।

यूनानी वैद्यकका क्रमिक विकास और उसपर आर्य वैद्यक का प्रभाव—इतिहासवेत्ताओंसे यह बात छिपी नहीं है, कि यूनानमें ज्ञानका प्रसार मिस्र (Egypt) और फिनीशिया (Phoenicia) द्वारा हुआ। और मिस्रमें बहुत-सा सीधे भारतवर्षसे ज्ञान, मुख्यतः बौद्ध भिक्षुओं द्वारा अथवा परम्परया सीरिया और बेबीलोनिया होकर आया। मिस्रसे यूनान तथा पुनः भारतसे ईरान होकर यूनान और वहांसे अरब तथा अन्य यूरोपीय देशोंमें पहुँचा। इससे स्पष्ट है, कि आधुनिक पाश्चात्य वैद्यककी आधारशिला भारतीय आयुर्वेद पर ही रखी गयी है। सारांश यह कि जिस चिकित्सा-पद्धतिको आज 'यूनानी' कहा जाता है, उसका उद्भव भारतीय चिकित्सा-विज्ञानसे हुआ है। (एलोपैथीका मूलमन्त्र भी भारतने ही दिया तथा मिस्र-ग्रीस-अरब आदि देशोंमें विकास करते करते वह पाश्चात्य देशोंमें पहुँचा और वर्तमान एलोपैथीके रूपमें प्रकट हुआ। अतः इन तीनों चिकित्सापद्धतियोंका पारस्परिक संबंध सुस्पष्ट एवं सुनिश्चित है।)

यूनानी वैद्यकका इतिहास प्राच्य एवं पाश्चात्य जातियो तथा उनकी संस्कृतियोके परस्पर मिलन, आदान-प्रदान, मानसिक एवं बौद्धिक सयोग और क्रिया-कलापका एक मनोरंजक इतिवृत्त है, जिसके अध्ययनसे यह स्पष्ट रूपेण ज्ञात होता है कि यद्यपि इसके आविष्कार एवं संस्थापनका श्रेय यूनानियोको प्राप्त है, तथापि इसका प्रगति और उन्नतिकी पराकाष्ठा पर पहुँचानेमें ससारकी प्राय अन्यान्य जातियोका योगदान रहा है। यूनानी वैद्यकके उस प्रारम्भिक कालमें ही इसपर आर्यवैद्यकका जो प्रभाव पडा था, वह इतिहाससे सिद्ध है। यूनानी वैद्यकके आधारभूत सिद्धान्त, जैसे—अरकान अरबआ 'अखलात अरबआ' यानी चतुर्द्रव (दोष चतुष्टय) आदि कल्पनाओंसे बहुत पूर्व आर्य वैद्यकमे उक्त सिद्धान्त स्थिर हो चुके थे, जिन्हें क्रमश चतुर्महाभूत या पञ्चमहाभूत और चतुर्दोष वा त्रिदोष (त्रिधातु) आदि कहा जाता है।

उक्त कालमें ही वुकरात (Hippocrates), दीसकूरीदूस (Dioscorides) और जालीनूस (Galenus) आदिके ग्रथोमें अनेक भारतीय द्रव्यो (कुष्ठ शुण्ठयादि) तथा सिद्धातोका ग्रहण हो चुका था। मुवश्शिर इब्न फातिकने मुख्तारुल्हुकम मे लिखा है, कि जव सिकदरने दारा पर विजय पायी तो ईरानियोके समस्त ग्रथ नष्ट कर दिये, केवल ज्योतिष, दर्शन और वैद्यकके ग्रथ छोड दिये, जिनका उसके आदेशसे यूनानीमें भाषान्तर किया गया। सभवत भारतवर्षसे भी इसी प्रकार वैद्यक-विद्याका कोष यूनानियोके हाथ लगा हो।

इतिहासमे पता चलता है कि सिकदरके आक्रमणने यूनानियों तथा भारतीयोंके बीच सपर्क पैदा कर दिया था। उस समय भारतीय सभ्यता उन्नतिकी पराकाष्ठापर पहुँची हुई थी। अतएव इस मेलजोलका अनिवार्य परिणाम यह हुआ, कि यूनानियोंने भारतीयोंसे विविध ज्ञान-विज्ञान सीखे। वादमें भी यह सबध ईरान, सीरिया और इस्कदरियाके द्वारा बना रहा। डॉ० होर्नले (Hoernle A F Rudolf) तथा डॉ० न्युबर्गर (Dr Neuburger, Max-History of Medicine)ने इस विषय पर प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं कि—क्टेसियस (Ctesias) और मेगास्थनीज (Megasthenes) नामक दो यूनानी हकीम ईसवी सन्से ४ शती पूर्व ज्ञानकी खोजमें भारतवर्ष आये थे। यही कारण है कि उत्तरकालीन यूनानी ग्रथोंमें व्रणपूरणकी भारतीय विधियोका उल्लेख मिलता है।

यूरोप, एशिया और अफरीकाकी विविध जातियोने सीधे यूनानी भाषासे या अपनी भाषामें इसके ग्रथोंके भाषातर द्वारा इस विद्याको यूनानियोंसे सीखा और जव इसलामका काल आया तव यद्यपि इस विद्याकी उन्नतिका द्वार वद हो चुका था तथा विश्वमें दर्शन और वैद्यक-विद्या (हिकमत)की अभिभावक कोई जाति शेष न थी, तथापि न्यूनाधिक प्राय सभ्य देशोंमें वैद्यक-विद्याके विशेषज्ञ मौजूद थे और हर जगह इसका प्रचलन था।

इसलामके उदयकालमे

अर्थात् इसलाम के वाद, भारत विजय से पूर्व

ग्रीक, रोमन संस्कृतिके ह्रासके पश्चात् ज्ञान और विज्ञानके साथ वैद्यककी धरोहर भी इसलामियोंके हाथमें आ गई, जिन्होंने इसे एक ओर वलख (वाह्लीक), बोखारा, तुर्किस्तान, चीन और हिंदमें और दूसरी ओर अदलुस (Spain)में फैलाया।

इसलामके प्रारम्भिक कालमें यद्यपि मुसलमान इसके अभिभावक अवश्य थे, तथापि यह अन्यान्य जातियोंके हाथमें रही। अनुमानत लगभग डेढ शती तक ईसाई, यहूदी (Jews) प्रभृति तारापूजक इरानी, कुल्दानी (Kelts), मिस्री (Egyptian) और सुरयानी (Syrian) विभिन्न भाषा-भाषीजातियाँ इसकी जाननेवाली थी। जव इसके ग्रथोका अरवीमें अनुवाद हो गया तव मुसलमानोंने इसको सीखना प्रारभ किया और उनमें राजी और शैखके समान ऐसे-ऐसे निष्णात हकीम पैदा हो गये कि वुकरात और जालीनूसका काल पुनरुज्जीवित हो उठा।

वगदादके खलीफा हारून-अल्-रशीद और उनके वादके दस खलीफाओंका काल (ई० सन् ७५०-८५०) अरवी तत्वज्ञानका और वैद्यकका सुवर्णकाल माना जाता है। इसी कालमें यूनानी, असीरियन, पारस्य तथा प्राचीन भारतीय वैद्यकीय वाङ्मयका अरवी भाषान्तर किया गया और इनके मेलसे एक सर्वथा नवीनतम चिकित्सा-पद्धतिकी आधारशिला रखी गई। इतिहाससे पता चलता है, कि इस कालमें आर्यवैद्यगण भी वगदादमें विद्यमान थे। इनमेंसे

नही की, अपितु यह्या-बिन खालिद बरमकीने एक कार्यकर्ताको भारतवर्ष इसलिए भेजा कि वह वहाँ जाकर हिंदुस्थानकी जडी-बूटियाँ लाये। उसने एक वैद्यको राजकीय अनुवाद विभागमें इसलिए नियुक्त किया कि वह संस्कृतके वैद्यकग्रथोका अनुवाद अरबीमें कराये।[1] इसी प्रकार 'खलीफा मुवफ्फिक बिल्लाने' भी हिजरी सन्‌की तीसरी शतीमें भारतवर्ष इस प्रयोजनार्थ आदमी भेजे, कि वे हिंदुस्थानकी औषधियोकी खोज करें। इस घटनाका उल्लेख जखावने इंडियाके उपोद्घातमें किया है।

यह मका (माणिक) था। कहा जाता है कि वह चिकित्सा एव अन्य भारतीय शास्त्रोका अत्यत निष्णात, सफल चिकित्सक, साधुस्वभावका दार्शनिक था, तथा जितना भारतीय भाषाका मर्मज्ञ था उतना ही पारस्य (पहलवी) भाषा का भी ज्ञाता था। खलीफाने उसे बहुमूल्य उपहार तथा धन-धान्य भेंट किया।[2] उसने उसे अपने दरबारके उच्चाधिकारियो में सम्मिलित कर लिया वहाँ उसने इसलामधर्मका सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया तथा मुसलिम साधुओ (फकीरो)के साथ उसके गुण दोषोंके विषयमें ऊहापोह किया। और अततोगत्वा उसने इसलामधर्म ग्रहण कर लिया।[3] उसे बरमकियोके आतुरालयोके साथ सबधित कर दिया गया। उसने कतिपय संस्कृत ग्रथोंका फारसी या अरबीमें[4] अनुवाद किया, जिसका आगे उल्लेख किया जायगा।

अन्यतम ख्यातनामा भारतीय चिकित्सक, 'इब्नधन' बगदादमें मकाके समसामयिक था, (सभवत धनपति या धन्वन्तरिका उत्तराधिकारी)। यह्या बरमकी ने उसे बगदाद आमत्रित किया था तथा अपने आतुरालयके निदेशक पदपर नियुक्त किया था। उसके आदेशसे इब्नधनने कई भारतीय चिकित्साग्रथोका फारसी या अरबी भाषामें[5] अनुवाद किया, जिसका उल्लेख आगे किया जायगा। प्रोफेसर जखावने 'इंडिया'के उपोद्घातमें 'धन' नामकी वास्तविकता जानने का प्रयास किया है। उनकी खोजका निष्कर्ष यह है, कि यह नाम 'धन्या' या 'धनन' होगा। यह नाम सभवत इसलिए स्वीकृत किया गया कि इसका अक्षरत धन्वन्तरिसे सादृश्य है। (पृ० ३३, आग्लानुवादका उपोद्घात)।

बगदादमें भारतीय चिकित्साविद्याका सुविख्यात एव सफल कर्माभ्यासी 'भेलपुत्र' या भेलका उत्तराधिकारी सालिह (सभवत सालिह्-बिन-बहल) था। यह भी आर्यवैद्यकका पडित था। इब्न-अबी-उसैबिआने इसकी भी भारतके उन निष्णात वैद्योमें गणना की है, जो बगदादमें थे। उसका नाम सालि का अरबीकृत रूप है, अथवा उसने इसलाम धर्म ग्रहण कर लिया था। फलत उसका नाम परिवर्तित होकर 'सालिह' हो गया जिसकी अधिक सभावना है। हारून-अल्-रशीदके खिलाफत काल (७८६-८१४ ई०)में वह बगदादमें रहता था, परतु उसे न तो कोई सरकारी पद प्राप्त था और न उसे किसी भारतीय चिकित्साग्रथके फारसी या अरबी अनुवादका अवसर मिला था। सभवत वह इसलामी राजधानी मेट्रोपोलिस (Metropolis)में स्वतत्र चिकित्साकर्माभ्यासी था। उसका नाम केवल हारून-अल्-रशीदके भतीजेकी चिकित्साके सबधमें लिया जाता है, जिसका विवरण इब्न-अबी-उसैबिआने प्रत्यक्ष प्रमाणके आधार पर दिया है।

हारून-अल्-रशीदके भतीजाविषयक उसकी चिकित्सा

हारून-अल्-रशीदका भतीजा इब्राहीम सन्यास (सकृता) रोगसे पीडित हुआ। खलीफाके निजी चिकित्सक

---

१ अल्फेह्रिस्त—इब्न नदीम, पृ० २४५।

२ तबकातुल् अतिब्बा (इब्न-अबी-उसैबिया लिखित) सचिका २, पृ० ३३, तारीख़ अल्तबरी, लेडेन, सचिका ३, पृ० ७४७—४८।

३ अलजाहिज़ 'किताबुल् हैवान', सचिका ७, पृ० ६५।

४. 'अल्फेह्रिस्त', लीपजिग, पृ० २४५, ३०३।

५ अल्फेहरिस्त, लीपजिग, (इब्न नदीम लिखित) पृ० २४५, ३०३।

६ सिरिल एल्गुड (Cyril Elgood)ने इसका नाम 'सालेह बिन तहला' (मेडिकल हिस्टरी ऑफ पर्सिया, केम्ब्रिज १९५१, पृ० ९५), परतु यह गलत अरबी ग्रथ पर आधारित है।

'जवरइल'ने उसकी परीक्षाकी और यह घोषणा की कि कुछ घटोंमें रोगीकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। इस समाचारसे खलीफा बहुत दुखी हुआ। उसने भोजनका परित्याग कर दिया और रुदन-क्रदन करने लगा। उसके दरवारी एव उपस्थित जन भी उसके महान् दु खमे अत्यत दुखित हुए। उनमेंसे एक ने उनके सामने यह सुझाव रखा कि भेलके उत्तराधिकारी 'सालिह'को बुलवाया जाय, जो भारतीय चिकित्साविज्ञानका उसी प्रकार परम निष्णात है, जिस प्रकार यूनानी चिकित्साविज्ञानका जवरइल। यह सुझाव स्वीकृत हुआ। चिकित्सकको आमत्रित किया गया। वह रोगीके निवासस्थान पर गया। उसकी परीक्षा की और खलीफाको बतलाया कि वर्तमान व्याधिमे कदापि रोगीकी मृत्यु नही होगी। उसने कहा कि यदि वर्तमान रोगमे रोगीकी मृत्यु हुई, तो वह उन सभी वस्तुओको छोडनेके लिए प्रस्तुत है जो उसके पास है। इसके तुरत बाद रोगीकी मृत्युका समाचार आया। खलीफा, उसके परिचारक (Attendants) तथा 'सालिह' सहित अन्य लोगोके समक्ष उसकी दफनकी तैयारी पूरी कर ली गयी। इन सभी कार्योंके विरुद्ध सालिहने प्रवल विरोध प्रकट किया। उसने पूरे विश्वासके साथ इस वातका समर्थन किया कि रोगी जीवित है तथा वह उसे तत्काल रोगमुक्त कर सकता है। उसने क्रियात्मक रूपसे इसे प्रमाणित कर दिया कि इब्राहीम अद्यावधि जीवित है। उसने उसके वायें अँगूठेमें एक सुई चुभो दी, जिससे उसने (इब्राहीम-रोगीने) अपना हाथ हटा लिया।

तदुपरात सालिहके आदेशसे इब्राहीमका कफन हटाया गया, उसे स्नान कराया गया तथा उसे दैनिक वस्त्र पहनाया गया। इसके बाद सालिहने रोगीको नाकमें कुदुम[1] (Veratrum album)का बना कोई नस्य प्रधमित किया। लगभग १० मिनट बाद उसका शरीर कपायमान हुआ। उसे छीक आयी, वह उठ बैठा और खलीफाके, जिसने उससे जानना चाहा कि उसे क्या हो गया था, हाथोका चुबन किया। उसने उत्तर दिया कि वह ऐसी गभीर निद्रामें सो गया था, जैसी कि इससे पूर्व वह कभी नही सोया था और उसने स्वप्न देखा कि एक कुत्ताने उसके वायें अँगूठेमें काट लिया है जिसमें उठ वैठनेके बाद भी पीडा हो रही है।[2]

ये तीनों वगदादमें उस कालके प्रसिद्ध वैद्य थे। इन तीन सुप्रसिद्ध भारतीय चिकित्साविदोंके अतिरिक्त वगदादमें अन्य चिकित्सक भी रहे होंगे। परतु हमें उनके विषयमें कोई सूचना नही है।

प्राचीन भारतीय चिकित्साविदो एव उनकी रचनाओंके विषयमे अरवोका ज्ञान

फिर भी अरव विद्वान् न केवल वगदादमें तत्कालीन भारतीय साधुओ एव चिकित्सा-शास्त्रियोंको जानते थे, अपितु कतिपय प्राचीन भारतीय चिकित्सको एव शास्त्रनिष्णातोकी भी कुछ जानकारी उन्हें प्राप्त थी। अरव लेखकोने उनमेंसे कुछका विवरण दिया है।[3]

(१) कक[4]—एक प्रसिद्ध और ख्यात नामा आयुर्वेदज्ञ और प्राचीनकालका एक पौर्वात्य दार्शनिक था। जखाव[5]की खोजके आधार पर इस नामका शुद्ध सस्कृत रूप ककनाया (सभवत काङ्कायन) होगा। क्योकि इस नामका प्रसिद्ध वैद्य भारतवर्षमें प्रथम हो चुका है।

(२) सजहल (सहेलिआ)—भारतका एक विद्वान् था, जो चिकित्साविज्ञान और ज्योतिप (Astronomy) में निष्णात था। इसका एक सग्रह ग्रथ 'किताबुल् मवालीद' (नागरिकताविषयक ग्रथ) नामका है।

---

१ 'इब्नवैतार'के मतसे अल्कुदुमको 'कुदुस' और 'ऊदुलुउतास' भी कहते है। उनके मतसे इसका न तो दीसकूरीदूसने और न जालीनूसने ही वर्णन किया है, तथा 'हुनैन' और उसके अनुयायियोंने प्रमादवश इसे दीसकूरीदूसोक्त स्ट्रीथिमोन (D २ १०५) लिखा है, जो इससे सर्वथा एक भिन्न पौधा है। (इ० वै० ३।१३, ४।१०६)।

२ 'तबकातुल् अतिव्वा', सचिका २, पृ० ३४-३५।

३ अल्फेहरिस्त, पृ० २७० २७१, तारीखुल् हुक्मा, पृ० २६५, तबकातुल् अतिव्वा, सचिका २, पृ० ३२-३३।

४. 'उयूनुल् अंबा-फी तबकातुल्-अतिव्वा', सचिका २ पृ० ३३ मिस्र।

५ इडियाका उपोद्घात पृ० ३२।

(३) शानाक जिसका शुद्ध संस्कृतरूप संभवतः चाणक्य[1] या शौनक है। इसके रचित या संकलित ग्रंथ निम्न हैं —(१) पशुचिकित्साविषयक ग्रंथ (किताबुल्बैतर या सालोतरी—शालिहोत्र[2]) जिसका अरबी भाषांतर किया गया। (२) युद्धविषयक ग्रंथ (किताबुल् अस्कर) जिसका अंतिम अध्याय 'भोजन और विष' शीर्षक था। ऐसा ज्ञात होता है कि इसके अतिरिक्त विशेष विषोंके वर्णनमें अर्थात् विषतंत्र विषयक (किताबुस्सुमूम) भी इसकी कोई पुस्तक थी जो सातवीं शती हिजरी (१३वीं शती ईसवी) तक अरबीमें विद्यमान थी। क्योंकि इब्न-अबी-उसैबिआ (सन् ६६८ हिजरी तदनुसार सन् १२७० ई०)ने इस पुस्तकका पूर्ण विवरण इस प्रकार लिखा है कि 'यह पुस्तक पाँच अध्यायोंमें है। मंका या मणिक पंडितने यह्या-बिन-खालिद बरमकीके लिए अबूहातिम बल्खीकी सहायतासे उसका फारसीमें अनुवाद किया। फिर खलीफा मामून-अल्-रशीद (सन् २१८ हिजरी)के लिए दोबारा इसका अरबी अनुवाद किया[3]।

विषतंत्र विषयक, जिस पर उसके लेखकका नाम नहीं है, एक और ऐसी पुस्तकका उल्लेख जो संस्कृतसे अरबीमें भाषांतर हुई, इब्ने नदीमकी अल्फिहरिस्तमें भी मिलता है[4]।

(४) जौधर (यशोधर ?)—यह एक उच्च कोटिका दार्शनिक और अपने कालका विद्वान् था। चिकित्सा-शास्त्रमें भी इसकी अच्छी पहुँच थी। वैज्ञानिक विषयमें इसके संकलित अनेक ग्रंथ हैं। उनमेंसे एक 'किताबुल् मवालीद' (नागरिकता या रसायन विषयक) है।

(५) बाजीगर—बहल और मंक के अतिरिक्त जाहिज (हिजरी सन् २५५)ने एक नाम और बाजीगर (संभवतः विजयकर ?) लिखा है। इतनेके नाम लिखकर औरोंके नाम अमुक-अमुक कहकर छोड़ दिये हैं। उसने लिखा है कि इनको यह्या-बिन-खालिद बरमकीने भारतसे बगदाद बुलाया था।[5] ये सब वैद्य थे। दूसरी जगह जिन भारतीय विद्वानोंके वैद्यक और ज्योतिषके ग्रंथ अरबीमें अनूदित हुए उनके ये नाम गिनाये हैं—बाखर (व्याघ्र ?), राजा, मंका, दाहर, अंकर, जंकल, अरीकल, जबहर, अंदी, जबारी।[6] परंतु वर्तमान ज्ञानकी दशामें वस्तुतः वे क्या हैं, इसका निश्चय करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

उपर्युक्त प्राचीन भारतीय पंडितों एवं लेखकोंके अतिरिक्त उनमेंसे अन्य दसके नाम इब्नुल् नदीम (अल्फिहरिस्त पृ० २७१) और दस इब्न-अबी-उसैबिआ (तबकातुल् अतिब्बा संचिका २, पृ० ३२) द्वारा गिनाये गये हैं।

अरबीमें अनूदित भारतीय (संस्कृत) चिकित्साग्रंथ

अब्बासी खलीफाओंके तत्वावधानमें जिन भारतीय (संस्कृत) चिकित्सा आदि ग्रंथोंका अरबी भाषांतर हुआ, वे प्रायः निम्न हैं —

(१) 'चरक' जिसका अरबी रूपांतर 'शरक' है। इसका प्रथम फारसी (पह्लवी भाषा)में अनुवाद संभवतः मंका (माणिक) द्वारा संपन्न हुआ। पुनः इसके बाद अब्दुल्ला-बिन-अलीने इसका फारसीसे अरबीमें भाषांतर किया।[7]

---

१ कौटिल्य अर्थशास्त्रका लेखक यह चाणक्य ही था।

२ यह भारतमें प्राचीन पशुचिकित्साविज्ञानका जनक था। यह कंधार (प्राचीन गंधार)के समीपस्थ शालातूर नगरका निवासी था। नकुलके विचारसे यह हयघोष या तुरङ्गघोषका पुत्र था। यह सुश्रुत समकालीन था। 'शालिहोत्र' इसीका लिखा पशुचिकित्सा विषयक ग्रंथ है।

३ उयूनुल-अंबा-फी तबकातुल्-अतिब्बा, पृ० ३३।

४ उयूनुल्-अंबा-फी-तबकातुल्-अतिब्बा, पृ० ३१७।

५ अल्फेहरिस्त—इब्नुल् नदीम पृ० २७१, तबकातुल् अतिब्बा—इब्न अबी उसैबिआ, संचिका २, पृ० ३२

६ 'इब्न नदीम'—वैद्यक तथा ज्योतिष-ग्रंथ प्रकरण।

७ अल्फिहरिस्त—इब्ननदीम पृ० ३०३।

(२) 'सुश्रुत' जिसका अरबी रूपान्तर 'सुस्रुद' है। खालिद बरमकीके पुत्र यह्याके आदेशसे मनका वैद्यने इसका अरबी भाषान्तर किया। जिसमें बरामकाके आतुरालयमें यह एक वैद्यकीय प्रयोग-ग्रन्थ (दस्तूरुल्-अमल)का काम दे। यह ग्रंथ दस अध्यायोंमें था। इसमें रोगोंके लक्षण और उनकी चिकित्सा एवं औषधका विवरण है।

(३) अष्टाङ्ग-संग्रह या अष्टाङ्ग-हृदय जिसका अरबी रूपांतर अस्तागर या अस्ताकर है। इसका अरबी भाषान्तर इब्न-दहन वैद्यने किया था।[1]

(४) चतुर्थ ग्रन्थका नाम अरबोंने निदान लिखा है। किसी किसी प्रतिमें जिसका अरबी रूपांतर भूलसे 'बदान' लिखा है। इसके अनुवादकका नाम अज्ञात है। इसमें ४०४ रोगोंका केवल लक्षणसहित विवरण (निदान) लिखे हैं। परन्तु उनकी चिकित्सा नहीं लिखी है।[2] इब्न नदीमने इसका उल्लेख नहीं किया है। यह माधव निदान ग्रंथ ज्ञात होता है।

(५) अल्फिह्रिस्तमें इस ग्रन्थका नाम 'सिदस्ताक' और याकूबीके प्रकाशित या मुद्रित पाठमें 'सिंधिशान' तथा इसी ग्रन्थकी एक अन्य प्रतिमें 'सिंधिस्तान' है। संस्कृतमें इसका शुद्ध रूप सम्भवतः 'सिद्धिस्थान' है। इब्न नदीमने अरबीमें इसका अर्थ 'सूरतुन्-नज्ह' और याकूबीने 'सूरते नाजाह' अर्थात् सिद्धिस्थान या सिद्धियोग लिखा है। मैंने विस्तारसे याकूबीकी प्रति अपेक्षाकृत शुद्ध प्रतीत होती है। पुनरपि बगदादके आतुरालयके प्रधान चिकित्सक इब्न-दहनने इसका अरबी भाषान्तर किया था। (अल्फिह्रिस्त इब्न नदीम पृ० ३०३, याकूबी सन्निका १, पृ० १०५)।

(६) विषतन्त्र (किताबुस्सुमूम)—खालिद बरमकीके आदेशसे चाणक्य (शाणिक) वैद्यने भारतीय (संस्कृत) भाषासे पारस्य (पहलवी) भाषामें इसका अनुवाद किया और अबू हातिम बल्खीने फारसीमें इसकी प्रतिलिपि की। तदनन्तर अब्बास-बिन-सईदने इसका अरबी भाषांतर किया, जिसने खलीफा अल्-मामूनके समक्ष इसका पाठ किया।

(७) 'रूसा' नाम्नी एक भारतीय स्त्री वैद्यके एक ग्रन्थका अनुवाद हुआ, जिसमें विशेष स्त्रीरोगोंकी चिकित्सा (इलाजुन्निसाउ)का वर्णन था।

(८) एक और ग्रंथ गर्भवती स्त्रीचिकित्सा विषयक (इलाज हुबाला) था, जिसका अरबी भाषांतर हुआ।

(९) सर्पचिकित्साविषयक राय नामी एक पण्डितकी पुस्तकका अनुवाद हुआ जिसमें सर्पभेद और सर्पविषका वर्णन था।[3]

(१०) अरबीमें एक और भारतीय पण्डितकी एतद्विषयक पुस्तकका उल्लेख उयूनुल्-अम्बा-फी-तबकातुल् अतिब्बा मिस्र, पृ० ३३ पर है।

११ एक जड़ी-बूटी (ओषधि) विषयक लघु पुस्तिका।

१२ *एक पुस्तक नशा (मादकता) तथा मारक द्रव्यके वर्णनमें।

१३ एक ग्रंथ जड़ी-बूटियोंके विभिन्न भाषाके नामोंके वर्णनमें अनूदित हुआ, जिनमेंसे एक-एक जड़ीके दस-दस नाम वर्णन किये गये हैं। इसको मनका पण्डित ने सुलेमान-बिन-इसहाकके लिए अरबीमें अनुवाद किया।[4] अरबीमें इसका नाम 'किताब तफसीर अस्माउल् उक्कार' आया है।

---

१ अल्फिह्रिस्त—इब्ननदीम।

२ याकूबी तारीखिका १, पृ० १०५।

३ अल्फिह्रिस्त—इब्ननदीम पृ० ३०३।

४ अल्फिह्रिस्त इब्न नदीम, पृ० ३०३, याकूबी प्रथम, पृ० १०५।

१४ *एक और पुस्तक जिसमें भारतीय और यूनानी हकीमोकी ओपधियोके शैत्य एव औष्ण्य, ओपधीय वीर्य (कुव्वतो) और वर्पके ऋतुविभागमें जो मतभेद है, उनका विवरण था, अनूदित हुई।[1]

१५ *एक अपतन्त्रक और उन्माद-विपयक ग्रथ।

१६ *तुगस्तल या नोकश्नल (नोफश्नल ?) नामी एक वैद्यके दो ग्रथोके अनुवाद किये गये। इनमेंसे एकम १०० रोगो और १०० ओपधियोका उल्लेख था।

१७ और दूसरेमें रोगोके वहम और कारण (निदान) का वर्णन था।

१८ मसऊदीने वैद्यककी एक पुस्तकका नाम और विवरण, इस प्रकार लिखा है कि "राजा कोरशके लिए वैद्यकका एक महान ग्रथ लिखा गया था जिसमें रोगोका निदान, चिकित्सा तथा औपध और द्रव्योकी पहिचान एव उसमें जडी-बूटियोके चित्र बनाये गये थे।"[2]

ये सभी अनुवाद ९वी शतीके मध्यसे पूर्व हुए है। इन वैद्योंके सबधमें लिखा है कि ये सबके सब ग्रथ लेखक थे और भारतवर्षके लब्धप्रतिष्ठ ख्यातनामा वैद्य थे। भारतीय इनकी रचनाओका आदर-सम्मान करते थे। इनकी प्रायश रचनाओका अरबी भापातर हुआ है।

(हिंदुओने द्रव्यगुण, उद्भिज्जशास्त्र, विपतत्र, रसायन और शल्य-शालाक्यमें विशेष उन्नति की थी। अस्तु, अरबी और फारसीमे सुश्रुत और चरक का अनुवाद किया गया।

यही नही कुछ यूनानी हकीम, जैसे बुकरात (Hippocrates), अरस्तू (Aristotle), अफलातून (Plato) आदि तथा अबीरेहान, अल्बेरूनी, बरज़ैया मसीहुल्मुल्क शीराजी और यहाँ तक कि शैखुर्रईस बूअलीसीना आदि यूनानी हकीमो और विद्वानोंका तो भारतवर्षमें आकर वैद्यकसे लाभ उठानेका भी इतिहाससे पता चलता है।[3])

अरबी वाङ्मयमे सस्कृत शब्द अरबीकृत रूपमे

पुस्तकोंके अतिरिक्त सस्कृत और भारतके उन अवशिष्ट प्रभावोका उल्लेख करना है, जो अरबी वैद्यकमें अब तक विद्यमान हैं। इनमें उन प्रभावोका उल्लेख समाविष्ट नही है जो हिंदुस्तानके मुसलिम शासनकालमें वैद्यक पर पडे, क्योकि वह एतद्भिन्न प्रकरण है। प्रत्युत यहाँ उन प्रभावोका विवरण किया जायगा जो हिजरी सन् की चतुर्थ शती तकके अरबी-यूनानी वैद्यकपर प्रभावकर हुए हैं। इस प्रसगमें सर्वप्रथम वे ओपधद्रव्य है, जो भारतवर्षसे अरब गये और बरामका तथा खलीफाओने उनकी शोधके लिए अपने खोजकर्ता भारतवर्ष भेजे। उनमें बहुधा द्रव्यके नाम न केवल उत्पत्तिस्थानके विचारानुसार, अपितु भाषाके विचारसे भी सस्कृत—भारतीय हैं और कमसे कम एक द्रव्य ऐसा है जिसका नाम कुस्ते हिंदी अर्थात् कुष्ठ है और दूसरा जजबील (सस्कृत 'शृगबेर' अर्थात् सोठ) जिसका उल्लेख पवित्र कुरानमें है। कुरानमे इनके अतिरिक्त मिस्क (कस्तूरी) और काफूर (कपूर)का भी उल्लेख मिलता है। शेप कुछ द्रव्योंके नाम जो या तो सीधे सस्कृतसे अथवा फारसी या यूनानी वा सुरयानी के द्वारा अरबी बनाये गये हैं, नीचे दिये जा रहे हैं—

---

१ याकूबी प्रथम, पृ० २०५।

* 'इब्न-अबी-उसैबिया' कहते हैं कि उन्होंने अल्-हावी तथा अल्-राजीकी अन्य रचनाओंमें *इस चिह्नयुक्त भारतीय ग्रथोंके उद्धरण पाये।

२ मसऊदी सचिका प्रथम, पृ० १६२—पेरिस।

३ काश्यपसहिता उपोद्घात, पृ० ८९।

अरबी	फारसी	संस्कृत	हिंदी
अवज	अब	आम्र	आम
अल् अकितमकित—मु०, अ० (कानून १-२६२) में इसे भारतीय द्रव्य कहा है)। ×			(१) करजुवा, × (२) हजरल् उकाब (इ० बै० ६/१५१)
अल्-तेरिफल (इ० बै०), अतरीफल अल्तेरिफल अल्कबीर „ अल्सगीर		त्रिफला	त्रिफला
अल् अफ्यून (इ० बै०), अफ्यून, (यू०) ओपिओन Opion (ओपिओस Opios = रस), (लै०) ओपियम् Opium	तिर्याक (अ०) अल्तिर्याक, (यू०) Theriaca, थेरियाका (अं०) Theriac	अहिफेन	अफीम
अल्बलेलज (इ० बै०) बलैलज	बलेल	बिभीतक	बहेडा
अल् आमलज (इ० बै०), आमलज (फि० हि०)	आमल	आमलक, आमलकी	आमला, आंवला
अल् इस्तिरक (इ० बै०) (यू०) स्टूराक्स Sturax D 1, 79, (अं०) Styrax		तुरुष्क (मु०)	
अल् इस्मिद (इ० बै०), इस्मिद (कुरान) (अं०) Antimony		अञ्जन	सुरमा
अल् ऊदुल् हिंदी (इ० बै०), ऊद हिंदी (कुरान), ऊद, (यू०) आगाल्लोखोन Aggalolhon (D 1 21) (अं०) Agalloch		अगुरु	अगर
(अं०) उन्मुले (अन्मले) हिंदी		कोलकन्द	कांदा
अल्कम्मून (इ० बै०), कमून हिंदी, कमून, (यू०) कुमिनोन Kuminon (D 61 62), (अं०) क्युमिन cumin	जीर,	जीर (क)	जीरा
अल्करावियां (फि० हि०, इ० बै), करावियां, कुरूया, (यू०) कारोन Karon (D 3 51), (अं०) Caraway seeds	कुरूय	कारवी, कृष्णजीर (क)	विदेशी काला जीरा
अल्काफूर (इ० बै०), (फि०हि०), काफ़ूर (कुरान), (यू०) काफोरा Kaphora		कर्पूर	कपूर
अल्कबील (इ० बै०), क़िबील	कबील	कम्पिल्लक	कबीला, कमीला
अल्कुदुर, अल्लुबान (इ० बै०), कुदुर,	कुदुर	कुन्दरु	

अरबी	फारसी	संस्कृत	हिंदी
(यू०) लिबानोस (Libanos (D 1. 31), (अ०) Frankincense			
अल्कुर्कुम (इ० वै०), कुर्कुम, (यू०) क्रोकोस (Krokos), (अ०) क्रोकस Crocus,		कुङ्कुम	केसर
अल्कुर्तुम (इ० वै०), कुर्तुम, (यू०) क्नीखोस Knekhos (D 4 187)	काफी (वी) श·	कुसुम्भ	कड, बर्रे
कुर्तुम हिंदी		कृष्ण (श्याम)बीज	कालादाना
कुर्फुस, कुर्सु-(सूं) फ		कर्पास	कपास
अल्कुस्त (इ० वै०, फि० हि० कुरान), कुस्त, (यू०) कोस्टोस (D I 15), (अ०) कॉस्टस (Costus)	कोश्तः	कुष्ठ	कुट, कूट
अल्ज़जबील (कुरा०, इ० वै०, फि० हि०), ज़जबील, (यू०) गिंजिगिबेरिस Gziggiberis	शिंगवेर, जजबर	शृङ्गवेर	सोंठ, आदी
अल्खेयारशबर (इ० वै०), खर्नूब हिंदी, कुमाऽहिंदी	खे(खि)यार चबर	आरग्वध	अमलतास
अल्जौज़ (इ० वै०), जौज़	गौज़	अक्षोट	अखरोट
जौज़बूया (-बव्वा, -वोवा)	गौज़बूया	जातिफल	जायफल
अल्जौजुल हिंदी (फि० हि०), जौज़हिंदी		नारिकेल	नारियल
तबूल	तबूल	ताम्बूल	तबूल, पान
अल्तबाशीर (इ० वै०)		त्वक्क्षीर, वशलोचन	बसलोचन
अल्तमरुल्हिंदी (फि० हि०), तमरे हिंदी (भारतीय छुहारा),		अम्लिका	इमली
अल्तालीस्फर (इ० वै०) कोई भारतीय		तालीसपत्र ?	
अल्तिर्याक (इ० वै०, १/२३) (यू०) थेरिआका Theriaka (अ०), थेरिआक Theriac			
तोवाज		त्वक्, कुटज त्वक्	कुडा छाल
अल् तुर्बुद (इ० वै०, फि० हि०) (अ०) Turbeth	तुर्बुद	त्रिपुट, त्रिवृत्	निशोथ
दूकुल्हिंदी (फि० हि०)		खर्जूर	खजूर
नारजील	नारगील	नारिकेल	नारियल

अरबी	फारसी	संस्कृत	हिंदी
अल्नील (इ० वै०), नीलज, (अ०) (Indigo plant)	नील	नील	नील
नीलूफर		नीलोत्पल (नील = जल, फल)	निलोफर
अल्फिल्फिल (फि० हि०), फिल्फ़िल	पिल्पिल:	पिप्पल (ली)	पीपल (र) वा गोलमिर्च
फ़ुदुके हिंदी	वुदुक हिंदी	अरिष्टक	रीठा
अल्वज (इ० वै०), वज— (१) भग (२) अजवायन खुरासानी	वग	भग	भांग
अल्वलैलज (इ० वै०), वलैलज	वलेल'	विभीतक	वहेडा
बीश		विष, वत्सनाभ	वच्छनाग
अल्मिल्हुल् हिंदी (फि० हि०), मिल्हे हिंदी		लवण विशेष	नमक
अल्मुर्तक (इ० वै०) Litharge	मुर्दासग	मृद्दारश्रृग	मुरदासग
अल्मुश्क (फि० हि०), मिस्क (क), (लै०, अ०) (Moschus) Musk	मुश्क	मुष्क, कस्तूरी	कस्तूरी
मौज़		मोचा	केला
अल्रामन (इ० वै०), रासन-अल्-हिंदी, रासन, कुस्त शामी, जजबीलुल् अजम (अंग्रेजी, गैल प्रभृति), (यू०) एलेनीन Elenon(D 1 27), (लै०) Enula Helenium	रासन	रास्ना	रास्ना
लेमूं		निंबू (क)	नीबू
अल्लुक (इ० वै०), लुक (लै०) Gummi Locca		लाक्षा	लाख, लाही
अलवज्ज (इ० वै०), वज्ज, अकुल्वज्ज, (यू०) अकोरोस Akoros (D 1 2)		वचा	वच
शखीर		शिग्वर	तूतिया
अल्शीतरज (इ० वै०, फि० हि०), शीतरज,	शीतर	चित्रक	चीता
अल्शेवनीज (इ० वै०), शोनी (शेवनी) ज (कुरान), (यू०) मेलान्थिओन Melanthion(D 3 83)		उपकुञ्चिका	कलौंजी, मँगरैला
अल्साज़जुल् हिंदी (इ० वै०), साजज		तेजपत्र	तेजपत्ता

अरबी	फारसी	संस्कृत	हिंदी
साजज हिंदी, (यू०) मालाबाथ्रोन Malabathron(D I 11) Malabathron			
अल्सर्शफ, सर्शफ	इस्फदान सफेद	सर्षप	सरसो
सदल		चन्दन	चदन
अल्सदरूस (इ० बै०, फि० हि०), सुदरूस, सुद्रस, सद्रस, (अ०) Sandrach		सर्जरस	चदरस, चद्रस
अल्सुक्कर (फि० हि०), सुक्कर	शकर	शर्करा	शक्कर, चीनी
हलैलज	हलैल	हरीतकी	हर्रे, हड
अल्हिंदि (द) बा (इ० बै०), हिंदुबा, (यू०) सेरिस Seris (D 2 1), (ले०) Cichorium intybus	कासनी, कस्नी	कासनी	
हाल, हील (-बवा), हेल, क़ाकिल		एल, एला	एलाची, इलायची
अल् औज (इ० बै०), (अ०) Vital power		ओजोस् (सु०, च०)	ओज
अल्दूस (इ० बै०)		दोष (सु०)	
अल्धातू (इ० बै०)		धातु (सु०)	

उपर्युक्त शब्द अपना जीवन इतिहास स्वय बतला रहे है, कि किस देशमें वे उत्पन्न हुए थे और कहाँ जाकर यह नवीन रग-रूप (वेष-भूषा) धारण किये ।

(अरबीमें दो शब्द जिनमें एक औषधका और दूसरा आहारका नाम है, सर्वाधिक विलक्षण है । औषधमें अतरीफल जो इतना प्रसिद्ध है और हर तबीब (चिकित्सक) और हर रोगीकी जिह्वा पर है । मोहम्मद ख्वारिज्मीने चतुर्थ शतीमें लिखा है कि "यह हिंदी (सस्कृत) शब्द त्रिफल है जो तीन फलो हड, बहेडा और आँवलासे बनता है ।" (मुफातेहुल् ख्वारिज्मी पृ० १८६) । एक और इसी प्रकारके औषधका नाम अबजात है । ख्वारिज्मी कहता है कि अब (आम) हिंदुस्तानमें एक फल होता है । उसको शहद, नीबू और हडमें देकर 'अबजात' तैयार किया जाता है । सभवत इसको गुडम्बा या आमोंका अचार या मुरब्बा कहना चाहिए । किंतु इन सबसे अधिक विचित्र शब्द बह्त (भत्त) है जिसकी व्याख्या ख्वारिज्मीने यह लिखी है कि "यह रोगियोंके लिए पथ्याहार है । यह शब्द सिंधी है । यह दूध और घीमें चावलको पकाकर तैयार होता है ।" (मुफातेहुल् ख्वारिज्मी पृ० १८६) । आप समझिए यह हमारा—हिंदुस्तानी 'भात (भक्त)' है जो अरबोंके समीप रोगियोके लिए एक नरम और हलका—लघु पथ्याहार होगा । इसको अब 'खीर' समझिये या 'फ़ीरीनी' । (अरब और हिंदके ताल्लुकात) ।

आर्यवैद्यकीय वाड्मय (तत्त्वो)का अरबी यूनानी हकीमो द्वारा ग्रहण

इसलामी वैद्यक पर आयुर्वेदके व्यापक प्रभावका इस बातसे पता चलता है कि नवी शतीके प्रसिद्ध हकीम अली इब्न (बिन) रब्बन तबरीने स्वरचित फिरदौसुल् हिकमत नामक अरबी ग्रथके सातवें खडके अतिम सात अध्यायोंमें सक्षेपत अष्टाङ्ग-आयुर्वेदका वर्णन किया है । अबु बकर मोहम्मद बिन जकरिया राजी (ई० सन् ८४१-९२३)ने स्वनिर्मित प्रसिद्ध विशाल ग्रथ 'अल्हावी' तथा अन्यान्य रचनाओमें स्थान-स्थान पर भारतीय वैद्यो (चरक-सुश्रुतादि)के पूर्वोक्त अनूदित ग्रथोसे सदर्भसहित विषय ग्रहण किये तथा उनके वचन उद्धृत किये हैं । इब्नमुबारकने अपने प्रसिद्ध ग्रथ 'अल्मुन्किज़'की आधारशिला अधिकतया भारतीय वैद्योकी रचनाओ पर रखी है । शैखुर्रईस

बूअलीसीनाने भी अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'अल्कानून'में इस विषयका स्पष्टोल्लेख किया है, कि इसलामी वैद्यकमें भारतीय आयुर्वैद्यकसे भी लाभ उठाया गया है। उदाहरणत करावादीन कानूनमें निम्न औषधियों (कल्पों)के विषयमें उन्होंने लिख दिया है कि ये भारतीय आयुर्वैद्यों द्वारा आविष्कृत है, यथा—अनोशदारू (धात्रीरसायन), माजूने हिंदी, जामोहरान (जिसका उच्चारण जवामेउल् जवामेअमें रामहराम लिखा है) कबीर, जामोहरान सगीर, कफ़्ररगानुल् अकबर, कफ़्ररगानुल् असगर, जुवारिश हिंदी, जुवारिश शीअर, हब्ब हिंदी, दुहू्न बाजीकर, दुहू्न हिंदी, शियाफ हिंदी लिल्बाह, तिलाए हिंदी लिल्वर्म, माजूने मुलाशा, एहराक फौलाद व नुहास व मिस व तिला, तरकीब हुक्माए हिंद, माजून बजर जली लिल्जुजाम इत्यादि। 'अतरीफल' संस्कृत त्रिफलाका अरबीकृत है। जलौका भेद (अयगाम बल्क) भारतीयोंसे गृहीत है। कतिपय जड़ी-बूटियोंका ज्ञान भी उनसे लिया गया है। दूध-मछली, दूध-चावल और सत्तू आदि एक साथ न खानेके नियम भी उनसे लिये गये हैं।

भारत विजयके बाद

राज़ी और शेख प्राचीन हकीम हैं। इनके समयमें आयुर्वेदकका यूनानी पर कितना प्रभाव पड़ चुका था, यह उपर्युक्त विवरणसे स्पष्टतया ज्ञात होता है। इनके पश्चात् राज्यवर्गोंकी अनवधानता, उदासीनता एवं उपेक्षा-भावके कारण यूनानी वैद्यककी प्रगति उन्नतिके क्षेत्रमें रुक चुकी थी। इसलिये आयुर्वेदकोंसे बहुत कम लाभ उठानेका प्रयास किया गया।

हिंदुस्तानमें इसलामी राजवंशोंके पदार्पणके साथ जब यूनानी वैद्यकका पदार्पण हुआ और हकीमोंको भारतीय भूभागकी जड़ी-बूटियोंके अवलोकन करने और यहांके महर्षि वैद्योंकी प्राचीन एवं प्रचलित चिकित्सापद्धतिको निकटसे प्रत्यक्ष देखने और समझनेका अवसर मिला तो उसके चामत्कारिक प्रभाव पर उन्हें मुग्ध होना पड़ा। उन्होंने बहुत कुछ इससे सीखा तथा ग्रहण किया और बहुमूल्य परिवर्धन किये। शतश औषधियां ऐसी थी जो मुख्यत भारतमें ही पैदा होती थी और यहांसे बाहर नहीं मिलती थी। यूनानी इनके गुण-कर्म-उपयोगसे अपरिचित थे, किंतु अनेकानेक व्याधियोंमें इनके प्रभावको देखकर हकीमोंने अपने सिद्धांतके अनुसार उनकी परीक्षा एवं प्रयोग किये और उनके मिज़ाजके दर्जे स्थिर करके अपने निघण्टुग्रंथोंमें उन्हें प्रविष्ट कर लिया। इख्तियारात बदीई, तोहफ़तुल मोमिनीन, मख्ज़नुल् अद्विया, मुहीत आज़म, गजवादावर्द, खज़ाइनुल् अद्विया प्रभृति संरचनाएँ इसके ज्वलत उदाहरण हैं। खास हिंदुस्तानी औषधियोंके विषयमें मुसल्मानोंने बहुतसे ग्रंथ लिखे हैं। तोहफ़ेके मर्म (हाशिये) पर हकीम मीर अब्दुलहमीदने कतिपय भारतीय औषधियोंकी गवेषणा छान-बीन की है। भारतीय औषधियोंके वर्णनमें बहुतसे ग्रंथ फारसी भाषामें मिलते हैं, जैसे दस्तूरुल् अतिब्बा (तिब फरिश्ता नामसे प्रसिद्ध), दाराशिकोही, तक्मिलए हिंदी, तिब मुस्तफ़वी, मुफ़रदात इमामी, बदीउल्जवाहिर, मुफ़रदात हिंदी, तिब्बुश्शोआ, जखीरए अकबरशाही, तालीफ शरीफ, जखीरा ख्वारिज़्म शाही और नुसखा सईदी इत्यादि। किंतु भारतीय औषधियोंके अनुसंधानके प्रसगमें 'तज़किरतुल् हिंदी'की कोटिको इनमेंसे कोई भी नहीं पहुँचता। यह सर्वोत्कृष्ट एवं उपांगपूर्ण है। इसी प्रकार यागोंमें बहुतसी औषधियां जो अगणित गुणसम्पन्न, निश्चित एवं आशु-फलदायिनी थी और यहांके निष्णात सुप्रसिद्ध वैद्योंकी आविष्कृत एवं स्वतप्रयोग थी, हकीमोंने उन्हें अपनी करावादीन (योगग्रंथ)में समाविष्ट कर लिया।

रस-भस्मादि (कुश्ते) जो यहांके विशिष्ट औषध हैं और यूनानी उनसे सर्वथा अनभिज्ञ थे, भारतीय वैद्योंके आविष्कृत और कमशक्तिके विचारसे अनेक व्याधियोंके सफल अव्यर्थ महौषध हैं, भारतीयोंसे लेकर हकीम नि सकोच उनका व्यवहार करने लगे। यद्यपि इन औषधियोंका ज्ञान शेखसे पूर्व यूनानी हकीमोंको आयुर्वैद्योंके द्वारा पूर्णरूपेण हो चुका था, तथापि वे इनका व्यवहार करनेमें हिचकते थे। खनिज द्रव्योंका आतरिक उपयोग भारतीय वैद्यों ही के द्वारा व्यापक रूपसे प्रचलित हुआ, इसलिए ये इसके प्रवर्तक कहलाये जानेके अधिकारी हैं।

प्रतिसस्करणका यूनानी स्वरूप (ढग)

इस प्रकार जितने निश्चित फलदायक औद्भिज्ज (वानस्पतिक), खनिज और जाङ्गम औषधद्रव्य, सिद्ध योग (उपयोगी नुसखे) और अन्यान्य चिकित्सोपयोगी विषय—सिद्धांतादि आयुर्वैद्यकमें उपलब्ध हो सके, यूनानियोंने

उन सबका ग्रहण एव समावेश अपनी पद्धतिमें नि सकोच भावसे कर लिया। किंतु यह ज्ञात रहे कि अपनी पद्धतिके मूलभूत सिद्धातो (कुल्लियात और उसूल)में उन्होने कभी कोई परिवर्तन स्वीकार नही किया। वे प्रतिपाद्य विषय जिनपर यूनानी वैद्यकका आधार था—जिनपर यूनानी वैद्यक अधिष्ठित था और जो अशाश भेद होते भी आर्यवैद्यकके सर्वथा समान तथा समशील थे, उनको सर्वदा अपनी असली अवस्थापर रखा और उनमें वैद्यकके प्रतिद्वद्वी (विरुद्ध) रहे, यथा—अनासिर (महाभूत), मिज़ाज (प्रकृति), कुवा (वीर्य वा बल), तवाया आज़ा (अग-उपाग प्रकृति), अरवाह (प्राणौज), अखलात (चतुर्दोष वा त्रिदोष), नब्ज (नाडी), कारोरा (मूत्र) बौल व बराज (मल-मूत्र), अलामात कुल्लिया व जुज़इया (लक्षण), उसूल इलाज (चिकित्सा सूत्र), उसूल तग्जिया (आहार विधि), खवास अद्विया (औपधीय गुण कर्म) इत्यादिमें आर्यवैद्यकीय सिद्धातोकी सर्वथा उपेक्षा करते रहे और जो कुछ यूनानीमें था, उसीको ठीक समझते रहे तथा उसी पर जमे रहे। सत्य यह है कि यदि वे ऐसा न करते तो यूनानी वैद्यकका अतीव अहित होता—उसका नामशेष न रह जाता और वह आर्यवैद्यकमें ही अतर्भूत हो जाता।

उपसंहार

उपर्युक्त विवरणसे यह निष्कर्ष निकलता है कि अरबी पडितगण 'खुज़मा सफा वदअ मा कदर' (उत्तमका ग्रहण और अनुत्तमका परित्याग) सदासे इस सिद्धातके अनुयायी रहे हैं। इतिहास इस बातका साक्षी है कि अरबोने वर्तमान अन्य प्रचालित चिकित्सा-पद्धतिसे उपयोगी विपय ग्रहण करनेमें कभी सकीर्णताका परिचय नही दिया और इसे अपनी प्रतिष्ठाके विरुद्ध नही समझा। यही उनकी अनुकरणीय उन्नति एव प्रगतिका कारण है।

विद्या और विज्ञान किसी देश और जातिकी बपौती नही है। हर जाति और देशको इस बातका अधिकार है कि वह अन्य जातियोकी विद्याओ-विज्ञानोसे लाभ उठाकर उसमें प्रगति एव विकास करे। विद्या और विज्ञान जहाँ भी मिले उसे लेनेमें सकोच नही करना चाहिए। प्राचीन अरबी हकीमोकी यही रीति-नीति रही है कि उन्होने अपने वैद्यकके आधारभूत सिद्धातो पर दृढताके साथ स्थिर रहकर विश्वके अन्यान्य अखिल वैद्यक विद्याओमें जितने उपयोगी विपय पाये उन सबको अपनेमें ले लिया। इस प्रकार अन्य जातियोके शतश सिद्ध योग तथा औपधियाँ उनके वैद्यकीय निघण्टुग्रथो (मुफरदात) और योगग्रथो (करावादीनात)में आकर प्रविष्ट हो गयी।

स्वमार्ग-निर्धारण

उपर्युक्त विवरणसे यह भी स्पष्ट है कि अरबी यूनानी वैद्यककी आधारशिला यद्यपि यूनानी (Greecian) वैद्यक पर रखी गयी थी, तथापि यह भी उतना ही सत्य है कि यूनानीकी अपेक्षा उसमें आयुर्वेदसे कुछ कम विपयोंका ग्रहण नही किया गया, अर्थात् उसके निर्माणमें यह यूनानीसे कम सहायक नही हुआ है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि यह आर्यवैद्यकका कितना ऋणी है। इस बातको अरबी भाषाके लेखक एव पडितगण मुक्तहृदयसे स्वीकार भी करते है तथा वे आर्यवैद्योंको यूनानियोके समकक्ष ही नही, अपितु याकूबीके शब्दोमें 'तिबमें उनका फैसला सबसे आगे है', उनसे बढकर समझते थे।

हम यह प्राय देखते हैं कि एक ओर तो यूनानी वैद्यक आर्यवैद्यकसे सब कुछ लेकर परिपोषित एव परिवर्धित होनेपर भी शुद्ध एव निर्दोष अर्थात् यूनानी वैद्यक बना हुआ है। इसके विपरीत दूसरी ओर यह है कि हम यूनानी नामसे ही घृणा करने लगते हैं। हमारा ऐसा कहनेका अभिप्राय यहाँ कदापि यह नही है कि आर्यवैद्योने यूनानीसे सदा ही घृणाका व्यवहार किया और उनसे कुछ नही लिया अपितु उनका अभिप्राय केवल यह है कि आदानका कार्य जितना होना चाहिए था उतना नही हुआ, अपितु अत्यल्प एव मन्थर गतिसे हुआ, जिसका कारण आगे बतलाया जायगा।

मुसलमानोंका जब इस देशमें प्रथम पदार्पण हुआ तबसे चिकित्साकी मुसलिम प्रणाली व्याधिनिवारणकी विद्या—ओषधि-विज्ञानका एक समृद्ध कोष जो उस समयके विचारसे खूब उन्नत एव समृद्ध था तथा इस देशको सर्वथा अज्ञात, अपने साथ लेकर आये। अरबवासी शवच्छेदनसे घृणा करते थे, क्योकि यह उनके धर्मके विरुद्ध था। इसलिए शवच्छेदन और आशुमृतकपरीक्षाके ज्ञानसे अनभिज्ञ रहे। किंतु उद्भिज्ज द्रव्य, जैसे—रेवदचीनी, शीरखिश्त,

काफूर, अमलतास और कुछ सुगंधित गोंद-प्रभृति तथा बहुत-सी ओषधियाँ, जो अरब, फारस और भारतवर्षमें उपलब्ध होती हैं, उनके गुणकर्म उन्होंने प्रकट किये।

मुसलिम राजाओंके तत्त्वावधानमें निष्णात मुसलमान हकीमों और तिबके ईसाई विद्वान मनीषियोंने स्वतंत्र द्रव्योंकी बहुत कुछ खोज की, उनके वीर्यों (कुव्वतों), उनके गुण-कर्म, अहितकर तथा निवारण आदिका सविस्तार वर्णन किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने रसायन (केमिस्ट्री) अर्थात् कीमियागरीकी तरकीब ईजाद की। ये मध्य एशियाकी भी कई ओषधियाँ अपने साथ भारतवर्षमें लाये। हिंदू भी उन ओषधियोंको अपनानेमें पीछे न रहे, जिनका मुसलिम विजेताओंने उन्हें ज्ञान कराया था। मुसलमानों द्वारा भारतवर्षमें लायी गयी ओषधियोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण सम्भवतः अफीम है। इसके अतिरिक्त कुलञ्जन और रेवदचीनी आदि स्वतंत्र (असंसृष्ट) और मुफर्रेह (मुफरलेह-भैष०) आदि योगकृत वे ओषधियाँ हैं जिनका ग्रहण आयुर्वेदमें किया गया। परंतु परकीय इत्यादिके आदान (ग्रहण)का यह कार्य अपेक्षाकृत अत्यल्प हुआ जिसका प्रमुख कारण है—उक्त कालमें मुसलमानोंके प्रबल आक्रमण, नृशंस नरसंहार, अग्निदाह (आगजनी) बलात् धर्मपरिवर्तन आदि अमानुषिक कुकृत्यादि। वे इतने जोरों पर हो रहे थे, कि उक्त अवस्थामें यदि इतनी उपेक्षात्मक दृढता नहीं दिखलायी गयी होती, तो हिंदू धर्म एवं संस्कृतिके साथ ही आर्यवैद्यकका नाम शेष न रह जाता। अतः आक्रमणकारियों तथा उनकी विद्याको यवन-म्लेच्छ "म्लेच्छेनोक्त, सुलेहो 'मुफर' इति"—(भैष० वाजी०) आदिकी संज्ञा देकर, उनके प्रति घृणाका भाव उत्पन्न किया गया और उधरसे हिंदू जातिको पराङ्मुख करनेका सफल प्रयत्न हुआ। हिंदू जाति एवं आर्यवैद्यकके अस्तित्वकी रक्षाके लिए उस समय यह उचित भी था। किंतु अब वह समय नहीं रहा। अब तो स्वतंत्रताके युगमें हमें प्रत्येक विज्ञानको विज्ञानकी दृष्टिसे देखना चाहिए और जो भी उत्तम वस्तु जहाँ भी मिले संकीर्णता एवं पक्षपात त्यागकर उदारतापूर्वक उसे ग्रहण करना चाहिए। इसीमें अपने कल्याण तथा उन्नतिका तत्व निहित है। प्राचीन संस्कृत वाङ्मयको देखनेसे यह ज्ञात होता है कि अपने आचार्यगण इस विषयमें कितने उदारचेता थे।

वाग्भटजीका यह सुभाषित स्मरणीय एवं संग्रहणीय है—

ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरक सुश्रुतौ। भेडाद्या किं न पठ्यन्ते तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम्॥ (अ० हृ०)।

इससे यह स्पष्ट किया गया है कि कोई भी द्रव्य, गुण, कर्म, वचन, भाषण, लेखन यदि उत्तम हो तो उसका ग्रहण करना चाहिए, फिर वे द्रव्यादि गंदे स्थानके तथा बाल, दुर्जन, शत्रु, अपवित्र मनुष्यसे भी क्यों न आ जायँ? चरक कहते हैं। "तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते। सचैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्॥" फिर विज्ञान और विद्याके लिए देश, काल, धर्म, जातिका बंधन नहीं होता। वह कहींसे मिले पवित्र, आदरणीय और संग्रहणीय है। इस दृष्टिसे मनुके निम्न वचन ध्यान देने योग्य हैं—

श्रद्दधानः शुभांविद्यामाददीतावरादपि। अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥ विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्। अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम्॥ स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मं शौचं सुभाषितम्। विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥ (मनुस्मृति)। तात्पर्य उत्तम वस्तु कहींसे मिले उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। शास्त्रने कहा है कि उत्तम ज्ञान जिससे प्राप्त होता है वह ऋषि न होनेपर भी ऋषिके समान पूजनीय है—म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्। ऋषिवत्तेपि पूज्यन्ते किं पुनर्वेद विद् द्विजा॥ (रसहृदय)। तथा—अतश्चाभिसमीक्ष्य बुद्धिमताऽमित्रस्यापि धनं यशमायुष्यं पौष्टिकं लौक्यमभ्युपदिशतो वचः श्रोतव्यमनु विधातव्यं च॥ पुनश्च "विविधानि हि शास्त्राणि भिषजां प्रचरन्ति लोके। तत्र यन्मन्यते तदभिप्रपद्येत शास्त्राम्", "न चैव ह्यस्ति सुतरामायुर्वेदस्य पारं तस्मादप्रमत्तः शश्वदभियोगमस्मिन् गच्छेत् परेभ्योऽप्यागमयितव्यम्। कृत्स्नोहि लोको बुद्धिमतामाचार्यः। शत्रुश्चाबुद्धिमताम्। (च० वि० ८।७४) आदि उपदेश वचन हैं। अर्थात् सभी जगत हमारा ज्ञानका गुरु है। शत्रुसे भी ज्ञान ग्रहण कर लेना चाहिए।

परन्तु यहाँ पर एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि इस आदानकार्यमे हमें इतना अधिक उदार भी नहीं होना चाहिए कि हम अपने आर्यवैद्यकके मूलभूत सिद्धातोको ही त्यागकर उसके स्थान पर भावावेशमें आकर बिना समझे अन्य पद्धतिके सिद्धातोको ग्रहण कर लें, जैसा कि अनेक विद्वान् मनीषीगण हमें सलाह देते हैं। क्योकि इसका परिणाम यह होगा कि अपना आर्यवैद्यक उक्त वैद्यकमें परिणत हो जायगा और वह आर्यवैद्यक न रह जायगा, जो हमें अभीष्ट नही। अस्तु, हमको यहाँ पर मध्यमार्गावलबन कर तदनुसार जो भी उत्तमोत्तम विषय यूनानी अथवा अन्य पद्धतियोमें हो उनको अपने सिद्धातानुकूल परीक्षण करके अपनी पद्धतिमें ले लेना चाहिए। तात्पय यह कि ऐसा करते समय सबका सभी परकीयकी नकल न हो जाय, इसमें सावधानी अवश्य रखनी चाहिए। कारण, प्रत्येक परकीय ज्ञान त्याज्य है और स्वकीय (भारतीय) प्रत्येक ज्ञान श्रेष्ठ है, ऐसा दुराग्रह शास्त्री ज्ञानग्रहण करनेवालोंको छोड देना चाहिए। साराश यह कि सत्यके निर्णयमें निष्पक्षता अनिवार्य है (च० सू० अ० २६)।

यूनानियोंने किसी कालमें इसी मार्गका अवलबन करके अपने मूलभूत सिद्धातोंको स्थिर रखते हुए सब कुछ आर्यवैद्यकसे लिया। फिर भी वे अपनी पद्धतिको शुद्ध एव निर्दोप रख सके। यूनानी वैद्यक तो आयुर्वेदसे ही आविर्भूत और इसीसे समय-समय पर परिवृहित एव परिपुष्ट होता रहा है।

इसके अतिरिक्त इन उभय पद्धतियोका स्वतत्र अध्ययन, आलोडन और परिशीलन कर पूरा-पूरा आत्मसात् कर लेनेके उपरात विज्ञानके प्रकाशमें इनका तुलनात्मक विचार करनेपर मैं इस निष्कर्प पर पहुँचा हूँ कि इनके मूलभूत सिद्धातोमे दृष्टिकोण, भाषा एव वर्णनशैलीके अतिरिक्त और कोई प्रधान अतर नही है। इनमें जो भी अथाय अतर दृष्टिगत होता है वह इनके विस्तारमें है और वह भी ऐसा ही अतर है जैसा कि एक ही पद्धतिके विभिन्न आचार्योंके मतोमें हुआ करता है। वस्तुत यह दोनो ही परस्पर समशील हैं। अस्तु, मेरे मतसे यदि यूनानीके ग्रथ हिंदीमें हो जायें तथा इस प्रकार इन उभयपद्धतियोका एक साथ तुलनात्मक अध्ययन, विचार एव ऊहापोह करनेका अवसर प्राप्त हो, तो इनका समन्वय एव प्रतिसस्करण सुकर हो सकता है। इन दोनोकी पारस्परिक दूरी घटकर ये अधिकाधिक समीपतर आ सकते हैं और एक-न-एक दिन एक ही पद्धतिमें समवेत हो सकते हैं।

प्रस्तुत ग्रंथरचनाका कारण

इसी विश्वासको लेकर आजसे बहुतपूर्व यूनानी-ग्रथमाला-द्वारा मैंने यूनानीके प्रत्येक विषयमें स्वतत्र तुलनात्मक ग्रथ हिंदीमें लिखनेका सकल्प किया था, जिसके फलस्वरूप यूनानी सिद्ध योग सग्रह, यूनानी द्रव्य-गुण-विज्ञान, यूनानी चिकित्सासार, यूनानी चिकित्साविज्ञान पूर्वार्ध (यूनानी चिकित्साके आधारभूत सिद्धात)। यूनानी वैद्यकके आधारभूत सिद्धात पूर्वार्ध (कुल्लियात), रोगनामावलि कोष तथा वैद्यकीय मानतौल, फिरंगोपदश विज्ञान प्रभृति ग्रथ अब तक प्रकाशित होकर प्रसिद्ध हो चुके है तथा 'यूनानी वैद्यकका सक्षिप्त इतिवृत्त (इतिहास), हुम्मयात कानून, यूनानी योगसागर प्रभृति लिखकर प्रकाशनार्थ प्रस्तुत हैं। आयुर्वेदिक एव तिब्बी अकादमी उत्तर-प्रदेश (लखनऊ) द्वारा प्रकाशित हो रहा प्रस्तुत 'यूनानी द्रव्यगुणादर्श' ग्रथ उसी शृखलाकी एक कडी है।

आधारभूत प्रधान ग्रथ, पत्र-पत्रिकाएँ और उनका सक्षिप्त परिचय एवं सकेत-चिह्न आदि

अरबी-यूनानी

(अरबी, फारसी, उर्दू)

(१) फिरदौसुल् हिकमत فردوس الحکمت (Heaven of wisdom)—सन् ८५० ई० में इब्न-रब्बन-अल्-तबरी द्वारा लिखित यूनानी चिकित्साविपयक अरबी ग्रथ है जिसमें भारतीय चिकित्सा अर्थात् आयुर्वेदीय चिकित्साका भी कई प्रकरणोमें विवरण दिया गया है। (फि० हि०, अलतबरी)।

(२) मुफ्रदात अल्कानून (مفردات القانون)—लगभग सन् १००० ई० में शेखुर्रईस बू-अलीसीना (जीवनकाल सन् ९८०-१०२७ ई०) लिखित अल्कानून नामक प्रसिद्ध विशाल अरबी ग्रथका द्रव्यविज्ञानीय विभाग, जो द्रव्यगुण विषयक एक वरिष्ठ एव प्रामाणिक ग्रथ है। (शेख, कानून Canon)।

(३) अल्हावी (الحاوی)—अबू-बक्र मुहम्मद बिन-जकरिया राजी (जीवनकाल सन् ८५०-९३२ ई०) लिखित प्रसिद्ध महान् अरबी ग्रथ। (राजी, अल् राजी, अर्राजी)।

(४) मुफ्रदात इब्नुल् बैतार (مفردات ابن البیطار)—असंसृष्ट द्रव्यो पर अरबीमें लिखित सन् १२९१ हिजरीमें प्रकाशित एव अत्यत उपयोगी एव प्रामाणिक और सर्वागपूर्ण ग्रथ है। इसमें लगभग दो सहस्र असंसृष्ट द्रव्योका विशद वर्णन किया गया है। इसके लेखक—इब्नुल्बैतारका जीवनकाल सन् ११९७-१२४८ ई० है। यह यूनानी (Greek) भाषाके भी अच्छे ज्ञाता थे। अपने ग्रथमें इन्होने प्राय प्रत्येक ओषधिके विषयमें यूनानी हकीम दीसकूरीदूस (Dioscorides) के ग्रथसे सचिका एव अध्यायके सदर्भसहित उद्धरण दिये हैं। प्राय असंसृष्ट द्रव्यगुण-विषयक आग्ल ग्रथोमें इसका उल्लेख मिलता है। (अल्जामेअ—इ० बै०)।

(५) तज्किरतुश्शेख दाऊद अज़्ज़रीरुल् अताकी (تذکرۃالشیخ داؤد الضریرالانطاکی)—अरबीमें लिखित अपने ढगका एक अत्युत्तम यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रथ है। इसके आधारभूत ग्रथ हकीम इब्नुल्बैतारकी किताबुल्-जामेअ (अल्जामेअ) और हकीम यूसुफ बग़दादीकी किताब मालायसअ है। (तजकिरा, अताकी)।

(६) नफीसी फने सानी इल्मुल् अद्विया (نفیسی فن ثانی علم الادویۃ)—लगभग ८२७ हिजरी तदनुसार पद्रहवी शतीके मध्यमें मुल्ला नफीस द्वारा लिखित यूनानी द्रव्यगुणविषयक अरबी ग्रथ तथा विद्वद्वर मुहम्मद कबीरुद्दीन महोदय लिखित इसकी उर्दू टीका (सन् १९२९ ई०)। तर्जुमा नफीसी। (नफीसी)।

(७) अद्विया सदीदी (ادویۃ سدیدی)—

(८) किताबुल् मलिकी (کتاب الملکی)—अली-बिन-अब्बास मजूसी लिखित कामिलुस्सेनाअत (अल्मलिकी) ग्रथ। साहबे कामिल।

(९) मेअत मसीही (مئۃ مسیحی)—अबु-सहल-मसीही लिखित अरबी चिकित्सा ग्रथ है। यह अत्युच्च-कोटिकी अभूतपूर्व रचना है। (मि० म०)।

(१०) तोह्फतुल् मोमिनीन (تحفۃ المومنین)—सन् १६६९ ई० में हकीम मोहम्मद मोमिनीन द्वारा फारसीमें लिखित यूनानी द्रव्यगुणविषयक सस्तुत्य एव प्रख्यात ग्रथ। (तोह्फा)।

(११) इख्तियारात बदीई (اختیارات بدیعی)—सन् १३६८ ई० में हाजी जैनुल्अत्तार लिखित द्रव्यगुणविषयक प्रामाणिक फारसी ग्रथ। (इ० ब०)।

(१२) मख्जनुल् अदविया (مخزن الادویۃ)—हकीम सय्यद मुहम्मद हुसेन साहब उलवी द्वारा सन् १७७० ई० में लिखित और सन् १२४८ हिजरी तदनुसार सन् १८४८ ई० में प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुणविषयक विशाल फारसी ग्रथ। इसमें यूनानी, भारतीय, अग्रेजी तथा अन्यान्य देशीय असंसृष्ट द्रव्योंके परिचय एव गुण-कर्म आदिका अकारादि क्रमसे ८५३ पृष्ठोमें विस्तृत वर्णन किया गया है। ग्रथके अतमें आये सभी यूनानी, सुरयानी, अरबी, फारसी, इबरानी, रूमी, फिरगी, तुर्की व हिंदी, बगला तथा अन्य भाषाके पर्याय नामोका अकारादि वर्णक्रमानुसार फारसी लिपिमें अर्थसहित ८५४ से ९७३ तकके पृष्ठोंका एक कोश—मख्जनुल्अद्विया कोश भी दिया है।

यह अपने समयका एक अत्युत्तम ग्रथ है। इसको लिखे प्राय डेढ सौ वर्षसे ऊपर हो रहे हैं, तथा इस ग्रथमें बहुश यूनानी आदि नाम बिगडकर कुछके कुछ हो गये हैं। अतएव इस ग्रथके सशोधनकी अपेक्षा है।

इसका उर्दू भाषातर हकीम मौलवी नूर करीमुल् अजीमने किया है, जो मुशी नवलकिशोर लखनऊ छापाखानेमें छपकर प्रसिद्ध हुआ है। (म० अ०, मख्ज़न) या मुफ्रदात हिंदी।

(१३) तालीफशरीफी (تالیف شریفی)—सन् १८०२ ई० में लाहौरस्थित मुद्रणालय मोहम्मदीमें मुद्रित हुआ। हकीम मुहम्मद शरीफ खाँ द्वारा भारतीय ओषधियोके सबधमें फारसी अकारादि वर्णक्रमानुसार लिखित भारतीय द्रव्यगुणविषयक एक उत्तम ग्रथ है। (ता० श०)।

श्रीमान् जॉर्ज प्लेफेयर (George Playfair Esqr) महोदयने इसका अग्रेजी भाषातर किया जो बैप्टिस्ट मिशन प्रेस कलकत्तामें सन् १८८३ ई० में प्रथमत प्रकाशित हुआ।

(१४) मुफ्‌रदात नासिरी मैतक्‌मिला मुफ्‌रदात नासिरी (مفردات ناصری معہ تکملہ مفردات ناصری)-हकीम मुहम्मद नासिर अली द्वारा फारसीमें लिखित यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रथ है। यह सन् १२९९ हिजरी तदनुसार सन् १८८२ ई० में सदर महवम प्रेस लखनऊमें मुद्रित एव प्रकाशित होकर प्रसिद्ध हुआ। (मु० ना०)।

(१५) मुफ्‌रदात अज़ीज़ी (مفردات عزیزی)—

(१६) नासिरुल् मोआलजीन (ناصرالمعالجین)—मौलवी हकीम मुहम्मद नासिर अली गियासपुरी द्वारा फारसीमें लिखा यूनानी द्रव्यगुणविपयक ग्रथ, जो छठवी वार हिजरी सन् १३०३ तदनुसार ई० सन् १८८६ में उलवी मुहम्मद अलीवख्स खाँके छापाखानेमें मुद्रित होकर प्रसिद्ध हुआ। (ना० मो०)।

(१७) मुहीत आजम (محیط اعظم)—लेखक हकीम मुहम्मद आजम खाँ अल्मुखातिब व नाजिम जहाँ, मुद्रक—मतबा निजामी कानपुरमें हिजरी सन् १३०३ तदनुसार सन् १९०३ ई० में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ। इसके दो भागो और वृहद् सचिकाओं (जिल्दो)में फारसीमें अकारादि वर्णक्रमानुसार प्राय सभी प्रचलित यूनानी, हिंदी, अग्रेजी व अन्य देशीय अससृष्ट ओषधद्रव्योका परिचय एव गुण-कर्मप्रकृति आदि सहित विस्तृत विवरण दिया गया। यह अपने समयका एक अत्युत्तम ग्रथ है। मख्जनुल् अदवियाके वाद उसकी अपेक्षा अधिक द्रव्योका समावेश करते हुए विस्तारपूर्वक विवरण सहित यह यूनानी द्रव्यगुणविपयक फारसी ग्रथ है। वक्तव्य-अत्यत दु खके साथ लिखना पडता है कि इसमें जो कतिपय अग्रेजी ओषधियोंका वर्णन किया गया है, उनमेंसे कुछके नाम, उनके गुणकर्म एव मात्रा आदि ठीक नही लिखे गये हैं। मख्जनुल् अदवियाकी तरह प्राय ओषधियोंके यूनानी नाम इसमें गलत लिखे गये हैं। अस्तु, यह भी सशोधनापेक्षी है।

(१८) उम्दतुल् मोहताज (عمدة المحتاج)—सन् १८८३ ई० में विस्तृत चार खडोमें मिस्रमें प्रकाशित, सैय्यद अहमद आफन्दीउर्रशीदो द्वारा अरबीमें लिखित आधुनिक द्रव्यगुणशास्त्र (मेटीरिया मेडिका) विषयक विस्तृत ग्रथ है। मू० ८० ०० रु० मात्र। (उ० मो०)।

(१९) पिज़िश्की नामा (پزشکی نامه)—ईरानके राजाधिराज श्रीमान् हुमायूँके पूर्व चिकित्सक श्री मीरजा अली अकवर खाँ हकीम वाशी द्वारा फारसीमें लिखित, तेहरानमें प्रकाशित आधुनिक द्रव्यगुण (मेटीरिया मेडिका) एव चिकित्सा विषयक एक परमोत्कृष्ट विस्तृत ग्रथ है। (पि० ना०)।

(२०) गजबादावर्द (گنج بادآورد)—खानेजमाँ फीरोज जग द्वारा फारसीमें लिखित यूनानी द्रव्यगुण-विषयक उत्तम ग्रथ है। (ग० बा०)।

(२१) बुस्तानुल मुफ्‌रदात (بستان المفردات)—लेखक हकीम मुहम्मद अब्दुल्‌हकीम साहब, प्रकाशित सन् १३१८ हिजरी तदनुसार सन् १९०१ ई० में द्वितीय वार मुज्तबाई लखनवी प्रेसमें मुद्रित। यह यूनानी द्रव्यगुण-विषयक उर्दू ग्रथ है। (बु० मु०)।

(२२) मख्जन मुफ्‌रदात व मुरक्कबात अर्थात् खवासुल् अदविया (مخزن مفردات و مرکبات یعنی خواص الادویه) २ भाग, मुशी गुलाम नवी साहब द्वारा उर्दूमें लिखित सन् १९०५ ई० में प्रकाशित यूनानी द्रव्य-गुणविषयक उत्कृष्ट ग्रथ है। (म० मु० व मुरक्क०)।

(२३) मख्जन मुफ्‌रदात (مخزن مفردات) (जामेउल् अदविया)—मौलवी हकीम मुहम्मद फजलुल्ला साहब द्वारा उर्दूमें लिखित, रॉयल प्रिंटिंग प्रेस लखनऊमें मुद्रित यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रथ है। (म० मु०)।

(२४) जडी-बूटी मे खवास (جڑی بوٹی میں خواص)—हकीम मौलवी मुहम्मद अब्दुल् अजीज साहब कामिल लाहौरी द्वारा उर्दूमें सकलित, सन् १९१३ ई०मे प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुणविषयक ग्रथ है, जिसे कामिल बुक एजेंसी लाहौरने नवलकिशोर गैस प्रिंटिंग वर्क्समें छपवाकर प्रसिद्ध किया। (ज०बू० मैं० ख०)।

(२५) मख्जनुल अद्विया डॉक्टरी (مخزن الادویہ ڈاکٹری)—हकीम व डॉक्टर गुलाब जीलानी साहब द्वारा उर्दूमें लिखित-सकलित आधुनिक पाश्चात्य द्रव्यगुण (मेटीरिया मेडिका) विषयक उत्कृष्ट ग्रथ है, जो सन् १९१५ ई० में प्रथमत और पाँचवी बार सन् १९४६ ई०में निज्मी कुतुबखाना आली जनाब शम्सुल् अतिब्बा, लाहौर द्वारा प्रकाशित। अब तकके प्रकाशित एतद्विषयक सभी ग्रन्थोंमेंसे एक श्रेष्ठ रचना है। (म० अ० डॉ०)।

(२६) मुफ्रदात विक्रमी (مفردات بکرمی)—हकीम मदनलाल लिखित आयुर्वेदीय निघण्टुग्रन्थका फारसी उल्था, उल्थाकार हकीम मुहम्मद अलाउद्दीन लाहौरी, गुलजार मुहम्मदी लाहौरी प्रेसमें सन् १३०७ हिजरी तदनुसार ई० सन् १८८८ (वि० सन् १९४९)में मुद्रित भारतीय द्रव्यगुण विषयक फारसी ग्रन्थ है। (मु० वि०)।

(२७) खजाइनुल अदविया (خزائن الادویہ)—अल्लामा जर्मा मौलवी हकीम मुहम्मद नज्मुल् गनी खाँ साहब रामपुरी द्वारा वृहत् आठ भागोमें उर्दूमें लिखित, सन् १९२६ ई०में कारखाना पैसा अखबार लाहौरके खादिमुत्ता'लीम वर्की प्रेसमें मुद्रित, यूनानी द्रव्यगुणविषयक विशाल ग्रन्थ है। इनके ६ जिल्दो (सचिकाओ)में तो समस्त यूनानी, हिंदी (भारतीय), अँगरेजी तथा अन्यान्य देशीय असस्पृष्ट ओषधियोका निश्चयात्मक वर्णन उनके परिचय, गुणकर्म तथा प्रकृति आदि सहित विस्तारसे किया गया है। इसके अतिम दो सचिकाओमें इस ग्रथमें आये सभी पर्यायनामोका अर्थसहित अकरादिवर्ण क्रमानुसार एक कोष दिया है। यह एक अत्युत्तम ग्रन्थ है, जिसमें इससे पूर्वके प्राय सभी उपलब्ध ग्रथो का अतिम निष्कर्ष पर पहुँचनेका प्रयास करते हुए समीक्षात्मक विवरण किया गया है। (ख० अ०)।

(२८) उसूले इल्मुल् अदविया (اصول علم الادویہ)—हकीम मु० अब्दुल् हलीम साहब लिखित उर्दू ग्रन्थ है।

(२९) किताबुल् अद्विया (کتاب الادویہ)—विद्वद्वर हकीम मु० कबीरुद्दीन साहब द्वारा यूनानी विद्यालयो के पाठ्यक्रमानुसार उर्दूमें लिखित, दफ्तर अल्मसीह दिल्ली से प्रथमत सन् १९२९ ई० में, और तृतीय बार सन् १९४४ ई० में प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुण विषयक ग्रन्थ है। यद्यपि इसमें कतिपय द्रव्योंके निर्णयमें भूलें की गयी हैं और गलत नाम भी दिये गये हैं, तथापि यह एक अत्युत्तम एव सग्रहणीय ग्रन्थ है। (कि० अ०)।

(३०) मुफ्रदात अजीजी (مفردات عزیزی)—

(३१) मुअल्लिमुल् अदविया (معلم الادویہ)—हकीम मुहम्मद समीहुज्जमाँ नदवी साहब, प्रधानाचार्य तक्मीलुत्तिब कॉलेज झवाई टोला लखनऊ द्वारा उर्दूमें लिखित, युनाइटेड इंडिया प्रेस लखनऊ द्वारा सन् १९५० ई० में प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुण विषयक सक्षिप्त, परतु एक उत्तम ग्रन्थ है। (मु० अ०)।

(३२) यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान—आयुर्वेदीय विश्वकोशकार, वैद्यराज हकीम ठा० दलजीतसिंह आयुर्वेद बृहस्पति (D Sc A) द्वारा यूनानी विद्यालयोंके पाठ्यक्रमानुसार स्वतत्ररूपसे हिंदीमें लिखित और सन् १९४९ ई०में निर्णयसागर प्रेस बम्बई द्वारा प्रकाशित यूनानी द्रव्यगुणविषयक अब तकके प्रकाशित किसी इतर भाषाके ग्रथसे उत्कृष्टतर, अभूतपूर्व एव सग्रहणीय ग्रथरत्न है, जिसका सपादन एव भूमिकालेखन कार्य स्वर्गवासी श्री यादव जी त्रिकमजी आचार्य महोदय ने स्वय किया है। झाँसी आयुर्वेद विश्वविद्यालय ने अपने तत्त्वावधानमें इस ग्रन्थको थीसिस मानकर लेखकको आयुर्वेद बृहस्पतिकी सम्मनित उपाधि (D Sc A) और स्वर्णपदक तत्कालीन माननीया स्वास्थ्यमत्रिणी श्रीमती अमृतकौरके करकमलो द्वारा प्रदान किया।

(३३) मादनुल् अक्सीर (معدن الاکسیر)—अर्थात् कुश्ताजात फीरोजी—ले० हकीम मौलवी मु० फीरोजुद्दीन साहब, स्टीम प्रेस लाहौर में सन् १९०९ ई०में प्रकाशित, उर्दूमें लिखा यूनानी रसग्रन्थ है।

(३४) रिसाला कुश्ताजात (رسالہ کشتہ جات)—ले० मीर रहीम बख्श—हाफिज आगारी प्रेस लाहौरमें सन् १९०३ ई०में प्रकाशित।

(३५) मिफ्ताहुल खजाइन (مفتاح الخزائن)—ले० जनाब हकीम करीम बख्श व हकीम मु० शरीफ खां साहब, सन् १९३० ई०में रफीक आम प्रेस लाहौरमें प्रकाशित—यह उर्दूमें लिखित एक उत्कृष्ट एवं अनुभवपूत यूनानी रसग्रन्थ है।

(३६) जामेउल् हिकमत (جامع الحکمت)—दो भागोंमें उर्दूमें लिखित चिकित्साग्रन्थ।

(३७) इलाजुल अमराज (علاج الامراض)—हकीम मुहम्मद शरीफ तथा हजरत मसीहुल् मुल्क हकीम अजमल खां साहबके अनुभवपूत यूनानी योगों का फारसीमें उत्तम संग्रह, जिसका उर्दू अनुवाद हकीम कबीरुद्दीन साहब के आदेश से मैनेजर जनाब हकीम मुहम्मद वाहिद साहब ने किया। दफ्तर अल्मसीह करोलबाग देहली के प्रबन्धसे सन् १९२७ ई०में २ भागोंमें प्रकाशित हुआ और इसे जय्यदबर्की प्रेस बिल्लीमारान देहलीमें छापा गया।

यूनानी योगसंग्रह ग्रन्थ

(करावादीनात)

(१) करावादीन शैख। (२) करावादीन कबीर (मजूमउज्जवामेअ)। (३) रमूज़ आज़म—आज़मखाँ लिखित। (४) अक्सीर आज़म—आज़म खाँ लिखित। (५) करावादीन शिफाई। (६) करावादीन जकाई। (७) करावादीन कादरी। (८) मतब हकीम उलवी खाँ। (९) मुरक्कबात अजीजी—खानदान अजीजी लखनऊके सिद्ध योग। (१०) बयाज मसीहा—खानदान शरीफी, देहली के सिद्ध योग। (११) बयाज कबीर (प्रथम भाग)—देहलीका मतब फारसी व उर्दू—हकीम कबीरुद्दीन साहब लिखित सप्तम संस्करण सन् १९४४ ई०। प्रकाशक—दफ्तर अल्मसीह दिल्ली। (१२) बयाज कबीर (द्वितीय भाग)—देहलीके मुरक्कबात। हकीम मुहम्मद कबीरुद्दीन साहब लिखित व सम्पादित—इसलामी प्रेस, हैदराबाद, दकन—प्रकाशक एवं प्रबंधक—दफ्तर अल्मसीह, बिल्लीमारान, देहली—६। आठवाँ संस्करण—सन् १९५१ ई०। (१३) अल्करावादीन, (१४) तिब्ब कीमिया, (१५) तिब्बी फार्माकोपिया (१-२ भाग), (१६) यूनानी सिद्धयोग संग्रह—वैद्यराज हकीम दलजीतसिंह लिखित हिंदी ग्रंथ। (१७) आयुर्वेदिक फार्माकोपिया—श्री के० जगन्नाथ प्रसाद वैद्यवाचस्पति लिखित (उर्दू) तथा उनके लिखित अन्य ग्रंथ—(१८) रिसाला छोटी चंदन। (१९) रिसाला सिलाजीत, (२०) भारतीय जड़ी-बूटियाँ इत्यादि।

यूनानी वैद्यकीय उर्दू मासिक पत्र-पत्रिकाएँ

अल्हकीम, मशीरुल् अतिब्बा, हामिउस्सेहत, अल्मोआलिम, अल्तबीब, अश्शिफाऽ, हमदर्द सेहत, प्रभृति प्रसिद्ध यूनानी उर्दू माहाना (मासिक पत्र)।

आयुर्वेदीय

संस्कृत तथा भाषाग्रंथ

१ चरक संहिता	(च०)
२ सुश्रुत संहिता	(सु०)
३ अष्टाङ्ग संग्रह	(अ० सं०)
४ अष्टाङ्ग हृदय	(अ० हृ०)
५ काश्यप संहिता	(का० सं०)
६ चक्रदत्त	(च० द०)
७ भावप्रकाश	(भा० प्र०) सन् १५६० ई०—१६वी शताब्दी
८ शार्ङ्गधर संहिता	(शा० सं० या शार्ङ्ग०) सन् १३६३ ई०
९ वङ्गसेन	(वं० से०)
१० कैयदेव निघण्टु	(कै० नि०) या पथ्यापथ्यविबोधक ग्रंथ—कैयदेवकृत १२वी या १३वी शती।
११ धन्वन्तरि निघण्टु	(ध० नि०) ११वी शतीका उत्तरार्ध

१२ राजनिघण्टु (रा० नि०) ११वी-१३वी शताब्दी मध्य
१३ राजवल्लभ निघण्टु (राज०)
१४ वैद्यमनोरमा (वै० म०)
१५ मदनपाल निघण्टु (म० पा० नि०) १२वी शती
१६ वृहन्निघण्टुरत्नाकर (वृ० नि० र०) सन् १८९६ ई०
१७ वैद्यजीवन (लोलिम्वराज—वै० जी०) सन् १६०८ ई०
१८ निघण्टुसग्रह (नि० स०)
१९ निघण्टुरत्नाकर (नि०.र०) सन् १८६७ ई०
२० द्रव्यगुण सग्रह (द्र० गु० स०) चक्रपाणिदत्त कृत सन् १०६० ई०
२१ द्रव्यगुण सग्रह (द्र० गु० स०) राजवल्लभकृत सन् १७६० ई०
२२ मदन विनोद निघण्टु (म० वि० नि०) मदनपाल। सन् १३७५ ई०, मतातरसे १०९८—११०९ ई० तक धन्वन्तरि निघण्टुका समकालीन
२३ शिवदत्त निघण्टु (शि० द० नि०) गुजराती वैद्य
२४ शोढल निघण्टु (शो० नि०) सोढलकृत—१२वी शती के मध्य मे
२५ सन्दिग्धनिर्णय वनौषधिशास्त्र (स० नि० व० शा०)
२६ द्रव्यगुण विज्ञानम् श्री यादवजी कृत (द्र० गु०)
२७ यूनानी द्रव्यगुण-विज्ञान (यू० द्र० गु०)
२८ पाश्चात्य द्रव्यगुणविज्ञान (पा० द्र० गु०) २ भाग—श्री डॉ रामसुशील सिंह शास्त्री लिखित
२९ विहारकी वनस्पतियाँ (वि० व०) ठा० वलवन्त सिंह जी
३० वनौषधि दर्शिका (व० द०) ,,
३१ वनौषधि निर्दशिका आयुर्वेदीय फार्माकोपिया डा० रा० सु० सिंह (व० नि०)—हिंदी समिति सूचना-विभाग, उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित।
३२ जन्तु जगत (ज० ज०) हिंदुस्तानी एकेडेमी—प्रयाग द्वारा प्रकाशित
३३ शालग्राम निघण्टु (शा० नि) सन् १८९६ ई०
३४ योगरत्नाकर (यो० र०) सन् १६७६ ई०
३५ भैषज्य रत्नावली (भै० र०, भैष०)
३६ आयुर्वेद प्रकाश (आ० प्र०) माधव उपाध्याय, सन् १७३० ई०
३७ गदनिग्रह (ग० नि०)
३८ क्षेमकुतूहल (क्षे० कु०) क्षेमशर्मा कश्मीर निवासी कृत सन् १५४८ ई०, स० १६०५ वि०
३९ रसकामधेनु (र० का० धे०)
४० रसेन्द्र चूणामणि
४१ रसेन्द्रसारसग्रह
४२ रसार्णव
४३ रमतरङ्गिणी (र० त०)
४४ रसामृत

४५ भस्मविज्ञान	२ भाग	(भ० वि०)
४६ रसरत्नाकर		(रसायन खण्ड)
४७ आयुर्वेदीय क्रियाशारीर		(आ० क्रि० शा०) वैद्यरणजित रायकृत
४८ आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान		(आ० प० वि०)
४९ सचित्र वनस्पति गुणादर्श		वैद्य-हिरामण मोतीराम जगलेकृत

तथा

आयुर्वेद, आयुर्वेद विज्ञान, आयुर्वेद गौरव, यूनानी चिकित्साक धन्वन्तरि, वैद्य-महासम्मेलन पत्रिका, प्राणाचार्य, सचित्र आयुर्वेद तथा उसका आयुर्वेद यूनानी समन्वयाङ्क, आयुर्वेद विकास प्रभृति गुजराती, मराठी, हिंदी, वगला आदि आयुर्वेदिक मासिक पत्र-पत्रिकाएँ।

अन्यान्य भाषाओ के निघण्टु(उद्भिज्ज प्राणिज-खनिज विज्ञान)विषयक ग्रन्थ

वंगला

१ वनौषधिदर्पण	कविराज श्रीविरजाचरण गुप्त काव्यतीर्थ कृत, २ भाग, कलकत्ता १९१९। इसमें औषध द्रव्य के परिचय, गुण-प्रयोग वर्णनके लिए सस्कृत (आयुर्वेद)के उद्धरण दिये गये हैं। रासायनिक सगठन एव गुणकर्म खोरी मेटीरिया मेडिका तथा डीमकके उद्धरण वगला अनुवाद सहित दिये गये है।
२ भारतीय वनौषधि	डॉ० श्री कालीपद विश्वासकृत २ भाग,
३ भारतीय भैषज्य तत्त्व	डॉ० कार्तिकचन्द वसुकृत।
४ मेटीरिया मेडिका	स्व० डॉ० राधागोविन्दकर L R C P कृत।

मराठी

१ वनौषधि गुणादर्श	श्री शकरदा शास्त्री पदेकृत, ८ भाग
२ औषधिसग्रह	श्री डॉ० वामन गणेश देशाईकृत
३ भारतीय रसशास्त्र	,, ,, ,,
४ उद्भिज्जशास्त्र	वै० गगाधर शास्त्री जोशीकृत
५ वनौषधि प्रकाश	(१८८२)

गुजराती

१ निघण्टु आदर्श	श्री बापालाल गडवडशाह कृत
२ वनस्पतिशास्त्र	(स्व० वा० जयकृष्ण इद्रजी ठक्करकृत) पोरवदर निवासी प्रथम और सभवत सूक्ष्म वानस्पतिक वर्णन तथा उनके औषधीय प्रयोग की प्रातीय भाषाओमेंसे केवल पुस्तक है।
३ निघटसग्रह	वैद्य रघुनाथ जी इद्रजी उर्फ कत्तभट्ट कृत सस्कृत पुस्तक है।

●

इस ग्रंथमें आये सकेताक्षरोका विवरण

संकेत	विवरण
अ०	अँगरेजी (आग्ल)
अ०	अरवी
अफ०	अफगानी
आ०	आसामी (असमिया)
इ० बै०	इब्न वैतार (मुफ़्रदात)
इ०	इब्रानी (Hcbrcw)
इरा०	इरानी
उड़ि०	उड़िया
उ० प्र०	उत्तर प्रदेश
उ०	उर्दू
कच्छ	कच्छी
कना०	कनाडी (कन्नड)
कर्ना०	कर्नाटक
क० अ०	कल्पस्थान अध्याय
क०	कश्मीरी
काठि०	काठियावाड
कानून	अल्कानून (शैखुर्रईस बूअली सीना)
कु०	कुमाऊँ
कुरा०	कुरान
कै० नि०	कैयदेवनिघट्ट
को०	कोकण (णी)
को०	कोल
खर०	खरवार
खासि०	खासिया
ग०	गढवाली
गु०	गुजराती
गो०	गोवा
ग्रा०	ग्राम
च०	चरक
चि०	चिकित्सा स्थान
जर्म०	जर्मन
ता०	तामिल (तमिल)
तुर्क०	तुर्की
तु०	तुलु
ते०	तेलुगु
तो०	तोला
द०	दक्षिणी
ध० नि०	धन्वन्तरि निघण्टु
नि० र०	निघण्टरत्नाकर
ने०	नेपाली
प०	पजावी
पहा०	पहाडो
पला०	पलामू
फा०	फारसी
फि० हि०	फिरदौसुल् हिमकत
फ्रा०	फ्रासीसी
व०	वगला
वम्व०	ववई
वि०	विहार
भा० प्र०	भावप्रकाश
भा० वा०	भारतीय बाना
मद०	मदरासी
भोटि०	भोटिया
मणि०	मणिपुरी
म०	मराठी
मल०	मलयाली
मार०	मारवाडी
मा०	माशा
मि० ग्रा०	मिलीग्राम
मि० मि०	मिलीमीटर
मी०	मीरजापुर
मुगे०	मुगेर
यू०	यूनानो
र०	रत्ती
रा० नि०	राजनिघट्ट
रा०	राजपुताना (राजस्थाने)
ले०	लेटिन

लेप०	लेपचा
सथा०	सथाली
स०	सस्कृत
सिघ०	सिघी
सि०	सिहली (सिलोनी)
सुर०	सुरयानी (Syrian) सीरिया (श्याम) की भापा
सु०	सुश्रुत
सू०	सूत्र स्थान
सें० मी०	सेंटीमीटर
हि०	हिंदी
D	Dioscorides (दीसकूरीदूस)
Fam	Family
Gr	Greek (यूनानी)
Syn	Synonym

●

इस ग्रंथमें आये यूनानी, रूमी (लेटिन) और आयुर्वेदीय (सस्कृत) आदि ग्रथो एवं चिकित्सकों (तज्ज्ञों)के नामोंके मूलस्वरूप और उनके अरबी रूपांतर

मूलरूप	अरबी रूपातरण
आयुर्वेदीय—	
सुश्रुत (स०)	सुस्रुद या सस्रद
चरक	शरक
अष्टाङ्गसग्रह या	अस्तागर, अस्ताकर
अष्टाङ्गहृदय	
निदान (माधवकृत)	निदान, वदान ?
शालिहोत्र	सलोतरी
यूनानी—	
अस्कलीपिओस (Asclepios) यू० } अस्क्लेपिउस (Aesclapius) ले० }	अस्कलीवियूस
अन्ड्रोमाखुस (Andromachus) यू०	अदरूमाखुस
प्लेटो (Plato) यू० (४२७-३४७ ई० पू०)	अफलातून, फलातून
अरिस्टॉटल (Aristtotle) यू०	अरस्तू, अरस्तातालीस
सॉक्रेटीज (Socrates) यू० (४६९ ई० पू०)	सुकरात
हिप्पोक्रेटीज (Hippocrates) यू०	अबुक्रात बुकरात, हिब्बुकरात
पीथागोरस	फीसागोरस
थिओफास्टुस (Theophrastus) ई० पू० ४०० या ३०० या ३५०	सावफरिस्तुस
गालीनूस Galinus } गैलेनस Galenus } ईसवी पूर्व गैलेन Galen } १३१-२००	जालीनूस
डिओसकोरीडीस (Dioscorides)	द (दि) यासकूरीदि (–दु, –दू) स दैसकूरीदूस
टोलेमी (Ptolemy) (ई० सन् १२७-१५१)	बतलीमूस
रूमी	
सल्सस, केल्सस (Celsus)	कल्सूस
प्लाइनी, प्लीनी (Pliny) सन् २३-७९ ई०	प्लाइनी, प्लीनी

अंगरेजी संदर्भ ग्रन्थ

1 *Materia Indica* by W Ainslie 2 Vols (1826)
Is the first attempt to collect the information regarding the medicinal uses of Indian plants being mostly from Tamil and Telgu people and books

2 *Materia Medica of Hindustan* by Ainslie (1813)

3 *Pharmacographia Indica* by Col Dymock, Hooper and Warden 3 parts

4 *Pharmaco graphia* by Fluckigery and HanburA 2nd edition (1879)
Is one of the standard works giving the uses and historical information of the drugs

5 *Materia Medica* of *Western India* by W Dymock, (1883), Contains a collection of information about the history, use, chemistry and physiology of different drugs especially to be found in (the erstwhile) Bombay Presidency

6 *Supplement to the Pharmacopoeia of India* by Moheedin Sheriff

7 *Materia Medica* of Madras by Dr Moheedin Sheriff (1869), suggests drugs which were found efficacious by the author with there uses etc The author is well-known for his intimate knowledge of Indian drugs and especially those of Madras

8 *Waring's Bazar Medicines* of *India* by Sir Pardy Lukis, 6th Edition 1907 is the most handy and useful book giving uses of easily available bazar drugs

9 *Dictionary* of *Econom c Products* of *India* by George Watts (1889-1896)
This work includes all the plants of economic use known up to 1894 with authentic information from various sources

10 *Indian Medicinal Plants* B D Basu 4 Vols Kirtikar, K R, Basu, B D, 2nd Edition L M Basu, Allahabad, 1933

11 *Glossary* of *Indian Medicinal Plants* by R N Chopra, S N Nayar, I C Chopra, (1956)

12 *Supplement to Glossary* of *India Medicinal Plants* by R N Chopra etc

13 *Indian Matera Medica* by K M Nadkarni, 3rd Edition Vols I & II

14 *Vegetable gums and resins* by F N Howes, D Sc

15 *Potter's New-Cyclopaedia* of *Botanical Drugs and preparations* by R C Wren, F. L S, Publised 1907, 1915, 7th edition 1957

16 *A text bool* of *Pharmacognosy* by Henry G Greenish D Sc

17 *Indian Pharmacopoeia*

18 *Indian Pharmacopoeial Codex*

19 *Indigenous drugs* of *India* by R N Chopra (1933)

20 *Wild flowers* of *Kashmir*

21 *Blatter, Flora Arabica* (1919)

22 *Forsl, Flora Aeg Arabica* (1775)

23 *Delile Flora Aegyptic* (1812)

24 *Drugs* of *Hindoostan*, Dr S C Ghose

25. *Studies in Arabic and Persian Medical Literature* by Prof Muhammad Zubayr Siddiqi H A, M A, B L, Ph D (Cambridge), F A S B Calcutta University (1959)
26 *Dioscorides*, (German Translation by I Berendes, Stuttgart, 1902), Consulted for Greek equivalents
27 *Terminologie Medico-Pharmaceutique* by Shimmer (Tehran, 1874) Consulted for Latin and English equivalents
28 *Btaller E Beautiful flowers* of *Kashmir*, Vol 1-2, Jhon Bale, Sons and Danielssons Ltd, London, 1929
29 *Dey, K L, Indigenous drugs of India* Thacker Spink and Co, Calcutta, 1896
30 *Duthie, G F, Flora* of *Upper Gangetic Plain*, Vols. 1-2, Botanical survey of India Calcutta, reprint, 1960
31 *Dutt, U C, The Materia Medica* of the *Hindus*, M C Das, 146, Lower Chitpore Road, Calcutta—1, 1922
32 *Ghosh, R, Materia Medica* and *Therapeutics*, 18th edn, Hilton and Co, Calcutta, 1949
33 *Haines*, H H, *Botany* of *Bihar* and *Orissa*, Botanical Survey of India, Calcutta, reprint, 1961
34 *Hooker, J D, Flora* of *British India* Vols 1—7, L Reeve and Co, London, 1877—1897
35 *Kanjilal*, U N, Kanjilal, P C, Dass, A, *Flora* of *Assam*, Vols 1—5, Government of Assam, 1935
36 Mooss, N S, *Ayurvedic Flora Medica*, No 1, Vaidya sarathy, Kottayam 1953
37 Prain, D, *Bengal Plants*, Botanical Survey of India, Calcutta, reprint 1963
38 Uphof, J C Th, *Dictionary of Economic Plants*, Hafner Publishing Co, New York, 1959

यूनानी द्रव्यगुणादर्श पूर्वार्धकी अध्यायानुक्रमणिका

परिभाषा और भेषजकल्पना खड

●

चित्र-सूची

द्रव्यगुणविज्ञानीय प्रथम अध्याय

प्रकरण १

(औषध तथा आहार द्रव्य और गुण-कर्म-प्रभाव आदि)

द्रव्य किस प्रकार अपना कर्म करते हैं ?

यूनानी द्रव्यगुणविज्ञान[1]के मजबूत सिद्धान्तके अनुसार प्रत्येक खाद्य-पेयादि द्रव्यका कर्म जीवित मानवशरीरपर केवल कैफिय्यत[2] या मिज़ाज (गुण-प्रभाव)के द्वारा या माद्दा[3] (रस) और सूरते नौइय्या[4] (जातिस्वरूप या द्रव्यप्रभाव)के द्वारा निष्पन्न होता है, अथवा कैफिय्यत (गुण-प्रभाव) और सूरते नौइय्या उभयविध, अथवा माद्दा (रस), कैफिय्यत और सूरते नौइय्या त्रिविध अर्थात् तीनोंसे निष्पन्न होता है। औषधमें प्रयुक्त प्रत्येक द्रव्यमें

---

१ जिस शास्त्रमें द्रव्य गुण और कर्म इन तीनों विषयोंका प्रतिपादन किया जाता है, उसे आयुर्वेदकी परिभाषामें 'द्रव्य-गुणविज्ञान' और यूनानी वैद्यकमें 'इल्मुल् अद्विया' कहते हैं जो आधुनिक पाश्चात्य वैद्यकके 'मेटीरिया मेडिका' (Materia Medica) संज्ञाकी अपेक्षया अधिक उपयुक्त, अर्थगर्भ एवं व्यापक संज्ञा है। इस ग्रंथके प्रस्तुत प्रकरणमें यूनानी द्रव्य, गुण, कर्मका वर्णन किया गया है। अस्तु, यूनानी द्रव्यगुण विषयक ग्रन्थ होनेसे इसे यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान कहना उचित है।

२ कैफिय्यत यूनानी सिद्धान्तानुसार वह गुण या धर्म (अर्ज़) है, जो स्वभावतः विभाजन स्वीकार न करे। उदाहरणतः उष्णता एक गुण (कैफिय्यत) है जो स्वभावतः विभाजन, स्वीकार नहीं करती, प्रत्युत उस द्रव्यके (जिसमें आश्रित होकर स्थित है) विभाजित होनेसे (अर्थात् बिल्अर्ज़) विभक्त हो जाती है। यूनानी वैद्यकमें इसके निम्न भेद हैं—

(क) कैफिय्यत ज़ातिया—अपने प्राकृत अर्थात् जाति और जन्मके साथ उत्पन्न हुआ गुण। द्रव्यगत स्वाभाविक या सहज गुण जो द्रव्यके प्रकृतिभूत प्रभावसे प्रगट हो—आत्मगुण।

(ख) कैफिय्यत अर्ज़िय्या—अस्वाभाविक गुण जो द्रव्यके स्वभाव (तबीअत) अर्थात् उसके प्रकृतिभूत या सहज प्रभावसे प्रगट न हो, अपितु किसी बाह्य और आभ्यन्तरिक कारणसे प्रगट हो, जैसे प्रकोप जो आन्तरिक कारणसे प्रगट होता है, और उष्णजलगत उष्णता जो बाह्य कारणसे प्रगट होता है—अनात्मगुण, अन्योपाधिकृत, औपाधिक।

(ग) कैफिय्यत फाइला—अर्थात कर्तृत्व गुण या कार्यकर गुण (कैफिय्यत मुवस्सिरा)। इससे उष्णता और शीतलता अभिप्रेत है।

(घ) कैफिय्यत मुनफइला—अर्थात प्रतिकर्तृत्व गुण जिससे स्निग्धता और रूक्षता अभिप्रेत है।

३ माद्दासे यहाँ आयुर्वेदीय परिभाषाके अनुसार रस (शरीरपोषक रस) अभिप्रेत है। यूनानी वैद्यकमें अरबी 'माद्दा' शब्दके निम्न अर्थ ग्रहण किये जाते हैं—

(१) मूलद्रव्य या कारणद्रव्य (हयूला), (२) दोष (खिल्त रद्दी)। मवाद इसका बहुवचन है। (३) उपादान कारण या समवायीकारण, जैसे—तख्तके लिए तख्ते, और (४) एक जौहर (वीर्य) जो विभिन्न रूपोंका अधिष्ठान या आधार है, परन्तु बिना उसके अपना अस्तित्व प्रगट नहीं कर सकता।

४ सूरत (स्वरूप) वह भेद जो किसी द्रव्यकी जाति (नौअ) बना देता है। संसारमें अप्, तेज, पृथ्वी आदि विभिन्न जातियाँ इसी जातिविशेषक रूप (सूरते नौइय्या)के द्वारा परस्पर भिन्न समझी जाती हैं। अर्थात इसीसे द्रव्यका स्वरूप या द्रव्यत्व (माहिय्यत और हकीकत) बनता है, तथा उसके

उक्त पदार्थत्रय पाये जाते हैं। इनमे माद्दा (रस) और सूरत[1] (रूप) उभय जौहर[2] (वीर्य वा सत्व अर्थात् द्रव्यरूप उपादानसाधनभूत वा समवायीकारण) अर्थात् आश्रित वा आधेय (अन्याश्रित) नही, अपितु स्वाश्रित (कायम बिज़्ज़ात) वा गुणकर्म-प्रभावके आश्रय (आधार) हैं। रूपसे जातिविशेषक वा जात्यभिव्यञ्जक रूप (सूरते नौइय्या) अभिप्रेत होता है। इसको जातिविशेषक रूप (सूरते नौइय्या) इसलिए कहते हैं, कि औषध-द्रव्य उक्त स्वरूपके कारण अन्य द्रव्योसे भिन्न समझे जाते है और उनकी एक विशेष जाति स्थिर हो जाती है। सूरते नौइय्या अर्थात् जातिविशेषक स्वरूप हीने प्रत्येक द्रव्यको भिन्न-भिन्न जाति और भेदोमें विभक्त कर दिया है। प्रत्येक जाति (के द्रव्य)की कार्य-निष्पत्ति स्वजातिमें समान और इतर जातियोमे परस्पर भिन्न होती है, अर्थात् प्रत्येक जातिसे भिन्न-भिन्न कार्य निष्पन्न होता है और एक ही जातिके समग्र व्यक्ति अपने गुणकर्म-निष्पत्तिमें समान होते हैं। सुतरा प्रत्येक चुम्बक (अयस्कात) छोटा हो अथवा बडा लोहेको आकर्पित करता है और प्रत्येक तृणकात (कहरुवा) घास वा तृणको उठाता है।

गुण (कैफिय्यत) अन्याश्रित वा आधेय (अर्ज अर्थात् कायम बिल्गैर) है। अस्तु, यदि यह रूपके आश्रित है तो कर्तृत्व गुण (कैफियात फाएला) होंगे और वह शीतलता एव उष्णता है। यदि वह द्रव्याश्रित है तो प्रतिकर्तृत्व गुण (कैफियात मुन्फएला) होंगे और वह स्निग्धता एव रूक्षता है।

द्रव्यभेद

ससृष्ट वा असमृष्ट औषधद्रव्यका कर्म गुणके द्वारा या जातिविशेषक स्वरूप अर्थात् द्रव्यप्रभाव (सूरते नौइय्या)

विशिष्ट गुण-कर्म निष्पन्न होते है और उसमें एक विशेषक या अभिव्यजक गुण (इम्तियाजी शान) उत्पन्न हो जाता है। आयुर्वेदमें इसका कारण आकाश, वायु और तेज ये महाभूत माने जाते है अर्थात् आकाश, वायु और तेजके समवायसे उनका (द्रव्योंका) आत्मलाभ अर्थात् स्वरूपोत्पत्ति तथा एक दूसरेसे भिन्नता होती है—'अग्निपवननभसा समवायत. । तन्निर्वृत्तिविशेषश्च।' (अ० हृ० सू० अ० ९) ऐसा स्वीकार किया गया है। आयुर्वेदीय कल्पनाके अनुसार यद्यपि सर्व कार्यद्रव्योंकी उत्पत्ति पञ्चमहाभूतोंसे होती है, तथापि उनमेंसे किसी महाभूतकी अधिकता द्रव्यका विशेषक (अभिव्यञ्जक) होती है अर्थात् उनके (महाभूतोंके) समवाय (समिश्रण)के तारतम्यभेदसे (न्यूनाधिक भावसे समिश्रण होनेसे) अनेक द्रव्य उत्पन्न होते हैं। इस सोत्कर्षापकर्षयुक्त पञ्चतत्त्वात्मक सगठनका निर्देश आयुर्वेदमे कभी-कभी 'द्रव्य' शब्दसे किया जाता है—'प्रमाणत प्रभावतश्चावयवानामुत्कर्षापकर्ष-सद्भाव'। तात्पर्य यह कि आयुर्वेदमे द्रव्यकी स्वरूपोत्पत्ति और एक दूसरेसे भिन्नताका कारण उसकी सोत्कर्षापकर्षयुक्त पञ्चमहाभूतात्मक रचना है और इसे कभी-कभी 'द्रव्य' शब्दसे अभिधानित किया जाता है। यूनानी वैद्यकमें उक्त कार्य सूरते नौइय्याका बतलाया गया है। अस्तु, यूनानी वैद्यकमें शरीरमें होनेवाले द्रव्यके जिन कर्मोंका हेतु सूरते नौइय्या बतलायी गयी है, आयुर्वेदमें उनका हेतु द्रव्यप्रभाव या आत्मप्रभाव (द्रव्यका पाञ्चभौतिक सगठन विशेष) बतलाया गया है। अस्तु, मैने इस ग्रन्थमें 'द्रव्य' सज्ञा का व्यवहार सूरते नौइय्या वा जातिविशेषक रूपके पर्याय रूपसे किया है।

१ सूरत वा रूप यूनानी वैद्यककी परिभाषाके अनुसार एक सत्त्व (जौहर) है जो अपने अधिष्ठान वा आधारमें व्याप्यमान होकर (हुलूल करके) पाया जाता है और स्वरूपज्ञान (परिचय) का कारण बनता है। अर्थात् इसीके कारण द्रव्य एक दूसरेसे भिन्न पहिचाने जाते हैं। सूरते नौइय्या (जात्य-भिव्यञ्जकरूप) इसका एक भेद है।

२ यह फारसी गौहर (मूल्यवान् पत्थर) का अरबीकृत है। इसका साधारण अर्थ सत्त्व वा वीर्यभाग अर्थात् द्रव्यका सार भाग है। यूनानी द्रव्यगुणकी परिभाषामें उस पदार्थको कहते है, जो आश्रित वा आधेय नहीं, अपितु स्वय आश्रय वा आधार रूप है। उदाहरणत द्रव्य, यह गुण या धर्म (अर्ज) के विपरीत है, क्योंकि गुण वा धर्म अन्याश्रित होता है, जैसे—रग।

अथवा स्वभाव (खासिय्यत)के द्वारा निष्पन्न होता है। परन्तु आहारद्रव्य केवल रस (माद्दा) से अपना कर्म करता है। तासीर या कर्म इन तीनो (रस, गुण, प्रभाव)मेंसे एकके द्वारा या दो या तीनोंके द्वारा होता है।[1] परन्तु गुण चाहे वह कितना ही स्वल्प (सूक्ष्म) हो और उसका प्रभाव अप्रकट हो, प्रत्येक दशामें स्वरूप और रस (माद्दा)में आश्रित होकर रहता है, उससे पृथक् नहीं होता अर्थात् गुण, रूप और रस (माद्दा)में समवायसम्बन्ध (अपृथग्भाव)से रहता है। इसके विपरीत स्वरूप और रस उभय गुणके आश्रित नहीं, अपितु स्वयं उनके आश्रय या आधार हैं। अर्थात् रस या द्रव्य (माद्दा), रूप और गुणके समवायमें द्रव्य और रूप[2] आधार रूपसे और गुण आधेय या आश्रित रूपसे रहता है। इनमेंसे जिसका कर्म बलवान् होता है उसे पूर्वपद और गौण कर्मवालेको उत्तरपदमें रखकर उल्लेख करते हैं। प्राय द्रव्योंके कर्म उनके गुणोंके द्वारा सम्पन्न होते हैं सिवाय आहारद्रव्यके, क्योंकि वह केवल रस (माद्दा)से स्वकर्म करते हैं अर्थात् देहधात्वादिरूपता प्राप्त करते (शरीरका भाग बन जाते) हैं। सुतरां जो द्रव्य मनुष्यके आमाशयमें पहुँचते हैं वे यूनानी द्रव्यगुणके सिद्धान्तके अनुसार कई प्रकार के होते हैं।[3] यथा—

(१) वह जिसका कर्म केवल रस या माद्दासे होता है अर्थात् जिसमें रस (माद्दा) प्रधान होता है, ऐसे द्रव्य को 'गिज़ाए मुतलक' कहते हैं। यूनानी वैद्यकके अनुसार गिज़ा की परिभाषा यह है—

"जो द्रव्य शरीरपोषण (तग्ज़िया बदन)के लिए (धनिपूर्तिकी भांति) उपयोग किये जाते हैं वह अग्ज़िया कहलाते हैं।' आयुर्वेदमें इसे आहारद्रव्य[4] कहा जाता है।

यूनानी वैद्य कहते हैं, "आहारद्रव्य अपने रस या माद्दासे (बिल्माद्दा) कर्म करते हैं।" और रसजन्य गुण (तासीर बिल्माद्दा)का कारण वे यह बतलाते हैं, जो सर्वथा सत्य है, कि आहारगत रस (माद्दा) पचन और परिवर्तनके उपरान्त शरीरका भाग बन जाता है। मांसरस (शूरबा), अधभुने अंडेकी जर्दी, गेहूँ और समस्त नाज इत्यादि आहारद्रव्यके उदाहरण हैं।

---

1 आयुर्वेदके अनुसार भी द्रव्यका उक्त कार्य केवल गुणप्रभावसे नहीं, अपितु द्रव्यप्रभाव (पाञ्चभौतिक रचना विशेषके प्रभाव अथवा सूरतेनौइय्या)से और गुण (शीतोष्णादि वीर्य आदि)के प्रभावसे अथवा द्रव्यप्रभाव और गुणप्रभाव दोनोंसे निष्पन्न होता है—न तु केवल गुणप्रभावादेव द्रव्याणि कार्मुकाणि भवन्ति, द्रव्याणि हि द्रव्यप्रभावाद् गुणप्रभावाद् द्रव्यगुणप्रभावाच्च कार्यकराणि भवन्ति ॥ (चरक सू० अ० २६) ॥ तद्द्रव्यमात्मना किंचित् किंचिद्वीर्येण सेवितम्। किंचिद्रसविपाकाभ्यां दोषं हन्ति करोति वा ॥ (सुश्रुत सू० अ० ४०/१४) ॥

२. परन्तु अन्य मतसे यह गुण (अर्ज़) है। सुतरां द्रव्याश्रित है अर्थात् यह उसमें आधेय या आश्रित रूपसे रहता है।

३ आयुर्वेदमें औषध और आहार भेदसे इसके यह दो भेद माने जाते हैं—(औषधाहारभेदेनापि) द्रव्यं नानाविधं। (चरक सू० अ० १)।

४ आहारद्रव्यके सम्बन्धमें आयुर्वेदमें लिखा है—चरक की टीकामें चक्रपाणिदत्त लिखते हैं—"रसप्रधानमाहारद्रव्यं", रसप्रधानमितियद्द्रव्यमुपयुक्तं देहे रसधातुं तद्द्वारा रक्तादिधातूंश्च प्रधानतया पुष्णाति, न त्वौषधद्रव्यवत् प्रधानतया देहे शीतोष्णादिकान् वीर्यसंज्ञकान् गुणाञ्जनयति तद् रसप्रधानं, तच्चाहारद्रव्यम् आहारद्रव्यसंज्ञकमिति यावत्, यथा—गोधूमादि। अर्थात जो द्रव्य रसप्रधान हो अर्थात जिसके उपयोगसे शरीरमें रस तथा रससे पुष्ट होनेवाले रक्तादि धातुओंका पोषण प्रधानतया होता हो, शीत उष्णादि वीर्यसंज्ञक गुणोंकी उत्पत्ति (गुणोंका असर) प्रधानतया न होती हो, ऐसे द्रव्यको आहारद्रव्य कहते हैं, जैसे—चावल, गेहूँ इत्यादि। अर्थात इनमें रसादि धातुपोषक अंश अधिक प्रमाणमें होता है। अतः इनको रसप्रधान-आहारद्रव्य माना जाता है। अरबीमें इसे 'मवाद्दुल् अग्ज़िया' या 'माद्दए गिज़ाइय्य' कहते हैं। (मंअत मसीही)।

वक्तव्य–यूनानी वैद्यकीय ग्रथोमें आहारद्रव्य (गिजा) के अठारह भेद इस प्रकार लिखे हैं—

प्रथम वह आहार जिससे उत्तम शुद्ध स्वाभाविक रक्त या कैमूस उत्पन्न हो, जिसमें अन्यान्य दोष (अखलात) यथाप्रमाण हो, प्रमाणातिरेक (आवश्यकतासे अधिक) न हो, उसे "सालिहुल्कैमूस" कहते हैं।

द्वितीय वह जिससे सालिहुल्कैमूसके विपरीत अर्थात् अशुद्ध एव दूषित (अप्राकृत) रक्त वा दोष उत्पन्न हों, उसे 'रद्दियुल्कैमूस' या 'फासिदुल् कैमूस' कहते हैं।

उपर्युक्त उभय भेदोमेंसे प्रत्येकके यह तीन अवातर भेद होते हैं—स्थूल वा सांद्र (कसीफ), तरल वा सूक्ष्म (लतीफ) और उभयनिष्ठ अर्थात् न सांद्र न तरल (मोतदिल)। इन तीनोके पुन यह तीन-तीन अवातर भेद और होते हैं—प्रथम वह जिससे रक्त और दोष अधिक प्राप्त हों और मल अल्प (अर्थात् कसीरुल्गिजा), द्वितीय वह जिससे रक्त एव दोष अत्यल्प प्राप्त हो और मल अधिक (अर्थात् कलीलुल् गिजा) और तृतीय वह जिससे न अधिक पतले और न अधिक गाढे अर्थात् मध्यम स्थितिका रक्त एव दोष उत्पन्न हों।

स्थूल और सांद्र (कसीफ और गलीज) आहारसे प्रगाढीभूत दोष विशेषतया सांद्र रक्त उत्पन्न होता है, जो कठिनतापूर्वक देहधात्वादिरूपता (शरीरावयवका रूप, शरीरतादात्म्य) ग्रहण करता है, जैसे—महिषीमास इत्यादि।

तरल वा पतले (लतीफ) आहारसे पतला वा सूक्ष्म (लतीफ) रक्त उत्पन्न होता है, जो सरलतापूर्वक शरीरके अग-प्रत्यगका रूप (देहधात्वादिरूपता) ग्रहण कर लेता है, जैसे–आशे जौ (यवमड)।

(२) वह द्रव्य जिसका कर्म (तासीर) केवल गुण (कैफिय्यत अर्थात् मिज़ाज)से होता है। तात्पर्य यह कि जिसमें गुण या कैफिय्यत प्रवल और वलवान् तथा स्वरूप और रस (माद्दा) पराभूत हो, उसे दवाए मुतलक (औषधद्रव्य)[1] कहते हैं। यह आमाशयमें पहुँचकर उसकी उष्णता और शीतलतासे परिवर्तित हो जाता है। पुनरपि यह स्वय शरीरको परिवर्तित कर देता है, और अपनी शीतलता, उष्णता, स्निग्धता और रूक्षताजन्य कर्म शरीरमें प्रकाशित करता है।

धात्वथके अनुसार दवाऽ (औषधद्रव्य)[2] उस वस्तुको कहते है, जिससे किसी व्याधिका प्रतीकार किया जाय। अर्थात् जो शरीरको रोगमुक्त करे।

यूनानी वैद्यककी परिभाषाके अनुसार जो द्रव्य शरीरकी किसी व्याधित वा रुग्ण अवस्थाके निवारणके लिए वहिराभ्यतरिक रूपसे उपयोग किये जाते है, चाहे वे ससृष्ट हो वा असंसृष्ट, अद्विया (औषधद्रव्य) कहलाते हैं। मेअत मसीहीके अनुसार अद्वियाको मवाद्दुल् अद्विया एव माद्दए दवाइय्य कहते हैं।

उपर्युक्त भावको दूसरे शब्दोमें इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है

"अद्विया (औषधद्रव्य) शरीरके भीतर एक नवीन अवस्था (कैफिय्यत) उत्पन्न करती हैं।" अर्थात् शरीरकी रुग्णावस्थाको दूर करके नीरोगावस्था (आरोग्य—धातुसाम्य) उत्पन्न कर देती है। इसीको 'आरोग्यप्राप्ति' कहते हैं[3]।

---

१ औषधद्रव्यके विषयमें आयुर्वेदमें लिखा है—चरक की टीकामें चक्रपाणिदत्त लिखते हैं—"वीर्य-प्रधानमौषधद्रव्य" वीर्यप्रधानमिति यद्द्रव्यमभ्यवहृत देहे वीर्यसज्ञकाञ्शीतोष्णादिगुणानेव प्राधान्येनोपजनयति, न त्वाहारद्रव्यवत् प्रधानतया रसादिधातून् पुष्णाति तद्वीर्यप्रधान, तदौषध-द्रव्यम्। औषधद्रव्यसज्ञकमित्यर्थ। यथा—शुण्ठीपिप्पल्यादि।" अर्थात् औषधद्रव्य वीर्य प्रधान होता है, इसका तात्पर्य यह है कि इन द्रव्योंमें रसादि धातुओंके पोषण करनेवाले तत्त्व भी होते हैं, परन्तु वे गौणरूपमें होते हैं—उनमें वीर्यसज्ञक शीतोष्णादि गुण वा वीर्यसज्ञक सत्त्वाशकी प्रधानता होती है।

२. आयुर्वेदमें भी लिखा है—वह द्रव्य जिससे वैद्य व्याधिका निवारण करे वह औषध है—"वैद्यो व्याधि हरेद्येन तद्द्रव्य प्रोक्तमौषधम्।" (अत्रि)॥ "तदेव युक्त भैषज्य यदारोग्याय कल्पते।" (चरक)।

३ वैद्यकीय वाङ्मय (आयुर्वेद)में स्वास्थ्य वा आरोग्यकी बहुत ही सुदर समर्पक तथा याथातथ्य-निदर्शक व्याख्या इस प्रकार की गयी है—"समदोष समाग्निश्च समधातुमलक्रिय'। प्रसन्नात्मेन्द्रिय-

वक्तव्य —यूनानी वैद्यकके प्रचलित एवं मान्य प्राचीन ग्रंथों (मूजज़, नफीसी, शरह अस्वाब और क़ानून) में यह शब्द नहीं मिलता, जिससे यूनानी वैद्यकके विद्यार्थी एवं शिक्षक हकीमगण यह निष्कर्ष निकालनेके लिए विवश हैं कि पाश्चात्य वैद्यकका मेटीरिया मेडिका एक ऐसा शब्द है जिसके बराबरीका (समानार्थी) यूनानी वैद्यकमें कोई शब्द नहीं है। ऐसा समस्त मिस्रदेशीय हकीमोंका मत है, तथा इसको उन सभीने सर्वथा एक अभिनव शब्द समझा है।

मेटीरिया मेडिका लैटिन भाषाका शब्द है जिसका भावार्थ (मेटीरिया = द्रव्य या मादा, मेडिका जो मेडिकससे व्युत्पन्न है—वैद्यक या तिब् और औषध या दवा) औषध द्रव्य (मवाद्दुल् अद्विया या माद्दए दवाइय्य) या वैद्यकीय द्रव्य व चिकित्सोपकरण (माद्दए तिब्बिया) है। माद्दए तिब्बिया अर्वाचीन मिस्रदेशीय विद्वानों द्वारा प्रसिद्ध किया हुआ शब्द—नवनिर्मित संज्ञा (परिभाषा) है, जो वस्तुत मेटीरिया मेडिका का शब्दानुवाद है।

परन्तु हकीम अबुसहल मसीहीकी विद्वत्प्रसिद्ध रचना 'किताबुल् मेअत'की वसीमवीं पुस्तकमें 'मवाद्द अद्विया'—अल्विमाउस्मानी वल्मआदनकी मवाद्दुल् अद्विया—शब्द आया है। यह वही मूल प्राचीन पारिभाषिक संज्ञा है जिसका अनुवाद 'मेटीरिया मेडिका' किया गया है, और जिसे मिस्री हकीम 'माद्दए तिब्बिया' कहते हैं। यद्यपि उक्त 'मवाद्दुल् अद्विया' या 'माद्दए दवाइय्य' (औषधद्रव्य) कहना चाहिए था, क्योंकि मेडिका संज्ञाका अर्थ, जो लैटिन मेडिकससे व्युत्पन्न है, यदि वैद्यक (तिब्बी) है तो उसका अर्थ औषध (दवाऽ) भी है। मवाद्दुल् अद्वियाकी पारिभाषिक शुद्धताका द्वितीय प्रमाण यह है कि अबुसहल मसीहीने अपनी अन्य रचनाओं (कुतुब) में मवाद्दुल् अग्ज़िया (गिज़ाई सामान या आहारद्रव्य) का भी उल्लेख किया है। फलत चिकित्सकोंको चिकित्साकालमें जिस प्रकार 'मावाने दवा—औषधद्रव्य'की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार स्वास्थ्य एवं रुग्ण इन उभय अवस्थाओंमें 'मावाने गिज़ा—आहारद्रव्य'की भी आवश्यकता पड़ती है।

आयुर्वेदमें भी चिकित्सोपयुक्त द्रव्यके इन उभय भेदोंका उल्लेख मिलता है—"द्रव्य तावद्-द्विविध—वीर्यप्रधान-मौषधद्रव्यं, रसप्रधानमाहारद्रव्य च।" (च० सूत्रस्थान)।

उपर्युक्त मवाद्दुल् अद्विया और मवाद्दुल् अग्ज़िया अरबी संज्ञा क्रमश संस्कृत औषधद्रव्य और आहारद्रव्य शब्दोंके भाषान्तर ज्ञात होते हैं, जो उक्त अरबी संज्ञाओंसे भी अतिप्राचीन हैं।

औषधके सम्बधमें यह एक अति प्रसिद्ध कथन है कि 'औषधका प्रभाव वीर्य द्वारा (बिल् कैफिय्यत) हुआ करता है।" उक्त कथनका अर्थ यदि उपरिलिखित भावके अनुसार लगाया जाय और दवा (औषध) के भावको व्यापक रखा जाय तो अनेक वादविवादोंसे मुक्ति मिल जाय।

यहाँ पर यह विचारणीय है कि औषध और आहारमें कोई ऐसा तात्त्विक (जौहर या तत्वमूलक) या आधार-मूलक अतर नही है, कि इन दोनोंके बीच एक भिन्नता-सूचक रेखा अकित कर दी जाय। इन दोनोमें यदि कोई अतर है तो इनकी युक्ति व योजना एव उपयोगोंके प्रयोजन और निमित्तकारणके विचारसे है। इसलिए यह सभव है कि कोई वस्तु किसी समयमें शरीरपोषणके निमित्त उपयोग की जाय, इस हेतु वह आहार (गिज़ा) कहलाये और वही वस्तु अन्य समयमें रोगके लक्षणोंके निवारण (धातुसाम्य) के लिए उपयोग की जाय, इस हेतु उस समय वह औषध (दवाऽ) कहलाये। ऐसी ही वस्तुओंको जो इन उभय प्रयोजनोंके लिए उपयोगकी जाती है दवाए गिज़ाई (औषधीयाहार) या गिज़ाए दवाई (आहारौषध) कहा जाता है। इन उभय पदोकी व्यवहारोपयोगितामें यह सूक्ष्म भेद अवश्य किया जाता है, कि जिस प्रयोजनके साधनकी योग्यता उस वस्तुमें अधिक होती है, उसीको दृष्टिमें रखकर गिज़ा (आहार) या दवाऽ (औषध) के पदको पूर्वपदके स्थान (उपसर्गरूप) से रखा जाता है, जिसका हर जगह निर्णय करना सहज नही है। अस्तु,

(३) यदि वह द्रव्य रसप्रधान और स्वल्प वीर्यवान् है अर्थात् उससे प्रधानतया शरीरके पोषणका लाभ

मना स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥" (सुश्रुत सू०, १५ अ० ४४ श्लो०)। चरकमें भी लिखा है—"सुखसज्ञकमारोग्य" (चरक सू०, अ० ५)। "दोपसाम्यमरोगता"।

भेपज द्विविध च तत्। स्वस्थस्योर्जस्कर किंचित् किंचिदार्तस्य रोगनुत् ॥ ४ ॥ (च० चि० १ अ०)। स्वस्थस्यौजस्कर यत्तु तद्वृष्य तद्रसायनम् ॥ ५ ॥ प्राय प्रायेण रोगाणा द्वितीय प्रशमे-मतम्। प्राय शब्दो विशेपार्थो ह्युभय ह्युभयार्थकृत् ॥ ६ ॥ (च० चि० १ अ०)।

प्राप्त किया जाता है, तो उस द्रव्यको गिज़ाऽदवाई (आहारौषध) कहते हैं। उक्त द्रव्य रस और वीर्य (माद्दा और कैफ़िय्यत)से कर्म करते हैं। इस प्रकारके द्रव्य प्रथम शरीरमें अपना प्रभाव करते हैं, तदुपरात शरीरकी शक्तियाँ उसमें प्रभाव करके उससे शरीरकी क्षतिपूर्ति (वदल मायतहल्लुल) करती हैं, जैसे—सिरका, यवमड (आशेजौ), कद्दू, तरवूज, खरवूजा और अगूर।

(४) इसके विपरीत यदि वह द्रव्य वीर्यप्रधान है अर्थात् उसमे औषधीय गुणो (दवाइय्यत)की प्रवलता या प्राधान्य है, और पोषणाश वा रस (गिज़ाइय्यत) स्वल्प है अर्थात् उससे प्रधानतया रोगनिवृत्ति (शिफाऽमर्ज़)का लाभ प्राप्त किया जाता है, तो ऐसे द्रव्यको दवाऽगिज़ाई (औषधीयाहार) कहते हैं। इन द्रव्योका प्रभाव वीर्य और रस (कैफ़िय्यत और माद्दा)के द्वारा होता है। इस प्रकारके द्रव्य शरीरमें पहुँचकर उसमें परिवर्तन उत्पन्न कर देते हैं, तदुपरात शरीर उनमें परिवर्तन करके थोडासा प्रासादाख्य दोष (धातु) उत्पन्न कर लेता है। यह दोष शरीरका भाग (धातु) वन जाता है। परतु उक्त दोषका गुण (कैफ़िय्यत) शेष रहता है, जो शरीरगत गुणोंमे वलवान् रहता है। जैसे—गदना, पुदीना, कासनीके पत्र, सकोय, लहसुन और प्याज इत्यादि।

वक्तव्य—

उपर्युक्त विवरणसे यह प्रकट है, कि औषध और आहारके मध्य किसी विभेदसूचक सीमाका निर्धारण अतिशय कठिन है। फिर भी, अनुभव और निरीक्षणकी सहायतासे इतना अवश्य कहा जा सकता है, कि कतिपय द्रव्य केवल औषधरूपेण उपयोग किये जाते हैं और उनमें आहार वननेकी विलकुल योग्यता नही होती। ऐसे द्रव्यको दवाए ख़ालिस (मात्र औषधद्रव्य) कहा जाता है। पर कदाचित् प्रयत्न करने पर भी कोई ऐसा द्रव्य उपलब्ध न हो सके, जो निरतर केवल शरीरपोषण (तग्ज़िया)के लिए उपयोग किया जाता हो, और उसका कोई अश किसी अवस्थामें औषधरूपेण व्यवहार न किया जा सके।

गेहूँ, चावल, अडा, और मासको गिजाए ख़ालिस (मात्र आहारद्रव्य) माना जाता है। पर यदि गवेषणा और ऊहापोहकी दृष्टिसे देखा जाय, तो इनको मात्र आहारद्रव्य (गिज़ाए ख़ालिस) कहना प्रवचनापूर्ण है। गेहूँसे एक प्रकारका तेल प्राप्त किया जाता है जो दद्रु (दाद)की अव्यर्थ महौषधि है। चावल और गेहूँमें अत्यधिक प्रमाणमें श्वेतसार (निशास्ता) पाया जाता है और यह सभीको भलीभाँति ज्ञात है, कि निशास्ताकी गणना यूनानी वैद्योने औषधमें की है और अनेकानेक व्याधियोंमें इससे व्याधिविमोचन (शिफा)के गुण प्राप्त किये जाते हैं। अडेसे एक तेल (रोग़न वैज़ा) निकाला जाता है, जो रोमसजनन और लोमसवर्धनके लिए पतले लेप (तिला) रूपसे उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त नपुसकत्व (जोफवाह) यदि रोग है—और निस्सदेह रोग है—तो अडा वाजीकरण और वृष्य है, तथा उक्त अवस्थाके लिए एक सफल अनुपम उपचार वा आरोग्यप्रद उपक्रम है। कपोतमास और वृद्ध कुक्कुटका मास विशेष अवस्थाओमें औषधीय और व्याधिविमोचनीय प्रयोजनोके आधारपर ग्रहण किये जाते हैं। उक्त ग्रहण इस वातकी एक रहस्यपूर्ण अन्वर्थक स्वीकृति है, कि इन प्राणियोके मासमें कतिपय ऐसे विशेष घटक पाये जाते हैं, जो शरीरके भीतर प्रविष्ट होकर किसी रोगोत्पादक विशेष दोषको उन्मूलित करके आरोग्यरूपी सेवा-कार्य सपादन करते हैं।

उक्त कथन या प्रतिज्ञाका एक प्रवल प्रमाण यह भी है कि पुराकालीन यूनानी वैद्यकविद्याके आचार्योंने उन अखिल द्रव्योंको जिन्हें केवल आहारद्रव्य (गिज़ाए ख़ालिस) समझा जाता है, उष्णशीतादि गुणो (कैफ़िय्यत)से रहित स्वीकार नही किया है। गेहूँ, अडा और मासको यदि वे उष्ण-स्निग्ध कहते हैं तो चावलको शीतल-स्निग्ध। जिन्हें ज्ञानचक्षु प्राप्त है, वे वहुत ही सरलतापूर्वक इस वातका निर्णय कर सकते हैं कि यह सिद्धान्त ही उनके भीतर औषधीयगुण (दवाइय्यत)का होना प्रमाणित करनेके लिए पर्याप्त है।[1]

---

१ आयुर्वेदमें भी जहाँ आहारद्रव्योंका वर्णन किया गया है, वहाँ आहारोपयोगी प्रत्येक द्रव्य या आहार-कल्पके रस, गुण, वीर्य और विपाकका भी उल्लेख प्राय मिलता है। चरकाचार्यने 'यज्ज पुरुषीयाध्याय'

(५) जुलखास्सा, जुलखासिय्यत, जुखासिय्यत—

कर्मभेदसे औषधद्रव्य दो प्रकारके होते हैं—

(१) कतिपय औषधद्रव्य ऐसे है, जो विभिन्न दशाओमें मानवशरीरमें प्रविष्ट होकर जो कर्म करते हैं, वैद्यकके आधारभूत सिद्धातोके अनुसार हमें उनके कर्मोकी कार्यकारणमीमासा ज्ञात है और हम द्रव्यगुणके किसी जिज्ञासुको उन द्रव्योके वैद्यकीय उपयोगोकी मीमासा सोपपत्तिक समझाकर उसका समाधान और उसे सतुष्ट कर सकते है,[1] उदाहरणत —

(अ) मुलेठी कासमे लाभकारी है, क्योकि यह कफोत्सारि (श्लेष्मानिस्सारक) है अर्थात् यह फुफ्फुसोंसे श्लेष्माका उत्सर्ग विवर्धित करती और वायुप्रणालिकाओको परिविस्तृत कर देती है।

(आ) खत्मीकी जड और इसवगोल इत्यादिके लुआव प्रवाहिका (पेचिश)के लिए उपकारक है, क्योकि वह अपने विशेष प्रशमन, स्निग्धता और पिच्छिलताके कारण अन्त्रस्थ क्षोभ एव प्रदाहजन्य कष्टोको निवृत्त कर देते हैं।

(ई) शोरा (वोरक), वूरए अरमनी (नतरून) और अन्यान्य क्षार पदार्थ आमाशयस्थ अम्लताके प्राचुर्यसे उत्पन्न आमाशयिक प्रदाहमें लाभदायक है, क्योकि क्षारद्रव्य अम्लद्रव्यके विरुद्ध वा उसके शत्रु है, और अम्ल क्षारद्रव्यके।

(२) परतु इसके विपरीत कतिपय औषधद्रव्य ऐसे हैं कि यद्यपि उनका लाभकारी होना नि सदेह सिद्ध है और परीक्षण एव प्रत्यक्ष अनुभवसे उनके उक्त गुण कर्मोकी सत्यता वारवार प्रमाणित हो चुकी है, तथापि उनके कर्मोकी कार्यकारणमीमासा (प्रकृतिके अन्यान्य असख्य रहस्योकी भांति) रहस्यकी यवनिकामें मुखाच्छन्न हैं। कोई जिज्ञासु यदि प्रश्न करे कि उक्त औषधद्रव्य अमुक व्याधिमें क्यो लाभकारी है, तो हमारे पास उक्त प्रश्नका कोई समाधानकारक उत्तर नही है जिसे श्रवणकर किसी द्रव्यगुणके जिज्ञासुका समाधान या सतोष हो जाय। उक्त अज्ञानावस्थासे विवश होकर अधिकसे अधिक हम जो कुछ कह सकेंगे, वह केवल यह कि—"बस ऐसा ही है, और इसकी वास्तविक मीमासा (कार्यकारण सबध) या उपपत्ति हमें ज्ञात नही है।"

इस प्रकारके द्रव्यको यूनानी वैद्य जुलखास्सा वा जुलखासिय्यत[2] की परिभाषासे स्मरण करते है। जैसे—विषोके अगद (तिर्याक) जिनको कभी-कभी प्रतिविष (फादेज़हर) भी कहा जाता है। मात्र अनुभव (प्रत्यक्ष, प्रयोग एव निरीक्षण)—तजरिवामे यह वात प्रमाणित हुई है, कि अमुक विषविशेषका प्रभाव अमुक द्रव्यसे नष्ट हो जाता है। वह द्रव्य उक्त विशेषविषका अगद क्यो है, इस वातको तर्क और युक्तिसे सिद्ध नही किया जा सकता। इन द्रव्योके उक्त कर्म जिस शक्तिसे निष्पन्न होते है, आयुर्वेदमें उसे अचिन्त्य शक्ति और प्रभाव[3] कहते हैं।

(सू० अ० २७/३६) में आहारके गुणोका निर्देश करते हुए—"स (आहार) विंशति गुण गुरु × × × द्रवानुगमात् ॥" ऐसा लिखा है। सुश्रुत लिखते है—" × × ह्याहारवैपम्यादस्वास्थ्य, तस्याशितपीतलीढखादितस्य नानाद्रव्यात्मकस्यानेकविधविकल्पस्यानेकविधप्रभावस्य पृथक्पृथग्द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकप्रभावकर्माणीच्छामि ज्ञातु, न ह्यनववुद्धस्वभावा भिषज स्वस्थानुवृत्ति रोगनिग्रहण च कर्तुं समर्था ॥" (सुश्रुत सू० अ० ४६/३)।

१ आयुर्वेदमें ऐसे द्रव्यको मीमास्य, चिन्त्यशक्ति (और चिन्त्यवीर्य) कहते है। पाश्चात्य वैद्यकमें उसे रॉशनल (Rational) कहते है।

२ इससे ऐसे द्रव्य अभिप्रेत है, जिनके कर्मोका कार्यकारणसवध वा हेतु अज्ञात वा अप्रकट हो अथवा जो अपने जातिस्वरूप (सूरते नौइय्या) से कर्म करें। अथवा जिनके कर्म ऐसे गुप्त या अज्ञात रीतिसे निष्पन्न हों जिनका सम्बन्ध न गुण (कैफ़िय्यत) से और न अन्यान्य ज्ञात हेतुओं (उपलब्ध द्रव्यगुण-विज्ञानके सिद्धान्तो)से दिखलाया जा सके। इन्हें फाएल बिल् जौहर या फाएल बिल्खासिय्यत भी कहते है। आयुर्वेदमें इन्हें क्रमश वीर्य या स्वभाव कह सकते है।

३ सुश्रुत और नागार्जुनने 'प्रभाव" नामके पदार्थका "प्रभाव" नामसे उल्लेख नहीं किया है, परतु सुश्रुतने जो "अमीमास्य" ओर "अचित्य भेपज" तथा नागार्जुनने 'अचित्यवीर्य' लिखे हैं, वे प्रभाव ही है।

यहाँ पर इतना और भी स्पष्ट कर देना उचित जान पड़ता है, कि जिस प्रकार हमारी तर्कणाशक्ति अगद एव प्रतिविष (तिरियाक एव फादेजह्र)के विविध कर्मोंकी मीमासा वा हेतु—कार्यकारणभाव (नौइय्यते अमल) बतलानेमें प्रतिकुठित है उसी प्रकार वास्तविक विषों (हकीकी समूम)के उपयोगोंकी यह उपपत्ति कि मानवजीवनके लिए वह प्राणघ्न और साघातिक प्रभाव रखते हैं, बतलानेमें भी हतबुद्धि एव किंकर्त्तव्यविमूढ है।[1]

उक्त अज्ञानाधकारको वाङ्मय वाक्चातुरीसे यह कहकर छिपाया जाता है कि, "ज़ुलखास्सा और समूम (विष) वह विजातीयान्वय या विचित्रप्रत्ययाख्य (अजीबुल् अफ्‌आल) द्रव्य है जो जातिस्वरूप अर्थात् द्रव्यप्रभाव (सूरते नौइय्या)के द्वारा अज्ञात रूपसे कर्म करते हैं। जैसे चुबक (कातपापाण) लोहका और तृणकात (कहरुबा) तृण वा घासका आकर्षण करता है।

किसी-किसीने यह भी लिखा है कि प्राथमिक गुणो—चतुर्महताभूतो (कैफिय्यातऊला) के सिवाय द्रव्यगत शेष समस्त गुणो (कैफिय्यात)को स्वभाव (खासिय्यत) कहते हैं।

ऊपर ज़ुलखास्सा औषधियोके वर्णन-प्रसगमे उनके मीमास्य और अमीमास्य इन दो भेदोंका उल्लेख किया गया है। उनमेंसे प्रथम मीमास्य कही जानेवाली औषधियोके सबधमें भी यदि ऊहापोह और गवेपणात्मक सूक्ष्म बुद्धिसे विचार किया जाय, तो यह कथन मिथ्या नही है कि उनमेंसे प्राय औषधियाँ जातिस्वरूप (सूरते नौइय्या) हीसे स्वकर्म करती हैं।

उक्त दोनो वर्गोंमे कदाचित् कुछ अतर निकल सके तो केवल यह कि द्वितीय वर्गकी (अमीमास्य) औषधियो-में हम प्रारभसे ही अज्ञानाधकारसे आच्छन्न रहते हैं, और प्रथम वर्ग (मीमास्य)में एक दो पग प्रकाशमें चलनेके उपरात अज्ञानाधकारसे आच्छन्न हो जाते हैं।

निम्न विवेचनासे हमारे उक्त कथन का और स्पष्टीकरण होगा।

प्रथम वर्गकी औषधियोके विषयमे यह प्रतिज्ञा की गई है, कि हमको उन औषधियोके कर्मोंकी युक्ति या कार्यकारण सबध (नौइय्यते अमल)का सोपपत्तिक ज्ञान होता है।

किंतु प्रथम तो यह प्रतिज्ञा ही आद्योपात मिथ्या है। क्योकि यदि कोई सत्यका खोज करनेवाला एक पग आगे बढाये और यह प्रश्न कर बैठे कि इतना तो ज्ञात हो गया कि "मुलेठी कासमें इसलिए गुणकारी है कि यह कफोत्सारि (मुनफ्फिसे बलगम) है और इससे वायुप्रणालिकाएँ विस्फारित हो जाती हैं।"

परतु इसके उपरात कृपया इतना और बतलाया जाय कि, "यह कफोत्सारी (श्लेष्मानिस्सारक) क्यो है और इससे वायुप्रणालिकाएँ विस्फारित क्यों हो जाती हैं? तो यहाँ आकर मानवी बुद्धि इस प्रश्नके उत्तर और समाधानमें उसी प्रकार लुप्त हो जाती है, जिस प्रकार द्वितीय वर्गकी औषधियों (फादेजह्र और समूम—अगद एव विष)के कर्मोंकी उपपत्ति या कार्यकारणभाव (नौइय्यते अमल) बतलानेसे विवश और हतबुद्धि है।

इसी प्रकार इस प्रश्नका भी कोई समाधानकारक उत्तर नही है कि क्षार (बोरक्रिय्यत) अम्ल (हमूज़त) का शत्रु क्यो है और अम्लता (हमूज़त) क्षारत्व (बोर किय्यत वा शोरिय्यत)को क्यो तोड देती है?

अधिकसे अधिक उक्त प्रश्नोके उत्तर यही दिये जा सकते हैं कि "यह द्रव्योके नैसर्गिक या स्वाभाविक गुण-कर्म (धर्म—खास्सा) है जो उनके जातिविशेषक स्वरूप अर्थात् द्रव्यप्रभाव (सूरते नौइय्या) और द्रव्यात्मा (हकीकते जात)से सबद्ध हैं।[2] पर मैं कहूँगा कि विष और अगदकी भी यही दशा है। विषका जातिस्वरूप निसर्गत मनुष्यके

---

१. यहाँ वास्तविक विष (हकीकी समूम) सज्ञाका व्यवहार इसलिए किया गया है, कि कभी-कभी उपलक्षणरूपसे शीशा (कॉच) और हीरेकी कनी (कण) को भी विष कहा जाता है, जो आमाशयमें पहुँचकर अपने धारदार किनारों और नोकोंसे छुरीकी तरह आमाशयको क्षतयुक्त करके प्राणनाशका कारण होते हैं। इस प्रकारके विष वास्तविक विष नहीं अपितु यह तो छुरी या चाकूकी तरह मानो धारदार शस्त्र हैं।

२ दे० इस अध्यायकी अतिम पादटिप्पणी।

लिए साघातिक प्रभावविशिष्ट होता है। और अगदका जातिस्वरूप विशेष विषोका प्रभाव नष्ट करनेका स्वभाव (ख़ासिय्यत) रखता है। (कुल्लियात अद्‌विया)।

गुणो (क़ैफिय्यत)की कतिपय कक्षाएँ हैं, यथा—प्रथम कक्षामे शीतलता-उष्णता और स्निग्धता-रूक्षता उत्पन्न करना, द्वितीय कक्षामे तारल्य (लताफत) उत्पन्न करना, शीघ्र प्रवेश करना, उद्‌घाटन, तरलीभूत करना, द्रवीभूत करना (द्रावण) और विलीन करना है, तृतीय कक्षामें अश्मरीनाशन, ओज और शक्तिवर्धन, मन प्रसादकरण और विषनाशन हैं। पुन यदि यह द्रव्य स्वभाव (ख़ासिय्यत), मिज़ाज, ओज और प्राणको सात्म्य हो तो उसकी यह चार अवस्थाएँ होती हैं —

(१) वह जिसका प्रभाव केवल स्वरूपसे होता है, उसे तिरियाक या फादेज़हर (अगद या प्रतिविष) कहते हैं। यह औषधद्रव्य अससृष्ट (अमिश्र) होते हैं और ससृष्ट (समिश्र) भी। अहिफेनको उपलक्षणस्वरूप तिरियाक कहते है, क्योकि अहिफेन भी शक्तिका सरक्षक है। अस्तु, इस बातमें यह वास्तविक अगद (तिरियाक हकीक़ी)के अंतर्भूत हैं।

फादेज़हर और तिरियाक इन उभय सज्ञाओका व्यवहार एक दूसरेके स्थानमें होता है, और ये दोनो एक दूसरेका समानार्थी (पर्याय) समझे जाते हैं। पर किसी-किसीके मतसे फ़ादेज़हर (प्रतिविष) उस वैद्यकीय अमिश्र औषधद्रव्यको कहते हैं, जो पाषाणजातीय हो या पशुओंके उदरसे निकला हो। उक्त परिभाषाके अतिरिक्त यह ज़हरमोहराकी भी अन्यतम सज्ञा है। तिरियाक (अगद) सज्ञाका व्यवहार इन दो प्रकारके द्रव्योके लिए होता हैं :—

(१) उद्भिज्ज वैद्यकीय अससृष्ट औषधद्रव्यके लिए जैसे—जदवार (निर्विषी) और हब्बुल्‌गार तथा (२) द्वितीयप्रकृतिविशिष्ट अर्थात् कार्यद्रव्योके मेलसे बने हुए कृत्रिम कल्पो (योगौषधों)के लिए, जैसे—तिरियाक अफाई, तिरियाक अरबआ और तिरियाक समानिया इत्यादि।

यूनानी वैद्य कहते हैं कि फ़ादेज़हर या तिरियाक विषोको निवारण करते हैं। इनके खाने-पीने और लटकानेसे प्राणौज (रूह) विषजन्य विविध सहारक विकारोंसे सुरक्षित रहता है। विषप्रभाव ओजसे दूर हो जाता है। प्राणौज (रूह)में उक्त विकार तीन रूपसे प्रगट होता है —

(१) विषभक्षणसे, (२) विषधर प्राणियोंके दशके कारण शरीरके अन्यान्य द्रवो और दोषोमें विकार उत्पन्न हो जानेसे, और (३) वायु दूषित होकर महामारी उत्पन्न हो जानेसे। अत जब प्रतिविष और अगद (फादेज़हर और तिरियाक) सज्ञाका व्यवहार किया जाता है, तब उससे वह द्रव्य विवक्षित होता है जिससे विषोका प्रतिकार किया जाय।

(२) वह जिसका प्रभाव जातिस्वरूप या द्रव्यप्रभाव (सूरते नौइय्या) और रस (माद्दा)से होता है, किंतु उनमें रस प्रधान होता है। ऐसे द्रव्यको गिज़ाए फादज़हरी (विषघ्न आहार) और गिज़ाए जुलखासिय्यत (अचिंत्यवीर्य आहार) कहते हैं। जैसे—बकरी और भेडका घी तथा दूध इत्यादि, जो रस तथा रससे पुष्ट होनेवाले रक्तादि धातुओका पोषण करने (ग़िज़ा होने)के सिवाय मन प्रसादकर होते हैं।

(३) वह जिसका प्रभाव गुण (कैफिय्यत) और द्रव्यप्रभाव वा जातिस्वरूपसे होता है, उसे दवाए जुलखासिय्यत (अचिन्त्यवीर्य औषध) और दवाए फादजहरी (अगदौषध) कहते है। जैसे—प्राणिज प्रतिविष एव योगकृत प्रतिविष जो आगदिक गुण और विषहरणके सिवाय मानवी शरीरकी मूल प्रकृति (असली मिजाज)में उष्णताकी वृद्धि करते हैं। यहाँ पर उष्णताका जो प्राबल्य है वह गुणोद्‌भूत (कैफिय्यतके कारण) और विषनिवारण स्वरूपके कारण है। उस्तूखूद्दूस अपनी प्रकृतिजन्य (ससृष्ट द्रव्यगत गुणातर—मिजाजकृत) उष्णतासे मस्तिष्कके साथ विशेष सबध (ख़ुसूसियत) रखता है और मस्तिष्कगत दोषोमें अपने जातिस्वरूप (द्रव्य प्रभाव)के कारण सूक्ष्मता वा तरलता (लताफ़त) उत्पन्न करता है।

(४) वह जिसका प्रभाव रस (माद्दा), गुण (कैफिय्यत) और जातिस्वरूप (सूरत) इन तीनोके द्वारा निष्पन्न होता है उसे गिज़ाए दवाई जुलखासिय्यत (अचिंत्यवीर्य आहारौषध) या गिजाए दवाई फादज़हरी (विषघ्न

आहारौषध) कहते हैं। जैसे—सेब और मद्य जो शरीरके रसरक्तादि धातुओंको परिपुष्ट करने (गिजा पहुँचाने) और शरीरमें उष्णता शीतलता एव स्निग्धता-रूक्षता सवर्धनके अतिरिक्त सौमनस्य एव आनद भी उत्पन्न करते हैं। अस्तु, इनका शरीर-पोषण (तग्जिया)का कार्य रस (माद्दा)के कारण और शीत-उष्णादि गुणोकी उत्पत्ति गुण वा कैफियतके कारण और सौमनस्य एव आनद उत्पादन जातिस्वरूप (सूरते नौइय्याके) कारण है।

सम्म—

इनके विपरीत मिजाज (प्रकृति), प्राणौज (अरवाह) और जीवन (हयात)के विरोधी, हानिकर और असात्म्य प्रभावो (खासिय्यत)के भी कतिपय निम्न भेद हैं, जैसे—(१) वह जिसकी कार्यनिष्पत्ति केवल स्वरूपसे होती है, उसको अरबीमें सम्ममुत्लक और आयुर्वेदमें विष कहते हैं। सम्म (उपविष)का कर्म प्रतिविष (फादेजहर)के कर्मका विरोधी है। जैसे—कृष्णसर्प (अफई)का पित्त और उसका विष। (२) वह जिसकी कार्यनिष्पत्ति गुण और स्वरूपसे होती है। इसके पुन ये दो अवान्तर भेद हैं—(क) इसका प्रभाव अत्युग्र होता है। इसे **दवाए सम्मी** (विषौषध) कहते हैं, जैसे—फरफियून और खुरासानी अजवायन। यहाँसे उपविष (सम्म) और विषौषध (दवाए सम्मी)का अर्थभेद स्पष्ट ज्ञात हो गया अर्थात् सम्म तो अपने स्वभाव (खासिय्यत) और जातिस्वरूप (द्रव्यप्रभाव)के कारण मिजाज, प्राणौज (रूह हैवानी), हृदय और शारीरिक ऊष्मा वा कायाग्नि (हरारते गरीजी)में विकार उत्पन्न कर देता है और विषौषध (दवाए सम्मी) अपने प्रकृतिजन्यगुण (कैफिय्यत मिजाज)के कारण उक्त कर्म करता है। (ख) इसका प्रभाव अत्युग्र नही होता। इसके भी ये दो अवान्तर भेद होते हैं —

(१) इसमें विरेचनकी शक्ति नही होती, (२) इसमें विरेचनीय शक्ति भी होती है। अस्तु, यह वह विरेचनीय शक्ति भी प्रबल है अर्थात् अत्युग्र विरेचनीय है और इसलिए उसके उग्र वीर्य एव तीव्र शक्तिका शोधन एवं शमन (इसलाह, तदबीर या तशविया) परमावश्यक है, तो उसके **मुसहिल जुलखासिय्यत** (अचिंत्य वीर्य विरेचन) कहते हैं। जैसे-जयपाल, खरवक और सकमूनिया। यदि मध्यम वीर्य विरेचन (अर्थात् उग्र किंतु अनुग्र विरेचन) है तो उसको **दवाए मुसहिल**[1] (विरेचनीय औषध) कहते हैं। विरेचनीय औषध प्रत्येक कर्ममें अचिंत्यवीर्य विरेचन (दवाए मुसहिल जुलखासिय्यत) को अपेक्षया हीनगुण है और उसके अधिक शोधनकी आवश्यकता नही है। जैसे—सनाय, हड और निसोथ। सनायको गुलाबपुष्पके साथ खाना और निसोथ एव हडको बादामके तेलमें स्नेहाक्त (चर्ब) करना (उनकी शुद्धिके लिए) पर्याप्त है। यदि निर्बल अर्थात् मृदुरेचन है, तो बहुधा उसका कर्म, गुण, रस (माद्दा) और स्वरूप तीनोंमें होता है। परतु समस्त निर्बल और अपूर्ण (नाकिस) यहाँतक कि विरेचनीय औषध (दवाए मुसहिल) से भी निर्बल यह दोषोंमें मिलकर आमाशय और उसके आस पासके द्रव्योको उत्सर्गित करती है। इसमें प्रवेशनकी शक्ति अधिक नही होती, परतु यह प्रसादनीय—लेखनीय शक्ति (कुव्वत जालिया)से शून्य नही होती। इन औषधोके सेवनसे न अन्त्रमें और न शरीरमें ही किसी प्रकारका प्रदाह वा जलन होती है। अतएव यह बहुधा शिशुओ और गर्भवती स्त्रियोंकी चिकित्सा और अर्शोरोगमें प्रयुक्त होते हैं। इनमेंसे किसी-किसीके शोधनकी तो बिलकुल आवश्यकता नही होती। जैसे-तरजबीन (यवासशर्करा), शीरखिश्त, इमली और आलूबुखारा। इनमेंसे कतिपय अत्यल्प शुद्धिकी अपेक्षा रखते हैं। उदाहरणत अमलतासके गूदेको बादामके तेल या गुलरोगनसे स्नेहाक्त करके देनेका निर्देश है, जिनमें यह अन्त्रके धरातलमें चिपककर क्षत उत्पन्न न करें और न पेचिस उत्पन्न करें।

---

१ भारतवर्षमें विरेचन (मुसहिल)के अर्थमें जुल्लाब सज्ञाका भी प्राय व्यवहार होता है। सर्वसाधारणमें समीचीन न होते हुए भी उक्त सज्ञाका बहुत प्रचलन हो गया है, और मुसहिलके पर्यायस्वरूप यह भी परिभाषा स्थिर हो गयी है। कोई-कोई कोषकार इसका कारण यह लिखते हैं, कि विरेचन (मुसहिल)का अर्थ 'दस्त-लानेवाला' और 'पेट जारी करनेवाला' है। उक्त सज्ञा बहुत अरुचिकर थी, इसलिए उसके स्थानमें 'जुल्लाब' सज्ञा व्यवहार की जाने लगी। यह एकप्रकारका उपलक्षणा (मजाज) है, कि अशका प्रयोग सपूर्णके लिए किया जाता है।

इसको दवाए मुलय्यिन (मृदुरेचन वा सारक) कहते हैं। यह मृदुरेचन (हलका मुसहिल) है। कानून नामक अरबी ग्रंथके भाष्यकार मुल्लासदीदने आलूबुखारेकी टीकामें लिखा है, "दवाए मुसहिल अपने गुण और स्वरूपसे विरेक लाती है। परन्तु दवाए मुलय्यिन (मृदुरेचन) जातिस्वरूपजन्य कर्मकी अपेक्षा नही रखती जैसे—इसबगोलका लुआब (पिच्छा) और आलूबुखारा।"

कतिपय औषधद्रव्यमें विरेचनीय और सग्राही उभय शक्तियाँ विद्यमान होती है। इस प्रकारके औषधद्रव्य सधिवातमे उपकारक होते हैं। कारण विरेचनीय शक्ति सर्वप्रथम दोषका उत्सर्ग करती है, और सग्राहिणी शक्ति स्रोतो और नलियोको सकुचित करके अन्यान्य दोषोको उधर जाने नही देती, जैसे—सूरजान। इस प्रकारके द्रव्योकी विरेचनीय शक्ति यदि अपना उक्त कर्म इसके सग्रहण कर्मसे पीछे करे तो विरेक कम आयें अथवा बिलकुल न आये, इसलिए उत्तम यह है कि ऐसे द्रव्यके साथ कोई केवल विरेचनीय द्रव्य मिला दें। किसी द्रव्यमे मल और मूत्रसर्जनकी शक्ति (कुव्वत इसहाल व इदरार) एकत्र होती है। यह उभय कर्म परस्पर विरोधी है। प्रवर्तनकारिणी (मुदिर्र) ओषधि अन्त्रस्थ मलोंमें रूक्षता उत्पन्न करती है, क्योकि द्रव्योको मूत्रमार्गकी ओर प्रवर्तित करती है, जिससे द्रव्य अन्त्राभिमुखी होनेसे रुक जाते है, जो विरेचनीय शक्तिका कर्म है। इसके सिवाय जब आँतोकी ओरसे भी द्रव खिचकर मूत्रप्रणालीकी ओर प्रवृत्त होगे, तब मल स्वय शुष्कीभूत हो जायगा। अत ऐसी ओषधिसे एक ही कर्म भली भाँति निष्पन्न होता है। कहते हैं कि रेवदचीनीमें मल और मूत्र दोनोंके प्रवर्तनकी शक्ति है। प्रत्युत इससे सग्रहणकी शक्ति (कुव्वत काबिजा) भी है। यूनानी वैद्योंने उष्ण और शीतल विषोंके यह दो भेद किये है। इनमें उष्ण विष शरीरस्थ द्रवो और ओजो (अरवाह)को द्रवीभूत कर देते और नष्ट कर देते है। इसके शीतल विष शरीरगत तरल (लतीफ) शोणित, द्रवो और ओजो (अरवाह)को सहन कर देते (जमा देते) हैं। (खजाइनुल् अदविया)।

विरेचन औषधद्रव्य किस तरह अपना कर्म करते है? यह चिकित्साविज्ञानका सुप्रसिद्ध प्रश्न है। जालीनूस तथा अन्यान्य पुराकालीन यूनानी वैद्यो (हकीमो) ने उक्त प्रश्नका विभिन्न प्रकारसे उत्तर देनेका यत्न किया है।

इन सबधमें किसी किसीका उत्तर यह है—विरेचन द्रव्य बिना किसी विचार विशेषके प्रथम शरीरस्थ तरलतर दोषों और द्रवोंको अन्त्रमार्गमे उत्सर्गित करते है। इसके उपरात क्रमश अन्यान्य प्रगाढीभूत दोष उत्सर्गित होते है।

किसी-किसीके अनुसार विरेचन द्रव्य अपने समान और सजातीय दोषोको सादृश्य और सजातीयताके कारण उत्सर्गित करते हैं। जैसे—सकमूनिया इसलिए पित्तका विरेचन करता है कि पित्त और सकमूनिया वीर्य (जौहर)के विचारसे सामानधर्मी (स्वसमानगुण-आकृति गुण और कर्ममें समान) है।

परतु तत्त्वार्थदर्शी अन्वेषणशील व्यक्तियोने उक्त समस्त उत्तरोको नापसद किया है। उनमें समीचीनतर उत्तर जिसे उन्होंने स्वीकार एव मान्य किया है, यह है—"विरेचनद्रव्य अपने प्रभाव या स्वभावसे (बिलखास्सा) शरीरके विशेष दोषोंको आकर्षित और उत्सर्गित करते हैं।"

इस उत्तर या निर्णयको स्वतत्र यूनानी चिकित्साचार्योंने पसद किया है। इस विषयमें मैं भी उनका अनुयायी हूँ। परन्तु उसपर इतना और वृद्धि करना चाहता हूँ कि विरेचनीय द्रव्योकी भाँति लगभग समस्त द्रव्य, यथा—समस्त स्वेदक, प्रवर्तक, स्तभक, कषाय, बल्य, दौर्बल्यकारक (मिजन) इत्यादि द्रव्य-स्वभाव (बिलखास्सा) और जातिस्वरूप या द्रव्यप्रभाव (सूरते नौइय्या)से ही स्वकर्म करते हैं।

उक्त अवसरपर मैंने समस्त द्रव्योंके साथ 'लगभग' शब्दको इसलिए जोड दिया है कि मुझे यह भी स्वीकार्य है, कि निपातजन्य उष्णता वा उष्ण स्पर्श (हरारत फेलिया) और निपातजन्य शीतलता वा शीतल स्पर्श (बरूदत फेलिया) भी शरीरके कार्यकर वीर्यों (मुवस्सिरात)मेंसे है। इसलिए इससे मुझे अस्वीकार करनेका कोई कारण नही है कि जिस तरह स्तभन द्रव्य अपने जातिस्वरूपके कारण वाहिनियो (उरुक)को सकुचित कर देते हैं, उसी तरह बर्फ भी अपनी निपातजन्य शीतलता अर्थात् शीतलस्पर्श (बरूदत फेलिया)से उक्त कार्य करता है। जिस प्रकार स्वेदल औषधद्रव्य अपने जातिस्वरूप वा 'द्रव्यप्रभाव' (सूरते नौइय्यया)से स्वेदग्रथियोंमें उत्तेजना उत्पन्न करके स्वेदका प्रवर्तन करते

है, उसी प्रकार उष्ण जल, उष्ण अवगाहन और उष्ण वायु भी निपातजन्य उष्णता वा उष्ण स्पर्श (हरारत फेलिया)से स्वेदप्रवर्तनका कारण है। (कुल्लियात अद्‌विया)।

उपर्युक्त समस्त कथनोपकथनका साराश यह है कि, अन्वेपणसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि जो द्रव्य अपने गुण प्रभावसे कर्म करता है और जो स्वभाव या द्रव्य-प्रभावसे (विलखासिय्यत) कार्यकर है, जो समिश्रवीर्य विचित्र-प्रत्यारब्ध (मुरक्कबुलकुवा) है और जिसका कर्म प्रकृतिसे (वित्तवा) होता है, उन सबका मूलस्रोत (मरजा) वहुधा एक ही है। इसलिए कि उनका उक्त कर्म स्वभावज (तबीअतके असरमे) है और शरीर (अजसाम)में स्वभावज कर्म द्रव्यकी आत्मा (नफस)की ओरसे भिन्न-भिन्न रूपसे होता है। अतर केवल यह है कि उनमेंसे प्रथम भेद (गुण प्रभाव)का प्रभाव निर्वल है और द्वितीय भेद (स्वभाव)का उससे वलवत्तर और तृतीय भेद (समिश्रवीर्य)का उससे भी वलवत्तर और चतुर्थ (प्रकृतिजन्य-वित्तवा)का सर्वापेक्षया वलवत्तम होता है।

कतिपय द्रव्य गलेमें लटकानेसे या एक विशेप उपाय या विधिसे अथवा विशेप नियमके साथ उपयोग करनेसे, उदाहरणतया शिरके नीचे रखने या गृहमें डाल देने अथवा गाडने या विछानेसे अथवा जलाने या अपने पास रखनेसे स्वकर्म करते है अथवा जव मित्रता वा शत्रुता हेतु उपयोग किये जाते हैं तव उनका उक्त कर्म मन (नफ्स)के प्रभावसे अर्थात् मानसिक हुआ करता है, विशेपकर मद या स्वल्प वुद्धिके लोगोंमें। तथापि इस प्रकारके कर्मोंमें वैद्यकीय सिद्धातो और स्वभावज कर्मों (तासीरात)को उतना दखल नही है[1]। (खजाइनुल् अद्विया)

---

१ मणि, मत्र और द्रव्योंके धारण करने आदिसे जो नाना प्रकारके कर्म देखे जाते है, उनको आयुर्वेदमें प्रभावजकर्म लिखा है। यथा—

"मणीना धारणीयाना कर्म यद्विविधात्मकम्।
तत् प्रभावकृत तेषा प्रभावाऽचिन्त्य उच्यते॥ (चरक सू० अ० २६)।
मणिमत्रौषधीना च यत् कर्म विविधात्मकम्।
शल्याहरणपुजन्मरक्षायुधीर्वशादिकम्॥
दर्शनाद्यैरपि विप यन्नियच्छति चागद।
× ×
मात्रादि प्राप्य तत्तच्च यत्प्रपञ्चेन वर्णितम्।
तच्च प्रभावज सर्वमतोऽचिन्त्य स उच्यते॥" (अ० स०, सू० अ० १७)।

प्रकरण २

मिज़ाज

द्रव्य प्रकृति (मिज़ाज) निरूपण करनेसे पूर्व यह उचित प्रतीत होता है कि प्रथम मिज़ाज वा प्रकृतिका सामान्य लक्षण निरूपित कर दिया जाय।

मिज़ाजका लक्षण

इसके लक्षण शैखुर्रईस बूअलीसोनाने इस प्रकार लिखे हैं। मिज़ाज[1] वह गुण (कैफिय्यत) है, जो चतुर्महाभूतो (अनासिर)के विभिन्न गुणोंके मेल और पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रियासे प्रकट होता है। ये मूलद्रव्य (अनासिर) सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणुओंमें विभक्त होते हैं जिससे समग्र मूलद्रव्योंके अधिकाधिक अणु एक दूसरेके साथ भली भाँति मिल जाते हैं। अस्तु, जब यह अणु (अज्ज़ाऽसग़ीरा) अपने गुणो (कुव्वतो)के साथ परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं, तब उक्त समस्त गुणोंसे एक नवीन गुण (गुणातर) उत्पन्न हो जाता है जो मूलद्रव्य (अनासिर)के सपूर्ण अणु परमाणुओं (अजज़ाऽ)में समान रूपसे पाया जाता है (कुल्लियात कानून)।

स्वरचित यूनानी वैद्यकके आधारभूत सिद्धात (कुल्लियात)के महाभूतविज्ञानीय अध्यायमें इस विषयका प्रतिपादन किया गया है, कि प्राचीन यूनानी वैद्योंके एक वर्गके मतसे महाभूत (अनासिर) चार हैं—तेज, आप, वायु और पृथ्वी। इसी प्रकार उनके मतसे इन महाभूतोंके प्राथमिक गुण अर्थात् वैशेपिक वा भूतगुण (कैफिय्यात अव्वलिय्या) भी चार हैं—उष्णता, शीतलता, स्निग्धता और रूक्षता। जब महाभूत परस्पर मिलते हैं, तब उनके सिद्धातानुसार यह गुण-चतुष्टय परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं, अर्थात् स्वय भी विघटित होते हैं और दूसरोंको भी विघटित करते हैं, जिससे फलत. एक माध्यमिक गुण (गुणातर)[2] उत्पन्न हो जाता है (अथवा जिससे एक ऐसी समरूपता या एकरूपता उत्पन्न हो जाती है कि उस समय चतुर्भूत और उनके चतुर्गुण भिन्न-भिन्न पहिचाने नही जा सकते)।

(२) द्रव्य प्रकृति (मिज़ाज)

वह कारणद्रव्य (अससृष्ट द्रव्य—बसीत चीजें) जो औपधरूपेण प्रयोग किये जाते हैं, उनको औपधके प्रागुक्त लक्षणोंके अनुसार यद्यपि औपध ही कहा जायगा, किंतु उनके कर्म उनकी प्रकृति (तबीअत)की अपेक्षासे वर्णन किये जायेंगे, और मिज़ाज चूँकि उस ससृष्ट (ससर्गज) आकृति (रूप) और गुण (इम्तिज़ाजी हय्यत व कैफिय्यत)की अन्यतम सज्ञा है जो विभिन्न कारणद्रव्यो (अनासिर)के सयोग वा ससर्गके उपरात कार्यद्रव्य (ससृष्ट मुरक्कब)में प्राप्त होते हैं। अतएव ऐसे मूलद्रव्यों-कारणद्रव्योंमें उक्त परिभापा (लक्षण)के अनुसार मिज़ाज उपस्थित न होगा। अधोलिखित पक्तियोंमें मिज़ाज-(द्रव्यप्रकृति)का विवरण किया गया है, उससे वे ही द्रव्य विवक्षित हैं, जो इस प्रकार तत्त्वरूप (बसीत) न हों, अपितु कतिपय मूलद्रव्योंके समुदाय अर्थात् मूलद्रव्योके मेलसे बने हुए आहार और औपधके लिए उपयुक्त कार्यद्रव्य हो। पुन चाहे वे प्राकृतिक ससर्ग वा सगठनजन्य द्रव्यसमाहार हो वा कृत्रिम। यह भी प्रकट

---

१ मिज़ाजका धात्वर्थ समवाय, सयोग, मिश्रण और ससर्ग हैं, परतु परिभाषामें उस गुणातरको कहते हैं, जो चतुर्भूतोंके समवायसे उस ससृष्ट द्रव्यमें उत्पन्न हो जाता है (द्रव्यगुण, ससर्गज गुण, सयोगज गुण (इम्तिज़ाज = मिलना—Constitution)।

२ भारतीय दर्शनमें लिखा है—"द्रव्याणि द्रव्यातरमारभन्ते गुणाश्च गुणान्तरम्" (वै० द० अ० १ आ० १ सू० १०)। चरकमें चक्रपाणिदत्त लिखते हैं—"द्रव्याणामिति वक्तव्ये स्वाभाविकानामिति यत् करोति, तेन उत्पत्तिकाले जनकभूतै स्वगुणारोपणम्।"

है कि औपधरूपेण हम जिन द्रव्योका उपयोग किया करते हैं, वह अधिकतया मूलद्रव्योके सयोगसे ही निर्मित (कार्य-द्रव्य) हुआ करते हैं। मूलद्रव्य[1] क्वचित् ही उपयोग किये जाते हैं।

द्रव्य (औपध)के (गुणप्रकृति) स्वरूप मिज़ाजके ये दो भेद है—

(१) वह ससृष्ट अर्थात् ससर्गजन्य (इम्तिज़ाजी) आकृति (स्वरूप) और गुण जो द्रव्यमें कतिपय महाभूतो (मूलद्रव्यो)के समवाय ससर्ग वा सयोग (इम्तिज़ाज वा इम्तिमाज)से, उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाके उपरात ससृष्ट द्रव्य (मुम्तज़िज़)में प्राप्त होते हैं। इसीको मिज़ाज असली, मिज़ाज तबई और मिज़ाज अव्वली कहते हैं। आयुर्वेदमें इसे हम प्रथम वा आद्यप्रकृति, मूलप्रकृति वा केवल प्रकृति (प्रकृतिभूतगुण, मूलगुण) कह सकते हैं।[2] इस प्रकारके द्रव्य मुफरदुल्कुवा (एकवीर्य वा अमिश्रवीर्य) होते हैं। द्रव्यका उक्त मिज़ाज (गुण) द्रव्यकी आत्मा (नफसे ज़ात) प्रकृतिभूत अर्थात् द्रव्यके आत्मस्वभावके विचारसे है। इसीके कारण प्रत्येक औषधद्रव्यको भिन्न-भिन्न स्वरूपविशेप वा जात्यभिव्यञ्जक रूप (सूरते नौइय्या) प्राप्त होता है, और इसी हेतु एक द्रव्य दूसरेके पृथक समझा जाता है। इसी मिज़ाजके कारण उष्णता-शीतलता-स्निग्धता-रूक्षता प्रभृति प्राथमिक गुण अर्थात् भूतगुण (क़ैफ़िय्यात-अव्वलिय्या) प्रगट होते हैं।

(२) मिज़ाज गैरतबई, मिज़ाज सानवी, मिज़ाज सानी (द्वितीय प्रकृति वा गुण अर्थात् गौणगुण)। द्रव्यका उक्त मिज़ाज जीवित मानवशरीरमें प्रभाव करनेके विचारसे है। यह मिज़ाज उन औषधद्रव्योमें पाया जाता है, जिनके उपादान साधनभूत घटको (अज्ज़ाऽतरकीबी)में प्रथम प्रकृति (मिज़ाज अव्वली) वर्तमान होती है अर्थात् उक्त औपधद्रव्य ऐसे विभिन्न (गुणविशिष्ट) वीर्य और घटको (जवाहिर और अज्ज़ाऽ)के समवायसे सघटित होते हैं, जो स्वय अपना पृथक्-पृथक् मिज़ाज (गुण) रखते हैं, जैसे—किसीका उष्णता, किसीका शीतलता, किसीका स्निग्धता और किसीका रूक्षता आदि उत्पन्न करना। सुतरा प्रथमगुणो अर्थात् भूतगुणो (कैफिय्याते अव्वली)के ससर्गसे—चतुर्भूतो के समवायसे बने द्रव्य (मुरक्कबात उन्सुरिया)में मिज़ाज (गुण) और तदुपरात द्वितीय गुण वा गौण गुण (क़ैफ़िय्यात सवानी या सानवी) अर्थात् गध और रस (स्वाद) आदिकी उत्पत्ति होती है। द्वितीय प्रकृति (मिज़ाज सानवी)का कर्म उन घटको (प्रथम मिज़ाज प्राप्त)के कर्मसे भिन्न होता है। जैसे—कब्ज करना (सग्रहण) दोषो (माद्दों)-को एक स्थानसे दूसरे स्थानकी ओर फेर देना (इमाले मवाद्) इत्यादि। तात्पर्य यह कि विभिन्न मूलद्रव्यो वा कारण-द्रव्यो (उन्सुरो)[3] के समवाय वा ससर्ग (इम्तिज़ाज) हो चुकने के उपरात द्वितीय प्रकृति (मिज़ाज सानवी) प्राप्त होती है। यूनानी वैद्यगण इसी द्वितीय प्रकृति[4] वा मिज़ाजको लेकर ही औषधद्रव्योका निरूपण करते हैं। उदाहरणत यदि कोई यह कहता है कि अमुक द्रव्य उष्ण हैं तो उससे यह समझा जाता है कि उक्त द्रव्य शरीरमें उष्णता उत्पन्न करता है, जो प्राकृतिक शारीरोष्मासे अधिक और भिन्न होती है। अथवा जब कहते हैं कि अमुक द्रव्य शीतल है तब उसका भी यही अर्थ होता है कि उससे मानवशरीरमें इतनी शीतलता उत्पन्न होती है जो उसके शरीरकी वर्तमान शीतलतासे अधिक होती है। प्राय ऐसा होता है कि औषधद्रव्यका जो प्रथम प्रकारका मिज़ाज होता है वह मानव-

---

१. कार्यद्रव्यरूप प्रसिद्ध स्थूल जल, अग्नि, वायु और पृथ्वी भी चतुर्भूतोंसे (आयुर्वेदके अनुसार आकाश-सहित पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतोंसे) उत्पन्न चातुर्भौतिक (आयुर्वेदके अनुसार पाञ्चभौतिक) द्रव्य हैं। अत. द्रव्यगुणशास्त्रमें उनके भी गुणकर्म लिखे गये है।

२ चक्रपाणिदत्त इसके सम्बन्धमें लिखते हैं—"द्रव्याणामिति वक्तव्ये स्वाभाविकानामिति यत् करोति, तेन उत्पत्तिकाले जनकभूते स्वगुणारोपणम्।"

३ यहाँ इससे आधारमूलक उपादानसाधनभूत कारणद्रव्य अभिप्रेत हैं, जिनका अमिश्र वा तत्त्वरूप (बसीत) होना जरूरी नहीं है।

४. आयुर्वेदप्रतिपादित 'गुण' अर्थात् वैद्यकीय गुण उक्त 'द्वितीय मिजाज' ही है। इसे 'प्रकृति' भी कहते हैं।

शरीरमें कार्य करनेके विचारसे दूसरे प्रकारका होता है। अस्तु, यह संभव है कि प्रथम विचारसे जिस द्रव्यका मिज़ाज शीतल हो, वह द्वितीय विचारसे उष्ण हो। इसका कारण यह है कि किसी औषधद्रव्यके उष्णताजनक आग्नेय उपादानकी यह अवस्था होती है कि जब वह मानवशरीरमें प्रविष्ट होता है तब नष्ट हो जाता है और शीतलताजनक अप्राप्य या पार्थिव घटक शेष रह जाता है। अत. मूलप्रकृति (मिज़ाज असली) उष्ण होने पर भी द्वितीय विचारसे शीतल हो जाती है। इसलिए कह सकते हैं कि धनियेके पत्तोंकी वास्तविक उष्णता शारीरिक ऊष्माकी अपेक्षया अधिक है। परंतु मानवशरीरमें प्राप्त होनेके उपरांत शीतल हो जाता है जिसका कारण यह है कि जब मनुष्य उसे भक्षण करता है तब शारीरिक ऊष्मा (हरारते गरीज़ी) धनियेकी उष्णताको विलीनीभूत कर देती है और उसकी शीतलता अवशेष रह जाती है। इसलिए शीतल कर्म प्रकाशित करता है। इसी तरह यह भी हो सकता है कि औषधद्रव्यकी मूलप्रकृति (मिज़ाज असली) शीतल हो, पर मानवशरीरमें प्राप्त होकर उष्णताका प्रकाश करे। उदाहरणत किसी औषधका शीतल उपादान (जुज़्व सर्द) ऐसा स्थूल एव सान्द्रीभूत (कसीफ व गलीज) हो कि शरीरकी प्रकृतोष्मा अर्थात् कायाग्नि (हरारते गरीज़ी)से किसी प्रकार प्रभावित न हो सके। प्रत्युत उसका आग्नेय घटक (जुज़्व गर्म) प्रभावित होकर नष्टप्राय हो जाय। उसमें स्नेह (चिकनाई) हो तो शीतल होने पर भी उष्णता उत्पन्न करेगा। क्योंकि उसका स्नेह प्रज्वलित होकर उसे उष्ण कर देगा। यही कारण है कि वसा या चर्बी यद्यपि शीतल होती है, पर शारीरिक ऊष्मासे प्रज्वलित होकर (भडककर) स्वय उष्णता उत्पन्न करती है। इसीसे कहते हैं कि वसा उष्ण है। यह कथन मानवशरीरकी अपेक्षया (विचारानुसार) है। यही कारण है कि जब जातीय साम्य (एतदाल नौई)का वर्णन होता है, तब कहते हैं कि शशा (खरहा)का मिज़ाज मानव प्रकृतिसे शीतल है। यह कथन अन्य जातियोंकी मूलप्रकृतियो (ज़ातों)की अपेक्षया है। जब मानवशरीरमें शशकमासके कर्मका विचार उपस्थित होता है, तब कहते हैं कि शशक (खरहा) उष्ण है। यही दशा गर्दभ-मासकी है।

प्रथम मिज़ाज मूल वा प्रकृतिभूत (असली, तबई या नौई) है। यह चतुर्महाभूतोंके समवाय और परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया, अनुग्रह और अन्योन्यानुप्रवेश करने (फेल व इन्फ़ेआल)से प्राप्त होता है। द्वितीय मिज़ाज सापेक्ष (ऐतबारी) है। यह द्रव्यका वह मिज़ाज (प्रकृति) है जो चतुर्भूतोंके समवायसे सघटित उपादानसाधनभूत मूलद्रव्यों (वीर्यों)की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रियासे उत्पन्न होता है। अत यह वह मिज़ाज है जो स्वयं उसी द्रव्यकी आत्मा (ज़ात)से जिसका वह मिज़ाज है, उत्पन्न होता है। प्रथम मिज़ाजको जो चतुर्भूतोकी क्रिया-प्रतिक्रियासे आविर्भूत होता है, मिज़ाज अव्वली (मूलप्रकृति) कहते हैं, और द्वितीय प्रकारके मिज़ाजको सापेक्ष गुण वा द्वितीय प्रकृति अथवा गुण[1] (मिज़ाज सानी) कहते हैं।

इनमें मूल-प्रकृतिके कारणद्रव्य अग्नि, जल, वायु और पृथ्वी ये चतुर्भूत हैं और द्वितीय प्रकृति वा गुणके मूलद्रव्य (कारणद्रव्य) या 'समवायीकारण-उपादान (अरकान या अनासिर[2]) चतुर्महाभूतोंके समवायसे बने प्रथम-प्रकृतिविशिष्ट द्रव्य हैं। अत चिकित्सामें उपयुक्त कार्यद्रव्यो वा औषधद्रव्योंके कारणद्रव्य (अनासिर) वस्तुत ये ही उपादान (अज्ज़ाऽ) हैं जो स्वय ससृष्ट (मुरक्कब) हैं और जो क्रिया-प्रतिक्रियाके अनतर एक नवीन ससर्गज गुणातर (इम्तिज़ाजी कैफ़िय्यतें)—मिजाज सानी (द्वितीय प्रकृति वा गुण) आविर्भूत कर देते हैं। जिस तरह मूलप्रकृति (प्रथम मिज़ाज)के उपादान, कारणद्रव्य या मौलिक (अनासिर) द्रव्यमात्र—सपूर्ण ससृष्टद्रव्य (तमाम मुरक्कबात या मुम्तज़िज)में अपने जातिस्वरूप (विशेष)पर स्थिर रहते हैं, उसी तरह द्वितीय प्रकृति के उपादानसाधनभूत घटक (अनासिर) भी उक्त ससृष्टद्रव्य (मुरक्कब)में अपने जातिस्वरूपपर स्थिर रहते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण दूध है।

---

१. यूनानी द्रव्यगुणप्रतिपादित 'मिजाज सानी' आयुर्वेदोक्त 'गुण' (वैद्यकीय) वा प्रकृति है। भेद केवल यह है कि यूनानीमें कैफ़िय्यतकी भाँति मिजाज सानी (तबीअत) भी केवल चार होते हैं।

२ यहाँ मूलद्रव्य या अनासिरसे कारणद्रव्य या समवायीकारण अर्थात् उपादानसाधनभूत द्रव्य अभिप्रेत है, जिनका महाभूत वा तत्त्वरूप (बसीत) होना अनिवार्य नहीं है।

दूध वस्तुत एक विशेष आप्य तत्त्व, दूसरे स्नेह और तीसरे पनीर इन उपादानत्रयसे ससृष्ट वा सघटित (मुरक्कब) है। दूधके विश्लेषण और विघटन (तहलील व तजुज़िया)से ये उपादान त्रितय पृथक्-पृथक् प्राप्त हो जाते है। अस्तु, प्रथम यदि द्वितीय प्रकृतिके उपादान (अनासिर) अपने जातिस्वरूपोपर स्थिर न रहते, तो दूधका वियोजन उक्त उपादानोके रूपमें हो सकता। द्वितीय यह कि उक्त द्रव्यका विश्लेपण (इनहलाल) अग्नि, जल, वायु और पृथिवीके रूपमें होता। उक्त अवस्थामें उसका मिज़ाज अव्वली (प्रथम प्रकृति) होता नकि सानवी (द्वितीय प्रकृति)। यह भी अनिवार्य है कि उभय मिज़ाजोंके कारणद्रव्य (अनासिर) अत्यत सूक्ष्म न हो। कारण अत्यत सूक्ष्म होनेसे स्वरूप मिथ्या हो जाता (स्वरूप नही बनता) है।

वक्तव्य—इस विपयमें मतभेद है कि मिश्रण वा सयोग (इम्तिज़ाज)में मूलद्रव्य अपने गुण-कर्मका परित्याग करते है या नही। यूनानी दार्शनिकोंके एक दल वा समुदाय (असहावे खलीत)का यह मत है कि मूलद्रव्य अपने गुणोका परित्याग नही करते। उनके मतानुसार मूलद्रव्योका ससर्ग वा सयोग (इम्तिज़ाज) शुक्त और मधुके मेल जैसा है और मिश्रण (मज़ीज)का गुण रखता है जिसमें मूलद्रव्योके समस्त लक्षण (खवास) शेप रहते हैं। परतु स्वतत्र यूनानी वैद्योने उक्त सिद्धातका खडन कर दिया है। उनके मतसे मूलद्रव्योके उक्त सयोग (इम्तिज़ाज)में वह (मूलद्रव्य) अपने गुणोका परित्याग कर देते हैं और एक माध्यमिक गुण वा नवीनगुण—गुणातर (दरमियानी कैफ़ियत या नई कैफ़िय्यत मिज़ाजिया)को प्राप्त करते हैं। प्राचीन यूनानी दर्शनमें इस विपयमें भी मतभेद है कि ससृष्ट (मुरक्कब)में मूलद्रव्य शेष रहते हैं अथवा नही। एक वर्गके मतसे मूलद्रव्य अपने स्वरूपोका परित्याग कर देते हैं। परतु शेखुर्रईस और प्राय दार्शनिको-विद्वानोका यह मत है कि ससृष्टद्रव्य (मुरक्कब)में मूलद्रव्य शेष रहते हैं। इसके लिए वे प्रयोग, परीक्षण और प्रत्यक्ष अनुभव (तजरिवा)को प्रमाण मानते हैं। अस्तु, नलिकायत्र (करअ अबीक)के द्वारा संसृष्टद्रव्यो (मुरक्कबात)का पृथकीकरण (तजुज़िया) करने पर उनमें मूलद्रव्य पाये जाते हैं। उक्त मतके अनुसार यह सिद्ध है कि जाङ्गम और स्थावर पदार्थ योग हैं न कि मिश्रण तथा योगोंमें मूलद्रव्य अपने स्वरूपो (सूरते नौइय्या)का परित्याग नही करते। आधुनिक रसायनशास्त्रसे भी जहाँ उपर्युक्त मतका समर्थन होता है वहाँ मत (सम्प्रदाय) विशेष (तशाबोह हिस्सी)के समर्थक मतोका खडन भी हो जाता है। क्योंकि उपर्युक्त कथनके विरुद्ध इस मतके अनुसार जाङ्गम और स्थावर पदार्थ यौगिक नही, अपितु मिश्रण हैं। इसी प्रकार जो दार्शनिक इस मतके अनुयायी हैं कि यौगिकोंमें मूलद्रव्य अपने जातिस्वरूप (सूरते नौइय्या)का परित्याग कर देते हैं, उनके मतका भी खडन हो जाता है।

उपर्युक्त प्रमाणोसे जब यह सिद्ध हो गया कि उक्त प्रकारके औषधद्रव्योंके समस्त उपादान (अजज़ाऽ) अपने जातिस्वरूप पर स्थिर रहते हैं, तब यह भी स्पष्ट हो गया कि उक्त घटको और उपादानोंसे विभिन्न गुण-कर्म भी अवश्य प्रकट होगे। इसी कारण ऐसे द्रव्योको मुरक्कबुलकुवा (अनेकवीर्य, बहुवीर्य या समिश्रवीर्य) कहा जाता है, जिसका यह अर्थ है कि ये द्रव्य कतिपय गुणों (कुव्वतो) और वीर्यो (जौहरो) के समाहार हैं अर्थात् उनके समवायसे ससृष्ट (मुरक्कब) है। यह गुण-कर्म न्यूनाधिक विभिन्न (या परस्परविरोधी) होते हैं। यहाँ तक कि उक्त भिन्नता कभी-कभी विरोधकी सीमातक पहुँच जाती है। उदाहरणत एक वीर्य (जौहर) यदि वाहिनियोंको सकुचित करनेवाला (काबिज उरूक) होता है, तो दूसरा वीर्य (जौहर) वाहिनीविस्फारक (मुफत्तेह उरूक)।

वक्तव्य—मुरक्कबुल्कुवा (बहुवीर्य)से यूनानी वैद्योको वह औपधद्रव्य अभिप्रेत है जिसका वीर्य (जौहर) अनेक उपादानोंसे ससृष्ट हो और उनमेंसे प्रत्येक उपादानकी प्रकृति भिन्न हो। ऐक्य-रूपलाभ और सगठनोपरात इस प्रकार सम्यग्रूपसे समवेत न हो गया हो कि आमाशयमें प्राप्त होनेके उपरात वे उपादान परस्पर पहिचाने और भिन्न न किये जा सकें और एक ही कर्म प्रकाशित करें। प्रत्युत आमाशयमें उसके उपादान वियोजित होकर प्रत्येक अपना कर्म प्रकाशित करे और उन उपादानोके कारण भिन्न-भिन्न कर्म प्रकाशमें आयें तथा उपादानोंके माद्देकी स्थूलता (कसाफत), सूक्ष्मता या तरलता (लताफत), सगठन (तरकीब) और समवाय (इम्तिज़ाज)के अनुकूल कर्म प्रकाशित

हो। अस्तु, सूक्ष्ममाद्दानिर्मित उपादानका कर्म शीघ्र (तीक्ष्ण-आशु) प्रकाशित हो और स्थूलमाद्दाभूत उपादानका विलंब (मद)से। इसी आधारपर समवाय (इस्तिज़ाज)का अनुमान कर लेना चाहिए। जैसे—जदवार, चोबचीनी फादेजहर हैवानी, गुलाबपुष्प और प्राय विषघ्न ओषधद्रव्य (अद्विया फादजहरिय्या) और समस्त वाजीकर ओषधद्रव्य, जैसे—शकाकुलमिश्री, बहमन, बूजीदान, जायफल, जरावद (ईश्वरमूल) और सोंठ। इस प्रकारके वानस्पतिक द्रव्योंमें मूलभूतद्रव (रतूबत फज्लिय्या)[1] प्रसादाद्रव या मूलभूत द्रवों (रतूबत असलिय्या)मे[2] बलवान् होते हैं। इसलिए उन्हें कीड़े खा जाते हैं और वे बिगड़ जाते हैं।

(३) जौहर वा वीर्य।

शैखका वचन है—यूनानी वैद्य (अतिब्बा) जब किसी ओषधद्रव्यके विषयमें यह कहे कि "उसका वीर्य (कुव्वत) कतिपय विरोधी वीर्योंसे समृष्ट (मुरक्कब) है" तब उसका अर्थ यह न समझना चाहिए कि उसका एक ही उपादान (जुज़) उष्णताका भी आश्रयभूत है और शीतलताका भी, और उसी एक उपादानमें उभय कर्म पृथक्-पृथक् निष्पन्न होते हैं, क्योंकि ऐसा होना (एक ही उपादानसे एक समयमें दो विरोधी गुणकर्मोंकी निष्पत्ति) असंभव है। वस्तुस्थिति यह है, कि उक्त उभय कर्म उसके दो भिन्न-भिन्न उपादानोंके आश्रित होते हैं जिनसे उक्त ओषधद्रव्य सघटित वा समृष्ट (मुरक्कब) है।

जौहर फअ्आल (प्रधान तत्त्व वा प्रधान वीर्य)—ऐसे ओषधद्रव्योंमें विविध क्रियाजननसमर्थ सारभाग अर्थात् जौहर (सत्त्व वा वीर्य) साधारणतया न्यूनाधिक हुआ करते हैं। उनमें जो जौहर बलवान्, वीर्यवान् और विशेष शक्तिसपन्न होता है, उक्त ओषधद्रव्यके उपयोगसे उसी जौहरका कर्म अभीष्ट होता है। उसे जौहर फअ्आल (वा जौहर मुवस्सिर) और जौहर असली कहा जाता है (आयुर्वेदप्रतिपादित वीर्य[3] उक्त जौहर है। अस्तु, जौहर फअ्आलके लिए 'प्रधान वीर्य' वा 'प्रधान सत्त्व' या केवल 'वीर्य' सज्ञाओंका उपयोग उचित प्रतीत होता है।), जैसे—अहिफेन जो पोस्तेका दूध या सत है, सत्त्व होनेपर भी यह अनेक जौहर (सत्वों)से सयुक्त है। किंतु उसका एक स्वप्नजनन और वेदनास्थापन (अहिफेनीन) जौहर भूतप्रसादातिशयरूप (क्रिया जननसमर्थ) सारभाग वा प्रधान सत्त्व या प्रधानवीर्य (जौहर फअ्आल) कहलाता है। उसीको लेकर अहिफेन (अफीम)का अधिक उपयोग किया जाता है। इसका द्वितीय जौहर (वीर्य) घोर वामक है जिसको लक्षणानुसार 'वामक अहिफेन' कहा जाता है। इसी तरह इसमें और भी अनेकानेक सत्त्व या वीर्य (जवाहिर) और उपादान पाये जाते हैं।

प्राकृतिक ओषधद्रव्य अधिकतया मुरक्कबुल्कुवा (समिश्रवीर्य) ही होते हैं—ससारके अधिकांश वानस्पतिक और जाङ्गम ओषधद्रव्य जो निसर्गत प्राप्त होते हैं,[4] वस्तुत विभिन्न सत्त्वों (जवाहिर) और उपादानों (अज्ज़ाअ)-से समृष्ट ही हुआ करते हैं जिनको हम विश्लेषण (तहलील और तजुज़िया)के विविध साधना द्वारा पृथक् वा विशिष्ट

---

१ वह द्रव या रतूबत जो ओषधद्रव्यके सकल उपादानोंमें सम्यक् रूपसे मिश्रीभूत (समवेत) न हुई हो। अस्तु, अल्पकालमें उक्त द्रवका कतिपय भाग विलीनप्राय हो जाता है, जिससे उसका काष्ठभाग (जिर्म) फट जाता है और द्रवके कतिपय भागोंमें प्रकोथ उत्पन्न होकर कीड़े बन जाते हैं जो धीरे-धीरे काष्ठभाग (जिर्म)को खाकर नष्ट कर देते हैं। अस्वाभाविक द्रव।

२ स्वाभाविक या सहज द्रव।

३ वीर्यका स्वरूप बतलाते हुए शिवदाससेन लिखते हैं—"वीर्यं शक्ति सा च पृथिव्यादीना भूताना य सारभागस्तदतिशयरूपा बोध्या।" कर्मलक्षण वीर्य। सत्त्व।

४ उदाहरणत पुष्प, फल, त्वक्, बीज और समग्र पौधा (पचाङ्ग) तथा प्राणिज ओषधद्रव्य, जैसे—कस्तूरी, अबर, गुदवेदस्तर इत्यादि। इनमें कदाचित कोई ऐसा उदाहरण एक भी न मिल सके जिसके विषयमें यह विश्वासपूर्वक कहा जा सके कि वह विभिन्न वीर्योंसे ससृष्ट नहीं है। कदाचित् ऐसे अलभ्य

करनेका यत्न किया करते हैं। उदाहरणत दूधसे घी, पनीर, जलाश और शर्करा (दुग्धशर्करा-सुक्करेलब्नी) इत्यादि निकाली जाती हैं। गन्ने, अगूर, शरकद और खजूर इत्यादि से शर्करा प्राप्त की जाती है।

बहुसख्यक पार्थिव द्रव्य भी जबतक उन्हें कृत्रिम साधनोंसे शुद्ध नही कर लिया जाता, विभिन्न उपादानोंसे सयुक्त ही हुआ करते है।

नि सार भाग, काष्ठभाग या सिट्ठी (सुफ्ल-फोक)—हम जब किसी बहुवीर्य (मुरक्कबुल्कुवा) औषधद्रव्यके प्रधानवीर्य—सक्रिय सत्त्व या द्रव्याश (जौहर मुवस्सिरा)को प्राप्त करना चाहते हैं, चाहे हम उसे अमिश्र रूपमें प्राप्त कर सकें या समिश्र रूपमें, तब उसे हम जल आदिमें भिगो देते हैं या क्वाथ करते है। तदुपरात निचोडकर हम उसका स्वरस (उसारा) या तेल आदि प्राप्त करते है या अर्क परिस्रुत करते हैं। तात्पर्य यह कि हम इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए विभिन्न साधन काममें लाते हैं, जिससे हम तज्जात सारभाग वा वीर्यभाग (मुवस्सिर अज्जाऽ) अमिश्र वा समिश्र रूपसे प्राप्त कर लेते हैं। उसे पृथक् कर लेनेके उपरान्त एक वस्तु जो अविलेय रूपमें शेष रह जाती है, उसे हम नि सार भाग वा सिट्ठी (सुफल) कहा करते हैं। यदि गवेषणात्मक सूक्ष्म दृष्टिसे निरीक्षण किया जाय, तो यह केवल हमारी एक कल्पना है। वरन् काष्ठभाग वा सिट्ठी (फोक) भी एक सत्त्व वा जौहर है, जो अन्य समयमें अन्य प्रयोजनके साधनार्थ उपयोग की जा सकती है और वह अन्यान्य द्रव्यो में विलीन हो सकती है।

(४) द्रव्यका प्राकृतिक और अप्राकृतिक (कृत्रिम) सगठन।

इस सगठनके, जिसमें कतिपय ससृष्ट उपादान सम्मिलित होते है (अर्थात् औषधद्रव्योकी द्वितीय प्रकृति मिज़ाज सानीके) यह दो भेद हैं

(१) **प्राकृतिक सगठन वा प्रकृति (तरकीब तबई वा मिज़ाज तबई)**—वह है जो प्रकृति (तबीअत)की ओरसे प्राप्त होता है। जैसे—दूधका सगठन जो वास्तवमें निसर्गत एक विशेष आप्य तत्त्व (माइय्यत), स्नेह और पनीरके[1] समवायसे प्राप्त हुआ (मम्जूज़) है। इन तीनोमेंसे प्रत्येक उपादान भिन्न-भिन्न महाभूतोंके समवायसे बना वा ससृष्ट (मुम्ज़िज, मुरक्कब) है और अपना एक विशेष मिज़ाज (गुण-प्रकृति) रखता है। ऐसे द्रव्योको प्राकृतिक कार्य-द्रव्य (मुरक्कब तबई) कहा करते है। यह द्वितीय प्रकृति (मिज़ाज सानी) प्रकृति(तबीअत) की क्रियासे होती है न कि कृत्रिम सगठन (सिनाअत) की क्रियासे।

(२) **अप्राकृतिक (वा कृतिम) सगठन वा प्रकृति (तरकीब सुनाई वा मिज़ाज सुनाई)**—उदाहरण-स्वरूप प्राय योगौषधो (अदविया मुरक्कबा) का सगठन (तरकीब) जो औषधालयोंमें प्राकृतिक औषधद्रव्यों (अमिश्र औषधद्रव्यो)के ससर्ग (योग)से या योगौषधोको दोबारा मिलानेसे प्राप्त होता है, जैसा तिरियाक इत्यादि। तिर्याकके प्रत्येक उपादानका एक भिन्न गुण-स्वभाव होता है। इनके योग वा सगठनमें न्यूनाधिक विभिन्न औषधद्रव्य सम्मिलित होते हैं जिनमेंसे प्रत्येक योग (दवा) कारणद्रव्यों (अनासिर)के समवाय या सगठनके विचारसे अपना एक विशेष मिज़ाज (प्रकृति) रखता है। परतु जब समस्त औषधद्रव्य (उपादान) ससृष्ट वा समवेत हो जाते है, तब योगसमुदाय (मजमूआ मुरक्कब)में एक नवीन ससर्गज गुण-आकृति अर्थात् समिश्र गुण-प्रकृति (इम्तिज़ाजी हय्यत वा दूसरा मिज़ाज) उत्पन्न हो जाती है। चूँकि उसमें अनेक उपादान अपने जातिस्वरूप पर शेष रहते हैं, इसलिए वे अपना-अपना गुण-कर्म प्रकाशित कर सकते हैं। इसी कारण कभी ऐसा भी होता है कि एक ही औषधसे विभिन्न काल वा विभिन्न शरीरावयवमें परस्पर विरोधी एव भिन्न गुण-कर्म प्रकाशित होने लगते हैं। एक ही औषधद्रव्यका एक उपादान यदि उष्णताजननका कारण होता है, तो दूसरा उपादान शैत्यजननका। परतु यह उस समय होता है जब

एव दुष्प्राप्य उदाहरण खनिज द्रव्योंमें उपलब्ध हो सकें, जो विभिन्न कर्मोत्पादक उपादानोंसे ससृष्ट होनेके स्थानमें एकवीर्य (मुफ्रदुल्कुवा) हों।

१ यह प्रगट है कि दूध के ससृष्ट उपादानत्रय (स्नेह, पनीर और आप्य उपादान)के गुण-कर्म एक दूसरे से भिन्न हैं।

कि उक्त औषधके उपादान कर्मके विचारसे एक दूसरेके विरोधी होते हैं। अस्तु, गुलाबके भीतर यही गुण वर्तमान होता है। इसमे एक वीर्य (जौहर) उष्ण है और दूसरा वीर्य (जौहर) शीतल (इसी प्रकार इसमें एक वीर्य मृदुसारक) (मुलय्यिन) है और दूसरा सग्राही (काबिज)। रेवदचीनी प्रथमत रेचन कर्म करती है और अतमें सग्राही (कब्ज) कर्म, परतु वायुप्रणालियाँ (उरूक खश्न) इससे विस्फारित हो जाती है।

विरल और अविरल (घन) सयोगके विचारसे द्वितीय प्रकृति (मिज़ाजसानी)के भेद —

यूनानी हकीमोने विरल और अविरल सयोगके विचारसे द्वितीय प्रकृति (मिज़ाज सानी)के निम्न दो भेद किये है

(१) अविरल सयोग वा घन द्वितीय प्रकृति (मिज़ाजसानी मुस्तहकम वा कवी)—

इस प्रकारके मिज़ाज सानीके ससृष्ट वा समवेत उपादान इतनी दृढतापूर्वक परस्पर सहत, सश्लिष्ट एव एकत्रीभूत (घनीभूत) होते है कि उनका वियोजन शरीरकी प्रकृतोष्मा (हरारते गरीज़ी)के लिए दुष्कर है। यही नही अपितु अग्निद्वारा तीव्र उत्ताप पहुँचाने पर भी वे पृथग्भूत नही होते। अस्तु जलमें क्वथित कर उन्हें पृथक् करनेका विचार स्वप्नवत् है। इस प्रकारके मिज़ाज (समवाय वा सयोग)को अविरल सयोग अथवा घन द्वितीय प्रकृति (मिजाज सानी मुस्तहकम) कहते है। सुतरा पीतल इसी प्रकारका ससृष्ट द्रव्य (मुरक्कब) है, अर्थात् पीतल जस्ता और ताम्रसे ससृष्ट है और उसका यह समवाय-द्वितीय प्रकृति इतना सुसहत एव घनीभूत होती है कि उक्त उपादान अग्निपर द्रवीभूत करनेपर भी पृथकीभूत (विच्छिन्न) नही होते।

यूनानी वैद्य इस प्रकारके मिज़ाजका उदाहरण सुवर्ण बतलाते हैं। उनके[1] मतानुसार सुवर्ण उत्तम एव शुद्ध पारद और शोख रगकी गधकका यौगिक है और इसका उक्त समवाय (मिज़ाज सानी) इतना सुसहत, अविच्छेद्य और अविरल होता है कि इसके उक्त उपादान अग्निके द्वारा भी वियोजित नही किये जा सकते। परतु सुवर्ण यौगिक है, कि अयौगिक (बसीत) इस विषयमे यूनानी तज्ज्ञोमें मतभेद है। उत्तरकालीन विद्वानोका एकवर्ग इसको अयौगिक स्वीकार करता है और सत्य एव विज्ञानसम्मत बात भी यही प्रतीत होती है। सहस्रश रसायनविद्याके आचार्योंने इस बातका अथक प्रयत्न किया कि गधक और पारदसे सुवर्ण बनाया जाय, किंतु अद्यावधि यह बात सुननेमें नही आयी कि कोई इस प्रयत्नमें सफलमनोरथ हुआ हो। इसी कारण इस प्रकारके मिजाजका उदाहरण पीतल दिया गया है, जिसके मिजाजसानी (द्वितीय प्रकृति)में किसी प्रकारका सदेह नही हो सकता।

(२) विरलसयोगी द्वितीय प्रकृति (मिज़ाजसानी रिख्व)—

विरलसयोगी वा मृदुप्रकृतिनिष्ठ औषधद्रव्य भक्षणोत्तर शरीरकी प्रकृतोष्माके प्रभावसे अपने मूलद्रव्यो या

---

१. किसी-किसीके अनुसार इसके स्निग्ध और रूक्ष उपादानका सयोग इस सीमाको पहुँच गया है कि अग्नि उन्हे पृथक् करनेमें विवश है। जब अग्नि सुवर्णके जलीय अशको वाष्पीभूतकर उड़ानेके लिए प्रवाहित करना चाहती है तब उसके समस्त पार्थिव उपादान ऐसी दृढतापूर्वक मिश्रीभूत होते हैं, कि अग्नि इस बातमें विवश होती है कि सुवर्णमेंसे पार्थिव उपादानोको अध क्षेपितकर जलाशको पृथक् कर उड़ादे। यद्यपि काष्ठ, वग और नागमें वह ऐसा कर सकती है, अस्तु, इन वस्तुओंको जलानेसे इनमेंसे जलाश पृथक् होकर उड़ जाता है और पार्थिव उपादान अवशेष रह जाते है तथा काष्ठ और राँगे आदिका जाति स्वरूपनष्ट हो जाता है। ऐसे द्रव्य जब शरीरमें पहुँचते हैं और यदि वे अनुष्णाशीत (मोतदिल) होते हैं, तब शरीरमें उस समयतक शेष रहते हैं कि शारीरिक ऊष्मा उसके स्वरूपको परिवर्तित कर देती है और विकृत कर देती है। यदि उसमें कोई गुण प्रबल है तो उस दशामें भी उस समय तक शेष रहते हैं कि उसके स्वरूप शारीरिक उष्मासे विकृत हो जायें (तुहफतुल् अदविय्या)।

उपादानोमे वियोजित हो जाते हैं और उनमे कतिपय उपादानोंसे कतिपय उपादान विनष्टप्राय और भिन्न हो जाते हैं। उनमेसे प्रत्येक उपादान एक भिन्न कर्म करता है जिसमें एक कर्म दूसरेका विरोधी होता है अर्थात् उष्णताजनक और शीतलताजनक उपादान वीर्यभाग (कुव्वते) पृथक्-पृथक् होते हैं। इसी प्रकार तत्स्थ सग्रहणीय और विरेचनीय वीर्यो (कुव्वतो)के उपादान (अज्ज़ाऽ) भिन्न-भिन्न होते है जिनमे उक्त औषधद्रव्य समृष्ट होता है। उक्त उपादानद्वय आप्य और पार्थिव है। पार्थिव उपादानमे वह कब्ज उत्पन्न करता है और आप्यसे विरेक लाता है। उदाहरणत मसूर, करमकल्ला और चुकदर विरेक भी लाते है और धारक (काबिज) भी है। उनमे विरेचनीय कर्म आप्य तत्त्वके आश्रित और सग्रहणीय कर्म पार्थिव तत्त्वके अधीनस्थ है। उक्त द्रव्यत्रय सग्राही पार्थिव सत्त्व (जौहरअरज़ी काबिज) और आग्नेय तरलक्षारसत्त्व (माद्दे लतीफ बोरको नारो)के यौगिक है। अस्तु, जब इनको जलमे क्वथित करते है तब क्षारसत्त्व (जौहर शोर) उष्ण जलमें निकल आता है। इसलिए इनका काढा विरेचक होता है और स्थूल सग्राही पार्थिव मिट्टी (जिर्म) अवशेष रह जाती है। यदि काढा पिया जायगा तो विरेक आने लगेंगे। यदि काढा फेंककर सिट्ठी खायी जायगी तो मलावष्टभ (कब्ज़) उत्पन्न हो जायगा। इसका कारण यह है कि इनका सयोग या सगठन अविरल वा घन (अविच्छेद्य) नही होता। समस्त औषधद्रव्य ऐसे ही उपादानो या घटकोंसे ससृष्ट ओर सघटित होते हैं। उनमे कतिपय औषधद्रव्य ऐसे हैं कि उनमे विरोधी गुण (कुव्वतें) निपातमें (बिल्फेल) वर्तमान होते है और उनके विभिन्न गुणस्वभावनिष्ठ सत्त्वोमे मेल (इम्तिज़ाज) नही होता। इस प्रकारके औषधद्रव्यके भी ये दो भेद है—प्रथम वह जिनके विभिन्न गुण स्वभावनिष्ठ सत्त्वोका ज्ञान स्पष्टरूपसे होता है। विज़ोरा नीबूके पीले छिलकेका स्वभाव (तबीअत) भीतरके सफेद गूदेसे विपरीत है। इन उभय वस्तुओका स्वभाव उसकी अम्लता और बीजोके विपरीत है। द्वितीय वह जिनके विभिन्न गुणस्वभावी सत्त्व आवरित होते है, जैसे—इसबगोलके बीज, जिसके आतरिक भागके ऊपरका आवरण और उक्त आवरणके ऊपरके भाग जिनका लुआब (लबाब) निकलता है, शीतल हैं। परतु उक्त आवरणके नीचेका भाग जो गिरीवत् (मीगोकी तरह) होता है, परम उष्ण है। सुतरां आवरण उपरिस्थित शीतल भाग और भीतरकी उष्ण गिरी (मग्ज)के बीच आड (परदा) होता है। जब इसको समूचा खाया जाता है तब उक्त आवरण अपनी कठोरताके कारण अत स्थित गिरी (मग्ज)को ऊपरकी ओर उठने और प्रवेश (नफूज) करनेसे रोकता है। अतएव उपरिस्थित भागसे शीत उत्पन्न होता है। जब कूटकर खाया जाता है, तब भीतरकी उष्ण गिरी भी आवरणरहित होकर उष्णता उत्पन्न करती है। यही कारण है कि कूटा हुआ इसबगोल लगानेसे व्रणो (फोडो)का परिपाक करता है और समूचा इसबगोल फोडोको अपरिपक्व रखता है तथा दोषको दूसरी ओर फेर देता है। अस्तु, जो यह कहते हैं कि इसबगोल कूटनेसे विषवत् हो जाता है उसका कारण यही होगा कि उसके भीतरका भाग आवरणशून्य हो जाता है। कतिपय द्रव्य ऐसे है कि उनमें यद्यपि विरोधी गुणोका निश्चय ससर्ग वा निपातसे (बिल्फेल) नही होता, तथापि उनका एक दूसरेसे भिन्न होनेका ज्ञान (मुमय्यज) शीघ्र हो जाता है। उदाहरणत करमकल्ला और मसूर। यद्यपि इनके उपादानोमें परस्पर भिन्नताका ज्ञान सरलतासे नही हो पाता, क्योकि सब ग्रथित वा सहत रूपसे एक ही घटक प्रतीत होते हैं, तथापि जब वे हमारे शरीरमें पहुँचते हैं और हमारे शरीरकी प्रकृतोष्मा (हरारते गरीजी) उनमें अपना प्रभाव करती है, तब भिन्न होकर पृथक्-पृथक् गुणोका प्रकाश करते हैं। यह उसी दशामें सभव हो सकता है जबकि औषधद्रव्यका मिजाज (सघटन) अविरल वा घन न हो (मृदु वा विरल हो)। जितनी यह सयोगजन्य विरलता वा कमजोरी अधिक होती है, उतना ही शीघ्र उसके उपादान पृथकीभूत हो जाते है।

कभी-कभी मिज़ाज सानी (द्वितीय प्रकृति) सयोगकी दृढता, स्थिरता और घनताके विचारसे प्रथम भेदकी अपेक्षया विरलतर और मृदुतर अर्थात् अविरल वा अविच्छेद्य नही (कमजोर) होता है अर्थात् उसका सगठन विरल (ढीला) और नरम होता है। इसको विरल सयोगी द्वितीय प्रकृति, विरल सयोग (मिज़ाज सानी रिख़्व) कहते हैं। सयोग की विरलता एव मृदुताके तारतम्य भेदसे पुन इसके निम्न भेदत्रितय बतलाये जाते है —

(१) अत्यल्प विरल सयोग (रिख्व मुतलक)—

यदि इसका सगठन केवल इतना विरल (ढीला वा नरम) हो कि जलमें क्वथित करनेमे नही, प्रत्युत प्रत्यक्ष अग्निका सयोग होनेसे इसके उपादान पृथक् हो जायें, तो उसको अत्यल्प विरल सयोग (रिख्व मुतलक) कहते हैं। इस भेदका उदाहरण यूनानी वैद्य 'बाबूना' देते हैं। इसमें एक सत्त्व (जौहर) सग्राही है और दूसरा विलीन-कर्ता—विलयन वा विलायक (मुहल्लिल) होता है। ये दोनो जौहर जलमे क्वथित करनेमे पृथग्भूत नही होते। बाबूना जब जलमें क्वाथ किया जाता है, तब इसके उक्त दोनो उपादान मिले हुए बाबूनामे निकलकर जलमें आ जाते हैं। ऐसा नही होता कि उबालनेसे एक सत्त्व पृथक् हो और दूसरा बाबूनामें रहे। इसे देर तक पकानेमे भी जल इसके किसी प्रधान सत्त्वकी शक्ति (कुव्वत)को नष्ट नही करता, जिससे केवल दूसरे सत्त्वका वीर्य शेष रहे। तात्पर्य यह कि चाहे थोडी देर तक पकाया जाय चाहे बहुत देर तक इन उभय सत्त्वोंके वीर्य युगपत् स्थिर रहते हैं। यही कारण है कि जिस तरह पकाये हुए बाबूनामें उभय वीर्य पाये जाते हैं, उसी तरह जिस जलमें बाबूना क्वथित किया जाता है, उसमे भी उभय वीर्य उपस्थित रहते हैं। जितना अधिक पकाया जाता है, उतना अधिक यह वीर्य जलमें प्राप्त होते है और बाबूनेकी सिट्ठीसे कम हो जाते हैं। परतु जब बाबूनेको अग्निमे जलाया जाता है, तब जिस प्रकार काष्ठके उपादान जलनेमे वियोजित हो जाते हैं, उसी प्रकार इसके भी उभय उपादान पृथग्भूत हो जाते हैं।

(२) अतिविरल सयोग (रिख्व जिद्दन्)—

कभी-कभी औषधद्रव्योंका उक्त सयोग वा सगठन इससे भी विरल और मृदु होता है अर्थात् उसका सगठन धोनेसे नही, प्रत्युत क्वथित करनेसे विघटित हो जाता है। फलत एक उपादान दूसरेसे पृथक् या वियुक्त हो जाता है। ऐसे द्रव्यको अतिविरल वा मृदु-औषधद्रव्य (दवाऽरिख्व जिद्दन्) कहते है। इस प्रकार औषधद्रव्यका उदाहरण यूनानी वैद्योंने 'मसूर' दिया है। इसमें एक सत्त्व विलीनकर्ता (मुहल्लिल) है जो जलमें क्वथित करनेमे अलग हो जाता है अर्थात् इसकी विलीनकर्तृशक्ति (कुव्वत मुहल्लिला)के आश्रयभूत सूक्ष्म उपादान (अजज़ाऽलतीफा) जलमें निकलकर आ जाते है और उसकी सिट्ठी (जिर्म)में सान्द्र सग्राही वीर्य (कुव्वत काबिजा कसीफा) अवशेष रह जाता है। क्योकि सग्राही वीर्यके आश्रयभूत स्थूल उपादान उसकी सिट्ठीमे स्थित रहते हैं। तात्पर्य यह कि क्वाथ करनेसे इसका विलीनकर्ता वीर्य (जौहर मुहल्लिला) सग्राही वीर्य (जौहर काबिज)मे पृथक् हो जाता है। इसका दूसरा उदाहरण 'करमकल्ला' है जिसका जौहर (वीर्य) दो चीजोंके समवायसे समृष्ट (मुरक्कब) है। एक पार्थिव द्रव्य जो कब्ज उत्पन्न करता है और द्वितीय तरल द्रव्य (माद्दे लतीफ) जिसमें क्षारत्व एव लवणता होती है, इस कारण स्वच्छता (जिला) प्रदान करता है। अत जब इसको क्वथित करते है तब तरल (लतीफ) और क्षारीय द्रव्य उसकी सिट्ठी (जिर्म)से पृथक् होकर जलमें निकल आता है और सग्राही पार्थिव वीर्य शेष रह जाता है। अतएव उसका क्वाथ सारक होता है और सिट्ठी (जिर्म) सग्राही। यह नियम है कि ऐसे द्रव्यको जितना अधिक क्वथित किया जायगा, उसका वीर्य जलमे अधिकाधिक आता जायगा और उसकी सिट्ठीमे कम होता जायगा। यदि ऐसे औषधद्रव्योंमें विरोधी वीर्य (कुव्वत मुतजाद्दा) न हो तो भी उनको क्वथित करनेमे उनका वीर्य क्वाथमें आ जाता है। यही दशा मसूर और कुक्कुटमासकी है। पका देनेसे उनके विरोधी वीर्य वियोजित हो जाते हैं। यही दशा मूली और प्याज की है। इसी कारण कहते हैं कि मूली अन्य द्रव्योंको तो परिपाचित कर देती है, किंतु स्वय पाचित नही होती। क्योंकि अपने सूक्ष्म वीर्य (लतीफ जौहर)के कारण अन्य द्रव्योंको पचाती है, किंतु जब वह सूक्ष्म वीर्य उससे दूर हो जाता है और केवल स्थूल वीर्य (कसीफ जौहर) शेष रह जाता है, तब यह लेपदार (लजिज) भी होता है और गुरुपाकी भी। यद्यपि प्रथम वीर्य लेप (लजूजत)का छेदन करता है। इस प्रकारके अनिल औषधद्रव्य अनिवार्यत दो वीर्योंसे समृष्ट (मुरक्कब) होते हैं जिनमेंसे एक सूक्ष्म वा तरल (लतीफ) होता है जो क्वाथ करनेके उपरात सिट्ठी (जिर्म)से भिन्न हो जाता है और उष्णताने पराभूत हो जाता है। दूसरा स्थूल

वा साद्र (कसीफ) होता है जिसका उष्णतासे पराभव नही होता और औपधीय वीर्यसे वियुक्त नही हो सकता। जिस औपधद्रव्यके उपादानोका सयोग (मिजाज) जितना विरल या मृदु होता है, उतना ही कम क्वाथ करनेसे उसका वीर्य जलमे शीघ्र निकल आता है। यदि कम पकाया जाय तो क्वाथमें उसका वीर्य स्वल्प आता है और उसकी सिट्ठी (जिर्म)में भी वीर्य शेप रहता है। यदि अधिक क्वथित किया जाय तो वीर्य सम्यक्तया (नि शेप) क्वाथमे आ जाता है और उसकी मिट्ठीमे तनिक भी शेप नही रह जाता। इससे यह निष्कर्प निकलता है कि यदि अत्यधिक क्वथित किया जाय तो उसकी सिट्ठीके साद्रावयव भी जलमें समाविष्ट होने लगेगे। सुतरा जो लोग मसूरका विरेचनीय वीर्य जलमें अल्प ग्रहण करना चाहते है, उनको चाहिये कि इसको अल्प क्वाथ करें और यदि अधिक ग्रहण करना चाहते हो तो अधिक क्वाथ करे। परतु यह ध्यान रखें कि सग्राही उपादानोमेंसे कोई द्रव्य क्वाथमें निकलकर सम्मिलित न होने लगे। यदि यह अभीष्ट हो कि थोडी मात्रामें सग्राही उपादान भी क्वाथमे समाविष्ट हो जायें, तो अधिक क्वाथ करे। किंतु यह ध्यान रहे कि अत्यधिक क्वाथ करनेमे अतत क्वाथमेंसे विरेचनीय वीर्य नष्ट हो जाता है। यदि विरेचनीय वीर्यको नि शेप प्रभावहीन करना अभीष्ट हो तो अत्यधिक क्वाथ करे, वल्कि अत्यत क्वाथ करनेसे तो सग्राही वीर्य भी निर्वल हो जाता है।

(३) सम्यक् विरल सयोग वा प्रकृति (मिज़ाज सानी रिख्व वइफरात)—

कभी-कभी औपधद्रव्योका उक्त सगठन इतना विरल वा ढीला होता है कि केवल प्रक्षालन मात्रसे उसका सघटन विघटित हो जाता है, जिसमे विरोधी वीर्य वियुक्त हो जाते है। ऐसे द्रव्यको सम्यक् विरल सयोगी औपधद्रव्य (दवाऽरिख्व वइफ़रात) कहते है। इस प्रकारके औपधद्रव्यका एक उदाहरण 'कासनी' है। यह कई वीर्योंके समवायसे ससृष्ट है, जिनमेंसे एक वीर्य क्षारीय (वोरकी) वा सूक्ष्म (लतीफ माद्दा) है, जो वाहिनी-विस्फारक (मुफत्तेह उरूक) है और दूसरा वीर्य (स्थूल पार्थिव और जलीय) शीतलसग्राही है। इसके धोनेसे वाहिनीविस्फारक, तारल्यजनक वा सूक्ष्मताकारक (मुलत्तिफ) वीर्य नष्टप्राय हो जाता है अर्थात् धोनेसे इसके वाहिनीविस्फारक (अरोघोद्घाटक) एव तारल्यकारक वीर्य (कुव्वत तफ्तीह और तल्तीफ)के आश्रयभूत सूक्ष्म और क्षारीय उपादान जलमें विलीन हो जाते हैं। क्योकि ये उपादान केवल कासनीपत्रके वाह्य धरातल पर फैले हुए हैं और इसके शीतल और सग्राही वीर्य उसकी सिट्ठी (जिर्म)मे अवशेप रह जाते है। अस्तु, जव यह अभीष्ट हो कि तरल वा सूक्ष्म माद्दा (लतीफ माद्दा) शेप रहे, तो नही धोते और उक्त द्रव्यको जलमे लेना इष्ट होता है तव केवल धोनेसे उतर आता है।

द्वितीय प्रकृति (मिज़ाज सानी) अर्थात् गुणके सगठनकी अविरलता और विरलताके विचारसे साधारण योगोका भी अनुमान करना चाहिये। सुतरा कतिपय योगौपध इतने सूक्ष्म (लतीफ) और कोमल होते हैं कि सामान्य उत्ताप और सूर्यरश्मिसे प्रभावित होकर विकृत हो जाते (उनके घटक विघटित हो जाते) हैं।

वक्तव्य

गीलानीने लिखा है कि जिस तरह यूनानी वैद्योने औपधद्रव्योके मिजाज (गुण प्रकृति)के भेदोका उल्लेख किया है, उसी तरह उनके वीय वा शक्ति (कुव्वत)के भेदोका भी निरूपण किया है। वीर्य[1] (कुव्वत)से वह कारण वा शक्ति (सवव या ताकत) अभिप्रेत है जिससे द्रव्यके कर्मका प्रकाशमें आना अनिवार्य हो जाता है। वस्तुत वीर्य (कुव्वत) ससृष्टद्रव्य (मुमूतजिज)का वह गुण (कैफिय्यत) है जो उसे उत्पन्न होनेके समय प्राप्त होता है।

---

१ 'वीर्य' शब्दकी आयुर्वेदीय व्युत्पत्तिके अनुसार द्रव्य जिस शक्तिसे कार्य करता है वह वीर्य है, इस व्युत्पत्तिसे 'वीर्य' शब्दका शक्ति यह अर्थ होता है। यूनानी वैद्यकमें इसीके लिए 'कुव्वत' शब्दका प्रयोग किया गया है। चरकमें लिखा है—'वीर्यं तु क्रियते तु येन या क्रिया' (च० सू० अ० २६)।

इसके यह तीन भेद हैं—(१) इसमें वे मीमांस्य कर्म समाविष्ट हैं जो उस गुण (मुख्य गुण)के द्वारा प्रकाशमें आते हैं, जो औषधद्रव्यकी उत्पत्तिके समय चतुर्भूतोंके समवायके पश्चात् द्रव्यमें प्राप्त होता है और वह उष्णता, शीतलता, स्निग्धता और रूक्षता हैं। अस्तु, औषधद्रव्यका जिस वस्तुसे संयोग होता है उसमें उष्णता, शीतलता, स्निग्धता और रूक्षता उत्पन्न करता है। (२) इसमें उन मीमांस्य कर्मोंका विचार होता है जो द्वितीय प्रकृति (गौण गुण—मिजाज सानी) अर्थात् गुणके कारण औषधद्रव्यसे उस वस्तुमें प्रगट होते हैं जिससे वे मिलते हैं। उक्त कर्म प्रथम भेदके अनुवध (अनुसार)से होते हैं। क्योंकि द्वितीय प्रकृति (गौण गुण) विशिष्ट द्रव्य उन उपादानोंसे संघटित होता है जिनको प्रथम प्रकृति (मुख्य गुण) प्राप्त हो चुकी है। इसके यह दो अवान्तर भेद हैं—(क) प्राकृतिक, जैसे—गुलाबका फूल। यह ऐसे उपादानोंसे संघटित है जिनको प्रथम प्रकृति (मिजाज अव्वली) प्राप्त है। पुनः उन प्रथम प्रकृति (मुख्य गुण) विशिष्ट उपादानोंसे संघटित होनेसे एक ऐसी द्वितीय प्रकृति (गौण गुण) प्राप्त हो गई है जो अलग-अलग प्रत्येक उपादानको प्राप्त न थी, जैसे—दोषको लौटाना (रद्‌अ)। ऐसे औषधद्रव्यको मुरक्कबुल्कुवा (मिश्रवीर्य)[1] कहते हैं। (ग) अप्राकृतिक (कृत्रिम) असंसृष्ट (अमिश्र) द्रव्योंको एकत्र करनेसे समुदायमें एक ऐसा मिजाज प्राप्त हो जाता है और उसके कर्म प्रगट होता है वह समुदायके प्रत्येक उपादानसे भिन्न-भिन्न प्रगट नहीं हो सकता जैसे—तिर्याक। यही दशा उस योगकी है जिसे कतिपय योगोंको मिलाकर बनाया हो। अप्राकृतिकके भी ये दो भेद हैं—(क) यह कि उनके अवयवों (उपादानों)से जो कर्म प्रगट होते थे, उसीके अनुकूल उक्त अवयव (उपादान)विशिष्ट समुदायसे प्रगट होता है। ऐसे योगको मुत्वाफिकुल्कुवा[2] कहते हैं। (ख) वह कि उनके अवयवों (उपादानों)से जो कर्म प्रगट होते थे, उक्त अवयव विशिष्ट योगसे उसके विपरीत कर्म प्रगट होते हैं। उदाहरणतः ऐसा योग उष्णता भी उत्पन्न करता है और शीतलता भी। इसे मुतजाद्दुल्कुवा[3] कहते हैं। यदि कोई बाधक कारण वर्तमान न हो तो प्रकृति (तबीअत) इन विविध कर्मोंका उपयोग यथास्थान करती है। (३) यह प्रथम और द्वितीय भेदकी अपेक्षासे है। इसमें जातिस्वरूप (सूरते नौइय्या)के द्वारा कर्म निष्पन्न होते हैं। इसकी गणना उन दोनोंके अनन्तर होती है। जैसे—हज्रुल्यहूद (येरूसलम)का अश्मरीनाशन, जो उसके सराज (मिजाजके) गुण (कैफ़ियत)के विचारसे है। क्योंकि उष्णता दोषोंको काटती है और दोषोंका कटना पथरी (अश्मरी)के टूटनेका कारण है। यूनानी वैद्योंने चतुर्थ भेद वर्णन नहीं किया, यद्यपि अनुमानसे उसकी सम्भाव्यता निश्चित है।

(५) संघटनोत्तर परिवर्तन।

जब एक द्रव्य अन्य द्रव्यके साथ मिलाया जाता है तब कभी उनसे संसृष्ट द्रव्यके उभय अवयव अपने जातिस्वरूप (सूरते नौइय्या) पर न्यूनाधिक चिरकाल पर्यंत शेष रहते हैं। उदाहरणतः शुक्त और मधुके मिलानेसे शुक्तमधु[4] (सिकञ्जबीन) बनता है, जिसमें उसके उभय अवयव अपनी पूर्व अवस्थापर स्थित होते हैं। पर कभी उनमें परिवर्तन और परिणति हो जाती है और उनका पूर्वरूप परिवर्तित हो जाता है। उदाहरणस्वरूप जब नृसार (नौशादर) और सुधाजल (चूनेका पानी) मिश्रीभूत किये जाते हैं तब परिवर्तन (इस्तेहाला)के उपरांत एक नवीन वस्तु उत्पन्न हो जाती है। जब गंधकाम्लमें ताम्र डाल दिया जाता है, तब तूतिया (तुत्थ)की उत्पत्ति होती है।

---

१ आयुर्वेदोक्त द्रव्य प्रायः मुरक्कबुल्कुवा (मिश्रवीर्य) ही होते हैं।

२ आयुर्वेदमें इसे प्रकृतिसमसमवेत कहते हैं (देखो चरक विमान अध्याय १)। यूनानी वैद्यकमें इसे 'इम्तिज़ाज सादा' भी कहते हैं।

३ आयुर्वेदमें इसे विकृतिविषमसमवेत कहते हैं (देखो चरक विमान अध्याय १)। यूनानी वैद्यकमें इसे 'इम्तिज़ाज हक़ीक़ी' भी कहते हैं।

४ मधुशुक्त (सु०)।

इसी तरह सिरका मिलानेसे रग बिगड़ जाता है और खटाई मिलानेसे अर्थात् अम्लताके योगसे दूध फट जाता है। अतएव यह आवश्यक नहीं है कि समूह पदार्थ (दवाऽ मुरक्कब) में उसके सभी उपादान (अज्ज़ाऽतरकीबिया) अपने-अपने जातिस्वरूपों और गुण-धर्मो (खवास) पर अनिवार्यतः स्थिर ही रहें—कतिपय दशाओंमें वे स्थिर रहते हैं और कतिपयमें परिवर्तित हो जाते हैं।

(६) औषधद्रव्योंके उपादान।

(औषधद्रव्यके उपयुक्त अग-प्रत्यग तथा उनके वीर्य भाग)

गत पृष्ठोंमें इस विषयका निरूपण किया गया है कि लगभग समस्त उद्भिज और स्थावर औषधद्रव्य स्वभावतः मिश्रवीर्य या बहुवीर्य (मुरक्कबुल्कुवा) हुआ करते हैं, जिनके गात्रान्तर सगठनकी मीमासा (नौइय्यते तरकीब) बुद्धिगम्य वा सुगम नहीं है। यहाँ पर मुझे यह बतलाना अभीष्ट है कि उनमें कितने प्रकारके विभिन्न गुण-स्वभावविशिष्ट उपादान वर्तमान होते हैं जो न्यूनाधिक प्रमाणमें उनसे प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रकारके उपादानोंकी सख्या अत्यधिक है। इसलिये कतिपय निम्न बड़े बड़े शीर्षकोंके अन्तर्गत उनका वर्णन किया जा सकता है। यथा—(१) अम्लता या अम्लद्रव्य जो उदाहरणतः नींबू, इमली, आलूबुखारा और खट्टे अनारमें पाया जाता है। (२) विभिन्न प्रकारके लवण वा क्षार जिसे हम वनस्पति आदिको जलाकर और भस्म बनाकर प्राप्त किया करते हैं। (३) वे द्रव्य जो अम्लत्वके साथ मिलकर लवण बनाते हैं (आसार), चाहे वे वास्तविक अर्थमें क्षारीय हों या उनके समान (हुक्ममें) हों। जैसे—धातुएँ। (४) विविध प्रकारकी शर्करा और श्वेतसार। (५) अण्डश्वेतक (अडेकी सफेदी) जैसे द्रव्य (मवाद्दे बैजिय्या, लहमिय्या) जो प्राणिज द्रव्यों (हैवानी मुरक्कबात)के अतिरिक्त वनस्पतियोंमें भी न्यूनाधिक पाये जाते हैं। (६) (कसीफ व लतीफ) निर्यास या गोंद (असमाग)के विविध प्रकार, जो जलमें सुविलेय या स्वल्पविलेय होते हैं, जैसे—बबूलका गोंद और कतीरा। (७) घन और प्रवाही अथवा स्थिर और अस्थिर (कसीफ या लतीफ) स्नेह (तेल) भेद, जैसे—कपूर, एरण्डतैल, वसा और मोम। (८) राल (रातीनज)—रालसे वे निर्यासवत पदार्थ अभिप्रेत है जो जलमें अविलेय, परन्तु मद्यमें विलेय होते हैं। उक्त द्रव्य ठोस और भुरभुरे होते हैं और उनका धरातल चमकदार होता है, जैसे—राल, सकमूनिया।

वक्तव्य—

कभी-कभी उन पदार्थोंको जो राल और तेलके साथ मिश्रीभूत होकर निसर्गत पाये जाते हैं, रातीनज दुह्नी (स्नेहमय राल—तैलोद्याम) कहा जाता है, जैसे—लोबान इत्यादि। उपादानो (अज्जाऽ तरकीबिया)के विचारसे राल तेलके समीपतर हैं। इसी तरह उन पदार्थोंको जो गोंद और रालमे सयुक्त (मुरक्कब) होते हैं, उनको सयुक्त सज्ञा रालदार गोद (समग रातीनजी—निर्यासोद्यास)से अभिधानित किया जाता है, जैसे—हीग, उशक, बोल (मुरमक्की), उसारारेवद इत्यादि। (९) काष्ठद्रव्य (खशबीमवाद्द) अर्थात् लकड़ीके द्रव्य जो वनस्पतियोंके प्रकाड, शाखा और पत्रमे बहुतायतसे पाये जाते हैं। (१०) विविध रगद्रव्य, जैसे—वानस्पतिक हरियाली (खिजरते नबाती), जिससे साधारणतया पत्तोंमें हरियाली प्राप्त होती है। इसी तरह गुलनारमें रक्तिमा, केसर और हरिद्रामें पीतिमा और एलुए तथा अमलतासमें कालिमा (कृष्णवर्णता) प्राप्त हुआ करती है। (११) अभिषव वा खमीर उत्पादक पदार्थ। (१२) अन्यान्य प्रधान वीर्य (जवाहिर फअ्आला) जो उपयुक्त शीर्षकोमे पृथक् है। उदाहरणत कुचलाका सत्व (विषमुष्टीन), अहिफेनीन, वत्सनाभीन और एलुएका सत्व (एलोइन) इत्यादि। इनमे प्राय सत्व स्वादके विचारसे तिक्त हैं और भौतिक स्थितिके विचारसे कोई द्रव और सान्द्र हैं। सान्द्र सत्त्व प्राय विवर्ण और विभिन्न स्फटिकाकार होते हैं।

(७) प्रकृति वा तबीअत।

मिजाज सज्ञाका व्यवहार जब द्रव्य (मिजाज)के अर्थमें होता है तब उसे तबीअत[1] कहते हैं। यूनानी द्रव्यगुणविज्ञानके मतसे मानवी प्रकृतिकी भाँति यह तबीअत (द्रव्यप्रकृति) नव प्रकारकी होती है। एक सम—अनुष्णाशीत (मोतदिल) प्रकृति और आठ विषम (गैर मोतदिल) प्रकृतियाँ (विप्रकृतियाँ)। सम प्रकृतिसे जिसकी अपेक्षया विषम प्रकृति अनुमित होती है, कल्पित वैद्यकीय (सापेक्ष) प्रकृति विवक्षित है, जिसका यह अर्थ है कि ससृष्ट द्रव्य (मुमतजिज)में महाभूतोंका प्रमाण कल्पित और सापेक्षरूपेण सम है और उससे वास्तविक समता अभिप्रेत नही है। क्योंकि वास्तविक समप्रकृति वा प्रकृतिसाम्य (मोतदिल हकीकी)[2] की विद्यमानता असभवनीय है। अस्तु, यूनानी वैद्यकमें सम वा अनुष्णाशीत (मोतदिल) उस मिजाजको कहते हैं जिसमें चतुर्महाभूत प्रमाण और गुणके विचारसे प्राकृतिक आवश्यकताके अनुकूल (यथाप्रमाण, समुचित अनुपातमें) सम्मिलित हो जितनेसे उसकी क्रिया सम्यक्तया हो सकती है।

शेखुर्रईस बूअलीसीना लिखते हैं—"यूनानी वैद्य (अतिब्बाऽ) जब किसी औषधद्रव्यके विषयमें कहते हैं कि 'यह मोतदिल है' तब उससे उनका यह अभिप्राय नही हुआ करता कि उक्त द्रव्य वास्तवमें अनुष्णाशीत (समप्रकृति-मोतदिल) है और न इससे उनका यह मन्तव्य है कि उसमें ऐसी समता पायी जाती है, जैसा कि मनुष्यमें है और यह कि उसका मिजाज मानवप्रकृतिके सदृश है। यदि ऐसा होता तो औषध औषधद्रव्य ही क्यो रहता, वह मनुष्य[3] न बन जाता, प्रत्युत इससे उनका अभिप्राय यह है कि उक्त औषधद्रव्य जब शरीरमें प्रविष्ट होकर शारीरिक ऊष्मा (हरारते गरीजी)से प्रभावित होता है और अगोंकी पाचनशक्ति (धात्वग्नि)से उसके उपादान विघटित (पृथग्भूत) हो

---

१ आयुर्वेदमें (द्रव्य) प्रकृतिका अर्थ 'स्वभाव' अर्थात् 'प्राकृतिक (स्वभावसिद्ध, सस्काराद्यकृत) याने जाति और जन्मके साथ उत्पन्न हुए गुण' है—तत्र प्रकृतिरुच्यते स्वभावो य, स पुनराहारौषधद्रव्याणा स्वाभाविको गुर्वादिगुणयोग (चरक वि० अ० १)। तद्यथा—स्वभावाल्लघवो मुद्गास्तथा लावकपिञ्जला। स्वभावाद्गुरवो माषा वराहोमहिषस्तथा॥ (चरक)। तथा अग्निकी उष्णता, तैल घृतादिकी स्निग्धता ये सब स्वाभाविक (यावद् द्रव्यभावी) गुणोंके उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त इससे 'वीर्य' (शीत, उष्णादि पारिभाषिक वीर्य) और 'गुण'का अर्थ भी सदर्भके अनुसार ग्रहण किया जाता है।

२ मोतदिल हकीकी (प्रकृति) उन द्रव्योंमें पाया जाता है जिनके सगठनमें जल, अग्नि, वायु और पृथ्वी ये चतुर्भूत प्रमाण और गुणके विचारसे सर्वथा समान (समप्रबल, समप्रमाण) हों अर्थात् परस्पर मिलते समय हरएकका प्रमाण और गुण सम हों। प्राचीन यूनानी दार्शनिकोंके मतसे ऐसे द्रव्यकी उपस्थिति असभव है। मानवी प्रकृतिके सबधमें कुछ आयुर्वेदाचार्योंका मत भी उक्त मतके अनुरूप (उसका समर्थक) है। अस्तु, इनके मतसे इस प्रकारकी प्रकृति (सम, समपित्तानिलकफ अथवा समत्रिदोष) असमवनीय है, क्योंकि मनुष्यका आहार विषम होनेके कारण शरीरगत त्रिदोष भी विषम हो जाते हैं—"तत्र केचिदाहु —न समवातपित्तश्लेष्माणो जन्तव सन्ति" (चरक वि० अ० ६)। अस्तु, यहाँ जो यह प्रकृतिका अर्थ 'साम्य प्रकृतिरुच्यते' है वह यहाँ अभिप्रेत नहीं है। 'प्रकृति शरीरस्वरूपम्' (अरुणदत्त) 'प्रकृतिमिति स्वभावम्' (चक्रपाणिदत्त) स्वभाव वा शरीरस्वरूप यह अर्थ यहाँ अभिप्रेत है।

३ प्राचीन यूनानी वैद्योंका यह सिद्धात है कि ससृष्ट द्रव्य (मुरक्कबात)के समस्त गुण-धर्म (खुसूसियात) विशेष मिज़ाज और सगठनके अधीन हुआ करते हैं। उसी प्रकार मनुष्यके गुण-लक्षण (खुसूसियात) उसके विशेष सगठन (सोत्कर्षापकर्षयुक्त चतुर्भूतात्मक रचना)के अधीन हैं। यदि द्रव्यप्रकृति मानवप्रकृतिके समान हो जाय, तो उक्त सिद्धातके अनुसार उक्त औषधद्रव्यमें मनुष्यके गुण-स्वभाव (लक्षण) प्रगट हो जायँ और वह मनुष्य बन जाय।

जाते हैं जिनको कार्य करनेकी स्वतन्त्रता मिल जाती है (अवसर प्राप्त हो जाता है), तब मानव-शरीरमें एक ऐसा गुण (कैफिय्यत) उत्पन्न हो जाता है, जो मानवी गुण-प्रकृति (इन्सानी कैफिय्यत वा मिजाज)से किसी प्रकार भिन्न होता अतएव उससे शरीरमें कोई ऐसा कर्म (असर) प्रकाशित नही होता, जो समतासे दूर (विषम) हो, मानो वह अपने कर्मके अनुसार सम वा मोतदिल है" (कानून)।

उपर्युक्त कथनका यह अर्थ है कि, यदि प्रकृतिके अनुसार मिजाजमें उष्णताका प्राबल्य (प्रगल्भता) अपेक्षित हो, तो उष्णता अधिक हो और यदि शैत्यकी अधिकता अपेक्षणीय हो तो शीतलता अधिक हो। इस विचारसे प्रत्येक स्वस्थ प्राणी समप्रकृतिस्थ (मोतदिल) है, क्योंकि विविध जातिके प्राणियोमें प्रमाण और गुणके तारतम्यके विचारसे महाभूतोका समवाय विविध (भिन्न-भिन्न, अनेक) होता है। इस प्रकारके अनुष्णाशीत अर्थात् मोतदिलको काल्पनिक वा वैद्यकीय समप्रकृति (मोतदिल फर्ज़ी या मोतदिल तिब्बी) कहते हैं और चिकित्सामें मोतदिलसे[1] प्राय यही विवक्षित होता है। इसके विपरीत जिस मिजाजमें महाभूत प्राकृतिक आवश्यकताके अनुकूल न हों (न्यूनाधिक हो), उसे विषम प्रकृति (गैर मोतदिल) कहते हैं जिसके यह आठ भेद हैं—(१) शीतल (बारिद)—जिसमें शीतलता अधिक हो, (२) उष्ण (हार्र)—जिसमें उष्णता अधिक हो, (३) रूक्ष (याबिस)—जिसमें रूक्षता या खुश्की अधिक हो, (४) स्निग्ध (रतब) जिसमें तरी या स्निग्धता अधिक हो। इन चारो प्रकृतियोको जिसमें एक-एक गुणकी अधिकता है अमिश्र विषम प्रकृति (गैर मोतदिल मुफरद वा बसीत) कहते हैं। और निम्नलिखित (चारों गुणोंमेंसे) दो-दो गुणोंके मेलसे बनी प्रकृतिको समिश्र वा ससर्गज विषम प्रकृति (गैर मोतदिल मुरक्कब) कहते हैं, यथा—(५) उष्ण-रूक्ष (हार्र-याबिस) जिसमें उष्णता और रूक्षता अधिक हो, (६) उष्ण-स्निग्ध (हार्र-रतब)—जिसमें उष्णता और स्निग्धता अधिक हो, (७) शीतल-रूक्ष (बारिद-याबिस —जिसमें शीतलता और रूक्षता अधिक हो, और (८) शीतल-स्निग्ध (बारिद-रतब)—जिसमें शीतलता और स्निग्धता अधिक हो। इस प्रकार औषधद्रव्यमें इन आठ विषम प्रकृतियो (विप्रकृतियो) का उल्लेख होता है।

उपर्युक्त कथनका साराश यह है कि औषधद्रव्यमें अकेले उष्णता प्रधान होती है अर्थात् जितनी उष्णता चाहिए उससे अधिक है या अकेले शीतलता या अकेले स्निग्धता या अकेले रूक्षता। इनमें प्रथम उष्ण, द्वितीय शीतल, तृतीय स्निग्ध और चतुर्थ रूक्ष है या उसमें स्निग्धतायुक्त उष्णता या रूक्षतासयुक्त उष्णता या स्निग्धतायुक्त शीतलता या रूक्षतायुक्त शीतलता प्रधान है।

शैखुर्रईस बूअलीसीना कहते हैं—"इसी तरह उदाहरणस्वरूप जब चिकित्सकगण किसी औषधद्रव्यके विषयमें यह कहते हैं कि अमुक द्रव्य उष्ण है या शीतल तो इससे उनका तात्पर्य यह नही होता कि उक्त द्रव्यका वीर्य (जौहर) अत्यत उष्ण वा शीतल है और न उससे उन्हें यही अभिप्रेत होता है कि उसका वीय मानवशरीरसे

---

१ जो द्रव्य समप्रकृतिस्थ वा आसन्नसमप्रकृतिस्थ चेतनाविशिष्ट युवा मनुष्यके आमाशयमें पहुँचता है, उस पर शरीरकी पाचकाग्नि वा कायाग्नि (हरारते गरीज़ी)की क्रिया होकर उक्त द्रव्यमें अन्तर्निहित गुण-कर्म प्रकाशित हो जाते हैं। यह गुण यदि शरीरस्थ गुणके समान है और कई बार उपयोग करने और प्रमाणसे अधिक लेनेसे भी शरीरकी मूलप्रकृति (मिज़ाज असली)का पराभव करके उससे भिन्न कोई अन्य गुण कर्म प्रकाशित नहीं करता और ओज (अरवाह) और वीर्यको उनके अपने प्रकृत गुणों (असली कैफिय्यत्त)से भिन्न नहीं करता और न किसी क्रियाको विकृत (नाकिस) करता है, तो उसको अनुष्णाशीत वा प्राकृत (मोतदिल) कहते हैं, अन्यथा विषम (विकृत)। यह भी स्मरणीय है कि विषम गुणके कर्म अनुष्णाशीत (मोतदिल)के विपरीत शीघ्र प्रगट हो जाते हैं क्योंकि वह किसीको सात्म्य होता है और किसीको असात्म्य और विभिन्न कर्म प्रगट करता है जिसके साथ विभिन्न रहस्यमय अनुमान समाविष्ट होते हैं।

उष्ण या शीतल है, क्योंकि यदि उससे यह अभिप्रेत हो तो उसका यह अर्थ है कि समप्रकृतिस्थ औषधद्रव्य (दवाऽमोतदिल)का मिजाज मानवप्रकृति जैसा हो। परन्तु ऊपर इस विषयका निरूपण हुआ है, कि ऐसा होना असभवित है। इसलिये कि फिर वह औषध ही क्यो रहता मनुष्य (जौहर इनसान) न वन जाता। प्रत्युत इससे उनका यह अभिप्राय होता है कि उक्त औषधद्रव्यसे मानवशरीरमें इतनी उष्णता या शीतलता उत्पन्न होती है जो शरीरकी साधारण प्रकृत (सम) औषध या दौरयसे अधिक है। यही कारण है कि कभी एक औषधद्रव्य मानवशरीरके विचारसे यदि शीतल है तो वह वृश्चिकके शरीरके विचारसे उष्ण है या मानवशरीरके अनुसार उष्ण है, परतु सर्पशरीरके विचारसे शीतल है। इतना ही नही, प्रत्युत कभी ऐसा होता है, कि एक ही औषधद्रव्य एक व्यक्तिके लिये कम उष्ण होता है और दूसरे व्यक्तिके लिये अधिक उष्ण। इसी हेतु वैद्यकविद्याव्यवसायियोको आदेश किया जाता है कि जव चिकित्साकार्यमें एक ही द्रव्यसे सफलता प्राप्त न हो, तो एक उसी द्रव्य पर निर्भर न करें, प्रत्युत उसी श्रेणीका अन्य द्रव्य व्यवहार करे" (कानून)।

क्योंकि यह सभव है कि प्रथम द्रव्यका गुण (कैफिय्यत)का उस विशेष शरीरकी प्रतिक्रियाक्षमता (जाती इस्तेदाद)के कारण न्यून हो और द्वितीय द्रव्यका अधिक हो। यह वात प्रमाणित हो चुकी है कि औषधद्रव्योंके प्रभाव ग्रहण करनेकी क्षमता (वल या प्राण-शरीरगत धातुओं तथा इन्द्रियोंकी प्राणशक्ति या प्रतिक्रियाक्षमता अर्थात् औषध और आहारसे फायदा उठानेकी शरीरस्थ शक्ति) विभिन्न व्यक्तियोंमें न्यूनाधिक हुआ करती है। इसी तरह विभिन्न औषधद्रव्योंके प्रभाव विभिन्न व्यक्तियोंमें न्यूनाधिक और शीघ्र वा विलम्बसे प्रगट होते हैं, जिनका वास्तविक कारण प्रत्येक समय सरलतया नही वतलाया जा सकता।

८ वीर्यके तारतम्यभेदसे औषधद्रव्योका श्रेणीविभाजन
(दरजात अदविया)

वीर्यके तारतम्य भेदसे मानव शरीरमें औषधद्रव्यके कर्म भिन्न होते हैं। अस्तु, कोई द्रव्य तीव्र गतिसे परिणाम एव परिवर्तन (तगय्युरात व इस्तिहालात) उपस्थित करता है और कोई मथर गतिसे। कोई द्रव्य एक मात्राकी मात्रामें कुछ भी कार्य नही करता और वही अन्य द्रव्य उसी मात्रामें शतश विरेक उनके शीत-उष्णादि वीर्योंके तारतम्यके अनुमानके लिये, मापकी भांति कतिपय कक्षाएँ[1] वा श्रेणियाँ (दरजात) स्थिर की हैं। चूंकि कक्षाओंका निर्धारण औषधीय कर्माके प्रमाण पर निर्भर है और औषधीय कर्मोंके प्रमाण (मिकदार तासीर)का अनुमान केवल अनुभव (तजरिवा)से हुआ करता है। अस्तु, वीर्यके विचारसे औषधद्रव्यके कक्षानिर्धारणके लिये यूनानी वैद्योंने कतिपय अनिवार्य नियम स्थिर किये हैं, यथा —

---

१ औषधद्रव्योंके (उनके) शीत-उष्ण आदि वीर्योंके तारतम्य भेदसे तीक्ष्ण, मध्य और मृदु ऐसे तीन अवान्तर भेदों (कक्षाओं)का उल्लेख आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थों (चरकादि)में भी मिलता है। यथा—तत्राप्यौषधद्रव्य त्रिविध वीर्यभेदात् तीक्ष्णवीर्यं, मध्यवीर्यं, मृदुवीर्यं चेति (चरक सूत्रस्थान)। इसकी व्याख्यामें चक्रपाणिदत्त लिखते हैं—वीर्यगततारतम्यभेदेनौषधद्रव्याणि भूयस्त्रेधा भिद्यन्ते—तीक्ष्णवीर्यं, मध्यवीर्यं, मृदुवीर्यं चेति। तद्यथा—उष्णवीर्यद्रव्यस्य तीक्ष्णमध्य-मृदुभेदेन उष्णतममुष्ण चेति त्रिविधो भेद कल्प्यते ॥

विपाकके सवधमें भी ऐसे ही भेदोंका उल्लेख आयुर्वेदमें मिलता है—विपाकलक्षणस्याल्पमध्यभूयिष्ठता प्रति। द्रव्याणा गुणवैशेष्यात्तत्र तत्रोपलक्षयेत् ॥ (चरक सू० अ० २६)। द्रव्यगुणविशेषेण चास्याल्पमध्यभूयस्त्वमुपलक्षयेत्। (अ० स० सू० अ० १)। इन श्लोकोंमें यूनानी ग्रथोक्त 'दरजात अदविया'का सूत्ररूपमें सकेत मिलता है।

(१) उक्त औपधद्रव्य अपनी निश्चित सेवनीय मात्रामें खिलाया जाय, मात्रातिरेक न किया जाय। (२) उसका उपयोग बारबार न किया जाय। (३) जिस शरीरमें उसका उपयोग वा परीक्षण किया जाय वह स्वय समप्रकृतिस्थ (अनुष्णाशीत-मोतदिल) हो, वरन् यदि शरीरमें उदाहरणत उष्णताका बाहुल्य होगा और उसे द्वितीय कक्षाकी उष्ण औषधि खिलायी जायगी, तो उसका कार्य शीतल शरीरकी अपेक्षया शीघ्र एव प्रबल होगा। तात्पर्य यह कि औपधद्रव्योकी कक्षाकी कल्पना करनेमें इस तरह मतभेद उत्पन्न हो जायगा। (४) औपधद्रव्योकी कक्षाओंके परीक्षणके लिए कोई-कोई अनुष्णाशीत (मोतदिल) काल वा ऋतुका प्रतिबध भी लगाते हैं। अस्तु, यह प्रकट है कि सामान्य उष्ण औपधद्रव्यका प्रभाव ग्रीष्मके प्रखर उत्ताप कालमें अत्युग्र होता है और सामान्य शीतल औपधद्रव्य प्रबल शीतकालमें अत्यन्त तीव्रतासे अपना (शीत) कर्म करते हैं। इसके विपरीत उष्णवीर्य औपधद्रव्योका प्रभाव शरदऋतुमें और शीतवीर्य औषधद्रव्योका प्रभाव ग्रीष्मऋतुमें अपेक्षाकृत न्यून हो जाता है। इसलिए यदि ऋतु और कालका विचार न किया गया तो ऋतुके कारण यह संभव है कि प्रत्येक औपधद्रव्यके प्रभावमें वीर्यके तारतम्य भेदसे एक कक्षाका न्यूनातिरेक हो जाय।

वक्तव्य—यह तो हुई खाद्य-पेय औपधद्रव्योंकी बात, परतु जो द्रव्य खिलाये-पिलाये नही जाते, अपितु केवल बाह्य उपयोगमें लाये जाते हैं, उनका मिजाज भी कल्पित कर लिया गया है। पर चूँकि औपधद्रव्योंका कक्षानिर्धारण द्रव्यप्रकृति पर निर्भर है। अत, यदि कोई द्रव्य खिलाया न जाय तो कक्षानिर्धारण असभव होगा।

यह भी स्मरणीय है कि कतिपय द्रव्यगत ऊष्मा शुष्क होनेके उपरान्त परिवर्धित हो जाती है और कतिपयकी ह्रासयुक्त। इसका कारण यह है, कि यदि उष्णता पार्थिव वीर्यके अन्तर्भूत होती है तो सूखनेके उपरात वह बढ जाती है, क्योंकि जितना शीतोत्पादक आप्य अश घटते हैं, उतना ही ऊष्माका प्रकाश अधिकाधिक होता है। यदि उक्त उष्णता वायव्य वीर्यमें होती है, तो सूखनेके उपरात वह कम पड़ जाती है। इनमेंसे प्रथमका उदाहरण 'सुदाव' है, और द्वितीयका 'गुलाबपुष्प'। सुतरा सुदाव जितना ही सूखता जाता है उसकी उष्णता उत्तरोत्तर बढती जाती है और गुलाबपुष्प जितना सूखता है वायव्य वीर्यके विलुप्तप्राय होनेके कारण वह (ऊष्मा) कम पड जाती है। इसीलिये गुलाबका ताजा पुष्प गर्मीमें शुष्ककी अपेक्षया बलवत्तर और सुदावका शुष्कावयव गर्मीमें ताजेकी अपेक्षया बलिष्ठतर है।

औषधद्रव्योकी चार कक्षाएँ (श्रेणियाँ)

द्रव्यजन्य कर्मोंके बलाबल या उनके वीर्यके तारतम्य भेदके विचारसे यूनानी वैद्योने अनुष्णाशीत (मौतदिल) औपधद्रव्यके अतिरिक्त चार कक्षाएँ (दरजात) स्थिरकी है। निम्नलिखित पक्तियोंमें उनमेसे प्रत्येकका क्रमश निरूपण किया जाता है —

प्रथम कक्षा (दर्जे ऊला–दरजा अव्वल)—की औपधि वह है जिसके सेवनोपरात शरीरमें उसके गुणसे जिस कर्मकी निष्पत्ति होती है, उसकी प्रतीति या अनुभूति न हो, उदाहरणत शरीरमें उससे जो उष्णता या शीलता प्रगट हो, वह प्रतीत (मालूम) और अनुभूत न हो सके। पर यदि उसे बारबार या अधिक प्रमाणमें सेवन कराया जाय, तो तज्जन्य शीत-उष्ण प्रभाव स्थानिक या सार्वदैहिक प्रकाशित हों (कुल्लियात कानून)।

अनुष्णाशीत अर्थात् मौतदिल औपधद्रव्य (दवाएँ मौतदिल)का प्रभाव भी शरीरमें व्यक्त नही हुआ करता, फिर अनुष्णाशीत औषधद्रव्य और प्रथम कक्षाके औपधद्रव्यमें क्या भेद है? इसका उत्तर यह है कि प्रथम कक्षाके औषधद्रव्यके बारबार और अतिमात्रामें सेवन करनेसे उसका प्रभाव व्यक्त हो जाता है। परन्तु अनुष्णताशीत (मौतदिल) औपधद्रव्यके बारबार और प्रचुर प्रमाणमें सेवन करनेके अनन्तर भी कोई प्रभाव (असर) प्रकट नहीं होता (गीलानी)।

"द्वितीय कक्षा (दर्जा सानिया–दर्जा दोयम)की औपधिका प्रभाव प्रथम कक्षाकी औपधिकी अपेक्षा बलवत्तर होता है, किन्तु इतना नही होता कि शारीरिक व्यापारमें प्रकाश्यरूपमें विकार प्रतीत हो सके और न उससे स्वत

(बिज्जात) स्वाभाविकी चेष्टा और प्राकृतिक कर्मोंमें अन्तर आता है। यदि कभी उससे प्रकृत चेष्टाओंमें अंतर आता भी है तो किसी अन्य कारणसे (बिल्अर्ज़)। पर यदि इसे बारबार और अधिक प्रमाणमें सेवन कराया जाय, तो स्पष्टतया शारीरिक इन्द्रियव्यापार या शारीरिक कर्मों (अफ़आल आज़ा)में विकार या दोष भी हो सकता है" (कुल्लियात कानून)। "स्वाभाविक चेष्टाओं वा कर्मोंमें अन्य बाह्य कारणसे (बिल्अर्ज़)" अन्तर आनेका स्वरूप यह है—मान लो कि द्वितीय कक्षाका उष्ण औषधद्रव्य हो और वह इसके साथ ही विरेचनीय भी हो, तो विरेकाधिक्य (अत्यधिक मलोत्सर्ग) के कारण संभव है कि स्वाभाविक चेष्टाओं या कर्मोंमें परिवर्तन हो जाय। इसी प्रकार यदि कोई औषधद्रव्य उष्ण वा शीतल होनेके साथ-साथ मलमूत्र-प्रवर्तक, वामक या स्वेदल हो तो विरेचनीय औषधद्रव्योंकी भाँति उनसे भी किसी अन्य कारणसे (बिल्अर्ज़) उसी प्रकारका विकार या दोष उत्पन्न हो सकता है। उक्त अवस्थामें यह विकार या दोष उसके निजी या स्वाभाविक गुणोंसे प्रादुर्भूत हुआ है ऐसा नहीं कहा जा सकता (गीलानी)। "अन्य कारणोंसे (बिलअर्ज़) स्वाभाविक कर्मोंमें अकस्मात् अंतर पड़ने"का अधिक यथार्थ स्वरूप यह है कि द्वितीय कक्षाकी उष्ण औषधि उपयोगकी जाय, जो साधारण विरेचन भी हो और संयोगवश किसी आभ्यन्तरिक कारणसे (उदाहरणत इस कारणसे कि वह व्यक्ति विरेकके लिये प्रथमसे ही प्रस्तुत हो) आशाके विपरीत बहुतसे विरेक (दस्त) आ जायँ और विरेकके उक्त बाहुल्यसे उस मनुष्यके शरीरमें व्यक्त परिवर्तन (कर्म-विकारकी सीमा पर्यंत) हो जाय जो तृतीय और चतुर्थ कक्षाकी औषधिके गुण-कर्म हैं। (यह शारीरिक द्रवों पर प्रभाव करते हैं। इसका प्रभाव अनुभूत होता है, किन्तु हानिकर नहीं होता)।

तृतीय कक्षा (दर्जा सालिसा—दर्जा सोयम्)की औषधिसे यह अभिप्रेत है कि उसके कर्मकी शक्ति और उग्रतासे स्वभावत (बिज्जात) शरीरमें स्पष्ट रूपसे विकार या हानि प्रगट हो जाय। परंतु इस सीमा तक न पहुँचे कि मनुष्य उससे विनष्टप्राय और शरीर दूषित हो जाय (हाँ, बारबारके प्रयोगसे प्राणनाश और शरीरदूषण संभव है)। यह शारीरिक द्रवोंका अतिक्रमणकर वसा (शहम)में प्रभाव करती है। इसका प्रभाव हानिकर होता है।

चतुर्थ कक्षा (दर्जा राबिआ—दर्जा चहारम्)की औषधिसे यह अभिप्रेत है कि उसका कर्म इस सीमा तक पहुँच जाय कि वह शरीरके मस्थानको अस्त-व्यस्त करके मनुष्यका प्राणनाश कर दे (कुल्लियात कानून)।

वक्तव्य—इस कक्षाकी औषधि मांस और अस्थि, वातनाड़ी और वाहिनी प्रभृति शुक्रोत्पन्न अंगो (अर्थात आज़ा असलिय्या) तक प्रभाव करती और उनको पराभूत कर लेती है तथा घातक होती है। जिसका मिज़ाज मोतदिल न हो, प्रत्युत औषधिके अनुरूप हो, यदि उष्ण प्रकृतिका ऐसा व्यक्ति उष्ण-गुण-विशिष्ट औषधि और शीतल प्रकृति-विशिष्ट पुरुष शीतल औषधि सेवन करे, तो उसके लिये ऐसी चतुर्थ कक्षाकी औषधि प्राणनाशका कारण होती है। प्रत्येक वन्यजात औषधि किसी आरोपित (बुस्तानी) औषधिकी अपेक्षा प्रत्येक गुणमें बढ़ी हुई होती है।

इसके साथ साथ इतना और जानना चाहिए कि वीर्यके तारतम्य भेदसे यूनानी वैद्योंने उपर्युक्त कक्षा-चतुष्कके ये निम्न तीन अवान्तर भेद (मरतबा, मदारिज) और किये हैं—आदि (अव्वल), अंत (आखिर) और मध्य (औसत, वस्त)। उदाहरणत कहा जाता है कि यह औषधि द्वितीय कक्षाके आद्यन्त (आदि या अंत)में अथवा द्वितीय कक्षाके मध्य (वस्त)में उष्ण है। किसी कक्षाके प्रथम भाग (आदि)से औषधिके गुण-कर्मकी स्वल्पता और

---

१. विद्वद्वर गीलानीकी उक्त व्याख्या ध्यान देने योग्य है, क्योंकि द्वितीय कक्षाका औषधद्रव्य होने पर वह तीक्ष्ण एवं उग्र विरेचक हो, इस पर ऊहापोहकी दृष्टिसे विचार करना नितांत आवश्यक है। जयपालकी उष्णताको यूनानी वैद्योंने चतुर्थ कक्षामें निर्धारित किया है। चतुर्थ कक्षाका द्रव्य मारक वा प्राणनाशक हुआ करता है। अब देखना यह है कि जयपाल किस प्रकार अपना यह घातक प्रभाव करता है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, यह अत्यंत विरेचन ही के कारण प्राणनाशकी सीमा तक पहुँचाया करता है (कुल्लियात अदविया)।

अंतिम भाग (अंत)से उसकी अधिकता और मध्य भाग (वस्त)से इन दोनोके बीचके गुण-कर्मोका बोध होता है अर्थात् जो औषधि उदाहरणत प्रथम कक्षाकी आदि (मर्तबा अव्वल)में उष्ण होगी उसके गुणोका अनुभव किंचिन्मात्र भी न होगा (आयुर्वेदकी परिभाषाके अनुसार इसे मृदुवीर्य कह सकते हैं)। जो औषधि प्रथम कक्षाके मध्यमें उष्ण होगी उसके गुणोका अनुभव किसी भाँति अधिक होगा (आयुर्वेदीय कल्पनाके अनुसार यह मध्यवीर्य है)। और जो प्रथम कक्षाके अंतमें उष्ण होगी उसके गुणका अनुभव मध्यम वालीकी अपेक्षया भी अधिक होगा (आयुर्वेदीय कल्पनामें इसे तीक्ष्णवीर्य कहते हैं)। वस्तुत औषधद्रव्यके वीर्यके तारतम्य भेदानुसार किया हुआ उक्त कक्षा या श्रेणी-विभाजन सर्वथा मौलिक और सिद्धान्तमूलक नही कहा जा सकता, अपितु सामान्य और आनुमानिक है। तात्पर्य यह कि हमारे पास इसकी, सिद्धि या निश्चित ज्ञान (निश्चित)के लिये कोई नाप या बाँट नही होता, अपितु उसका ज्ञान आनुमानिक ही होता हैं।[1]

चतुर्थ कक्षाकी औषधिको अन्यान्य प्राचीन यूनानी वैद्योके सिद्धान्तानुसार शेखुर्रईसने विषौषध (अदविया सम्मिया) कहा है। उपविष (दवाऽसम्यी) और विष (सम्ममुतलक)में प्राचीन यूनानी वैद्य लक्षणानुसार यह भेद निरूपण करते हैं—दवा सम्मी (उपविष) गुणप्रभावसे कर्म करती है और सम्म मुतलक (विष) द्रव्य प्रभाव अर्थात् जातिस्वरूप (सूरते नौइय्या) से।

औषधीय गुण-कर्म और कक्षा-निर्धारण विषयक विचार

औषधद्रव्योंके कर्मो और उनकी कक्षाओके मालूम करनेके जिस मानदण्डका ऊपर निर्देश किया गया है, उसमें अनेकानेक व्यवहारोपयोगी गुणोंके होते हुए भी कतिपय विचारणीय अपूर्णताएँ और त्रुटियाँ भी हैं, जिनकी ओर कुल्लियात अदविया नामक ग्रन्थके निर्माता हकीम कबीरुद्दीन महोदयने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है, यथा —

(१) यह सर्वथा स्पष्ट है, कि किसी औषधद्रव्यकी सेवनीय मात्रा उसके गुणानुसार किये हुए कक्षा-विभाजन (दर्जे कैफिय्यात)के ज्ञानके बिना कदापि स्थिर नही की जाती और न यह सभव एव बुद्धिग्राह्य है। परतु हमें यहाँ औषधद्रव्योंके वीर्य और प्रभाव तथा उनकी कक्षाओंका आनुमानिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिए यह बतलाया गया है कि "वह अपनी निश्चित व्यवहारोपयोगी सेवनीय मात्रामें उपयोग की जाय।"

(२) दवा सम्मी (उपविष) और सम्म मुतलक (विष)में धात्वर्थके विचारसे तो हम यह भेद कर सकते हैं कि चतुर्थ कक्षाकी औषधि (दवा सम्मी) गुण-प्रभावसे प्राणहारक हुआ करती है और सम्म मुतलक (विष) अपने द्रव्यप्रभाव या जातिस्वरूप (सूरते नौइयया) से। परतु यह हमारी समझके बाहर है कि इन उभय विषयोंके ज्ञानके लिए कौन सी कसौटी या मानदण्ड (मैयार) उपयोग किया जायगा और हम यह कैसे समझ सकेंगे कि यह गुण-प्रभाव है और यह द्रव्यप्रभाव। इसके अतिरिक्त अद्यावधि मुझे कोई ऐसा द्रव्य प्राप्त नही हुआ जो प्राणघातक हो और यूनानी वैद्योंने उसे गुणविहीन बतलाया हो। उदाहरणार्थ, संखिया (सम्मुलफार)को यदि हम विष (सम्ममुत्-लक) कहें तो यह चतुर्थ कक्षामें उष्ण भी स्वीकार की गयी है। इसलिए इसका प्राणघातक कर्म एतज्जन्य प्रभूत उत्तापका फल होगा या इसके द्रव्यप्रभावका, इसबातका निर्णय असभव है।

(३) यदि अन्वेषण और परीक्षणकी उक्त कसौटी या मानदण्ड सिद्धान्तत सर्वथा सत्य है और यदि उक्त नाप और बाँट (अथवा तुला) ठीक है, तो इसका क्या कारण है कि पुराकालीन और उत्तरकालीन यूनानी वैद्य प्राय ऐसे मामलोमें काँप उठते हैं। बहुश औषधियोकी कक्षाकी (दरजे कैफिय्यत)के विषयमें परस्पर विवाद है, जैसे—

१　दोषसाम्यके ज्ञानके लिए आयुर्वेदमें भी ऐसा ही अनुमानसे काम लिया गया है—वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वात्तथैव च। दोषधातुमलाना तु परिमाण न विद्यते ॥ (सु० सू० अ० १५)।

कपूर जैसी अतिम कक्षाकी औपधि जिसकी गुणविपयक कक्षाको कोई व्यक्ति तृतीय और चतुर्थसे न्यून नही बत-लाता। किन्तु पुनरपित एक वर्ग यदि उसे उष्ण बतलाता है, तो दूसरा वर्ग उसे शीतल बतलाता है। इन उभय मतोमें आकाश और पातालका अतर है। इतनी अतिम कक्षाकी ओपधिके सबधमें न्यूनाधिक इस बात पर तो समस्त यूनानी वैद्योका मतैक्य होना चाहिए था, कि वह उष्ण है अथवा शीतल। औपधद्रव्यके कक्षानिर्धारण में न्यूनाधिक अतर पडना इतना आश्चर्यकी बात नही है। यही वर्फकी भी दशा है। परम आश्चर्यका विपय है, कि सखिया चतुर्थ कक्षाकी औपधि है जिसकी मात्रा अधिकसे अधिक अर्ध चावल तक हो सकती है। परतु तृतीय या चतुर्थ कक्षामें शीतल होने पर भी वर्फकी मात्रा एक पाव तक है। यही नही अपितु अहोरात्रमें कोई-कोई सेरो पी जाते है।

प्रतिसस्कार और सशोधनके तजवीज

उक्त आलोचना एव समीक्षासे हमारा अभिप्राय सहृदयताके साथ यह है, कि यूनानी वैद्यकविद्याके समर्थकोका ध्यान इस ओर आकर्षित हो। उनके तनिक ध्यान देनेसे उक्त दोपका परिहार हो सकता है। मैं इस बातसे सहमत हूँ, कि कक्षाओका निर्धारण व्यवहारकी दृष्टिसे अत्यत उपादेय है। मेरी यह भी हार्दिक इच्छा है कि प्राचीनोके उक्त स्मारकको स्थिर एव सुरक्षित रखा जाय और औपधद्रव्योके कर्मोकी चार ही कक्षाएँ स्थिर रखी जायँ। रहा उस कठिनाईका परिहार, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, उसके प्रतिकारका उपाय यह है कि, उपरिलिखित नियमोंमें कुछ समुचित परिवर्तन एव सशोधन कर दिया जाय। उदाहरणत इस कथनके स्थानमें कि "वह परीक्ष-णीय औपधद्रव्य अपनी सेवनीय मात्रामें उपयोग किया जाय" यह कहा जाय कि, "यदि वह द्रव्य इतनी मात्रामें (यहाँसे यहाँ तक, उदाहरणत १ माशासे २ माशा तक) उपयोग करनेसे घातक सिद्ध हो, तो वह चतुर्थ कक्षाका औपधद्रव्य है।" "और यदि वह उपर्युक्त मात्रामें सेवन करनेसे घातक सिद्ध न हो, परंतु बडी हानिका कारण हो, तो वह तृतीय कक्षाकी औपधि है।" इसी तरह चारो कक्षाएँ इसी निश्चित मात्राके विचारसे निर्धारित कर ली जायँ।

९ : विपोपविप (दवाऽसम्मी और सम्ममुत्लक़)

यदि प्राचीन प्रात स्मरणीय पूज्य विद्वान् मनीपियोंकी इन उभय परिभापाओको यथावत् स्थिर रखा जाय, तो उनके कर्मको गुण और द्रव्य (सूरत)से सबद्ध करनेके स्थानमे इस तरह समझना उचित है। सम्म मुत्लक या जहर खालिश (विप) वह वस्तु है जो अज्ञात या अचिन्त्य रूपसे मनुष्यका सहार कर दिया करती है और उसका कोई अश या अग (जुज) कभी व्यधिनिवारणके लिए औपधरूपेण उपयोग नही किया जाता। इसकी तुलनामें दवा सम्मी (उपविप) उसे कहते है, जिसको सपूर्ण (समूचा) या उसके किसी भागको व्यधिके प्रतीकारार्थ औपध रूपेण व्यवहार किया जाता है। उदाहरणत जयपालके भीतर एक विरेचनकारी उपादान पाया जाता है और उसी विरे-चनीय उपादानके कारण उसका कभी औपधरूपेण उपयोग किया जाता है। जयपाल एक तीव्र विरेचक है। अस्तु, विरेचनकी उग्रता (तीव्रता)मे कभी यह प्राणनाशका कारण भी सिद्ध होता है। जयपालके अतिरिक्त दवा सम्मी (उपविप)के उदाहरण बहुतायतसे मिल सकते हैं, परतु अधुना सम्म मुतलक अर्थात् विपका उदाहरण खोज निका-लना सहज नही है।

प्राचीन यूनानी वैद्य सखिया (सम्मुल्फार), वत्सनाभ (बीश), कुचला और अन्यान्य बहुसख्यक विपद्रव्योका चिकित्सार्थ औपधरूपेण व्यवहार नही करते थे और उनको विप (खालिस जहर) समझते थे। पर आधुनिककालमें यह विपौधियाँ विभिन्न प्रकारसे व्याधिनिवारणके काम आती है और उनके कार्य चमत्कारिक और अद्भुत सिद्ध हुआ करते हैं[1]। सर्प-विप[2] और अन्यान्य विपधर प्राणियोंके उपलब्ध प्राणाघ्न द्रव्य(मुहलिक मवाद्) कदाचित्

१ आयुर्वेदमें तो विपोंका उपयोग औपधमें उसके जन्मकालसे ही अथवा उससे भी पूर्वसे होता आ रहा है। प्राचीनसे प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रथोंमें जगम और स्थावर (प्राणिज, खनिज और वानस्पतिक) सभी

विष (सम्म मुतलक)का उदाहरण बन सकें, पर केवल उसी समय तक, जब तक कि औषधरूपेण प्रयुक्त न हो, जिसकी कालमर्यादा केवल हमारे अज्ञानांधकारका काल है। क्योंकि प्रकृतिकी यह असीम कृपा-कटाक्षका ही फल है कि एक ओर जहाँ उसने विषद्रव्य उत्पन्न किये हैं वहीं दूसरी ओर उसमें उसने विषके साथ अमृत भी उत्पन्न कर दिया है। जब किसी प्रकार हमारे ज्ञानकी सीमामें उसके अमृतवत् गुण आ जाते हैं, तब उन्हें हम औषधरूपेण उपयोग करने लग जाते हैं, जैसा कि उपर्युक्त विषोंके सबंधमें हुआ (कुल्लियात अदविया)।

प्रकारके विषोपविषों (विषद्रव्यों)का औषधरूपेण प्रचुर प्रयोग और तज्जन्य विषप्रभावकी चिकित्साका सविस्तार वर्णन देखनेमे आता है। तात्पर्य यह कि आयुर्वेदीय चिकित्सक अतिप्राचीन कालसे ही इनका निर्भीकतापूर्वक सफल और निरापद प्रयोग करते आ रहे हैं। भारतीय आयुर्वेदीय ग्रथ इसके प्रमाण हैं।

२. सर्पविषका औषधरूपेण प्रयोग भी आयुर्वेदमें आजका नहीं, अपितु अतिप्राचीन है। चरकमें लिखा है, "पानभोजनसयुक्त विषमस्मै प्रयोजयेत्। यस्मिन् वा कुपित सर्पो विसृजेद्धि फले विषम् ॥" (चरक चि० १३ अ०)। इसके अतिरिक्त सूचिकाभरण, विसूचिकाविध्वंसन तथा अन्यान्य बहुश योगोंमें सर्पविष पड़ता है। अत यह सिद्ध है कि तीव्रतम विष (सर्पविष) भी योग्य मात्रामें और रोग एव रोगीके बलाबल और देश, ऋतु, काल इत्यादिका सूक्ष्म विचार करके देने पर अमृतके समान गुण (कार्य) करता है और अमृतसमान दूध भी ठीक योजना न करने पर विषतुल्य हो जाता है। इसी दृष्टिसे लिखा है—"योगादपि विष तीक्ष्णमुत्तम भेषज भवेत्। भेषज चापि दुर्युक्त तीक्ष्ण सपद्यते विषम्" ॥ (चरक)। त यथा ॥ तथा अन्न हि प्राणीना प्राणास्तदयुक्त्या निहन्त्यसून्। विष प्राणहर तच्च युक्तियुक्त रसायनम् ॥ "यथा विष यथा शस्त्र यथाऽग्निरशनिर्यथा। तथौषधमविज्ञात विज्ञातममृतोपमम् ॥ ओषध चापि दुर्युक्त तीक्ष्ण सपद्यते विषम्। विष च विधिना युक्त भेषजायोपकल्पयेत् ॥" (काश्यपसहिता)।

"यान्यपि स्वभावादेव विषमन्दकादीन्यपथ्यानि, तान्यप्युक्तानि क्वचित् पथ्यानि भवन्ति, यथा उदरे—"तिल दद्यात् विषस्य तु" (चरक चि० अ० १३)। तात्पर्य यह कि ससारमें कोई द्रव्य अनौषध नहीं है—"जगत्येवमनौषधम्। न किञ्चिद्विद्यते द्रव्य वशान्नानार्थयोगयो ॥" (वाग्भट)। नास्ति मूलमनौषधम्। योजकस्तत्र दुर्लभ। (सुभाषित)।

वछनाग (बीश) जब उपयोग किया जाता है तब उसके शोपित होनेके उपरात हृदय-प्रसारणकी शक्ति वातकेंद्रोंके प्रभावित होनेके कारण निर्वल हो जाती है ।

बाह्य औषधद्रव्यका शोपण—जिन औपधद्रव्योका वहि प्रयोग होता है, अभिशोपित होने या न होनेके विचारसे उनके दो भेद होते है—(१) वह औपध-द्रव्य जो छिद्रो वा स्रोतो (मसामात)के द्वारा शरीरके आतरिक अग-प्रत्यगोमें अभिशोपित होकर अपना प्रभाव करते हैं, उदाहरणत प्राय स्नेहमय पतले लेप (रोग़नी तिला) । (२) वह औपधद्रव्य जो शरीरके आतरिक अग-प्रत्यगोमें शोपित नही होते, अपितु शरीरके वाहर रहकर उसमे किसी गुणका प्रकाश कर देते हैं । इसके पुन ये दो अवान्तर भेद होते हैं—(अ) यह गुण (कैफिय्यत) उनमें निपातजन्य (बिल्फेल) होता है । उदाहरणत वह पतला लेप (तिला) जो निपातसे शीतल अर्थात् स्पर्शसे ठढा (बिल्फेल बारिद) हो और शीतल गुणसे उस जगहको शीतल कर दे या वह सेक (तक्मीद) जो निपातसे उष्ण अर्थात् बहिरुष्ण या उष्णस्पर्श (बिल्फेल गर्म) हो और अपने उष्ण गुणसे उस जगह गर्मी पैदा कर दे । (ब) या उक्त गुण उनमे निपातजन्य (बिल्फेल) मौजूद नही होता, अपितु उपयोगके अनन्तर उक्त गुणका प्रकाश होता है । उदाहरणत वाष्प वन कर उडनेवाले पतले लेपो (अत्‌लिया मुतबख्खिरा)के उपयोगसे त्वचा शीतल हो जाती है ।

औषधीय कर्मवैशिष्ट्य

औपधद्रव्यके बहिराभ्यतरिक कर्मभेद—निर्वल (हीन) वीर्यके (ज़ईफुल जवाहिर) औपधद्रव्य विभिन्न प्रकारसे अपना कर्म करते हैं—(१) कतिपय औपधद्रव्य ऐसे हैं जिनके वाह्यातरिक उपयोगसे दो परस्पर विरोधी कर्म निष्पन्न होते हैं अर्थात् जो कर्म उनके वाह्य प्रयोगसे प्रगट होता है उनके आतरिक प्रयोगसे उसके विरुद्ध कर्म प्रगट होता है । उदाहरणत धनियाँ (कश्नीज़)का जब बाह्य प्रयोग किया जाता है (धनियेके हरे पत्तोको पीसकर अगके ऊपर प्रलेप किया जाता है), तब वह कठिन सूजनको उतार देता है और जब उसका आतरिक प्रयोग करते (खाते) हैं तब शोथजनक दोपोको विलीन करनेके स्थानमें उन्हें सान्द्रीभूत और घनीभूत (गलीज और कसीफ) बना देता है[1] । इससे उसकी पाचनक्रिया वद हो जाती है । इसका कारण यह है कि भक्षण करनेसे शारीरिक ऊष्मा (हरारते गरीजी) उसके विलीनकर्ता सूक्ष्म सत्व (जौहर लतीफ मुहल्लिल)का मुकाबिला करके उसे नष्टप्राय कर देती हैं तथा वह स्वल्प होता है । अतएव वह शरीरमें कोई प्रभाव प्रगट नही कर सकता, प्रत्युत स्वय लुप्त हो जाता है । शीतल सत्व जो अतिमात्रामें होता है, वह अपनी पूर्वावस्थापर शेप रह जाता है । जब लेप करते हैं तब उस समय पार्थिव वीर्य (जौहर) स्रोतोमें प्रविष्ट नही हो सकता, अतएव प्रभाव नही करता और आग्नेय सूक्ष्म (लतीफ) जौहर प्रवेशित होकर अपना कर्म प्रकाशित करता है—उष्णता उत्पन्न करके दोपोका परिपाक करता है । जो यह कहते हैं कि शीरखिस्तको मुखमें धारण करनेसे थोडी-सी शीतलता प्रतीत होती है और खानेसे किंचित् उष्णता अनुभूत होती है, उसका भी उपर्युक्त अभिप्राय है । (२) कतिपय औपधद्रव्य ऐसे हैं जिनका कतिपय विशेष कर्म केवल वाह्य प्रयोगसे अर्थात् शरीरपर लगानेसे होता है और जब उसका आतरिक प्रयोग कराया जाता है, तब उसका उक्त कर्म प्रगट नही होता अर्थात् शरीरके भीतर पहुँचनेपर उनका प्रभाव नही होता । उदाहरणत प्याज और लहसुन । यदि इनको पीसकर सूजन आदि पर प्रलेप किया जाय तो उन्हें पकाकर विदीर्ण कर डालते हैं और त्वचा क्षतयुक्त हो जाती है । परतु जब इनको खिलाया जाता है तब इस तरह का कोई कर्म आमाशय आदिके धरातल पर प्रगट नही होता अर्थात् उस पर क्षत नही पडता । कारण यह है कि जब इनको लगाते हैं, तब एक स्थानपर चिरकाल तक ठहरनेसे उनमें स्थित क्षारीय उष्ण और दाहक द्रव सम्यक् रूपसे प्रभाव करते हैं और शरीरके भीतर पहुँचने पर प्रकृति (तबीअत) उनका उपयोग करने लगती है, एक स्थानमें स्थिर नही रहने देती, प्रत्युत उनके

---

१ इल्मुलअद्‌वियानफीसीसे उद्धृत ।

स्वरूप और तीक्ष्णताको रूपांतरित और प्रशमित कर देती है। इसलिए यह उभय द्रव्य अपना कोई कर्म प्रगट नही कर सकते। (३) कतिपय औषधद्रव्य ऐसे हैं जिनका कतिपय विशेष कर्म केवल आतरिक उपयोगसे (खिलानेसे) प्रगट होता है और जब उनका बाह्य प्रयोग कराया जाता है, तब उनका उक्त कर्म बिल्कुल ही प्रगट नही होता। उदाहरणतया सफेदा काशगरी यदि आतरिक रूपसे प्रयोग किया जाता (खिलाया जाता) है, तो वह साघातिक सिद्ध होता है और जब इसको बाह्यरूपसे मलहर और प्रलेपकी शक्लमें प्रयोग किया जाता (लगाया जाता) है, तब इसका उक्त कर्म-विशेष (प्राणघ्न) प्रगट नही होता। (४) कतिपय औषधद्रव्य ऐसे हैं जिनके बहिराभ्यतरिक उपयोगसे कोई कर्म-भेद प्रकाशमें नही आता और उसका कार्य उभय स्थानमें समान और एक-जैसा होता है। उदाहरणत जल दोनो स्थानमे शीत प्रदान करता है।

शरीरके विविध अग-प्रत्यगपर औषधद्रव्यके कर्म—विभिन्न औषधद्रव्योंके कर्म शरीरके विभिन्न अग-प्रत्यगोंके साथ विलक्षण और अद्भुत विशेषताएँ रखते हैं, जिनकी कार्यकारणमीमासा मानवी तर्कणाशक्तिकी सीमासे बाहर है। उदाहरणत कतिपय औषधद्रव्य हृदयमे सबध रखते हैं (अद्विया कल्बिया), कतिपय मस्तिष्कमे (अद्विया दिमागिया), कतिपय यकृत्से (अदविया कबिदिया) जो उनके तत्सबधित कर्मोको तीव्र वा मद किया करते हैं। इसी प्रकार कतिपय औषधद्रव्य प्रधानतया अन्त्र पर प्रभावकारी (मुवस्सिर) होते है, कतिपय वृक्को पर, कतिपय गर्भाशय पर और कतिपय त्वचा पर, जिनसे उदाहरणत विरेक आने लगते हैं और मूत्र, आर्तव या प्रस्वेदका प्रवर्तन हाने लगता है। जो औषधद्रव्य आँतोकी श्लैष्मिक कला पर प्रभाव डालकर विरेकका कारण होते हैं, वह गर्भाशयके ऊपर आवरित श्लैष्मिक कला पर प्रभाव डालकर आर्तव-प्रवर्तनका कारण क्यो न हो? जो औषधद्रव्य वृक्कगत स्रोतसोको विस्फारित करके मूत्रप्रवर्तनका साधन बनते हैं, वह त्वगीय स्रोतोको प्रसारित करके स्वेदप्रवर्तनका कारण क्यो न बने? जो औषधद्रव्य हृदयके कर्मको तीव्र कर सकते हैं वह मस्तिष्क और यकृत्के कर्मोको तीव्र न कर सकें? इसका क्या कारण है कि एक स्पर्शाज्ञताजनक औषधद्रव्य कनीनिकाका सकोचन कर देता (तारकासकोचन—मुज़ह्हिरसुक्बहे इनबिय्या) है, और दूसरा उसको विस्फारित कर देता (तारका-विकासि—मुफत्तेह सुक्बहे इनबिय्या) है।

यह और इसी प्रकारके अगणित प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं, जिनमेंसे किसी एक प्रश्नका कोई ऐसा समाधान-कारक समीचीन उत्तर नही, जिससे प्रश्नकर्ताका सतोष या समाधान हो सके। इस प्रकारके कर्मों वा प्रभावोंके विषयमें केवल यह कह कर टाल दिया जाता है कि यह द्रव्यका स्वभाव अर्थात् आत्मप्रभाव (जाती खवास) है जो उनके विशेष सगठन—उनके स्वरूप और स्वभाव, प्रकृति वा आत्मा (माहिय्यत और हकीकत) तथा जाति-स्वरूप (सूरतेनौइय्या)से सबद्ध है।

किसी-किसी औषधद्रव्यके विषयमें किसी सीमा तक यह प्रतिज्ञा (दावा)की जा सकती है, कि हमें उनके कर्मोकी कार्यकारणमीमासा ज्ञात है, परतु थोडे विचार और अन्वेषण (तर्क और युक्ति)के पश्चात् यह सिद्ध हो जाया करता है कि यह ज्ञानप्रवचना मात्र है जिससे एक जिज्ञासु अपने हृदयको सतुष्ट (समाधान) कर लिया करता है।

मेरे उक्त मन्तव्यका स्पष्टीकरण इस दृष्टान्तसे हो जाता है—यदि एक हृदयोत्तेजक द्रव्यके सबधमे अनुभव यह सिद्ध कर दे कि द्रव्यके उक्त कर्म (हृदयोत्तेजन)का *कार्यकारणभाव यह है* कि इससे हृदयके *वे वाततंतु प्रभावित* होते हैं जो हृदयकी गतिको तीव्र करनेके वास्तविक साधन हैं, तो इतने ज्ञानके पश्चात् सहज ही यह प्रतिज्ञा की जा सकती है कि उक्त औषधद्रव्यके कमकी कार्यकारणमीमासा (कैफिय्यते तासीर) ज्ञात है। परतु इसके बाद यह प्रश्न पूर्ववत् बना (समाधानरहित) रह जाता है कि—"उक्त द्रव्य हृदयके उन उत्तेजनकारी वातनाडियो पर विशेष-रूपसे क्यो प्रभाव डालता है, हृदयके अन्यान्य वाततंतु उससे क्यों प्रभावित नही होते?" इसी तरह अखिल औषध-द्रव्योके विशेष कर्मोंका अनुमान करना चाहिए।

विभिन्न मात्रा-भेदसे औषधद्रव्यके कर्मोंकी भिन्नता—औषधद्रव्योके विशेष कर्मोंका कार्यकारणसबध जिस प्रकार विविध अगोंके अनुसार नही दिखलाया जा सकता, उसी प्रकार कतिपय द्रव्योकी यह विशेषता भी

अवर्णनीय है कि वह अल्पमात्रामें कुछ और कार्य करते हैं और वडी मात्रामें कुछ और। उदाहरणत (१) कपूर वडी मात्रामें कामावसादकर वा पुस्त्वोपघाति (मुज्इफबाह्) है और अल्प मात्रामें वाजीकर। (२) रेवदचीनी अल्प मात्रामें (१ रत्तीसे २ या २॥ रत्ती तक) दीपन (मुकव्वी मेदा) है, और वडी मात्रामें (१० से १५ रत्ती तक) विरेचन।

एक ही द्रव्यके विरोधी कर्म—उपर्युक्त विशेषताओ और विलक्षणताओसे अधिक विलक्षण वात यह है कि एक ही द्रव्यसे विरोधी (उभयार्थकृत) कर्म प्रकाशित हों। रेवदचीनी जव वडी मात्रामें सेवन की जाती है, तव प्रथम उससे विरेक आते हैं, तदुपरात मलवद्धता (कब्ज) उत्पन्न हो जाती है।

यहाँ शैखुर्रईस-वू-अलीसीनाका यह शोध भूल न जाना चाहिए कि—"यदि एक द्रव्यसे दो परस्पर विरोधी कर्म प्रकाशित हो रहे हैं तो उसका यह अर्थ नही कि उभय विरोधी कर्म औषधद्रव्यके एक ही उपादान वा अवयवमें निहित हैं, प्रत्युत उक्त अवस्थामें दो विभिन्न उपादान होते है जो एक या विभिन्न कालमें आगे-पीछे कार्य करते हैं, जैसा कि रेवदचीनीके उक्त उदाहरणमे होता है अर्थात् विरेचक उपादानका कार्य प्रथम होता है और उसकी समाप्तिके उपरात सग्राही (काविज) उपादानका या अभिशोषित होनेके उपरात विभिन्न उपादान विशेष अवयवोपर कार्य करते है, जिनके साथ उनके कर्मका विशेप सवध होता है। समिश्रवीर्य औषधद्रव्य (दवाऽ मुरक्कवुल्कुवा)का यह एक सर्वांगीण और समीचीन उदाहरण है। इसी प्रकार अनेक औपधद्रव्य प्रारभमें यदि शारीरिक ऊष्मा (देहाग्नि)को विवर्धित कर देते हैं (उष्णताका कारण होते हैं), तो अतमें वह उसको (शारीरिक ऊष्माको) घटा देते हैं (शीतसजननका कारण होते हैं)। स्वेदन औपधद्रव्य इसके सर्वांगीण उदाहरण है।

वाष्पोके रूपमे ऊर्ध्वगमन वा उडना—कतिपय औपधद्रव्योके विशेप अगोका यह स्वभाव (खुसूसियत) होता है, कि वे वायुमडलकी साधारण ऊष्मासे या धूप और अग्निके प्रवल उत्तापमे प्रभावित होकर वाष्परूपमें उडने लगते है। उदाहरणत कपूर, रसकपूर, सखिया, अजवायन, सौफ, गुलाब इत्यादि। इसी गुणके कारण विशेप विधिसे सखिया और रसकपूरका सत्त्वपातन किया जाता है। गवक, लोवान और अगरका धूप दिया जाता है, और गुलाव, केवडा, सौफ, इलायची, लौग, दालचीनी और अन्यान्य सुगधिपूर्ण द्रव्यो (अद्विया इत्रिया)का अर्क परिस्रुत किया जाता है। अर्कके उक्त द्रव्योमें एक सूक्ष्म सुगधसत्त्व (लतीफ जौहरेमुअत्तर) या सूक्ष्म तैल (लतीफ रोगन) होता है, जिनमें उडनेकी क्षमता होती है। जिन द्रव्योमें इस तरहके उडनशील सूक्ष्म अवयव न हो, उनसे अर्क परिस्रुत करना सिद्धातके विरुद्ध और निरर्थक कार्य है। इसी कारण रसवत, एलुआ, गुड, शर्करा, लवण, जहरमोहरा (हरिताश्म), वशलोचन, सनाय, निसोथ, हड, वहेडा, आँवला जैसे द्रव्योंको अर्कके रूपमें उपयोग नही किया जाता और न उक्त रूपमें उनके विशेप गुणोकी आशा रखनी चाहिए। यदि किसी औपधद्रव्यका प्रधान वीर्य (जौहर फअ्आल) तिक्त, कपाय, मधुर या नमकीन है और उसके अर्कमें यह स्वाद न आये, तो समझना चाहिए कि वह अर्क व्यर्थ और वीर्यहीन है।

मासार्क (माउल्लहम)मे मासका वीर्य नही होता—मास और अडेके मासजातीय और जीवनीय (पोपण) घटक (अज्जाऽ लह्मिया व गिज़ाइया) जिनकी हमें निर्वल रोगियोके वलवर्धन और अग-प्रत्यगकी पुष्टिके लिए आवश्यकता हुआ करती है, वाष्पोके रूपमें ऊर्ध्वारोहण (सुऊद) नही किया करते। अतएव उनके सत्त्वोको अर्कके रूपमें प्राप्त नही किया जा सकता और मासार्क (माउल्लहम)की सुदर वर्णकी वहुमूल्य शीशियाँ वास्तवमें मासके घटको (अज्जाऽ लह्मिया)से सर्वथा शून्य होती है। रहे वे सुगधावयव जिनसे मासार्कके प्राय योग शून्य नही हुआ करते, उदाहरणत कस्तूरी, अवर, केसर इत्यादि, इनसे जिन गुणोका सवध है, मासार्कके पीनेसे केवल वे ही गुण-कर्म प्रकाशित हुआ करते है, वरन् सेरो शुद्ध मासार्कमें मासकी एक वोटी और अडेकी एक जर्दीके तुल्य वलवर्धन और पोपणकी सामग्री नही है। यदि दुर्वल रोगियोको वस्तुत मासार्क (माउल्लहम) देना हो, तो मासरस (यखनी)के रूपमें उसका रस प्राप्त किया जाय, न कि मासको नल-भवके (करअ अवीक)मे डालकर उसका अर्क खीचा जाय, जिससे वहुधा केवल परिस्रुत जल प्राप्त हुआ करता है और पक्षियोके वहुमूल्य मासको नष्ट कर दिया जाता है। यह एक विलक्षण वात है कि प्राचीन यूनानी योगग्रथो (करावादीनात)में इस प्रकार मासार्क (माउल्लहम)के योग नही मिलते जो अर्क परिस्रुत कर वनाये जायँ—यह उत्तरकालीन यूनानी वैद्योका सारहीन नूतन आविष्कार (वदअत सय्यिआ)[1] है। हमारे अधिकाश यूनानी चिकित्साप्रेमी अज्ञानवश अर्कके योगमे ऐसे उपादान सम्मिलित कर दिया करते है जिनके वीर्यवान् भाग लेशमात्र भी अर्कमें नही आते, परतु वे समझते है कि वे वीर्यवान् उपादानोसे चिकित्सा कर रहे हैं (कुल्लियात अद्विया)।

द्रवीभवन (पिघल जाना)—कोई-कोई औपधद्रव्य उत्तापके प्रभावसे या अन्य द्रव्योके मेलसे द्रवीभूत या न्यूनाधिक मृदु हो जाते है—उदाहरणत वसा, घृत, मोम, गधक इत्यादि। उत्तापके प्रभावसे असख्य पदार्थ द्रव या प्रवाही और मृदु हो जाया करते है और उनका आयतन वढ जाता है। शीतका प्रभाव इसके विपरीत होता है। उत्तापमे प्रत्येक द्रव्यके द्रवीभूत होनेके लिए एक विशेष उत्तापाक आवश्यक है, उदाहरणत लोहा तीक्ष्ण उत्तापकी अपेक्षा रखता है और वर्फ मदतम उत्ताप की। आयतनवृद्धिको अरवी परिभापामे तखलखुल कहा जाता है और आयतनके घटनेको तकासुफ।

साद्रीभवन या घनीभवन (जम जाना)—कतिपय औपधद्रव्योमें एक विशेप गुण यह है कि वह उत्तापसे द्रव या प्रवाही होनेकी जगह साद्र और प्रगाढीभूत हो जाते हैं, जैसे—अडेकी सफेदी और वह द्रव्य जिनमें उक्त सत्त्व (जौहर) वर्तमान हो, उत्तापके प्रभावसे साद्रीभूत हो जाया करते हैं।

---

१ वद्अत नवीन खोज या आविष्कार, नयी वात, सय्यिआ-वुरी चीज़ (कुल्लियात अद्विया)।

ज्वलनशीलता—कोई-कोई द्रव्य सामान्य वा तीव्र उत्तापसे (यहाँ तक कि रगड़से) जल उठते हैं, जैसे बारूद और गंधक इत्यादि। कोई-कोई द्रव्य अन्य द्रव्योंके साथ मिलानेपर ज्वालाके रूपमें प्रज्वलित हो उठते हैं।

क्लेदशोषण (पसीजना)—कतिपय औषधद्रव्योंमें बाह्यक्लेदशोषणरूप (जाज़िब रतूबत) धर्म होता है। उदाहरणत लवण और क्षार पदार्थ वर्षा ऋतुमें, जबकि वायुमें पर्याप्त आर्द्रता होती है, बाह्य वायुमें जलके वाष्पोंको शोषण करके द्रवीभूत (घुल जाते) और मृदु हो जाते हैं।

शुष्कीभवन—अधिकांश वे औषधद्रव्य जिनमें जलीय आर्द्रता होती है, उत्तापके प्रभावसे शुष्क हो जाते हैं, जिससे उनका बाह्य स्वरूप, वर्ण, गंध इत्यादि न्यूनाधिक परिवर्तित हो जाते हैं। उन द्रव्योंमें जलांशके साथ यदि अन्यान्य सूक्ष्म उड़नशील तत्त्व (जौहर) होते हैं, तो इन वाष्पोंके साथ वह अवयव भी वाष्पीभूत हो जाया करते या उड़ जाया करते हैं, जैसे—गुलाबका फूल।

फूलजाना या खिलजाना—कतिपय द्रव्य बाह्यवायुके जलीय घटकोंको शोषणकर खिल जाते हैं, जैसे—पत्थरका चूना। ताजा चूना जब भट्टीमें निकाला जाता है, तब वह ठोस, भारी और प्रस्तरके रूपमें होता है। परंतु जब उसे खुली हुई वायुमें रख दिया जाता है, तब वह जलके वाष्पोंको शोषण करके फूलकर खिल जाता है।

विलीनीभवन—शर्करा और लवण जलमें विलीन हो जाते हैं और तेलमें अविलेय होते हैं। गंधक और कपूर तेलमें विलीन हो जाते हैं, किंतु जलमें अविलेय होते हैं (कपूर नाममात्र जलमें विलीन होता है)। ऐसा क्यों है? इसका कोई उत्तर नहीं है। अन्यान्य गुणों (धर्मों) वा लक्षणोंकी भाँति यह भी अपने-अपने धर्म हैं, जो उन द्रव्योंके जातिस्वरूप और द्रव्यकी आत्मा (हकीकते ज़ात)में आबद्ध हैं। कौनसा द्रव्य किसमें विलीन हुआ करता है? इसका उत्तर केवल अनुभव देगा। कतिपय द्रव्य मद्यविलेय, कतिपय जलविलेय, कतिपय तैलविलेय और कतिपय किसी अन्यद्रव्यविलेय होते हैं। इसी प्रकार कतिपय द्रव्य केवल एक द्रव्यमें विलेय होते हैं और कतिपय अनुपातभेदसे दो या अधिक द्रव्योंमें। इसी प्रकार विलीन होनेकी एक निश्चित मात्रा और विशिष्ट अनुपात है। उदाहरणत कतिपय द्रव्य एक प्रतिशत विलीन होते हैं। इसका आशय यह है कि, विलीन करनेवाली वस्तु (जल, तेल, या कोई अन्य वस्तु) यदि ९९ भाग हो, तो विलीन होनेवाली वस्तु १ भाग डालनी चाहिए। उदाहरणत ९९ तोले जलमें १ तोला औषधद्रव्य। यदि उसमें २ तोले औषधद्रव्य डाल दिया जायगा, तो एक तोला विलीन हो जायगा और दूसरा एक तोला ज्यूँका त्यूँ अविलेय अवस्थामें रह जायगा। बहुसंख्यक उदाहरणोंमें यह स्वयं सत्य है (यद्यपि प्रत्येक जगह सिद्धान्तत सत्य नहीं) कि उत्तापकी उपस्थितिमें विलीनीभवन (इन्हिलाल व ज़ूबान) क्रिया परिमाणत शैत्यकी अपेक्षया अभिवर्धित हो जाया करती है। शीतल जलमें शर्करा जिस अनुपातमें विलीन हुआ करती है, यदि जलको उष्ण कर लिया जाय, तो विलीनीभवनका उक्त अनुपात अभिवर्धित हो जायगा। इसी उदाहरणसे अन्यान्य विलायकों-का अनुमान करना चाहिये। यह भी स्मरण रखना चाहिए, कि विलीन करनेवाली वस्तु अर्थात् विलायक (मुहल्लिल, हल्लाल)का प्रत्येक दशामें तरल वा प्रवाही होना आवश्यक नहीं। कपूर, पुदीनाका सत, सौंफका सत, अजवायनका सत इत्यादि सांद्र रूपमें होनेपर जब परस्पर मिलाये जाते हैं, तब ये सभी विलीनीभूत (द्रवित) हो जाते हैं। यह भी सत्य है कि, जल एक सामान्य विलायक वा द्रावक (मुहल्लिल) है। अर्थात् इसमें शतश द्रव्य विलीन हुआ करते हैं, यद्यपि समस्त द्रव्योंका यह विलायक नहीं है। उदाहरणत प्राय लवणभेद, शर्करा, निर्यास और बहुश औषधद्रव्य सम्मिलित किये जाते हैं जिनके अवयव जलमें विलीन होनेकी क्षमता रखते हैं।

क्रिस्टलीभवन—शर्कराको यदि हम जलमें विलीन कर लें, तदुपरांत उसके जलांशको पुन क्रमश शुष्क होने दें, तो शर्कराके विशेष आकार-प्रकारके दाने पैदा हो जायँगे, जो शोरेके कलमों वा रवों (क्रिस्टलों)से भिन्न होंगे। यदि हम इसी प्रकारके दाने या क्रिस्टल (कलम) सरेशके जलमें पकाकर बनाना चाहें, तो हमें सफलता न होगी। ऐसा क्यों है? इसका कारण यह है कि, यह भी अन्यान्यगुणों (खुसूसियात)की भाँति एक गुण है कि, कतिपय

द्रव्य विशेष प्रकारके क्रिस्टलका रूप धारण कर लेते हैं। इन स्फटिकों-क्रिस्टलों (दानों या कलमों)की आकृति विशेष प्रकारकी भिन्न-भिन्न होती है, जिसे देखकर वह अन्य द्रव्योंसे पहिचाने जा सकते हैं। दारचिकना, सखिया और रसकपूरका सत्त्व (जौहर) जो इनके ऊर्ध्वपातनमें प्राप्त होता है। वस्तुत इसके भी महीन-महीन स्फटिक होते हैं। उक्त क्रिस्टलीभवनका गुण भी प्रत्येक द्रव्यमें नही पाया जाता और ये किसी एक सिद्धातके अधीनस्थ नही हो सकते। यह भी स्पष्ट रहे कि इन चीजोके क्रिस्टल विशेष आकार-प्रकारके उसी समय पैदा होते हैं, जबकि वे शुद्ध वा अमिश्र होते हैं। यदि शर्करा और शोरेको मिलाकर जलमें विलीन कर दिया जाय, तो प्रकट है, कि योगसमुदायके किवामके जमनेके बाद न शर्कराके विशेष आकारके स्फटिक प्राप्त होंगे और न शोरेके विशेष प्रकारके लबे-लबे क्रिस्टल बनेंगे।

विलयनका तलस्थित हो जाना—कोई-कोई द्रव्य विलयन (महलूल) और प्रवाही होते हैं। परतु जब वे अन्य पदार्थोके साथ मिश्रीभूत किये जाते है, तब सान्द्रीभूत और प्रगाढीभूत होकर तलस्थित हो जाते है। अडेकी सफेदीको स्वच्छ जलमे विलीन कर लिया जाय, तो वह निर्मल विलयन रूपमें रहेगा। इसके पश्चात उसमें थोडीसी फिटकिरी घोल दी जाय, तो अडेको सफेदीके विलीनीभूत अवयव प्रगाढीभूत होकर जमकर रूईके गोलेके रूपमें नीचे बैठ जायेंगे। कतकफल (निर्मली) जलको निर्मल और स्वच्छ करनेवाला एक प्रसिद्ध द्रव्य है। इसके कार्य करनेकी पद्धति (उसूल अमल) भी यही है, कि जलमे कतिपय द्रव्य विलयन रूपमें तैरते फिरते है, जो निर्मलीके प्रभावसे प्रगाढीभूत होकर तलेमें बैठ जाते है। मुतरा फिटकिरीका कार्य गदले अशुद्ध जलमे इसी प्रकारका होता है।

द्रव्य-सगठन (सयोग वा समवाय)—कतिपय द्रव्य अन्यान्य द्रव्योके साथ समवेत होनेकी विशेष क्षमता रखते हैं, चाहे दोनों सामान्य रूपमे समवेत हो जायँ और उनमें कोई परिवर्तन—परिणाम वा विकार (इस्तिहाला) न हो। इसे इम्तिजाज सादा[1] कहते हैं। उदाहरणत सिक्जबीनमें शर्करा और सिरका या समवायके पश्चात् उनके उपादानो (अज्जाऽतरकीबी)में न्यूनाधिक परिवर्तन उपस्थित हो जाय, उनके पूर्व मिज़ाज बदल जायँ और नवीन मिज़ाज उत्पन्न हो जायँ। उदाहरणत अम्लता और क्षारत्व (शोरियत), इसे इम्तिज़ाज हकीकी[2] कहते हैं। परतु कोई-कोई दो द्रव्य परस्परबिलकुल समवेत (इम्तिजाज) नही होते, चाहे उभय द्रव्य प्रवाही क्यो न हो। कहावत प्रसिद्ध है कि तेल और पानीमें वैर है। तेल और पानीको घटो फेटकर रख दिया जाय, थोडी देरके पश्चात् वह दोनो पृथक् हो जाते है। कडवा तेल ऊपर हो जाता है और पानी पेंदेमें बैठ जाता है।

सगठनोपरात गुणो वा लक्षणोका प्रकाश—इसी प्रकार उभय पदार्थ परस्पर मिलने और क्रिया-प्रतिक्रिया करनेके उपरात जब अपनी भौतिक स्थिति परिवर्तित कर देते है, तब उस समय विलक्षण और अद्भुत गुणो (खुसूमियात)का प्रकाश होता है, जिससे उन पदार्थोका मूल स्वरूप (असली माहिय्यत) पहिचाननेमें सहायता मिलती है। अमरूद और अनारको जब लोहेके चाकूसे काटा जाता है, तब साफ लोहेका रग काला हो जाता है। इसका अर्थ है कि अनार और अमरूदके छिलकोका कषाय सत्त्व जब लोहेके साथ मिलता है, तब पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रियाके उपरात एक नवीन द्रव्य (मुरक्कब) बन जाता है, जो श्यामवर्णका दृष्टिगोचर होता है। तूतियाको जब लोहेके चाकूपर लगाया जाता है, तब लोहेका रग ताँबाके रगमें परिणत हो जाता है। कत्था और चूनाको मिलानेसे योगसमुदायमें तरलता (रिक्कत) और उत्ताप उत्पन्न हो जाता है। अनबुझे चूना पर जब पानी डाला जाता है, तब अत्यत उष्णता उत्पन्न हो जाती है।

विरलसयोगी द्रव्य (नाज़ुक मुरक्कबात)—इसी प्रकार कतिपय द्रव्यो (मुरक्कबात)का सगठन इतना विरल वा मृदु होता है कि धूप, उत्ताप और प्रकाश इत्यादिके स्वल्प प्रभावसे उनके उपादान (अज्ज़ाऽतरकीबी)

१　आयुर्वेदमें ऐसे सगठन वा ससर्गको प्रकृतिसमसमवाय कहते हैं।

२　आयुर्वेदमें ऐसे समवायको विकृतिविषमसमवाय कहते हैं।

विकृत हो जाते हैं, और उनका वर्ण इत्यादि परिवर्तित हो जाता है। सेवको तराशकर जब छोड दिया जाता है, तब थोडी देरमें उसका रग भूरासा-लाल हो जाता है। यहाँ भी उसी प्रकारका परिवर्तन है, जो वायुके कतिपय घटको (अज्जाऽ)के अभिशोषित होनेके उपरात प्रादुर्भूत होता है। कतिपय द्रव्यो (मुरक्कबात)का सगठन वायु लगनेसे परिवर्तित हो जाता है और उनका वर्ण, गध, रस और अन्यान्य गुण (खुसूसियात) परिवर्तित हो जाते है। यही कारण है कि कतिपय औषधद्रव्योको उष्णतासे सुरक्षित रखनेके लिए शीतल स्थानोमें रखा जाता है। किसी-किसीको प्रकाशसे बचाकर अधकारमे रखा जाता है और किसी-किसीको विशेप वर्णके बोतलोमें बद किया जाता है। प्राय औषधियोको खुली वायु, आर्द्रता और वाष्पोमे बचाया जाता है। (कुल्लियात अद्‌विया)।

प्रकरण ४

द्रव्योंके कर्म (वैद्यकीय गुण) ज्ञानके साधन ।

प्रत्यक्ष (तज्रिबा) और अनुमान (कियास)—यूनानी वैद्यकमें द्रव्योंके कर्म-ज्ञानके ये ही दो मूल साधन हैं। द्रव्योके कर्म, प्रकृति (मिज़ाज) तथा अन्यान्य गुण-धर्म मानवी बुद्धिमें कैसे आये ? शैखुर्रईस बूअलीसीना और अन्याय पुराकालीन यूनानी वैद्योके लेखोके अनुसार इस प्रश्नका समाधानकारक समीचीन उत्तर यह है, कि इस प्रकारकी सभी बातें केवल प्रत्यक्ष (तज्रिबा) और अनुमान (कियास)के पथप्रदर्शनसे मानवी ज्ञानकोषमें सगृहीत हुई हैं।[1]

प्रत्यक्ष (तज्रिबा)का लक्षण विद्वद्वर मुल्ला नफीसने इस प्रकार लिखा है—"तज्रिबाका अर्थ यह है कि किसी द्रव्यको शरीरमें प्रविष्टकर (उसका बाह्य या आतरिक प्रयोग करके) तज्जन्य कर्मकी परीक्षा (इम्तिहान) की जाय।"[2] आधारभूत सिद्धान्तो या निरीक्षण (अवलोकन, भूयोदर्शन) द्वारा जिन बातोका ज्ञान (अनुभव) हुआ हो उनके शरीर पर प्रयोग (व्यवहार) करने (कर्म)को भी 'तज्रिबा' कहते हैं। इसके साथ यह भी ज्ञात होना चाहिये कि अधुना अनेकानेक द्रव्योके प्रयोग, प्रत्यक्षज्ञान वा परीक्षण हेतु (किसी अनुमानके आधार पर—पथप्रदर्शनमें, या उसके बिना) प्रथम पशुओ (वानरो, घोडो, इत्यादि) पर किये जाते हैं और जब कोई बात उक्त पशुओंमें पूर्णरूपसे निश्चित हो जाती है, तब बडी सतर्कता या सावधानीपूर्वक, उसका परीक्षण मानवशरीर पर किया जाता है। फिर इस बातका अत्यत ध्यानपूर्वक सूक्ष्म अध्ययन एव विचार किया जाता है कि उक्त द्रव्यका जो कर्म उक्त पशुमें हुआ है, वही कर्म मनुष्यमे प्रगट होता है अथवा नही। क्योकि यह बहुत सभव है कि किसी द्रव्यका कोई प्रभाव (कर्म) किसी पशुमें प्रगट हो, परतु मनुष्यमें उसके स्वभाववैशिष्ट्यके कारण उक्त प्रभाव बिल्कुल प्रगट न हो अथवा उसके विपरीत प्रभाव प्रकाशित हो। इसी कारण मानवी परीक्षणमें बहुत ही सावधानी या सतर्कतासे काम लिया जाता है और औषधद्रव्य अत्यल्प मात्रामें प्रयोग कराया जाता है। तात्पर्य यह कि उक्त प्राणिजन्य परीक्षणकी सपूर्णता अन्तत मानवशरीरमें ही जाकर समाप्त होती है।

अस्तु, विद्वद्वर मुल्ला नफीस लिखित उपर्युक्त लक्षण सर्वांगपूर्ण है।[3] इसके साथ यहाँ इतना और विचारणीय है कि हमारा यह विचार करना—"यह द्रव्य चूँकि अमुक पशुमें अमुक कार्य करता है, इसलिए बहुत सभव है

---

१ आयुर्वेदमें भी अतत मुख्य प्रमाण (द्रव्यकर्मज्ञानहेतु) दो ही माने गये हैं। अस्तु, चरक लिखते हैं—"त्रिविधेन खल्वनेन ज्ञानसमुदायेन पूर्वं परीक्ष्य रोग सर्वथा सर्वमथोत्तरकालमध्यवसानमदोष भवति, न हि ज्ञानावयवेन कृत्स्ने ज्ञेये ज्ञानमुत्पद्यते। त्रिविधे त्वस्मिन् ज्ञानसमुदये पूर्वमाप्तोपदेशाद्धि ज्ञानम्, तत प्रत्यक्षानुमानाभ्या परीक्षोपपद्यते। किं ह्यनुपदिष्ट (अनुपदिष्टे) पूर्वं यत्तत् प्रत्यक्षानुमानाभ्या परीक्षमाणो विद्यात्। तस्माद् द्विविधा परीक्षा ज्ञानवता प्रत्यक्षम् अनुमान च।" (चरक वि० अ० ४)।

२ आयुर्वेदके मतसे प्रत्यक्षके लक्षण—"प्रत्यक्ष तु नाम खलु तद्यत् स्वयमिन्द्रियैरात्मना चोपलभ्यते।" (च० वि० ४ अ०)। "प्रत्यक्षनाम तद्यदात्मना पञ्चेन्द्रियैश्च स्वयमुपलभ्यते।" (चरक वि०)। "आत्मेन्द्रियमनोऽर्थाना सन्निकर्षात् प्रवर्तते। व्यक्तता तदात्वे या बुद्धि प्रत्यक्ष सा निरुच्यते॥" (चरक सू० अ० ११)।

३ आयुर्वेदके मतसे स्थावरजगमात्मक सृष्टिके अन्यान्य प्राणियोंमेंसे मनुष्य प्रधान (अशरफुल् मख़लूक़ात) है, इसलिए वह सब चिकित्साका आधार माना गया है—"तत्र पुरुष प्रधान, तस्योपकरणमन्यत्,

कि मनुष्यमें भी यही कार्य होता हो," एक प्रकारका अनुमान ही है, जिसकी सत्यता अन्यान्य अनुमानोंकी भाँति मनुष्यपर प्रयोग कर प्रत्यक्ष कर लेनेके उपरांत प्रमाणित हुआ करती है।

विद्वद्वर नफीसने अनुमान (कियास)का लक्षण इस प्रकार लिखा है—"अनुमानका अर्थ यह है कि द्रव्यके बाह्य लक्षणों (भौतिक गुणों)से उसके आंतरिक वा गुप्त लक्षणों (वैद्यकीय गुणों)के विषयमें हेतु एवं युक्तियाँ दी जायें।[1]

तात्पर्य यह कि द्रव्यके बाह्य लक्षण (भौतिक एवं रासायनिक गुण) और तत्संबंधी पूर्वज्ञान इस बातकी ओर हमारी बुद्धिका पथप्रदर्शन करें, कि उक्त द्रव्यमें अमुक प्रकारके कर्म पाये जाने चाहियें, चाहे परीक्षण वा प्रयोगके समय यह बौद्धिक तर्कणा वा युक्ति-स्थापना वस्तुस्थितिके अनुकूल (सत्य) सिद्ध हो वा प्रतिकूल (अर्थात् मिथ्या)। आनुमानिक अटकलबाजी (तुक्के)का हर बार लक्ष्य पर लगना आवश्यक नहीं है।

परीक्षणोत्प्रेरक—वह कौन सी वस्तु है जो मनुष्यको किसी द्रव्यके परीक्षण और प्रयोगके लिये प्रेरित किया करती है? इसका उत्तर विद्वद्वर नफीसने यह दिया है, "किसी द्रव्यके विषयमें कोई अनुमान पथप्रदर्शन करता है और मनुष्य उस अनुमानकी पुष्टिके लिये प्रयोगके द्वारा उसका परीक्षण कर लेता है। उदाहरणतः किसी द्रव्यके विषयमें किसी कारणवश यह विचार या अनुमान स्थिर किया गया, कि यह द्रव्य उष्ण है। उक्त विचारकी पुष्टि या निश्चयके लिये जब प्रयोग या परीक्षण किया गया, तब वह पूर्व अनुमानके अनुसार वस्तुतः उष्ण सिद्ध हुआ।

दैवयोग और प्रत्यक्ष या अनुभव—पर कभी-कभी बिना किसी सबब और अनुमानके भी कतिपय द्रव्योंका प्रत्यक्ष वा परीक्षण एवं अनुभव हो जाता है, चाहे उक्त अनुभव स्वेच्छाकृत हो या आकस्मिक। वैद्यकीय और द्रव्य-

---

तस्मात् पुरुषोऽधिष्ठानम्।" (सु० सू० अ० १)। आयुर्वेद मनुष्याधिकारी शास्त्र होनेके कारण पुरुष-शब्दसे यहाँ पशुपक्ष्यादिक सर्व सजीव सृष्टिका वाचक होनेपर भी उनका बोध न होकर केवल मनुष्यका बोध होता है—"तस्यायुषः पुण्यतमो वेदो वेदविदां मतः। वक्ष्यते यन्मनुष्याणां लोकयोरुभयोर्हितम्॥" (च० सू० अ० १)। अस्तु, द्रव्योंके गुण-कर्मोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए मानवशरीर पर ही किया गया अंतिम प्रयोग और परीक्षण आयुर्वेदसम्मत है। सुतरां औषध और आहाररूपमें उपयोगमें आनेवाले वनस्पतिजन्य तथा प्राणिजन्य द्रव्योंकी स्वास्थ्य तथा रुग्णावस्थामें मनुष्यपर होनेवाली क्रियाओंका ही उल्लेख इसमें मिलता है। तात्पर्य यह कि आयुर्वेदके मतसे भी प्राचीन कालमें औषधोंका अनुभव मानवशरीर पर ही किये गये प्रयोगोंसे ही प्राप्त किया गया है। इसलिये मनुष्यशरीर ही औषधियोंके परीक्षणके लिए सर्वोचीन प्रयोगशाला है, क्योंकि उसीपर किये हुए परीक्षण अंतमें सिद्धांत रूपमें स्वीकृत होते हैं। आयुर्वेदमें सभी प्रकारके प्रयोग एवं परीक्षण मनुष्यशरीर पर ही किये गये थे।

१ भारतीय न्यायशास्त्रके अनुसार प्रमाणके चार भेदोंमेंसे एक, जिससे प्रत्यक्ष साधनके द्वारा अप्रत्यक्ष साध्य की भावना हो। इसके तीन भेद हैं—(१) पूर्ववत् वा केवलान्वयी, (२) शेषवत वा व्यतिरेकी और (३) सामान्यतोदृष्ट वा अन्वयव्यतिरेकी। अनुमानके संबंधमें आयुर्वेदमें लिखा है—"अनुमानं खलु तर्को युक्त्यपेक्षः।" (च० वि० ४ अ०)। उदाहरण—"स्त्यानघृतमृच्चन्दनकल्कैर्वा प्रदिग्धाया शल्योष्मणा आशु वितरति घृतमुपशुष्यति वा लेपो यत्र तत्र शल्यविजानीयात॥" (सु० सूत्रस्थान)। अनुमान भी प्रत्यक्षमूलक ही होता है, जैसे कहा भी है, 'प्रत्यक्षपूर्वम् (च० सू० स्था० अ० ११)' इत्यादि, तथा अनुमानके लिंगका ज्ञान प्रत्यक्षसे ही होता है। अतः उपचारसे-प्रत्यक्षज्ञेय ही है॥ मा० नि० १।२०॥

कर्मसंबंधी ज्ञानकोषमें आकस्मिक घटनाओं या संयोग (इत्तिफाकात)ने बहुत बड़ी सहायता की है। सहस्रश बातें केवल संयोगजन्य घटनाओंके कारण मानवज्ञानमें आई हैं। द्रव्यगुणविज्ञानकोषके लिये संयोगजन्य घटनाएँ इत्यादि किस प्रकार माहात्म्यभूत हुई हैं, और मनुष्यके प्रत्यक्ष-ज्ञान वा अनुभव किस प्रकार दिन-दिन विस्तृत होते गये हैं, कतिपय अन्वेषणशील व्यक्तियोंने उनके साधनों और उदाहरणोंको इस प्रकार व्यक्त किये हैं —

(१) केवल दैवयोग वा संयोग—कोई रोगी किसी जगह पहुँचा, जहाँ उसे एक ऐसा औषध और आहार खानेका संयोगवश अवसर पड़ा, जिसका स्वरूप और गुण-धर्म सम्यक् अज्ञात था। उसे खाते ही उसको खूब वमन और रेचन हुए या मूत्र और स्वेद आये और उसका रोग जाता रहा। अथवा वमन-विरेचन आदिके बिना अज्ञात रूपसे उसे आरोग्यता प्राप्त हो गई। अथवा उस वस्तुका परिचय यद्यपि किसी सीमा तक ज्ञात था, पर उसके उपयोगके अनंतर रोगीके शरीरमें जो कर्म प्रकाशित हुए, उन कर्मोंका पहलेसे न ज्ञान था और न आशा। इस संयोगजन्य अनुभव एवं प्रत्यक्ष ज्ञानके उपरांत अन्यान्य व्यक्तियोंके हृदयमें अन्वेषण और खोजकी जिज्ञासा उत्पन्न हुई। फलतः विविध प्रकारसे चिकित्सक आदिकोंने उसके विस्तृत परीक्षण किये, जिससे उसके गुण-कर्म और मात्रा आदि स्थिर होकर मानव-ज्ञानकोषमें संगृहीत हो गये।

(२) प्रकृतिजन्य मानवप्रवृत्ति वा रुचि—बिना किसी प्रेरणा वा जिज्ञासाके अथवा किसी प्रकारके प्रलोभनके अनंतर रोगीके हृदयमें ऐसे औषध और आहारके खाने-पीनेकी आकांक्षा या रुचि स्वभावतः उत्पन्न हुई, जिसके गुण-कर्म अज्ञात थे। किंतु उसके उपयोगके पश्चात् उसे आरोग्य लाभ हो गया अथवा उसके शरीरमें ऐसे कर्म प्रगट हुए, जो पहलेसे अज्ञात थे। अस्तु, यह श्रवणोक्ति (रिवायत) प्रसिद्ध है, कि एक व्यक्ति जलोदर रोगसे पीडित था और उससे सर्वथा निराश हो चुका था। अकस्मात् टिड्डी बेचनेवालेका शब्द उसको कानमें पड़ा। नमकीन भुनी हुई टिड्डियोंका नाम सुनकर (जिसका स्वाद वह ले चुका था) उसके मुँहमें पानी भर आया। अपने रोगसे वह निराश तो था ही, नैराश्यने उसे धीर और साहसी तथा अपने रोगकी तरफसे निश्चिंत बना दिया था। अस्तु, उसने बहुसंख्यक टिड्डियाँ खरीदी और जीभरकर खूब खाईं। रोगी अपनेको आसन्नमरणकी भावना कर रहा था। परंतु प्रकृति इस अज्ञात रीतिसे उसके रोगका प्रतिकार कर रही थी। फल यह हुआ कि वह इस अद्भुत उपायसे रोगमुक्त हो गया। इससे लोगोंको टिड्डीके रोगहारक गुणका ज्ञान हुआ।

(३) शत्रुता और प्राणनाशका संकल्प—किसी शत्रुने हिंसा आदिके भावसे किसीको कोई विष-औषधि, जैसे—संखिया, पारा, हिंगुल, हड़ताल आदि खिला दी। इसे सेवन करनेवाला व्यक्ति पूर्वसे ही फिरंग, श्वास चिरजकास, आमवात, वातरक्त जैसे किसी चिरकालानुबंधी रोगसे पीडित था। उक्त विषने प्राणनाश और हानिके स्थानमें अगदका काम किया और उसका रोग निवृत्त हो गया।

(४) दुर्भिक्ष, युद्ध, यात्रा—दुर्भिक्ष, युद्ध या यात्रा आदिमें खाद्य सामग्रीके अभावके कारण विवश होकर मनुष्य जमीकंद (सूरन), आलू, अरवी और शकरकंद जैसे अज्ञात मूलकंद पृथ्वी और जंगलसे खोद-खोदकर खाने लगा या पत्र, पुष्प, फलादि खानेका अवसर पड़ा, जिनके गुण-कर्म पहलेसे अज्ञात थे। ऐसी अज्ञात वस्तुओंके सेवन करनेसे उनका शरीर पुष्ट और परिबृंहित हो गया। अथवा उनसे ऐसे गुण-कर्म प्रकाशमें आये, जिनका ज्ञान होनेसे मनुष्यको अन्यान्य बहुशः लाभ प्राप्त हुए। बतलाते हैं कि चोबचीनी और चायका प्रथम ज्ञान इसी तरहसे हुआ।

(५) देववाणी या अन्तर्ज्ञान (इल्हाम)—पवित्र और धर्मात्मा लोगों (आप्त वा आर्ष पुरुषों)की अंतरात्माओंमें औषध आदिके गुण-धर्मका आध्यात्मिक रूपसे ज्ञान (प्रकाश) हुआ, जिन्हें उन्होंने अपने शिष्यों और अनुयायिओं पर प्रगट किया। परीक्षा द्वारा उनके द्वारा उपदिष्ट ज्ञानकी सत्यता प्रमाणित हो गई।

(६) मानवीय सूझ (इल्काऽ)—असीम नैराश्य एवं विवशताकी दशामें रोगीके हृदयमें स्वभावतः यह विचार उत्पन्न हो जाय कि यदि यह उपाय किया जाय या यह औषध सेवन किया जाय, तो आरोग्यकी प्राप्ति हो जायगी। इसके उपरांत अपनी उसी भावनाके अनुसार काम करे और अभीष्ट फलकी प्राप्ति हो जाय।

(७) स्वप्न—स्वप्नमें रोगीको कोई उपचार बतलाया जाय और जागृत होनेके पश्चात् स्वप्नमें बतलाये हुए उपचारके अनुसार कार्य करने पर वही परिणाम प्राप्त हो, जैसा कि कभी बुकरात कालसे पूर्व यूनानियोके मंदिरोमें किया जाता था।

(८) पशु-अध्ययन (निरीक्षण)—अर्थात् पशुओंसे शिक्षा ग्रहण करना। अनेक प्राणी रोगाक्रांत होने पर अपना उपचार स्वयं कर लिया करते हैं, जिससे मनुष्यने बहुत कुछ सीखा है।

मख्जनुल् अदवियाके रचयिता लिखते हैं, "वस्तिकर्मकी विधि जालीनूसने[1] एक पक्षीसे सीखा है।" इसी कारण वस्तिको विहगम-कर्म (अमले ताइर) भी कहा जाता है। श्रवणोक्ति (रिवायत) इस प्रकार वर्णन की जाती है, कि गिद्ध या गिद्ध जैसा कोई अन्य पक्षी समुद्रतट पर आसीन होकर समुद्रका क्षारीय जल अपनी चोंचमें लेकर अपनी गुदामें पहुँचा देता है। थोडी देरके पश्चात् उसे खुलकर विरेक आते हैं और वह उड जाता है। मनुष्य कहींसे उक्त क्रियाको अवलोकन कर रहे थे। उक्त विहगमकर्मको निरीक्षणकर मानवी बुद्धि इस बातके विचारमें अग्रसर हुई कि अन्त्रशुद्धिके लिये क्यो न इसी प्रकार क्षारीय जल मनुष्यके सरलान्त्रमे प्रविष्ट किया जाय। फलत परीक्षणार्थ ऐसा किया गया और आशानुरूप फल प्राप्त हुआ। जिससे कालक्षेपसे अनेक परिवर्तन और उत्तरोत्तर क्रमिक विकास होता चला गया। यह भी प्रसिद्ध है कि शरत्कालकी समाप्तिके उपरांत सर्प जब दीर्घकाल बीतनेपर बिलसे बाहर निकलता है, तब उसे कम सुझाई देता है। उक्त दृष्टिमांद्य (जुलमते बस्र)के प्रतीकारार्थ वह अपने नेत्रोको सौंफके हरे पौधोंसे घिसता है। इसे निरीक्षणकर मनुष्यने समझा कि कदाचित् सौंफका नेत्रोंसे कोई विशेष सबध है। इसी प्रकार प्राणियोको बहुत अन्यान्य आख्यायिकाएँ भी वर्णन की जाती है, जो मनुष्यके लिए 'शिक्षा पाठावलि' सिद्ध हुई और मनुष्यने प्राणियोसे बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण किया।

अनुमानकी अपेक्षया प्रत्यक्ष वा अनुभवकी श्रेष्ठता और उपादेयता—अरस्तू (अरिस्टॉटल)ही इन सब पाश्चात्य पंडिताके मूल अध्यापक थे। उनका कहना यह था कि अनुभव (प्रत्यक्ष) ही ज्ञानकी नींव है और उससे निकाले जानेवाले अनुमान यदि निश्चित बातो पर आधारित न हों तो वे निर्दोष न होगे। अत यह स्पष्ट है कि द्रव्यकर्मोंकी सत्यता प्रमाणित करनेका सर्वांगपूर्ण साधन केवल प्रयोग एव अनुभव (तज्रिबा) है। अनुमान वस्तुत अनुभवका और बुद्धि परिवर्तनका एक साधन है। मानवमस्तिष्कमें परीक्षणका विचार बहुधा उस समय आविर्भूत हुआ करता है, जबकि वह किसी वस्तुकी कुछ अवस्थाओंको निरीक्षणकर एक अनुमान स्थिर करता है, कि इस प्रकारके द्रव्यमें उदाहरणत अमुक कर्म अंतर्निहित हुआ करते हैं, कदाचित् इस द्रव्यमें इसी प्रकारके कर्म अंतर्निहित हों। उक्त कल्पनाके आधार पर जब वह परीक्षा करता है, तब कभी उसका उक्त अनुमान सत्य प्रमाणित होता है और कभी असत्य। इसी कारण विद्वद्वर नफीस अनुभव (प्रत्यक्ष)की श्रेष्ठता एव उपादेयता सिद्ध करते हुए कहते हैं—"प्रयोग और परीक्षणजन्य अनुभव (प्रत्यक्ष एव प्रयोगसे—तज्रिबा)से द्रव्यके कर्मका सदेहरहित ज्ञान (यकीन व अज्आन) प्राप्त हो जाता है, और अनुमानसे उक्त निःसदिग्धता एव निश्चितताकी प्राप्ति नही होती। इसी कारण अनुमानमें बहुधा भूल और भ्रमका होना अनिवार्य हो जाता है।

प्रत्यक्षसे अनुमान और अनुमानसे प्रत्यक्ष—यहाँ पर भी यह स्पष्टतया ज्ञात होना चाहिये कि अनुमानका आधार भी वस्तुत कोई पूर्व अनुभव हुआ करता है, जो अन्य नवीन अनुभवके लिये मार्गदर्शक बन जाता है। अत किसी नवीन द्रव्य या किसी द्रव्यके नवीन कर्मविषयक परार्थानुमान—अनुमानमूलक स्थापनाओ (मुकद्दमात)का क्रम हमारी बुद्धिमें साधारणत निम्न प्रकार से हुआ करता है —

(१) इस विचाराधीन द्रव्यमें चूँकि अमुक लक्षण (खुसूसियात) है। (२) और पूर्व अनुभवसे हमें यह ज्ञात है कि उक्त लक्षणविशिष्ट अमुक-अमुक द्रव्यमे यह कार्य निष्पन्न होते हैं। (३) इससे यह अनुमान होता है कि इस

---

१ किसी-किसीने इसका सबंध बुकरातसे दिखलाया है।

विचाराधीन द्रव्यमें अमुक कर्म (पुष्ट वा निर्बल अनुमानक्रममें) विद्यमान होंगे। तात्पर्य यह कि अनुमानसे प्रत्यक्ष और प्रत्यक्षसे अनुमान इस प्रकार आवद्ध एव अन्योन्याश्रित हैं, कि उसमें एक प्रकारका आवर्तक्रम जारी हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचनसे इस वातका भली-भाँति अनुमान किया जा सकता है कि मनुष्यके प्रत्यक्षमूलक पूर्वज्ञान और गतानुभव जितना विस्तृत होगा और बुद्धिमें निष्कर्ष निकालनेकी शक्ति जितनी प्रवृद्ध एव प्रभूत होगी उतना ही ये अनुमान पुष्ट एव प्रबल और परीक्षाकी कसौटी पर अधिकाधिक सत्य हुआ करेंगे, और इस वातका श्रेय केवल विस्तृत अनुभवशील और सूक्ष्मदर्शी विद्वान् पुरुषोंको ही प्राप्त हो सकता है।

उक्त मन्तव्यको विद्वद्वर नफीसने इस प्रकार प्रगट किया है—"अनुभव—प्रयोग और परीक्षणकी विधि एव कार्य वैद्य और अवैद्य दोनोके लिये सामान्य अर्थात् लोकभोग्य है। इसके विपरीत अनुमानका मार्ग केवल उद्भट विद्वान् वैद्याचार्योंके लिये ही निश्चित अर्थात् विद्वद्भोग्य है।

प्रथम इस विषयका प्रतिपादन किया जा चुका है कि द्रव्योंके कर्म दो प्रकारके होते हैं। द्रव्यके कतिपय कर्म किसी नियमके अधीन होते हैं अर्थात् उनके कर्मोका कार्यकारणभाव दिखाया जा सकता है, जैसे—माजूका रक्तस्तभन कर्म इस नियमके अधीन है, कि माजूकी शक्तिसे स्रोतस् सकुचित होकर अवरुद्ध हो जाते हैं। राजिकाका लेप आत-रिक शोथ और वेदनामें इसलिये लाभकारी है, कि वह बहिर्गत स्रोतोको (वाहिनियोंका) विस्फारित कर दोषको प्रविलोम (इमाला) कर देता है। इसी प्रकार अन्यान्य मीमास्य कर्मोंको जानना चाहिये। परतु कतिपय कर्म ऐसे विशेष प्रकारके और वर्णनातीत (अमीमास्य) होते हैं जो अनुमान (-की मर्यादा)में नही आ सकते और न उनका कोई कार्यकारणभाव दिखाया जा सकता है। उदाहरणत अचिंत्यवीर्य, अमीमास्य और प्रभावजनक द्रव्यों (अदविया जुलखास्सा)के कर्म। अब यह स्पष्ट है कि हमारी बुद्धिकी कल्पनाओकी दौड केवल उन्ही द्रव्यकर्मों तक हो सकती है जो किसी नियमके अधीनस्थ हैं। अर्थात् द्रव्यगुणशास्त्रके आधारभूत सिद्धातोंसे जिनका कार्यकारण-सवध दिखाया जा सकता है, अमीमास्य द्रव्यो (जुल्खास्सा)के विचित्रप्रत्ययारब्ध और अज्ञेय कर्मोतक बुद्धिको पहुँच-नेका कोई मार्ग नही है। इन्ही द्विविध कर्मोंकी ओर सकेत करके विद्वद्वर नफीस ने बताया है कि "प्रयोग वा परीक्षण और प्रत्यक्षानुभव (तज्रिबा)से द्रव्यके उभय प्रकारके कर्मो (मीमास्य और अमीमास्य-उसूली व ग़ैरउसूली)-का ज्ञान हो सकता है—(१) चाहे वह कर्म किसी विशेष गुण (कैफ़िय्यत)के कारण हो (अर्थात् जिसके वैद्यकीय उपयोगोकी कार्यकारणमीमासा अर्थात् कैफिय्यते अमलका हम किसी नियमके अधीनस्थ प्रतिपादन कर सकते हैं)। (२) चाहे वह विलक्षण और विचित्रप्रत्ययारब्ध कर्म जातिस्वरूप (सूरतेनौइय्या)के कारण हो (जिसके वैद्यकीय उपयोगोकी कार्यकारणमीमासा नही बतलाई जा सकती है)। इसके विपरीत अनुमानसे केवल प्रथम प्रकारके कर्म ज्ञात हो सकते हैं, जिनके उपयोगोंकी कार्यकारणमीमासा (कैफिय्यते अमल) बतलाई जा सकती है।

प्रयोग वा अनुभवके नियम।

किसी द्रव्यविषयक विशेष प्रयोग वा अनुभव (तज्रिबा) सत्य है और उसपर पूर्ण भरोसा रखा जा सकता है या नही? यह उसी समय कहा जा सकता है जब कि प्रयोगकालमें अधोलिखित नियमोका पूर्णतया पालन और रक्षा किया जाय।

प्रथम नियम—"प्रयोग वा अनुभव मानवशरीरपर किया जाय।" निम्नलिखित दोनो कारणोंसे इस नियमका पालन अनिवार्य हो जाता है —

(१) मानवप्रकृति मनुष्येतर प्राणियोकी प्रकृतिसे नितात भिन्न होती है। इसलिये यह सभव है कि कोई द्रव्य मानवप्रकृतिके विचारसे उष्ण हो और अन्यान्य प्रकृतियोंके विचारसे शीतल, या मानव प्रकृतिमें कोई विशेष कर्म प्रगट करता हो और पशु-पक्षियोकी प्रकृति (हैवानी मिज़ाज)में उसके विपरीत। (२) यह सभव है कि किसी प्राणी (हैवान)के शरीरमें उक्त द्रव्यसे प्रभावित होने या न होनेका स्वभाववैशिष्ट्य (ख़ासिय्यत) हो और यह स्वभावकी विशेषता मानवप्रकृतिमें न हो। उदाहरणस्वरूप एक पक्षी ('जुरजूर' नामक) अपने स्वभावसे शूकरान

(Conium) खाता है और नही मरता। इसके विपरीत मनुष्यके लिये शूकरान एक स्पर्शाज्ञताजनक विप है। (नफीस)। कहते हैं कि वादामका एक दाना या छुहारेका एक दाना घोडेके लिये तीक्ष्ण उष्णताकारक (मुसख्खिन) है। इस अल्प मात्रासे इतने विशालकाय प्राणीके शरीरमें प्रभूत स्वेद आ जाता है। इमी प्रकार मानव मल-मूत्रादि जो मनुष्यके लिये लगभग विप हैं, अन्यान्य प्राणियोंके लिए मनभावने खाद्य हैं। इसी प्रकार वकरिया विपाक्त वनस्पतियो (जैसे अर्क)को खूब रुचिपूर्वक खाती और पचा लेती (शरीरका भाग वना लेती) हैं। मोर सर्पका आहार करता है। यदि यह आपत्ति वा शका की जाय कि, सभव है कि उभय वातोमें भिन्न-भिन्न मनुष्य भी एक दूसरेसे भिन्नता रखते हो। अस्तु, मानवशरीरपर किया हुआ प्रयोग वा अनुभव भी पूर्ण नही कहा जा सकता। इसका समाधान इस प्रकार किया गया है—भिन्न-भिन्न मानवव्यक्ति सजातीय होनेके कारण परस्पर ममान गुण-स्वभाव रखते हैं। अस्तु, उनके गुण-स्वभावमे महदन्तर नही होता। इसके विपरीत मनुष्य और अन्यान्य प्राणियोके व्यक्तियो (जातियों)में महदन्नर होता है। (नफीस)। किंतु तो भी यह सत्य है कि, कतिपय व्यक्तियोंमें कतिपय विप कहे जानेवाले द्रव्यतक साघातिक प्रभाव प्रकाशित नहो करते और कतिपय व्यक्तियोमे मामान्य द्रव्य भी अतीव प्राणहारक एव उग्र कर्म प्रकाशित करते हैं। तात्पर्य यह कि मानव-व्यक्तियोमें भी कभी-कभी महान् अतर प्रगट होता है। परतु उक्त भेद वा अतर क्वचित् ही होता है। अतएव उसको स्वभाववैशिष्ट्य (खुसूसियते मिज़ाजिया)के नामसे स्मरण किया जाता है।

द्वितीय नियम—द्रव्य समस्त बाह्यप्रभावो और गुणोसे शून्य अपनी नैसर्गिक और मौलिक अवस्थामें हो। वाह्य औपाधिक (उपाधिकृत) गुणो आरज़ो कैफिय्यात)मे वे गुण विवक्षित हैं, जो औपधद्रव्यकी प्रकृतिमे आविर्भूत न हुए हो, प्रत्युत वे या तो किमी वाह्य प्रभावमे उत्पन्न हुए हो। जैसे—कोई वस्तु अग्निसे उष्ण या वर्फसे शीतल हो गई हो या वह गुण (आरज़ी कैफिय्यत) आतरिक रूपसे किसी अन्य कारणवश प्रगट हो गया हो, जैसे—कोई द्रव्य प्रकोथयुक्त हो गया हो, गिरियाँ पडी-पडी विगड गई हो। फलत अग्नि पर गरम की हुई अफीम उष्णता उत्पन्न कर सकती और वाहिनियोको विस्फारित कर सकती है। इसी प्रकार वर्फसे शीतल किया हुआ फरफियून अपने जाति—प्रकृतिभूत, सहज एव स्वभावकृत कर्म (ज़ातीफेल)के विरुद्ध वाहिनियोका आकुचन कर सकना और शीतलता प्रदान कर सकता है। इसी प्रकार प्रकोथ जैसे अन्यान्य गुण औपधद्रव्यकी मूल प्रकृतिको परिवर्तित करके उससे भिन्न प्रकृति और गुण-धर्म (खवास) उत्पन्न कर देते हैं।

तृतीय नियम—"औपधद्रव्यको तद्विरोधी और तद्भिन्न (प्रत्यनीक) रोगोंमें प्रयुक्त किया जाय।" जिससे किसी व्याधिमें उपकार प्रतीत हो और किसीमें अपकार। इससे यह ज्ञात हो जायगा कि जिसमें अपकार प्रतीत हुआ है उसमें औपधद्रव्य और रोग उभय समानधर्मी हैं और जिसमें उपकार हुआ है उसमें उभय परस्पर विरुद्ध (प्रत्यनीक) हैं। यह नियम उस समयके लिये है जब कि प्रयोग वा परीक्षण रुग्णावस्थामें किया जाय। यदि कोई व्यक्ति यह शका उपस्थित करे कि, औपधद्रव्यके गुण-दोप तद्भिन्न वा प्रत्यनीक रोगोमे जिस प्रकार द्रव्यकी आत्मा वा द्रव्यस्वभाव (प्रकृति)से (विज़्ज़ात) होना भी सभव है, उसी प्रकार उसे किसी वाह्य प्रभावमे प्रभावित होने अर्थात् अन्योपाधिकृत या अनात्मप्रभावसे (विल्अर्ज़) होना भी सभाव्य है, फिर औपधद्रव्यके गुण (कैफ़िय्यत)का निश्चय क्योंकर हो सकता है? इस शकाका समाधान इस प्रकार किया गया है—यद्यपि ऐसा होना सभाव्य है, तथापि यह किंचित् दूरस्थ वा गौण है। क्योकि गुण-दोपका प्रकाश साधारणतया द्रव्यके आत्मप्रभावसे ही हुआ करता है। परतु जव प्रयोग वा परीक्षण स्वस्थावस्थामें किया जाय, तब उस समय द्रव्यका अनात्मप्रभाव इस प्रकार ज्ञात हो सकता है, कि किसी एक प्रकृतिमें वह उपकारी सिद्ध हो और तद्भिन्न प्रकृतिमें अपकारी। यद्यपि उसका प्रयोग तद्विरोधी (प्रत्यनीक) रोगोमें न किया जाय। इसी प्रकार द्रव्यगत समस्त गुण-धर्मों (खुसूसियात)को मालूम करनेके लिये यह भी आवश्यक है कि द्रव्यको विभिन्न मात्रा वा प्रमाण, आयु, ऋतु और विभिन्न उपायोंसे उपयोग किया जाय और उनसे जो कर्म प्रगट हो, उन्हें लिपिवद्ध किया जाय। क्योकि यह सभव है कि जैसे एक औषधद्रव्य अल्प मात्रामें कुछ कर्म प्रकाशित करे और वडी मात्रामें कुछ और। इसी प्रकार विभिन्न द्रव्योंके साथ सयोग होनेसे द्रव्यके कर्म कभी

तीव्र हो जाते हैं, कभी मद और कभी वास्तविक कर्म सर्वथा मिथ्या हो जाता है। यह सब बाते उसी समय ज्ञात हो सकती है, जब कि औपधद्रव्यको विविध भाँतिसे उपयोग करके अनुभव एव प्रत्यक्ष किया जाय।

चतुर्थ नियम—द्रव्य अमिश्र व्याधियोमे प्रयुक्त किये जायें। यह नियम भी उस समयके लिये है, जबकि रुग्णावस्थामें प्रयोग वा परीक्षण किया जाय। यह नियम इसलिये आवश्यक है कि, जब रोग समिश्र होता है, तब उसमें विरोधी गुणोसे उपचार होता है। जब उसमें कोई ओपधि प्रयुक्त की जायगी और उससे लाभ या हानि प्राप्त होगी तब उससे उक्त औपधिके किमी गुणका ज्ञान न हो सकेगा।

पचम नियम—रोगका बल और उसके प्रकृति-वैपम्यका विचार करके, उक्त बल और प्रकृति-वैपम्यके अनुकूल अर्थात् जितनी मात्रामें रोगका बल और प्रकृतिकी विपमता हो, ठीक उतनी ही मात्राका औपध उपयोग करना चाहिये। क्योंकि कभी द्रव्यगत गुण रोगके गुणसे यद्यपि विरोधी होता है (और इस विचारसे रोगमें अवश्य-मेव लाभ प्राप्त होना चाहिये), पर वह केवल इस कारण हानिकर हो जाता है कि उसकी शक्ति रोगके बलकी अपेक्षया अधिक होती है। क्योंकि किसी गुणका असाधारण प्राधान्य भी जीवन और स्वास्थ्यके लिये अनिष्टकारक होता है। इसी प्रकार यदि द्रव्यकी शक्ति रोगके बलकी अपेक्षया अल्प होती है, तो कभी उसका प्रभाव प्रगट नही होता और इसलिये उसके गुणका ज्ञान नही हो सकता। इसीलिये यह आदेश किया जाता है कि अपरिचित द्रव्यके परीक्षण और प्रयोग मे परम सावधानी या सतर्कता अपेक्षित है। प्रथम अत्यल्प मात्रामें औपधद्रव्यका उपयोग कर तज्जन्य कर्मका निरीक्षण किया जाय। इसके पश्चात् अनुक्रमसे आगे पदार्पण किया जाय।

षष्ठ नियम—उसका कर्म प्रथमत प्रकाशित हो, क्योकि द्रव्योकी मूल शक्तियोंके कर्म साधारणतया उसी समय प्रकाशित हो जाते हैं, जबकि वे शारीरिक ऊष्मा (हरारते गरीज़िया)से प्रभावित होते हैं। यदि प्रारभमें उनसे प्रभाव प्रगट न हो अथवा प्रथमत एक प्रभाव प्रगट हो, उसके उपरात दूसरा उसके विरुद्ध कर्म प्रकाशित हो, तो उस समय साधारणतया ऐसा होता है कि पश्चात्को होनेवाला कर्म गौण (आरज़ी) होता है और प्रथम प्रभाव प्रधान वा ज़ाती, प्रधानत उस समय जबकि पश्चात्कालीन कर्म उस समय प्रगट हो जब कि औपधद्रव्य शरीरसे उत्सर्गित हो चुका हो। इसलिये कि यह तो बुद्धिसे विपर्यस्त बात है कि द्रव्यका प्रभाव उस समय तो प्रगट न हो जबकि वह शरीरके भीतर वर्तमान हो, और उसके उपादान शरीरके अग-प्रत्यगसे मिलते हों और जब वह शरीरसे उत्सर्गित हो जाय, तब उसका प्रभाव प्रगट हो और यह प्रभाव ज़ाती (द्रव्यकी आत्मासे—सहज, स्वभावकृत, प्रकृत, निज) हो। यही यह बात कि हमने इसमें "साधारणतया" का प्रतिबंध लगाया है। उसका कारण यह है कि कतिपय द्रव्यो (अज्साम)का आत्मप्रभाव (ज़ाती असर) उनके बाह्य (अनात्म) प्रभा-वज कर्म (आरज़ी असर)के पश्चात् प्रगट हुआ करता है। ऐसा उस समय होता है, जबकि कोई अनात्मीय वा बाह्य (औपाधिक, उपाधिकृत—आरज़ी) शक्ति उनकी मूल (आत्म) शक्तियोको पराभूत कर लेती है। उदाहरणत उष्ण जलसे प्रथम उष्णता उत्पन्न होती है (जो उसका बाह्य—आरज़ी कर्म है)। इसके बाद जबकि बाह्य प्रभाव दूर हो जाता है तब उससे शीतलता प्राप्त होती है (जो जलका आत्मीय—ज़ाती कर्म है[1])। (नफ़ीस)। इसके अतिरिक्त 'साधारणतया'का प्रतिबंध इसलिये भी आवश्यक है कि कतिपय औपधद्रव्य दो या अधिक सत्त्वो (जौहरो)से ससृष्ट होते हैं और ये सत्व (जौहर) विभिन्न कालमें काम करते हैं। इसलिये ये उभय कर्म, चाहे परस्पर विरोधी हो और आगे-पीछे प्रगट हो, "आत्मीय (असली और ज़ाती)" ही होगे। रेवदचीनीमें एक सत्व विरेचक है, जो प्रथम कार्य करता है और एक सत्व मग्राही (काबिज) जो बादको आँतोमें कब्ज पैदा कर देता है।

सप्तम नियम—"औपधद्रव्यका उक्त कर्म निश्चित और स्थायी हो।" क्योकि जो कर्म निश्चित और स्थायी

---

१ यह बात विचारणीय है कि जल वस्तुत शीतल है या नहीं। यह सिद्ध करना सहज नहीं कि जल स्वभाव (प्रकृति)से (बित्तबा) शीतल अर्थात् प्रकृतिशीत है।

न हो, वह प्राय आकस्मिक वा सयोगवशात् होनेवाला होता है, मौलिक और प्राकृतिक नही होता। क्योंकि यह प्रगट है कि, जो कर्म किसी द्रव्यकी प्रकृति (तबीअत)मे प्रगट होते है, वह उनसे पृथक् नही हो सकते।

प्रयोग वा अनुभव (तज्रिबा)के नियम—यूनानी वैद्यक-विद्याके जनक बुकरात (अबुक्तिव्य बक्रात)के संकेतानुसार अपरिचित और अज्ञात प्रभावयुक्त (मज्हूलुत्तासीर) औषधद्रव्योंके प्रयोगानुभव और परीक्षणमें अनेकानेक आशंकाएँ (खतरे) है, क्योंकि कभी कभी तनिक-सी असावधानी और अविवेकसे केवल प्रयोग और परीक्षणमें बहुमूल्य मानवजीवनका नाश हो जाता है। सभव है वह अपरिचित वा अज्ञात औषध उग्र विष हो, जिसकी तनिक-सी मात्रा प्राणनाशका कारण बन जाय। अतएव प्राचीन यूनानी वैद्योने प्रयोग और परीक्षणके लिये कुछ नियम निर्धारित किये है। यथा—

(१) जिन द्रव्यके कर्मोंका प्रयोग और परीक्षण करनेका विचार हो, उसे सेवन करानेसे पूर्व ध्यानपूर्वक और सावधानीके साथ यह देख ले, कि उसकी गध और स्वाद क्या है? यदि उसकी गध और स्वाद अप्रिय और आकुलताजनक हो, तो समझना चाहिये कि वह हानिकारक है। ऐसे द्रव्यको बहुत सावधानी और सतर्कतासे उपयोग करनेकी आवश्यकता है। इसी तरह यदि किसी द्रव्यके उपयोगके अनतर चित्तमें घृणा और व्याकुलता उत्पन्न हो तो, समझना चाहिये कि वह अनिष्टकर और अहितकर उपादानोंसे सघटित है। असावधानीसे उपयोग करनेसे पूर्व प्रयोग और परीक्षणके प्रारभिक सोपान पार करना आवश्यक है। कतिपय औषधद्रव्य ऐसे उग्रवीर्य (कवीउल्अमल) है, कि जरा-सी मात्रामें चखने और सूंघनेसे मृत्युका कारण होते है। इसलिये वास्तविक सावधानी यह है कि अज्ञात द्रव्योंके सूंघने और चखनेका भी साहस न किया जाय, अपितु प्रथम पशुओ पर प्रयोग किये जायँ, जैसा कि नीचे बताया गया है।

(२) अज्ञात द्रव्यके प्रयोग प्रथम मनुष्येतर प्राणियो पर किये जायँ, विशेषकर उन प्राणियो पर जिनके मिजाज मानव मिजाज (प्रकृति)के समीपतर है, उदाहरणत बन्दर इत्यादि। और उनमें जो कर्म प्रकाशित हो उनको ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया जाय। प्रयोग वा परीक्षणकालमें उन प्राणियोको अपने सरक्षणमें रखा जाय और खान-पानके नियमोका पूर्ण रूपसे पालन करनेका यत्न किया जाय। जब बार-बारके प्रयोग और परीक्षणके उपरात कोई कर्म निश्चित हो जाय, तब उक्त प्रयोजनकी सिद्धिके लिए अल्प मात्रामें मनुष्यपर प्रयोग करनेका साहस किया जाय, फिर क्रमश उक्त मात्राको उत्तरोत्तर बढाकर देखा जाय, परन्तु प्रत्येक अवस्थामें दूरदर्शिता वा परिणामदर्शिता और सतर्कताका अचल हाथसे छूटने न पाये।

(३) मनुष्येतर प्राणियो पर प्रयोग करनेके उपरात जब मनुष्य पर प्रयोग करनेका अवसर प्राप्त हो, तब प्रारभिक प्रयोगके लिए ऐसे मनुष्यको चुने जो बलवान्, वीर्यवान्, परिवृहित—स्थूल और युवा हो, शिशुओ, वृद्धो और निर्बल व्यक्तियो पर पहले-पहल कदापि नूतन द्रव्यका प्रयोग न किया जाय। उनमें सहनकी शक्ति न्यून होती है। सभव है वह द्रव्य विषैला हो और उसका अनिष्टकर प्रभाव ऐसे लोगोके लिए असहनीय सिद्ध हो। इसके पश्चात् अन्यान्य बहुसख्यक व्यक्तियोमें एतज्जन्य कर्म निरीक्षण किये जायँ। इस तरह द्रव्य प्रकृति (मिजाज), वीर्यके तारतम्यके अनुसार किया हुआ श्रेणीविभाजन (दरजे तासीर), प्रभाव (खवास) और औषध-प्रमाण (मात्रा)-का निर्धारण हुआ करता है।

अनुमान वा क़ियास

यह द्रव्य सभवत अमुक कर्मविशिष्ट होगा, इस बातका विवेक एव निर्णय करने और इस ओर हमारी बुद्धिके पथप्रदर्शनमें अधोलिखित बातें साहाय्यभूत हुआ करती है —

द्रव्यगत परिवर्तन (इस्तिहाला), रस, गध, वर्ण, द्रव्यकी भौतिकस्थिति (किवाम) और अन्यान्य लक्षण (खुसूसियात)।

इनमें एक वा एकाधिक लक्षण जब हम किसी अज्ञात द्रव्यमें पाते हैं, तब हमारी बुद्धिमें अकस्मात् यह बात आती है, कि अमुक ज्ञात द्रव्यमे, यही लक्षण पाया जाता है और अनुभवसे यह ज्ञात हो चुका है कि उसमें अमुक गुण-कर्म अन्तर्भूत हैं । इसलिये सभव है कि इस अज्ञात द्रव्यमें भी यही गुण-कर्म वर्तमान हो। उदाहरणत हमें पूर्वसे ज्ञात है कि, कपूर वेदनास्थापक है । इसके पश्चात् हमें एक अज्ञात द्रव्य प्राप्त होता है जिससे कपूरकीसी गध आ रही है। *गध ग्रहण करनेके पश्चात् बुद्धिमें सहसा यह बात आती है, कि कदाचित् यह भी कपूरकी भाँति वेदना*-स्थापक हो । इसीको अनुमान कहते है, जिसका खडन और समर्थन अनुभव वा प्रत्यक्षरूपी कसौटीसे हुआ करता है ।

द्रव्यगत परिवर्तन वा विपर्यास (इस्तिहाला)—द्रव्यगत परिवर्तनसे यह अभिप्रेत है, कि उष्णता, प्रकाश, वायु, जल, रगडने और घिसनेसे या किसी अन्य द्रव्यके साथ मिलानेसे द्रव्यके बाह्यान्तरिक (ज़ाहिरी और हकीकी) लक्षणमें क्या-क्या परिवर्तन आ जाते हैं। आतरिक वा मूल परिवर्तन (हकीकी तब्दीली)से यह अभिप्रेत है, कि द्रव्यके लक्षणमें मूलत आशिक वा सम्यक् परिवर्तन हो जाय और बाह्यपरिवर्तन (ज़ाहिरी तब्दीली)से यह अभिप्रेत है, कि उसके आतरिक वा मूल लक्षणमें कोई परिवर्तन न हो, पर उसके कतिपय लक्षण (वर्ण, गध, रस इत्यादि) परिवर्तित हो जायँ । यह भी स्मरण रहे, कि यद्यपि यह सभव है कि मूल स्वरूप (माहिय्यत)के परिवर्तनके विना किसी द्रव्यके कतिपय बाह्य या ऊपरी लक्षण बदल जायं, किंतु इसके उदाहरण स्वल्पतर मिला करते हैं। अधिकतया यही होता है, कि जब औषधद्रव्यके समस्त या कतिपय उपादानोका सगठन बदल जाता है, उसी समय उसके ऊपरी लक्षण बदला करते हैं। परिवर्तनसे अनुमान (कियास बिल् इस्तिहाला)का एक उदाहरण यह है, कि एक द्रव्य उष्णता (आतप वा धूप और अग्निकी उष्णता)से प्रज्वलित हो उठता है और दूसरा उससे बिलकुल प्रभावित नही होता । इससे हमारी बुद्धिमें यह बात आ सकती है, कि यह प्रज्वलित हो उठनेवाला द्रव्य सभव है कि उष्ण हो अर्थात् जिस तरह वह बाहर जलकर उष्णता उत्पन्न कर रहा है, उसी प्रकार उससे इस अनुमानकी भी पुष्टि होती है कि वह शरीरमें प्रविष्ट होकर स्थानिक वा सार्वदैहिक रूपसे शारीरिक ऊष्माको परिवर्धित कर दे । और जो वस्तु बाहर अग्निमें प्रज्वलित नही हो रही है, वह शारीरिक ऊष्माकी उत्पत्तिके लिए निष्प्रयोजनीय है । प्रत्यक्षीकरण अर्थात् अनुभव (प्रयोग एव परीक्षण) द्वारा इस तरहकी प्रायश बातोकी पुष्टि हुआ करती है । अर्थात् यह वस्तुत सत्य है कि जो वस्तुएँ बाह्य उत्तापसे प्रभावित होकर प्रज्वलित हो जाया करती हैं वह मानवशरीरके लिए अधिकाधिक उष्ण हैं । उदाहरणत गधक, स्नेह और अगणित प्रकारकी शर्कराएँ । इसके पश्चात् उष्णताके कक्षा-निर्धारणके लिए इसी सिद्धातमें यह देखा जाता है, कि कौनसा द्रव्य शीघ्र और तीव्रताके साथ प्रज्वलित होता है और कौनसा विलबसे और मदताके साथ । जो द्रव्य शीघ्र भडक उठता है, अनुमानसे यह मालुम होता है कि कदाचित् वह शरीरके लिए भी अधिक उष्ण सिद्ध हो । जो द्रव्य मथर गतिसे जलते हैं, वह शरीरमें भी उसी अनुपातसे अल्प उष्णता उत्पन्न करते हो । इसी प्रकारके दो द्रव्योके वीर्यके तरतमके अनुसार किया हुआ श्रेणी-विभाजन (दरजे तासीर)के अनुमान करनेमें इस बातका विचार परमावश्यक है, कि वे उभय द्रव्य परिमाण और आयतन, स्थूलता और सूक्ष्मता (लघुता-गुरुता-लताफत व कसाफत) और पोले तथा ठोस (विविक्त एव घन वा सहत) होने (तखल्खुल व तकास्सुफ)में समान हों और काममें ली जानेवाली उष्णताका उत्तापाश भी उभय स्थलोमें समान हो, वरन् निष्कर्ष निकालनेमें भूल होनेकी अधिकाधिक सभावना है । मानवशरीरके भीतर कायाग्नि (हरारते गरीजिया)की उत्पत्ति कतिपय बातोमें बाह्य अग्निजात उष्णतासे यद्यपि भिन्न है तथापि अन्य बहुश बातोमें एकका दूसरी पर अनुमान करना यथार्थ है । परिवर्तनके अनुमान (कियास बिल्इस्तिहाला)का द्वितीय उदाहरण यह है कि कोई अपरिचित द्रव्य हमारे सम्मुख आया, जिसके अवयव लोहेके साथ मिलकर काले पड गये । यह निरीक्षण कर हमारी बुद्धिमे यह बात आ सकती है कि यह अज्ञात द्रव्य भी सभवत अनार और हडकी भाँति वाहिनीसकोचक (काबिज़ उरूक) हो ।

अनुमानकी निर्बलता—समस्त प्रकारके अनुमान (जबतक वह अनुमानकी कोटिमें है और जबतक प्रत्यक्ष वा अनुभवसे उनके सत्य होनेका प्रमाण प्राप्त न हो गया हो) केवल पुष्ट वा अपुष्ट विचार वा धारणाका काम करते

(सग्राही) द्रव्यका कर्म है, न कि रस। फिर भी यूनानी द्रव्यगुणशास्त्रमें इसे कषाय रसका एक भेद माना गया है। उसमें लिखा है कि कषाय (अफिस) और सग्राही (काबिज़) दोनोका रस समान होता है। अतर केवल यह है कि काबिज़ जिह्वाके बाह्य भागोको सकुचित करती है और अफिस (कषाय) बहिराभ्यतरिक उभय भागोको सकुचित करती और कर्कशता उत्पन्न करती है। काबिजका कर्म साधारणतया कषाय द्रव्योके समान हुआ करता है, परतु इनसे निर्वलतर होता है। भाष्यकार गाज़रूनी लिखते है कि कब्ज़ सज्ञाका व्यवहार प्रथम उदरावष्टम्भ (हुब्स शिकम) और द्वितीय अवयवाकुचन और द्रवाभिशोषण इन उभय अर्थोमें होता है। आयुर्वेदके अनुसार इन उभय रसोका अतर्भाव कषाय रस और उसके कर्मोमें ही होता है। आयुर्वेदमें स्नेह (दस्मिम)का अतर्भाव रसोमें नही, अपितु गुणोमें किया गया है। इस प्रकार सूक्ष्म विचार करनेसे रस केवल छ ही ठहरते हैं।[1] आयुर्वेदको यही मत समत है।

आगे उपर्युक्त इन नौ रसो (नौ रसयुक्त द्रव्यो)मेसे प्रत्येकके गुण-कर्म आदिका निरूपण सक्षेपमें किया जा रहा है—

(१) कटु वा चरपरे औषधद्रव्य (अद्‌विया हिर्रीफा)में साधारणतया निम्न गुण-कर्म विद्यमान होते हैं—वाहिनीविस्फारण वा स्रोतोविशोधन (तफतीह उरूक), दोपोंको सूक्ष्म (लतीफ) और तरलीभूत एव द्रवीभूत करना (तलतीफ और तरकीक), विलीनीकरण (तहलील) और उष्णताजनन। कटु द्रव्य उर प्रसादक और दृष्टिको हानिकर है। ये शरीरकी त्वचाका लेखन करते, उसमें प्रवेश करते, दोपोका छेदन करते (मुकतेअ) और स्वच्छता प्रदान करते (जिला) हैं। प्रकृति—उष्ण और रूक्ष।

(२) तिक्तरस द्रव्य (अद्‌विया मुर्र —कडवी दवाएँ)। प्रकृति—उष्ण और रूक्ष। गुण-कर्म—इससे भी साधारणतया उसी प्रकारके कर्म निष्पन्न होते हैं, जो कटुरसद्रव्योंसे। परतु कतिपय तिक्तरसद्रव्य उक्त नियमके अपवाद है, जिनसे पूर्वोक्त कर्म निष्पन्न नही होते। उदाहरणत अहिफेन। इसके अतिरिक्त कतिपय तिक्तरसद्रव्य कोथप्रतिबधक (माने उफूनत) भी हैं। तिक्तरसद्रव्य (दवाए मुर्र) शरीरमें रूक्षता उत्पन्न करते, जिह्वामें कर्कशता पैदा करते और सग्राही होते एव तरलता (लताफत) उत्पन्न करते हैं। यह दोपोका प्रसादन एव छेदन करते तथा उन्हें द्रवीभूत करते है। यह उष्णता उत्पन्न करते और दोषोंको दूषित होनेसे बचाते हैं। अपनी उष्णता और भौमीयताके कारण यह अन्य समस्त कर्मोमें कटुरससे निर्बल हैं। परतु रौक्ष्यजनन (तजफीफ) और कोथप्रतिबध (मना तअफ्फुन) कर्ममें पार्थिव तत्त्वाशके कारण उससे बलवान् है।

(३) लवणरस द्रव्य (अद्‌विया मालेह)। प्रकृति—उष्ण एव रूक्ष। गुण-कर्म—वाहिनियोको विस्फारित करके उनके अवरोध और काठिन्यको दूर करनेवाला (तफतीह उरूक), दोपोको द्रवीभूत करके बहानेवाला (तलतीफ) और छेदन करनेवाला (तकतीअ), विलीन (तहलील) और लेखन (जिला) करनेवाला, कोथप्रतिबधक और उष्णताजनक है। यह सूक्ष्मता (लताफत) और स्थूलता (कसाफत)में मोतदिल है। यह शोथविलयन है, शरीरकी त्वचाको रूक्ष और शिथिल करता है, मार्गोका शोधन और प्रक्षालन करता (गस्साल) और उष्णता उत्पन्न करता है, परन्तु अधिकताके साथ नही। यह समस्त कर्मोमें तिक्तरसद्रव्य (दवाए तल्ख)के समीपतर है।

(४) अम्लरस द्रव्य (अद्‌विया हामिजा—तुर्श दवाएँ)। प्रकृति—शीतल और रूक्ष, पर आलूबुखारा शीतल और स्निग्ध है। गुण-कर्म—साधारणत ये निम्नलिखित गुण-कर्मविशिष्ट होते हैं। यद्यपि इनके अपवाद भी

---

१ आयुर्वेदके मतमे रस छ है—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय जो द्रव्यको आश्रय करके रहते है। इनमे अन्तमे पूर्व-पूर्व रस अधिक बल देनेवाला है। यथा, 'रसास्तावत् षट्—मधुराम्ल-लवण-कटु-तिक्त-कषाया॥" (च० वि० अ० १) "स्वादुरम्लोऽथ लवण कटुकस्तिक्त एव च। कषायश्चेति षट्कोऽय रसाना सग्रह स्मृत॥" (च० सू० अ० १)। "रसा स्वाद्वम्ल-लवण-तिक्तोषण-कषायका। षड् द्रव्यमाश्रितास्ते च यथापूर्वं बलावहा॥" (अ० स० सू० अ० १, अ० हृ० सू० अ० १)।

बहुतायतसे होते हैं। यह दोषोको पतला (तलतीफ) करता और उनका छेदन (तकतीअ) करता है, तथा शरीरके भीतर प्रविष्ट (तनफीज़) करा देता, मार्गोका शोधन (तफतीह मजारी) करता और वाहिनीगत अवरोधको दूर करके स्रोतोका उद्घाटन अर्थात् स्रोतोविशोधन (तफतीह सुदद) करता है। यह पित्त और रक्तको नष्ट करता है तथा मस्तिष्क, शरीर और सधियोको हानिकर है, परतु उष्ण प्रकृतिको सात्म्य है। यह खाये हुए अन्नको पकाता, आमाशयस्थ दोषोंको विलीन करता और क्षुधाकी वृद्धि करता है। यह हृद्य है। इसे मर्दन करनेसे शरीरगत कण्डूका नाश होना है। यह शरीरको रूक्ष करता और उदरावष्टम उत्पन्न करता (हाबिस शिकम) है तथा तोपतारल्यकर्ता (मुलत्तिफ) और दोपछेदनकर्ता (मुकत्तेअ) है, और अगको शिथिल और दोषोंसे शून्य करता है। शीतलता, स्निग्धता और तरलता (लताफत)के कारण इससे उक्त कर्म निष्पन्न होते हैं।

(५) कषायरस द्रव्य (अद्विया अफिसा)। प्रकृति—शीतल और रूक्ष। गुण-कर्म—ये प्राय वाहिनियो और प्रणालियो (उरूक और मजारी)को सकुचित कर देते हैं। इसलिये ये दोषोको लौटानेवाले और निचोडनेवाले (रादेअ माद्दा और आसिर) कहलाते हैं। अपने शीत, भौम और स्थूल (कसीफ) गुणके कारण ये शरीरके अग-प्रत्यगोंमें दृढता (कसाफत), कठोरता और कर्कशता उत्पन्न कर देते हैं, और उत्तापकी उत्पत्तिको कम कर देते (शीतोत्पादक होते) हैं। ये रक्तस्तभन (हाबिस खून) और अतिसारघ्न हैं, तथा बहते हुए द्रवोका स्तभन करते और उदरस्तभ (कब्ज़ शिकम) पैदा करते हैं।

(६) सग्राही (काबिज़) द्रव्य—ये भी शीतल और रूक्ष होते हैं। इनका प्रभाव भी साधारणतया कषाय-रसद्रव्योंके समान, किंतु उनमे निर्बलतर हुआ करता है। ये वातिक रक्त उत्पन्न करते और कृशता करते हैं। अपने शीत और भौमत्वके कारण ये उदरस्तभक (हाबिस शिकम), क्षुद्बोधकारक, दोषनाद्रकर्ता (मुगल्लिज़), शीतजनन (मुबर्रिद) और दोषविलोमकर्ता (रादेअ) हैं।

(७) स्निग्ध द्रव्य (अद्विया दसिमा या चिकनी दवाएँ)। प्रकृति—अनुष्णाशीत (मौतदिल)। गुण-कर्म-साधारणत अपनी तरलता (लताफ़त), वायव्य और आप्य गुणके कारण ये शरीरको स्निग्ध करते हैं और मार्दवकर (मुलय्यिन), विकाशी (मुरखी), फिसलानेवाले (मुज़लिक) परिपक्वकर्ता अर्थात दोषपाचन (मुज़िज) और उष्णताजनन (मुसख्खिन) हुआ करते हैं। ये आमाशयको शिथिल करते, प्रवल दोषमें परिणत हो जाते, क्षुधाका ह्रास करते और आमाशयमें गुरुता उत्पन्न करते हैं।

(८) मधुररसद्रव्य (अद्विया हुलुव्व –दवाए हुल्व)। प्रकृति—उष्णता लिये मौतदिल। गुणकर्म—यह शुक्रल एव क्षुधानाशक है और तुरत प्रधान दोषमें परिणत हो जाता है। अपनी अनुष्णाशीत (मौतदिल) उष्णता और सूक्ष्मता (लताफत)के कारण यह प्राय वक्षको दोषादिसे स्वच्छ करता (जाली) है, आमाशयको शिथिल वा मद करता (मुरखी), दोषोको परिपक्व करता (मुन्जिज) और शोधन करता, दोषको मृदु करता (मुलय्यिन) और पतला करता (मुरक्किक) एव घटाता है। यह रक्तमें परिणत हो जाता, और किंचित् उष्णता उत्पन्न करता (मुसख्खिन) है। किंतु जो द्रव्य अधिक मधुर होता है, वह अत्यधिक उष्णता उत्पन्न करता है। इससे जिह्वा कर्कश हो जाती है और तृष्णा लगती है।

(९) अनुरस (फीके) द्रव्य (अशियाए तफिहा)। प्रकृति—शीतल और स्निग्ध। गुण-कर्म—सूक्ष्मता (लताफ़त) और स्थूलता (कसाफत)में मौतदिल है। यदि रस (रतूबत)पूर्ण याने आर्द्र हो, तो साधारणतया उत्ताप-शामक और तृषाहारक हुआ करते हैं एव पित्त और रक्तके प्रकोप (हिद्दत) तथा उर कार्कश्यको निवारण करते हैं। ये क्षुधाको कम करते, आमाशयको शिथिल करते और आमाशयगत वलियोको हानि पहुँचाते हैं।

ये समस्त नियम आनुमानिक हैं, सर्वतन्त्र सिद्धात नही। अतएव इनमेंसे कोई भी निरपवाद नही कहे जा सकते। यह भी ज्ञात रहे कि द्रव्य या माद्दाभेदसे या कर्ता (फाएल) भेदसे रसोमें भेद हुआ करता है। कर्ता (फाएल)

शीतलता है या उष्णता अथवा समशीतोष्णता (एतदाल) और तीनमें तीनका गुणन करनेसे गुणनफल नौ होता है। अर्थात् सबल उष्णता जब तरल द्रव्य (माद्दएलतीफ)मे प्रभाव करेगी तब कटुता उत्पन्न होगी और घन वा स्थूल द्रव्य (माद्दए कसीफ)में उसके प्रभाव करनेसे तिक्तता और मौतदिल द्रव्य (माद्दए मौतदिल)में प्रभाव करनेसे लवण रसकी उत्पत्ति होगी। प्रबल शीत जब तरल द्रव्यमें प्रभाव करता है तब अम्लरस, और घन वा स्थूल द्रव्यमें प्रभाव करनेसे कषाय रस (अफ़ूसत) और उनके बीचके द्रव्यो (माद्दए मुतवस्सत)में प्रभाव करनेसे सग्राही गुण (क़ब्ज़त)-की उत्पत्ति होती है। समशीतोष्ण कर्ता (फाएल मौतदिल गर्मी व सर्दी) जब तरल द्रव्य (लतीफ़ माद्दा)मे प्रभाव करता है, तब स्नेह (चिकनाई) और घन वा स्थूल द्रव्य (माद्दे कसीफ)में प्रभाव करनेसे मधुर रस, और बीचके माद्दे (माद्दे मुतवस्सत)में फीका रस उत्पन्न करता है।

विद्वद्वर नफीस इन रसोंके बीच उष्ण और शीतके तरतम-भेदानुसार उनकी कक्षाएँ निर्धारित करते हुए लिखते है—(१) समस्त प्रकृतिभूत या असंसृष्ट रसोंके गुणकी कक्षाएँ (दरजात कैफिय्यत) सम्यक्तया समान नही हैं। अस्तु उष्ण रसोमें, सबसे अधिक उष्णता कटुरस (हिर्रीफ)के भीतर होती है, उसके बाद तिक्तरसमें और उसके भी बाद लवण रसमें। (२) असंसृष्ट शीतल रसोंमें सर्वाधिक शीतल कषायरस, उसके बाद सग्राही (क़ाबिज) और उसके भी बाद अम्लरस होता है। (३) जो रस उष्णता और शीतलताके मध्य अर्थात् समशीतोष्ण (मौतदिल) हैं, उनमें मधुररस कुछ अधिक उष्णता लिये होता है, उसके बाद स्नेह (चिकनाई) और सबमें मौतदिल फीका है। (४) रूक्ष रसोंमें सबसे अधिक रूक्षता तिक्तके अदर होती है, उसके बाद कटु वा चरपरे रसमें, और उसके बाद कषाय रसमें। (५) स्निग्ध (तर) रसोमें सर्वाधिक स्निग्धता (रतूबत) फीकेमें होती है। क्योकि इसके सत्त्व वा जौहरमें जलांशका प्राधान्य होता है, इसके बाद मधुर रसमें, और इसके बाद स्नेह (चिकने)में। (६) वे रस जो स्निग्धता और रूक्षतामे मौतदिल (समस्निग्धरूक्ष) हैं, उनमें सबसे अल्प रूक्षता अम्लके अदर होती है, उससे अधिक सग्राही वा काबिज़के अदर, और सबसे अधिक लवण रसके अदर। प्राय, यह कक्षाएँ (मरातिब) कतिपय मधुर फलोमें कक्षाबद्ध पाई जाती हैं। उदाहरणत यदि उनके उपादानसाधनभूत तत्त्वो (माद्दे)पर स्निग्धता और तरलता (लताफत)का प्रावल्य है, जैसे—द्राक्षा और आम, तो वे प्रारभमें फीके होते है। इसके उपरात उनके स्वादमें सग्रहण (कब्ज़) और कषायन उत्पन्न हो जाता है। क्योकि माद्दा (द्रव्य) घन (कसीफ) होता है और उष्णता पूर्णतया प्रभाव नही करने पाती। फिर माद्दाके कुछ तरल (लतीफ) हो जाने और उष्णताके प्रभाव करनेके उपरात वे कषायपनसे अम्लतायुक्त हो जाते हैं। धीरे-धीरे अम्लता कम पडती है और कषायनपन घटता है। जब वे समताकी सीमापर पहुँचते हैं, तब उनके स्वादमें मधुरता उत्पन्न होने लगती है। धीरे-धीरे मधुरता उत्तरोत्तर बढती जाती है और अम्लता कम पडती है। अतत वे पूर्णतया मधुर हो जाते हैं। यदि उनमे तरी अधिक होती है और पक चुकनेके पश्चात् जब पकानेवाली मूल उष्णता कम हो जाती है और बाह्य ऊष्मा प्रभाव करती है, तब वे पुन अम्ल हो जाते हैं और उनका माद्दा (उपादान) बहुत तरल (लतीफ) नही होता और बाह्य ऊष्मा अधिक होती है, तो वे चरपरे और कडवे हो जाते हैं।

द्रव्यगत गध—यूनानी वैद्यकमें औषधद्रव्योके वैद्यकीय उपयोगोकी मीमासा या उपपत्ति उनकी गधकी सहायतासे भी की जाती है और यह उपपत्ति वर्णसे की जानेवाली उपपत्तिकी अपेक्षया अधिक निश्चित और प्रामाणिक होती हैं, अर्थात् द्रव्यगतगधकी सहायतासे औषधद्रव्यके गुण-कर्म विषयक जो अनुमान स्थिर किये जाते हैं, वे प्रयोग और परीक्षणके समय वर्णद्वारा किये हुए अनुमानकी अपेक्षया अधिक सत्य प्रमाणित हुआ करते हैं। परतु रसकी सहायतासे स्थिर किये हुए अनुमानकी अपेक्षया गधके द्वारा स्थिर किया हुआ अनुमान निर्बल और स्वल्पघटनीय होता है। वर्णकी अपेक्षया इसके सबल होनेका कारण विद्वद्वर नफीसने इस प्रकार निरूपण किया है—गधका ज्ञान उसी समय होता है जबकि गधमय द्रव्यके सूक्ष्म भाग (अज्ज़ाऽलतीफ)से वाष्प उडकर घ्राणेन्द्रिय (कुव्वत शम्मा) तक पहुँचते है और उसके स्थूल भाग (अज्जाऽकसीफ) न वाष्पके रूपमें परिणत होते हैं और न वे ऊपर

जाते हैं। तात्पर्य यह कि गधमें चूंकि द्रव्यके घटक (दवाऽका जिर्म) कुछ-न-कुछ अवश्य ज्ञानवहा नाडियो तक पहुँचते हैं, इसलिए यह वर्णकी अपेक्षया अधिक सवल प्रमाण हो सकती है (क्योकि वणके परिज्ञानमें वर्णयुक्त पदाथका कोई अश चक्षुरिन्द्रिय तक नही पहुँचता) और चूंकि गधमय पदाथके सपूर्ण घटक ज्ञानेन्द्रिय तक नही पहुँचते, अतएव यह रसकी अपेक्षया निर्वल प्रमाण वा दलील है (क्योकि रसास्वादन करने पर आस्वाद्य द्रव्यके प्रत्येक घटक जिह्वा तक पहुँचते हैं)।

परतु उपर्युक्त व्याख्या केवल उन्ही द्रव्योमें सत्य प्रमाणित हो सकती है, जो मिश्रवीर्य (मुरक्कवुलकुवा) हो और उसके कुछ भाग सूक्ष्म हो और कुछ स्थूल। यह मैं प्रथम वता चुका हूँ कि प्राय अमिश्र प्राकृत द्रव्य अर्थात् कार्यद्रव्य जो अपनी नैसर्गिक अवस्थामें हो, उदाहरणत वानस्पतिक फल, पुष्प, पत्र, मूल इत्यादि और प्राय प्राणिज औषधद्रव्य वह इसी प्रकार समिश्रवीर्य वा वहुवीर्य हुआ करते हैं। पर कतिपय द्रव्य इस प्रकारके भी है जो वानस्पतिक, प्राणिज या पार्थिव द्रव्योंसे प्राप्त किये जाते है, किंतु वे उभय प्रकारके उपादानोंके समवायसे नही वने हैं। या तो वे केवल सूक्ष्म भागोंके समाहार हैं जिनके समस्त भाग उडने और वाष्पके रूपमें परिणत होने योग्य हैं। उदाहरणत कपूर, गुलसार, वहुश सूक्ष्मतैल अथवा वे केवल स्थूल भागोके समाहार है जिनसे विलकुल वाष्प नही उडते या वहुत ही कम उडते है, उदाहरणत सखिया।

गधसे अनुमान करनेकी विधि यह है कि हम किसी द्रव्यको सूंघकर यह वता दें कि सभवत यह उष्ण होगा या कोथप्रतिवधक। कोथप्रतिवधक कतिपय द्रव्योकी गध एक विशेष प्रकारकी होती है। इस प्रकारकी गध किसी अज्ञात द्रव्यमें पाकर यह अनुमान किया जा सकता है और प्रयोग करने पर वह सत्य भी हो सकता है कि वह कोथप्रतिवधक है। गुलाव, वेदमुश्क, केवडा इत्यादि भीनी-भीनी गधमय द्रव्य हृदय और मस्तिष्क पर जो प्रभाव रखते है, यदि इसी प्रकारका कोई अज्ञात द्रव्य हमें जगलमें मिले तो हमारी वुद्धि यह अनुमान स्थिर कर सकती है कि कदाचित् उसके गुणकर्म भी इन सुगध द्रव्योकी भाँति मन प्रसादकर और वल्य हो। प्राचीन यूनानी वैद्य लिखते हैं कि गधकी प्रतीति वाष्पके सदृश उस सूक्ष्म घटकके कारण हुआ करती है, जो गधमय पदार्थके भीतर साधारणतया उत्तापका होना अनिवार्य होता है। इसी कारण प्राचीन यूनानी वैद्योने गधानुमानके प्रसग (कियासात राइहा)मे इस विषयका उल्लेख किया है जो प्राय स्थलोंमें सत्य है कि "तीक्ष्णगधी द्रव्य सामान्यतया मानव शरीरके लिए उष्णताकारक मुसख्खिन (उत्तापजननका कारण) हुआ करते है, उदाहरणत हीग, लहसुन, केसर, अवर, कस्तूरी, जुदवेदस्तर, लौंग, दालचीनी, सोंठ, जटामासी (सुवुलुत्तीव), पुदीना, रैहा (तुलसीभेद), अजवायन, जीरा इत्यादि।" गधयुक्त घटकोके उडनेके लिए न्यूनाधिक उत्तापकी आवश्यकता हुआ करती है, चाहे वह उत्ताप वायुका हो या धूप वा सूर्यका। अस्तु, "जव किसी द्रव्यकी गध निर्वल वा मद होती है, तव उसके मलने, वाष्प और धूम्रमें परिणत करने अर्थात् उत्ताप पहुँचानेसे गध तीक्ष्ण हो जाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्राय गधज्ञान करानेवाली—उसे घ्राणेन्द्रियतक पहुँचानेवाली वस्तु प्राय उत्ताप ही हुआ करती है" (नफीस)। इससे यह प्रगट है कि जव गधमय द्रव्य उष्ण होगा, तव अनिवार्यत उत्ताप गधयुक्त पदार्थके सूक्ष्म घटकोको वाष्प वनाकर उडानेका कारण होगा। इसलिये उसकी गध अत्यत तीक्ष्ण और कष्टप्रदायिनी सिद्ध होगी और उक्त गध इस वातका प्रमाण होगा कि वह किसी उष्ण एव सूक्ष्म उपादान (माद्दा)के कारण उत्पन्न हुई है। परतु इसके साथ ही यह भी आवश्यक नही है कि उस उपादानके समग्र घटक (अज्ज़ाऽ) उष्ण ही हो, प्रत्युत यह सभव है कि उसका अन्य उपादान परम शीतल और गधहीन[1] हो। सक्षेपमें तीक्ष्ण और तीव्र गध उत्तापका प्रमाण है। यदि औषधमें गध कम हो या उसका अभाव हो तो शीतलताका और गध मृदु हो तो मौतदिल होनेका प्रमाण है। चूंकि सखिया निर्गंध होने पर अत्यत उष्ण और उत्तापजनक (मुसख्खिन) है और कपूरको तीक्ष्णगधी होने पर भी प्राय यूनानी वैद्य शीतल स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार

---

१ उचित सस्करणयुक्त नफ़ीसीमे उद्धृत।

विविध गधमय द्रव्योमे विभिन्न गुण-कर्म निहित होते है। इसलिये गधानुमान अन्यान्य अनुमानोकी भाँति सर्वतत्र सिद्धात (कानून कुल्ली) नही वन सकता, जैसा कि प्राचीन यूनानी वैद्यकोने इसका प्रतिपादन किया है।

मख्जनुल अदविया नामक प्रसिद्ध यूनानीद्रव्यगुणविषयक फारसी ग्रथके प्रणेता सय्यद मुहम्मद हुसेन साहब उलवी लिखते है—"चूँकि प्राय स्थूल और कठोर पदार्थ अत्यत स्थूलता और कठोरता (कसाफ़त)के कारण इस योग्य नही होते कि उनसे अणु और सूक्ष्म वाष्प भिन्न होकर उडे और घ्राणेन्द्रिय तक पहुँचें। उदाहरणत गृह-निर्माणमें काम आनेवाले प्रस्तर और याकूत, हीरा, जमुर्रद इत्यादि। अतएव ऐसे द्रव्योमें गधसे औषधीय गुण कर्मके अनुमान करनेका सिद्धात वर्जित है।"

द्रव्यगत (आकृति एव रूप) वर्ण—अन्यान्य अनुमानोकी भाँति द्रव्यके वर्णसे अनुमान करनेकी पद्धति यह है कि कोई ऐसा द्रव्य जिसके गुण-कर्म अज्ञात हो। हमारे समक्ष लाया जाय, किनके विशेष वर्णको देखकर बुद्धिमें यह वात आये कि इसका उक्त विशेष वर्ण अमुक ज्ञात द्रव्यके वर्णसे मिलता-जुलता है, कदाचित् इसके गुण-कर्म भी उसी ज्ञात द्रव्य जैसे हो। यह प्रथम वताया जा चुका है कि द्रव्यगत वर्णसे द्रव्यगत कर्मोकी उपपत्ति करना, अन्य समस्त अनुमानोसे निर्वल और दुर्घट है। उदाहरणत वर्फ जैसी श्वेत वस्तुको निरीक्षणकर यह कहना कि कदाचित् यह भी वर्फकी तरह शीतल-स्निग्ध होगी और कोयला जैसी काली वस्तुको देखकर यह अनुमान करना कि इसके गुण-कर्म भी कोयलेकी तरह होगे। हाँ! वर्णके साथ यदि अन्यान्य लक्षण भी न्यूनाधिक सम्मिलित हो जायँ, तो उस समय अनुमान स्थिर करनेमें द्रव्यका वर्ण भी सहायक होगा और वह अनुमान अपेक्षाकृत सवल हो जायगा, जैसा कि पूर्वसे वताया गया है। यूनानी वैद्यकके अनुसार कृष्ण-वर्ण-द्रव्यकी प्रकृति उष्ण एव रूक्ष, श्वेत-वर्ण-द्रव्यकी प्रकृति शीतल-स्निग्ध, रक्तवर्णद्रव्यकी प्रकृति मोतदिल (अनुष्णाशीत) और हरितवर्णद्रव्यकी प्रकृति शीतल एव रूक्ष होती है।

द्रव्यकी भौतिक स्थिति (किवाम) और भार—औषधद्रव्यके कर्मोकी उत्पत्तिमें वर्ण और गधकी भाँति द्रव्यकी भौतिक स्थिति (किवाम) और भार इत्यादि भी सहायक सिद्ध हुआ करते हैं। उदाहरणत अधिकतर पिच्छिल (लवावदार) पदार्थ प्रवाहिका और अन्त्रप्रदाहमें लाभकारी सिद्ध हुआ करते हैं। जैसे—खत्मीकी जड (रेशे खत्मी), बिहीदाना, बबूलका गोद (समग अरवी), खत्मीबीज, खुब्बाजीबीज, वेलगिरी, गावजवानपत्र, इत्यादि। इस तरहका कोई पिच्छिल पदार्थ हमें प्राप्त हो जिसके गुण-कर्म पूर्वसे अज्ञात हो, तो हमारी बुद्धिमें यह वात सहजमे आ सकती है कि कदाचित् इसका लवाव भी रेशाखत्मीके लवावकी भाँति अन्त्रक्षोभका प्रशमक हो। द्रव्यके किवामसे यह अभिप्रेत है कि आया वह साद्र है, प्रवाही है या वाष्पीय अर्थात् वायव्य अवस्थामे है। पुन उक्तभेद-त्रयके तारतम्य भेदसे विभिन्न कक्षाएँ है, जिनको भिन्न-भिन्न पारिभाषिक सज्ञाओ द्वारा स्मरण किया जाता है। उदाहरणत यदि कोई द्रव्य साद्र वा ठोस है तो वह कठिन है अथवा उसके अवयव भुरभुरे है जो सहजमे पृथकीभूत हो जाते हैं। यदि कोई द्रव्य प्रवाही है तो वह तरल अर्थात् द्रव्य है या पिच्छिल (लवावी) और अर्धप्रवाही। इसी तरह यदि कोई द्रव्य वाष्पीय है तो उसके वाष्प किस प्रकारके हैं।

इसी प्रकार भार (वजन)के विचारसे एक वस्तु भारी या गुरू (सकील) होती है और दूसरी लघु वा हलकी। अनुमानमें किवाम और भारसे काम लेनेका दूसरा उदाहरण यह भी हो सकता है कि अज्ञातगुण कर्मविशिष्ट द्रव्यके रस, गध, और वर्ण इत्यादिको देखकर किसी वैद्यने यह अनुमान स्थिर किया कि इसमें अमुक ज्ञात द्रव्यके गुणकर्म पाये जाने चाहिये। जव तुमने उसे ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया तव ज्ञात हुआ कि इसका किवाम (भौतिक स्थिति) और भार उक्त ज्ञात द्रव्यके भार और किवामसे भिन्न है जो अनुमानका आधार है। इसलिये तुम्हें यह कहनेका अधिकार है कि चूँकि उक्त (अनुमेय) अज्ञात द्रव्यका किवाम और भार ज्ञात द्रव्य (मकैस अलेह—अनुमित)की भौतिक स्थिति (किवाम) और भारसे भिन्न हैं, इसलिये यह अनुमान होता है कि इसके गुणकर्म ज्ञात द्रव्यके गुण-कर्मसे भिन्न हो। इसके पश्चात् प्रयोग और परीक्षण द्वारा यह ज्ञात हो जायगा कि उभय अनुमानोमेंसे किसका अनुमान अधिक विश्वसनीय है।

द्रव्यकी भौतिक स्थिति (किवाम) और भारकी विभिन्न श्रेणियोकी कतिपय परिभाषाएँ—द्रव्यके किवाम और भारकी विभिन्न श्रेणियों और अवस्थाओके लिए यूनानी वैद्योंने कतिपय परिभाषाएँ स्थिर की हैं, जिनमेसे कतिपय वैद्यकोपयोगी आवश्यक परिभाषाओंका निरूपण यहाँ किया जाता है।

दवाऽल्लतीफ[1]—'लतीफ' अरबी शब्द है जिसका धात्वर्थ पतला, हलका और सूक्ष्म है। परतु परिभाषामे ऐसे द्रव्यको कहते है, जो शरीरमें प्रविष्ट होकर शारीरिक ऊष्मा (हरारते गरीजी)से प्रभावित होनेके उपरात शीघ्र सूक्ष्मातिसूक्ष्म भागोंमें विभाजित हो जाय, जैसे—केसर, दालचीनी और मद्य इत्यादि। इसके अतिरिक्त वह द्रव्य भी जो कठसे नीचे उतरते ही सम्पूर्ण शरीरमें व्यापमान हो जाय, लतीफ कहलाता है। इसका उल्टा 'कसीफ' है।

वक्तव्य—अर्थानुसार सूक्ष्म, लघु, आशुकारी और व्यवायी इन आयुर्वेदीय शब्दोका व्यवहार अरबी 'लतीफ' सज्ञाके लिए कर सकते है।

दवाऽक्कसीफ—'कसीफ' अरबी शब्द है, जिसका धात्वर्थ स्थूल है। परतु परिभाषामे ऐसे द्रव्यको कहते है, जो हमारी प्रकृत शारीरोष्मासे प्रभावित होनेपर सूक्ष्म अवयवोंमे विभाजित न हो।

वक्तव्य—अर्थानुसार स्थूल, मद, गुरु और चिरकारी इन आयुर्वेदीय शब्दोका व्यवहार इसके लिए कर सकते है।

इस प्रकार यदि लतीफ द्रव्य (दवाऽ लतीफ)का किवाम आशुप्रभावकारी (सरीउत्तासीर) होता है, तो कसीफ द्रव्य (दवाऽक्कसीफ)का मदप्रभावकारी (बतीउत्तासीर)। इसी विचारसे शीघ्रपाकी या लघुपाकी आहार-द्रव्योंको लघु आहार (गिज़ाए लतीफ) और चिरपाकी आहारोको गुरु आहार (गिज़ाए कसीफ) कहा जाता है। इसी तरह उड़नशील तेलोंको अस्थिर या सूक्ष्म तेल (अद्हान लतीफा), और न उड़नेवाले तेलोको स्थिर वा स्थूल तेल (अद्हान कसीफा) कहते है।

दवाऽल्लज़िज—'लज़िज' अरबी भाषाका शब्द है जिसका धात्वर्थ चिपचिपा, चेपदार, लसदार और लेसदार है। परिभाषामें ऐसे द्रव्यको कहते है जो फैलनेसे न टूटे, जैसे—मधु। अर्थात् यदि उसके दोनो सिरे दूर किये जायँ तो वह खीचने पृथक् न हो जाय और साथ ही शकलो (आकृतियो)को आसानीसे ग्रहण कर सके और वह जिस वस्तुके साथ लगे उसके साथ सिमट जाय। (लुजूजत = लेस, लुआब, पैच्छिल्य)।

दवाऽह्हश—'हश' अरबी शब्द है, जिसका धात्वर्थ भुरभुरा वा भगुर है। परिभाषामे ऐसे द्रव्यको कहते है जो साधारणरूपसे स्पर्श करनेसे महीन-महीन सूक्ष्म कणोमें विभाजित हो जाय, जैसे—उत्तम और उत्कृष्ट प्रकारका एलुआ और गारीकून।

दवाऽजामिद—'जामिद' अरबी शब्दका धात्वर्थ पिंडित, जमाहुआ और प्रगाढीभूत है। परिभाषामें जामिद ऐसे द्रव्यको कहते है, जो अभी एकत्रीभूत वा घनीभूत हो, प्रवाही न हो, परतु वह प्रवाही (सय्याल) होनेकी योग्यता रखता हो, जैसे—मोम और बर्फ। (सांद्र, घनरूप)।

दवाऽसाइल—'साइल' अरबी शब्दका धात्वर्थ प्रवाही अर्थात् बहनेवाला है। परिभाषामे ऐसे द्रव्यको कहते है जिसके अवयव नीचे जाकर फैल जायँ, जैसे समस्त प्रवाही या द्रव पदार्थ।

दवाऽल्लुआबी—लुआबी अरबी शब्दका धात्वर्थ पिच्छिल और लबाबदार है। परिभाषामे ऐसे द्रव्यको कहते है, जिसे यदि जलमें भिगोया जाय तो उससे कुछ अवयव निकलकर जलमें मिल जायँ और सपूर्ण जल लसदार हो जाय—जैसे—खत्मी। द्रव्यमें पिच्छिलता (लुआबियत) उस समय पाई जाती है, जब कि उसके भीतर

---

1 यहाँ पर दिये हुए द्रव्यके परिचयात्मक लक्षणों (द्रव्यकी भौतिक स्थिति और भारसूचक सज्ञाओं)मेसे अधिकाश लक्षणोंकी गणना आयुर्वेदोक्त गुणोंमे ही होती है। पदार्थोकी गुरुता या लघुता, मुख्यतया अग्रलिखित चार बातों पर निर्भर होती है—(१) स्वभाव (Chemical composition), (२) सस्कार, (३) भौतिक स्थिति और जठराग्निकी स्थिति।

लेसदार उपादान वर्तमान होते हैं, चाहे वे (उपादान) निपातसे (बिल्फ़ेल) लेसदार हों, अथवा अधिवाससे अर्थात् वीर्यत (बिल्कुवा)। (उलटा 'विशद')।

दवाऽदुह्निय्य—अरबीमें 'दुह्न' शब्दका धात्वर्थ तेल या स्नेह है, और दुह्निय्य उसीका सज्ञाविशेषण है जिसका अर्थ स्निग्ध, तैलीय वा रोग़नी है। परिभाषामें ऐसे द्रव्यको कहते हैं जिसके जौहरमें तैलांश वर्तमान हो, जैसे—फलोंकी गिरियाँ। (गर्वियत, चिकनापन—स्नेह जैसे, गोदका)।

सकील व खफीफ—इसी प्रकार भार या वजनके विचारसे औषधद्रव्यको गुरु वा भारी (सकील) और लघु वा हलका (खफीफ) कहा जाता है, जो शैखके कथनानुसार एक सिद्ध एव प्रत्यक्ष तथ्य है।

अन्यान्य लक्षण—उपपत्ति और अनुमान स्थिर करनेमें प्रागुक्त तथ्योंकी भाँति द्रव्योंके अन्य प्राकृतिक (भौतिक) और रासायनिक लक्षण-गुण (खुसूसियात) भी बहुत कुछ सहायक हुआ करते हैं, जिसका शैखने इस तरह निर्देश किया है, "कभी-कभी द्रव्योंके उन गुण-कर्मों (अफ्आल व कुवा)से आनुमानिक नियम और सिद्धात स्थापित किये जाते हैं, जो हमें पूर्वसे ज्ञात हैं, जिससे द्रव्योंके अज्ञात गुण-कर्मों (कुवा मजहूलन)के ज्ञानार्थ, उपपत्ति और अनुमानरूपेण प्रत्यक्ष पथ-प्रदर्शन प्राप्त हो जाता है।" (किताब सानी, कानून शैख)।

शैखके उपर्युक्त कथनका भाव यह है, कि किसी द्रव्यके कतिपय लक्षण हमें ज्ञात है और कतिपय गुणकर्म हमें ज्ञात नही हैं। उक्त अवस्थामें अज्ञात गुण-कर्मोंको अनुमानकी सहायतासे जाननेमें द्रव्यका रस, गध, वर्ण और परिवर्तन वा विपर्यास (नौइय्यते इस्तिहाला) इत्यादि जिस तरह हमारा पथप्रदर्शन किया करते हैं, उसी तरह द्रव्यके कतिपय ज्ञात गुण-कर्म (तासीरात) भी अज्ञात गुण-कर्म विषयक अनुमान स्थिर करनेमें सहायता किया करते हैं। उदाहरणत (१) एक द्रव्यकी मालिश त्वचा पर की गयी, उससे थोडी देरके बाद त्वगीय वाहिनियाँ विस्फारित हो गईं। उक्त स्थलका उत्ताप परिवर्धित हो गया और रक्तपरिभ्रमण तीव्र हो गया। परतु उक्त द्रव्यके विषयमें हमें यह पता नही है कि वह अग-प्रत्यगके दौर्बल्यको निवारण करता है, वाजीकरण है या शोथविलयन है। अस्तु, अब हमें यहाँ अनुमान और तर्क एव युक्तिसे काम लेनेकी जरूरत है। चूँकि पूर्वसे हमें कतिपय ऐसे द्रव्य ज्ञात हैं, जो त्वगीय वाहिनियोंको विस्फारित करते हैं और जब सतानोत्पादक अगो पर उन्हें मर्दन किया जाता है तब वे कामोद्दीपनका कारण बनते हैं, शोथ पर लगानेसे शोथ विलीन करते हैं और अगो पर मर्दन करनेसे उन्हें परिवृहित करते हैं। अस्तु हम यह अनुमान कर सकते हैं कि विचाराधीन द्रव्य भी कदाचित् (प्रत्युत प्रबल और पुष्ट विचारानुसार) अगम्यौल्यकर (परिवृहण), वाजीकरण और श्वयथुविलयन हो। (२) द्वितीय उदाहरण यह है कि किसी द्रव्यके विषयमें हमे इतना ज्ञात है कि वह जिह्वा और मुखस्थ श्लैष्मिक कलामें सकोच (कब्ज) उत्पन्न करता है। परतु यह मालूम नही है कि वह नकसीरके रक्तको बद करता है या नही, और प्रदर (सैलानुर्रिहम)में उपकारी है या नही। उक्त अवस्थामें अन्य सग्राही (काबिज) द्रव्योंके अनुमान द्वारा यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि चूकि उक्त द्रव्य श्लैष्मिक कला पर सग्राही प्रभाव (कब्ज) करता है, अतएव यह सिद्ध होता है कि इसमें सग्राही उपादान (काबिज जुज) अवश्य निहित है। जब इसके भीतर सग्राही वीर्य वर्तमान है, तब प्रबल अनुमान यह है कि इसका सग्राही उपादान वाहिनियोंको सकुचितकर नकसीरके रक्तको रोक दे और स्त्रीके गुह्यागोंकी श्लैष्मिक कला पर सग्राही प्रभाव डालकर विविध द्रवोंके स्रावमें कमी पैदा कर दे, जैसा कि अन्यान्य सग्राही (काबिज) द्रव्य कार्य किया करते हैं। (३) तृतीय उदाहरण यह है कि एक द्रव्यका यह कर्म हमें ज्ञात है कि सडे हुए मांसकी बोटी पर जब उसे डाला जाता है तब उसका प्रकोथ (तअफ्फुन) रुक जाता है। इसी तरह जब उगालदान (ष्ठीवनपात्र)में कफ दूषित हो जाता है तब उसमें डालनेसे सडाँध (कोथ) कम हो जाती है और गदी नालियोंमें जब डाला जाता है तब नालीमें प्रकोथ कम हो जाता है। परंतु उक्त द्रव्यका यह प्रभाव ज्ञात नही है कि शरीरके दूषित क्षतों पर इसका क्या प्रभाव होता है, सिर और वस्त्रगत जूं, जमजूं, लीख और अन्यान्य क्षुद्र जीवों पर क्या-क्या कार्य होता है या उक्त द्रव्यके उपयोगसे दूषित क्षतोंके प्रकोथका भी परिहार हो जाता है अथवा नही और क्षुद्रातिक्षुद्र वानस्पतिक और प्राणिज जीव इससे नष्ट होते हैं या नहीं। इस द्रव्यके उपर्युक्त कर्म (नाली), उगालदान और मांसकी बोटी

आदिका प्रकोथ निवारण)से हम यह अनुमान कर सकते हैं, जो कदाचित् प्रयोग और अनुभवसे भी सत्य प्रमाणित हो, कि उक्त औषधद्रव्य इन क्षुद्र जीवोको नष्टप्राय करता होगा और इसके उपयोगसे शरीरगत दुष्ट व्रणोका प्रकोथ (अफूनत) नष्ट हो जाता होगा। उपर्युक्त तीनो उदाहरणोमें, जो वस्तुत असख्य उदाहरणोमेंसे केवल तीन उदाहरण हैं, अनुमानके समर्थनके लिए हमें प्रयोग और परीक्षण करने पडेंगे। ये अनुमान हमें विश्वासकी कक्षा तक नही पहुँचा सकते। (कुल्लियात अदविया)।

अनुमानमे छल।

द्वितीय प्रकृति (मिज़ाज सानी) के योग[1] (मुरक्कबात) अर्थात् कार्यद्रव्य और मिश्रवीर्य औषधियाँ, चाहे वे प्राकृत हो अथवा कृत्रिम (योगकृत) कभी रस, गध और वर्ण आदिके कारण इस प्रकार धोखा (मुगालता) भी हो जाता है कि उक्त द्रव्य (मुरक्कब)के किसी एक उपादानका कोई रस, वर्ण या गध अति तीव्र और प्रवल होता है और सगठन (तरकीब)के पश्चात् एक द्वितीय प्रकृतिकी उत्पत्तिके अनतर भी उस उपादानका यह तीक्ष्ण गुण (जो उसकी प्रथम प्रकृति-मिज़ाजके कारण प्राप्त हुआ है) नष्ट नही होता है, परतु उस उपादान (जुज़)का शीत-उष्ण वीर्य आदि उसके वर्ण या गध आदिके विचारसे इतने निर्वल एव पराभूत होते हैं, कि उसके वर्ण या गध आदिको देखते हुए उसके विरुद्ध किसी अन्य गुणकी विद्यमानताकी कल्पना भी नही हो सकती अर्थात् उक्त द्रव्य (मुरक्कब)में रस या वर्ण किंवा गध तो उस उपादानका प्रधात होता है, परतु उसका परम उपादेय कर्म अन्य उपादानके अधीन होता है। उदाहरणस्वरूप यदि आध सेर दूधमें ९ माशा फरफियून मिला दिया जाय तो निस्सदेह उस द्रव्यसमुदाय (मज्मुआ मुरक्कब)का मिजाज और वीर्य फरफियूनके वीर्य प्राधान्यके कारण परम उष्ण हो जायगा, परतु दूधके कारण उसका वर्ण यथापूर्व श्वेत रहेगा और यह श्वेतता उभय उपादानोकी समवायभूत न होगी, प्रत्युत केवल उसके एक उपादानकी (दूधकी) होगी, जो यद्यपि शक्तिके विचारसे कमजोर है, परतु परिणामके विचारसे बलवान् (गालिब) है और अपने वर्णमें दूसरोको भी छिपा लिया है। यही दशा उस द्रव्य की है जो श्वेतमरिचकी भाँति प्राकृतिकरूपसे श्वेत होनेपर भी परम उष्ण है। इसी तरह यदि गखिया, वछनाग (बीस), कुचला, अहिफेन और भस्मो जैसे उग्रवीर्य औषधद्रव्य जो अत्यल्प मात्रामे प्रवल प्रभाव प्रगट करते हैं, ऐसे द्रव्योंमें मिला दिये जायँ, जिनके रस, गध, वर्ण उनसे भिन्न हो, और ये विषद्रव्य उनमें छिप जायँ, तो यह प्रगट है कि रस, गध और वर्ण द्वारा अनुमान स्थिर करनेमें कैसी भयकर भूले हो सकती हैं। तात्पर्य यह कि इन निरीक्षणोसे सिद्ध हुआ कि, रस, गध, वर्ण परिवर्तन वा विपर्यास (इस्तिहाला) इत्यादिकी सहायतासे द्रव्यप्रकृति (मिजाज) और गुणकर्मोंका परिज्ञान सर्वदा सत्य नही हुआ करता, प्रत्युत अधिकसे अधिक यह कहा जा सकता है कि यह उपपत्ति और अनुमान वहुधा सत्य भी होता है[2]।

●

---

१ विद्वद्वर नफीस उक्त कथनके प्रसगमें लिखते हैं—"परतु प्रथमप्रकृतिनिष्ठ द्रव्योंमें जिनमें विभिन्न गुण-कर्म-विशिष्ट उपादान नहीं होते, रस, गध और वर्णसे इस तरहका भ्रम कदापि नहीं होता, क्योंकि इस प्रकारके द्रव्य (मुरक्कबात) अपने प्रकृतिभूत वा आत्मीय (जाती) मिजाजके कारण जिस गुण और कर्म-के दायी होते हैं, वह अबाधरूपसे प्राप्त हो जाते हैं। यह असभव है कि प्रथम प्रकृतिनिष्ठ द्रव्य (मिजाज अव्वलके मुरक्कबात) कषायरस हों और उनका मिजाज उष्ण हो या यह कि वह चरपरे हों और उनका मिजाज शीतल हो। इसके विपरीत द्वितीय प्रकृतिनिष्ठ द्रव्यमें इन गुणोंके विचारसे भ्रम उत्पन्न हो सकता है।"

२. सशोधन और आशिक परिवर्तनसहित इल्मुल अद्विया नफीसीसे अनूदित।

शरीरांग प्रत्यंगीय-द्रव्यकर्मविज्ञानीय तृतीय अध्याय

प्रकरण १

शरीरके अंग प्रत्यंगोंपर द्रव्योंके कर्म

वातनाडियो, सुषुम्ना और मस्तिष्कपर औषधद्रव्योंके कर्म अर्थात् नाडीतन्त्रपर क्रिया करनेवाले द्रव्य—

वातनाडी (आसाब)—वातनाडियोंपर प्रभाव करनेवाले द्रव्योंके सामान्यत यह दो भेद होते हैं—(१) वातनाडियोंमें क्षोभ या उत्तेजना उत्पन्न करते हैं, या (२) उन्हें शिथिल और मद करते हैं। पुन उक्त उत्तेजन (तहरीक) और अवसादन (अज्फाफ) कर्म कभी सज्ञावहा वातनाडियोंमें और कभी चेष्टावहा नाडियोंमें होता है। इसी प्रकार कभी उक्त कर्म वातनाडियोंके मूल (नफ्स आसाव) और इनके तनोंमें होते हैं और कभी उनकी अतिम शाखाओंमें।

वेदनास्थापन (मुसक्किन दर्द वा अलम)—जो द्रव्य स्थानीय रूपमे उपयोग करनेसे वेदनास्थापन सिद्ध होते है, जैसे—वत्सनाभ (बीस), लुफाह, अहिफेन, कपूर इत्यादि। वह वस्तुत सज्ञावहा नाडियोंकी अतिम शाखाओं-की क्रियाको मद कर दिया करते हैं, अथवा यह कि उसके साथ कुछ प्रभाव वातकेंद्रो तक भी पहुँचता है। इस प्रकारके द्रव्य वेदना उपस्थित होनेपर उपयोग किये जाते हैं।

सज्ञाहर वा स्वापजनन (मुखद्दिर)—इसी प्रकार जो द्रव्य वहि प्रयोग और किसी स्थानपर लगानेसे उक्त स्थलको अवसन्न अथवा सुन्न वा सवेदनाहीन कर दिया करते हैं, अर्थात् स्थानीय रूपसे सवेदनाहर है, जैसे—बर्फ इत्यादि। उनका कार्य भी वातनाडियोंकी उक्त शाखाओंपर होता है।

प्रतिक्षोभक औषधद्रव्य (अद्विया लज्जाआ)—जिन औषधद्रव्योंसे सज्ञावहा नाडियोके शाखाग्रों (छोरों)में उत्तेजना पहुँचती हैं, उनको अद्विया लज्जाआ कहते है। इन औषधद्रव्योसे स्थानीय रूपसे स्रोत (रग) परि-विस्तृत हो जाते हैं, त्वचा और श्लेष्मल कला रागयुक्त (रक्तवर्ण) हो जाती है, उक्त स्थलपर दाह और वेदना-का आविर्भाव हो जाता है—उदाहरणत राजिकाप्रलेप। मूर्च्छा, नि सज्ञता (अचेतनता) और अहिफेनजनित विपाक्ततामें प्रकृति (तबीअत)को सचेष्ट (जागृत) करनेके लिए, कभी इस प्रकारके प्रतिक्षोभक—शोणितोत्क्लेशक (अद्विया लज्जाआ) प्रयुक्त किये जाते हैं और तज्जन्य क्षोभ एव उत्तेजनसे नि सज्ञता (बेहोशी) दूर हो जाया करती है। क्योंकि इससे वातकेंद्र प्रभावित होते हैं, हृदय और वाहिनियो (उरूक)की चेष्टा तीव्र हो जाती है, और मासपेशियों तथा कोष्ठावयवो (आशयों-अह्शाऽ)में उत्तेजना पहुँचती है।

चेष्टावहा वातनाडियाँ (आसाब हर्कत)—जो औषधियाँ चेष्टावहा वातनाडियोके अग्रों—अतिम छोरो या सिरों पर कार्य करके उनके कर्मको शिथिल वा मद करती हैं, उनका उदाहरण शौकरान, लुफाह, धतूरा, खुरासानी अजवायन और कपूर है, ऐसी औषधियोके उपयोगसे तत्सबधी पेशियाँ शिथिल हो जाती है और उनका प्रकृतिभूत सकोच (ज़ाती इकेबाज) दूर हो जाता है। और जो औषधियाँ चेष्टावहा वातनाडियोके अतिम छोरोमें उत्तेजना उत्पन्न करती हैं, उनके उदाहरण वत्सनाभ (वीस) और कुचिला प्रभृति है। ऐसी औषधियोके उपयोगसे पेशियोकी शिथिलता (इस्तरखाऽ-पेशीघात) दूर हो जाती है और उनमें आकुचनकी शक्ति (इन्केबाज़ी कुव्वत) अभिवर्द्धित हो जाती है।

वातनाडियोके असली तने औषधियोंसे अपेक्षाकृत अत्यल्प प्रभावित हुआ करते हैं। इस प्रकारकी वीर्यवान् वा प्रभावी (मुवस्सर) औषधियाँ विशेषकर विषैली एव हानिकर है। अतएव इनका उपयोग इस उद्देश्यके निमित्त कमतर ही किया जाता है।

उत्तेजनकारिणी शक्ति पर कार्यकर द्रव्य।

(मुवस्सिरात क़ुवाए मुहर्रिका)

आक्षेपहर, उद्वेष्टनहर, विकासी (दाफेआत तशन्नुज)—कतिपय औषधियाँ मस्तिष्ककी उत्तेजनकारी शक्तियो (कुवाए मुहर्रिका)को अवसादित कर देती (दाफेआते तशन्नुज) हैं। अस्तु, ऐसी औषधियोको अपस्मार, अपतन्त्रक प्रभृति आक्षेपयुक्त व्याधियोमें जिनमें, उत्तेजनकारिणी शक्तियोकी क्रिया तीव्र हो जाती है, आक्षेपनिवारण (दफा तशन्नुज) और चेष्टावसादन (अज़आफे हरकत)के निमित्त उपयोग कराते हैं, उदाहरणत कपूर, हींग, सर्पगन्धा (दवाउश्शिफा—छोटा चाँद) इत्यादि।

आक्षेपकारक (मुशन्निजात)—आक्षेपहर अर्थात् दाफे तशन्नुजके विपरीत कतिपय औषधियाँ मस्तिष्ककी उत्तेजनकारिणी शक्तियोको उत्तेजन प्रदान करती हैं—उदाहरणत कुचिला। इनको मुशन्निजात (आक्षेपकारक) कहते हैं।

वक्तव्य—पश्चात् मस्तिष्क पर कौनसी औषधियाँ प्रभावकर होती है, विद्याके प्रकाशमें यह अभी नहीं आई है, परतु विचार किया जाता है कि कदाचित् मद्यका प्रभाव पश्चान्मस्तिष्क पर पडता है, क्योकि इसके बादकी चेष्टाएँ अनियमित हो जाती हैं। और यह स्वीकार किया जाता है कि पश्चान्मस्तिष्क गतिनियमनका केंद्र है।

इसी प्रकार सावेदनिक वातनाडियो (आसाब शिकिया)की ग्रथियो (उकद) पर जो औषधियाँ प्रभावकारी होती हैं, वह भी अन्वेषणीय हैं। तमाकू और शौकरानके विषयमें कहा जाता है कि ये इन ग्रथियो (उकूद)की गत्युत्पादकशक्तिको अल्प वा मद अथवा मिथ्या कर देती हैं।

०

प्रकरण २

नेत्रपर औषधद्रव्योंके कर्म

नेत्रकी श्लेष्मलकला (तबकए मुल्तहिमा) पर क्रिया करनेवाली ओषधियाँ अनेक प्रकारकी होती हैं —ओषधियां श्लेष्मल पटल—आभ्यन्तर वर्म (तबका मुल्तहिमा) पर सग्राही (काबिज) असर करती हैं अर्थात् उसके (१) कतिपय स्रोतों (रगों)को सकुचित कर देती हैं—उदाहरणत फिटकरी, त्रिफला, रसवत ।

(२) कतिपय ओषधियां श्लेष्मलकला (तबका मुल्तहिमा) पर वेदनास्थापन (मुसक्किन अलम) प्रभाव करती हैं अर्थात् इसकी वेदनाको शमन करती हैं और सज्ञाहर (मुखद्दिर) हैं—उदाहरणत अहिफेन, लुफाह ।

(३) कतिपय ओषधियाँ नेत्रके कोथकारक दोषों (उफूनी मवाद)का निवारण करती (माना उफूनत-कोथ-प्रतिबधक) हैं, उदाहरणत कपूर, गुरमा ।

(४) कतिपय ओषधियाँ नेत्रकी श्लेष्मलकला (तबका मुल्तहिमा)में क्षोभ (गराश) उत्पन्न कर देती हैं, उदाहरणत नीलाथोथा, गुञ्जा ।

अश्रुग्रथि (गुदद दमूआ)—अश्रुग्रथियों पर प्रभाव करनेवाली ओषधियाँ दो प्रकारकी होती हैं (१) कतिपय ओषधियाँ इन ग्रथियोंकी क्रियाको उद्दीप्त करती हैं, जिससे अश्रुस्राव होने लगते हैं—उदाहरणत वह ओषधियाँ जिनसे स्थानीय तौर पर क्षोभ (गराश) उत्पन्न हुआ करता है ।

(२) कतिपय ओषधियाँ इन ग्रथियोंकी क्रियाको शिथिल एव मद अर्थात् अवसादित कर देती हैं, जिससे अश्रुस्राव कम या बद हो जाते हैं—उदाहरणत यवरुज । इसको यदि दीर्घकाल तक उपयोग किया जाय तो उससे अश्रुस्राव कम हो जाता है ।

कृष्णपटल या तारका (तबकए इनबिय्य)के गोल ततुओंके आकुचनसे कनीनिका या पुतली (सुक्वए इनबिय्य) सकुचित हो जाती है, और दीर्घरश्मितंतुओंके सिकुड़नेसे कनीनिका (पुतली) विस्फारित हो जाती है ।

आँखकी पुतली (कनीनिका) पर प्रभाव करनेवाली ओषधियाँ दो प्रकारकी हैं —

(१) कतिपय ओषधियोंके सेवनसे नेत्रकनीनिका सकुचित हो जाती है,[1] उदाहरणत तमाकूका सत्व, अहिफेन और साधारण सज्ञाहर (मुखद्दिरात) ।

(२) कतिपय ओषधियोंके उपयोगसे नेत्रकनीनिका विस्फारित हो जाती है, उदाहरणत जौहर यवरज (एट्रोपीन) । (अ०) मुफत्तेह सुक्वए इनबिय्या, (स०) तारकाविकासि, (अ०) मिड्रिएटिक ।

अजसामे हुद्बिया जो मानो कृष्णपटल या तारका (तबकए इनबिय्या) हीका एक भाग है । यह उन्ही ओषधियोंसे उसी प्रकार प्रभावित हुआ करता है जो तारका (तबकए इनबिय्या) पर कार्यकारी (मुवस्सिर) हुआ करती हैं ।

(अजसामे हुद्बिय्या)में भी दो प्रकारके ततु होते हैं—(१) गोल और मुदव्वर और (२) रश्मिवतदीर्घाकार (तूलानी मुआई) ।

कुव्वत बासिरा (नेत्रेन्द्रिय, दृष्टि शक्ति) पर प्रभाव करनेवाली ओषधियाँ अनेक प्रकारकी हैं—(१) कतिपय ओषधियोंके उपयोगसे दृष्टिका क्षेत्र विस्तृत हो जाता है । उदाहरणत कुचलाके उपयोगसे दृष्टिका क्षेत्र विशेषतया उन वस्तुओंके लिए जिनका वर्ण नील हो बढ़ जाता है । (२) कतिपय ओषधोंके उपयोगसे पदार्थोंके वर्ण विभिन्न

---

१ ऐसे द्रव्योंको यूनानीमें मुजय्यकुल हद्का, सस्कृतमें तारकासकोचन और अँगरेजीमें मायोटिक्स (Myotics) कहते हैं ।

दृष्टिगत होने लगते है, उदाहरणत दिर्मना तुर्कीके सत्वके उपयोगसे प्रथमत समस्त पदार्थ नीललोहित (बनफ्शई)-वर्णके दृग्गोचर होने लगते हैं। इसके अनतर पुन पीतवर्णके। (३) कतिपय औषधोके उपयोगसे दृष्टि पर कुछ ऐसा प्रभाव होता है जिससे मनुष्यको ऐसे विचित्र एव विलक्षण दृश्य दृष्टिगत होने लगते हैं, जो बाहर वर्तमान नहीं होते, जैसा कि भग और मद्यके अधिक मात्रामें सेवनसे होता है। इसी कारण भगको फलक सैर भी कहा करते है। इसके उपयोगसे स्वय वह व्यक्ति अपने आपको अन्य व्यक्तियो और पदार्थोंको आकाशमें उडता हुआ अनुभव करने लगता है।

अजलात चश्म (नेत्रकी पेशियाँ)—कतिपय ओषधियाँ विशेप रूपसे कतिपय पेशियो पर प्रभाव करती हैं, उदाहरणत शूकरानसे (अजल्हे राफिअलतुल् जफन) और (मुस्तकीमा वहशिया) वातग्रस्त (मफ्लूज) हो जाते हैं।

प्रकरण ३

कर्ण पर औषध-कर्म

कतिपय ओषधियाँ कर्णपट और उसकी श्लैष्मिक कला पर कार्यकारी (मुवस्सर) होती हैं। कतिपय कर्णगूथ पर और कतिपय श्रावणी वातनाडियो पर। अस्तु, जो ओषधियाँ कर्णकी श्लैष्मिक कला पर प्रभाव करती हैं, वह विभिन्न उद्देश्योसे उपयोग की जाती हैं—स्थानीय रूपसे वेदना शमनके लिए, वाहिनी(उरूक)सकोचके निमित्त, कोथ-निवारणके अर्थ, तलय्यिन और तरतीबके लिए (अर्थात् रूक्षतानिवारणके लिए)।

वेदनास्थापनके लिए, नज़लाकी सूरतमें अहिफेन और कपूर बादामके तेलमें हल करके उपयोग किया जाता है। सुतरा बहुधा इन्नमोतिया और इन्नहिनासे भी कर्णशूल शमन हो जाया करता है। इसी प्रकार पोस्तेके छिलकेके कोष्ण क्वाथकी पिचकारी प्रभावकारी सिद्ध होती है।

स्तम्भन वा कब्ज़के लिए—कर्णस्राव (सैलानुल्उज़न)की सूरतमें स्तम्भन ओपधियाँ पिचकारी और प्रधमन (नफ़ूख)की भाँति उपयोग की जाती हैं, जिनके साथ साधारणतया कोथप्रतिबधक ओपधियाँ भी सम्मिलित कर दिया करते हैं, क्योकि कर्णस्राव प्रकोथ वा पूतिकर्णसे खाली नही हुआ करता—उदाहरणत माजू, फिटकिरी, अञ्जरूत, बूरए अरमनी, सुहागा, निम्बपत्र-स्वरस, मधु या तेलमें हल करके।

कोथप्रतिबध (दफा उफूनत)के लिए—कपूर, निम्ब-पत्र-स्वरस, सुहागा और बूरए अरमनी, मधु इत्यादिमें मिलाकर उपयोग किया जाता है, जैसा कि ऊपर निरूपण किया गया है।

तलय्यिन व तरतीब (रूक्षतानिवारण)के लिए बादामका तेल, गुलरोगन और मधु उपयोग किया जाता है।

जो ओपधियाँ कर्णगूथ पर असर करती हैं, उनसे अभिप्रेत यह होता है कि मैल नरम और विलीन वा हल होकर सरलतापूर्वक उत्सर्गित हो सके। इस उद्देश्यके लिए साधारणतया वही ओपधियाँ उपयोग की जाती हैं, जिनका उल्लेख ऊपर मुलय्यिनात अर्थात् मार्दवकर (रोगन बादाम, रोगन गुल, मधु)में आया है। इन्न मोतियासे भी उक्त लाभ प्राप्त हुआ करता है। इस उद्देश्यके लिये कभी उष्ण जल पिचकारीकी भाँति या अन्यान्य क्वाथ उपयोग किये जाते हैं।

वह ओपधियाँ जो श्रवणेन्द्रिय (कुव्वत सामेआ)की वातनाडियो पर असर करती हैं—इनमेसे कतिपय ओपधियाँ ऐसी है जिनके उपयोगसे कान बजने लगते हैं। कतिपय ओपधियोंसे श्रवणेन्द्रिय (कुव्वत सामआ)में किसी सीमा तक शक्ति और तीव्रता पैदा हो जाती है। उदाहरणत कुचला या विषमुष्टिके योग, क्योकि कुचला (इज़ाराकी)से श्रावणी नाडियोमे क्षोभ और उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है।

●

प्रकरण ४

नासिका पर औषधीय कर्म

नासिका पर प्रभाव करनेवाली ओपधियोंके अनेक भेद हैं —

(१) कतिपय ओपधियोंके सूँघनेसे नासिकाकी श्लैष्मिककलासे पानी और कफ निकलने लगता है और छीकें आती (मुअत्तिसात) हैं, उदाहरणत नकछिकनी, तिब्बती पत्ती (वर्ग तिब्बत), लाल और काली मिर्च, सोंठ और सफेद कुटकीका नस्य। छिक्काजनक। क्षुत्कारक।

(२) कतिपय ओपधियाँ नासिकाकी श्लैष्मिककला पर शामक प्रभाव करती हैं, अर्थात् इनके उपयोगसे उक्त कलाका क्षोभ वा प्रदाह (लज्अ वा खराश) दूर हो जाता है (मुसक्किनात अन्फ) हैं—उदाहरणत मीठा तेलिया (बीश)।

(३) कतिपय ओपधियाँ नासिकाकी श्लैष्मिक कला पर सग्राही असर करती हैं, जिनके उपयोगसे नासिकाकी श्लैष्मिक कलासे रक्त और द्रवका स्राव वद हो जाता है, उदाहरणत स्फटिका, दम्मुल अख्वैन, माजू और बर्फ इत्यादि।

घ्राण नाडियाँ (असबह् शाम्मा)—कतिपय ओपधियाँ घ्राण नाडियो पर प्रभाव करती हैं, जिनके ये दो भेद हैं —

(१) वह ओपधियाँ जो घ्राणनाडीको उत्तेजित वा सचेष्ट करके उसके कार्यको तीव्र करती हैं, उदाहरणत सिरका, चूना और नौसादरका योग। (२) वह ओपधियाँ जो घ्राणनाडीके कार्यको और मद अर्थात् अवसादित करती हैं, उदाहरणत कस्तूरी और हीग। इनके उपयोगसे उक्त नाडीको प्रथमत सूक्ष्म उत्तेजना प्राप्त होती है और उसकी किया तीव्र हो जाती है। परतु उसके अनतर इसकी क्रिया शिथिल या मद अर्थात् अवसादित हो जाती है।

प्रकरण ५

श्वासोच्छ्वासेन्द्रिय पर औषधीय कर्म

श्वास-प्रश्वास केंद्र पर प्रभाव करनेवाली ओषधियाँ दो प्रकारकी होती हैं —

(१) कतिपय ओषधियोंके प्रभावसे श्वास प्रश्वासकी क्रिया तीव्र हो जाती है, जैसा कि धतूरा (जौज मासल), खुरासानी अजवायन (बज्रुल् बन्ज) और कुचलाके उपयोगसे होता है।

उक्त ओषधियोंसे श्वास-प्रश्वासकी क्रिया ऐसी बलवती हो जाती है, कि श्वासमें आसानी पैदा हो जाती है और वे दीर्घ हो जाते हैं। कास, श्वसनक ज्वर (जातुर्रिया) और उरःक्षत (सिल) इत्यादिमें कभी-कभी श्वासमें असामर्थ्य और कष्ट उत्पन्न हो जाता है, जिससे कष्टके सिवाय कफोत्सर्गमें भी मनुष्य समर्थ नहीं रहता। उक्त अवस्थामें ऐसी ओषधियाँ उपयोग कराई जाती हैं, जिससे श्वास-प्रश्वासका कष्ट भी निवृत्त हो जाय और वह श्वास सरलतापूर्वक आने लगें और कफोत्सर्गमें भी सुगमता उत्पन्न हो जाय।

(२) कतिपय ओषधियोंके प्रभावसे श्वास-प्रश्वासकी क्रियाएँ निर्बल या शिथिल अर्थात् अवसादित हो जाती हैं, जैसा कि अहिफेन, शूकरान और वत्सनाभ (बीष) इत्यादिके उपयोगसे होता है।

उक्त ओषधियाँ अधिकतया उन रोगोंके काममें लायी जाती हैं जो फुफ्फुस, श्वासप्रणालीकी शाखाओं और स्वरयन्त्र इत्यादिके शोथ और प्रदाहसे होता है, और जो साधारणतया शुष्क हुआ करती हैं अर्थात् उसमें श्लेष्मा-का उत्सर्ग नहीं होता है।

फुफ्फुस—फेफड़ों पर प्रभाव करनेवाली ओषधियाँ दो प्रकारकी होती हैं —

(१) कतिपय ओषधियोंके प्रभावसे वातवहानाड़ियोंकी उत्तेजनाके कारण फुफ्फुसकी क्रिया तीव्र हो जाती है, चाहे वह सुँघाई जायँ—जैसे नसवार और (नशूकात) [illegible] (लखलखान मुहर्रिक)[1], या खिलाई जायँ, उदाहरणत कुचला और खुरासानी अजवायन।

उक्त नस्योंके बाष्प तीक्ष्ण हुआ करते हैं, जो वायुके साथ भीतर प्रविष्ट होकर फुफ्फुसप्रणालिकाओं (शुअब सगीरा)की श्लैष्मिक कला पर अपनी तीक्ष्णता और क्षोभ (हिद्दत व लज्अ)से उत्तेजना उत्पन्न करते हैं।

(२) कतिपय ओषधियोंके प्रभावसे वातिक संवेदनाकी कमीके कारण फुफ्फुसकी क्रिया अवसादित या सुस्त हो जाती है। इसके उदाहरण अहिफेन और शूकरान हैं।

वायुप्रणाली—वायुप्रणालियों पर प्रभाव करनेवाली ओषधियाँ अनेक प्रकारकी हैं। कतिपय ओषधियाँ वायु प्रणालियों पर प्रभाव करके श्लेष्माकी उत्पत्ति अधिक कर देती हैं, उदाहरणत कपूर, तमाकू, प्याज, लहसुन, जंगली प्याज, मुलेठी, नमक। और कतिपय ओषधियाँ वायुप्रणालियों पर प्रभाव करके श्लेष्माकी उत्पत्तिको कम कर देती हैं—उदाहरणत यवरज, नेर कुक्राह, धतूरा, अहिफेन और खुरासानी अजवायन इत्यादि[2]।

कतिपय ओषधियाँ वायु प्रणालीगत श्लेष्माकी दुर्गन्धि (उफूनत)का निवारण करती हैं—उदाहरणत उशक (कोंदर), कबाबा (कबाबचीनी), सूक्ष्म या स्थिर तेल (कपूर, अजवायनका सत, पुदीनाका सत), आघ्राण (लख-लखान) और सुगंधित नस्य (नशूकात इत्रिया)।

---

1 उदाहरण चूना और नौसादरको जब परस्पर मिलाया जाता है तब तीक्ष्ण बाष्प उद्भूत होते हैं।

२, किसी-किसीके अनुसार अम्लतासे श्लेष्माकी उत्पत्ति कम हो जाती है।

कतिपय ओषधियाँ वायु प्रणालियोंके आक्षेपको दूर करती हैं।

पुन इन ओषधियोंमेंसे किसीका प्रभाव तो सुँघानेसे होता है, जैसा कि धतूरका धूपन (धतूराका बखूर) और किसीका प्रभाव खिलानेसे होता है, जैसा कि शूकरान और तमाकूके उपयोगसे होता है।

मुनफ्फिसात बल्गम (कफोत्सारि, श्लेष्माप्रसेकी, श्लेष्मानिस्सारक)

वह ओषधियाँ जो श्लेष्माको सरलतापूर्वक उत्सर्गित करती हैं—उदाहरणत इस्पद (हर्मल), अनीसून, उसक, ईरसा (सौसन की जड), अडूसा, मुलेठी और जगली प्याज।

कतिपय ओषधियाँ कफोत्सर्गमें कठिनाई उत्पन्न कर देती हैं अर्थात् उसकी आर्द्रता (जलांश)को विलीनीभूत करके उसको शुष्क कर देती हैं (कफ विलयन, कफलेखन)—उदाहरणत फौलाद, यबरुज और अहिफेन।

प्रकरण ६

हृदय पर औषधीय कर्म

हृदय पर प्रभावकारिणी ओषधियोंमेंसे कतिपय ओषधियाँ हृदयकी आकुंचन शक्तिको बढ़ा देती हैं, जिससे नाड़ी (नब्ज़) बलवती हो जाती है, चाहे उसकी मंद या शीघ्रगामिनी चाल पर इसका कुछ प्रभाव न हो। इनको मुकव्वियात कल्ब (हृद्य या हृदयबलदायक) कहते हैं। अस्तु, जंगली प्याज, चाय और कहवासे हृदयकी आकुंचन शक्ति बढ़ जानेके साथ हृदयकी गति तीव्र हो जाती है, जिसका पता नाड़ी देखनेसे चल सकता है अर्थात् उक्त अवस्थामें नाड़ी बलवती और शीघ्रगामिनी होती है। कपूरके सेवनसे हृदयकी आकुंचन शक्ति बढ़ जाती है, जिससे नाड़ी बलवती हो जाती है। परन्तु इससे नाड़ी और हृदयकी मंद या शीघ्रगामिनी चालों (हरकात) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मद्य, कुचला, धनिया, कस्तूरीके उपयोगसे हृदयकी आकुंचन शक्ति और नाड़ीके बलवती होनेके साथ-साथ हृदय और नाड़ीकी गतियाँ (हरकात) भी तीव्र हो जाती हैं। (ऐसी ओषधियोंको कभी मुहर्रिकाते कल्ब भी कहते हैं)।

कतिपय ओषधियाँ हृदयकी गतियोंको मंद (कमी) या उसकी आकुंचन शक्तिको कम कर देती हैं, या उभय कर्म करती हैं। इनको मुज़इफ़ाते कल्ब (हृदयावसादक) कहते हैं—उदाहरणतः वत्सनाग (बीश), [illegible] (अर्गट) और कुटकी। इन ओषधियोंके उपयोगसे हृदयकी गतियाँ मंद (कमी) और उसकी आकुंचन शक्ति कम हो जाती है।

वक्तव्य—उपर्युक्त ओषधियोंमेंसे कतिपय प्रत्यक्ष रूपसे हृदय पर कार्यकर (मुवस्सिर) होती हैं, और कतिपय [illegible] वातकेन्द्रों पर।

प्रकरण ७

पाचनेन्द्रियों पर औषधोंके कर्म

जिह्वा—कतिपय ओषधियाँ जिह्वाकी सज्ञावहा-नाडियो (असब लसानी हलकी = कठजिह्वा नाडियाँ, असब लसानी = जिह्वा नाडियाँ, और असब वजूही = मौखिकी नाडो) की शाखाओ पर प्रभाव करती हैं। उनमेंसे अनीसून, सौंफ और इलायची इत्यादिकी भाँति कोई सुगधिपूर्ण हैं, कोई एलुआ (सिब्र), कुचला और नीमकी छाल आदिकी भाँति तिक्त। कोई बबूलके गोंद (समग अरबी), अलसी और इसबगोल आदिकी भाँति पिच्छिल (लुआबदार), कोई हींग और बालछड (सुबुलुत्तीब) आदिकी भाँति उत्क्लेशकारक। कोई काली मिर्च, लालमिर्च, राई (खर्दल) और कबाब-चीनी आदिकी तरह चरपरी (हिर्रीफ), कोई शर्करा, मधु और अगूरकी भाँति मधुर और कोई नीबू, सिरका, इमली, आलूबुखारा प्रभृतिकी तरह अम्ल होती है।

दत और दतवेष्ट—दाँत और मसूढोपर प्रभाव करनेवाली ओषधियाँ कई प्रकारकी है—कतिपय औषधियाँ दाँतो और मसूढो पर कोथप्रतिबधक (दाफा तअफ्फुन) प्रभाव करती हैं, उदाहरणत सत अजवायन और तूतिया (सग सुरमा) इत्यादि। यह ओषधियाँ दाँतोमें प्रकोथ (तअफ्फुन) उत्पन्न हो जानेकी दशामे उपयोगकी जाती हैं।

कतिपय ओषधियाँ दाँत और मसूढोपर सग्राही (काबिज) असर करती है, उदाहरणत बबूलकी छाल, माजू, फिटकरी, अनारका छिलका, गुलनार और छालिया (सुपारी)। मसूढोके फूल जाने और उनसे रक्त बहनेकी सूरतमें यह औषधियाँ मजन (सुनून)की भाँति उपयोग कराई जाती है। कतिपय औषधियोके प्रभावसे दाँतोंसे अम्लताका असर नष्टप्राय हो जाता है। उदाहरणत बूरए अरमनी, जवाखार और खडी इत्यादि।

कतिपय औषधियाँ दतशूलका प्रशमन करती है, उदाहरणत कपूर, अहिफेन, लौंग और लौंग-तैल इत्यादि।

टिप्पणी—दाँतो और मसूढोपर प्रभाव करनेवाली उपर्युक्त औषधियाँ उक्त उद्देश्यके लिए मजनकी भाँति उपयोगकी जाती हैं।

लाला ग्रथियाँ (गुदद लुआबिय्या)—लाला-ग्रथियोंपर प्रभाव करनेवाली औषधियाँ दो प्रकारकी होती हैं—कतिपय औषधियाँ लालाग्रथियोपर प्रभाव करके लालारसकी उत्पत्तिको अभिवर्द्धित कर देती हैं, जैसे सोठ, तमाकू इत्यादि। और कतिपय लालारसकी उत्पत्तिको कम कर देती हैं, जैसे अहिफेन और यवरुज इत्यादि।

आमाशय—आमाशय (मेदा)पर प्रभाव करनेवाली औषधियाँ अनेक प्रकार की है—कतिपय औषधियाँ आमाशयके अम्ल द्रवोंको अधिक करके पाचनको बलवती कर देती हैं। इनको दीपन-पाचन (मुकव्वियात मेदा) कहते है।

इनमें कतिपय सुगधिपूर्ण हैं, जैसे—अनीसून, सौफ, इलायची, धनियाँ, जायफल, सोंठ, लौग, पुदीना और कलीलुल मलिक।

कतिपय तिक्त (कटुपौष्टिक) हैं, जैसे गुल बाबूना, नारगीका छिलक (पोस्त नारज) और जितियाना (पाखानवेद)। और कतिपय चरपरी हैं, जैसे—लालमिर्च, कालीमिर्च, राई और कबाबचीनी इत्यादि। तथा दीपन-पाचन (मुकव्वियात मेदा)मेंसे कतिपय औषधियाँ ऐसी भी हैं जो उपर्युक्त शीर्षकोंके अतर्गत नही आ सकती, जैसे—मद्य और कतिपय अम्ल औषधियाँ (हामिजात)।

और कतिपय ओषधियां आमाशयगत द्रव्योंको कम कर देती हैं, उदाहरणत टंकण (तकार)[1], जवाखार नौसादर (अधिक मात्रामें) और अहिफेन इत्यादि।

और कतिपय ओषधियां आमाशयस्थ द्रवोंकी अम्लताको बढा देती हैं, जैसे—गंधकाम्ल इत्यादि। कतिपय ओषधियां आमाशयिक द्रवोंकी अम्लताको कम कर देती हैं, उदाहरणत नौसादर, टंकण, जवाखार जैसी क्षारीय ओषधियां।

कतिपय ओषधियां आमाशयस्थित आहारमें खमीर और प्रकोथ (तअफ्फुन) उत्पन्न होनेको रोकती हैं, जैसे—सून अजवायन इत्यादि।

कतिपय ओषधियां आमाशयिक वाहिनियोंको विस्फारित कर देती हैं—उदाहरणत अनीसून, सोंठ, सौंफ, लौंग, पुदीना उसारारेवंद और मूरजान इत्यादि।

कतिपय ओषधियां आमाशयिक वाहिनियोंको संकुचित कर देती हैं, उदाहरणत गंधकाम्ल और स्फाटिका इत्यादि।

कतिपय ओषधियां आमाशयिक वातनाडियों और मांसपेशियोंपर असर करके आमाशयकी पुरःसरण क्रियाको तीव्र कर देती हैं, उदाहरणत कुचला, गंधकाम्ल और रोगन कपूर इत्यादि।

कतिपय ओषधियां आमाशयिक वातनाडियों और पेशियोंपर प्रभाव करके आमाशयकी पुरःसरण क्रियाको शिथिल और मंद (अवसित) कर देती हैं—उदाहरणत खुरासानी अजवायन, यबरुज, अहिफेन, बर्फ, अति उष्ण जल और धतूरा इत्यादि।

कतिपय ओषधियां आमाशय और अन्त्रमें वायुको उत्सर्गित करती हैं अर्थात् आमाशय और अन्त्रकी गतियोंको तीव्र कर देती हैं। इनको कासिर रियाह् (वातानुलोमन) कहते हैं—उदाहरणत कपूर, हींग, बालछड (गुड़ुलुसीब), सौंफ, जायफल, पुदीना, सोंठ, अनीसून (बादियान रूमी), कबाबचीनी, गुलबाबूना, जितियाना (पखानभेद), कालीमिर्च और राई इत्यादि।

मुक़य्यियात—आमाशयोपयोगी (अद्विया मेदिया) ओषधियोंमेंसे वामक ओषधियां (मुकय्यात) भी हैं, जिनमेंसे कतिपय प्रत्यक्षतया आमाशयपर प्रभाव करके और कतिपय वामक केंद्रपर प्रभाव करके वमनका कारण हुआ करती हैं—उदाहरणत तूतिया (सगसुम्मा), राई, फिटकरी, जंगली प्याज (इस्कील)[2]।

इसी प्रकार जो ओषधियां आमाशयपर या वमनकेंद्रपर प्रभाव करके वमनको रोक देती हैं, इनको मानेआत क़ै (छर्दिनिग्रहण, वमिहर) कहते हैं—उदाहरणत वर्फ और अत्युष्ण जल, अहिफेन, मद्य (अल्प मात्रामें) आदि।

अन्त्र (अमआऽ) पर असर करनेवाली ओषधियां अनेक प्रकारकी हैं—

(१) वह ओषधियां जो आंतोंपर असर करके विरेक लाती हैं, कार्यकारण भाव (तरीक तासीर)के विचारसे उनके कतिपय प्रकारांतर हैं —

मुलय्यिनात (मृदुसारक)—कतिपय ओषधियां अन्त्रके पेशीगत स्तर (अजली तब्का)को किसी कदर उत्तेजना पहुँचाकर उनकी उत्सर्गकारी शक्ति (कुव्वत दाफेआ)को किसी कदर बलवती कर देती हैं, जिससे साधारणतया

---

१ टंकण, यवाखार, नौसादर प्रभृति क्षारौषधियाँ अल्पमात्रामें आमाशयस्थ द्रवोंको बढा दिया करती हैं और अधिक मात्रामें उसे कम कर दिया करती हैं। सुतरां भोजनसे पूर्व यदि यह क्षारीय पदार्थ दिये जायँ तो भी द्रवोद्रेक कम हो जाता है। कभी कभी आमाशयिक द्रवोंका उद्रेक इतना बढ़ता जाता है (हुमूजत मदा) कि उससे एक प्रकारकी रुग्णावस्था उत्पन्न हो जाती है। उक्त दशामें क्षारीय पदार्थ भोजनके उपरान्त दिये जाते हैं।

२ इसकीलके अतिरिक्त अहिफेनका एक प्रधान सत्व एपोमॉर्फीन और वामक तरतीर (टारटार इमेटिक)भी वमनकेंद्रपर असर करके वमन लाता है।

मृदुविरेक (नरम पाखाना) आ जाता है। इनको मृदुसारक (मुलय्यिनात) कहते हैं—उदाहरणत मधु, अञ्जीर, इमली (तमर हिंदी), आलूचा, शीरखिश्त, अमलतास, गधक, एरडतैल (रोग़न वद अजीर), रोगनबादाम और रोग़न जैतून इत्यादि।

मुसहिलात (विरेचन, स्रसन)—कतिपय औषधियाँ अत्रकी मलविसर्जनीय शक्ति (कुव्वत दाफेआ)को तीव्र या वलवती वनानेके अतिरिक्त तद्द्रवोद्रेकको भी अभिवर्द्धित कर देती है, जिससे द्रव (रकीक) विरेक आने लगते हैं। इनको विरेचन औषध (अद्वविया मुस्हिला) कहते हैं। पुन इन विरेचनौषधो (मुसहिल अद्विया)मेंसे किसी-का कार्य (अमल) अपेक्षाकृत हलका (खफीफ) होता है (मुस्हिलात जईफा)—उदाहरणत सनाय, वृषपित्त (जुहरए गाव) और किसीका तीक्ष्ण (मुस्हिलात कविय्या)—उदाहरणत जयपालतैल (रोगन हब्बुस्सलातीन), काटाइंद्रायन (कुसाअल् हिमार), सकमूनिया (महमूदा), उसारारेवद, कालादाना (हब्बुनील), त्रिवृत् वा निशोथ (तुर्बुद), इन्द्रा यनका गूदा (शह्म हज़ल), जलापा मूल।

कतिपय औषधियाँ यकृत्से अत्रकी ओर (इसवाव सफरा)को वढ़ा देती हैं और जो पित्त उत्पन्न होता है, उसको पुन अभिशोषित नही होने देती, जिससे पित्तके विरेक् आने लगते हैं। इनको पित्तविरेचन (मुस्हिलात सफरा) कहते हैं—उदाहरणत एलुआ, रेवदचीनी और रसकपूर इत्यादि।

क्षारीय विरेचन (मुसहिलात बोरकिया)—कतिपय विरेचन औषधियाँ क्षारीय (शौर) होती हैं, जो आमाशय और अत्रके आतरिक धरातलपर उत्तेजन और सक्षोभ (लज्अ) उत्पन्न कर देती हैं, जिससे उनकी मल-विसर्जनकी शक्ति (कुव्वत दाफेया) तीव्र हो जाती है, और अत्रके जलीय द्रवोके अभिशोषण और उसकी उत्पत्तिको विवर्द्धित कर देती हैं और पुन उक्त उद्भूत एव उद्रेचित द्रवोको अभिशोषित नही होने देती, जिससे आँतोमें गौरव उत्पन्न हो जाता है, तथा प्रकृति उस भार वा गुरुत्व (वारेखातिर)के निवारणके लिए अत्रकी विसर्जनी शक्ति (कुव्वत दाफेया)को तीव्र वा वलवती वना देती है—उदाहरणत समुद्रका क्षारजल, सोतोंके विरेचनीय जल, क्षार (बोरक), लवण-मेद।

कफ विरेचन (मुस्हिलात वलगम)—विरेचन औषधोसे सामान्यतया जलीय या द्रवीभूत (रकीक या माई) और प्रगाढीभूत (गलीज) कफ न्यूनाधिक अवश्य उत्सर्गित हुआ करते हैं। अस्तु, जिन तीव्र विरेचनों (मुसहिलात कविय्या)से प्रचुर परिमाणमें श्लेष्मा उत्सर्गित होती है, उसे श्लेष्म विरेचन (मुस्हिलात बल्गम) कहते है। लग-भग समस्त उग्र विरेचन औषधियाँ इसी कोटिके विरेचन हैं।

इसी तरह इनमेंसे कतिपय विरेचन औषधियाँ जलाश (मय्यत)को अधिक उत्सर्गित करती हैं, जिनको विरेचन वा जलीय रेचन (मुस्हिलात माइय्यत) कहा जाता है।

(२) वह औषधियाँ जो आँतोपर सग्राही या स्तम्भक प्रभाव करती हैं (काबिजात अमआऽ)—यह भी अपने तरीक तासीरके विचारसे कई प्रकार की है —

कतिपय औषधियाँ आत्रस्थ वाहिनियोंको सकुचित कर या उनके रसोद्रेक (तरश्शुह)को कम करके सग्राही (काबिज) प्रभाव करती हैं—उदाहरणत स्फटिका, गधकाम्ल, कत्था, अनारका छिलका, हीराकसीस।

कतिपय औषधियाँ आत्रस्थ रसोद्रेक (तरश्शुह रतूबत)को कम करके सग्राही प्रभाव करती हैं, जैसे—अहिफेन।

कतिपय औषधियाँ अत्रकी मलोत्सर्जनी शक्ति (कुव्वत दाफेआ)को निर्वल करके सग्राही प्रभाव करती हैं, जैसे—यवरुज, खुरसानी अजवायन (वज्रुल्वज)।

(३) आमाशयात्र सक्षोभक (लाजेआत आमाशय और अत्र)—वह औषधियाँ जिनसे आमाशय और अत्र इत्यादिकी श्लैष्मिककलामें सक्षोभ (लज्अ), उत्तेजन (हैजान) और प्रदाह (खराश) इत्यादि उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी औषधियोसे होनेवाले उपद्रव न्यूनाधिक विभिन्न होते हैं, उदाहरणत. मुख, कठ, अन्नप्रणाली (मरी), आमाशय

और अन्त्रमे वेदना और दाहका होना, श्लैष्मिककलाका रागयुक्त और शोथयुक्त हो जाना, उत्क्लेश, वमन, उद्वेष्टन (मगस या मरोड), अतिसार, अतिसार और वमनकी सूरतमे रक्तस्राव होना, शक्तिहीनता, नैर्बल्य, आमाशय-अन्त्र और (मरी)का क्षतयुक्त है ।

(४) वह औषधिया जो आंतोपर कोथप्रतिबधक (दाफा तअफ्फुन) प्रभाव करती है, अर्थात् आन्त्रस्थ पदार्थोंमें खमीर और प्रकोथ (तअफ्फुन) उत्पन्न नही होने देती—उदाहरणत सत अजवाय और कोयला इत्यादि ।

(५) आन्त्रकृमि (दीदान अमआऽ)—वह औषधियां जो आन्त्रस्थ कृमियोपर प्रभाव करती हैं, विभिन्न प्रकारकी होती है—

(क) इनमेंसे कतिपय औषधियां आन्त्रस्थ कृमियोको केवल उत्सर्गित करती है, उनको नष्ट (हलाक) नही करती है । ऐसी औषधियांको कृमिनिस्सारक (मुखरिज दीदान) कहते है, उदाहरणत जलापामूल, उसारारेवद और सकमूनिया इत्यादि ।

(ख) कतिपय औषधियां आन्त्रस्थ कृमियाको नष्ट करती है, जिन्हें कृमिनाशक (कातिल दीदान) कहा जाता है, जैसे—सरत्स्य ।

(ग) कतिपय औषधियां आन्त्रकृमियोको उत्सर्गित और नष्ट भी करती है, इनको कातिल व मुखरिज दीदान कहते है—उदाहरणत वायविडग (बिरग, बिरज), कमीला (कबीलः) इत्यादि ।

पुन इन तीनों प्रकारकी औषधियोंमेंसे किसीका प्रभाव 'केंचवे' (हय्यात) पर होता है । पलासपापडा वा तुख्म ढाक क़ातिल हय्यात और नीमकी छाल कातिल हय्यात, एव कातिल और मुखरिज हय्यात है । किसीका प्रभाव 'कद्दूदाने (हब्बुल्कर्अ)' पर होता है—जैसे उदाहरणत सरख्स कातिल हब्बुल्कर्अ और कमीला कातिल और मुखरिज हब्बुल् कर्अ है । किसीका प्रभाव सूत्रकृमियो या 'चुरनो (दीदान खल्लिया)' पर होना है । उदाहरणत एलुआ सूत्रकृमिघ्न और सूत्रकृमि निर्हरणकर्ता (कातिल व मुखरिज दीदान खल्लिया) है ।

इह्तिक़ान (वस्तिकर्म)—जब औषधियां गुदमार्गसे अन्त्र और सरलान्त्रमे पिचकारी (वस्तियन्त्र) द्वारा प्रवेशित की जाती है, तब उक्त क्रियाको इह्तिकान और इह्तिकान मिअ्विय्य (वस्तिकर्म, आन्त्रवस्ति) कहा जाता है । वह औषधि जो इस प्रकार उपयोग की जाती है, हुक्ना कहलाती है । इस उद्देश्यके लिए प्रयुक्त यन्त्रको मिह्क़ना (वस्तियन्त्र) कहते है ।

वस्तिकर्ममें प्रयुक्त औषधो और जिस प्रयोजनके निमित्त उसका प्रयोग किया गया है, उनके विचारसे वस्ति (हुक़्ने)के विभिन्न भेद होते है—

(१) विरेचनीय वस्ति (हुक्ना मुसहिला)[1]—जिसका यह अभिप्राय या उद्देश्य हो, कि अन्त्र प्रभृतिके दोषोको विरेककी सूरतमें उत्सर्गित किया जाय । श्रेणी (मरातिब)के विचारसे इसके यह तीन भेद हैं—(१) तीक्ष्ण वस्ति (हुक़्ना हाद्दा), (२) मृदु वस्ति (हुक्ना लय्यिना) और (३) मध्यम वस्ति (हुक्ना मुत्वस्सता) ।

विरेचनीय वस्तिमें विरेचनौषधियां उपयोग की जाती है । जैसे—तीव्र विरेचन (मुसहिलात कविय्या), पिच्छिल पदार्थ (लुआबियात) (मुरक़्क़ियात), स्नेह वा तेल (अद्हान), उष्ण, जल, विलीनीभूत साबुन, लवणका विलयन इत्यादि ।

---

१ आयुर्वेदिक कल्पनाके अनुसार इसे सशोधन वस्ति कह सकते हैं जो आस्थापन या निरुह वस्तिका एक भेद है "तस्य भेदा उत्क्लेशन, सशोधन, सशमन, लेखन बृहण, वाजीकरण, पिच्छावस्ति माधुतैलिकम् इत्यादि ।" (अ० सू० अ० २) । अंग्रेजोमें इसे पर्गेटिव्ह अनीमेटा (Purgative enemata) कहते हैं ।

(२) सग्राही या स्तभन बस्ति (हुक्ना काबिजा या हाबिसा)[१]—का अभिप्राय शोणित स्थापन (हब्स खून) और अतिसारनाशन (हब्स इसहाल) हुआ करता है।

(३) वातानुलोमन बस्ति (हुक्ना मुहल्लिला)[२]—से वायुका अनुलोमन (तहलील रियाह) अभिप्रेत हुआ करता है।

(४) पोषणवस्ति (हुक्ना मुगज्जिया या गिजाइय्या) से शरीरपोषण अभिप्रेत हुआ करता है। इस हेतु मुर्गीके बच्चो (चूजो)का मासरस या यख़नी, अगूरका रस, अनारका रस, यवमड (माउशईर) और दूध प्रभृति जैसे प्रवाही वा तरल आहार व्यवहार किये जाते हैं। पोषणवस्तिकी आवश्यकता उस समय हुआ करती है, जबकि कण्ठरोहिणी (खुनाक) जैसे कठरोगके कारण मुखमार्गसे आहार सेवन दुस्तर हो जाता है। पोषणबस्तिका उपयोग आँतोको मलोंसे शुद्ध कर लेनेके पश्चात् किया जाता है। अर्थात् प्रथम उष्ण जल आदिसे बस्ति देकर आँतोंके विष्टा-मल (फुज़लात बुराजिया) उत्सर्गित कर दिये जाते है। इसके अनन्तर पोषण द्रव्य अल्पमात्रामें पहुँचाये जाते हैं, जिसमें आँतो पर अधिक भार न पडे और मलरूपमें शीघ्र उत्सर्गित न हो।

(५) प्रकृति परिवर्तनकारिणी बस्ति (हुक्ना मुबद्दिला मिज़ाज)—जिससे अन्त्र और आशय (अहशा) आदिके प्रकृत दोष (सूए मिज़ाज)का निवारण अभिप्रेत होता है, उदाहरणत आन्त्रिक ज्वर (हुम्मयात मुहरिका) और कोष्ठावयवके सताप (हरारते अहशाऽ)की दशामें तरबूजका रस, खीरेका पानी, निलोफरका रस और वर्फका शीतल पानी बस्तिकी भाँति उपयोग किया जाता है।

सज्ञाहर एव सशमन बस्ति[४] (हुक्ना मुखद्दिराव मुसक्किना)—से वेदनाशमन और आन्त्रस्थ प्रदाह और सक्षोभ एव रगड (खराश व सहज्ज)का निवारण अभिप्रेत हुआ करता है।

०

---

१ अग्रेजीमें इसे ऐस्ट्रिन्जेण्ट ऍनीमेटा (Astringent enemata) कहते हैं।

२ अग्रजीमें इसे कार्मिनेटिव या ऐण्टिस्पैज्मोडिक ऍनीमेटा (Carminative enemata) कह सकते हैं। आयुर्वेदोक्त अनुवासन या स्नेहबस्ति जैसी इस बस्तिकी कल्पना है।

३ अग्रेजीमें इसे न्युट्रिएण्ट ऍनीमेटा (Nutrient enemata) कहते हैं।

४ अग्रेजीमें इसे एनोडाइन एण्ड सिडेटिव्ह ऍनीमेटा (Anodyne and Sedative enemata) कहते हैं।

प्रकरण ८

यकृत पर औषधियों के कर्म

दोषोत्पत्ति (तौलीद अखलात)—विपयक याकृदीय कर्म वहुत ही जटिल, सदेहास्पद और विवादास्पद हैं, क्योंकि पित्त (सफरा)के अतिरिक्त जितने पदार्थ यकृतमें उत्पन्न होते हैं, वह नि.शेप रक्तमें मिश्रीभूत हो जाते हैं, इसलिये यह मालूम करना कि यकृतमें कौन कौन पदार्थ किस प्रकार प्रस्तुत उत्पन्न होते हैं, वहुत ही दुस्तर है।

यकृत्के समस्त जटिल कर्मों पर कौन-कौन सी ओषधियाँ क्या-क्या असर करती हैं, इनमेंसे अधिकतर विपयोका ज्ञान यथार्थ रूपसे अभीतक प्राप्त नही हो सका है। हाँ, पित्तकी उत्पत्ति और वृद्धि पर जो ओपधियाँ प्रभावकारी (मुवस्सिर) होती हैं, उनका कर्म अपेक्षाकृत स्पष्ट और प्रत्यक्ष है। अस्तु, कतिपय ओपधियाँ पित्तोद्रेकको अभिवर्द्धित करती हैं, जिनको मुस्हिलात सफराऽ या मुदिर्रात सफराऽ (पित्तविरेचक) कहते हैं। इसके पुन ये दो अवान्तर भेद होते हैं —

(१) यकृत्के कर्मको तीव्र करके पित्तोद्रेक (इद्रार सफराऽ)को अभिवर्द्धित कर देती हैं—उदाहरणत. जलापा मूल, सक्मूनिया, रेवदचीनी, एलुआ, सूरंजान इत्यादि।

(२) अन्त्रकी पुर सरण क्रियाको तीव्र करके पित्तको पुन अन्त्रसे अभिशोपित होनेका अवसर नही देती हैं, उदाहरणत उग्र विरेचन ओपध (जयपाल, त्रिवृत्, खर्वक इत्यादि)।

मधुर पदार्थ और यकृत्—प्राचीन यूनानी चिकित्सकोका यह सिद्धात है कि "मधुर पदार्थ मरगूब वित्तवा है—प्रकृति या तवीअत वडी रुचि (रगवत)के साथ मधुर पदार्थोंकी ओर वढती और शरीरमें शोपित करती है।

इसमें कोई सदेह नही कि अन्वेपण करने पर यूनानी वैद्योका यह कथन सम्यक् सत्य है। यकृत्में शर्कराका वहुत वडा कोप सचित रहता है, जिसको यकृत् वाहिनियोंके द्वारा रक्तप्रवाहमें एक अदाजके साथ अवयवो तक प्रेपित किया करता है। यही कारण है कि रक्तमें शर्कराके अणु विलीनावस्थामें पर्याप्त पाये जाते हैं, जो पेशियोमें पहुँचकर उत्तापजननके काम आते हैं।

यकृत्के उक्त कर्मपर ओपधियाँ किस प्रकार कार्य करती हैं? इसका पूर्ण अन्वेपण स्पष्टरूपसे अभी तक नही हो सका है। सदिग्ध रूपसे यह कहा जा सकता है कि मल्ल और अहिफेन यकृत्के उक्त कर्मको सुस्त कर देते हैं।

मुकव्वियात जिगर (यकृत् वलदायक)के साथ प्राचीनयूनानी चिकित्सकोके द्रव्यगुणविपयक ग्रथोंमें अन्यान्य अवयवोंकी वलदायिनी ओपधियों (मुकव्वियात)के साथ "यकृत्की वलदायिनी ओषधियो मुकव्वियात जिगर"की भी एक सूची मिलती है। इन ओपधियोंको दो वर्गोंमें विभाजित किया गया है—(१) शीतल यकृत् वलदायिनी ओपधियाँ (मुकव्वियात वारिदा), और (२) उष्ण यकृत्वलदायिनी ओपधियाँ (मुकव्वियात हार्रा)।

यकृत्को वल देनेवाली ओपधियो (मुकव्वियात जिगर)की कार्यनिष्पत्ति किस प्रकार होती है और कौनसी ओपधि यकृत्की किस क्रिया पर कार्यकारी होती है? इस पर कोई विस्तृत प्रकाश नही डाला गया है और यह सत्य भी है कि इनके गुणकर्मोको प्रकाशमें लाना सहज नहीं।

इस सूची पर ध्यानपूर्वक विचार करनेसे इतना पता अवश्य चलता है कि इनमेंसे कतिपय ओपधियाँ पित्तोत्पत्तिकी क्रियाको तीव्र कर देती हैं। उदाहरणत वृपपित्त (जहरए गाव), रेवदचीनी, सूरजान, एलुआ, नौसादर इत्यादि।

कतिपय ओषधियाँ पित्तोत्पत्तिके असाधारण आधिक्यको कम कर देती हैं, उदाहरणतः खट्टे अनारका रस, हरे मकोयका रस।

कतिपय ओषधियाँ यकृत्के रोगकारक दोष (मवाद् मर्ज़) पर असर करके और रोगका निवारण करके यकृत्की क्रियाको दुरुस्त कर देती हैं, जैसे—अफ़सन्तीन।

कतिपय ओषधियाँ यकृत्के मिज़ाजमें कुछ ऐसा अप्रगट और गुप्त परिवर्तन कर देती है, कि यकृत्की क्रिया प्रकृत साम्यावस्था पर आ जाती है, उदाहरणतः—हरी कासनीका फाड़ा हुआ रस।

कतिपय ओषधियाँ यद्यपि प्रत्यक्षतया 'यकृत् पर कोई असर नहीं रखती हैं,' परंतु वे आमाशय, अन्त्र और मूत्रपिंड इत्यादिके कर्मोंको दुरुस्त करके यकृत्के कर्मोंके सुधारका कारण हो जाती हैं, उदाहरणतः—जवारिश जालीनूस।

कतिपय ओषधियाँ मिलित गुणविशिष्ट (मुरक्किबुल्कुवा हैं)। यकृत् पर भी कार्यकारी (मुवस्सर) होती हैं और तत्संबंधी सेवकावयवों (आज़ाऽ खादिमा) पर भी।

तात्पर्य यह कि सार्वदैहिक बल्य (मुकव्वियात आम्मा बदनिय्या)की भाँति यकृत्को बल प्रदान करनेवाली ओषधियाँ (मुकव्वियात जिगर)के वैद्यकीय उपयोगोंकी कार्यकारणमीमांसा या उपपत्ति (नौइय्यते अमल) भी बहुत करके संदिग्ध और जटिल है।

यकृत्को बल प्रदान करनेवाली ओषधियोंकी विस्तृत सूची रोगानुसारिणी औषध-सूची या औषधकर्मानुसारिणी सूचीमें उल्लिखित है।

प्रकरण १०

पुरुष-जननेन्द्रिय पर औषधोंके कर्म

पुरुषजननेन्द्रिय (मर्दाना आजाऽ तनासलिय्या) पर प्रभाव करनेवाली ओषधियाँ दो प्रकारकी होती हैं'—(१) वह ओषधियाँ जो मैथुनेच्छा (खाहिश जिमाअ)को बढाती हैं, इनको मुक़व्वियात बाह (वाजीकरण) कहते हैं। इनमेंसे कतिपय ओषधियाँ जननेन्द्रियकी वातनाडियो और कामकेंद्रों (मरकज कुव्वत बाह)को शक्ति देकर मैथुनेच्छाकी वृद्धि करती हैं, जैसे—कुचला इत्यादि।

कतिपय ओषधियाँ मूत्रावयवों, जननेन्द्रिय और उनसे सबधित धातुओंमें सक्षोभ और उत्तेजना उत्पन्न करके और स्थानिक रक्तपरिभ्रमणको तीव्र करके मैथुनेच्छाकी वृद्धि करती हैं, उदाहरणत —तेलनीमक्खी (ज़रारीह) और पतले लेप (तिलाऽ), टकोर (तकमीद) और अभ्यगकी प्राय ओषधियाँ।

कतिपय ओषधियाँ उच्च केन्द्र (मस्तिष्क)में उत्तेजना पहुँचाकर मैथुनेच्छाकी वृद्धि करती हैं, जैसे—भंग और मद्य अल्पमात्रामें सेवन करनेसे। उपर्युक्त ओषधियोके अतिरिक्त कामोत्तेजक कतिपय ओषधियाँ साधारण शारीरिक शक्ति और स्वास्थ्यको सुधारकर और शोणितोत्पत्तिको बढ़ाकर वाजीकरण (तक़्वियत बाह)का कारण होती हैं। इनको बल्य (मुकव्वियात आम्मा) कहते हैं।

कातेअ बाह (२) वह औषधियाँ जो मैथुनेच्छाको कम करती हैं। उनको मुज़इफात बाह या कातेअ बाह कहते हैं। आयुर्वेदमें उन्हें पुस्त्वोपघाति या पाण्ढ्यकर कहते हैं।

इनमेंसे कतिपय ओषधियाँ जननेन्द्रियकी वातनाडियोको अवसादित करके क्लैब्य (ज़ोफ बाह) उत्पन्न करती हैं जैसा कि बर्फके स्थानिक उपयोग और अत्यत शीतल जलसे स्नान करनेकी दशामें होता है।

कतिपय ओषधियाँ कामकेंद्र (मरकज कुव्वतबाह)को अवसादित करके क्लीवता (ज़ोफ बाह) उत्पन्न करती हैं, जैसे—शूकरान, अहिफेन, खुरासानी अजवायन (बज्रुल् बज) और धतूरा (जौज़मासल) इत्यादि।

कतिपय ओषधियाँ जननेंद्रिय या कामकेंद्र—मरकज बाह (सुषुम्णा)में रक्तागमको कम करके क्लीवता उत्पन्न करती हैं, जैसे—शैलम।

कतिपय ओषधियाँ उत्तेजना और सक्षोभके कारणको निवारण करके कामोत्तेजन (तह्रीक बाह)को कम करती हैं, उदाहरणत कभी मूत्रकी तीक्ष्णता उत्तेजनाका कारण हुआ करती है। उक्त अवस्थामें क्षारौषधोंसे यह तीक्ष्णता निवृत हो जाती है और कामेच्छा (बाह) शमन हो जाती है।

प्रकरण ११

स्त्री जननेंद्रिय

गर्भाशय (रहिम)—गर्भाशय पर प्रभाव करनेवाली ओषधियाँ कई वर्गोंमें विभाजित की गई हैं, यथा —

१ गर्भपातक (मुस्क़िात)—कतिपय ओषधियाँ गर्भाशयकी मांसपेशियोंके तन्तुओंको संकुचित कर गर्भाशयके भीतर स्थित भ्रूण (जनीन) और अपरा इत्यादि पदार्थोंको उत्सर्गित कर देती हैं। इस प्रकारकी ओषधियोंको परिभाषामें मुस्क़िात कहते हैं, उदाहरणत —[illegible], सुदाब, हाऊबेर (अबहल) और कपासमूलत्वक् इत्यादि।

२ मुदिर्रात हैज़—कतिपय ओषधियाँ गर्भाशय पर प्रभाव करके रज:प्रवर्तन (इद्रार हैज़)का कारण होती हैं अर्थात् आर्तवशोणित ([illegible])का प्रवर्तन कर देती हैं। इनको मुदिर्रात हैज़ कहते हैं, उदाहरणत हींग, अजमोद (तुख़्म करफ़्स) और हंसराज (परसियावशाँ) इत्यादि।

इनके अतिरिक्त कतिपय ओषधियाँ इस प्रकारकी भी हैं जिनका असर यद्यपि प्रत्यक्षतया (बिज़्ज़ात) जरायु पर नहीं होता, किन्तु वह आर्तवशोणितप्रवर्तक (मुदिर्र हैज़) हैं। अस्तु, कतिपय ओषधियाँ शरीरमें रक्तोत्पत्तिकी वृद्धि करके या रक्तको शुद्ध करके आर्तव प्रवर्तन (इद्रार हैज़)का कारण होती हैं, जैसे—कुश्ता फौलाद इत्यादि और कतिपय वातनाडियोंपर असर करके आर्तवप्रवर्तनका कारण होती हैं, जैसे—कुचला इत्यादि।

कतिपय ओषधियाँ गर्भाशयमें रक्तागमकी वृद्धि कर आर्तव-प्रवर्तनका कारण होती हैं, जैसे—उष्ण जलसे अवगाह (आबज़न) करना, और कतिपय ओषधियाँ मलाशयके अवयवोंमें क्षोभ और उत्तेजना पहुँचाकर जरायुको उत्तेजना प्रदान करती हैं, जिससे आर्तवप्रवर्तन हो जाता है, जैसे—एलुआ या एलुआ संयुक्त विरेचनौषधियाँ।

मुज़इफ़ात रहिम—कतिपय ओषधियाँ जरायुकी आकुंचन शक्तिको कम कर देती हैं, इनको मुज़इफ़ात रहिम कहते हैं, जैसे—अहिफेन और भंग (क़िन्नबे हिन्दी)।

सद्यैन (स्तनद्वय)—यही अर्थात् स्तनपर असर करनेवाली ओषधियाँ भी कतिपय श्रेणियोंमें विभाजित हैं —

१ मुवल्लिदात लबन (स्तन्यजनन) कतिपय ओषधियाँ स्तनोंमें स्तन्यकी उत्पत्तिको बढ़ा देती हैं, जिनको परिभाषामें मुवल्लिदात लबन (स्तन्यजनन) कहते हैं, उदाहरणत प्याजके बीज (तुख़्म प्याज), [illegible], शलजमके बीज (तुख़्म शलजम), अंगूर, सोयेके बीज (तुख़्म शिबित) इत्यादि।

कतिपय ओषधियाँ स्तन्यकी उत्पत्तिको कम कर देती हैं या बिल्कुल बंद कर देती हैं। इनको परिभाषामें मुक़ल्लिलात लबन (स्तन्यनाशन) कहते हैं, उदाहरणत कपूर इत्यादि।

कतिपय ओषधियाँ रक्त द्वारा प्रवेश करके स्तन्यमें परिवर्तन उत्पन्न कर देती हैं, उदाहरणत सक़मूनिया, सनाय, रेवंद और एरण्ड तैल जैसी विरेचनीय ओषधियाँ, जब किसी स्तन्यपायी शिशुकी माता या धात्रीको दी जाती हैं, तब शिशुको विरेचन आने लगते हैं। इसी तरह हींग और लहसुन इत्यादिके उपयोगसे स्तन्यका स्वाद बिगड़ जाता है। संखिया, पारा, फ़ौलाद, गन्धक और अहिफेन भी स्तन्यपानके दूधके द्वारा, शिशुपर प्रभावकारी हुआ करते हैं।[1]

यह विचार किसी प्रकार यथार्थ नहीं है कि समस्त ओषधियोंके घटक स्तन्यके द्वारा शिशु तक पहुँचा करते हैं, प्रत्युत सत्य यह है कि कतिपय विशेष ओषधियाँ ऐसी हैं जिनके घटक स्तन्यके द्वारा शिशु तक पहुँचा करते हैं।

●

---

१ धात्री (मुरज़िअ) यदि अम्ल पदार्थ अधिक सेवन करती है, तो उससे शिशुके उदरमें शूल और मरोड़ पैदा हो जाती है। इसी तरह क्षारीय पदार्थोंके सेवनसे दूधमें क्षारके घटक पहुँच जाते हैं।

प्रकरण १२

त्वचा और तत्संबंधी अंगों पर औषधके कर्म

त्वचा (जिल्द)—त्वचापर प्रभाव करनेवाली औषधियाँ अनेक प्रकारकी होती है —

(क) मुअर्रिकात—कतिपय औषधियाँ त्वचासे स्वेदका उत्सर्ग अधिक कर देती हैं। इनको मुअर्रिकात (स्वेदल, स्वेदजनन) कहते हैं। पुन कर्मकी उपपत्ति (नौइय्यत तासीर)के विचारसे यह कतिपय प्रकारकी होती हैं। कतिपय ओपधियाँ स्वेदग्रथियोपर प्रभाव करके शरीरमे स्वेदोत्पत्तिको विवर्द्धित कर देती हैं, जिसमे स्वेद आने लगता है, उदाहरणत कपूर। और कतिपय ओपधियाँ स्वेदग्रथिगत वातनाडियोको प्रत्यक्षरूपसे या परावर्तित रूपसे उत्तेजित कर स्वेद लाती है, उदाहरणत अहिफेन, मद्य, और कतिपय ओपधियाँ त्वचाके स्रोतोंको विस्फारित करके स्वेदोत्सर्ग करती है, उदाहरणत वाह्य उत्ताप और उष्ण जलावगाहन।

(१) प्राय स्वेदल ओषधियो (मुअर्रिकात)के स्वेदकर्म (अमले तअरीक)की निष्पत्ति अनेक प्रकारसे होती है।

(२) बहुश स्वेदल ओषधियोके वैद्यकीय उपयोगोकी कार्यकारणमीमासाका यथार्थ रूपसे पता नही है, प्रत्युत इतना अवश्य ज्ञात है कि वह स्वेद लाती है। यही दशा स्वेदप्रतिवधक वा स्वेदापनयन ओपधियो (मानेआत अर्क)की भी है।

(ख) मानेआते अर्क (स्वेदापनयन)—कतिपय औपधियाँ स्वेदोत्सर्गको कम करती हैं। इनको मानेआते अर्क कहते हैं। यह भी कर्मकी उपपत्ति (नौइय्यते तासीर)के विचारसे विभिन्न प्रकारकी है। उनमेंसे कतिपय औपधियाँ स्वेदोत्पादक ग्रथियो पर प्रभाव करके उसकी उत्पत्तिको कम कर देती हैं, जिससे उसका उत्सर्ग कम या अवरुद्ध हो जाता है, उदाहरणत वुरादाफौलाद इत्यादि। कतिपय उन ग्रथियोकी वातनाडियों पर असर करके स्वेदोत्पत्तिको कम कर देती है, जिससे उसका उत्सर्ग कम हो जाता है, जैसे धतूरा, खुरासानी अजवायन इत्यादि, और कतिपय त्वचाके स्रोतोंको अवरुद्ध करके स्वेदोत्सर्गको कम या अवरुद्ध कर देती हैं, जैसे—शीतल जलावगाहन और शीतलवायुस्पर्श।

मुगय्यिरात अर्क (स्वेदपरिवर्तक, स्वेदविरजनीय)—कतिपय ओपधियाँ स्वेदमार्गसे उत्सर्गित होकर उसके गुण (कैफिय्यत)को परिवर्तित कर देती हैं, उदाहरणत लोवान और अहिफेन।

मुरखियात—कतिपय औपधियाँ त्वचा पर लगानेसे तत्स्थानीय त्वचाको कोमल, वाहिनियोको विस्फारित और उसकी धातु (साख्त)को शिथिल वा ढीला कर देती है। इनको मुरखियात कहते है। उदाहरणत मोमरोगन, अन्यान्य स्नेह (रोग़नियात), उष्ण प्रलेप और उष्णजल इत्यादि।

मुमल्लिसात (सक्षोभहर वा पिच्छिल)—कतिपय औपधियाँ त्वचा और श्लैष्मिक कलाके प्रदाह (खराश)का निवारण कर देती है। इनको मुमल्लिसात कहते है, उदाहरणत अलसी, इसवगोल, मधु और श्वेतसार (निशास्ता) इत्यादि।

मुवस्सिरात और मुनफ्फितात (पिडिका एव विस्फोटजनन)—कतिपय ओपधियाँ त्वचा पर विभिन्न प्रकारके विस्फोट और पिडिकाएँ (फुन्सियाँ) और दाग-धब्बे उत्पन्न कर देती है, उदाहरणत मल्ल, कुचला और यवक्षार इत्यादि।

कतिपय औषधियाँ त्वचाको खा जाती और व्रण उत्पन्न कर देती हैं (अक्कालात और मुकर्रिहात)। इस प्रकारकी औषधियोंका वर्णन विस्तारपूर्वक धातुओं पर असर करनेवाली औषधियोंके प्रसंगमें आनेवाला है।

लोम, रोम (बाल)—बाल पर प्रभाव करनेवाली औषधियाँ दो प्रकारकी हैं —

कतिपय औषधियोंके उपयोगसे बाल बढ़ने लगते (रोमवर्द्धक) हैं, उदाहरणत जिपत रूमी, रोगन बैजा, और कतिपयके उपयोगसे बाल उड़ जाते (हालिकात) हैं। उदाहरणत हड़ताल और चूनाको मिलाकर बालों पर लगाया जाता है। बालकी जड़ें शिथिल होकर साधारण रगड़से गिर जाती हैं।

प्रकरण १३

रक्त पर औषधका कर्म

रक्त पर प्रभाव करनेवाली औषधियाँ अनेक प्रकारकी हैं। कतिपय औषधियाँ रक्तमें क्षारत्व (बोरकिय्यत)की वृद्धि कर देती हैं, उदाहरणत नतरुन, सैंधवलवण (नमक ताम), नौसादर और क्षारीय सोतोंके जल व शोरा।

कतिपय औषधियाँ रक्तके क्षारत्वको कम कर देती है, उदाहरणत नीबूका रस पानीमें भिगोई हुइ इमलीके ऊपरका पानी (आवेजुलाल तमरहिंदी), खट्टे अनारका रस।

कतिपय औषधियाँ रक्तको प्रगाढीभूत (गलीज) कर देती हैं। अर्थात् रक्तगत जलाश (माइय्यत) वा रक्तकी तरलताको कम कर देती है, उदाहरणत समस्त विरेचन, मूत्रल और स्वेदल औषधियाँ।

कतिपय औषधियाँ रक्तको तरल (रकीक) करती है अर्थात् रक्तगत जलाशको बढा देती है, उदाहरणत अधिक जलपान और स्निग्ध औषधियाँ (मुरत्तिवात)का व्यवहार करना इत्यादि।

मुकव्वियात खून (रक्तानुकारी, शोणितस्थापक)—कतिपय औषधियाँ रक्तके उन सान्द्रीभूत अवयवोंकी वृद्धि करती है, जिनसे रक्तमें लालिमा आती है या जिससे रक्तका वर्ण अधिक लोहित वा रक्त हो जाता है और रक्तमें शक्ति आ जाती है। इन औषधियोको मुकव्वियात खून कहते हैं, उदाहरणत फौलाद भस्म, शर्बत फौलाद और फौलाद एव मल्ल आदिके अन्यान्य योग।

कतिपय औषधियाँ रक्तके उक्त अवयवोंको कम कर देतो हैं, जिनसे उसका वर्ण फीका पड जाता है—उदाहरणत अधिक परिमाणमे सखिया इत्यादिका सेवन, (रक्तनाशन)।

कतिपय औषधियाँ रक्तकी स्कदनशक्तिको बढा देती हैं, उदाहरणत जलाई हुई सीप (सद्फ सोख्ता), जलाया हुआ केकडा (सरतान मुह्‌रिक), सगजराहत, दूध इत्यादि (रक्तस्कदन)।

कतिपय औषधियाँ रक्तकी स्कदन शक्तिको कम कर देती हैं, उदाहरणत अम्लफल और मद्य इत्यादि।

वक्तव्य—इसी तरह असख्य औषधियाँ इस प्रकारकी विद्यमान हैं, जो रक्तके सघटक अवयवा (अज्ज़ाए तरकीबी)में विभिन्न प्रकारसे प्रभाव करती है, परतु उनके उक्त कर्मोकी कार्यकारणमीमासा स्पष्टतया बतलाना दुस्तर है—उदाहरणत मुन्जिजात, मुलत्तिफयातखून, मुअद्दिलातखून इत्यादि। ऐसी वस्तुओंका वर्णन किसी कदर विस्तार-पूर्वक आगे आनेवाला है।

वाहिनियो (उरूक) पर औषधोका कर्म

मुफत्तेहात उरूक एव काबिजात उरूक। मुफत्तेहात उरूक (वाहिनियोंको विस्फारित करनेवाली औषधियाँ)—यह है, जिनके उपयोगसे वाहिनियाँ (रगें) विस्फारित हो जाती हैं, उनमें रक्तागम परिवर्द्धित हो जाता है और रक्तोत्सिराएँ गत्र परिनिम्नृत हो जाती हैं।

इन औषधियोंसे अधिकतया धमनिकाएँ (शराईन सगीरा) प्रभावित हुआ करती है, और उसके उपरान्त परिणामस्वरूप रक्तोत्सिराएँ और सिराएँ भी फूल जाती हैं, क्योंकि रक्त आनेका मार्ग यही धमनियाँ हैं।

यह औषधियाँ दो प्रकारकी है (१) बहि प्रयोगकी और (२) आतरिक प्रयोग (खिलाने और सुंघाने)की।

(१) इनमेंसे प्रथम भेदके उदाहरण समस्त मुहम्मिरात व लाजेआत, कावियात (चाहे अम्ल पदार्थ या हामिजात हों या क्षारीय पदार्थ या बोरकिय्यात), उष्ण स्वेद (नकूमीदान हार्रा), उष्ण लेप, उष्ण सेचन (नतूलात

हारी), उत्तापका वह्नि प्रयोग, तैलनीमानी (जरारीह), कपूर, मल्ल, जयपाल, जयपाल तैल, राजिका (खर्दल), लौंग, दालचीनी।

कोई तेल आदि लगाकर या यूं ही सादा तौर पर की हुई गर्म मालिशसे भी वाहिनियां वा रगें फैल जाया करती हैं।

(२) द्वितीय भेदके उदाहरण—चाय, कहवा, मद्य, वत्सनाग, लुफाह, यवरुज, खुरासानी अजवायन (वज), अहिफेन, धतूरा, तमाकू।

हाविजात दम—यह औषधियां कहलाती हैं, जिनके उपयोगसे वाहिनियां सकुचित हो जाती हैं और यदि रक्तस्राव (जरयान खून) होता हो, तो वह कम और अवरुद्ध हो जाता है। यही औषधियां हाबिसात दम (रक्तस्थापक औषधियां) कहलाती हैं।

रक्तावरोध (हब्स दम) कभी प्रधानतया वाहिनीसंकोचके कारण उपस्थित होता है, और कभी इसकी सूरत यह होती है कि वाहिनीके समीपवर्तिनी धातुएं सकुचित होकर वाहिनियोंको दबा देती हैं।

(१) चाहे यह औषधियां स्थानिक उपयोगसे कार्य करें, उदाहरणत शीतप्रयोग, फिटकरी, गेरू, सगजराहत, लोहके योग, माजू, एक भेद (हलीलाजात), अनारका छिलका और समस्त कषाय द्रव्य, कत्था, दम्मुल्अख्वैन, हीराकसीस, तूतिया इत्यादि।

(२) और चाहे आन्तरिक प्रयोग (खिलानेसे) रक्तमें शोषित होनेके उपरात, उदाहरणत फौलाद, वनपलाण्डु (उन्सोल), कुचला इत्यादि।

रक्तकेशिकाओं पर कर्म करनेवाली औषधियां—रक्तकेशिकाओं (उरूक शअरिय्या) पर प्रभाव वा असर करनेवाली औषधियां वही हैं, जो धमनिकाओं (शराईन सगीरा) पर प्रभाव करके रक्तपरिभ्रमणको स्थानीय रूपसे तीव्र या मद कर देती हैं, जैसा ऊपर निरूपण किया गया है।

रक्तकेशिकाके रक्तप्रवाहको तीव्र करनेवाली औषधियां (मुहय्यिजात) विभिन्न सज्ञाओंसे अभिधानित की जाती हैं —

(१) कावियान (दाग लगानेवाली या जलानेवाली औषधियां)—उदाहरणत अम्ल (तेजाबात), तीक्ष्ण उत्ताप जैसा कि लोहे इत्यादिसे त्वचाका दहन किया जाता है। उक्त क्रियाको कय्य (दागना—दहनकर्म) कहा जाता है।

(२) मुनफ्फिताात (आबलाअंगेज स्फोट-स्फोटजनन)—उदाहरणत तैलनीमवखीकृत लेप (जिमाद जरारीह), भिलावां इत्यादि।

(३) मुबस्सिरात (बुसूर अर्थात् दाने उत्पन्न करनेवाली औषधियां)—उदाहरणत मल्ल और जयपाल इत्यादि।

(४) मुहम्मिरात (रक्तरागोत्पादक या शोणितोत्क्लेदक औषधियां)—उदाहरणत राजिकाप्रलेप और मर्दन (मालिश)।

(५) अक्कालात (गला जानेवाली औषधियां)—यह औषधियां जो त्वचा और मासको गला देती हैं, उदाहरणत तूतिया।

(६) मुकर्रेहात (व्रणोत्पादक औषधियां)—जब उपर्युक्त औषधियोंसे त्वगीय क्षत (जराहत) उत्पन्न होनेके उपरांत उनमें पूय पड जाती है, तब उक्त अवस्थामें इन औषधियोंको मुकर्रेह (व्रणकारक) कहा जाता है। उदाहरणत जयपाल, मल्ल और भिलावां (बिलादुर)।

(७) मुमीलात (जाज़िवात)—वेदना और शोथको कम करनेके लिये जब समीपवर्ती (आस-पास)को धातुओंकी वाहिनियोको प्रतिक्षोभक (लाज़ेआत)से परिविस्तृत किया जाता है, तब उक्त कर्मको इमाला (इमालए मवाद्) कहा जाता है। उदाहरणत शिरोशूलमें मस्तक पर कपूर और यकृत्शोथमें त्वचा पर राजिकाप्रलेप लगाया जाता है। उक्त अवस्थामें इन ओषधियोको मुमीलात कहा जाता है।

रक्तकेशिकाओके रक्तपरिभ्रमणको अवसादित वा सुस्त करनेवाली ओषधियाँ वही हैं, जो धमनिकाओंको सकुचित कर देती हैं, जिनका ऊपर विस्तारपूर्वक वर्णन हो चुका है।

एव अविच्छिन्न चक्र जारी रहता या चलता रहता है, जिससे इतने प्रकारके उत्कृष्ट-निकृष्ट (उपयोगी-अनुपयोगी) योगद्रव्य निर्मित होते रहते है कि सीमित मानव ज्ञान-विज्ञान उनके विस्तार एव वर्णनसे विवश है।[1]

इन्ही परिवर्तनोके परिणामस्वरूप शरीरका धारण पोपण (क्षतिकी पूर्ति वा धातु गुणवर्धन, वृद्धि एव रक्षा) और उत्ताप वा उष्णता एव मलोकी उत्पत्ति (मलीभवन) होती है। हम मास, रोटी, दाल, घी इत्यादि खाया करते हैं। यह न जाने पचन (हज्म) और परिवर्तनकी कितनी सीमाएं अतिक्रात करनेके उपरात शरीरका भाग (जुज्व बदन) और क्षतिकी पूर्ति (बदल मायतहल्लुल) हुआ करते हैं।

शैखुर्रईस (इब्नसीना)का यह कथन है[2] जो सर्वथा सत्य है कि "शरीरके प्रत्येक भाग और हर एक अवयवमें स्वभावत एक शक्ति होती है, जिससे उक्त अवयवके पोपणका कार्य निष्पन्न हुआ करता है।" (कुल्लियान कानून शैख)।

और यह भी मालूम और यूनानी वैद्यो द्वारा स्वीकृत सिद्ध सिद्धात है, कि पोषणकारिणी शक्ति (कुव्वत गाज़िया)के कार्यके लिए शक्तिचतुष्टय[3] की नितात आवश्यकता है।

इससे यह सिद्ध हो गया कि शरीरके प्रत्येक भागमें न्यूनाधिक सम्यकासम्यक् परिवर्तन और परिणति (तगय्युर व इस्तेहाला) अवश्य हुआ करती है, क्योकि पाचनशक्ति परिवर्तन करना है, जिसकी स्थिति (वजूद) हर जगह स्वीकार कर ली गई है।

यूनानी वैद्यक विद्याके प्राचीन आचार्योंका यह भी सिद्धात है, कि वास्तविक या असली पोपणकर्ता (ग़ाज़ी) शोणित है, जो विभिन्न घटकोका एक विलक्षण समाहार है। शरीरका प्रत्येक अश और अगका प्रत्येक भाग (उपाग) शोणितके अटूट कोषका भडार वा सग्रहालय (भोज्य सामग्री)से अपने लिए समुचित और उपादेय अग छाँटकर ग्रहण कर लिया करता है। यह कार्य शोषण कारिणी (सात्म्यीकरण) शक्ति (कुव्वत जाज़िबा)का है। पुन उक्त शोणिताश न्यूनाधिककालपर्यन्त वहाँ निवास वा अवस्थान करते हैं। यह कार्य धारणाशक्ति—(कुव्वत मासिका)का है, जिनमें पाचनशक्ति (कुव्वत हाजिमा)की क्रियासे परिवर्तन और परिणाम (तगय्युरात व इस्तेहालात) उपस्थित होते हैं। इन परिवर्तनो और परिणामोके फलस्वरूप जिस प्रकार उस अगका पोषण (धातुकी वृद्धि तग्ज़िया) होता है, उसी प्रकार भाँति भाँतिके मल उत्पन्न हो जाते हैं जिनको उत्सर्गकारिणी शक्ति (कुव्वत दाफेआ) अग-प्रत्यगोकी धातुओंसे लेकर रक्तप्रवाहमें डाल देती हैं जिसमें वे सरलतापूर्वक उन अग-प्रत्यगो तक पहुँच जायें जिन्हें प्रकृतिने ऐसे मलोंके

---

१ रक्तमें कितने प्रकारके यौगिक पाए जाते हैं? कला और ज्ञान-विज्ञानके इस चरमोन्नति कालमें भी अधुना यथार्थरूपसे इनका ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका। और न यह अनुमेय है कि किसी युगमें इनका ज्ञान सहजमें प्राप्त हो जायगा। इस विषयमें अद्यावधि जितना ज्ञान हो सका है और जो कुछ बताया जाता है वह समुद्रमें एक बिंदुके बराबर है।

२ शैखुर्रईस आदि प्राचीन यूनानी चिकित्साचार्य लिखते हैं कि धातु (खिल्त) केवल शोणित ही है और शेष धातु (अख्लात) मसालेकी हैसियत रखते हैं अर्थात् शरीरका पालन-पोषण अधिकतया इसी धातु (खिल्त) पर निर्भर है और शेष धातुएँ (अखलात) इसके साथ लवण और मसालेकी भाँति मिलकर धातुपोषणकार्यमें सम्मिलित होते हैं।

शैखुर्रईसने अश्शिफामें इस विषयका निरूपण किया है कि यद्यपि शेप धातुएँ (अख़लात) रक्तमें समाविष्ट होकर कतिपय अगोंमें जाते हैं, तथापि वे उनके अग (उपादान) नहीं होते। आयुर्वेदमें भी रक्तको उक्त स्थान प्राप्त है। कहा है—प्राण प्राणभृता रक्तम्। (अ० स० सू० ३६)। तद्विशुद्धहि रुधिर बलवर्णसुखायुषा, युनक्ति प्राणिना, प्राण शोणित ह्यनुवर्तते। (च० सू० २४ अ०)।

३ ये शक्तिचतुष्टय ग्रहण (जाज़िब), धारण (मासिका), पचन (हाजिमा) और उत्सर्जन (दाफेआ) हैं।

फेनके सदृश ऊपर आ जाती है वह पित्त है, और जो तलछटकी भाँति नीचे बैठ जाती है वह सौदा है, तथा जो मदाग्नि वा पाचनदोषसे अवपकी या अपरिपक्व रह जाती है वह श्लेष्मा, और जो सम्यक् परिपाचित होकर प्रकृतिस्थ (मौतदिलुल् किवाम) हो जाती है, वह रक्त है। इस प्रकार यकृत्‌में चतुर्दोषो (अख्लात अरवआ)की उत्पत्तिके अनतर पित्त और सौदा दो भागोमें विभक्त हो जाते हैं, जिनमेंसे कुछ पित्त तो पित्ताशय और कुछ सौदा प्लीहामें चला जाता है और कुछ पित्त और कुछ सौदा रक्तमें मिलकर वाहिनियोमे चले जाते हैं। परतु श्लेष्माके लिए कोई निश्चित आशय अधिष्ठान (मफरगा) निर्दिष्ट नही है। वह रक्तके साथ ही वाहिनियोमें चला जाता है, क्योंकि प्राकृतिक श्लेष्मा वस्तुत अपरिपक्व वा असम्यक् परिणत रक्त है। आवश्यकता पडनेपर रक्तमें परिणत होकर अर्थात् रक्त वनकर शरीर (धातुओ)का पोषण करता है।

अतएव प्रकृतिने उसके लिये कोई विशेष अधिष्ठान (मफरगा) निर्दिष्ट नही किया, प्रत्युत वह उसको शोणित के साथ ही रगो (वाहिनियो)में सचारित करती है जिसमें वह समस्त अवयवोमे विभक्त रहे और जव किसी अवयव को आहार प्राप्त न हो तव उक्त अवयवमें स्थित श्लेष्मा उसका आहार (पोषक) वन जाय। फलत जव यह चतुर्दोष यकृत्से वाहिनियोमें पहुँच जाते है तव पुन वहाँ पर तृतीय पाक हज्म उरूकी[1] का श्रीगणेश होता है। सुतरा आद्यरस (रतूवत ऊला अर्थात् रक्त) परिपाकको प्राप्त होकर क्रमश द्वितीय द्रव (रतूवत तल्लिया व मुतदाख्लिा इत्यादि)में परिणत हो जाता है और प्रत्येक अगकी प्रकृतिके गुणानुरूप सात्म्यीकृत हो जाता है। यह द्वितीय द्रव (रतूबत सानिया) दो प्रकारका होता है —(१) त्याज्य वा मलरूप (फुजूल), और (२) दूसरा अत्याज्य वा प्रसादाख्य (गैर फुजूल)।

इनमें मलाख्य द्रव (फुजूल) वह है जो शरीरका भाग न वन सके और वह अप्रकृत वैकृत दोषो (अखलात गैर तवइय्या)के अतर्भूत है। अस्तु, शरीरसे उसका उत्सर्ग अनिवार्य है।

प्रसादाख्य द्रव—गैर फुजूलका सार भाग वह है जिसकी शरीरको उसके पोषणके लिये अनिवार्य आवश्यकता होती है अर्थात् वह शरीरका भाग वनता है—उससे शरीरका पोषण-वर्धन होता है जिसके यह चार अवान्तर भेद हैं —(१) रतूवत महसूरा, (२) रतूवत तल्लिया, (३) रतूवत करीवतुल् अह्द, और (४) रतूवत मुतदाखिला। सुतरा (१) रतूवत महसुरा (Plasma-रक्तरस) वह द्रव है जो रक्तकेशिकाओके वीचके अवकाशोमें (जो शुक्रजात अवयवो—आजाऽ असलिय्या जैसे अस्थि, वातनाडी इत्यादिसे सलग्न होती है) परिपूर्ण रहता है अर्थात् रक्तरस वा पोषकरस वा प्लाज्मा और (२) रतूवत तल्लिया वह द्रव्य है जो अवश्याय (तल्ल अर्थात् शब्नम—)की भाँति आजाऽ असलिय्या पर विखरा हुआ होता है और अवयवका भाग वन जानेकी योग्यता रखता है अर्थात् लसीका वा लिम्फ, (३) रतूवत करीवतुल् अह्द विल् इन्इकाव वह द्रव वा रतूवत है जो अवयवोमें पहुँचकर उनका वर्ण और मिज़ाज तो प्राप्त कर चुका है, परन्तु अभी उनकी भौतिक स्थिति (किवाम) प्राप्त नही किया है। इसी परिपाक वा पचनको हज्म उरूकी कहते हैं। इसका अर्थ वाहिनियोकी परिपाक क्रिया है अर्थात् जव यकृत्से रक्त वाहिनियोमें प्राप्त होकर और परिपाचित होकर क्रमानुसार रतूवत सानिया (द्वितीय द्रव)में परिणत हो जाता है तव उसको हज्म उरूको कहते हैं। (४) रतूवत मुतदाखिला या रतूबत असलिय्या (मूल द्रव, सहज

---

१ साहव नहाया लिखते हैं कि कैमूस वस्तुत आमाशयका परिपाचित आहार है। शर्त यह है कि वह आमाशयसे न निकला हो। इस कथनसे अर्वाचीन पाश्चात्य वैद्यकीय (यूरोपीय डॉक्टरोंके) विचारोंकी पुष्टि होती हैं। यद्यपि वहुधा प्राचीन यूनानी चिकित्सक कैमूसको यकृत्का परिपाचित आहार लिखते हैं।

जालीनूसके पूर्वके यूनानी चिकित्सक 'खुमोस' और 'खुलोस'को पर्याय मानते थे। जालीनूसने इन दोनोंमें अर्थभेद निरूपित किया है।

द्रव) वह रतूबत है जिससे धातुओं वा अवयवोंका सधान वा संश्लेषण होता है और शरीरकी शृंखला (लडी) विशृंखलित अथवा विच्छिन्न होनेसे सुरक्षित रहती है और जब रतूबत मुतदाखिला या रतूबत असलिय्या जो निपातसे (बिल्फ़ेल) धातुपोषणक्षम होती है, धातुओंमें परिणत हो जाती है। अर्थात् वह रतूबत सानिया (रतूबत मुतदाखिला) जो अवयवोंकी धातुओंमें प्रविष्ट हो चुकी है, अवयवका भाग बन जाती है, तब उसे हज़्म उज़्वी कहते हैं।

यूनानी कल्पनाके अनुसार अन्नपरिपाकक्रिया और आहारगतिका यह संक्षिप्त वर्णन है। यूनानी कल्पनाके अनुसार हज़्ममेदीका मल विष्ठा, हज़्म कबदीका मूत्र तथा हज़्म उरूकी और हज़्म उज़्वीके मल क्रमश स्वेद और मैल है।

यकृत्के यह दो काम है—(१) प्रथम तो यह रक्त उत्पन्न करता है, और (२) द्वितीय यह रक्तसे पित्त और सौदा और मूत्र (माइय्यत दौल)को पृथक् करता है। यद्यपि यकृत्में कार्यकारिणी—उत्सर्गकारिणी, शोषण और धारण वा स्तम्भनकारिणी यह शक्तिचतुष्टय विद्यमान होती है, तथापि पचनकारिणी शक्ति इसमें अपेक्षाकृत अधिक होती है।

वक्तव्य—आयुर्वेदके मतसे दोष-धातु और मलोंकी उत्पत्तिका विशद विवरण स्वरचित यूनानी वैद्यकके आधारभूत सिद्धांत (कुल्लियात) पुस्तकके अरकान अरबआ अर्थात् चतुर्दोषोंके वर्णनप्रसंगमें किया गया है। अतएव इसकी पूरी जानकारी हेतु उक्त पुस्तकका अवलोकन करें।

विनाशात्मक और रचनात्मक कार्य अर्थात् परिवर्तन (इस्तिहालात)की न्यूनाधिकता (सम्यक्-असम्यक् परिणति वा पाक)के कारण —स्वास्थ्यका अर्थ यह है कि "क्षय-वृद्धि—इफ़रातो तफ़रीत"के बीच ये परिवर्तन (तग़य्युरात) साम्यावस्था (दरजए एतदाल) पर हों। ज्वरावस्थामें यदि ये परिवर्तन (संश्लेषण और विश्लेषण कार्य) तीव्रतर होते हैं, तो मूर्च्छा और शक्तिहीनता (इस्मेहलाल कुवा)की दशामें मंदतर। अस्तु, चिकित्सकका यह कर्त्तव्य है, कि यदि ये परिवर्तन किसी कारणवश असाधारण रूपसे शिथिल हों तो उन्हें तीव्र करनेका यत्न करे, और यदि तीव्र हों तो उन्हें शिथिल बनानेका भरपूर प्रयत्न करे अर्थात् उन्हें साम्यावस्था पर लानेका यत्न करे।

अब प्रश्न यह है कि वह कौनसे कारण है जिनसे शारीरिक परिवर्तन (इस्तिहालात)में अनावश्यक या अनुचित तीक्ष्णता (अतिपाक) या शिथिलता या मंदता (हीन पाक) हो जाता है।

इसका उत्तर यह है कि इसके कारण अगणित हैं, परन्तु उन सभीको समेटकर इस प्रश्नका संक्षेपमें उत्तर यह दिया जा सकता है कि "ये समस्त कारण शारीरिक परिवर्तन (बदनी-इस्तिहालात) पर प्रभावकारी (मुवस्सर) हो सकते हैं, जो स्वास्थ्य या रोग उत्पन्न करने या उनकी रक्षा करनेमें दखल रखते है। उदाहरणत अनिवार्य पदार्थ षट्क या कारण—षट्क[1] और अनावश्यक पदार्थ—षट्क जिनसे रक्त, रूह (ओज या प्राण), और कायाग्नि, देहाग्नि वा शरीरोष्मा (बदनी हरारत) प्रभावित हुआ करती हैं। इसी वाक्यांशमें वे कारण भी अंतर्भूत हैं, जिनसे संशोधन-कर्त्ता अंगों (आज़ाउन्नफ़ज़)की क्रियाएँ विकृत हो जायँ या वह वातनाड़ियाँ प्रभावित हो जायँ, जो शरीरका पोषण करती हैं।

सुतरा इसी प्रसंगमें वे ओषधियाँ भी समाविष्ट हैं जिनका वर्णन इस समय प्रधान उद्देश्य है।

इस विचारसे समस्त ओषधियोंका तीन वर्गोंमें विभाजित किया जाता है (१) परिवर्तनकी क्रिया (इस्तिहालात)को बढ़ानेवाली, (२) उक्त क्रियाको घटानेवाली, और (३) परिणतिकी क्रियाको स्वस्थान पर—प्रकृतिस्थ या समावस्था पर स्थिर रखनेवाली।

---

१ अनिवार्य पदार्थ-षट्क (असबाब सित्ता ज़रूरिय्या) जिनका जीवनपर्यंत मनुष्य परित्याग नहीं कर सकता, यह हैं—(१) वायु, (२) खाद्य और पेय (माकूल व मशरूब), (३) शारीर चेष्टा-अचेष्टा (हरकत व सुकून बदनी), (४) मानसिक चेष्टाएँ-अचेष्टाएँ (हरकत व सुकून नफ़सानी) जिसमें दुःख, चिन्ता और क्रोध इत्यादि समाविष्ट हैं, (५) निद्रा और जागरण, और (६) संशोधन (इस्तिफराग) एवं अवरोधन वा स्तम्भन (एहतिबास)।

शारीरिक परिणतिकी क्रियाको तीव्र करनेवाली ओषधियाँ—(मुहर्रिकात इस्तिहाला) उक्त ओषधियोको यूनानी चिकित्सक अद्विया हार्रा या मुसख्खिना (उष्ण ओषध) कहा करते है, क्योकि इनके उपयोगसे सम्पूर्ण शरीरमें या शरीरके किसी प्रधान भागमें, उष्णता अभिवर्द्धित हो जाया करती है। इसी विचारसे उष्ण औषधो (अद्विया मुसख्खिना)के ये दो भेद किये जाते है—स्थानिक और सार्वदैहिक।

स्थानीय परिवर्तनोत्तेजक ओषधियाँ (मुकामी मुहर्रिकात इस्तिहाला)

मुकामी मुहर्रिकात इस्तिहालासे स्थानीय रूपसे आहारशोषण (जज़्ब गिज़ाऽ), पाचन एव परिणति और मलोत्सर्जनकी क्रिया तीव्र हो जाया करती है, क्योकि इनसे स्थानीय रूपसे वाहिनियाँ परिविस्तृत हो जाती हैं, रक्त-परिभ्रमणकी क्रिया विवर्द्धित हो जाती है, शरीरावयवोकी धातुओमें पोपणाश पहुँचते हैं और पोपण एव परिवर्तन कारिणी शक्तिकी क्रिया तीव्र हो जाया करती है, जिससे अनिवार्यत स्थानिक शक्ति और ऊष्मा वढ जाया करती है। यही कारण है, कि ऐसी औषधियोको प्राचीन यूनानी चिकित्सक अद्विया हार्रा[1] या मुसख्खिना[2] (उष्ण औषध) कहा करते है।

उक्त वर्णनसे यह प्रगट है कि जो ओषधियाँ स्थानीय रूपसे सक्षोभ (लज़्अ) उत्पन्न करके वाहिनियोको विस्फारित कर देती (मुकामी मुफत्तेहात उरूक) है, वह सारीकी सारी "स्थानीय परिवर्तनोत्तेजक (मुक़ामी मुहर्रिकात इस्तिहाला)" है, जिनके उदाहरण गत पृष्ठोमें दिये जा चुके हैं।

चूँकि ऐसी ओषधियोसे स्थानीय रक्तसवहन तीव्र हो जाता है, शरीर पोपणकी क्रिया बलवती हो जाती है और तत्स्थानीय मल शीघ्रतापूर्वक उत्सर्गित होने लगते हैं, इसलिये जिन व्याधियो और अवस्थाओमें इन चीज़ोकी कमी होती है, वह इन उद्देश्योकी सिद्धिके निमित्त ऐसी ओषधियाँ उपयोग की जाती हैं, और उन्ही अभिप्रायोंके विचारसे इनके विभिन्न नाम रखे जाते हैं —

मुबितात शा'र (रोमसजनन—लोमोत्पादक ओषधियाँ)—वह ओषधियाँ जो त्वगीय रक्तपरिभ्रमणको तीव्र करके और पोपण-क्रियाको वढाकर गिरे हुए वालोंको उगा देती हैं। अडेके तेलकी मालिश और त्वग्रागकारक (मुहम्मिरातजिल्द) ओषधि इसी सिद्धातके अधीनस्थ रोमसजननमें सहायता करते हैं।

मुसम्मिनात (फर्बा बनानेवाली अर्थात् परिबृहण ओषधियाँ)—वह ओषधियाँ जिनके स्थानीय उपयोगसे किसी अगके पोषणकार्यमें वृद्धि हो जाय और उसका दौर्वल्य वा कार्श्य दूर हो जाय, उदाहरणत स्नेहाभ्यग (रोगनोकी मालिश), सक्षोभक और त्वग्रागकारक पतले लेप (अत्लिय्या मुहम्मिरा व लज़्ज़ाआ) इत्यादि।

मुहल्लिलात वरम (शोथविलयन, शोफघ्न)—वह ओषधियाँ जिनके स्थानीय उपयोगसे (तगय्युर व इस्तिहाला अर्थात् परिवर्तन और परिणामान्तर प्राप्तिकी तीव्रताके क्रममें) शोथ एव काठिन्य उत्पादक दोष उक्त स्थानसे स्थानान्तरित हो जायँ और वे प्रशमित हो जायँ, उदाहरणत अलसीके बीजोका मोटा उष्ण प्रदेह जो देर तक उष्ण रहे।

त्वग्गत दाग और धब्बे को दूर करनेके लिए जो ओषधियाँ वाह्य रूपसे उपयोग की जाती हैं उनमेंसे अधिकाश ओषधियाँ इसी किस्मकी होती है, क्योंकि दाग-धब्बो (किलास बरस, व्यग-कलफ, नमश, झाईं—बरश इत्यादि)की उत्पत्ति इसी कारण होती है, कि उक्त स्थानका पोषण और परिपोपण सामग्री विकृत हो जाती है। जब वहाँकी पोषणक्रिया को तीव्र की जाती है, तब उसके परिणामस्वरूप कभी उक्त विकार दूर हो जाता है।

यद्यपि यह भी सभव है कि इन औषधियोसे प्रत्यक्षतया उन विकारी दोषो पर भी असर पडता है, जो उक्त दाग और धब्बोके मूल कारण होते है।

---

१ हार्रा (अ०) = उष्ण।

२ मुसख्खिना (अ०) = उष्णताकारक।

उपर्युक्त विभिन्न प्रयोजनोंके लिए उनकी अपेक्षासे विशेष ओपधियोका गहण होता है। समस्त परिवर्तनोत्तेजक ओपधियां समग्र प्रयोजनो (उद्देश्यो)के निमित्त समान रूपमे निरपेक्ष व्यवहार नही की जाती, क्योकि कतिपय ओपधियां यदि एक ओर परिवर्तनोत्तेजक (तहरीक इस्तिहाला) पैदा करती हैं, तो दूसरी ओर किसी अन्य विचारसे हानिकर होती है अर्थात् कतिपय औपधियां यदि शरीरनिर्माणमें कुछ सहायता करती है, तो उससे अधिक वह विघटनका कारण होती है, उदाहरणत दाहक (अक्काला), व्रणकारक (मुकर्रेहा) और शोथकारक (मुवर्रमा), जैसे—भिलावाँ प्रभृति ओपधियां।

शरीरपरिवृंहण (फर्बही) और रोमसजननमें प्रगट है कि एक सूक्ष्म उत्तेजना आवश्यक है। उक्त अवस्थामें यदि वहां आवश्यकतासे अधिक उत्तेजना पहुँचा दी गई और वहा विस्फोट (आवला) या व्रण (कर्हा) उत्पन्न कर दिया गया, तो वास्तविक उद्देश्य नष्ट हो जायेगा।

चूंकि इस प्रकारकी औपधियोंसे स्थानीय रूपसे वुव्वत हैवानिय्या व तवद्दुय्यामें वृद्धि हो जाती है, इसलिये इनको कभी मुकव्वियात मौज़इय्या भी कहा जाता है।

सार्वदैहिक परिवर्तनोत्तेजक ओपधियाँ (उमूमी मुहर्रिकात इस्तिहाला)—वह ओपधियाँ जो सम्पूर्ण शरीरमें परिवर्तन और परिणतिक्रियाको तीव्र कर देती है, और जिनको मुसख्खिनात आम्मा (सार्वदैहिक उष्णताजनन) कहा जाता है। उनके यह दो भेद हैं —

(१) अप्राकृतिक रूपमे शारीरिक परिवर्तन और परिणतिकी क्रियाको तीव्र करके अनिष्ट एव विकारका हेतुभूत होती हैं। ऐसी ओपधियोंका उपयोग चिकित्सा वा रोगनिवारणके निमित्त नही किया जाता।

(२) मध्यमार्गावलम्बन और ममताके साथ (प्राकृतिक रूपमे) इस प्रकार शरीरके भीतर परिवर्तन और परिणामान्तरकी क्रिया (तगय्युरात व इस्तिहाला)को तीव्र और वलवती करती है कि उससे अवयवोकी शक्ति बढती जाती है, आहारका भली-भांति पाचन होता है, भरपूर क्षुधा लगती है, रक्तकी अवस्था सुधर जाती है, यदि शरीरका भार कम हो तो न्यूनाधिक उसमें वृद्धि हो जाती है। ऐसी जीवनोपयोगी या जीवनप्रद या जीवनीय (मुनासिवे हयात) ओपधियोको मुकव्वियात आम्मा (सार्वदैहिक वल्य) कहा जाता है।

पुन जिन वल्य ओपधियो (मुकव्वियात)मे अन्नकी रुचि वढ जाती है—क्षुधाकी वृद्धि होती है और भरपूर पाचन होता है, उन्हें मुकव्वियात मेदिय्या कहा जाता है। जिनसे रक्तकी हालत प्रशस्ततर हो जाती है तथा उसमें रक्तवर्णताकी वृद्धि होती है, उन्हें मुकव्वियात दम (रक्तवर्धक) कहा जाता है और जिन वल्य औपधियोंसे वातविकारोंका निवारण हो जाता है, उन्हें मुकव्वियात आसाव (नाडीवलदायक) कहा जाता है। इसी प्रकार मुकव्वियात करवसे हृदयके कर्म, मुकव्वियात जिगरसे यकृतके कर्म, मुकव्वियात दिमागसे मस्तिष्कके कर्म सुव्यवस्थित एव दुरुस्त हो जाते है। इसी पर अन्यान्य अवयवोकी वलप्रदायिनी औपधियो (मुकव्वियात)को भी अनुमान किया जा सकता है—उदाहरणत मुकव्वियात गुर्दा, मुकव्वियात रहिम इत्यादि।

वल्य औपधियो (मुकव्वियात)के वैद्यकीय उपयोगोंकी कार्यकारणमीमासा या उपपत्ति (नौइय्यतेअमल) क्या है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि कतिपय अन्यान्य कर्मोकी भांति वल्य औपधोंकी कार्यकारणमीमासा भी वहुत करके सदिग्ध और अस्पष्ट है।

कतिपय व्यक्तियोंने इनके कार्यकारणभावको किसी सीमा तक निरीक्षण करनेका इस प्रकार यत्न किया है कि "ऐसी औपधियां जव उपयोग की जाती हैं और इनके घटक परिवर्तन और परिणामान्तर प्राप्तिके क्रममें अवयवोंकी मूल धातुओं और द्रवोके साथ मिश्रीभूत हो जाते हैं, तव इनके औपधीय घटकोसे वहाँ प्राणौज (रूह हैवानी)की सहायतासे कुछ ऐसे प्रभावकारी (मुवस्सिर) पदार्थोकी उत्पत्ति हो जाती है जो शरीरके किसी अवयवसे जव गुजरते हैं तव उन अगोके प्रकृतिनियत व्यापारका सुधार कर देते हैं। ऐसे पदार्थ शरीरके भीतर अनिश्चित नहीं रहा करते हैं, प्रत्युत सतत शरीरके मलोंके साथ उत्सर्गित हो जाया करते है।

परन्तु सत्य यह है, कि बलवर्धन (तकवियत)की सूरतोंमेंसे यह केवल एक सूरत वर्णन की गयी है, वरन् यदि गभीर दृष्टि डाली जाय तो बल्य औषधोके कर्मकी सभव सूरत और भी निकल सकती हैं।[1]

सार्वदैहिक बल्य औषधियो (मुकव्वियात आम्मा)के कतिपय उदाहरण यहां उद्धृत किये जाते हैं —यथा लोहे (फौलाद) और उसके योग, पारद और उसके योग, मल्ल और उसके योग।[2]

शारीरिक परिणामान्तर प्राप्ति (इस्तिहाला)को शिथिल करनेवाली औषधियाँ—(मुज्इफात इस्तिहाला–परिवर्तनावसादक)को यूनानी चिकित्साचार्य अदविया बारिदा (शीतल औषधियाँ) और मुबर्रिदात (शीतजनक औषधियाँ) कहा करते हैं, क्योकि इन औषधियोके उपयोगसे स्थानीय या सार्वदैहिक उत्तापकी उत्पत्ति घट जाती है। ऐसी औषधियोकी उपपत्ति (नौइय्यते अमल) उन औषधियोकी उपपत्तिके सर्वथा विपरीत है, जो परिवर्तनोत्तेजक (मुहर्रिकात इस्तिहाला) कहलाती हैं।

मुहर्रिकात इस्तिहालाकी भाँति ऐसी औषधियोके भी ये दो भेद हैं—स्थानीय और सार्वदैहिक।

स्थानीय परिवर्तनावसादक औषधियाँ (मुकामी मुज्इफात इस्तिहाला)—मुकामी मुज्इफात इस्तिहालासे स्थानीय रूपसे आहारका चूषण (गिज़ाऽका जज्ब), पाचन और मलविसर्जन वा मलत्याग (दफ़ा फुज़लात) शिथिल हो जाते हैं, क्योंकि ऐसी वस्तुओंसे वाहिनियाँ (रगें) सकुचित हो जाती हैं, शोणितका गमनागमन कम हो जाता है और अवयवोकी धातुओमें पोषणाश (अज्ज़ाऽगिज़ाइय्या) अल्प मात्रामें पहुँचते हैं।

जिस प्रकार परिवर्तनोत्तेजक (मुहर्रिकात इस्तिहाला)में यह निरूपण किया गया है कि जो औषधियाँ स्थानीय रूपेण वाहिनियोको विस्फारित करती हैं, वह सारीकी सारी "परिवर्तनोत्तेजक (मुहर्रिकात इस्तिहाला)" हैं, उसी प्रकार यहाँ भी अनुमान करना चाहिये कि जो औषधियाँ स्थानीय रूपेण वाहिनियोको सकुचित करती हैं, वे निःसन्देह "मुज्इफात इस्तिहाला" हैं। ऐसी वस्तुओंके उदाहरण गत पृष्ठोमें दिये जा चुके हैं, जिनको वाहिनीसकोचक या ग्राहक (काबिज़ात ऊरूक) और रक्तस्तभक (हाबिसात खून) कहा जाता है, उदाहरणत किसी प्रकार शीत पहुँचाना।

सार्वदैहिक परिवर्तनावसादक औषधियाँ (उमूमी मुज्इफात इस्तिहाला)—उमूमी मुज्इफात इस्तिहाला उन औषधियोको कहते है, जो रक्तमें शोषित होनेके उपरात रक्तके घटको और शरीरके दोषोमें कुछ इस प्रकारके परिवर्तन उत्पन्न करती हैं, कि प्राणौज (रूह हैवानी)की क्रिया शिथिल हो जाती है, जो शारीरिक परिवर्तन (इस्तिहालात)का महान साधन है। इन परिवर्तनोकी उपपत्ति (नौइय्यत) क्या है ? इस विषयमें यद्यपि कई अनुमान स्थिर किये जाते हैं, किंतु सत्य यह है कि ये अतीव सदिग्ध एव अस्पष्ट हैं।

जो औषधद्रव्य शारीरिक उत्तापको कम करनेके लिए ज्वरावस्थामें आतरिक रूपसे खिलाए जाते है, वह सब परिवर्तनावसादक (मुज्इफ इस्तिहाला) हैं, चाहे ये रक्तके घटकोमें परिवर्तन करके कार्य करें या वातनाडियो या उनके केन्द्रों पर असर करके।

शरीरके अन्यान्य अप्रगट (गुप्त) परिवर्तन—उपर्युक्त औषधियोके अतिरिक्त औषधियोका एक बहुत बडा गण (जमाअत) शेष है, जो शारीरिक द्रवो और अगोकी धातुओंमें कुछ इस प्रकारके गुप्त परिवर्तन पैदा करती हैं,

---

१ उदाहरणत यह बात भी सभव है, कि इन बल्य औषधियोंका प्रभाव शोषणोत्तर उन दोषों (मवाद्) पर पड़े जो अवयवोंके भीतर सन्निविष्ट हों और जिनके कारण उनके कर्म शिथिल हो गये हों। यह औषधीय घटक उन रोगोत्पादक दोषोंको तोड-फोड़ दें या ऐसे रूपमें परिणत कर दें कि यदि प्रथम उनका उत्सर्ग दुस्तर था तो अब यह बात सरल हो जाय।

२ किसी-किसीने सार्वदैहिक बल्य (मुकव्वियात आम्मा)के उदाहरणोंमें जलकी भी गणना की है, जिस पर हमारे बहुश यूनानी हकीम आश्चर्यचकित होंगे। किंतु यह एक सिद्ध सत्य है कि क्लेद (रतूबत)की उपस्थिति "परिवर्तन और परिणामान्तर प्राप्ति—तगय्युर व इस्तिहाला"में परम सहायक होती है।

जिनके अतस्तल तक मानवी बुद्धि अब तक नही पहुँच सकी और जिनकी असली हकीकत एक अज्ञेय रहस्य बनी हुई है। यद्यपि अनुभव अहर्निशि उनकी सत्यता प्रमाणित करता रहता है और प्रत्येक चिकित्सकके उपयोगमें रोगके प्रतीकारार्थ नित्यप्रति आती रहती हैं।

ऐसी औषधियाँ जब रक्त और शारीरिक द्रवोमें प्रविष्ट हो जाती हैं, तब यद्यपि किसी अगमें इनसे कोई प्रगट परिवर्तन नही होता, किंतु वह रुग्णावस्था दूर हो जाती है जिसके प्रतीकारके लिए वह उपयोग की जाती हैं। ऐसी औषधियोंको मजमूई (सामूहिक) तौर पर मुअद्दिलात[1] (या मुबद्दिलात अथवा मुनव्विअ) कहा जाता है, जिनके अतर्भूत अनेक शीर्षक हैं। यथा—

रक्तप्रसादक (मुसफ्फ़ियाते खून)—जो औषधियाँ रक्तके मलोको मलमूत्र मार्गसे या स्वेद इत्यादिके रूपमें उत्सर्गित किया करती हैं, प्रगट है कि इन साधनोंसे भी रक्तकी शुद्धि एव प्रसादन (तसफिया) और शोधन (तन्कीह) होता रहता है, इस विचारसे वह भी रक्तशोधक या रक्तप्रसादन (मुसफ्फी खून) है। किंतु कभी-कभी रक्तमें इस प्रकारका दोष उत्पन्न हो जाता है, कि इन साधनोमे उक्त दोष निवृत्त नही होता, परतु कुछ औषधियाँ ऐसी है जो आतरिक रूपसे ऐसे परिवर्तन उत्पन्न करती हैं कि रक्तस्थ ये अश अज्ञात रूपसे उत्सर्गित हो जाते और इनका असर नष्ट ही जाता है। उदाहरणत पारद और मल्लके योग इत्यादि[2]। शोणितस्थापन।

इसके उपरात "औषध-सूची" प्रकरणके अतर्भूत मुसफ्फ़ियातकी वृहत् सूची आने वाली है, जिसमें अभेद-रूपेण हर प्रकारकी मुसफ्फ़ियात उल्लिखित हैं।

उनमेंसे कतिपय अन्त्रकी क्रियाको तीव्र करके रक्तका शोधन करती हैं।

कतिपय वृक्कोंकी क्रियाको तीव्र करके रक्तप्रसाद (तसफिया खून)का साधन बनती है। कतिपय त्वचाकी क्रियाको तीव्र करके स्वेदके रूपमें दूषित अशको उत्सर्गित करती हैं।

कतिपय अज्ञात रूपसे दुष्ट दोष पर असर करके या परिणति (इस्तिहाला)को तीव्र करके उन्हें उत्सर्ग योग्य बना देती हैं।

मुन्ज़िजात—मुअद्दिलात वर्गमेंसे एक बहुत बडा गण उन औषधियोका है जो मुन्ज़िजात[3] कहलाती हैं, जिनके कर्मकी उपपत्तिकी विधि (नौइय्यते अमलके अहकाम) मुसफ्फियातखूनके सदृश है।

प्राचीन यूनानी वैद्य मुन्ज़िजात उन औषधियोको कहते हैं, जो शारीरिक दोषों (अख्लात) और शरीराव-यवोंकी धातुओंमें इस प्रकारके परिवर्तन पैदा करते हैं जिनसे रोगोत्पादक दोष सरलतापूर्वक उत्सर्गित होनेके लिए और अवयवोकी उत्सर्गकारिणी शक्ति (कुव्वत दाफ़ेआ) उन्हें उत्सर्गित करनेके लिए तत्पर या उद्यत हो जाती है। रोगभूत दोषके सरलतापूर्वक उत्सर्गित होनेमें यदि उनके किवाम (चाशनी)का प्रगाढ़त्व बाधक है, तो यहाँ ऐसी मुन्ज़िज औषधियाँ चुनी जाती है जो उनको द्रवीभूत (रकीक) करती हैं। यदि उनके किवाममें इतनी तरलता (रिक्क़त) है कि जब तक वह प्रगाढ़ीभूत (गलीज) न हो उनका शरीरसे उत्सर्गित होना सहज नही तो ऐसी मुन्ज़िज

---

१ इस प्रकारकी औषधियाँ सभवत आहार विषयक वातकेन्द्रों पर अपना प्रभाव करके परिवर्तनकारिणी शक्ति (कुव्वत मुग़य्यिरा)को शक्ति प्रदान करती हैं।

२ (१) रक्तसशोधक (प्रसादन)—मुसफ्फी खून।
(२) रक्तस्तभन (हाबिसदम-कातिउन्नजीफ)।
(३) रक्तवर्धक (मुवल्लिद खून)।

३ मुन्ज़िजात = पकानेवाली (दोषपाचन)। उत्सर्गयोग्य बनानेवाली अर्थात् वह द्रव्य जो दोषको प्रकृ-तिस्थ (मो'तदिलुल्किवाम) करके उत्सर्ग योग्य कर दे।

ओषधियाँ उपयोग की जाती हैं, जो उनके वर्तमान द्रव किवामको सान्द्र बनानेमें सहायता करें। इसी तरह कभी-कभी रोगजनक दोष (मवाद्‌मर्ज)में अत्यधिक लेस होता है जिससे वे अगोके साथ अत्यधिक आश्लिष्ट (चस्पाँ—चिपके) होते है, उक्त अवस्थामें यह प्रगट है कि जब तक उनका श्लेष (लजूजत) कम न हो अर्थात् दोषका छेदन (तक्तीअ माद्दा) न हो, उनका निर्हरण दुस्तर है। तात्पय यह कि मुञ्जिजातसे शारीरिक द्रवोमें जो परिवर्तन उपस्थित होते हैं उनके फलस्वरूप कभी दोष (माद्दा) तरलतर (रकीकतर) हो जाता है, कभी प्रगाढतर और कभी उनका श्लेष (लजूजत) कम या मिथ्या (बातिल) हो जाता है। निरीक्षणोसे यह सिद्ध है कि अधिकतर व्याधिमूलक दोष त्वचा वा श्लैष्मिक कलाकी राह न्यूनाधिक कालके उपरात उत्सर्गित हुआ करते हैं, इससे पूर्व वे उत्सर्गित नही होते, जिससे हम समझते हैं कि प्रकृति (तबीअत मुदब्बिर बदन) उक्त अवधिमें दोषको पकाने (उनमें परिवर्तन—इस्तिहालात व तगय्युरात उत्पन्न करने का) यत्न करती रहती है, जिसमें वह सरलतापूर्वक उत्सर्ग योग्य हो जाय और उत्सर्गकारिणी शक्ति (कुव्वत दाफेआ)को दोषोत्सर्गके लिए तैयार करती रहती है। जो ओषधियाँ प्रकृतिके उक्त कार्यमें सहायक सिद्ध होती हैं, उन्हें परिभाषानुसार मुञ्जिजात कहा जाता है। सुतरा बहुसख्यक व्याधियोमें प्रधानतया चिरकालानुबधी रोगोंमें, यह एक पुरातन सिद्धात है कि सशोधन (तनकीह व इस्तिफराग)से पूर्व कुछ दिनो पर्यंत दोषपरिपाककारी (मुञ्जिज) ओषधियाँ पिलाई जाती हैं। मुञ्जिजातकी सूची 'औषध सूची''में अवलोकन करें।

रसायन (अक्सीर-बदन) इन्ही मुअद्दिलातमेंसे वह ओषधियाँ जो अप्रगट वा अज्ञात रूपसे उत्तमागो—आज़ाए रईसा (हृदय, मस्तिष्क और यकृत्) इत्यादिकी क्रियाओको प्रकृतिस्थ वा दुरुस्त करके और दोषो (अख्लात) एव शरीरावयवोकी दशाको प्रशस्तर बना कर पूर्वकालीन दौर्बल्य एव व्याधियोको निवारण कर देती और स्वास्थ्य एव शक्तिमें चमत्कृत रूपसे अभूतपूर्व वृद्धि करके शरीरकी काया पलट देती हैं, उन्हें अक्सीरुल् बदन और कीमियाए हयात कहा जाता है। आयुर्वेदकी परिभाषाके अनुसार इसे रसायन कह सकते हैं।

इसके पश्चात् पूछा जा सकता है कि, क्या ऐसी ओषधियाँ विश्वमें पाई जाती हैं जिनसे ऐसे अद्भूत चमत्कृत कर्म प्रकाशित हो या यह केवल कथनोक्ति मात्र हैं? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि समय-समय पर ऐसे साक्ष्य मिलते रहते हैं कि कतिपय औषधोके निरतर सेवनसे कतिपय प्रकृतियोमें शरीरके श्वेत लोम जिनमें श्वेतता (सफेदी), वार्द्धक्य वा जराजन्य हो गई थी, कृष्णवर्णके हो गये अर्थात् पलितका नाश हो गया और स्वास्थ्य तथा शक्ति वा बलमें आश्चर्यजनक उन्नति हो गई।

जब ऐसे निरीक्षण नेत्रके सम्मुख आते रहते हैं, तब इन रसायन औषधो (अक्सीरी अदविया)के अस्तित्वसे इनकार करनेका कोई कारण नही।

इस प्रकारके योगोकी व्याख्याका यह अवसर नही, इस उद्देश्यके लिए करावादीनका अध्ययन करना चाहिये, परतु बहुताशमें यह सत्य है कि ऐसे योगोके गुणवर्णनमें नियमोकी सीमा वा प्रतिबध (शास्त्रमर्यादा)का विचार बहुत कम किया गया है और अतिशयोक्तिसे अत्यधिक काम लिया गया है। ऐसे परिणामो और निष्कर्षोंका अनुपात बहुत सीमित और अत्यल्प है।

यह भी एक विलक्षण सत्य है कि इस प्रकारके चमत्कारिक रसायन योगोमें (प्रायश) प्रधान उपादान कोई वीर्यवान् और विषैली ओषधि हुआ करती है, उदाहरणत कुचला, भिलावाँ, सखिया इत्यादि।

कुचलेकी एक प्रख्यात माजून (माजून लना) है जिसका हकीम शरीफ खाँ महाशयने इलाजुल अमराजमें अक्सीरुल्बदनके नामसे उल्लेख किया है और इसके कतिपय गुणो और कतिपय उपादानोको सकेत और रहस्यमयी भाषामें लिखकर घोषित किया है 'मन् फहमुर्रुमूज मलिकुल् कुनूज अर्थात् जो इन रहस्योको समझ लेगा वह धनकुबेर हो जायेगा और यह कि इससे पुनर्यौवनकी प्राप्ति होती है।''

इस योगमें प्रधान उपादान कुचला (हब्बुल्गुराब = कागफल) है। इसमें कोई सदेह नही कि यह एक उत्कृष्ट माजून है और यूनानी वैद्य वातनाडियोकी निर्बलतामें इसका बहुत उपयोग करते हैं। परतु इसकी गुण-प्रशसामें नि सदेह बहुत ही अतिशयोक्तिसे काम लिया गया है। (कुल्लियात अदविया)।

विषोंके अगद (तिरयाकाते सुमूम)—यह उचित प्रतीत होता है कि "शारीरिक परिवर्तनो (वदनी इस्ति-हालात) पर असर करनेवाली ओषधियोंके साथ तिरियाक वा अगद (प्रतिविष—फादजहर)का भी उल्लेख किया जाय।

तिरियाक़ात (अगद)से क्या विवक्षित है ? तिरियाकातसे वे विशिष्ट ओषधियाँ अभिप्रेत है, जो विशेष विष-द्रव्यके साथ मिलकर उनके विघातक कर्मको प्रभावहीन कर देती है, चाहे यह प्राकृतिक हो अथवा कृतिम रूपसे प्रस्तुत की गई हो।

तिरियाक़ात या अगदौषध विषद्रव्योंसे मिलकर उनके कर्मको किस प्रकार प्रभावहीन करते हैं ? इस प्रश्नका उत्तर यह है, कि तिरियाकजन्य कर्मोंकी उपपत्ति (नौइय्यते अम्ल) देना यद्यपि सरल नही, किंतु सक्षेपमें यह कहा जा सकता है, जो अनेक अवसरो पर यथार्थ उतर सकता है, कि अगदौषधके शरीर और रक्तमें शोषित होनेके उपरांत जब विष-द्रव्योंके साथ मिलते है तब वह विष-द्रव्य (सम्मी मवाद्) अपने पूर्व सगठन और स्वरूप (तरकीब व नौइय्यत) पर शेष नही रहते। अस्तु, उनके पूर्व गुण-कर्म (प्राणनाश और शरीरविकार) भी परिवर्तित हो जाते है।

मैं इसको एक उदाहरणसे समझाना चाहता हूँ। मुल्ला नफ़ीस और अन्यान्य प्राचीन यूनानी चिकित्सकोंने लिखा है कि अम्लत्व (हुमूज़त-तुर्शी)को क्षारत्व (योरकिय्यत-शोरिय्यत)से प्रवल शत्रुता है। यह एक दूसरेके शत्रु है। जब ये उभय एक स्थानमें एकत्रित होते है, तब परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया और विघट्टन उपस्थित होता है। प्रत्येक दूसरेकी तीक्ष्णता और तीव्रता तोड़ना चाहते है। यहाँ तक कि जब यह क्रिया-प्रतिक्रिया और प्राकृतिक सग्राम किसी सीमा पर पहुँचकर समाप्त होता है, तब न अम्ल द्रव्यकी पूर्वकालिक अम्लता शेष रहती है और न क्षार-द्रव्यकी क्षारीयता। किन्तु यदि उभय मात्रा और गुण (कम व कैफ़)के विचारसे परस्पर समतोल न हो, प्रत्युत एक प्रधान और दूसरा पराभूत हो, तो उक्त सग्रामके उपरात योग समुदायमें प्रधान उपादानका स्वाद किसी सीमा तक शेष रहेगा—वह किसी भाँति अम्ल होगा या क्षारीय।

इसी सिद्धात पर विषघ्न या आगदिक द्रव्य (तिरियाकी मवाद्) और विषद्रव्य (सम्मी मवाद्)को अनुमान किया जाय।

यह मान लिया जाय कि एक विष द्रव्य (सम्मी माद्दा) अम्ल है और उसके मुकाबिलेमें कोई क्षारौषधि अगद-रूपसे पहुँचाई गई। जब यह उभय द्रव्य आमाशय, अन्त्र या वाहिनियोमें परस्पर मिलेंगे तब अम्ल विष-द्रव्य उस क्षारीय अगद-द्रव्यके साथ मिलकर अपने पूर्वकालिक सघटनकारक उपादानो (तरकीबी अज्ज़ाऽ) पर स्थित न रहेगा, इसलिये उसके गुणधर्म (खवास) भी परिवर्तित हो जायंगे।

इसी प्रकार अन्यान्य विषोंके लिए चाहे वे अम्ल एव क्षारीय हो, कुछ विशेष आगदिक द्रव्य होते हैं, जो परस्पर सघटित होने (तरकीब पाने)की विशेष क्षमता (मुख़्सी इस्त'दाद) रखते है। विशेष क्षमतासे यह अभिप्रेत है, कि यह आवश्यक नही है कि एक ओषधि यदि एक विषका परम उपादेय अगद है तो वही ओषधि अन्य विषोंके लिए भी यही आगदिक वा विषघ्न कर्म करे।

जिस प्रकार यह अनिवार्य नही है कि जो ओषधि उदरके केंचुओ (हय्यात अम्आऽ)को नष्ट करती है, वही ओषधि कद्दूदानों (क़र्अयात अम्आऽ)को भी नष्ट कर डाले। यद्यपि यह सभव है कि अनुभवसे यह सिद्ध हो जाय कि एक ही ओषधिसे उदरके समस्त कृमि नष्ट हो जाते है, परतु अनुमानत यह नही कहा जा सकता कि प्रत्येक कृमिघ्न ओषधिके लिए ऐसा होना अनिवार्य है।

इसी प्रकार इसकी भी कोई उपपत्ति नही दी जा सकती कि सर्पविष मनुष्यके लिए प्राणनाशक क्यो है ? इसी उदाहरण पर अन्यान्य खनिज, वानस्पतिक और प्राणिज विषोको अनुमित किया जा सकता है।

कुचलेका जो प्रभाव श्वान पर होता है, और सखियाका चूहे पर, यह आवश्यक नही कि सारे जानवरोपर यही असर प्रगट हो । इसी कारण कुचलाको अरबीमे खानिकुल्कल्व (कुत्तेका गला घोटदेनेवाला) और सखियाको सम्मुल्फ़ार (मूपकविप) कहा जाता है । बिल्कुल यही दशा अगदों (तिरियाकात) और प्रतिविषो (फ़ादजहर)का है, जो विशेष विपोके विरुद्ध कार्य किया करते हैं ।

यह वर्णन वास्तविक अगदौषधो (हकीकी तिरियाकात)का है, वरन् कभी भूलसे ऐसी वस्तुओको भी अगद कह दिया जाता है जो यद्यपि प्रत्यक्षरूपसे विपोके साथ मिलकर उनको हीनवीर्य नही बना सकती, परतु वह किसी अन्य प्रकारसे विपके कार्यमें बाधक हो जाती हैं, उदाहरणत सखियासेवनके उपरात घृत पिला दिया जाता है जिससे सखियाके विलीनीभवन (इन्हिलाल) और शोपण (इन्जिज़ाब)में बाधा उत्पन्न हो जाती है । इसी विचारसे लक्ष्यार्थ-रूपसे (मजाज़न्) घृतमें अगदगुण (तिरियाकिय्यत) स्वीकार किया जाता है, परतु यही घी अहिफेन भक्षणोत्तर यदि पी लिया जाय तो वह अहिफेनके विप-प्रभाव और उसके विलीनीभवन और शोपणमे परम सहायक सिद्ध होता है ।

रोगजनक दोष (मवाद्द अमराज) पर औषधका कर्म—चूँकि प्राय व्याधिमूलक दोप जातिभेदसे एक दूसरेसे भिन्न होते हैं, अर्थात् उनके उपादान (अज्ज़ाऽ तरकीबिय्या) समवायोत्तर गुणातर अर्थात् प्रकृति (कैफिय्यत इम्तिज़ाजिया) और गुणधर्म (खवास)मे एक दूसरेमे भिन्न होते हैं, इसलिये उनको विशेप रामबाण वा अव्यर्थ औपधियाँ भी विप और अगदके सिद्धातानुसार पृथक्-पृथक् होती हैं, जिसका ज्ञान केवल अनुभवकी सहायतासे प्राप्त हुआ करता है । इसमें किसी वैद्यकीय अनुमानको दखल नही है ।

उदाहरणत गधक यदि कच्छू (जर्ब) उत्पादक दोपको नष्ट करती है, तो यह आवश्यक नही है कि इसका उक्त प्रभाव फिरगोत्पादक दोप पर भी हो ।

सखिया यदि फसली बुखार (हुम्मयात अजामिया)में अव्यर्थ या अमोघ औपधि है तो यह आवश्यक नही कि इससे मोतीझरा दूर हो जाया करता है ।

सूरजान यदि आमवातके दोष (माद्दा) पर अमोघ प्रभाव रखता है, तो यह आवश्यक नही कि वह कुष्ठमें भी लाभकारी हो ।

हाँ, यह अवश्यमेव सभव है कि एक ही औपधि दो या अधिक व्याधियोमे (न्यूनाधिक) असर रखती हो, जिसका निश्चय वा सदेहरहित ज्ञान केवल अनुभवसे हुआ करता है, बुद्धि और अनुमानसे उसका कोई सबध नही ।

चूँकि प्राय व्याधिजनक दोप (मवाद्द अमराज) जातिभेद और सगठन (नौइय्यत और तरकीब)के विचारसे, बहुत हद तक अधकारमें हैं, इसलिये उन औषधियोके कर्मोंकी उपपत्ति (नौइय्यते तासीर) भी अस्पष्ट, सदिग्ध और अधतमसाच्छन्न है, जो व्याधिमूलक दोप पर प्रभावकर होते हैं ।

अन्य शब्दोमें व्याधिकारक दोप यदि शरीरके लिए विपका प्रभाव रखते हैं तो यह औपधियाँ भी दोपके मुकाबिले अगद (तिरियाक)का प्रभाव रखती हैं । जिस प्रकार विप और अगदके कर्मोंकी उपपत्ति बुद्धि और अनुमानकी सीमासे बाहर है, इसी तरह इन औषधियोके विपयमें भी केवल इतना कहा जा सकता है कि यह अमुक दोपको अपने कर्मकी विशेपता (खुसूसिय्यते तासीर)मे नष्ट कर देती हैं । व्याधि-चिकित्सामें विशिष्ट अमोघौपधोंके अतिरिक्त विविध उद्देश्योके लिए अन्यान्य आनुपगिक (मुआविन) उपचार भी किये जाते हैं, उदाहरणत विपम ज्वर (हुम्मयात अजामिया) और प्रायश ज्वरोंमें अन्त्रशुद्धिके निमित्त आन्त्रमृदुकर (मुलय्यिनात अम्आऽ) और विरेचन औपध तथा ज्वरको हलका करनेके लिए स्वेदल (मुअर्रिकात), मूत्रल (मुदिर्रात) और शीतजनक (मुबर्रिदात) इत्यादि औपधियाँ उपयोग की जाती हैं ।

बल्कि बहुसख्यक व्याधियोमें, जिनका स्वरूप और सप्राप्ति (माहिय्यत व नौइय्यत) मानवी बुद्धिमें नही आ सकी है, या यदि रोगका वास्तविक रूप एव सप्राप्ति (माहिय्यते मर्ज) ज्ञात हो चुकी है, किंतु उसके लिए अधुना कोई अमोघ औपधि हाथ

नही आई है, तो पूर्णतया हमारा उपचार-क्रम उसी प्रकारके साधनोके अतर्भूत हुआ करता है, जो केवल उपद्रवके प्रशम (तखफीफ अवारिज) और प्रकृतिकी सहायता (इम्दाद तबीअत)का साधन हुआ करते हैं । उदाहरणत , यक्ष्मामें हम जो उपाय काममें लाते हैं, बहुधा उनसे शारीरिक शक्ति और पोषणमें वृद्धि लक्षित हुआ करती है, क्योंकि हमें इसके लिए कोई अव्यर्थ औषधि ज्ञात नही है । कैंसर या कर्कट (सर्तान) जैसी दूषित व्याधिकी सम्प्राप्ति (माहिय्यत मर्जिय्या) बहुत हद तक मानवी ज्ञानमे आ चुकी है, किंतु चूंकि इसके लिए अब तक कोई अमोघ औषधि प्राप्त नही हुई है, इस लिये हम अधिकतया वेदनास्थापनके लिए उपयोग किया करते हैं ।

मानेआत नौबत (पर्याय निवारक)—यह औषधियाँ जो पर्यायजन्य व्याधियो—बारीके रोगो (अमराज बाइवा)के विशेष दोष पर असर करके बारीको रोक दिया करती है, उदाहरणत ऋतुज्वरो (हुम्मयात अजामिया)के लिये संखिया, अतीस, करजुवा और नूतन ओषधियोंमेंसे प्रसिद्ध औषधि कुनैन (बरकीन) है, जो एक वृक्षकी छाल (वर्क)से सत्वके रूपमें प्राप्त की जाती है ।

इसी तरह कभी इस उद्देश्यके लिए रसवत, फिटकरी और दारुहलदी उपयोग किये जाते हैं ।

प्रवाहिका वा पेचिस—ऋतुज्वरके कारण बहुधा पेचिस हो जाया करती है । उसमें कभी तिक्त इन्द्रजौसे बहुत उपकार होता है । इसी प्रकार दही और दहीका पानी (दधिमस्तु) भी पेचिसके लिए प्रधान वस्तु है । यकृत वृद्धि, शोथ और चिरकारी ऋतुज्वरके लिए अफसतीनरूमी एक प्रधान वस्तु है ।

आमाशयान्त्र शोथ (औराम अहशाउ)के लिए हरी कासनीकी पत्तीका फाडा हुआ रस और हरे मकोयकी पत्तीका फाडा हुआ रस विचित्रगुणकर्मविशिष्ट ओषध हैं । उभय स्वरसोंके समुदाय को मुरव्वकैन कहा जाता है ।

पाण्डु (यर्कान)के लिए हरी मूलीकी पत्तीका रस प्रधान और उपादेय है । आमवातके लिए सूरजान और कुचला बहुत उपादेय है । यहाँ पर उदाहरणस्वरूप तद्रोगनिवारक ओषधियोसहित कतिपय व्याधियोका उल्लेख किया गया है ।

कोथप्रतिबंधक (मानेआत उफूनत)—उफूनत (प्रकोथ = सडना गलना) और तखमीर (अभिषवण) उभय चूंकि एक प्रकारके परिवर्तन (इस्तिहालात) हैं, जो बिना किसी अगविशेषका विचार किये शरीरके प्रत्येक अगमें उपस्थित हो सकते हैं, इसलिये मानेआत उफूनतका किसी अग विशेषके अतर्गत उल्लेख करनेकी अपेक्षया इस अवसर पर उल्लेख करना अधिक समीचीन है ।

उफूनत (प्रकोथ) और तखम्मुर (खमीरण) उभय कर्म एक दूसरेसे बहुत समीप है । अन्य शब्दोंमें उभय परिवर्तन (तगय्युरात व इस्तिहालात)के वैद्यकीय उपयोगोकी उपपत्ति वा कार्यकारणमीमासा (नौइय्यते अमल) समान है । अतएव प्राचीन यूनानी चिकित्साचार्योंने प्राय स्थलो पर केवल तअफ्फुन (प्रकोथ)का उल्लेख किया है ।

तअफ्फुन (प्रकोथ) और तखम्मुर (अभिषव)में परिवर्तनोकी गति अपेक्षाकृत मद होती है और उसके मुकाबिलेमें इहतराक़ (ज्वलन = जल जाना) है, जिसमें परिवर्तनोकी गति तीव्र होती है ।

जिस तरह बहिर् दोष और द्रवोमें प्रकोथ और खमीरण हुआ करता है, उसी तरह शारीरिक दोषो और द्रवोंमें भी यह परिवर्तन उपस्थित हुआ करते हैं ।

यह प्रकोथ (तअफ्फुन) कभी सीमित और कभी स्थानीय होता है । उदाहरणत व्रण (कर्हा)के रूपमें, और कभी सामान्य और सपूर्ण शरीरमें, जैसे रक्तका प्रकुथित (मुतअफ्फन) हो जाना, जिससे (तपे मुतबका)की सूरत पैदा हो जाती है ।

मानेआत उफूनत (कोथप्रतिबंधक) उन द्रव्यो को कहते हैं, जो प्रकोथकी क्रियाको अवरुद्ध कर देते हैं अर्थात् प्रकोथोत्पादक दोष (माद्दा) को नष्ट कर देते हैं—उदाहरणत कपूर, दारचिकना, तूतिता, नीम इत्यादि ।

परतु कतिपय द्रव्य ऐसे भी हैं जो उस दुर्गंधको दूर कर देते हैं जो प्रकोथकी क्रियासे उत्पन्न हो जाती है, चाहे यह प्रकोथ (उफूनत)की मूल सामग्रीको नष्ट करें या नही । ऐसे द्रव्योको उनसे पृथक समझने अर्थात् पहिचानने-

के लिए दाफेआत नत्न अर्थात् दुर्गंधिनाशक वा दौर्गन्ध्यहर (नत्न = दुर्गंधि) कहा जाता है। प्राय मानेआत उफूनत (कोथप्रतिबंधक) दाफेआत नत्न (दुर्गंधिनाशक) हैं। शुष्क कोयलेसे भी दुर्गंधिका निवारण हो जाता है। कटुतैल (सर्षप तैल) वसायँध और दुर्गंधिको बहुत शीघ्र दूर कर देता है।

कोथप्रतिबंधक औषधियाँ पाक और परिणामकी क्रिया समाप्त होने और रक्तमें शोषित होनेके उपरात आया उनकी शक्ति इतनी शेष रहती है कि वह आतरिक द्रवोंके प्रकोथको दूर कर सके? यह सदेहका स्थान है, यद्यपि इस अभिप्राय के लिए ये उपयोग की जाती हैं। सदेहका कारण यह है, कि कोथप्रतिबंधक औषधियाँ सामान्यतया विषैली है, जो आवयविक धातुओको भी नष्ट कर देती है, इसलिये इन्हें अत्यल्प मात्रामें भीतर प्रवेशित किया जाता है।

मुतअफ्फन कर्हा (प्रकुथित वा दूषित व्रण)—ऐसे प्रकोथयुक्त व्रणोंमे प्राचीन यूनानी वैद्योका उपचारक्रम यह है, कि कपूर जैसी कोथबंधक औषधियोंके साथ ऐसे द्रव्य भी योजित कर दिया करते हैं, जिनसे व्रणस्थ क्लेदमें कमी आए। द्रव वा क्लेद (रतूबत)को कम करनेवाली औषधियाँ मुजफ्फिफात (उपशोषण—रूक्षण) कहलाती हैं, और इस क्रियाको तजफीफ (क्लेदशोषण, रौक्ष्यजनन, शुष्क करना) कहा जाता है। इसका कारण यह है, कि अभिषव वा खमीरण और प्रकोथकी क्रियाके लिए उचित उत्तापांशके[1] साथ द्रवकी एक उचित मात्रा भी अपेक्षित है। द्रव (रतूबत)की अत्यधिक अल्पता और इसका आधिक्य उभय तारतम्यभेदानुसार प्रकोपमें बाधा उपस्थित कर देते हैं। इसीलिये शुष्क वस्तुएँ प्रकुथित नही हुआ करती हैं, और क्षीणकाय शव देरमें प्रकुथित हुआ करते हैं। इसी सिद्धात पर व्रणस्थ क्लेदके शोषणका यत्न किया जाता है, जिससे उसके प्रकोथकी क्रियामें कमी आ जाती है।

परांश्रयी सूक्ष्म कृमियो (तुफैली जानवरो) पर औषधका कर्म—तुफैली जानवरोसे वे कीट-पतग अभिप्रेत है जो मानवी त्वचा इत्यादि पर रहते और उन्हींसे अपनी पोषणकी सामग्री प्राप्त करते हैं, उदाहरणत यूका (जूएँ), लिक्षा (लीखें) और अन्यान्य सूक्ष्म जीव।

अन्त्रकृमि (दीदान अमआऽ) भी यद्यपि (तुफैली हैवानात) ही के अतर्भूत हैं, परतु उनकी औषधियोका उल्लेख अन्त्रमें प्रयुक्त औषधियोके प्रकरणमें हो चुका है।

यूका और लिक्षा (जूएँ और लीखे)—गधक और पारद विभिन्न योजनारूप (मलहर और प्रलेप)में जूओ और लीखोको नष्ट करते है। मुल्ला नफीसके कथनानुसार "पारदमें कृमियोको नष्ट करनेका विशेष धर्म पाया जाता है।"

कच्छू (जर्ब)के कृमि—गधक (मलहर और प्रलेपके रूपमें) और चदनका तेल, बलसाँका तेल और शिलारस (मीअ साइला) इत्यादिसे नष्ट हो जाते हैं।

●

---

१ 'उचित उत्तापांश अपेक्षित है' इससे अभिप्राय यह है, कि उत्तापकी अल्पताकी दशामें, उदाहरणत बर्फ और शीतल जलकी शीतलतामें प्रकोथ और अभिषवकी क्रिया बद हो जाती है। यही कारण है कि शरद् ऋतुमें वस्तुएँ कम सड़ा करती हैं। इसी प्रकार उत्तापकी उग्रताकी दशामें, उदाहरणत क्वथनाक (दरजए गलियान)के उत्तापमें (जिसमें जल खौलने लगता है) कोई वस्तु प्रकुथित नहीं हो सकती। ऐसे उत्तापका जो कार्य द्रव्यों पर होता है उसे यूनानी वैद्योंकी परिभाषामें दहन वा ज्वलन (इहतेराक) कहा जाता है, जिसका अर्थ 'जल जाने'के हैं।

प्रकरण १५

प्राकृत देहोष्मा (हरारत गरीज़िय्या) पर औषधका कर्म

हरारत गरीज़िया (देहोष्मा)का लक्षण—प्राचीन यूनानी वैद्योंका, जिनमें जालीनूस और ज़करिया राज़ी भी सम्मिलित हैं, विचार है कि शरीरोष्मा एक भौतिक ऊष्मा वा उत्ताप अर्थात् भूताग्नि (उन्सुरी हरारत, हरारते उन्सुरी नारी) है, जो मानवशरीरके भौतिक (रासायनिक) परिवर्तन (उन्सुरी इस्तिहाला) अर्थात् शरीरमें आग्नेय तत्व और अन्यान्य भूतोंके समवायसे प्रादुर्भूत हुआ करती है और आयुभर बनी रहती है। यह शरीरका परिष्कार, पालन एवं रक्षा करती है, और उसको प्रकोप एवं विकारसे सुरक्षित रखती है। पाकका क्रम सपूर्ण शरीरमें होनेसे यह ऊष्मा (अग्नि) भी न्यूनाधिक (तरतमके अनुसार) सपूर्ण शरीरके अग-प्रत्यगमें उत्पन्न होती है। यूनानी वैद्यकके मतसे इसका नियता प्रकृति (तबीअत मुदब्बिर बदन) है।

शेखुर्रईस और कर्शी प्रभृति एव कतिपय अन्य उत्तरकालीन चिकित्सकोने यह देखकर कि ऊष्मासे कभी-कभी कोप और विकार भी उत्पन्न हो जाता है, हरारते ग़रीज़ीको एक विशेष आकाशीय सूक्ष्म उष्ण तत्व स्वीकार किया है, जो उनके मतसे मानवशरीरमें प्रकृतिकी ओरसे उस समय प्रदान किया जाता है, जब उसमें प्राण वायु, (नफ़्से नातिक़ा अर्थात् रूह)का आवाहन होता है। यह युवा अवस्था तक कम नहीं होता, किंतु इसके पश्चात् वयके साथ क्रमश उत्तरोत्तर कम होता जाता है। अततः जब यह लुप्तप्राय हो जाता है, तब स्वाभाविक मृत्यु उपस्थित होती है।

यह प्रगट है कि जालीनूस और प्राचीन यूनानी वैद्योका वर्णन अधिक सत्य है, और आधुनिक अन्वेषण भी इनका समर्थक है जिसके अनुसार हरारते गरीज़ी (देहोष्मा Animal heat) वह भौतिकाग्नि है जो शरीरके भीतर उष्णताजनक द्रव्यों और ऊष्मजन (ऑक्सीजन)के रासायनिक सयोग या ज्वलनसे प्रादुर्भूत होती है। अस्तु—

विद्वद्वर गीलानी कानूनके भाष्यमें लिखते हैं—"यूनानी वैद्यों (प्राचीनो)का यह मत है कि मानवशरीरके भीतर महाभूतोंके समवायसे उष्णता प्रादुर्भूत होती है और जब तक यह समावस्था पर होती है, उस समय तक वह हरारत गरीज़िय्या[1] (गरीज़त = स्वभाव, प्रकृति) अर्थात् प्रकृत अग्नि कहलाती है, और जब यह प्रकृत सीमाका उल्लघन कर आधिक्य (सताप)का रूप धारण कर लेता है, तब उसे हरारते गरीबा कहा जाता है।"

---

1 आयुर्वेदिक कल्पनाके अनुसार इसे 'अग्नि' वा 'पाचकाग्नि' कह सकते हैं। आयुर्वेदके अनुसार यह पाचकाग्नि केवल अन्नमें ही नहीं, शरीरके प्रत्येक परमाणुमें कार्य करता है, और उसके इसी कार्य पर शरीर-धातुओंकी वृद्धि या क्षति निर्भर होती है—"स्वस्थानस्थस्य कायाग्नेरशा धातुपु सश्रिता। तेषा सादातिदीप्तिभ्यां धातुवृद्धिक्षयोद्भव (वाग्भट-अ० हृ०)। सप्तभिर्देहधातारो द्विविधाश्चय पुन पुन। यथास्वमग्निभि पाक यान्ति किट्टप्रसादवत् (चरक)।" शरीरमें जो अग्नि होती है उसे धात्वग्नि कहते है, और सात धातुओंकी सात अग्नि हैं—'त एव पञ्चोष्माण पार्थिवादय स्थानान्तरप्राप्ता धातूष्माण इति व्यपदेशमासादयन्ति। (अरुणदत्त)'। अस्तु धात्वग्निसे धातुओंके भीतर मिलनेवाले भौतिकाग्नि अभिप्रेत हैं—"भौमाप्याग्नेय वायव्या पञ्चोष्माण सनाभसा। पञ्चाहारगुणान् स्वान् स्वान् पार्थिवादीन् पचन्त्यनु॥ यथास्व ते च पुष्णन्ति पक्त्वा भूतगुणान् पृथक्। पार्थिव. पार्थिवानेव शेषा शेषाश्च देहगान्" (अ० हृ० शा० ३)।

कर्मभिन्नता और स्थानभिन्नताके अनुसार आयुर्वेदमें इस (शरीरस्थ पाचकाग्नि)के ये तेरह भेद बतलाए गए हैं—एक जठराग्नि (हरारते मेदा), पॉच भूताग्नि (हरारते उस्तोक़ुस्सी) और सात धात्वग्नि।

यह देहाग्नि प्राणौज (रूह) और आहारके घटकोकी सहायतासे एक विशेप नियमके अधीन प्रादुर्भूत होता और व्यय होता रहता है, जिससे उसका साम्य स्थिर रहता है। किंतु जव इसकी उत्पत्ति एव व्ययमें व्यतिक्रम पड जाता है, तव यह समता वा प्रकृत सीमासे घट-वढ जाता है।

प्रकृति (तवीअत मुदब्बिरए वदन)के असख्य विलक्षण एव अद्‌भुत दृश्य कार्योंमेंसे शारीरिक अग्निकी उत्पत्ति (तौलीद हरारत) भी एक कार्य है, जिससे उसकी अद्‌भुत असीम कारीगरीका पता चलता है।

उष्णताजनक (मुसख्खिनात), उष्णौषध (दवाऽ हार्र), शीतजनक (मुवर्रिदात), शीतलौषध (दवाऽ वारिद)

किसी द्रव्यको जव हम वारिद (शीतल) या मुवर्रिद (शीतजनक) कहते है, तव उससे हमारा अभिप्राय यह होता है, कि वह द्रव्य शरीरोष्माको स्थानीय या सार्वदैहिक रूपसे समताकी कक्षासे गिरा देता है, चाहे आतरिक रूपसे उपयोग किया जाय या वाह्य रूपसे।

इसी तरह जव हम किसी औपध या आहार इत्यादिको हार्र (उष्ण) या मुसख्खिन (उष्णताजनक) कहते हैं, तव उससे हमारा अभिप्राय यह होता है कि वह देहोष्माको स्थानीय वा सार्वदैहिक रूपेण सम कक्षा (दरजए एतदाल)से वढा देते हैं। इनमें प्रथम द्रव्यकी क्रियाको तव्रीद (शीतजनन) और द्वितीयकी क्रियाको तसखीन (उष्णजनन) कहा जाता है।

अद्‌विया मुसख्खिना (उष्णताकारक औपध)को हम लोग वहुधा अद्‌विया हार्रा (उष्ण औपध) कहा करते हैं। यह स्थानीय रूपमें शरीरके किसी विशेप भागमें या सार्वदैहिक रूपसे सपूर्ण शरीरमें उत्तापवृद्धिका कारण होती है। इनके यह दो भेद हैं —

(१) वह औपधियाँ जो वहि प्रयोगसे उत्तापकी वृद्धि करती हैं, उदाहरणत अद्‌विया लज्ज़ाआ (सक्षोभकारक ओपधियाँ), मुहम्मिरा (रागकारक), मुनफ्फ़िता (विस्फोटकारक), अक्काला (काविया = दागनेवाला), मुहल्लिला (विलायक) जो पतले वा गाढे प्रलेप रूपसे उपयोग की जाती हैं और त्वचामें उष्णता और दाह उत्पन्न कर देती हैं। इस प्रकारकी ओपधियाँ वातनाडियोमें उत्तेजना और क्षोभ प्रगट करके उक्त स्थलकी वाहिनियो और रक्तकेशिकाओको विस्फारित कर देती हैं, जिससे वहाँ रक्तागम वढ जाता है। इसके अतिरिक्त इन औपधियोंसे तत्स्थानीय परिवर्तन (तगय्युर व इस्तिहाला)की गति भी तीव्र हो जाती है, जिससे अनुपातके अनुसार उत्तापकी उत्पत्तिमें वृद्धि होना अनिवार्य है।

(२) वह औपधियाँ जो आतरिक उपयोगसे उत्तापवृद्धिकारक होती हैं। उनमेंसे (क) कतिपय ओपधियाँ तो वह हैं, जो अपने विशेप स्वभाव (खुसूसियते तासीर)से किसी विशेप शरीरावयवके उत्तापको वढा देती हैं,

---

इस प्रकार कुल तेरह अग्नियाँ हुई। इनमें धात्वग्नियाँ कोई स्वतन्त्र अग्नि न होकर भौतिकाग्निकी अश होती हैं और भूताग्नि एव धात्वग्नियाँ जठराग्निकी आश्रित हैं। (च० चि० अ० १५, श्लो० ११–१३)। फलितार्थ यह कि, शरीरके अन्य वारह अग्नि जठराग्निकी प्राथमिक क्रियाके विना अपना कार्य ठीकसे नहीं कर सकते। अतएव इसे सर्वोपरि मान दिया गया है—'अन्नस्य पक्ता सर्वेषा पक्तॄणामधिको मत।'

यूनानी कल्पनाके अनुसार इन समस्त अग्नियोंका अतर्भाव हरारते गरीज़िय्यामें होता है। यह शरीरकी प्रकृतोष्मा, देहोष्मा शरीरोष्मा, शारीरिकाग्नि वा कायाग्नि है। सुश्रुतने देहोष्माको भ्राजक पित्तका कार्य लिखा है–"ऊष्मा शरीरोष्मा स त्वक्स्थभ्राजकपित्तस्य कर्म।" (सु० सू० अ० १६–चक्र०) उष्णताका नियमन भ्राजक पित्तका कर्म—"मात्रामात्रत्वमूष्मण" (चरक)। शरीरसे वाहरकी दृश्य सृष्टिमें अग्नि और सूर्यकिरणोंकी उष्णतासे पाकक्रिया होती है।

उदाहरणत आमाशय या अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामें क्षोभ और उत्तेजना (खराश और हैजान) पैदा करके उसकी क्रियाको तीव्र कर देती हैं, और वहाँ स्थानीय तौरपर रक्तिमा और उत्ताप बढ़ जाता है। (लाजेआत मेदा व अमुआऽ और मुसहिलात) इस स्थानीय उत्तापवृद्धिसे सामान्यतया सपूर्ण शरीरके उत्तापाश पर कोई प्रगट असर नही पडा करता है, (ख) और कतिपय ओपधियाँ वह हैं, जिनके उपयोगसे सपूर्ण शरीरका उत्ताप अभिवर्द्धित हो जाता है। अर्थात् इनके उपयोगसे इस प्रकारकी वातिक उत्तेजना (असवी हैजान) और व्यतिक्रम एव विकार प्रगट होता है, कि शरीरके भीतर उत्तापकी उत्पत्ति और व्यय साम्यावस्था पर स्थिर नही रहता और परिवर्तन (तग़य्यु-रात और इस्तिहालात)की गति असाधारण रूपसे तीव्र हो जाती है। बहुश विप, रोगोत्पादक दोप और विप-ओप-धियाँ इस वर्गके अतर्भूत हैं, जिनके उपयोगके उपरात उत्तापवृद्धिकी दशा प्राप्त हो जाती है—उदाहरणत लुफाह, यवरूज, चाय इत्यादि।

उष्ण आहार (अग्जिय्य मुसख़्ख़िना)का उपयोग इस कारण उत्तापवृद्धिका कारण वनता है, कि ऐसे आहारोंमें कुछ औपधीय द्रव्य (दवाई मवाद्) होते हैं, जो उत्तापजननक्रियाको शरीरके भीतर तीव्र कर देते हैं। तात्पय उष्णकारक आहार (मुसख़्ख़िन गिज़ाएँ) वस्तुत आहार एव औषधीय उपादानोंसे सघटित होते हैं। इसलिये इनके औपधीय और आहारीय उपादान वही कार्य करते हैं, जो उष्ण औपध और शुद्ध आहार (अग्ज़िया ख़ालिसा) कार्य करते हैं।

शीतल आहार (अग्ज़िया मुबर्रिदा)या "अग्ज़िया बारिदा"से हमारा अभिप्राय वह आहार हैं, जिनमें पोपण उपादान (अज्ज़ाऽ गिज़ाइय्या) भी हों और उनके साथ शीतल औपधीय उपादान भी हों। पोपण उपादान तो शोणितमें परिणत हो जायँगे, किंतु अन्यान्य औपधीय उपादान उत्ताप घटाने (तक़्लील हरारत)का साधन वन जायँगे। यह शीतल औपधीय उपादान किस प्रकार कार्य करते हैं और किस भाँति उत्ताप कम करने (तक़्लील हरारत)का साधन वनते हैं, इस प्रश्नका उत्तर यह है कि इनके कर्मोंकी उपपत्ति (नौइय्यते अमल) शीतजनक ओप-धियोंकी उपपत्तिके तद्वत् है, जिसकी विशद विवेचना यहाँ की गई है।

शीतल औषध (अदविया मुबर्रिदा, अद्विया बारिदा)—यूनानी वैद्य उन औपधोको शीतल औपध कहते हैं, जो स्थानीय रूपसे शरीरके किसी विशेप अगमें या सार्वदैहिक रूपसे सपूर्ण शरीरमें उत्तापको घटा देती हैं। उष्णताकारक औपधो (अद्विया मुसख़्ख़िना)की भाँति शीतल औपधो (अद्विया वारिदा)के भी ये दो भेद हैं—(१) वहि प्रयोगकी वस्तुएँ, और (२) आतरिक प्रयोगकी। इनमें उष्णताकारक ओपधियोंके कर्मकी उपपत्ति समझ लेनेके उपरात शीतल औपधोंके कर्मकी उपपत्ति समझना वहुत ही सरल है, क्योकि इन दोनोके कर्म एक दूसरेके विरुद्ध हैं और एक विरोध दूसरे विरोध (ज़िद्द)के लिए पथप्रदर्शक वन जाता है। अर्थात् जिन द्रव्योसे शारीरिक उत्तापमें कमी आ जाती है वह शीतल द्रव्य (अशियाऽ बारिदा) कहलाते हैं, और जिन द्रव्योंसे शारीरिक उत्तापमें वृद्धि होती है वह उष्ण द्रव्य (अशियाऽ हार्रा)। पुन चाहे यह न्यूनाधिकता शरीरके किसी विशेप अगमें उपस्थित हो या सामान्य रूपसे सपूर्ण शरीरमें। जव यह शीतजनन क्रिया किसी विशेप भागमें घटित होती है तव केवल उक्त स्थानके उत्तापमें अतर पडता है। और जव सपूर्ण शरीरमें उक्त क्रिया सामान्य रूपसे होती है, तव सपूर्ण शरीरका उत्तापाश घट जाता है, जैसा कि ज्वरोंको उग्रतामें कतिपय ओपधियोंसे यह काम लिया जाता है या जैसा कि शीतल जलावगाहन वा शीतल स्नानसे सपूर्ण शरीरका उत्ताप घट जाता है।

उष्ण द्रव्योंकी भाँति शीतल द्रव्योंके यह दो भेद हैं—कतिपय द्रव्य वहि शीत वा शीतस्पर्श (बिल्फ़ेल वारिद) हैं, उदाहरणत वर्फ। और कतिपय द्रव्य वहि शीत नही हैं, अपितु उनके कर्म शीतल हैं। जो द्रव्य वहि शीत (बिल्फ़ेल वारिद) हैं, उदाहरणत शीतल जल, शीतल वायु, वर्फ इत्यादि, उनके कर्मकी उपपत्ति देनेके लिए अधिक प्रयासकी आवश्यकता नही। यह कोई सदिग्ध या गुप्त कार्य नही है जिससे किसीको इनकार हो। ऐसे द्रव्य प्रत्यक्ष-तया शारीरिक उत्तापको अपनी ओर आकर्पित करके उत्तापस्थानान्तरण (इन्तिकाल हरारत)की भाँति उत्ताप

घटाने (तक्लील हरारत)का कारण बन जाते हैं, पुन चाहे ये शीतल द्रव्य बाह्य रूपसे उपयोग किये जायें या आतरिक रूपसे। शीतल जल और वायु इत्यादिसे हमारी परिभाषामें वे द्रव्य अभिप्रेत हैं जो शरीरकी अपेक्षया शीतल हो, न यह कि उनका उत्तापाश शून्य तक पहुँच गया हो। उत्तापके आकर्षण (इन्जजाव) और स्थानातरित (इतकाल) करनेके लिए केवल इतना ही आवश्यक है। यह बात अतिम है कि यह पदार्थ शरीरकी अपेक्षया जितने अधिक शीतल होगे उतना ही उत्तापाकर्षण—उत्तापका आत्मसात् (इजिज़ाव हरारत) तीव्रतासे होगा।

जो द्रव्य वहि शीत वा शीतस्पर्श नही हैं, वह निम्न प्रकारसे शरीरमें शीत उत्पन्न करते हैं —

(१) जो पदार्थ किसी प्रकार स्वेद लाते हैं वह स्वेद और वाष्पीभवन (तवख़ीर)के द्वारा उत्तापको कम करने (तक्लील हरारत) वा (तबरीद—शीतजनन)का सेवाकार्य-सपादन करते हैं। शरीरसे जब उष्ण वाष्प उत्सर्गित होते हैं, तब उनके साथ उत्ताप भी लगे हुए चले जाते है। स्वेदल औषधोकी सूचीमें औषधियाँ भी हैं और बाह्य उपाय भी, उदाहरणत पादस्नान (पाशोया) इत्यादि।

(२) कतिपय द्रव्य शरीरपर लगाये जाते हैं, और वह तीव्रतापूर्वक वाष्प रूपमें उड जाते हैं—उदाहरणत सिरका और अन्यान्य उडनेवाली वस्तुएँ। यह उक्त स्थलको इस कारण शीतल कर देते हैं, कि जब उडते हैं तब चूँकि ये शारीरिक उत्ताप को आत्मसात् (जज़्ब)करके उष्ण हो जाते हैं, इसलिये उनके साथ शारीरिक उत्ताप भी उत्सर्गीभूत हो जाते है। सन्निपात (सरसाम), वक्षोदरमध्यपेशी शोथ (बरसाम), प्रलाप और ज्वरोकी उग्रता या प्रकोपमें हमारे यूनानी वैद्य सिर पर सिरका इसी शीतजनन उद्देश्यके लिए बाह्य रूपसे उपयोग करते हैं।

(३) कतिपय औषधद्रव्य अपने प्रभावसे (बिल्ख़ास्सा) वातकेन्द्रों पर प्रभाव करके उत्ताप उत्पत्तिकी क्रिया-को मद करके शारीरिक उत्तापको कम कर दिया करते हैं अर्थात् उनके कारण शारीरिक परिवर्तनो (तग़य्युरात व इस्तिहालात)की मात्रा इस प्रकार घट जाती है, कि शरीरके भीतर उत्ताप उत्पन्न ही कम होते हैं। इस वर्गमें वे औषधियाँ भी अन्तर्भूत है जो परिवर्तनावसादक—(मुज्इफात इस्तिहाला) कहलाती हैं, जो शारीरिक परिवर्तनो और पाकक्रियाको मद कर देती हैं।

(४) कतिपय औषधियाँ शरीरके भीतर प्रविष्ट होकर शरीरावयवोंके भीतर इस प्रकारका परिवर्तन पैदा करती हैं, कि उससे उत्तापनाश (ज़ैआन) और उत्तापप्रशमका कार्य तीव्र हो जाता है, जिससे शारीरिक उत्ताप समताके अश (दरजए एतदाल)से गिर जाता है। इनके पुन ये दो अवातर भेद हैं —

(क) वह जिससे त्वगीय वाहिनियाँ विस्फारित हो जाती है और उत्ताप रश्मिके रूपमें तीव्रतापूर्वक उत्सर्गित होने लगते हैं। यह रीति स्वेदजनन (तअरीक) और बाष्पभवन (तब्ख़ीर) क्रियासे बहुत कुछ मिलती-जुलती है। उदाहरणत मद्य, वछनाग (बीश), अहिफेन और उष्णावगाहन।

(ख) वह जिससे त्वगीय वाहिनियों पर कोई असर नही पहुँचता, प्रत्युत शरीरके आतरिक सस्थानों और तत्रोमें कुछ ऐसा गुप्त परिवर्तन पैदा हो जाता है, कि उत्ताप नाश (ज़ैआन)की क्रिया तीव्र हो जाती है।

(५) कतिपय औषधद्रव्य उन मूल और विशेष दोषो (मवाद्द)को तोडकर या उनका शोधन करके शारीरिक उत्तापको कम कर देते हैं, जो उत्तापवृद्धिके मूल कारण हैं। इन ओषधियोंका कार्य प्रत्यक्षरूपसे रोगोत्पादक दोष पर होता है और सीधे (बिल्वास्ता) उत्ताप पर, उदाहरणत मल्ल, अफसतीन, गिलोय, नीम, अतीस ऋतुज्वरो (हुम्मयात अजामिया)में रोगजनक दोषो पर असर करके ज्वरको नष्ट कर देते हैं।

उत्तापशमन (तक्लील हरारत) वा शीतजनन (तब्रीद)—दाह प्रशमन (शीतजनन—तब्रीद बदन)के लिए विभिन्न प्रकारके वहिराभ्यन्तरिक उपाय उपयोगमें लाए जाते है, पुन चाहे वह औषधभेद हों या जल, आहार या वायु इत्यादि।

सुतरा उत्तापप्रशमनके लिए जो औषधियाँ उपयोग की जाती हैं, उनके यह दो भेद हैं —एक सामान्य शीतजननौषध जिनका कार्य बहुत ही साधारण—हलका होता है, और दूसरे उग्रवीर्य शीतजननौषध जो

ज्वरकी उग्रताको अति शीघ्र घटा देती है, और जिससे उत्तापांश सहसा गिर जाता है। साधारणत: मानेआत हरारत (उत्तापावरोधक)से इसी प्रकारकी उग्र वीर्य औषधियां विवक्षित होती है।

सामान्य शीतजननौषध (मुबर्रिदात खफीफो)—यद्यपि समस्त ज्वरोमें इस प्रकारकी औषधियां बहुतायतसे उपयोग की जाती है, जिनको हम लोग अपनी परिभाषामें शीतल औषध (अद्विया बारिदा) कहा करते हैं, परतु उत्तापांश पर इनसे कोई प्रगट और तात्कालिक असर नहीं पहुँचता। सुतरा हृदय (तबीअत)को इससे शाति और राहत पहुँचती है—उदाहरणत: इसबगोलका लवाब, बिहीदानेका लवाब, गुरफाका रस, अनारका रस, कद्दूका रस, खीरा-ककड़ीका रस (आब खियारैन), कासनीका रस, सिकजबीन, सिरका, नीबूका रस, (बहार नारज)का अर्क, आलूबुखाराका (जुलाल), इमलीका जुलाल (जुलाल समरे हिंदी) इत्यादि। इसी प्रकार कभी शीतल जलकी वस्ति गुदमार्गमें दी जाती है, जिससे ज्वरके उत्तापमें न्यूनाधिक कमी हो जाती है और कभी वस्तिमेंशीतल औषधियां उपयोग की जाती हैं, उदाहरणत: तरबूजका रस, खीरा-ककडी (खियारैन)का रस, कद्दूका रस, खुरफाका रस और कपूर इत्यादि।

उग्र उत्तापांशरोधक औषधियां (कवी मानेआत हरारत)—उत्तापशमन और केवल ज्वर उतारनेके उद्देश्यसे इस प्रकारकी उग्र औषधियां अत्यल्प उपयोग की जाती है, क्योंकि यह औषधियां जितना ही अधिक उग्र वीर्य और निश्चित होती है उतना ही अधिक विषैली और अनिष्टकारी है। कभी-कभी इनके उपयोगसे अतिम कक्षाका दौर्बल्य लग जाता है, मूर्च्छा तक नौबत पहुँच जाती है और शरीरकी श्याववर्णता (नीलवर्णता) उत्पन्न हो जाती है। इन औषधियोंके वीर्य (कुव्वते अमल)का अनुमान इससे हो सकता है, कि यदि ज्वर उदाहरणत: १०३ या १०४ अंश हो तो इन औषधियोंको केवल एक मात्रासे दो-तीन घटेके भीतर उत्ताप घटकर प्राकृतिक अंश (दरजए एतदाल)पर या उससे भी नीचे आ जाता है। परन्तु यह गुण केवल अस्थायी (आरजी) और क्षणिक होता है। क्योंकि ६-७ घंटेकी अवधिमें इसका प्रभाव नष्ट हो जाता है और पुन: ज्वर उसी अंश पर पहुँच जाता है, जिस अंश पर उक्त औषधि न देनेकी दशामें होना चाहिये था। अर्थात् यदि उक्त औषधि न दी जाती तो ज्वर जिस तीव्रता और उग्रता (हिद्दत व शिद्दत)पर होता है, उसी अंश तक ज्वर चढ़ जाता है।

इस उद्देश्यके लिए जो औषधियां उपयोग की जाती हैं, अधिकतर या सारीकी सारी, नवीन कृत्रिम औषधियोंमेंसे हैं और वर्तमान रसायन विद्या और भेषजनिर्माण विज्ञानके ऋणी है—उदाहरणत: वर्कीन किब्रीत आगीन (क्वीनोन सल्फेट), हामिज सफसाफी (सैलिसिलिक एसिड), सफसाफीन (सैलीसीन), जिद्द हर्रीन (ऐण्टिपायरीन), जिद्दुलहुम्मा (एण्टिफेब्रीन), फस्लीन जार्वा (फेनासीटीन)। इनमेंसे अंतिम तीन अधिक उग्रवीर्य, परतु उसी मात्राके साथ जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है।

वर्कीनकिब्रीत आगीन (सल्फेट ऑफ क्वीनोन), वर्कीन वर्क (सिंकोना)का सत्व है, मख्जनुल् अद्विया फारसीके रचयिताने जिसका उल्लेख किया है। जब इस पर गंधकाम्ल (हामिज किब्रीती)का कार्य होता है तब 'वर्कीन किब्रीत आगीन' नामक लवण बन जाता है। इसका उपयोग इस उद्देश्यके लिए २० से ३० जौ[1] तक (१० से ५।। रत्ती तक) है।

हामिज सफसाफी[2] (सैलिसिलिक एसिड) यह एक अम्ल है, जो गंधरहित स्फटिकोके रूपमें होता है। इसका स्वाद प्रथम किंचित् मधुर प्रतीत होता है, उसके पश्चात् अम्ल। यह सफसाफीन[3] और विभिन्न पदार्थोंसे प्राप्त किया जाता है और कृत्रिम रूपसे बनाया भी जाता है। मात्रा—२० जौ (१० रत्ती)।

---

१ जौ (शईरा)का मान 'कमहा (ग्रेन)'के बराबर है (अर्थात् १/२ रत्ती या १/१६ मा०)।

२ आयुर्वेदकी परिभाषामें इसे वेतसाम्ल कह सकते हैं।

३ वेतसीन-स०।

सफ्साफीन (सैलीसीन)—एक तिक्त सत्व जो सफ्साफ (वेदसादा = खिलाफ = वेद सफेद अर्थात् वेतस) और हूर[1] (चनार) नामी वनस्पतिके छिलको और शाखाओमे प्राप्त किया जाता है। इसके बारीक सफेद स्फटिक होते हैं। यह बल्य और पर्यायनिवारक है। मात्रा—३० जौ (१५ रत्ती)।

जिद्द् हर्रीन या जिद्द् नारीन (ऐण्टिपायरीन)—इन उभय संज्ञाओंका कारण इनकी शाब्दिक रचना और स्वरूपसे प्रगट है। चूँकि यह औषधि शारीरिक उत्तापको कम करती है, इसलिये यह उत्ताप और अग्निका शत्रु और विरोधी है (हर्र = उष्णता, नार = अग्नि)। यह एक स्फटिकीय सत्व है जिसका वर्ण मटियाला (गुब्बार जैसा) या रक्ताभ होता है। यह खनिज क़ीर (कतरान)[2] से प्राप्त किया जाता है। मात्रा—१५ जौ (७॥ रत्ती)।

ज़िद्दुल् हुम्मा (ऐण्टिफेब्रिन)—यह श्वेत स्फटिक रूपमें होता है, जिसका स्वाद किंचित् तीक्ष्ण प्रतीत होता है। इसकी निर्माण-विधि यह है—हामिज खल्ली जलीदी[3] (प्रगाढ शुक्ताम) और अल्नीलीन[4] को मिलाकर उर्ध्व-पातन विधि द्वारा उडाया जाता है जिससे यह स्फटिक रूपमें प्राप्त होता है। मात्रा—२ से ५ जौ (१ से २॥ रत्ती)।

खल्लीन जावी (फेनासोटीन) यह भी ज़िद्दुलहुम्माके समान होता है। इसके स्फटिक लगभग विस्वादसे होते हैं। यह एक वेदनास्थापक और उग्र उत्तापावरोधक है। मात्रा—५ से १० जौ (२॥ से ५ रत्ती)। यह वस्तुत कीर मादनी[5] से प्रस्तुत औषधोंमेंसे है जिसके साथ प्रगाढ़ शुक्ताम्ल मिलाया जाता है।

इसी तरह कभी नफसीन(ऐसपीरीन) भी उपयोग की जाती है जो वेदनास्थापक, स्वेदल और उत्तापहारक है। मात्रा—५ से १५ जौ (२॥ से ७॥ रत्ती)।

शीतका बहि प्रयोग—शीतके बहि प्रयोगसे कभी रोगीके कमराकी वायु शीतलकी जाती है और इस उद्देश्यसे विभिन्न साधन काममें लाये जाते हैं—उदाहरणत फर्श पर शीतल जल छिडका जाता है, हरी पत्तियाँ और टहनियाँ वहाँ रखी जाती हैं और शीतल जलका फव्वारा (धारायन्त्र) उन पर डाला जाता है, कमरेके भीतर शीतल जलसे भरे हुए कोरे मटके और वर्फकी सिल्लियाँ रखी जाती है, पखोंसे कमरेकी वायुमें गति पैदा करके उसे शीतल किया जाता है। यह तो साधारण रोगीपरिचर्याके उपाय हैं, जिससे उत्तापाश पर कोई तात्कालिन और उग्र प्रभाव नही पहुँचता और उत्तापाश कम नही होता, प्रत्युत इनसे रोगीको एक शाति लाभ होता है। इन उपायोसे अधिक बलशाली और प्रभावकारी निम्न उपाय हैं, जिनमें शीतल जल और वर्फ प्रत्यक्ष रूपेण शरीरसे ससर्गित होता है, और उत्तापाश पर तात्कालीन प्रभाव पडता है।

(२) जल और वर्फका बाह्य प्रयोग जिसके विभिन्न रूप हैं—उदाहरणत शीतल जलसे रोगीको स्नान कराना (गुस्ल बारिद = शीतलजलावगाहन), शीतल जलसे भिगोकर चादर ओढाना, शरीर पर वस्त्र या अस्पज भिगोकर फेरना, शरीर पर वर्फ रखना इत्यादि। उत्तापशमन (तक्लील हरारत)के लिये प्रागुक्त उग्रवीर्य औषधोके उपयोगमें जो भय हैं, बहि शीतके प्रयोगमें वे भय बहुत कम हैं। यद्यपि इसमें किंचित् उलझन अधिक है और अधिक (कष्ट) उठाना पडता है।

---

१ इसे हूर (अ०), तूज (फा०), पॉप्लर Poplar (अ०), किसी-किसीके अनुसार 'हिंदी चनार' कहते हैं।
२. कीर मादनी = कोलटार (अलकतरा)।
३ गलेशियल एसीटिक एसिड (जलीद = वर्फ)।
४ 'ऐनीलीन' अगरेजी सज्ञा अरबी 'नील' सज्ञासे व्युत्पन्न है। यह एक विवर्ण तैलीय द्रव है जो क़ीर मादनी और नीलसे प्राप्त किया जाता है।
५. कीर मादनी = कोलटार (अलकतरा)।

शीतल स्नान (गुस्ल बारिद)—यह अधिकतर मोतीझरा (हुम्मा मिअ्विय्या)[1] में कराया जाता है। इसकी विधि यह है कि हर तीसरे घटा रोगीका उत्ताप तापमापक यंत्र (मिक्‌यास)से देखा जाता है। और जब कभी उत्ताप १०२° या इससे अधिक पाया जाता है, तब रोगीको शीतल जलमें डाला जाता है, जिसका तापक्रम या तापाक (७०°) होता है और भीतर उसे दस या पन्द्रह मिनट (दक़ीक़ा) तक छोड दिया जाता है। पुन जलसे निकालकर और उसके शरीरको सुखाकर बिछौने पर लिटा दिया जाता है। इस उपायसे उसका उत्ताप साधारणतया ९९°,९८° या इससे भी नीचे उतर जाता है।

इस उपायमे न्यूनाधिक परिवर्तन भी किया जा सकता है—उदाहरणत उत्ताप हर तीन घटेकी जगह अधिक दरमें लिया जाय और शीतल स्नान उस समय कराया जाय जबकि उत्ताप १०२° के स्थानमे १०२ ५° हो या १०३° या १०३ ५° हो। इसी प्रकार शीतल जलका तापक्रम या दरजा ७०° के स्थानमें ६०° हो अर्थात् अधिक शीतल हो या ८०°,९०° अर्थात् कम शीतल।

कभी-कभी यह भी किया जाता है कि रोगीको ८० अशके जलमें रखा जाता है। पुन उक्त जलको अधिक शीतल करनेके उद्देश्यसे बर्फ उसके भीतर डाल दी जाती है, यहा तक कि जलका अश ७५° या ७०° तक पहुँच जाता है।

यह प्रकट है कि जिस अधिकताके साथ स्नानकी सख्या होगी और जितना अधिक जल शीतल होगा, उतना ही शारीरिक उत्ताप पर प्रभाव अधिक होगा। जब शरीरका तापक्रम १०३° हो तब बहुधा जलका अश ८०° रखना लाभदायक सिद्ध होता है। कभी-कभी यह भी किया जाता है, कि जलके भीतर रोगीको अक्षुण्ण (देर तक) रखा जाता है, परन्तु उक्त अवस्थामें जल शीतलता तीव्र न होनी चाहिये।

चादर लपेटना—इसकी विधि यह है, कि जब शरीरका उत्ताप अत्यधिक होता है, उदाहरणत १०२° या इससे अधिक, तब बर्फसे शीतल किये हुए जलमें चादर तर करके उससे रोगीके शरीरको १०-१५(दकीका)के लिये लपेट दिया जाता है।

वस्त्र या अस्पजका शरीर पर फेरना—इसकी विधि यह है कि शरीरको नगा करके शीतल जलसे वस्त्र या अस्पज तर करके शरीर पर सात-आठ या दस-पन्द्रह (दकीका) तक फेरा जाय। इससे साधारणतया शारीरिक उत्ताप डेढ-दो अश उतर जाया करता है। परन्तु यह क्रिया शीतल-स्नान और चादर की अपेक्षया कम प्रभावकारी है।

बर्फका बहि प्रयोग—बर्फको कूट कर और थैलियोंमे भरकर न्यूनाधिक कालके लिए वक्ष या उदर पर रखा जाता है। इसी प्रकार और विभिन्न रीतिसे बर्फ और शीतल जलका उपयोग किया जाता है।

पतले या गाढे लेप (जिमाद व तिला) और परिषेक (नुतूल)—उत्तापशमनके विभिन्न साधनोंमेसे शेख और अन्यान्य प्राचीन यूनानी चिकित्साचार्योंने शीतल, पतले और गाढे लेपोका भी उल्लेख किया है, जो वक्ष और उदर पर रखे जाते हैं—उदाहरणत काहूका रस, खुरफाका रस, गुलाब, चदन, कपूर, सिरका, इसबगोलका लुआब।

तीक्ष्ण ज्वरों (हुम्मयात हाद्दा)में यकृत्‌के ऊपर शीतल चीजोका परिषेक (नतूल) बहुत ही लाभकारी क्रिया है, क्योंकि जब यकृत्‌की प्रकृति मो'तदिल हो जाती है और इसका उत्ताप घट जाता है, तब उससे ज्वरमे बहुत कुछ उपकार प्राप्त होता है। यकृत्‌के सुधारसे कभी मूत्र (कारोरा) भी प्रकृतिस्थ हो जाता है। (शेख)।

---

[1] एण्टरिक फीवर वा टायफॉयड फीवर (आन्त्रिक ज्वर)।

परिशिष्ट (१)—यदि तीव्र ज्वरावस्थामें कास और नज़ला भी साथ हो या सिरमें गुरुत्व और तनाव हो, तो उक्त अवस्थामें सिर पर शीतल जल या सिरका डालना उचित नहीं है। (शैख)।

परिशिष्ट (२)—शीत (तब्रीद) पहुँचाते समय अर्थात् बाह्य रूपसे शीतल वस्तुओंके उपयोगके समय इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि स्वेद आनेका समय और दोषके विलीनीभवन (तहल्लुल)का काल न हो। ऐसे समयमें उग्र शीत (शदीद तब्रीद) वर्ज्य है, वरन् इससे कभी रोगके शमनका काल दीर्घ हो जाता है। (शैख)।

द्रव्य-कर्मविज्ञानीय चतुर्थ अध्याय

गुण-कर्मानुसारिणी द्रव्य-सूची

(द्रव्य-गुण-कर्म-वाचक शब्दोका अर्थ और व्याख्या, द्रव्य-गुणकर्मोकी उपपत्ति, तथा तत्तद्गुण-कर्मकारक द्रव्य-सूची।)

अक्काल—यह अरबी 'अक्ल (खाना)' धातुसे व्युत्पन्न शब्द है, जिसका धात्वर्थ 'खा जानेवाला', त्वचा-मासादि धातुओका 'नाश या शातन' करनेवाला अर्थात् 'गलादेनेवाला' (क्षणन, क्षरण)' है। परतु द्रव्यगुणकी परिभाषामें ऐसे द्रव्यको कहते हैं, जो अपनी तीक्ष्णता और विलीनीकरण (तहल्लुल) गुणकी अधिकतासे अपने लगे हुए अगकी त्वचा, मासादि धातुके मूल उपादानोको नष्ट कर दे। वह द्रव्य जो अपनी विलीनीकरण (गलादेनेवाली) और व्रणोत्पादिनी शक्तिसे मासको खा जाय और मासके वीर्य (जौहर)को कम कर दे[1]।

वक्तव्य—यूनानी वैद्यकके अक्काल, कावी और मुहरिक इन तीनो शब्दोमें दिये हुए अर्थ, परिभाषा और द्रव्योंमें बहुत समानता है। उदाहरण द्रव्य—जगार, दग्ध ताम्र (नुहास सोख्ता), सेंदूर, सज्जी (उश्नान), चूना (सुधा), लवण, जलाई हुई सीप (सद्फ सोख्ता), अजम्त, तूतिया, साबुन और मुरदासग।

अक्सीर बदन—परिवर्तक (मुअद्दिलात) द्रव्योमेंसे वह द्रव्य, जो अप्रगट वा अज्ञात रूपसे उत्तमागो—आजाए रईसा[2] (हृदय, यकृत् और मस्तिष्क) इत्यादिकी क्रियाओको प्रकृतिस्थ वा दुरुस्त करके तथा दोषो (अखलात) एव शरीरके अग-प्रत्यगोकी दशाको प्रशस्ततर बनाकर पूर्ववर्ती दौर्बल्य एव व्याधियोको निवृत्त कर देते और स्वास्थ्य एव शक्तिमें चमत्कृत रूपसे अभूतपूर्व वृद्धि करके शरीरकी कायापलट देते हैं, उन्हें अक्सीरुल् बदन[3] और कीमो-याए हयात कहते हैं।

इसके पश्चात् पूछा जा सकता है, कि क्या ऐसी औषधियाँ विश्वमें पाई जाती हैं, जिनसे ऐसे अद्भुत और चमत्कृत कर्म प्रकाशित हों या यह केवल कहानी मात्र है ? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि समय-समय पर ऐसे साक्ष्य मिलते हैं कि कतिपय द्रव्योंके निरतर सेवनसे कतिपय प्रकृतियोमें शरीरके श्वेत रोम, जिनमें श्वेतता जराजन्य हो गई थी, कृष्णवर्णके हो गये अर्थात् पलितका नाश हो गया और स्वास्थ्य एव शक्ति वा बलमें आश्चर्यजनक उन्नति

---

१ आयुर्वेदमें ऐसे द्रव्यको आग्नेय और क्षार (सुश्रुत) और पाश्चात्य वैद्यकमें कोरोसिव्ह् (Corrosive) तथा एस्केरोटिक (Escharotic) कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें भी महत्त्वके अग अर्थात् उत्तमाग (आजाए रईसा)की कल्पना पाई जाती है। आयुर्वेदमें इसके लिए 'त्रिमर्म' शब्दका प्रयोग किया गया है। फर्क केवल यह है कि इन तीनों अगोंमेंसे आयुर्वेदमें यकृत्के स्थानमें बस्तिका उल्लेख किया गया है—"स्कन्धाश्रितेभ्योऽपि हृद्बस्तिशिरासि (गरीयासि) तन्मूलत्वाच्छरीरस्य।" (चरक, सिद्धि ९)। "सप्तोत्तरमर्मशत यदुक्त शरीरसख्यामधिकृत्य तेषु। मर्माणि बस्तिं हृदय शिरश्च प्रधानभूतान्यृषयो वदन्ति। प्राणाश्रयान् तानपि पीडयन्तो वातादयोऽसूनपि पीडयति।" "प्राणाश्रयत्वमपि यथा हृदयादीना न तथा शखादीनाम्" (चक्रपाणिदत्त—चरक सिद्धि, ९-३)।

३ अक्सीरुल् बदन औषधको आयुर्वेदमे—"रसायन" कहते हैं।

हो गई। जब ऐसे निरीक्षण नित्यश नेत्रके समुख आते रहते हैं, तब इन रसायन औषधो (अक्सीरी दवाओं)के अस्तित्वसे इनकार करनेका कोई कारण नही। इस प्रकारके योगोकी व्याख्याका यह अवसर नही, इस उद्देश्यके लिये योगग्रथ (करावादीन)का अध्ययन करना चाहिये। परतु बहुतायमे यह सत्य है कि ऐसे योगोंके गुणवर्णनमें शास्त्रमर्यादाका विचार बहुत कम किया गया है, और अतिशयोक्तिमे अत्यधिक काम लिया गया है। ऐसे परिणामो और निष्कर्षोंका अनुपात बहुत सीमित और अत्यल्प है। यह भी एक विलक्षण सत्य है, कि इस प्रकारके चमत्कारिक रसायनोंमें (प्रायश) प्रधान उपादान कोई वीर्यवान् और विषैला द्रव्य हुआ करता है। उदाहरणत कुचला, भिलावां, सखिया इत्यादि। कुचलेकी एक सुप्रसिद्ध माजून (माजून लना) है, जिसको हकीम शरीफ खां महाभागने 'इलाजुल् अमराज'मे अक्सीरुलबदनके नामसे उल्लेख किया है और उसके कतिपय गुणो और कतिपय उपादानोको सकेत और रहस्यमयी भाषामें लिखकर यह घोषित किया है—'जो इन रहस्योको समझ लेगा, वह धनकुबेर हो जायगा' और यह कि इससे पुनर्यौवन[1]की प्राप्ति होती है। इस योगमें प्रधान उपादान कुचला वा कागफल (हब्बुल्गुराब) है। इसमें कोई सन्देह नही कि यह एक उत्कृष्ट माजून है और यूनानी वैद्य वातनाडियोंको निर्बलतामें इसका प्रचुर उपयोग करते हैं। परतु इसकी गुण-प्रशसामें नि सदेह बहुत ही अतिशयोक्तिसे काम लिया गया है। (कुल्लियात अद्विया)।

आसिर—अरबी 'अस्र' धातु (निचोडना, दबाकर निचोडना)से व्युत्पन्न है, जिसका धात्वर्थ 'निचोडनेवाला' है। परन्तु द्रव्य-गुणकी परिभाषामें वह द्रव्य जिसके अतर्भूत आकुचनकी शक्ति इतनी हो कि अवकाशोंमें जो पतले द्रव वर्तमान हों, वह निचुडकर निकल जायें (उत्सर्गित हो जायें)। वह द्रव्य जो अपने उग्र सग्रहण (कब्ज) और कषायपनके कारण शरीरके अग-प्रत्यगोको भीच और निचोड (आकुचित) कर तत्स्थ पतले द्रवोको यथामार्ग बाहर ले आयें, जैसे—हड। द्रव्य—समस्त आसिर द्रव्य सग्राही (काबिज) होते हैं। आंवला, हड, अनारके वृक्षकी छाल, अनारके फलका छिलका (नसपाल), जामुनकी गुठली, अधिक मात्रामे बिही और समस्त सग्राही (काबिज) और दोषविलोमकर्ता (रादेअ) द्रव्य।

कातिल, सम्मी (विष और प्राणनाशक द्रव्य)—वह द्रव्य जो मानवशरीरमे असाधारण हानि उत्पन्न कर देता है और जिससे मात्रातिरेककी दशामे मृत्यु तक उपस्थित होती है। वह द्रव्य जो अपने विषप्रभाव और प्रकृतिवैषम्यके कारण प्राणोज, मन ओज और जीवनोज वा प्राकृत ओज (रूहहैवानी, रूह नफसानी और रूह तबई)को नष्ट करके प्राणनाश करता है।[2] द्रव्य—सखिया, दारचिकना, हडताल, सेंदूर, कनेर, कुचला, सिगरफ, पारद, रसकपूर, वछनाग (बीश), रसक, जगार, जयपाल, अहिफेन, धतूरा, लुफ़ाह, शूक्रान, हीराकसीस, सकमूनिया, (दहनाफिरग, सिहकी मूंछके बाल, सुरमा, इसीप्रकार पतग १॥ तोला, एरण्डबीज ५० नग, जुदबेदस्तरस्याह ३॥ माशा, फिटकिरी ७ माशा, उश्नान १०॥ माशा, पटबिजना ३ नग, तिक्त बादाम और उसका तेजाब, शबरम ४॥ माशा, साबुन १४ माशा, जगली मेंढक, जूहीकी जड ८॥ माशा, अर्कदुग्ध १०॥ माशा, सज्जी ३॥ माशा, धनियांके ताजे पत्तोका रस ३॥ तोला, माजरयून ७ माशा, मुरदासग ७ माशा, नौसादर १०॥ माशा, गिरगिट मास ३॥ माशा, हुस्नयूसफ ३॥ माशा और फ़रफियून १०॥ माशा।

कातिल दोदान—वह द्रव्य जो उदर और अत्रस्थ कृमियोको नष्ट करते हैं, कातिल दोदान शिकम व अमुआ अथवा केवल कातिल दोदान कहलाते हैं। कृमियों पर इन द्रव्योका विषप्रभाव होता है। यह द्रव्य-

---

1 आयुर्वेदमें ऐसे द्रव्योंको जो जरावस्थाको रोककर यौवनकी रक्षा करता है, वयस्थ्य, (कायाकल्प) और जो द्रव्य वय—तरुणावस्था (जवानी)को स्थिर रखता है, उसे वय स्थापन, कहते हैं। यह वर्ग रसायन वर्गका ही एक भेद माना गया है। पाश्चात्य वैद्यकमें ऐसे द्रव्यको 'यूथ प्रिजर्वर् Youth-preserver' या 'यूथरिस्टोरर् Youth-restorer' कहते हैं।

2 आयुर्वेदमें सम्मी और कातिल द्रव्यको 'विष', 'प्राणहर' या 'प्राणघ्न' (शा०) कहते हैं।

कृमियोको नष्ट करते (मार डालते) है, अथवा उनपर ऐसा प्रभाव करते हैं कि वे पीडित होकर अपने स्थानसे बाहर निकल जाते है।[1]

वह द्रव्य जो उदर और अन्त्रस्थ कृमियो (दीदान अमुआ) पर प्रभाव करते हैं। कृमिघ्न द्रव्य कई प्रकारके होते हैं—(१) इनमेंसे कतिपय द्रव्य आंतोके अदरके कृमियोको केवल बाहर निकालने (उत्सर्गित करते) हैं, उनको मारते नही। ऐसे द्रव्यको मुखरिज दीदान[2], तारिदुद्दीदान वा मुज्रादुद्दीदान कहते हैं। उदाहरणत —जलापा मूल, उसारारेवद और मकमूनिया इत्यादि। (२) कतिपय द्रव्य आंतोके अदरके कृमियोको बाहर निकालते है और उन्हें मारनेमें भी सहायता करते हैं। इनको 'कातिल व मुखरिज दीदान[3]' कहते हैं। उदाहरणत —बायविडग (बिरग, बिरज), कमीला (कबील) इत्यादि। (३) कतिपय द्रव्य आंतोके अदरके कृमियाको मारते हैं, जिन्हें कातिलदीदान[4] कहा जाता है। उदाहरणत सरखस (मेलफर्न)। द्रव्य—हीग, सनाय, छोटी कटाई, रेवदचीनी, चिरायता, गुरुच, बोल (मुरमक्की), गूमा, नाय, बूजीदान, इस्पद, गूर्बानी को पत्ती, कलौंजी, एरण्डपत्र, बकुची, सोठ, जूफा, मुरदासग, करवा, दूकू, (पुदीना, जूफा खुश्क, आडूके पत्ते, मरुआ, तुर्मुस, अफतीमून (विलायती आकाशवेल), अवरबेद अर्थात् जा, दा, उशक, हालो, अफसतीन, वर्क, सागौन, बूरेअरमनी, जरावद, सातर, श्लेष्मातक, नागरमोथा, बेर, सदरूस और अखरोटकी मीग)।

इन तीनो प्रकारके कृमिघ्न द्रव्यामेसे अलग-अलग कृमियोके नाशक द्रव्योके भेदसे पुन इनके भेद किये जाते हैं। जैसे-(१) वह द्रव्य जो फीते जैसे चपटे कृमि अर्थात् व्रध्नाकारकृमि—कद्दूदाने (Tape worm) पर प्रभाव करता है, 'कातिल हब्बुल्कर्अ (व्रध्नाकारकृमिनाशन)' कहलाता है, जैसे—सरखस। कमीला कद्दूदानोको मार डालता और बाहर निकालता (कातिल व मुखरिज हब्बुल्कर्अ) है। द्रव्य—बकाइन, सरखस (मेलफर्न), काले तूतकी जडकी छाल, कमीला, बायबिडग, उशवा मगरबी, (खट्टे) अनारके मूलकी छाल, पुराने नारियलकी गिरी, अरड खरबूजा (पपीता), अजवायन, गुरफा, काग़ज, (केला, कोसू या कस्सू, मीठे कद्दूके बीज, सुपारी और तारपीनका तेल)। (२) वह द्रव्य जो गोलकृमि-गण्डूपदकृमि अर्थात् केंचुवे (हय्यात—Round worm) पर प्रभाव करते हैं, जैसे नीमकी छाल कातिल हय्यात (गण्डूपदकृमिनाशन) और पलासपापडा कातिल व मुखरिज हय्यात (गण्डूपद-कृमिनाशन और गण्डूपदकृमिनिस्सारक) है। द्रव्य—किरमानी अजवायन (दिरमना) और इसका सत्व अर्थात् सेंटोनीन, नीमकी छाल, बकाइनकी जड, सुपारी, एरण्ड और पलासपापडा (पलासबीज)। (३) वह द्रव्य जिनका प्रभाव सूत्रकृमियों या चुरनो (दूदुल्खुल, दोदान खल्लिया—Thread worm) पर होता है, जैसे—एलुआ सूत्रकृमि-नाशन और सूत्रकृमिनिर्हरणकर्त्ता (कातिल व मुखरिज दीदान खल्लिया) है। द्रव्य—किरमानी अजवायन (दिर-मना), सुपारी, आडूकी पत्ती, मिस्कनरामशीअ (आतरिक रूपसे) तारपीनके तेलका घोल, इसी प्रकार एरण्डतैल,

---

१ आयुर्वेदमें कातिलदीदान द्रव्यको 'कृमिघ्न' कहते हैं। शरीरमें उत्पन्न होनेवाले नानाप्रकारके बाह्य और आभ्यतर कृमि और उनसे उत्पन्न होनेवाले विकारोंको नष्ट करनेवाले द्रव्यको आयुर्वेदमें कृमिघ्न लिखा है। जैसे—सहिंजना, कालीमिर्च आदि (च० सू० अ० ४)। सुश्रुतने अर्कादि गणको कृमिप्रशमन, सुर-सादिगणको कृमिसूदन और लाक्षादि गणको कृमिघ्न लिखा है (सू० अ० ३८)। पाश्चात्यवैद्यकमें इन द्रव्योंको 'ऐन्थेल्मिन्टिक्स Anthelmintics' और 'ऐन्टिस्कोलिएक Antiscoliac' कहते है।

२ आयुर्वेदमें सभी प्रकारके कृमिहर द्रव्योंको कृमिघ्न कहते है। परतु विभिन्न कृमिनाशन कर्मोंमें भेद करनेके लिए मुखरिज दीदान द्रव्यको 'कृमिहर' अथवा 'कृमिनिस्सारक' कह सकते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे वर्मीफ्यूज (Vermifuge) कहते है।

३ आयुर्वेदमें इन्हें साधारणतया कृमिघ्न ही कहते है।

४ आयुर्वेदमें ऐसे द्रव्यको कृमिघ्न और पाश्चात्य वैद्यकमें 'वर्मिसाइड्स Vermicides' कहते है। यूनानी वैद्यकमें क़ातिलदीदानको 'कातिलुद्दीदान' भी कहते है। इसका एक पर्याय 'कातिलान दूद' भी है।

जैतून तैल, सेंधवलवण और कसीसका घोल (विलयन), सिरका, मिश्कतरामशीअका काढा, एलुआका काढा (इनकी आस्थापनवस्ति अथवा नमक, चूना, और फिटकिरीके घोल (तथा कलम्बाके क्वाथ)की आस्थापनवस्ति चुरुकृमिनाशन है। (४) वह द्रव्य जो द्वादशागुलान्त्र वा ग्रहणीमें रहनेवाले एक प्रकारके कृमियो—वडिशकृमियो (Hookworm)-को नष्ट करते है। मिश्रदेशमें यह व्याधि अधिक होती है। द्रव्य—अजवायनके फूल (थाइमोल) और यूकेलिप्टसका तेल।

वक्तव्य—उपर्युक्त अन्त्रकृमि (दीदानअम्आ) भी यद्यपि पराश्रयी सूक्ष्म कृमियो (तुफैली हैवानात)के अतर्भूत हैं, तथापि इन (तुफैली जानवरो)से प्राय वे कीट-पतग अभिप्रेत हैं, जो मानवी त्वचा आदि पर रहते हैं और उनसे अपने पोषणकी सामग्री प्राप्त करते है, जैसे—यूका (जूएँ), लिक्षा (लीखें) और अन्यान्य सूक्ष्म जीव। अस्तु, जो द्रव्य बाहरके (त्वचा आदिके) इन कृमियोको मारते हैं, उन्हें "कातिलुल् हशरात"[1] कहते है, जैसे—कायफल, वच, निमोलीकातेल आदि। जूएँ और लीखें (यूका और लिक्षा)—गधक और पारद विभिन्नयोजनारूप (मलहर और प्रलेप)में जूओ और लीखोको नष्ट करते है। मुल्लानफीसके कथनानुसार पारदमें कृमियोंको नष्ट करनेका विशेष गुण पाया जाता है। कच्छू (जरब)के कृमि, गधक (मलहर और प्रलेपरूपमें) और चदनका तेल, रोग़न बलसाँ और शिलारस (मीआ) आदिसे नष्ट हो जाते हैं[2]।

कातेअ बाह[3], मुज्इफ (-फुल-फात) बाह, मुकत्तेअ बाह, मुज़िर्रात बाह—वह द्रव्य जो काम-शक्ति (बाह-कुव्वत बाह)को कम करे। वह द्रव्य जो रतिशक्ति (कुव्वत बाह) और सहवासेच्छा (ख्वाहिश जिमाअ)को अवसादित करे। ये द्रव्य जननागोकी वातनाडियो या कामकेंद्रको अवसादित करके अथवा उन अगो वा तत्सवधी अगोंके रक्ताभिसरणको मद करके मैथुनेच्छाको कम कर देते है। द्रव्य—कपूर, सभालू, धतूरा, तमाकू, शूकरान, अहिफेन, यवरूज, काहू, धनियाँ, मकोय, सुदाव, ईरमा, चूका, नीबू, इमली, आलूबुखारा, खशखाश स्याह (काला पोस्ता), कुलफा, कुलथी, चदन, वशलोचन, नौसादर, फरजमुश्क छोटी चदन (धवलबरुआ), (कासनी, कच्चा लहसुन, उन्नाव, निलोफरकी जड, कुष्ठ, कहवा, चौलाईका साग, मोम, लवण, शीतल जल, मूँग, बेलाडोना (सूची), गेदा, हशीशतुद्दीनार और क्षार औषधियाँ)।

वक्तव्य—कातेअमनी (शुक्रनाशन)के यह दो अर्थ है—(१) उष्ण और रूक्ष औषध जो वीर्यको शुष्क करे अर्थात् वीर्यशोषण औषध, जैसे—सुदाब और भगबीज (शहदानज), और (२) परम शीतल औषध जो वीर्यकी भौतिक स्थिति (किवाम)में विकार उत्पन्न करे या उसे जमा दे (क्रियाशून्यकरे), जैसे—खस और कपूर इत्यादि।

काबिज—कब्ज या सकोच पैदा करनेवाला। वह द्रव्य जो शरीरावयवमें ऐसा गुण उत्पन्न कर दे कि वह सिमटने और सिकुडने लगे और नालियाँ तथा स्रोतादि सकीर्ण हो जायँ, जिससे मलोत्सर्ग न हो सके[4]। द्रव्य—पोस्त तुरज, सगदाना मुर्ग, जुफ्त बलूत, पिस्तेका छिलका, जरिश्क, हब्बुलआस, वाकला, तुर्मुस, वशलोचन, दम्मुल्अख्वैन, गुलनार, सुमाक, मसूर, बारतग, इज़खिर, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, मस्तगी, चना, चावल, माई,

---

१ आयुर्वेदमें इन बाह्यकृमिघ्न द्रव्योंको भी कृमिघ्न ही कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'इन्सेक्टिसाइड Insecticide' कहते है।

२ त्वचापर होनेवाले (जीवाणुजन्य) कुष्ठ—त्वग्दोषों (त्वचाके रोगों)को नष्ट करनेवाले इन द्रव्योंको आयुर्वेद, यूनानी एव पाश्चात्य वैद्यकमें क्रमश 'कुष्ठघ्न' (चरक-सुश्रुत), कातिलुल् जरासियम् और 'ऐन्टिपैरासाइटिक्स (Antiparasitics)' अथवा 'पैरासिटिसाइड्स (Parasiticides)' कहते है।

३. आयुर्वेदमें कातेअ बाह औषधको 'पाण्ड्यकर' या 'पुस्त्वोपघाति' (च० सू० अ० २७) और पाश्चात्य-वैद्यकमें 'अनेफ्रोडिजिएक (Anaphrodisiac)' कहते हैं।

४. ऐसे द्रव्यको आयुर्वेदमें पुरीषसग्रहण (विड्ग्रहण, सग्राहक और शीतसग्राहक) कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे ऐस्ट्रिजेट (Astringent) तथा ऐनास्टैल्टिक (Anastaltic) कहते हैं।

निशास्ता, गेहूँ, बेरकी गुठलीकी मींग, प्रवालमूल, अखरोट, जौजुल्सरो, समदर, गिल मख्तूम, भर्जित इसबगोल, सोनेका वर्क, चाँदीका वर्क, अमरूद अर्थात् सफरी (जिसे 'जामफल' भी कहते हैं) अल्प प्रमाणमें, शकरकंद, कहरुवा, तुख्मरीहाँ, मूँग, बाजरा, शहतूत, आमला, सिंघाडा, ज्वार, माजू, अहिफेन, बेलगिरी, पोस्त खशखाश, रतनजोत, नीबू, सुरमा, अकाकिया, इक्लीलुल्मलिक, अनीसून, अरहर, चाकसू, नील, कगुनीके चावल, केसर, बिही, जौ, बबूलका गोंद, चंदन, झाऊ, सिंकोना, दालचीनी, अर्गट।

काबिज अम्आऽ—वह द्रव्य जो आंतोंकी पुरःसरणक्रियाको मंद और तदुद्रिक्त द्रवोंको कम कर देता है। अन्त्रसंग्राहक (आँतोंमें कब्ज उत्पन्न करनेवाला द्रव्य)। द्रव्य—फौलाद, मण्डूर (खुब्सुलहदीद), नाग (उस्रुब), ताम्र (नुहास), जस्ता, कांतपाषाण (हज्रमिकनातीस), रौप्यमाक्षिक, स्वर्णमाक्षिक, फिटकिरी, कसीस, चूना, सुरमा, तूतियाय सब्ज, शिंगरफ, गिले अरमनी, गिल कीमूलिया (खडी), गिल मख्तूम, गिल मुलतानी, संगजराहत, गेरू, दम्मुलअख्वैन, प्रवालमूल (बुसद), जहरमोहरा, मोती, यशब, कहरुवा, वंशलोचन, प्रवाल शाखा (मर्जान), शादनज, संगबसरी, भंग, बलूत, जौजुल सरो, माईं, माजू, वर्ग झाऊ, अहिफेन, धतूरा, खुरासानी अजवायन, लुफ्फाह, यबरूज, कचनारकी छाल, पोस्त ढाक, वर्ग ढाक, पोस्त मौलसिरी, पोस्तखशखाश, पिस्ताका बहिस्त्वक्, बबूलकी छाल, पोस्त गूलर, पोस्त तुरंज, कुक्कुटाण्डत्वक्, पोस्त संगदाना मुर्ग, आमकी गुठली (खस्ता आम), जामुनकी गुठली (खस्ता जामुन), छुहारेकी गुठली (किशन खुर्मा), नमबीज (तुख्म खशखाश), खुरफाके बीज, इमलीके बीज (चीआँ), तुख्म मवीज, भर्जित कनोचा बीज, भर्जित रैहाँ बीज, भृष्ट इसबगोल, तुख्म बालगू, भृष्ट चुक्रबीज (तुख्म हुम्माज बिरियाँ), तुख्म बारतंग, तुख्म इस्पस्त, कुंदुर, मस्तगी, हालों, इलायची, धनियाँ, तज, दालचीनी, जायफल, अकाकिया, मामीसा, कत्था, आमला हड, बहेडा, गुलसुर्ख, जरेवर्द (गुलाब पुष्पकेसर), गुलनार, गुलटेसू, गुल धावा, गुल दुपहरिया, गुलसुपारी, सुपारी (छालिया), समस्त कषाय द्रव्य, बेलगिरी, अजबारमूल, हब्बुल आस, हाऊबेर (अबहल), सिरका, दही, अनारदाना, जरिश्क, सुमाक, नीबूका रस, खट्टा अनार, खट्टा अंगूर, सेव, बिही, खट्टा तूत, बेर, अमडा, छडीला, खस, सुदाब, सुरवाली (सिरियारी), मीठा इन्द्रजौ, दुद्धी, गिलोय, चिरायता, छुईमुई (लजालू), सँभालू, काई, गेहूँका निशास्ता, इजखिर, इकलीलुल्मलिक, अखरोट, चाकसू, कुटजत्वक् (तीवाज) कहेलाकहेली, मछेछी, रतनजोत, मैदालकडी, शैलम, खर्नूब, चंदन, आबनूस, अतीस वटक्षीर, गेंदा (सदवर्ग), मोचरस, कैथ, कसेरू, सिंघाडा, बाजरा, कोदों, मसूर, अरहर, मास (उडद), ज्वार, सत्तू (शक्तुक), चावल और मूँग।

काबिज उरूक—वाहिनीसंग्राहक (संकोचक) द्रव्य। वाहिनीसंग्राहक (काबिजात उरूक) द्रव्योंमेंसे अधिकतर द्रव्य वे ही हैं, जो रक्तस्तंभन (हाबिस दम), दोषविलोमकर्ता (रादेअ), प्रपीडन (आसिर) और अन्त्र-संग्राहक (काबिज अम्आऽ)में लिखे गये हैं।

कावी (बहुव० कावियात)—दाग डालनेवाले या जलानेवाले द्रव्य, उदाहरणतः अम्ल (तेजाब), तीक्ष्ण उत्ताप जैसा कि लोहे इत्यादिसे त्वचाका दहन किया जाता है। उक्त क्रियाको कय्य[1] (दागना—दहनकर्म) कहा जाता है। वह द्रव्य जो तीव्र उष्णता एवं रूक्षताके कारण त्वचा या कला (झिल्ली)को जलाकर दाग डाल देता है। ऐसे तीक्ष्ण (आग्नेय) द्रव्य जिस अंग पर लगाये जाते हैं, उसको जलाकर उस जगहकी खालको मुरदा कर देते हैं जिससे वह कडी होकर कोयलेके समान हो जाती है। इसलिये उस स्थानमें द्रवोंका उत्सर्ग बंद हो जाता है। इस जले हुए अंगके जौहरको 'खुरड' कहते हैं। ऐसे द्रव्यके उपयोगकी आवश्यकता वहाँ भी पडती है, जहाँ किसी स्थानका रक्तस्राव बंद न हो सके, वाहिनी कट गई हो और व्रणपूरण दुस्तर हो। कर्मके विचारसे कावी 'मुहरिक'के

---

[1] आयुर्वेदमें कावी औषधको 'दहन' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'कॉस्टिक—Caustic', 'पायरोटिक्—Pyrotic', 'एस्कैरोटिक् Escharotic' कहते हैं।

समान है। द्रव्य—जलमिश्रित गंधकाम्ल, शोरकाम्ल, लवणाम्ल, फिटकिरी, कलकतार, (कसीस), चूना, तूतिया, (पीली फिटकिरी), संखिया और दालचिकना (सुलेमानी)।

काशिर—छिलका (कश्र) उतारनेवाले द्रव्य। वह द्रव्य जो लेखनीय शक्ति (कुव्वत जिला)के कारण त्वचाके मलो (विकृत भागो)का शोधन करता है और अस्थिके धरातलमे दूपित अशो और मलोका शोधन कर देता हैं। छीप और झाईं निवारण करनेवाली ओपधि। द्रव्य—देवकाडर (कवीकज), कुष्ठ, ईश्वरमूल (जरावद), भर्जित जौ, काला तिल, कुलजन, पोस्ता (खशखाश) और रामपथरी।

कासिरे रि(रे)याह तारिदुर्रियाह, दाफेअ रियाह, मुहल्लिल रियाह, मुफश्शी—वायुको तोडनेवाला द्रव्य। वह द्रव्य हैं जो आमाशय और अन्त्रकी पाचनक्रिया तीव्र करके वायुका उत्सर्ग करता है। वह द्रव्य जो अपने उष्ण एव रूक्ष वीर्यसे गाढे वायुको पतला करके उसका अनुलोमन करता है[1]। द्रव्य—हीग, पुदीना, भिलावाँ (बिलादुर), चिरायता, दूकू, अदरक, सत पुदीना, पीपल, वकुची, यास्मीन, सोठ, कपूर, नौसादर सुहागा, कालानमक, सौफ, कुटकी, अनीसून, जीरा, कालोजीरी, कुरूया (कारवीं), काचनमक (नमक शीशा), सैंधव (नमक ताम), लाहौरी नमक, देशी अजवायन, अजमोदा (करफ्स), सुदाब, सोआ (सिबित्त), दारचीनी, लौंग (करन्फुल), कालीमिर्च, लालमिर्च, कुलजन, कायफल, कबाबचीनी, इलायची, जावित्री, तेजपात, जुदवेदस्तर, अञ्जुदान, मुरमक्की (बोल), अगर, पीपलामूल, तज, जितियाना, तुम्बरू (कबाबे खदाँ), कलौंजी, सातर, पहाडी अजमोदा (करफ्स कोही)।

खातिम (बहुव० खवातिम)—व्रणको पूरा करनेवाला। व्रणको सुखाने और उसपर खुरड लानेवाला। वह द्रव्य जो व्रणके स्रावको सुखाकर और प्रगाढीभूत करके खुरड जमा देता हैं जिसमें वह आघातोंसे सुरक्षित रहता है। उसके भीतर असली त्वचा जम जाती है[2]।

वक्तव्य—कोई-कोई यूनानी वैद्य खातिम, मुन्दिल और मुल्हिमको सर्वदा पर्याय मानते हैं, पर कोई-कोई इनमें कुछ भेद करते हैं। द्रव्य—सब्ज तूतिया (नीलाथोथा), जलाई हुई सीप (सद्फ सोख्ता), एलुआ, शादनज, धोया हुआ चूना (चूना मग्सूल), अञ्ज़रूत, छडीला और घीकुआर।

गस्साल—धोनेवाला। वह द्रव्य जो अपनी आर्द्रता (रतूबत), प्रवाही स्वभाव (सैलान) या अपनी लेखनीय शक्ति (कुव्वत जिला)के कारण उन घटकोको विलीनीभूत करके धो डालता है, जो अवयवोके धरातल पर चिमटे होते हैं। इसका प्रवाही होना अनिवार्य है।

वक्तव्य—गस्साल और जाली दोनो गुणमें परस्पर समीपवर्ती हैं। द्रव्य—कोष्ण वा कुनकुना पानी, मधुशार्कर (माउलअस्ल), यवमड (आश जौ), छेनेका पानी (माउल्जुब्न) इत्यादि।

जाज़िब—दोप वा माद्देको खीचनेवाला (आकर्पण करनेवाला)। वह द्रव्य जो वाहिनियोको विस्फारित करके अपने लगे हुए स्थानकी ओर दोपको खीच लाये अथवा वह द्रव्य जो अपनी उष्णता और सूक्ष्मता (लताफत)के कारण दोप और द्रवको ऐसे स्थानपर खीच लाता है, जहाँसे दोपोत्सर्ग सुगम हो जाता है[3]। द्रव्य—जुदवेदस्तर,

---

१ कासिररियाह औषधको आयुर्वेदमें 'दीपनपाचन' (शा०), 'ग्राहि, उष्णसंग्राहक' (शा०), 'वातानुलोमन' (या कोष्ठवातप्रशमन) कहते हैं। पाश्चात्यवैद्यकमें इसे 'कार्मिनेटिव्स् Carminatives' कहते हैं।

२ खातिम औषधको पाश्चात्यवैद्यकमें 'इप्युलाटिक् Epulotic' वा 'सिकेट्राइज़ेण्ट् Cicatraizant' कहते हैं।

३ जाज़िब जाज़िबात (बहु०)को 'मुमीलात' भी कहते हैं। वेदना और शोथको कम करनेके लिए जब धातुओंकी वाहिनियोको सक्षोभक द्रव्यों (लाज़ेआत)से परिविस्तृत किया जाता है तब उक्त कर्मको इमाला (इमालए मवाद्द) कहा जाता है। उदाहरणत शिर शूलमें मस्तक पर कपूर और यकृत् शोथमें त्वचा पर राजिकाप्रलेप लगाया जाता है। उक्त अवस्थामें इन द्रव्योंको मुमीलात कहा जाता है। पाश्चात्य वैद्यकमें जाज़िब औषधको 'डेसिकेंट् Desiccant' कहते हैं।

गारीकून, पवांड, समस्त शोणितोत्क्लेशक (मुहम्मिर) द्रव्य, लहसुन, गधाबिरोजा, राई, और साफ़सिया।
जाज़िब औषध कई प्रकारके होते हैं—(१) कतिपय द्रव्य इतने प्रवल आकर्पणकारी (जाज़िब) होते हैं, कि तीर या वर्छीकी नोक, कण्टक और अस्थिकी किरच इत्यादि अर्थात् शल्यको शरीरके भीतरसे आहरण करके अर्थात् खीचकर बाहर निकाल देते हैं[1]। द्रव्य—मेंढक, कौडी, नेवला, केकडा, गोह और घोंघा (क्षुद्रशख)का मास। (२) वह द्रव्य जो जातिस्वरूपके कारण आकर्पण कर्म (जज़्ब) करते हैं, जैसे कातपापाण (मिक्नातीस) लोहेको। जो द्रव्य गाढी (गलीज़) वस्तुको आकर्षित कर लेता है, वह पतली (लतीफ़) वस्तुको आकृष्ट कर सकता है। परतु जिसका यह कथन जातिस्वरूपके कारण है, उसमें यह नियम लागू नही हो सकता। यही कारण है कि कातपापाण लोहेको तो आकर्पित करता है, किंतु घासके तिनकेको आकृष्ट नही कर सकता। (३) कतिपय विरेचन और वामक द्रव्य ऐसे भी हैं, जो श्लेष्मा और सौदाको आकर्षित करते हैं, परतु पित्त और द्रवाश (माइय्यत)को आकर्पित नही करते। कतिपय आकर्पणकारी द्रव्य ऐसे तीव्र प्रवेशनीय (शदीदुन्नफ़ूज़) होते हैं, कि वह दूरवर्ती स्थानोंसे दोपको खीच लाते हैं। गृध्रसी (इर्कुन्नसाऽ) और आमवातमें यह द्रव्य परम गुणकारी होते है।

जाली, मुजल्ली (बहुव०–मुजल्लियात)—धात्वर्थ 'जिला' अर्थात् स्वच्छता प्रदान करनेवाला। परिभाषामें वह द्रव्य, जो शरीर (त्वचा या अवयवके बाह्य धरातल)के स्रोतोके मुहानोंसे श्लेष्मा, मल (मैल-कुचैल) और लसदार द्रवो (रतूवतों)को विलीनीभूत वा लेखन (छील) करके छांट (छेदन कर) देता अर्थात् निर्मल कर देता है, जैसे—मधु, सिरका, इत्यादि[2]। द्रव्य—भिलावाँ, हडताल, जलाया हुआ कनेर (कनेर सोख्ता), कडुआ बादाम, मसूर, लहसुन, बूरेअरमनी, कुटकी, वकुची, हाऊबेर (अवहल), राई, अन्जरूत, अकरकरा, हलदी, आबनूस, शोरा, कपोतविष्ठा (पचाल कबूतर), जिफ्त, मिश्री वा कद, सूरजमुखी, मधु, मूलीकी पत्तीका स्वरस, तुख्म वलसाँ, फरफियून, लवण, साबुन, कलौंजी, ईरसा, फिटकिरी, गवक, चाकसू, शीरखिश्त, जौ, खरबूजाकेबोज, दारचीनी, चीता, नकछिकनी, जलाया हुआ नाग।

तिर्याकाते सुमूम (तिरयाक = प्रतिविप, अगद)—तिरयाकातसे क्या विवक्षित है? तिरयाकातसे वे विशिष्ट औषधियाँ अभिप्रेत हैं, जो विशेप विपद्रव्यके साथ मिलकर उनके विपप्रभावको प्रभावहीन वा निष्क्रिय कर देती हैं, चाहे वह प्राकृतिक हो अथवा कृत्रिमरूपसे प्रस्तुत की गई हों[3]। तिरयाक़ात (अगद) विपद्रव्योंसे मिलकर इनके प्रभावको किस प्रकार निष्क्रिय (प्रभावहीन) करते हैं? इस प्रश्नका उत्तर यह है, कि तिरयाकजन्य कर्मोंकी उपपत्ति (नौइय्यते अमल) देना यद्यपि सरल नहीं। तथापि सक्षेपमें यह कहा जा सकता है, जो अनेक अवसरोंपर यथार्थ उतर सकता है, कि अगदौषध शरीर और रक्तमें शोपित होनेके उपरात जब विपद्रव्योके साथ मिलते हैं तब वह विपद्रव्य (सम्मी मवाद्) अपने पूर्व सगठन और स्वरूप (नौइय्यत) पर शेप नही रहते। अस्तु, उनके पूर्व गुण-कर्म (प्राणनाश और शरीरविकार) भी परिवर्तित हो जाते हैं। नीचे दिये हुए उदाहरणसे यह बात भली-भाँति समझमें आ सकती है—

मुल्लानफ़ीस और अन्यान्य प्राचीन यूनानी वैद्योंने लिखा है, कि अम्लता (हुमूज़त-तुर्शी) और क्षारत्व (बोरक़िय्यत—शोरिय्यत)में प्रवल शत्रुता है। इनमेंसे हर एक दूसरेका शत्रु है। जब ये दोनों एक स्थानमें एकत्रित होते हैं, तब परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया और विघटन उपस्थित हो जाता है। प्रत्येक दूसरेकी तीक्ष्णता और तीव्रता

---

१ आयुर्वेदमें ऐसे द्रव्यको 'विशल्यकृत्', 'विशल्यकरणी' और 'शल्यापहर्ता' कहते है।

२ आयुर्वेदमें 'जाली' औषधको लेखन वा लेखनीय और छेदन वा छेदनीय कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें ऐसे द्रव्यको 'डिटर्जेण्ट Detergent' कहते हैं।

३ यूनानी वैद्यकमें तिरयाकको 'फ़ादजहर' भी कहते हैं। आयुर्वेदमें तिरयाक़को 'विषघ्नन' 'विपप्रशमन' और 'अगद' तथा पाश्चात्य वैद्यकमें 'एण्टिडोट्स Antidotes' कहते हैं।

तोडना चाहता है। यहाँतक कि, जब यह क्रिया-प्रतिक्रिया और प्राकृतिक संघर्ष किसी सीमा पर पहुँचकर समाप्त होता है, तब न अम्ल द्रव्यकी पूर्ववर्ती अम्लता शेष रहती है और न क्षारद्रव्यकी क्षारीयता। किंतु यदि दोनो प्रमाण और गुणके विचारसे परस्पर समतुल्य न हो, प्रत्युत एक प्रधान और दूसरा पराभूत हो तो उक्त संघर्षके उपरात योगसमुदायमें प्रधान उपादानका स्वाद किसी सीमातक शेष रहेगा—वह किसी भाँति अम्ल होगा या क्षारीय। इसी सिद्धात पर विषघ्न या अगद द्रव्य (तिरयाकी मवाद्द) और विषद्रव्य (सम्मी मवाद्द)को अनुमान किया जाय। यह मान लिया जाय, कि एक विषद्रव्य (सम्मी मवाद्द) अम्ल है और उसके मुकाबिलेमें कोई क्षारद्रव्य अगदरूपसे पहुँचाया गया। जब यह द्रव्य उभय आमाशय, अन्त्र या वाहिनियोमें परस्पर मिलेंगे, तब अम्लविषद्रव्य उस क्षारीय अगदद्रव्यके साथ मिलकर अपने पूर्ववर्ती समवायीकारण उपादानो (अज्ज़ाऽ तरकीबी) पर स्थिर नही रहेगा। इसलिये उसके गुण-धर्म (खवास) भी परिवर्तित हो जायेंगे। इसी प्रकार अन्यान्य विषोके लिए, चाहे वे अम्ल एव क्षारीय न हो, कुछ विशेष आगदिक द्रव्य होते हैं जो परस्पर संगठित वा समवेत होने (तरकीब पाने)की विशेष क्षमता (खुसूसी इस्तेदाद) रखते हैं। विशेष क्षमतासे यह अभिप्रेत है, कि यह आवश्यक नही है, कि एक द्रव्य यदि एक विषका परमोपादेय अगद है तो वही द्रव्य अन्यान्य विषोके लिए भी यही आगदिक वा विषघ्न कर्म करे। जिस प्रकार यह अनिवार्य नही, कि जो द्रव्य उदरके केंचुओ (हय्यात अम्आऽ)को नष्ट करता है, वही द्रव्य कद्दूदानोको भी नष्ट कर डाले। यद्यपि यह सभव है कि अनुभवसे यह सिद्ध हो जाय कि एक ही द्रव्यसे उदरके समस्त कृमि नष्ट हो जाते हैं, परतु अनुमानत यह नही कहा जा सकता कि प्रत्येक कृमिघ्न द्रव्यके लिए ऐसा होना अनिवार्य है। इसी प्रकार इसकी भी कोई उपपत्ति नही दी जा सकती, कि सर्पविष मनुष्यके लिए प्राणनाशक क्यो है? इसी उदाहरण पर अन्यान्य खनिज, उद्भिज्ज और जाङ्गम विषोका अनुमान किया जा सकता है। कुचलेका जो प्रभाव श्वान पर होता है, और संखियाका जो प्रभाव चूहे पर, यह आवश्यक नही कि समस्त प्राणियों पर यही प्रभाव प्रगट हो। इसी कारण कुचलाको अरबीमें खानिकुल्कल्ब (कुत्तेका गला घोट देने-वाला) और संखियाको सम्मुल्फार (मूषकविष) कहा जाता है। बिल्कुल यही दशा अगदों (तिरयाक़ात) और विषघ्न वा प्रतिविषो (फादज़हर)का है, जो विशेष विषोके विरुद्ध कार्य किया करते है। यह वर्णन वास्तविक अगदौ-षधों (हकीकी तिरयाकात)का है—वरन् कभी भूलसे ऐसी वस्तुओको भी अगद कह दिया जाता है, जो यद्यपि प्रत्यक्षरूपसे विषद्रव्योके साथ मिलकर उसको हीनवीर्य नही बना सकती, परतु वह किसी अन्य प्रकारसे विषके कार्यमें बाधक हो जाती हैं—उदाहरणत संखियाके सेवनके उपरात घृत पिला दिया जाता है जिससे संखियाके विलिनीभवन (इन्हलाल) और शोषण (इनजज़ाब)में बाधा उत्पन्न हो जाती है। इसी विचारसे उपलक्षणरूपसे (मिजाज़न्) घृतमें अगदगुण (तिरयाकिय्यत) स्वीकार किया जाता है, परतु यही घी अहिफेन भक्षणोत्तर यदि पी लिया जाय तो वह अहिफेनके विषप्रभाव और उसके विलीनीभवन और शोषणमें परम सहायक सिद्ध होता है (कुल्लियात अदविया)।

दाफेअ तअफ्फुन, मानेअ उफूनत (प्रकोथ (उफूनत)को दूरकरनेवाला)। वह द्रव्य जो प्रकोथोत्पादक माद्दा (मवाद्द तअफ्फुन)का संगठन बदलकर या किसी और प्रकार रुकावट पैदा करके प्रकोथकी क्रिया (अमले तअ-फ्फुन)को बद कर देता है। वह द्रव्य जो प्रकृत देहाग्नि (हरारते गरीज़ी)को शक्ति प्रदान करे जिसमें अप्रकृत देहाग्नि (हरारते गरीबा) प्रबल न होने पाये, या अप्रकृत देहाग्नि (हरारते ग़रीबा)को शक्तिहीन करे जिसमें वह अपने कर्मसे बाज रहे, या द्रवोंको शुष्क कर दें, जिसमें अप्रकृत देहोष्मा उनमें प्रकोथ (तअफ्फुन) उत्पन्न न कर सके। मानेआत उफूनत उन द्रव्योंको कहते हैं, जो प्रकोथकी क्रियाको अवरुद्ध कर देते है अर्थात् प्रकोथजनक द्रव्य (माद्दा)को नष्ट कर देते हैं, जैसे—कपूर, दारचिकना, तूतिया, नीम, इत्यादि[1]।

---

१ आयुर्वेदमें मानेआत उफूनत औषधको 'कोथप्रशमन' वा 'कोथप्रतिबधक' कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इन्हें 'ऐण्टिसेप्टिक्स् Antiseptics' कहते हैं।

वक्तव्य—कतिपय द्रव्य ऐसे भी हैं, जो उस दुर्गन्धको दूर कर देते हैं, जो प्रकोथकी क्रियामे उत्पन्न हो जाती है। चाहे यह प्रकोथ (उफूनत)की मूल सामग्रीको नष्ट करे या नही। इन द्रव्योको उनसे पृथक् समझनेके लिए दाफेआत नत्न[1] (मुज़य्यिलुन्नत्न, मुजय्यितुर्राइहा, दाफेबदबू) कहा जाता है। प्राय मानेआत उफूनत (कोथ-प्रशमन) दाफ़ेआत नत्न (दुर्गन्धहर) है। शुष्क कोयलेसे भी दुर्गन्धिका निवारण हो जाता है। कडवा तेल (सरसोका तेल) वसायँध और दुर्गन्धिको बहुत शीघ्र दूर कर देता है। कोथप्रशमनद्रव्यके पाक और परिवर्तनकी क्रिया समाप्त हो जाने और रक्तमें शोषित होनेके उपरात आया उनकी शक्ति इतनी शेष रहती है कि वह आतरिक द्रवोके प्रकोथको दूर कर सके ? यह सदेहका स्थान है, यद्यपि यह इस अभिप्रायके लिये उपयोग किये जाते हैं। सदेहका कारण यह है कि कोथप्रशमन द्रव्य सामान्यतया विषैले हैं, जो अग प्रत्यगकी धातुओको भी नष्ट कर देते है। इसलिये इन्हे अत्यल्प प्रमाणमें भीतर प्रविष्ट किया जाता है। द्रव्य—पारद, कोयला, राल, रोगन सरो, देशी अजवायन, रसकपूर, शोरेका तेज़ाब, गधक, दालचीनीका तेल, कायफल, जगार, नमकका तेज़ाब, जिफ्त, सातरफारसी, खज़ामा, दारचिकना, हीग, निफ्त, लौंग, बोल (मुरमक्की), तूतिया, सतपुदीना, बोरक, दालचीनी, तमाकू, विरोजा, जावित्री, वलर्सा, नीम, सत अजवायन, तेजपात, हाशा, लोबान, कपूर, लौंगका तेल और पुदीना।

दाफेअ तशन्नुज (आक्षेप (तशन्नुज) निवारण करनेवाला)—वह द्रव्य जो वातनाडियो और वातकेंद्रोकी आकुचन शक्तिको कम करके वातनाडियोंके आक्षेपजनक गुणको दूर कर देता है। जो द्रव्य मासपेशियोकी अनियमित और अस्वाभाविक क्रिया अर्थात् आक्षेप (तशन्नुज)को निवारण करे, वह दाफेअ तशन्नुज है[2]। द्रव्य—धतूरेकी पत्ती, यवरूज, उशक, अहिफेन, सफेद कसीम, ऊदसलीब, हीग, सर्पगधा (छोटी चदड), कायफल, जुदवेद-स्तर, शूकरान, रोगन सुदाब, तमाकू, जदवार, लौंग, करजुआ (कजा), अञ्जन्त, वालछड (सुम्बुलुत्तीब), कुष्ठ, वारहसिंगेकी चर्वी (पिया ईल), कपूर, रोगन पुदीना, हाऊबेर, अक्शावँवर, विरोजा, पिपलामूल, इजखिर, भग, सोठ और उस्तूखूदूस।

दाफेअ हुम्मा—वह द्रव्य जो प्रकृतावस्था वा समावस्थामे अधिक बढे हुए देहाग्नि (अर्थात् सताप)को कम कर देता है[3]। द्रव्य—करजुवा, पित्तपापडा (शाहतरा), खाकसी, कसूस, कालोजीरी, गिलोय, चिरायता, बकाइन, पलासपापडा, खुबानी, अभ्रक, नीम, ब्रह्मदण्डी, जदवार, फालसा, अतीस, गूमा, विषखपरा, फिटकिरी, अनीसून, अफसतीन, घुवाई, काकडासीगी, समुद्रफल, दरियाई नारियल, कपूर, गाफिस, लोबान, मुलेठी, वशलोचन, कुटकी, वरञ्जामिफ, छोटी कटाई, अहिफेन, वछनाग (बीश), बादावर्द, निगदबावरी और अडूसा। नियतकालिकज्वरनाशनके लिये देखो 'मानेअ नौबत हुम्मा'।

नफ्फाख, मुनफ्फिख (अरबी नफ़्ख, नफखा = आनाह, अफारा)। अफारा (नफख) उत्पन्न करनेवाला, वायुकारक, वायु पैदा करके उदर या किसी अवयवके गुहा या आशयको परिविस्तृत करनेवाला। वह द्रव्य जो अपने मलभूत द्रवों (रतूबत फुजलिय्या)के कारण प्रकृत देहाग्निको विलीनीभूत करनेका सामर्थ्य प्रदान नही करता, अपितु शरीरके भीतर वायु (रियाह) उत्पन्न करता है, जो शीतल एव प्रगाढ़ीभूत होता है। परतु शरीरमें चलता-

---

१ आयुर्वेदमें दाफेआतनत्न औषधको 'दुर्गन्धहर' और 'दुर्गन्धिनाशन' कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'डिओडोरेण्ट्स Deodorants' कहते है।

२ आयुर्वेदमें दाफ़ेअ तशन्नुज औषधको 'विकाशी(सी)' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'ऐन्टिस्पैज्मोडिक्स Antispasmodics' कहते हैं।

३ आयुर्वेदमें दाफ़ेअ हुम्मा औषधको 'ज्वरहर', 'ज्वरघ्न' या 'ज्वरप्रशमन' कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'ऐन्टिपाइरेटिक्स Antipyretics', 'ऐन्टिफेब्राइल Antifebrile' या 'फेब्रिफ्यूज Febrifuge' कहते हैं।

फिरता रहता है[1]। द्रव्य—बाकला, लोबिया, गोभी, प्याज, करमकल्ला, चुकदर, मोठ, पिंडालू, बगुलाका मास, मालदह आम, शकरकद, समुदरशोख, शलगमके पत्ते, उडद, नाशपाती, मुनमुना, अनार, अञ्जीर, कटहल, मटर, गूवानी, कतीरा, कच्चा मधु (अस्ल खाम) और उन्नावका अतिसेवन।

नाशिफ, मुनश्शिफ (चूसनेवाला = आकर्षण वा शोषण करनेवाला)। वह द्रव्य जो बहते हुए द्रवको खीच लेता है (शोषण कर लेता है)[2]। देखो 'मुजफ्फिफ'। द्रव्य—बिना बुझा चूना, अस्पज, जहरमोहरा।

मानेअ अरक—स्वेद या पसीना (अरक) रोकनेवाला। वह द्रव्य जो स्वेदग्रथियोंपर या तत्सबधी वातनाडियोपर प्रभाव करके स्वेदकी उत्पत्ति कम करनेके कारण या त्वगीय स्रोतोको अवरुद्ध करनेके कारण स्वेदकी अतिप्रवृत्ति (इखराज)को कम या बद कर दे[3]। द्रव्य—शैलम, यबरूज, गारीकून, कुचला, धतूरा, खुरासानी अजवायन, येन-केनप्रकारेण शीत प्रयोग।

मानेअ तौलीद किर्म—उदरमें कृमियोंकी उत्पत्तिको रोकनेवाला। वह द्रव्य जिसके उपयोगसे वल प्राप्त होता है, और उदरमें कृमि उत्पन्न नहीं होने पाते। द्रव्य—हीराकसीस (परक्लोराइड ऑफ आयर्न) और लोहके अन्यान्य यौगिक, कुचला, क्वासिया, चिरायता।

मानेअ नौबत (हुम्मा) (= बारी रोकनेवाला, पर्यायनिवारक)। वह द्रव्य जो पर्यायजन्य रोगो-बारीके रोगो (अम्राजनाइबा)के विशेष रोगजनक दोष वा विष (माद्दे मर्ज) पर प्रभाव करके उसकी क्रियाको सामयिक तौर पर प्रभावहीन और सर्वथा निष्क्रिय करके बारीको रोक देता है, उदाहरणत ऋतुज्वरो (हुम्मयात इजामिया)के लिये सखिया आदि[4]। नियतकालिकज्वरनाशन द्रव्य यह है—सखिया, अतीस, करज, हडताल, तुलसीपत्र और नूतन द्रव्योमेंसे प्रसिद्ध द्रव्य कुनैन (वरकीन) है, जो एक वृक्षकी छाल (वर्क)से सत्त्वरूपमें प्राप्त किया जाता है। इसी तरह कभी इस उद्देश्यके लिये रसवत, फिटकिरी और दारुहलदी इत्यादि द्रव्य उपयोग किये जाते हैं।

मानेआत अत्श—देखो 'मुसक्किन अत्श'।

मानेआत अत्स—देखो 'मुसक्किन अत्स'।

मानेआत उफूनत—देखो 'दाफेअ उफूनत (तअफ्फुन)'।

मानेआत कै—देखो 'मुसक्किन कै'।

मानेआत हुल्लाम रद्दिया (= आकुलताकारक स्वप्न वा कुस्वप्न निवारण करनेवाले द्रव्य)। द्रव्य—दरूनज, खुरफा, अकरकरा, सुवर्ण, स्फटिक (बिल्लौर), जैतूनकी लकडी गलेमें लटकाना, फिटकिरी सिरहाने रखना इत्यादि।

मुअज्जिलात विलादत(= प्रसवविलब निवारण करनेवाला, आशुप्रसवकारक, सुखप्रसवकारक)। उग्र सग्राही गुण (कब्ज)से या विरेचनीय होनेसे ये द्रव्य शिशुका शीघ्र प्रसव कराते है[5]। द्रव्य—इन्द्रायनका फल, निलोफरकी

---

१ आयुर्वेदमें नफ्फाख या मुनफ्फिख औषधको 'आनाहकारक' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'फ्लैचुलेण्ट Flatulent' कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें नाशिफ या मुनश्शिफ औषधको 'उपशोषण' (च०) या 'व्रणलेखन' (सु०) कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'ॲब्सॉर्वेन्ट Absorbent' कहते हैं।

३ आयुर्वेदमें मानेअ अरक़ औषधको 'स्वेदापनयन' (च०) और पाश्चात्य वैद्यकमें 'ऐन्हाइड्रोटिक्स Anhydrotics', कहते हैं। यूनानी वैद्यकमें इसे हाबिस अरक भी कहते हैं।

४ आयुर्वेदमें मानेअ नौबत हुम्मा औषधिको 'कालज (नियतकालिक) ज्वरनाशन' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'ऐन्टिपीरिओडिक्स Antiperiodics' कहते हैं।

५ पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'ऑक्सिटोसिक्स Oxytocics' कहते हैं।

जड, मेथीके बीज, वारतंगका उसारा, तुख्मखशखाश सियाहसे आप्लुत किया हुआ अलत्ता स्थापनकरना, दारचीनी खिलाना, मूँगा दाहिनी रानमें बांधना, सुदावका गोद योनि (फर्ज)में धारण करना।

मुअत्तिश—(तृष्णाजनक। पिपासा उत्पन्न करनेवाला द्रव्य)।

मुअत्तिस अतूस, उत्तास—

(अरबी उतास, अतसा = छिक्का, छीक) छीक लानेवाला। वह द्रव्य जो अपनी प्रवेशनीय शक्ति (कुव्वत नफूज) और उष्णवीर्यसे मस्तिष्कके मलोको छिक्का (छीक)के द्वारा नथुनोंके मार्गसे उत्सर्गित करे[1]। द्रव्य—नकछिकनी, वर्ग तिब्बत (काश्मीरी पत्ता), तमाकू, खर्बक सब्ज, कुदुश, अर्कक्षीर, रीठा, जुदवेदस्तर।

मुअद्दिल (बहुव० मुअद्दिलात)–दोषोको स्वाभाविक स्थिति वा समावस्था (एतदाल) पर लानेवाला द्रव्य। परिवर्तक द्रव्योंका वह एक बहुत बड़ा गण, जो शारीरिक द्रवों और शरीरके अंगोकी धातुओंमें कुछ इस प्रकारके गुप्त परिवर्तन पैदा करता है, जिनके अतस्तल तक मानवी बुद्धि अब तक नही पहुँच सकी और जिनकी असली हकीकत एक अज्ञेय रहस्य बना हुआ है, यद्यपि अनुभव अहर्निश उनकी सत्यता प्रमाणित करता रहता है, और प्रत्येक वैद्यके उपयोगके रोगमें प्रतीकारार्थ नित्यप्रति आते रहते है। ऐसे द्रव्य जब रक्त और शारीरिक द्रव्योमें प्रविष्ट हो जाते है, तब यद्यपि किसी अगमें इनसे कोई प्रगट परिवर्तन नही होता, किन्तु वह रुग्णावस्था दूर हो जाती है जिसके प्रतिकारके लिए वह उपयोग किए जाते है। ऐसे द्रव्योको सामूहिक तौर पर मुअद्दिलात[2] (या मुअद्दिलात या मुनव्विअ) कहा जाता है। मुसफ्फियाते खून, मुन्जिजात और अक्सीरबदन आदि इसके भेद है। मुअद्दिलात (संशमन द्रव्यों)मेंसे कुछ द्रव्य मुसफ्फियातके अतर्गत और कुछ मुन्जिजातके अतर्भूत लिखे गये हैं।

मुअद्दिलात खून—देखो 'मुसफ्फियात खून'।

मुअद्दिलात बलगम—कफको प्रकृतिस्थ (मोतदिल) करनेवाले अर्थात् कफसंशमन। द्रव्य—सौंफ, अनीसून, जीरा, दालचीनी, मुलेठी, सफेद इलायची, सुर्ख इलायची, मवीज, तुलसी, बालछड, खुब्बाजी, खितमी, गुलाबपुष्प, अजीर, हसराज, बिरजासफ, बादावर्द, शुकाई, तुख्म कसूस, गुलकद असली।

मुअद्दिलात सफरा—पित्तको मोतदिल (प्रकृतिस्थ) करनेवाले अर्थात् पित्तसंशमन। द्रव्य—कासनी, कुलफेके बीज, इसबगोल, तुख्म खियारैन (खीरा-ककड़ीके बीज), धनियाँ, सफेद चदन, तुख्म काहू, कपूर, बिहीदाना, पालकके बीज, पेठाके बीजकी गिरी (मग्ज), गुलबनफशा, तरबूजके बीजकी गिरी, गुल निलोफर, मीठे कद्दूके बीजकी गिरी।

मुअद्दिलात सौदा—सौदाको प्रकृतिस्थ (मोतदिल) करनेवाले अर्थात् सौदासंशमन। द्रव्य—श्लेष्मातक (लिसोढा), गावजबान, खरबूजेके बीज, मुलेठी, आकाशबेल, अजीर, मवीज, उस्तूखूदूस, हसराज, शाहतरा, शुकाई, उन्नाब, बादरजबूया (बिल्लीलोटन), बादावर्द।

मुअर्रिक[3] (स्वेद वा पसीना लानेवाला। अरबी अरक = स्वेद या पसीना)—वह द्रव्य जो त्वचाकी क्रिया संवर्धन करके अवरुद्ध या पतले द्रवको त्वचाकी ओर उत्तेजना देता है, जिसमें वे स्रोतोकी राह उत्सर्गित हो

---

१ आयुर्वेदमें मुअत्तिस औषधको 'छिक्काजनन' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'स्टर्न्युटेटरीज़ Sternutatories' या टार्मिक् Ptarmic कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें मुअद्दिल औषधको 'संशमन' या 'शमन' कहते है। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'आल्टरेटिव्ह् Alterative' कहते है।

३ मुअर्रिक द्रव्यको आयुर्वेदमें 'स्वेदन' या 'स्वेदजनक' कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'डाएफॉरेटिक्स Diaphoretics' या 'सुडोरिफिक्स Sudorifics' कहते है।

जायें। द्रव्य—कपूर, कल्मीशोरा, लहसुन, मद्य, रोगन विरोजा, अहिफेन, चाय, मूली, जगली तमाकू, वछनाग, सूरजान, गधक, माज़रियून, उशवा, अकरकरा, गाफिस, आककी जडकी छाल, उकहवान, चोवचीनी, अन्जीर, अजमोदा, खाकसी, उष्ण जल, (शूकरान, अहिफेनके योग, अहिफेन सत्व-मॉर्फिया, नौशादर, सत कपूर, तारपीनका तेल और कयपूतीका तेल)।

मुकत्ते (अ) (काटने-छांटनेवाला, छेदनकर्त्ता, वहुव० मुकत्तेआत, कतूअ = काटना, कतरना, पृथक् करना, छेदन)। वह द्रव्य जो अपनी सूक्ष्मता (लताफत) एव तीक्ष्णतासे शरीरावयवके पृष्ठमें प्रवेश करके उसमें चिपके हुए लेसदार द्रव और प्रगाढ़ीभूत दोपको काट-छांटकर पृथक् कर देता है। अथवा उसको सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणोंमें विभाजित कर देता है जिसमें उक्त अवयवसे दोपोत्सर्ग सुगम हो जाता है। ऐसे द्रव्यमें सूक्ष्मताके साथ प्रवेशनीय शक्तिका अधिक होना अनिवार्य होता है। उक्त कर्म कभी उत्तापकी अधिकताके कारण होता है, जैसा चरपरे द्रव्योंमें। कभी उत्तापकी अधिकतासे नही होता, जैसे वह द्रव्य जो अम्ल होते हैं[1]। गुणकर्ममें 'जाली' द्रव्य इसके समान हैं। द्रव्य—राई, हालो, इजखिर, पीलू, अञ्जुदान, सावुन, रेवदचीनी और ज़रावद।

मुकर्रेह (वहुव० मुकर्रेहात। कर्ह, कर्हा = सपूय व्रण अर्थात् व्रण(क़र्हा)उत्पन्न करनेवाला द्रव्य। वह द्रव्य जो त्वचा और श्लैष्मिककलामें व्रण (ज़ख्म) उत्पन्न कर दे। अपनी तीक्ष्णता और उष्णताके कारण ऐसे द्रव्य जिस अग पर लगाये जाते हैं, उसकी रचना वा सगठन (मिज़ाज)को विकृत कर देते हैं या उन द्रवोंको दूपित कर देते है जो उस अगमे सचित हो और इस कारण वहां व्रण उत्पन्न हो जाता है[2]। द्रव्य—चित्रक पत्र, भिलावां, पलासपापडा, वनपलाण्डु वा कांदा (प्याज, असल), थूहट, चूना, अर्कक्षीर, लहसुन, मवीजज, हडताल, प्याज, कपोत-विष्ठा, चमेली, कुछ, पुदीना, सावुन, मद्य, फर्फियून, मूसाकानी, जयपाल, रतनजोत, तेलनीमक्खी, हर प्रकारका अम्ल (तेजाव)।

मुकल्लिलात लव्न—वह द्रव्य जो स्तन्य (दुग्ध)की उत्पत्तिको कम कर देते हैं या विल्कुल वद कर देते है[3]। जैसे—यवरूज इत्यादि।

मुकव्वी[4] (वहुव० मुकव्वियात)—(अरवी कुव्वत, कुव्व (वहुव० कुव्वा) = धात्वर्थ—वल, शक्ति)। शक्ति या वल प्रदान करनेवाला आहार या औपध। वह औपध वा आहार जो शरीरावयवकी भौतिक स्थिति (किवाम) अर्थात् धातु (साख्त)को एव उसके मिज़ाजको समावस्था (एतदाल) पर लाये या प्रकृतिस्थ करे। अस्तु, जव अगकी रचना (साख्त) और उसका मिज़ाज प्रकृतिस्थ हो जायगा, तव उसमें स्वभावत स्वयमेव वल-वीर्य उत्पन्न हो जायगा। जितने द्रव्य सग्राही हैं, वह मुकव्वी (वल्य) है। ये द्रव्य अपने प्रभावसे (विल् खासिय्यत) उक्त कर्म प्रकाशित करते हैं—जैसे तिरयाक़ और गिलमखतूम अथवा अपने प्रकृतिसाम्य (मिज़ाजके एतदाल)के कारण उक्त अवस्थामें ये अधिक शीतलको उष्ण कर देते हैं और अधिक उष्णको शीतल, जैसा कि जालीनूसने रोगनगुलके विपयमें विचार किया है।

---

१ मुकत्तेअ द्रव्यको आयुर्वेदमें 'छेदन' या 'छेदनीय' कहते है।

२ मुकर्रेह औषधको आयुर्वेदमें 'व्रणकारक' और पाश्चात्यवैद्यकमें 'अल्सरेटिव्ह Ulcerative' या 'कास्टिक Caustic' कहते हैं।

३. मुकल्लिलात लव्न द्रव्यको आयुर्वेदमें 'स्तन्यनाशन' और आंग्लवैद्यकमें 'लैक्टिफ्यूज Lactifuge' कहते हैं।

४ आयुर्वेदमें मुकव्वीद्रव्यको 'वल्य', 'बलवर्धन' और पाश्चात्यवैद्यकमें 'टॉनिक्स Tonics' कहते हैं।

मुकव्वी(मुकव्वियात)अस्नान व लिस्सा–दाँतो और मसूढोको बलप्रदान करनेवाला द्रव्य। इस प्रकारके द्रव्य प्राय सग्राही (काबिज) और कतिपय मक्षोभजनन (लाजेअ) और कोथप्रशमन (मानेअ उफूनत) होते हैं। द्रव्य—लौहचून (बुरादा आहन), ब्राह्मी, प्रवालमूल (बुसद), जलाया हुआ भिलावाँ, अनारको छाल (पोस्त अनार), बबूलकी छाल, मौलसीरीकी छाल, फिटकिरी, जलाया हुआ तम्बाकू, भुना हुआ तूतिया, जिरजीर, हब्बुलआस, दाना इलायची, जीरा, सुपारी, सत अजवायन, सत पुदीना, वशलोचन, अकरकरा, कुष्ठ, सावरशृंग भस्म (कर्नुलईल सोख्ता), कबाबचीनी, कसीस, समुद्रफेन, गुलनार, लोबान, लौंग, माजू, छोटी और बडी माई, कालीमिर्च, मिस्सी, नागरमोथा, मस्तगी, पीली हड, गुलावपुष्प, वज्रदती, हड पीली, हडकी जली हुई गुठली, सदरूस, सगजराहत, मसूर, इमलीके बीज, मुक्ता, सिरसके बीज, पीली कौडी।

मुकव्वी आजाए रईसा (उत्तमागो (आजाए रईसा)को बल प्रदान करनेवाले द्रव्य)। यद्यपि अधोलिखित द्रव्योंको यूनानी वैद्योने मुकव्वी आजाए रईसा लिखा है, किन्तु यदि गवेषणात्मक दृष्टिसे देखा जाय तो इन द्रव्योके अधिकाश गुण स्वभाव (खुसूसिय्यत) एक-एक अवयवसे सबद्ध है, जिनसे साहचर्यके कारण (बिल्‌अर्ज) अन्यान्य अवयव भी प्रभावित होते है। द्रव्य—आमला, अगर, पोस्ततुरज, जदवार, चोबचीनी, रुदती (रुद्रवती), केसर, जमुर्रद (पन्ना), जहरमोहरा, कुष्ठ, गाजर, गावजबान, गुलमुर्ग, मुक्ता, कस्तूरी (मुश्क)।

मुकव्वी आसाब (वातनाडियो (आसाब)को बल प्रदान करनेवाले)। द्रव्य—उस्तुखुदूस, मुलेठी, बाबूना, बालछड, ब्राह्मी, भिलावाँ, बीरबहूटी, तालीमपत्र, हरातूतिया (तूतियाए अख्जर), सालबमिश्री, जदवार, जुदबेदस्तर, स्तन्य (हलवा), मण्डूर (लोहकिट्ट), छुहारा, सखिया, फरफियून, फौलाद, कुष्ठ, कायफल, कुचला, कनीस सफ़ेद, कालीमिर्च, मोथा, मैदालकडी और नकछिकनी।

मुकव्वी (मुकव्वियात) कल्ब—हृदय (कल्ब)को बल वा शक्ति प्रदान करनेवाले द्रव्य।

वक्तव्य—हृद्य औषधियोकी जो सूची प्राचीन यूनानी वैद्योने लिखी है, उसमें भी बहुत विस्तार किया गया है। उनमें कतिपय द्रव्य प्रत्यक्ष हृदय-बलदायक हैं तो कतिपय गौण (बिल्‌अर्ज)। हृदय पर प्रभाव करनेवाले द्रव्योंमेंसे कतिपय द्रव्य हृदयकी आकुचन शक्तिको बढा देते हैं, जिससे नाडी बलवती हो जाती है, चाहे उसकी मद वा शीघ्रगामिनी चाल पर इसका कुछ प्रभाव न हो। इनको मुकव्वियात कल्ब[1] कहते है। अस्तु, जगली प्याज (कांदा), चाय और कहवासे हृदयकी आकुचन शक्ति बढ जानेके साथ हृदयकी गति तीव्र हो जाती है, जिसका पता नाडी देखनेसे चल सकता है अर्थात् उक्त अवस्थामें नाडी बलवती और शीघ्रगामिनी होती है। कपूरके सेवनसे हृदयकी आकुचनकी शक्ति बढ जाती है, जिससे नाडी बलवती हो जाती है, परतु इससे नाडी और हृदयकी मद वा शीघ्रगामिनी चालोपर कोई प्रभाव नही पडता। मद्य, कुचला, सखिया, कस्तूरीके उपयोगसे हृदयकी आकुचन शक्ति और नाडीके बलवती होनेके साथ-साथ हृदय और नाडीकी गतियाँ भी तीव्र हो जाती हैं। ऐसे द्रव्यको कभी (मुहर्रिकात कल्ब = हृदयोत्तेजक) भी कहते हैं। द्रव्य—आँवला, अबरेशम, अगर, इलायची, अमरूद (मीठा), अनार, अनन्नास, बालगू, बादरजबूया, ताम्बूलपत्र, प्रवालमूल, बहमन, गुलाबासकी जड, पिस्ता, पिस्ताके बाहरका छिलका, पोस्त तुरज (बिजोरेनीबूका छिलका), कादा (प्याज, असल), पेठा, तुम्मरहा, जदवार, चकोतरा, चौलाई, छडीला, हब्बुल् आस, खजामा, खस, कुलजन, दारचीनी, दरूनजअकरबी, जरिदक, जरबाद, केसर, जमुर्रद (पन्ना), जहरमोहरा, मल्ल, बालछड, सेब, चदन, अर्कबेदमुश्क, अर्क बेदसादा, अर्क केवडा, अबर, ऊदसलीब, ऊदगर्की, फालसा, फरञ्जमिश्क, फौलाद, फ़ीरोजा, कहवा, कपूर, कुचला, कसेरू, धनियाँ, कहरुवा, गाजर, गावजबान, गिल अरमनी, गुलचाँदनी, गुलदाउदी, गुलसुर्ख, गुलसेवती, गुलगुडहल, गिल मख्तूम) गुलाब(अर्क गुलाब), धोया या शुद्ध किया हुआ लाजवर्द, लौंग, लीची, मुक्ता, कस्तूरी, मस्तगी, मुडी, मोथा, नारगी, नाशपाती, नागकेशर, नाना (पुदीना), सुवर्णका

---

१ आयुर्वेदमें मुकव्वी क़ल्ब औषधको 'हृद्य' वा 'हृदयबलदायक' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'कार्डिअक टॉनिक Cardiac tonic' कहते है।

वर्क, चांदीका वर्क, याकूत, (इमली, नीबूका फूल, वशलोचन, उस्तुखूदूस, दोनो वहमन (सफेद वहमन, लाल वहमन), वसफाइज, तुलसी, रेवास, नख (अज्फारुत्तीव), धनियेके वीज, अडा, निलोफर, पान, पीली हड, सतरा, चमेली, नागरमोथा, शकाकुल, नरकचूर, यशव, चोबचीनी, सुपारी और डिजिटेलिस)।

मुकव्वियात खून (रक्त (खून)को वलवान् (कवी) वनानेवाला द्रव्य)। वह द्रव्य जो शोणितके उन साद्री-भूत उपादानोको वढाता है जिनसे रक्तमें शक्ति और लाली वढती है[१]।

वक्तव्य—असख्य द्रव्य इस प्रकारके विद्यमान हैं, जो रक्तके समवायीकरण उपादानों (अज्ज़ाऽ तरकीवी)में विभिन्न प्रकारसे प्रभाव करते है। परतु उनके कर्मोको कार्यकारणमीमासा स्पष्टतया वतलानी दुस्तर है। उदाहरणत मुञ्ज़िजात, मुसफ्फियात खून, मुअद्दिलातखून इत्यादि।

इनका विशेष विवरण यथास्थान देखो। द्रव्य—मल्ल, मल्लभस्म, लोहभस्म, मण्डूरभस्म (कुश्ता खुब्सुल्-हदीद), मत्स्य यकृत्तैल (रोगन जिगरमाही), शर्वतफौलाद, जलमिश्रित गधकाम्ल, मवीज मुनक्का, अस्थिमज्जा, कलेजी (यकृत्), खट्टा और मीठा अनार।

मुकव्वी (मुकव्वियात) जिगर—यकृत्को वल प्रदान करनेवाले द्रव्य, चाहे प्रत्यक्ष अर्थात् आत्मप्रभावसे (विज्ज़ात) वलदायक (मुकव्वी) हो अथवा अप्रत्यक्ष (विल्अर्ज़)।

वक्तव्य—प्राचीन यूनानी वैद्योके द्रव्यगुणविषयक ग्रन्थोंमें अन्यान्य वलदायिनी ओषधियां (मुकव्वियात)के साथ 'यकृत्की वलदायिनी ओषधियो (मुकव्वियात जिगर)'की भी एक सूची मिलती है। इन औषधियोंको दो वर्गोंमें विभाजित किया गया है—(१) शीतल यकृत्वलदायिनी (मुकव्वियात वारिदा), और (२) उष्ण यकृत्वलदायिनी (मुकव्वियात हार्रा)। यकृत् वलदायिनी औषधियोकी कार्यनिष्पत्ति किस प्रकार होती है और कौन सी औषधि यकृत्की किस क्रिया पर कार्यकारी होती है ? इस विषय पर विस्तृत प्रकाश नही डाला गया है और यह सत्य भी है कि इनके गुणकर्मोंको प्रकाशमें लाना सहज नही। इस सूची पर ध्यानपूर्वक विचार करनेसे इतना पता अवश्य चलता है कि इनमेंसे कतिपय द्रव्य पित्तोत्पत्तिकी क्रियाको तीव्र कर देते हैं, उदाहरणत वृषपित्त (जुहरे गाव), रेवदचीनी, सुरजान, एलुआ, नौसादर, इत्यादि। कतिपय द्रव्य पित्तोत्पत्तिके असाधारण प्राचुर्यको कम कर देते हैं। उदाहरणत खट्टे अनारका रस और हरे मकोयका रस। कतिपय द्रव्य यकृत्के रोगजनक दोष (मवाद्द मर्ज़ी) पर प्रभाव करके और रोगका निवारण करके यकृत्की क्रियाको दुरुस्त कर देते हैं, जैसे—अफसतीन। कतिपय द्रव्य यकृत्के मिज़ाजमें कुछ ऐसा अप्रगट और गुप्त परिवर्तन कर देते हैं, कि यकृत्की क्रिया प्रकृत अवस्था (साम्या-वस्था) पर आ जाती है—उदाहरणत हरी कासनीका फाडा हुआ रस। कतिपय द्रव्य यद्यपि प्रत्यक्षतया यकृत् पर कोई प्रभाव नही रखते हैं, तथापि वे आमाशय, अन्त्र और मूत्रपिण्ड आदिकी क्रियाओको प्रकृतिस्थ करके यकृत्की क्रियाओंके सुधारका कारण हो जाते हैं, उदाहरणत जुवारिस जालीनूस। कतिपय द्रव्य समिश्रगुण-विशिष्ट (मुश्तरिकुन्नफा) है जो यकृत् पर भी कार्यकर (मुवस्सिर) होते हैं और तत्सम्बन्धी सहायक अवयवो (आजाऽखादिमा) पर भी। तात्पर्य यह कि सार्वदैहिक वल्य (मुकव्वियात आम्मा बदनिय्या)की भाँति यकृत्को बलप्रदान करनेवाले द्रव्यो (मुकव्वियात जिगर)के वैद्यकीय उपयोगोकी कार्यकारणमीमासा या उपपत्ति (नौइय्यते अमल) भी वहुत करके सदिग्ध एव निगूढ़ वा जटिल है।

द्रव्य—असारून, अफसतीन, एलुआ, वादरजबूया, वारतग, झावुकपत्र, बिही, पान, पुदीना, तिपत्ती, तज, चिरायता, चोवचीनी, चूका, दालचीनी, दरूनज अकरबी, रेवदचीनी, जरावद, ज़रिश्क, केशर, शिलारस, वालछड, सगदान, सेव, शुकाई, सातर, सुवर्ण, गाफिस, फालसा, फार्राश, फरञ्जमिश्क, फौलाद, कड (कुर्तुम),

१ आयुर्वेदमें मुकव्वियातखून औषधको 'शोणितस्थापन', 'रुधिर सस्थापन', या 'रक्तानुकारि' कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'हिमेटिनिक्स Haematinics', 'हिमेटिक्स Haematics' या 'ब्लड टॉनिक्स् Blood tonics' कहते हैं।

कुस्त (कुष्ठ), कासनी, तुम्बरू (कबाबे खदां), कसूस, गावजबान, गुलसुर्ख, धोई हुई लाक्षा (लुक मग्सूल), लौंग, नाई, कालीमिर्च, मस्तगी, मवीज मुनक्का, नागकेसर, निशास्ता, रौप्य, हड, नौशादर, (जायफल, नरकचूर, छडीला, नख-अज्फारुत्तीब, क्षीरखिश्त, बलसांके बीज, नागरमोथा, सफेद इलायची, पिस्ता, लौंग, वृष्टिजल, तुरज-विजौरा)।

मुकव्वी तिहाल—वह द्रव्य जो प्लीहाकी क्रियाको तीव्र एव बलवती बनाते हैं। यूनानी वैद्योंके वचनोंमें दो तीन सग्राही (काबिज) द्रव्योंके विषयमें यह उल्लेख प्राप्त होता है, कि यह मुकव्वी तिहाल हैं, परतु यह समस्या अभी नितात विचारणीय है, और गवेषणाकी अपेक्षा रखती है। द्रव्य—फौलाद, झावुक्पत्र, फर्राश।

मुकव्वी (मुकव्वियात) दिमाग[1]—मस्तिष्क (दिमाग़)को बलप्रदान करनेवाले द्रव्य, चाहे उनका यह कर्म उनकी आत्मासे अर्थात् स्वभावज (बिज्ज़ात) हो अथवा आमाशय आदिकी क्रियाओंको प्रकृतिस्थकर औपचारिक रूपसे (बिल्अर्ज़) हो। द्रव्य—आँवला, आँवलेका मुरब्बा, उस्तूखूदूस, अत्रीफल, अफसतीन, बाबूना, ब्रह्मदण्डी, ब्राह्मी, बिही, बेदमुश्क, बहेडा, कुष्कुटाण्ड, तालीसपत्र, तुख्मकाहू, तुख्म खशखाश, तेजपात, जायफल, खस, जर-बाद, केसर, नागरमोथा (सुअद), बालछड, सखाहुली (शखपुष्पी), सोठ, सेब, महिषीक्षीर (शीरमेश), चदन, सुवर्ण, अस्लबिलादुर (भल्लातकके फलका स्याह रस), अबर, ऊद, फरजमिश्क, फीरोजा, तुम्बरू, सूखा धनिया, कुदुर, केवडा, गावजबान, गुलाब (अर्कगुलाब), गुलसुर्ख (गुलाबपुष्प), कुक्कुटमास, लौंग, मालकगनी, मुक्ता, कस्तूरी, बादामकी गिरी, पिस्तेकी गिरी, कद्दूके बीजकी गिरी, पेठेके बीजकी गिरी, प्राणिज मस्तिष्क (मग्ज हैवानात), फिदककी गिरी, मक्खन, पीलीहड, काली हड, हडका मुरब्बा, यास्मीन, याकूत, (बालगू, अगर, सेब, नासपातीके फूल, बिहीके फूल, तित्तिरमास, चमेली, काहूके बीज, लवेका मास, चोबचीनी, पान, कपूर, गाव-ज़बान पत्र, हब्बुलआस, भेडका दूध) तथा उत्तमागों और वातनाडियोंको बलप्रदान करनेवाले समस्त द्रव्य।

वक्तव्य—इनमेंसे कुछ द्रव्योंका उपयोग मेधाजननार्थ (तकवियत दिमागके लिये) लगभग अव्यवहार्य हो चुका है, जैसे—अफसतीन, बाबूना, ब्रह्मदडी, फीरोजा, कुदुर इत्यादि।

मुकव्वी (मुकव्वियात) बसर (या बसारत) अर्थात् दृष्टिको बलप्रदान करनेवाले द्रव्य[2]। द्रव्य—मामी-रान, सगबसरी (खर्पर), मुक्ता, सुरमा, सौंफ, जस्ता, चाकसू, भँगरा, आँवला, बहेडा, फीरोजा, खिरनी, मुश्क-दाना (लताकस्तूरी), हड, (केसर, कस्तूरी, पीली हड, मीठा बादाम, मुण्डी, जलाई हुई सीप, जलाया हुआ रेशम, मधु, कालीमिर्च, पकाई हुई प्याज, चाँदीकी सलाई, चन्द्रमाकी ओर दृष्टि गडाना, समुद्रफेन, अकाकिया, रसवत, सातर, शलगम, एलुआ इत्यादि)।

मुकव्वीबाह[3], मुबह्ही, मुबँही (कामशक्ति (कुव्वत बाह)को बलप्रदान करनेवाले द्रव्य)। इनमेंसे कतिपय द्रव्य प्रत्यक्ष अर्थात अपने आत्मप्रभावसे (बिज्ज़ात)वाजीकरण (मुकव्वी बाह) है, और कतिपय अप्रत्यक्ष (बिल्अर्ज़) अर्थात् अन्यान्य व्याधियों और विकारोंको निर्मूल करके अप्रत्यक्ष वा द्वितीयक रूपसे वाजीकरण (तकवियत बाह)का साधन बनते है। मुतरा कतिपय द्रव्य खाद्यवर्गमेंमे है, और कतिपय वाह्य प्रयोगके।

वक्तव्य—नीचे दी हुई द्रव्य-सूची और मुबह्हीगत द्रव्यसूचीकी तुलना करने पर यह ज्ञात होगा कि उभय सूचियोंमें बहुत साम्य है। इसीलिये यूनानी ग्रथोंमें इन्हें (मुकव्वी बाह और मुबह्हीको) पर्याय स्वीकार किया गया है। अस्तु, मैंने भी इसके (मुकव्वी बाहके) पर्यायोंमें उन्ही सज्ञाओंको स्थान दिया है, जिनका उल्लेख मुबह्हीके

---

१ मुकव्वी दिमाग औषधको आयुर्वेदमें 'मेध्य' कहते है।

२ आयुर्वेदमें मुकव्वी बसर द्रव्यको 'चक्षुष्य' कहते है।

३ मुकव्वी मुकव्वियात बाह द्रव्यको आयुर्वेदमें 'वाजीकर', 'वाजीकरण' या 'वृष्य' कहते है। पाश्चात्य वैद्यकमें इन्हें 'एफ्रोडिजिएक् Aphrodisiac' कहते हैं।

अतर्गत किया है। परतु आधुनिक यूनानी वैद्य मुकव्वी बाह् उन द्रव्योको कहते है जो वात धातुके शक्तिक्षोपको सर्वाधित करते और जननावयवो और तत्सवधी अवयवोमे समुचित सामग्री प्रस्तुत करते है, जो उन अवयवोंसे व्यय हो चुका होता है। इसके विपरीत मुहर्रिकात (कामोत्तेजनकारी द्रव्यो)का कार्य केवल वातनाडियोको छेडकर उनकी सुप्त वा शात शक्तियोको जागृत और उत्तेजित करना है। इनसे शक्ति, और धातुओ (माद्दा)के भाण्डारमें कुछ भी वृद्धि नही होती। वातनाडियोके लिये इनका कार्य ठीक वैसा ही है, जैसा घोडेके लिये चाबुकका काम। उदाहरणत अडेका प्रयोग कामशक्ति (बाह)के लिये वाजीकर (मुकव्वी) है और कामुक कथाश्रवणकर उसका विचार उत्पन्न होना कामेत्तेजक या मुहर्रिक है। यही दशा औषधोकी भी है। इस कल्पनाके अनुसार मुकव्वीबाहको आयुर्वेदमें 'वृष्य' या 'वाजीकरण' और मुहर्रिकबाहको 'कामोत्तेजक' 'शुक्रप्रवर्तक' या 'शुक्रस्तुतिकर' कहते हैं। द्रव्य—आम, अभ्रक, उटङ्गन, अखरोट, इसपद, असगध, अञ्जुदान, इद्रजौ, विपखपरा, भिलावां, वहमन, भग, भँगरा, वीरबहूटी, कुक्कुटाण्ड, पारा, पुष्करमूल, प्याज, पीपल, पिपलामूल, ताडी, तालीसपत्र, शलगमका बीज, तगर, तोदरी, सालबमिश्री, शकाकुलमिश्री, जायफल, चना, हुर्फ, गोखरू, केचुआ (खरातीन), कनेर (खरजहरा), छुहाडा, कुलञ्जन, दूकू, तेलनीमक्खी, (जरारीह), रसकपूर, रेगमाही, जरावद, जरवाद, केसर, सोठ, सतावर, सककूर, शिलाजीत, मल्ल, वालछड, सूरजान, सेमल, मद्य, शिगरफ, सुवर्ण, अबर, फिदक, फौलाद, कड, कहवा, कुचला, तिल, गाजर, मेंहदीका फूल, गदना, लोबान, लौग, मालकँगनी, कस्तूरी, पिस्ताकी गिरी, बिनौलेकी गिरी, चिलगोजेकी गिरी, हब्बतुल्खिजरा, नर चटकका मस्तिष्क, मखाना, मुसली, मोमियाई (शिलाजीत सत), महुएका फूल, मैंदालकडी, नकछिकनी, यबरूज।

मुकव्वी मेदा = आमाशय (मेदा)को बलप्रदान करनेवाले द्रव्य। जो द्रव्य आमाशयको बलप्रदान करते हैं वे आँतो (अम्आ) और अन्नप्रणाली (मरिय्य)को भी शक्ति प्रदान करते है। आमाशयबलदायक[1]। देखो 'मुश्तही'। द्रव्य—अबरेशम, आलूबालू, आँवला, हाऊबेर, इजखिर, अफसतीन, अगर, क्षुद्रैला, वृहदेला, अनारदाना, अजवार, अजुदान, ऊँटकटारा, एलुआ, बकुची, बाबूना, बादररजबूया, सौंफ, बालछड, वायखुवा, वहेडा, भग बिही, वेलगिरी, पान, पपीता, पुदीना, पिस्तेका वहिस्त्वक् पोस्त तुरज, पोस्त सगदानामुर्ग, नीबूका छिलका, पियारॉगा, पीपल, पिपलामूल, तालीसपत्र, तज, तोदरी, तेजपात, जामुन, जावित्री, जायफल, जितियाना, जवाखार, चिरायता, चिरचिटा, (अपामार्ग), चुनिया गोद, छाछ, छडीला, हब्बुलआस, हब्ब वलसाँ, हशीशतुद्दीनार, मण्डूर, राई, खर्बूब नब्ती, खस, दालचीनी, दरूनजअकरबी, दूकू, कलवा (रायुलहमाम), रेवदचीनी, जरिश्क, जरवाद, गुलाबपुष्पकेसर (जरेवर्द), सोठ, नागरमोथा (सुअदकूफी), शिलाजीत, सुमाक, मल्ल, सगवसरी, टकण, शाहतरा (पित्तपापडा), शकाकुल, शीरखिश्त, उशबा मगरबी, फालसा, फरजमिश्क, फौलाद, कुष्ठ, कासनी, कपूर, काकडासिंगी, तुम्बरु, कबर, कुटकी, कसूस, कुचला, करौंदा, कुरुया (कारवी), कलौंजी, कुदुर, ककोल, कनोचा, कहरुवा, मदारपुष्प, बानूनेका फूल, गुलाबका फूल, मुण्डीका फूल, अर्कगुलाब, गिलोय, लादन, धोई हुई लाक्षा (लुक मगसूल), लोबान, लोकाट, लौंग, लहसुन, नीबू, माजरियून, माई, मालकँगनी, कालीमिर्च, लाल मिर्च, वोल (मुरमक्की), मस्तगी, मैंदालकडी, भारगी, नागकेसर, नानाऽ (पुदीना), रौप्य, नकछिक्नी, काला नमक, पीली हड, काली हड, हडका मुरब्बा, तज।

मुकव्वियात रूह-ओज (रूह) को बलप्रदान करनेवाले द्रव्य। ओजोवर्धक। द्रव्य—गावजवान, केसर, हब्बुलआस, अबरेशम, उस्तूखूदूस, जमुर्रद(पन्ना), कुदुर, दरूनज, दालचीनी, बिही, बिल्लीलोटन, (बादरजबूया), कपूर, और जरबाद।

---

१ आयुर्वेदमें मुकव्वामेदा औषधको 'दीपन,' 'दीपनीय' या 'अग्निदीपन' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'स्टोमैकिक टॉनिक Stomachic tonic' या 'स्टोमैकिक्स Stomachics' कहते हैं।

मुक़ई—('क़ै' अरबीका धात्वर्थ 'फेंकना,' 'गिराना' है। परिभाषामें कै या वमन करना। बहु० (मुक़इ-य्यात)। कै या वमन लानेवाले द्रव्य। कै आवर दवा[1]।

वक्तव्य—आमाशयोपयोगी (अदविया मेदिया) द्रव्योमें वमनद्रव्य (मुक़इय्यात) भी हैं, जिनमेंसे कतिपय प्रत्यक्षतया आमाशयपर प्रभाव करके और कतिपय वामककेंद्र पर प्रभाव करके वमनका कारण हुआ करते हैं—जैसे, तूतिया (संग सुरमा), राई, फिटकिरी, जगली प्याज (इस्कील)। इसी प्रकार जो द्रव्य आमाशय पर या वमनकेन्द्र पर प्रभाव करके वमनको रोक देते हैं उनको मानेआत कै कहते हैं जैसे—बर्फ, और अत्युष्ण जल, अहिफेन, मद्य (अत्यल्प मात्रा मे)। वमन द्रव्योकी सूचीमे निम्न द्रव्य उल्लेखनीय हैं—पालकका रस, तिक्त कद्दू (तिनलौकीका स्वरस), मुलेठी, अहिफेन, अलसी, मूली की पत्तीका रस, बघरेंडा, बदाल, फिटकिरी, अर्कमूलत्वक्, पोस्त खुरपुजा (खरबूजेके छिलके), तुख्मबथुआ, खरबूजेका बीज, सोआका बीज (तुख्म शिबित्त), मूलीके बीज, तुख्मजिरजीर, तमाकू, तूतियाए सब्ज, राई, खर्बकद्वय (श्वेत और कृष्ण खर्बक), सिकजबीन, अर्कक्षीर, (क्षीर), उसारारेवद, कुटु॰, उष्णजल, गुलबाबूना, मधुशर्कर (माउल् अस्ल), मवीज़ज, सैंधव (नमक ताम), सगवसरी (खर्पर), नीलाथोथा, शतपुष्पापत्रस्वरस, चमेली, खरबूजेकी जड, नकछिकनी, कुटकी, शहद, छिलकायुक्त खरबूजेके बीज, शकरसुर्ख (गुड) अजमोदा, हुम्मयूनफ़, ऊँटकटारा, खारी नमक, सुर्ख लोबिया, भेडका घी, अपामार्गबीज।

मुख़द्दिर—(अरबी 'ख़द्र = प्रसुप्तता, शून्यता, सज्ञानाश, अवसन्नता'। (बहु०) मुख़द्दि(द्दे)रात = सुप्त करदेनेवाला। सवेदनाको कमजोर कर देनेवाला। वह द्रव्य जो अपनी शीतलता, उष्णता और सग्राही शक्तिसे शारीरिक द्रवो और दोषोको जमा (घनीभूत) देता है, और शरीरके स्रोतोको अवरुद्ध करके प्राणौज (रूह हैवानी)के प्रवेशको रोक देता हैं, जिससे अग सज्ञाशून्य हो जाता है। अथवा अवयवगत प्राणौजको स्वल्प या सज्ञाशून्य कर देता है जिससे वह गति नही कर सकता, या उसको किंचित् प्रगाढीभूत (कसीफ) कर देता है, जिससे उसकी गति और सवेदन शक्ति कम हो जाती है। कभी ऐसा द्रव्यगुणप्रभावसे नही, अपितु, द्रव्यप्रभाव अर्थात् जातिस्वरूप या विपप्रभावसे उक्त कर्म करता है। कभी उक्त कर्म (स्वापजनन—तख़्दीर) उसके प्रभाव (खासिय्यत)के कारण निष्पन्न होता है। अस्तु, तरखून और उन्नावके वृक्षकी पत्ती रसनेन्द्रियको सुप्त कर देती है[2]। द्रव्य—बर्फ, अहिफेन, शूकरान, खुरासानी अजवायन, धतूरा, लुफ्फाह, यबरूज, तमाकू, बछनाग, (बीश), खर्बक, लौगका तेल (रोगन करन्फुल), काहूका तेल, पोस्त खशखाश, तुख्म खशखाश (खसबीज), कुचला, बीखशाहतरा, भग, काकनज, उन्नावपत्र, सूममारकी जलाई हुई खाल, तरखून, (कोका, ईथर, क्लोरोफॉर्म)।

स्वापजनन (मुख़द्दिर) द्रव्य दो प्रकारके होते हैं —(१) वह जो बाह्य प्रयोग और किसी स्थान पर लगानेसे उक्त स्थलको अवसन्न या सुप्त अर्थात् सवेदनाहीन कर देते हैं, (स्थानीय सवेदनाहर[3] (मुकामी मुख़द्दिर) कहलाते हैं, जैसे—बर्फ इत्यादि। (२) वह द्रव्य जो मस्तिष्कीय सवेदनाओको इस प्रकार नष्ट कर देते हैं, कि उससे पूर्ण नि सज्ञता उत्पन्न हो जाती है। उक्त अवस्थामें नि सज्ञता एव स्पर्शाज्ञता (स्वाप) सपूर्ण शरीरमें सामान्य होती हैं। इसलिये इन्हे सार्वदैहिक सज्ञाहर (मुख़द्दिरात उमूमी)[4] कहते हैं।

---

१ आयुर्वेदमें 'मुकई' औषधको 'वमन (वामक)' 'छर्दनीय' या 'ऊर्ध्वभागहर' कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इन्हें 'एमेटिक्स Emetics' कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें मुख़द्दिर औषधको 'स्वापजनन सुप्तजनन' या 'सज्ञाहर' और पाश्चात्य वैद्यकमे 'ऐनेस्थेटिक्स Anaesthetics' कहते हैं। मुख़द्दिरकी अन्यतम अरबी सज्ञा 'मुफ़क्क़िदुल्एह्सास' भी है।

३ पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'लोकल ऐनेस्थेटिक्स् Local anaesthetics' कहते हैं।

४ पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'जेनेरल ऐनेस्थेटिक्स् General anaesthetics' कहते हैं।

मुखश्शिन—(अरबी 'खशिन = खर, कर्कश'। बहुव०मुखश्शिनात) धरातलको खरस्पर्श करनेवाला द्रव्य। कर्कशता या खरत्व(खुशूनत, खुरदरापन) उत्पन्न करनेवाला द्रव्य। इस प्रकारके द्रव्योमें लेखन(जिला) और सक्षोभ-जनन (लज्अ)की शक्ति होती है, जिसमे ये धरातलमें शोफ और रक्तसचय (इम्तिलाऽ) उत्पन्न कर देते है, जैसे—राई, भिलावाँ इत्यादि। अथवा इनमें सग्राही शक्ति (कुव्वत कब्ज़) होती है, जैसे—आँवला, सुपारी इत्यादि। द्रव्य—भिलावाँ, राई, कालीमिर्च (कण्ठ और वक्षमें वैशद्यकारक है), इक्लीलुल्मलिक (नाखूना), आँवला, आमकी गुठली (खस्ता आम), जामुनकी गुठली (खस्ता जामुन), इमलीके बीज (चीआँ), सुपारी (उरोवैशद्य-कारक) और भिलावाँ। प्राय सग्राही (काबिज), शोणितोत्क्लेशक (मुहम्मिर) और दहन (कावी) द्रव्य मुखश्शिन होते हैं।

मुख्रिज जनीन व मशीमा[1] गर्भाशयसे गर्भ और अपरा (जनीन व मशीमा) निस्सारक औषधि। वह द्रव्य जो शीघ्रता और सुखपूर्वक शिशुका प्रसव कराता है, अथवा भ्रूण आदिको गर्भाशयसे उत्सर्गित कर देता है। इस प्रकारके समस्त द्रव्य आर्तवशोणितप्रवर्तक (मुदिर्रे हैज़) भी होते हैं। द्रव्य—आरग्वधफलत्वक् (पोस्त अमलतास), हाऊबेर (अवहल), फिटकिरी, जुदबेदस्तर, इद्रायन, जितियाना, कपासकी डोडी, बोल, बिरोजा, कुटकी अलसी, हसराज (परसियावशाँ), हुर्फ, नरगिस, अरड-खरबूजाका दूध, साबुन, ऊदबलसाँ, सरखस, जरावद, तज, बूज़ीदान, रोगनबलसाँ, खैरी, किर्दमाना, कतूरियून, बाँसकी पत्ती, कालाजीरा, मेंहदीके पत्र और बीज, कालीमिर्च फितरासालियून, समस्त उग्रविरेचनीय और मूत्रल द्रव्य, दालचीनी, करमकल्ला (भी गर्भनाशक और गर्भपातक है), सुदाब, अर्गट, टकण, कुनैन।

मुख्रिज दीदान अम्आऽ—उदर और अन्त्रस्थ कृमियोको बाहर निकालनेवाले द्रव्य। ऐसे द्रव्य कृमियोको मारते नही, अपितु उनको बाहर निकाल देते हैं। विशेष देखो 'कातिल दीदान'। द्रव्य—एरण्ड तैल, जलापामूल, कमीला, सकमूनिया, उसारारेवद, सुपारी (छालिया), पलासपापडा, सतअजवायन।

मुगज्जी—(अरबी 'गिज़ा = आहार, पोषण'। बहु० मुगज़्ज़ियात। आहार वा पोषण (जिरा) प्रदान करनेवाले द्रव्य।

शरीरको पुष्टि (तगज़िया) प्रदान करनेवाले द्रव्य। वह द्रव्य जो शरीरका पालन-पोषण (उपचित) करें। समस्त आहारद्रव्योके अतिरिक्त अखिल आहारौषधियाँ (अग्जिया दवाइय्या) और औषधाहार (अद्विया गिज़ाइय्या) भी पोषण करनेवाले वा जीवन धारण करनेवाले अर्थात् जीवनीय (मुगज़्ज़ी वा गाज़िया[2]) हैं। द्रव्य—मीठे बादामकी गिरी, मीठे कद्दूके बीजकी गिरी, खीरा, ककडीके बीज (तुख्मखियारैन)की गिरी तथा अन्यान्य गिरियाँ (मग्ज़ियात), जैतूनका तेल, घृत, नवनीत, वसा (चर्बी), शुद्ध मधु, शर्करा (कद सफेद), बबूलका गोद, निशास्ता, अजीर, मवीज मुनक्का, किशमिश, शीरखिश्त, तुरजबीन (यवासशर्करा), अडा और मास (लहम)।

मुगय्य(य्ये)रात अरक—वह द्रव्य जो स्वेद मार्गसे उत्सर्गित होकर उसके गुण (कैफिय्यत) को बदल देते हैं। जैसे—लोबान और अहिफेन। स्वेदपरिवर्तक।

मुग़य्यि(य्ये)रात लब्न—स्तन्यपरिवर्तक। वह द्रव्य जो रक्तके द्वारा शरीरमें प्रविष्ट होकर स्तन्य (दूध)में परिवर्तन उत्पन्न कर देते है, जैसे—सकमूनिया, सनाय, रेवद और एरण्ड-तैल जैसे विरेचनीय द्रव्य। जब यह किसी स्तनपायी शिशुकी माता या धात्रीको दिये जाते हैं, तब शिशुको विरेक आने लगते हैं। इसी प्रकार हीग और

---

१ आयुर्वेदमें मुख्रिजजनीन व मशीमा औषधको 'आविजनन' और पाश्चात्यवैद्यकमें 'आक्सिटोसिक्स Oxytocics' कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें मुगज़्ज़ा द्रव्यको 'जीवन', वा 'जीवनीय' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'रेस्टोरेटिव्हज़ Restoratives', 'न्युट्रिएन्ट Nutrient' या 'न्युट्रिशस Nutritious' कहते हैं।

लहसुन इत्यादिके उपयोगसे स्तन्य (दूध)का स्वाद बिगड जाता है। सखिया, पारा, फौलाद, गधक और अहि-फेनका भी स्तन्यपानसे दूधके द्वारा शिशु पर प्रभावकर हुआ करते हैं[1]।

वक्तव्य—यह विचार किसी दशामें यथार्थ नही है, कि समस्त द्रव्योके घटक स्तन्यके द्वारा शिशु तक पहुँचा करते हैं, प्रत्युत सत्य यह है, कि कतिपय विशेप द्रव्य ऐसे हैं जिनके घटक स्तन्यके द्वारा शिशु तक पहुँचा करते हैं।

मुगर्री (=लेसदार या चिपकनेवाली औषधि)। वह औषधि जिसमें श्लेपक-द्रव (रतूबत लज्जिजा) अर्थात् इस प्रकारका लेस हो, जो वाहिनियोके मुख पर चिपक कर उन्हें अवरुद्ध कर दे और स्रावरोधक (मानेअ सैलान) हो। यह वह शुष्क द्रव्य है, जिसमें अल्प प्रमाणमें श्लेपक द्रव (लज्जिज रतूबत) भी होता है, जिसके कारण स्रोतो (मनाफिज)के मुखमें अवरुद्ध होकर रह जाता है और उसके भीतरके द्रवको निकलनेसे रोक देता है। इसका भौमत्व लज्जिजके भौमत्व (अरजिय्यत)से अधिक होता है। प्रत्येक फिसलानेवाला पिच्छिल द्रव (लज्जिज सय्याल मुज़लिक) अग्नि पर उत्ताप देनेमे सग्राही (क़ाबिज) हो जाता है, क्योकि तत्स्थ फिसलानेवाला द्रव जलकर भौमत्व-प्रधान हो जाता है, और वह मुगर्री (लेसदार) हो जाता है। यही कारण है कि लवावदार (लुआबी) बीजोको जा फिसलाकर दस्त लाते हैं, भृष्ट कर लेनेसे सग्राही (काबिज) हो जाते हैं, क्योकि उनकी लेस (लुज़ूजत) चिकनाहट (गर्वियत)में परिणत हो जाती है। ग्लुटिनस् Glutinous (अ०)। द्रव्य—गोद, कतीरा, सरेश, सरेशममाही, सफेदा और पनीर (मुगर्री गुर्दा है)।

मुगल्लिज़—(अरवी 'गलीज़=गाढा'। बहु० मुगल्लिज़ात)। गलीज़ या गाढा करनेवाला।

वह द्रव्य जो अपनी स्थूलता (कसाफत)के कारण द्रवो (रतूबतो)को गाढा करे। यह 'मुलत्तिफ' और 'मुहल्लिल'का उलटा है। वह द्रव्य जो द्रव दोप आदिको गाढा कर दे और प्रगाढत्व वा सान्द्रत्व (गिलज़त) उस सीमाको पहुँच जाय कि समताकी सीमा अतिक्रात कर जाय, अथवा समताकी सीमाको तो न पहुँचे, किंतु पूर्व अवस्थासे गाढा कर दे और यह कर्म उससे उष्णता या शीतलताके कारण अथवा रूक्षतासे निष्पन्न हो। द्रव्य—कतीरा, समस्त साग-पात, समस्त अर्धभृष्ट मास और समस्त वादी शाक।

मुगल्लिज़ (मुगल्लिज़ात)मनी—शुक्र (मनी)को गाढा करनेवाले द्रव्य। शुक्रसान्द्रकर, वीर्यपुष्टिकर, वृष्य। इस प्रकारके द्रव्य सज्ञाहर (मुखद्दिर) और अवसादक एव शामक (मुसक्किन) हुआ करते हैं। द्रव्य—इसवगोल, असगध, अहिफेन, विदारीकद, उपोदिकापत्र (वर्ग पोई), बहुफली, बीजवद, पलासपापडा, पोस्त खशखाश, (पोस्तेकी डोडी), तालमखाना, इमलीका बीज (चीआँ), तुख्म खशखाश (पोस्तेका दाना), सिरसके बीज, काहूके बीज, सालबमिश्री, छोटी चदन (सर्पगधा), चुनिया गोंद (पलास निर्यास), सनावर, सुरवाली (सिरियारीके बीज), शिलाजीत, समुदरसोख, सिंघाडा, पारद, शकाकुलमिश्री, अभ्रकभस्म, नागभस्म, यशदभस्म, वगभस्म, रौप्यभस्म, कँवलगट्टा, पठानीलोध, कौचके बीजकी गिरी, मोचरस, सफेद मुसली, काली मुसली, वहमनसुर्ख, वहमन सफेद, तोदरी सफेद, तोदरी सुर्ख, तोदरी जर्द, सेमलका मूसला, इसवगोलकी भूसी, शकरकद, जामुनकी गुठली और वलूत।

मुगश्शी मुर्छा (गशी) उत्पन्न करनेवाले द्रव्य।

ये द्रव्य आनाह और वायु इत्यादिके कारण मुर्छा उत्पन्न करते हैं। द्रव्य—अनीसून, अकाशवेल, जावित्री, गाजरके बीज, सँभालू, जवाशीर, हमामा, पिपलामूल, जीरा, कालीमिर्च, सोठ, नरकचूर, जरावद, मुदाव, लोवान, अजमोदा, अजवायन, सातर, नागरमोथा और निशोथ।

वक्तव्य—उत्क्लेशकारक औषधको अरबीमें मुगस्सी कहते हैं।

---

१ स्तन्यधात्री (मुर्ज़िअ) यदि अम्ल पदार्थ अधिक सेवन करती है, तो उससे शिशुके उदरमें शूल और मरोड उत्पन्न हो जाते हैं। इसी तरह क्षार पदार्थोंके सेवनसे दूधमें क्षारके घटक वढ जाते हैं।

मुजफ्फिफ—खुश्की पैदा करनेवाली, आर्द्रताको शुष्क करनेवाली ओषधि। क्लेदशोषण ओषधि। वह ओषधि, जो वाहिनियोका आकुचनकर द्रवोद्रेक (तरश्शुह् रतूबात) को कम कर देती है, अथवा अपनी रूक्षता वा विलीनीकरण और शोषण शक्ति (कुव्वत तहलील व जज्ब)के कारण द्रवोको चूसकर कम कर देती है, जिससे कोई आर्द्र वा क्लिन्न धरातल (मरतूब सतह) शुष्क हो जाता है—उदाहरणत व्रणस्थ द्रव कम हो जाता है, जो उसके रोपणमे बाधक हुआ करता है। व्रणको सुखानेवाली ओषधि[1]। ममम्न वाहिनीमग्राहिक (काबिज उरूक) और स्तभन (हाबिस) द्रव्य मुजफ्फिफ हैं। मुजफ्फिफात इसका बहुवचन है। द्रव्य—मरल, हडताल, शिगरफ, फिटकिरी, सफेदा (धोया हुआ), चूना, मुरदासख, सगजराहत, सुरमा, जली हुई सीप (मद्फ सोख्ता), तूतिया, जला हुआ प्रवालमूल (बेख मर्जान सोख्ता), प्रवाल, मगवसर्ग, सेंदूर, जला हुआ कागज, गिले मख्तूम, गेरू, गिलअरमनी, वलूत, अभ्रक, जला हुआ अस्पज, रोगनाऊ, माजू, माई, हीराकसीस, मामीसा, लाजवर्द (राजावर्त), वशलोचन, जाविश्री, जला हुआ गावज़बान, एलुआ, वायविडग, आवनूस, गुलनार, जुदबेदस्तर, अञरूत, जली हुई छुहारेकी गुठली (किगन गुर्मा सोख्ता), जला हुआ तांबा (रसुख्तज), जीरा, मुदाव, मभालू, काकडा-सिंगी, शिरीष वृक्षकी छाल, हब्बुल्आस, ववूलकी छाल, अनारका छिलका, बरगदके पेडकी छाल, पीपलकी पत्ती, झाऊकी पत्ती, मण्डूर (खुब्सुलहदीद), बोल, मोचरस, गुलमौलसिरी, नागकेशर, कतूरियून, ईरमा, वका-इनकी छाल चिरायता, चुनिया गोद, जली हुई कौडी, मेंहदीकी पत्ती (वर्ग हिन्ना), मछेछी, सरस (मेलफर्न) हब्बवलसां, हसराज, वालछड, सरेशममाही, शुकाई, ऊदसलीब, मकोय, कुष्ठ, करजुआ, गुलधावा (धातकी पुष्प), फरञमुदक, वच, मीठा तेलिया, कनेर, उशक, गिल मुलतानी, जलाया हुआ बादामका छिलका, कोयला, रतन-जोत, हाऊबेर, इक्लीलुल् मलिक (नाखूना), शादनज, ज्वार, वाकला, बाजरा, कँगनी, सौंफ और छडीला।

मुजम्मिद—(जमानेवाला, जमा देनेवाला, ठिठुरा देनेवाला)।

वह द्रव्य जो अपने उपादानोंकी विशेष क्रियासे किसी पतले द्रवके घटकोंको सान्द्रीभूत (गलीज व मुजम्मिद) बना देता है। वह द्रव्य जो अपनी शीतलता और सग्राहक शक्तिसे प्रवाही पतले दोषोको पिण्डीभूत (मुजम्मिद) कर दे और बाँध देवे[2]। द्रव्य—फिटकिरी, खुरासानी अजवायन, कतीरा, बबूलका गोद, श्वेतसार, कहरुवा, चूना, मुक्ता, सीप, गेरू, सगजराहत।

मुज़य्यिल किर्म व सम्म वबाई व हवाए वबाई—वह द्रव्य जो मरक आदि औपसर्गिक रोगोके उत्पादक कीटाणुओं और विषोको नष्ट करते है। ऐसे द्रव्य कोथप्रशमन भी होते हैं। कतिपय द्रव्य ऐसे हैं जिनमे वानस्पतिक और प्राणिज पदार्थ रखनेसे वे सडने नही पाते अर्थात् उनके घटक वियोजित नही होते[3]। द्रव्य—मल्ल, मद्य, टकणाम्ल, गधकाम्ल (गधकका तेजाब), दालचिकना (सुलेमानी), सैंधवलवण, नीलाथोथा, गिलमख्तुम, अबरकी धूनी, सँभालू, कपूर, प्याज, दरूनज अकरबी, तमाकू, रेहाँ।

मुज़य्यिल सुर्फा—कासहर या कासघ्न (च०)।

द्रव्य—मुलेठी (अस्लुस्सूस), सत मुलेठी (रुब्बुस्सूस), गावज़बान पत्र, मवीज़ मुनक्का, मिश्री, शकरतीगाल, बनफशा, हब्ब वलसां, इसबगोल, तुख्म खशखाश श्वेत, कुलफाके बीज, मेथी, खितमीके बीज, मधु (कफज

१ आयुर्वेदमें मुजफ्फिफ औषधिको 'रूक्षण' या 'उपशोषण' (च०) एव 'व्रणलेखन' (सु०) कहते है। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'सिक्केटिव्ह् Siccative' या 'डेसिक्केटिव्ह् Desiccative' या 'ड्राइग Drying' कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें मुजम्मिद द्रव्यको 'स्कन्दन' कहना चाहिये।

३ ऐसे द्रव्यको आयुर्वेदमें 'जीवाणुनाशन', 'उपसर्गनाशक' या 'रोगजन्तुघ्न' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'डिसइन्फेक्टेन्ट्स Disinfectants' कहते हैं।

कासके लिए और किसी-किसीके अनुसार यह कासवर्धक है), खुब्बाजीके बीज, सेब, उस्तूखूदूस, खिरनी, लादन, निलोफर, मूली, मीठा अनार, गूलर, गाजर, बालछड, कुक्कुट मास, मत्स्य, मूँग, धोया हुआ लुक् (लाक्षा), ग्वाकसी, लिसोढा (श्लेष्मातक), सुदाब, दारचीनी, उन्नाब, दिरमना तुर्की, पायोका शोरवा, शिलारस (मीआ साइला), निशास्ता, चाँदीका वर्क, कायफल, ईग, बच, जौ, हरीरा, बाकला, मसूर, खुरफा, धनियेके पत्ते, काहू, कलौंजी, सातर, रेवद, सौंफ, पियारांगा, बादावर्द, बादाम, बसफाइज, तिल, बतखके अडे, चौलाई, खुरासानी अजवायन, वर्नूब, रोठा, मुर्गोंके अडेकी जर्दी, पिस्ता, निसोत, हालो, तोदरी, जरावद मुदहृज, जलेबी, जूफा खुश्क, गेहूँकी भूसी, काकडासींगी, मकवीनज, दालचीनी (सलीखा), यवमड (आशजौ), शीरखिश्त, बकरी और भेडका दूध, बबूलका गोद, तुख्म सनोबर, जूहीका रोगन, अकरकरा, अजीर, तमाकू (तरकामके लिये), कुरमका गोद, केसर, रुद, बताशा, गारीकून, फरासियून, फिश्क, रूड (कुसुम), कुटकी, चिरायता, अरवी, कहवा अलसी, कतीरा, कद्दू, कद्दूके बीजकी गिरी, कर्नब, मटर, कुदुर, अखरोटकी गिरी, मुर (बोल), मरवा, मक्खन, गुग्गुल, मोमियाई, केला, नील, बिहीदाना, सरो, शलगम, गिलोय, सत गिलोय और पान।

मुज़य्यिलुन्नत्न (दुर्गंधहर)—देखो दाफेअ तअफ्फुनान्तर्गत वक्तव्य।

मुज़य्यिक मुकूबए इनबिय्या, मुज़य्यिकुल्हद्का, काबिज़ात हद्का—नेत्रके तारक या पुतली (सुक्बे इनबिय्या)को सकुचित (तग) करनेवाला द्रव्य। पुतलीको सिकोडनेवाली ओषधि। तारकासकोचन। कनीनिका-सकोचन[1]। द्रव्य—अहिफेन और उसके योग।

मुज़िर्र (बहु० मुज़िर्रात)—हानिकर (अहितकर) द्रव्य।

मुज़िर्रात अम्आऽ—

अन्त्रहानिकर द्रव्य—केला, अगर, मुडी, अनीसून, वायविडग, सकमूनिया, अजुराके बीज, निसोथ, कच्छप-मास, जदवार।

मुज़िर्रात अस्नान व लिस्सा—दाँतो (अस्नान) और मसूढो (लिस्सा)को अहितकारक। द्रव्य—दूध विशेषत ऊँटनीका दूध, मूली, बर्फका पानी, चूका, अम्ल पदार्थ, छुहारा, उष्णस्पर्श वस्तुओको खा-पीकर शीतल जल पीना या कुल्ली करना, प्रत्येक मधुर पदाथ, किसी-किसीके मतसे मधु भी।

मुज़िर्रात उन्सयैन—दोनों अडोको हानिकर। द्रव्य—इकलीलुल्मलिक (नाखूना), बूजीदान और अलसी।

मुज़िर्रात गुर्दा—मूत्रपिंडोको हानिकर। द्रव्य—उशक, सतमुलेठी, हालो, बालछड, सदरूम, मुण्डी, अजुराके बीज, बसफाइज, कलौंजी, अक़ीक, अभ्रक, कालीमिर्च और सँभालू।

मुज़िर्रात जिगर—यकृत् (जिगर)को हानिकर। द्रव्य—खजूर, अजीर, नारगी, सिरका, मधु, कालीहड, जावित्री, शीतल जल, बकाइनके बीज, सूरजान, कालीमिर्च, कायफल, हजुल्यहूद (बेरपत्थर), सकमूनिया, अगूर, जूफाएखुश्क, आम, जरावद, खट्टा अनार और जायफल।

मुज़िर्रात दिमाग—मस्तिष्कको हानिकारक। द्रव्य—हीग, असावउस्सफ़र, तुख्म खशखाश स्याह, रैहाँ, आलूबोखारा, ऊँटकटारा, तमाकू, सरसो, गधबिरोजा, तुलसी और कुलथी।

मुज़िर्रात दिल—हृदयको अहितकर (अहृद्य)। द्रव्य—हरिद्रा, जरवाद (अधिक प्रमाणमे) और सकमूनिया।

मुज़िर्रात बसर—दृष्टिको हानिकर। द्रव्य—मसूर, कुलफाका साग, चूका, काहू, अपामार्ग, गदना, अति स्त्रीसमागम, आतप-सेवा, अग्नि-सेवा और चमकदार वस्तुओकी ओर बहुत दृष्टि करना।

मुज़िर्रात मक्अद—गुदाको अहितकर। द्रव्य—अजुराके बीज।

मुज़िर्रात मसाना—वस्तिको हानिकारक पदार्थ। द्रव्य—हब्ब बलसाँ, दारचीनी, कबाबचीनी, मकोय, तेजपात, केकडा, शादना और सकबीनज।

---

१ तारकासकोचन द्रव्यको पाश्चात्य वैद्यकमें 'मायोटिक्स Myotics' कहते हैं।

मुजफ्फिफ—खुश्की पैदा करनेवाली, आर्द्रताको शुष्क करनेवाली ओषधि। क्लेदशोषण ओषधि। वह ओषधि, जो वाहिनियोका आकुचनकर द्रवोद्रेक (तरश्शुह् रतूबात) को कम कर देती हैं, अथवा अपनी रूक्षता वा विलीनीकरण और शोषण शक्ति (कुव्वत तहलील व जज्ब)के कारण द्रवोको चूसकर कम कर देती है, जिससे कोई आर्द्र वा क्लिन्न धरातल (मरतूब सतह) शुष्क हो जाता है—उदाहरणत व्रणस्य द्रव कम हो जाता है, जो उसके रोपणमें बाधक हुआ करता है। व्रणको सुखानेवाली ओषधि[1]। समस्त वाहिनीसग्राहिक (काबिज उरूक) और स्तभन (हाबिस) द्रव्य मुजफ्फिफ हैं। मुजफ्फिफात इसका बहुवचन है। द्रव्य—मल्ल, हडताल, शिंगरफ, फिटकिरी, सफेदा (धोया हुआ), चूना, मुरदासख, सगजराहत, सुरमा, जली हुई सीप (सद्फ सोख्ता), तूतिया, जला हुआ प्रवालमूल (बेख मर्जान सोख्ता), प्रवाल, मगवसगी, सेदूर, जला हुआ कागज, गिले मखतूम, गेरू, गिलअरमनी, वलूत, अभ्रक, जला हुआ अस्पज, रोशनाई, माजू, माई, हीराकसीस, मामीसा, लाजवर्द (राजावर्त), वशलोचन, जाविन्नी, जला हुआ गावजवान, एलुआ, वायविडग, आबनूस, गुलनार, जुदवेदस्तर, अञ्जरूत, जली हुई छुहारेकी गुठली (किशन खुर्मा सोख्ता), जला हुआ तांबा (रसुख्तज), जीरा, सुदाव, सभालू, काकडा-सिंगी, शिरीष वृक्षकी छाल, हब्बुल्आस, बबूलकी छाल, अनारका छिलका, वरगदके पेडकी छाल, पीपलकी पत्ती, झाऊकी पत्ती, मण्डूर (खुब्सुल्हदीद), बोल, मोचरस, गुल्मौलसिरी, नागकेशर, कतूरियून, ईरसा, वकाइनकी छाल चिरायता, चुनिया गोद, जली हुई कौडी, मेंहदीकी पत्ती (वर्ग हिन्ना), मछेछी, सरत्स (मेलफर्न) हब्बवलसाँ, हसराज, वालछड, सरेशममाही, शुकाई, ऊदसलीव, मकोय, कुष्ठ, करजुआ, गुलधावा (धातकी पुष्प), फरञ्जमुश्क, वच, मीठा तेलिया, कनेर, उशक, गिल मुलतानी, जलाया हुआ बादामका छिलका, कोयला, रतनजोत, हाऊबेर, इक्लीलुल् मलिक (नाखूना), शादनज, ज्वार, बाकला, बाजरा, कँगनी, सौंफ और छडीला।

मुजम्मिद—(जमानेवाला, जमा देनेवाला, ठिठुरा देनेवाला)।

वह द्रव्य जो अपने उपादानोकी विशेष क्रियासे किसी पतले द्रवके घटकोको सान्द्रीभूत (गलीज व मुजम्मिद) बना देता है। वह द्रव्य जो अपनी शीतलता और सग्राहक शक्तिसे प्रवाही पतले दोषोको पिण्डीभूत (मुजम्मिद) कर दे और बाँध देवे[2]। द्रव्य—फिटकिरी, खुरासानी अजवायन, कतीरा, बबूलका गोद, श्वेतसार, कहरुवा, चूना, मुक्ता, सीप, गेरू, सगजराहत।

मुजय्यिल किर्म व सम्म वबाई व हवाए वबाई—वह द्रव्य जो मरक आदि औपसर्गिक रोगोंके उत्पादक कीटाणुओं और विषोको नष्ट करते है। ऐसे द्रव्य कोथप्रशमन भी होते हैं। कतिपय द्रव्य ऐसे हैं जिनमें वानस्पतिक और प्राणिज पदार्थ रखनेसे वे सडने नही पाते अर्थात् उनके घटक वियोजित नही होते[3]। द्रव्य—मल्ल, मद्य, टकणाम्ल, गधकाम्ल (गधकका तेजाब), दालचिकना (सुलेमानी), सैंधवलवण, नीलाथोथा, गिलमख्तुम, अबरकी धूनी, सँभालू, कपूर, प्याज, दरूनज अकरबी, तमाकू, रेहाँ।

मुजय्यिल सुर्फा—कासहर या कासघ्न (च०)।

द्रव्य—मुलेठी (अस्लुस्सूस), सत मुलेठी (रुब्बुस्सूस), गावजबान पत्र, मवीज मुनक्का, मिश्री, शकरतीगाल, बनफशा, हब्ब वलसाँ, इसबगोल, तुख्म खशखाश श्वेत, कुलफाके बीज, मेथी, खितमीके बीज, मधु (कफज

---

१ आयुर्वेदमें मुजफ्फिफ औषधिको 'रूक्षण' या 'उपशोषण' (च०) एव 'व्रणलेखन' (सु०) कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'सिक्केटिव्ह् Siccative' या 'डेसिक्केटिव्ह् Desiccative' या 'ड्राइग Drying' कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें मुजम्मिद द्रव्यको 'स्कन्दन' कहना चाहिये।

३ ऐसे द्रव्यको आयुर्वेदमें 'जीवाणुनाशन', 'उपसर्गनाशक' या 'रोगजन्तुघ्न' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'डिसइन्फेक्टेन्ट्स Disinfectants' कहते हैं।

कासके लिए और किसी-किसीके अनुसार यह कासवर्धक है), खुब्बाजीके बीज, सेब, उस्तूखूदूस, खिरनी, लादन, निलोफर, मूली, मीठा अनार, गूलर, गाजर, बालछड, कुक्कुट मास, मत्स्य, मूंग, धोया हुआ लुक् (लाक्षा), खाकसी, लिसोढा (श्लेष्मातक), सुदाव, दारचीनी, उन्नाव, दिरमना तुर्की, पायोका शोरवा, शिलारस (मीआ साइला), निशास्ता, चाँदीका वर्क, कायफल, ईन, वच, जौ, हरीरा, वाकला, मसूर, खुरफा, धनियेके पत्ते, काहू, कलौंजी, सातर, रेवद, सौंफ, पियारांगा, वादावर्द, बादाम, बसफाइज, तिल, बतख्के अडे, चौलाई, खुरासानी अजवायन, खर्नूब, रीठा, मुर्गीके अडेकी जर्दी, पिस्ता, निसोत, हालो, तोदरी, जरावद मुदहरज, जलेबी, जूफा खुश्क, गेहूँकी भूसी, काकडासीगी, सकवीनज, दालचीनी (सलीखा), यवमड (आशजौ), शीरखिश्त, बकरी और भेडका दूध, बबूलका गोंद, तुख्म सनोबर, जूहीका रोगन, अकरकरा, अजीर, तमाकू (तरकासके लिये), बुत्मका गोंद, केसर, ऊद, बताशा, गारीकून, फ़रासियून, फिदक, कुड (कुतुंम), कुटकी, चिरायता, जरवी, कहवा अलसी, कतीरा, कद्दू, कद्दूके बीजकी गिरी, फर्नव, मटर, कुदुर, अखरोटकी गिरी, मुर (बोल), मरवा मक्खन, गुग्गुल, मोमियाई, केला, नील, बिहीदाना, सरो, शलगम, गिलोय, सत गिलोय और पान।

मुज़य्यिलुन्नत्न (दुर्गंधहर)—देखो दाफ़ेअ तअफ्फुनान्तर्गत वक्तव्य।

मुज़य्यिक मुक्लए इनबिय्या, मुज़य्यिकुल्हद्का, काबिज़ात हद्का—नेत्रके तारक या पुतली (मुक्ले इनबिय्या)को सकुचित (तग) करनेवाला द्रव्य। पुतलोको सिकोडनेवाली ओषधि। तारकासकोचन। कनीनिका-सकोचन[1]। द्रव्य—अहिफेन और उसके योग।

मुज़िर्र (बहु० मुज़िर्रात)—हानिकर (अहितकर) द्रव्य।

मुज़िर्रात अमुआऽ—

अन्त्रहानिकर द्रव्य—केला, अवर, मुडी, अनीसून, वायविडग, सकमूनिया, अजुराके बीज, निसोथ, कच्छप-मास, जदवार।

मुज़िर्रात अस्नान व लिस्सा—दाँतो (अस्नान) और मसूढो (लिस्सा)को अहितकारक। द्रव्य—दूध विशेषत ऊँटनीका दूध, मूली, वर्फका पानी, चूका, अम्ल पदार्थ, छुहारा, उष्णस्पर्श वस्तुओको खा-पीकर शीतल जल पीना या कुल्ली करना, प्रत्येक मधुर पदार्थ, किसी-किसीके मतसे मधु भी।

मुज़िर्रात उन्सयैन—दोनो अडोको हानिकर। द्रव्य—इकलीलुल्मलिक (नाखूना), बूजीदान और अलसी।

मुज़िर्रात गुर्दा—मूत्रपिंडोंको हानिकर। द्रव्य—उशक, सतमुलेठी, हालो, बालछड, सदरूम, मुण्डी, अजुराके बीज, बसफाइज, कलौंजी, अक़ीक़, अभ्रक, कालीमिर्च और भँभालू।

मुज़िर्रात जिगर—यकृत् (जिगर)को हानिकर। द्रव्य—खजूर, अजीर, नारगी, सिरका, मधु, कालीहृड, जावित्री, शीतल जल, बकाइनके बीज, सूरजान, कालीमिर्च, कायफल, हजुल्यहूद (बेरपत्थर), सकमूनिया, अगूर, जूफाएखुश्क, आम, जरावद, खट्टा अनार और जायफल।

मुज़िर्रात दिमाग—मस्तिष्कको हानिकारक। द्रव्य—हीग, अमावउस्सफर, तुख्म खशखाश स्याह, रैहाँ, आलूबोखारा, ऊँटकटारा, तमाकू, सरसो, गधबिरोजा, तुलसी और कुलथी।

मुज़िर्रात दिल—हृदयको अहितकर (अहृद्य)। द्रव्य—हरिद्रा, जरवाद (अधिक प्रमाणमे) और सकमूनिया।

मुज़िर्रात बसर—दृष्टिको हानिकर। द्रव्य—मसूर, कुलफाका साग, चूका, काहू, अपामार्ग, गदना, अति स्त्रीसमागम, आतप-सेवा, अग्नि-सेवा और चमकदार वस्तुओकी ओर बहुत दृष्टि करना।

मुज़िर्रात मक्अद—गुदाको अहितकर। द्रव्य—अजुराके बीज।

मुज़िर्रात मसाना—वस्तिको हानिकारक पदार्थ। द्रव्य—हब्ब बलसाँ, दारचीनी, कबाबचीनी, मकोय, तेजपात, केकडा, शादना और सकवीनज।

---

१ तारकासकोचन द्रव्यको पाश्चात्य वैद्यकमें 'मायोटिक्स Myotics' कहते हैं।

मुजिर्रात मेदा—आमाशयको हानिकर । द्रव्य—उनाब, गूगल, अंगूर (निर्बल आमाशयके लिये), मीठा अनार, चाय, तिल, मसूर, आदी जौ (यवमण्ड), रेगमाही, लाजवर्द (अश्वगन्ध) गुलबास, आलू सोंगी, उन्नाव, अम्ली, कुसुम, गावजोबान, अंजीर, तरबूज, माजरियून, खीरा, कच्चा अंगूर, खमीरा, पनीर, उस्तूखुद्दूस, गोंद, मिठाई, बाकला, एलुवा (बेरपत्थर), आबनूस, रेशम, भेड़ा मांस, कुस्तके बीज, मरमकिया और नमक ।

मुजिर्रात रिया—फुप्फुसोंको हानिकारक । द्रव्य—अकरकरा, असारून (तगर), कुन्दुर, शाहतरा (पित्तपापड़ा), राई, बादावर्द, सुपारी, मर्व, ओंग, मसूर, इलायची, उस्तूखुद्दूस, सोना (तिरस), नागरमोथा (मुश्क), मगमालनके बीज, अकाकिया, किरमाला (किरमानी अजवायन), सरसम, बादाम, नेजबार, जवासा, कुटकी, गिलमख्तूम और बलमोरा ।

मुजिर्रात मसाना—गुर्दा या मिस्सी (मसाने)का हानिकर । द्रव्य—अम्बर, मसूर, गिल मख्तूम, बाकला, गावजबान, एलुवा (बेरपत्थर), मुरमकी, आंवला, मसूर, बालछड़, मालकंगनी, अफ्यून, बहरोजसरंग (तुरजबीन), इमली, जायफल, सरबूज, कुस्तके बीज और जरावन ।

मुजिर्रात सिर—सिरको हानि पहुंचानेवाले । द्रव्य—प्याज, सन और सनुस्तून ।

मुजिर्रात सीना—छातीको अहितकर । द्रव्य—खीरा (आवताला), आम, अमरख, सफेदी खीरा, खट्टा सेब खाना, कमरकस, मीठा खजूर और बलानजीर ।

मुजिर्रात हलक—कण्ठको हानिकारक । द्रव्य-शराब और सोंठ ।

मुज़इफ़ात क़ल्ब—वह द्रव्य जो हृदयकी गतिको मंद (धीमी) या उसकी आकुंचन शक्तिको कम कर देते हैं या उभय कम करते हैं । उदाहरणार्थ—वच्छनाग (बीश), नीलम (अगंट) और कुटकी इनके उपयोगसे हृदयकी गति मंद (धीमी) और उसकी आकुंचन शक्ति कम हो जाती है ।

मुज़इफ़ात बाह्—देखो 'क़ातेअ बाह्' ।

मुज़इफ़ात रहिम—वह द्रव्य जो गर्भाशय (रहिम)की आकुंचन शक्तियोंको कम कर देता है । जैसे—अहिफेन और भंग ।

मुज़्लिक़—(अरबी इज़लाक़ = फिसलन उत्पन्न करनेवाला अथवा फिसलानेवाला) । वह लवाबदार पिच्छिल द्रव्य जो अपने लबाब (लुआब)से शरीरावयवके पृष्ठोंको क्लिन्न और चिकना कर देता है जिससे अतःस्थित दोष फिसलकर बाहर निकल सके । ऐसे द्रव्यमें मार्दवकरणकी शक्ति और फिसलन उत्पन्न करनेवाला द्रव (रतूबत) होता है, जिससे भीतरी अगके आतरिक पृष्ठको मृदु (नरम और मुलय्यिन) करके वह दोषाख्य माद्देका निर्हरण करता है[1] । गुणकर्मके विचारसे यह स्नेहन (मुरत्तिब)के समान है । (बहु० मुज़्लिक़ात) । द्रव्य-आलूबोखारा, खतमीकी जडका लबाब, इसबगोलका लबाब, बिहीदानेका लबाब, अलसी (तीसी)का लबाब, श्लेष्मातक (लिसोढ़ा)का लबाब और तुख्म रैहाँ ।

मुन्ज़िज (बहु० मुन्ज़िजात)—अरबी नुज़्ज = पकना, पाचन । मुन्ज़िज = पाचन, पकानेवाला । परिभाषामें दोषको पकानेवला (दोषपाचन) और उत्सर्ग एवं निर्हरणयोग्य बनानेवाला । वह द्रव्य जो दोषको प्रकृतिस्थ (मोतदिलुल् क़िवाम) करके निर्हरणयोग्य बनाता है[2] ।

---

१ पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'डिमलसेण्ट् Demulcent' या 'लुब्रिकेन्ट Lubricant' कहते हैं ।

२ आयुर्वेदमें मुन्ज़िज द्रव्यको 'पाचन' या 'दोषपाचन' कहते हैं । यूनानी वैद्यककी भाँति ही आयुर्वेदके अनुसार भी यह पाचन शमन (मुअद्दिल)का एक भेद है । (सु० सू० में उद्धृत तन्त्रान्तरीय वचन)। वृद्ध्या विष्यन्दनात्पाकात्स्रोतोमुखविशोधनात् । शाखा मुक्त्वा मला कोष्ठं यान्ति वायोश्च निग्रहात् ॥ (च० सू० अ० २८ श्लो० ४७) । पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'कोन्कोक्टिव्ह Concoctive' कहते हैं ।

वक्तव्य—मुनद्दिलात वर्गमें एक बहुत बड़ा गण उन द्रव्योंका है, जो मुञ्जिजात कहलाते हैं, जिनके कर्मकी उपपत्तिकी विधि (नौइय्यतेअमलके अहकाम) मुनफ़्रिदात वाले तहत् है। प्राचीन यूनानी वैद्य मुञ्जिजात उन द्रव्योंको कहते हैं, जो शारीरिक दोषों (अख्लात) और शरीरकी धातुओंमें कुछ इस प्रकारके परिवर्तन पैदा करते हैं, जिससे रोगोत्पादक दोष सरलतापूर्वक उत्सर्गित होनेके लिये और स्वभावकी उत्सर्गकारिणी शक्ति (कुव्वत दाफेआ) उन्हें उत्सर्गित करनेके लिये तत्पर या उद्यत हो जाती है। रोगजनक दोषके सरलतापूर्वक निर्हरणमें यदि उनकी भौतिक स्थिति (किवाम)का प्रगाढत्व बाधक है, तो वहाँ ऐसे पाचन (मुञ्जिज) द्रव्य चुने जाते हैं, जो उनको पतला (रक़ीक़) करते हैं। यदि उनके किवाममें इतनी तरलता (रिक्क़त) है, कि जबतक वह प्रगाढीभूत (गलीज) न हो, उनका शरीरसे उत्सर्ग सहज नहीं, तो ऐसे पाचन (मुञ्जिज) द्रव्य उपयोग किये जाते हैं जो उनके पतला द्रव किवामको गाढ़ बनानेमें सहायता करें। इसी तरह कभी-कभी रोगकारक दोष (मवाद् मर्ज)में अत्यधिक लेस होता है, जिससे वे अंगोंके साथ अत्यधिक संश्लिष्ट (चस्पाँ)—चिपके होते हैं। उक्त अवस्थामें यह प्रगट है कि जबतक उनका लेस (लुजूजत) कम न हो अर्थात् दोषका छेदन (तक़्तीअ माद्दा) न हो, उनका निर्हरण दुस्तर है। तात्पर्य यह, कि मुञ्जिजातसे शारीरिक द्रवोंमें जो परिवर्तन उपस्थित होते हैं, उनके फलस्वरूप कभी दोष (माद्दा) तरलतर (रक़ीक़तर) हो जाता है, कभी प्रगाढतर और कभी उनका लेस अर्थात् श्लेष (लजूजत) कम या मिथ्या हो जाता है। निरीक्षणोंसे यह सिद्ध है कि अधिकतर व्याधिकारक दोष स्वभाव या प्रकृतिके द्वारा न्यूनाधिक कालके उपरांत उत्सर्गित हुआ करते हैं, इसके पूर्व वे उत्सर्गित नहीं होते, जिससे हम समझते हैं कि प्रकृति (तबीअत मुदब्बिर बदन) उक्त अवधिमें दोषको पकाने (उनमें परिवर्तन—इस्तिहालात व तगय्युरात उत्पन्न करने)का यत्न करती रहती है, जिससे वह सरलतापूर्वक निर्हरणयोग्य हो जाय और उत्सर्गकारिणी शक्ति (कुव्वत दाफेआ) को दोषनिर्हरणके लिए तैयार करती रहती है। जो द्रव्य प्रकृतिके इस कार्यमें सहायक सिद्ध होते हैं, उन्हें परिभाषाके अनुसार मुञ्जिजात कहा जाता है। मुख्यतः बहुसंख्यक व्याधियोंमें, प्रधानतया चिरकालानुबन्धी रोगोंमें यह एक पुरातन सिद्धान्त है कि संशोधन (तनक़ीह व इस्तिफ़राग)से पूर्व कुछ दिनों पर्यंत दोषपाचन (मुञ्जिज) औषधियाँ पिलाई जाती हैं।[1]

मुञ्जिज और मुसहिलका अर्थभेद—मुञ्जिज (पाचन) वह औषध है, जो दोष (माद्दा)के किवामको गाढ़ेसे पतला या पतलेसे गाढ़ा बनाकर सरलतापूर्वक निर्हरणयोग्य बना दे। परन्तु मुसहिल (विरेचन) वह औषध है जो दोष (माद्दा)को शरीरके अंग-प्रत्यंग और नाड़ियोंसे गतिमान करके मलमार्गसे उत्सर्गित कर दे।

मुञ्जिज औराम, मुञ्जिज (-जुल्) वरम[2], मुक़य्यिह्—व्रणशोथको पकानेवाली औषधि। व्रणशोथमें पूय उत्पन्न करनेवाली औषधि। द्रव्य—गुलनारीपुष्पस्वरस, इक्लीलुल्मलिक (नाखूना), इस्राज (परसियावशां), साबुन, कलौंजी, खतमी, अलसी, गेहूँका आटा और सोआ।

—मुञ्जिज (-जात) बलगम—कफ (बलगम)को पकानेवाली औषधि। कफपाचन। श्लेष्मपाचन। यूनानी द्रव्यगुणशास्त्रके रचयिताओंने मुञ्जिजात बलगमके नामसे निम्न द्रव्यसूची दी है—उस्तूख़ुदूस, मुलेठी, अजीर, अनीसून, बादरंजबूया (बिल्लीलोटन), सौंफ, बरंजासिफ, फासलीमस्न, हसराज, तुख्म खुब्बाजी, तुख्म खतमी, तुख्म कत्तान (अलसी), लसिम्ना (श्लेष्मान्तक), सिकंजबीन सादा, सिकंजबीन असली (मधुकृत शुक्तशार्कर), बालछड़, मुफ़र्रह, उन्नाब, गावजबान, गुलसुर्ख गुलाबपुष्प, गुलगावजबान, गुलकन्द (गुलराड) और मवीज मुनक्का।

मुञ्जिज (-जात) सफरा—पित्त (सफरा)को पकानेवाली औषधि। पित्तपाचन और पित्तसंशमन (मुअद्दिलात सफरा) औषधियाँ निम्न बताई गई हैं—तरबूजका रस (आब तुर्बुज), ताजा खीरेका रस (आबखियार

---

[1] आयुर्वेदमें इसके लिए स्नेहन और स्वेदनकी क्रिया की जाती है।

[2] आयुर्वेदमें मुञ्जिज वरम औषधको 'पाचन (व्रणशोथपाचन)' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'डायपाइटिक Diapytic' कहते हैं।

ताजा), कद्दूका पानी, आलूबोखारा, इसबगोल, इमली, कासनीपत्र, बनफशा, कासनीमूल, पालक्यबीज, पेठेके बीज, तरबूजके बीज (तुरम तुबुर्ज), कुलफाके बीज, खीरा-ककडीके बीज (तुख्म खियारैन), कासनीबीज, काहूबीज, कद्दूके बीज, यवासशर्करा (तुरजबीन), जरिश्क, सिरका, शुक्तशार्कर (सिकजबीन), शाहतरा (पित्तपापडा), शर्बत आलू (आलूबोखाराकृत शार्कर), शर्बत बनफशा, शर्बत सदल, शर्बत निलोफर, गुड या लालशकर (शकर सुर्ख), श्वेतचदन, रक्तचदन, उन्नाव, कपूर, सूखा धनिया, गुलबनफशा, गुलाबपुष्प, गुल निलोफर, गुलकद, मकोय (बीज) और समस्त अम्ल द्रव्य ।

मुञ्जिज (-जात) सौदा—सौदा (कृष्ण पित्त)को पकानेवाली ओषधि । मुञ्जिजात सौदा (सौदा पाचन)-की जो द्रव्यसूची यूनानी वैद्योने लिखी है, उसकी यदि मुञ्जिजात वल्गम (कफपाचन)से तुलना की जाय तो सिद्ध होगा कि दोनोंमें कुछ अधिक अतर और भेद नही है । द्रव्य—उस्तूखूदूस, मुलेठी, अफतीमून (विलायती आकाशवेल), अजीर, बादावर्द, बादरजबूया, सौंफ, हसराज, खरबूजाके बीज, यवासशर्करा (तुरजबीन), सपिस्तॉं (लिसोडा), सिकजबीन अफतीमूनी, शाहतरा, शर्बत गावज़बान, शुकाई, उन्नाव, गावजबान, मवीज मुनक्का, (उन्नाव, गुलकद) ।

मुत्फी, मुतफ्फी(अरबी तत्फिय या इत्फाऽ = बुझाना, उत्ताप शमन करना, शैत्यजनन । बहुव०—मुत्फ़ियात) । तीक्ष्णता और उष्णताको शमन करनेवाली ओपधि । उत्ताप शमन करनेवाली ओपधि । यह अधिक शैत्य और स्निग्धता (रतूबत)के कारण उष्णता और दाहको शमन करती है, और साधारण उष्ण विप्रकृति (सूएमिज़ाज गर्म सादा)को नष्ट करती है[1] । विशेष देखो 'मुसक्किन हरारत' । द्रव्य—कपूर, काहू और कद्दूकी तरकारी, निलोफर, काई, बर्फ, पालकके बीज, खीरेका पानी, कद्दूका पानी, शीतल जल, इमली, छाछ और तरबूज ।

मुदम्मिल, मुद्मिल[2]—इस प्रकारके द्रव्य व्रणरोपण और शोपण (इन्दमाल जख्म)में सहायक होते हैं अर्थात् वे व्रणस्थ क्लेदका शोपण करके स्वस्थ मासका रोहण करते (मास भरलाते) और उसे दृढ (कसीफ) करते हैं । (बहुव०—मुदम्मिलात) । द्रव्य—कमीला, राल, बिरोजा, सुरमा, सगजराहत, गिलमुलतानी, अजरूत, बुझा हुआ चूना, दम्मुल्अख्वैन, गुलनार, कृष्णजीरक, बारतगपत्र-स्वरस, सीसा (नाग), पठानी लोध और चनार ।

मुदिर्र (मुदिर्रात) बौल[3]—वह द्रव्य जो वृक्कोपर प्रभाव करके मूत्रोद्रेकको परिवर्धित कर देते हैं । मूत्र (बौल) प्रवर्तन करनेवाले द्रव्य । इनका यह कर्म दो प्रकारसे होता है—(१) इस प्रकारके द्रव्य वृक्कोमें रक्तसचय उत्पन्न करते और तत्स्थानीय रक्तपरिभ्रमणको परिवर्धित करते है । पुन चाहे वह प्रत्यक्षतया मूत्रपिण्डो पर असर करें, जैसे—तेलनीमक्खी या सार्वदैहिक वाहिनियों और हृदयपर असर करनेके उपरात, जैसे—मद्य । (२) इस प्रकारके द्रव्य वृक्ककी मूत्रोत्पादक धातुओंको उत्तेजना प्रदान करते है, जैसे—कलमीशोरा, जवाखार, चाय और कबाबचीनी । अधिक जल पीनेसे भी (३) अप्रत्यक्ष वा औपचारिक (आरजी) रूपसे वाहिनियोमें रक्तसचय बढ जाता है, जिससे मूत्रपिंड भी प्रभावित होते हैं । अतएव यह प्रथम भेदमें ही अतर्भूत है । द्रव्य—आलूबालू, अफसतीन, हाऊ-

---

१ आयुर्वेदमें मुत्फ़ी औषधको 'दाहप्रशमन', 'दाहशमन', 'दाहहर', 'दाहनाशन' या 'निर्वापण' कहते हैं । पाश्चात्य वैद्यकमें 'रेफ्रिजरेन्ट्स Refrigerants' कहते हैं ।

२ आयुर्वेदमें मुदम्मिल औषधको 'रोपण' या 'शोषण' और पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'सिकैट्राइजिंग Cicatrizing' कहते हैं । जख्मको सुखानेवाले द्रव्यको अरबीमें 'याबिसात कुरूह' तथा 'खातिम' और अग्रेजीमें 'इप्युलोटिक Epulotic' कहते हैं । यूनानी वैद्यकमें इसे 'मुल्हिम' (अ० लह्म = मास)भी कहते हैं ।

३ मुदिर्र अरबी धातु इद्रार (= प्रवर्तन, जारी करना)से व्युत्पन्न है, अस्तु, मुदिर्रका अर्थ है जारी करनेवाला, प्रवर्तन करनेवाला । इससे वह द्रव्य अभिप्रेत होते हैं जो दोष और द्रवों (मवाद और रतूबात)को मूत्र आदिके मार्गसे प्रवर्तन करते हैं । प्रवर्तक । इसका बहुव० 'मुदिर्रात' है । मुदिर्रबौलको आयुर्वेदमें 'मूत्रविरेचनीय', 'मूत्रविरेचन', बस्तिशोधन या 'मूत्रल' कहते हैं । पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'डाइयुरेटिक्स Diuretics' कहते हैं ।

बेर, इजखिर, एरण्डखरबूजा (पपीता), हरमल (इस्पद), उकहवान, इक्लीलुल्मलिक, अलसी (सूक्ष्म), खट्टाअनार (सूक्ष्म), अञ्जुदान, अञ्जुरा, अनन्नास, अनीसून, ऊँटकटारा, ईरसा, एलुआ, बादावर्द, तिक्त बादाम, सौंफ (बादियान), बिच्छू, बिषखपरा, जलपिप्पली (बुक्कन), बिरोजा, बिही, सौंफकी जड, वेदसादा, वेदमुश्क, बछनाग, हंसराज, पुदीना, कबरमूलत्वक् (पोस्त बेखकबर), प्याज, ताडी, तुख्म कसूस, तुख्म पालक, तुख्म खुब्बाजी, तुख्म खुरफा, तुख्म मूली, तुख्म खुरपूजा, तुख्म कद्दू तुख्म खियारैन, तुख्म कासनी, तुख्म तरबूज, तुरमुस, तगर, जावशीर, जदवार, जितियाना, जुदबेदस्तर, जवाखार, चाय, जवासा, छाछ, चिरायता, चिरचिटा, चमेली, चोबचीनी, चौलाई, चूहाकनी, हब्बतुल्खज़रा, हजरुल्यहूद (बेरपत्थर), गोखरू, खर्नूब, दूकू, तेलनीमक्खी, रेवदचीनी, ज़रावद, जरबाद, केसर, सरफोंका, सकबीनज, सहदेवी, कलमीशोरा, उशवामगरबी, उसारारेवद, ऊदसलीब, गारीकून, गाफिस, काकनज, कबाबचीनी, कुरुया (कारवी), खट्टीबूटी, पलाशपुष्प, गुलबाबूना, गुलदाउदी, गिलोय, गदना, मामीरान, दिलारस (मीआ साइला), मजीठ, नाय, नौसादर और हींग।

मुदिर्रे लुआब दहन[१]—

वह द्रव जो लाला (लुआबदहन)का प्रवर्तन (जारी वा खारिज) करते है। द्रव्य—पारद, नीबू, इमली, नागरग (नारंज), कालीमिर्च, सिरका, मूली, तमाकू, राई, रेवद, मार्ज़रियून, अम्ल पदार्थ, अकरकरा, सोंठ और फिटकिरी।

मुदिर्रे हैज़[२], मुदिर्रे तमूस—वह द्रव्य जो गर्भाशय पर प्रभाव करके आर्तवजनन (इद्रार हैज़)का कारण होते हैं अर्थात् आर्तवशोणित (खूनेहैज़)का प्रवर्तन कर देते हैं। इनको आर्तवशोणितप्रवर्तन वा जारी करनेवाले द्रव्य (मुदिर्रात हैज़) कहते हैं। जैसे—हींग, अजमोदा और हंसराज इत्यादि। इनके अतिरिक्त कतिपय द्रव्य इस प्रकार-के भी हैं जिनका असर यद्यपि द्रव्यको आत्मासे (बिज्ज़ात) जरायु पर नही होता, तथापि वह आर्तवशोणितप्रवर्तक (मुदिर्रे हैज़) हैं। अस्तु, कतिपय द्रव्य शरीरमें रक्तोत्पत्तिकी वृद्धि करके या रक्तको शुद्ध करके आर्तवप्रवर्तन (इद्रार हैज़)का कारण होते हैं, जैसे—फौलादका बुरादा इत्यादि, और कतिपय वातनाडियोपर असर करके आर्तवप्रवर्तनका कारण होते हैं, जैसे—कुचला इत्यादि। कतिपय द्रव्य गर्भाशयमें रक्तागमकी वृद्धि कर आर्तवप्रवर्तनका कारण होते हैं, जैसे—उष्ण जलमे कटिस्नान (आबज़न) कराना और कतिपय द्रव्य तत्सबधी अवयवोमे सक्षोभ और उत्तेजना पहुँचाकर जरायुको उत्तेजना प्रदान करते हैं, जिससे आर्तवप्रवर्तन हो जाता है। जैसे—एलुआ या एलुआघटित विरेचन औषधियाँ। द्रव्य—हाऊबेर (अबहल), इजखिर, हरमल (इस्पद), मुलेठी, अफसतीन, उकहवान, इक्लीलुल्मलिक, इन्द्रजौ, अनन्नास, अनीसून, ईरसा, एलुआ, कडवा बादाम, सौंफ, वच, चमेलीकी पत्ती, मेंहदीकी पत्ती, बिषखपरा, बदाल, बिरोजा, सौंफकी जड, कासनीकी जड, एरण्ड, बछनाग, हंसराज, पुदीना, पोस्त अमलतास, कबरकी जडकी छाल, प्याज, तज, तुख्म खुरपूजा, तुख्म तुरज, तुख्म कसूस, तुख्म बथुआ, तुर्मुस, तगर, तेजपात, जावशीर, जदवार, जुदबेदस्तर, जितियाना, हब्बुलआस, कडबीज (हब्बकुर्तुम), कुलथी (हब्बुल्कुल्त), हब्बतुल्खज़रा, चिरायता, चोबचीनी, चौलाई, गोखरू, दारचीनी, दूब, दूकू, कपासका डोडा, तेलनीमक्खी, रतनजोत, रीठा, रेवदचीनी, जरावद, जरबाद, केसर, सुदाब, सकबीनज, बालछड, सुहागा, अकरकरा,

१ मुदिर्रेलुआबदहन औषधको आयुर्वेदमें 'लालाप्रसेकजनन' या 'लालाप्रवर्तक' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'साएलेगॉग्स' Sialagogues' कहते हैं। परतु लालारसकी उत्पत्तिको कम करनेवाले द्रव्यको, जैसे—अहिफेन और यवक्षार इत्यादि, यूनानी वैद्यकमें 'मुकल्लिलात लुआबदहन' और आयुर्वेद एव पाश्चात्य वैद्यकमें क्रमश 'लालाप्रसेकापनयन' और 'ऐन्टिसाएलेगॉग्स—Antisialagogues' कहते हैं।

२ मुदिर्रेहैज़ औषधको आयुर्वेदमें 'आर्तवशोणितप्रवर्तक' कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'एम्मेनेगॉग्स् Emmenagogues' कहते हैं।

ऊदसलीब, गारीकून, गाफिस, फितरासालियून, कबाबचीनी, अजमोदा, करजुवा, कुस्या, कुदुग, गुलदाउदी, गुल टेसू, गदना, गेदा, लाजवर्द, मजीठ (फुव्वा), बोल (मुरमक्की), मिश्कतरामशीअ, गुग्गुल (मुक्ल), मेथी, शिलारस (मीआ साइला), नाय, हलियून, हीराकसीस, हीग (वायविडग, कलौंजी, मधुर कुष्ठ, जगली तुलसी, ऊद, मुडी, वादावर्द, जूफा खुश्क, चनोका जुलाल, नागरमोथा, सुदाब, आम, छडीला, मरजजोश, अजवायन, ऊदसलीब, फरासियून, अबर, इन्द्रायन, लोहके लवण, अर्गट, सेविन, डिजिटेलिस)।

मुदिर्रात मनी, मुख्रिज मनी—वीर्य (मनी)का प्रवर्तन या जारी करनेवाला द्रव्य। ऐसे द्रव्य वीर्यको पतला करके और शुक्रका मार्ग उद्घाटित करके उष्णताके कारण वीर्यका प्रवर्तन करते हैं[1]। द्रव्य—अजमोद, अकाशबेल, सौंफ और दिरमना तुर्की।

मुदिर्रात लब्न—स्तन्य (लब्न) प्रवर्तनकारी और वृद्धिकारी द्रव्य। ऐसे द्रव्य मलभूत द्रवो (रतूबात फुज़लिय्या)के कारण स्तन्य (स्तनोमें दूध) अधिक उत्पन्न करते हैं। द्रव्य—सतावर, मुसली सफेद, काली मुसली, तोदरी सफेद, तोदरी ज़र्द, तोदरी सुर्ख, सफेद तिल, बबूलका गोद, बाबूना, सफ़ेद जीरा, सौंफ और अकरकरा।

मुनफ़िज, मुनफ़्फ़िज़—प्रवेश (नुफ़ूज) करानेवाला। वह द्रव्य जो अपने साथ मिले हुए अन्य द्रव्यको अपने इष्ट स्थान तक शीघ्र पहुँचा देता है। (बहु० व०—मुनफ़्फ़िजात)। ऐसे द्रव्यका उदाहरण सिरका और केसर आदि बतलाये जाते है। अस्तु, हृदयरोगकी चिकित्सामें प्रयुक्त गुणकारी द्रव्योंमें केसर यही कर्म निष्पन्न करता है।

मुनफ़्फ़त (बहु० व०—मुनफ़्फ़तात)—(अरबी नफ्ता = स्फोट, छाला, आबला। मुनफ़्फ़त = आबलाअगेज (फा०), विस्फोटजनन)। छाला या आबला डालनेवाला द्रव्य। ऐसे द्रव्य अपनी उष्णता और दाहके कारण त्वचापर स्फोट (छाले) उत्पन्न कर देते हैं[2]। द्रव्य—भिलावाँ, जयपाल, राई, तेलनीमक्खी (ज़रारीह), जयपाल तैल, राजिका तैल, रोगन सुदाब, अर्कक्षीर, लटूकरी (जलधनिया), फर्फियून और गुललाला।

मुनफ़्फ़िस (मुनफ़्फ़िसात) बल्गम, मुख्रिज (मुख्रिजात) बल्गम[3]—श्वासोच्छ्वास प्रणाली (फ़ेफ़ड़ों)से ष्ठीवनकी राह (मुखमार्ग)से कफनिर्हरण करनेवाले द्रव्य। वह द्रव्य जो श्लेष्माको सरलतापूर्वक उत्सर्गित करते हैं, उदाहरणत हरमल (इस्पद), अनीसून, मुलेठी, और जगली प्याज। द्रव्य—अबरेशम, अडूसा, इसबद, मुलेठी, उशक, अलसी, अञ्जीर, अनीसून, ईरसा, सौफ, बाकला, विपखपरा, बिरोजा, पान, पपीता, कबरमूलत्वक्, मदारमूलत्वक्, पुष्करमूल, पियारांगा, प्याज, कांदा (जगली प्याज), तमाकू, तोदरी, जवाखार, चना, हाशा, हब्बबलसाँ, हुर्फ, खाकसी, खुब्बानी, खतमी, कुलजन, दालचीनी, दरमिना (किरमानी अजवायन), दूकू, राल, अनीसूनका तेल, सरोका तेल, बिरोजेका तेल, रेवदचीनी, हलदी (ज़र्दचोब), जरवाद, जिफ्त रतब, जूफाये खुश्क, जीरा, गेहूँकी भूसी (सबूस गदुम), लिटोरा (सपिस्ताँ), समुन्दरफल, टकण, मधु, उन्नाब, ऊदबलसाँ, फितरासालियून, कड (कुर्तुम), कुष्ठ, कतूरियून, काकडासिंगी, कपूर, कुचला, कलौंजी, गाजर, गावज़बान, उष्णजल, मदारपुष्प, गधक, गदना, गोदन्ती, लोबान, लौंग, लहसुन, मालकँगनी, कालीमिर्च, बोल, मीठे बादामकी गिरी, कडवे बादामकी गिरी, बिनौलेकी गिरी (मग्ज पुबादाना), मग्ज हब्बतुल्खिज़रा, मग्ज फिंदक, चिलगोजेकी गिरी, गुग्गुल (मुक्ल), मेथी, शिलारस (मीआ साइला), नौसादर, हीग, प्राय क्षारीय द्रव्य।

---

१ मुदिर्रमनी औषधको आयुर्वेदमें 'शुक्र प्रवर्तक' या 'शुक्र स्रुतिकर' (मुहर्रिक बाह—कामोत्तेजक) कहते हैं।

२ मुनफ़्फ़तको आयुर्वेदमें स्फोटजनन और पाश्चात्य वैद्यकमें 'एपिस्पैस्टिक्स Epispastics' या 'वेसिकेन्ट Vesicant' कहते हैं।

३ आयुर्वेदमें मुनफ़्फ़िस बल्गम वा मुख्रिज बल्गम औषधको 'कफोत्सारि' या 'श्लेष्मनि सारक' कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'एक्सपेक्टोरेण्ट्स Expectorants' कहते हैं।

मुनव्विम (मुनौविम)—(अरबी नौम = नीद या निद्रा । बहु०व०-मुनव्विमात) । नीद लानेवाले, सुलानेवाले द्रव्य । इसका उक्त कर्म आर्द्रता (रतूबत) और प्रसुप्तता (तख्दीर)के कारण निष्पन्न होता है । यह द्रव्य सीधे या प्रत्यक्षतया अग्र मस्तिष्कपर प्रभाव करके या मस्तिष्कगत रक्तसचय (दिमागी इम्तिलाऽ)को कम करके निद्रोदय करते हैं ।[1] द्रव्य—खुरासानी अजवायन, अहिफेन, उपोदिका पत्र, भग, पोस्त खशखाश, धतूर बीज, चोबचीनी, खशखाश (पोस्ता), शूकरान, शैलम, कपूर, काहू, कसूस, सोआ, (खशखाशके फूल, केसर, कसूम, हुब्बकाकनज, सेव, हमामा, बनफ्शा, हरा धनिया, यवमड, बादामकी गिरी, बादामका तेल, रोग़न निलोफर, रोग़न गुल, बाबूना, गाँजा, मकोय भेद) ।

मुनश्शिफ, मुफज्जिज (बहु०व०-मुफज्जिजात)-(अरबी फिज्ज = कच्चा, अपक्व, आम दोष । फिज्जाजत = कच्चापन) आम वा कच्चा (खाम) रखनेवाला । वह द्रव्य जो अपने शीतवीर्यसे प्रकृत देहाग्नि (हरारते गरीजी, असली गर्मी) और अप्रकृत देहाग्नि (हरारतें गरीबा, खारजी गर्मी) दोनोंको क्रियारहित करके दोषको आम या अपक्व और पाचनको अपूर्ण रखता है । यह 'हाज़िम' और 'मुन्ज़िज'के विपरीत है । द्रव्य—इसबगोल, तुख्म रेहाँ इत्यादि ।

मुफज्जिर वरम[2] (-औराम)—(अरबी इन्फिजार = फटना, फूटना, परिभाषामें फोडा फूटना) व्रणशोथको फाडनेवाला । वह द्रव्य जो पके हुये व्रण वा व्रणशोथ (औराम)को अपनी तीक्ष्णता और उष्णतासे फाड देता है, जिससे पूय जारी हो जाता है । द्रव्य—कपोतविष्ठा (पजाल कबूतर) और वनपलाण्डु (प्याज असल) ।

मुफत्तित (मुफत्तितात) हसात[3]—वृक्क और बस्तिस्थ अश्मरि (हसात = सग, सगरेजा, पथरी वा ककरी)को तोडनेवाला और रेजा = रेज़ा करनेवाला । इसका उक्त कर्म प्राय जातिस्वरूप (सूरतें नौइय्या)से निष्पन्न होता है या गुणके तीव्र और आशुप्रवेशनीय (सरीउन्नुफूज) होनेके कारण । द्रव्य—आलूबालू, इन्द्रजौ, अरडखरबूजा (पपीता), पथरीतोडी, अजमोदा (तुख्म करफ्स), तुख्म हलियून, जदवार, जवाखार, सोतोंके खारे पानी, कुल्थी, हजुल्यहूद, रतनजोत, शिलाजीत, सगसरमाही, सहदेवी, शोरा, सातर फारसी, जलाया हुआ बिच्छू (अक्रब सोख्ता), फितरासालियून, गेंदा, मूत्रल औषधियाँ, क्षारीय विरेचन, (केंचुवा, हुब्बुलमहिलब, यशब, सफेद खर्बक, रोगन बलसाँ, जिरजीर, पान, असारून (तगर), खरबूजेके बीज, हसराज, सकबीनज, तिक्त बादाम, बालछड, गोखरू, सौंफ, तज (सलीखा), कृष्णचणक (नखुदस्याह), नागरमोथा, आवनूस, जरावद, बादावर्द, सलगम, प्याज) ।

मुफत्तेह (बहु०व०-मुफत्तेहात)[4]-(अरबी फतह = खोलना)। खोलनेवाला । वाहिनियो (उरूक)का अवरोध एव विबध (सुद्दों) और स्रोतो (मसामात)को खोलने या उद्घाटित करनेवाला द्रव्य । ऐसे द्रव्य वाहिनियोंको परिविस्तृत करते (मुफत्तेह उरूक) हैं या बहल, सहत एव प्रगाढीभूत (गलीज) दोषोंको द्रवीभूत करके पतला और प्रवाही बना देते (जाली व मुहल्लिल) हैं, जिससे अवरुद्ध प्रणालियाँ खुल जाती हैं । यह अपनी उष्णता या सूक्ष्म

---

१ आयुर्वेदमें मुनव्विम औषधको 'स्वप्नजनन', 'स्वापजनन' या 'निद्राकारक' कहते हैं । पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'हिप्नॉटिक्स् Hypnotics' या 'सोपोरिफिक्स् Soporifics' या 'सोम्नॉलेन्ट Somnolent' कहते हैं । यूनानी वैद्यक (अरबी)में इसे मुस्बित या मुसब्बित भी कहते हैं । देखो 'मुसब्बित' ।

२ मुफज्जिर वरम औषधको आयुर्वेदमें 'दारण' या 'प्रदरण' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'एस्केरोटिक्स Escharotics' या 'कॉस्टिक Caustic' कहते हैं ।

३ मुफत्तितहसातको आयुर्वेदमें 'अश्मरीघ्न' या 'अश्मरीनाशन' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'ऐन्टिलिथिक्स Antilithics' या 'लिथोन्ट्रिप्टिक्स-Lithontriptics' (शर्करानाशन) कहते हैं ।

४ मुफत्तेह औषधको आयुर्वेदमें 'प्रमाथि' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'डिऑब्स्ट्रुएण्ट-Deobstruent' कहते हैं । यूनानी वैद्यक (अरबी)में इसे 'मुफत्तेहुस्सुदद्' और 'मुज़िय्यिलुस्सुदद्' भी कहते हैं ।

एव विलायक (लतीफ व मुहल्लिल) या सूक्ष्म एव छेदनीय (लतीफ व मुकत्तेअ) होनेके कारण वहिराभ्यन्तरिक (अवरुद्ध) वाहिनियो स्रोतो एव प्रणालियो और गुहाओ (अन्त्रामाशयादि)के अवरोध वा विवधको दूर करता या उद्घाटित करता है। स्रोतोद्घाटक। अवरोधोद्घाटक। मार्गशोधक। इसका उल्टा 'मुसद्दिद' (अवरोधोत्पादक) है। द्रव्य—हाऊवेर, अजवायन, इज़खिर, उस्तूखूदूस, उशक, अफतीमून विलायती, अफसतीन, अगर, उक्हुवान, अनीसून, ईरसा, सौंफ, विरजासफ, कासनीकी जड, पान, कवरकी जडकी छाल, प्याज, तुख्म खरबूजा, तुख्म सँभालू, तुख्म कासनी, तगर, तूत, जाविश्री, जदवार, जुदवेदस्तर, चाय, चोवचीनी, जरावद, हलदी, जरबाद, जूफा, सूदाव, सनाय, वालछड, सुरजान, कलमीशोरा, अकरकरा, ऊदसलीव, गाफिस, गारीकून, फरजमुश्क, फितरासालियून, मजीठ, कासनी, कवावचीनी, कसूस, अजमोदा, वोल, कस्तूरी, मवीज़, हसराज, (घाहतरा, शकाकुल, अकाशवेल, तुर्मुस, सावर, जावशीर, पखानवेद, कृष्णजीरक, हालो, खाकसी, दालचीनी, केसर, गाजरके बीज, सोठ, दौना, पीपल, सुदाव, फावानिया, शिलारस, कतूरियून, मटर, हमामा, किर्दमाना, फराशियून, कुदुर, आवनूस, सूरजमुखी, वकाइन, अजीर, बिल्लीलोटन, गधाविरोजा, वादावर्द, वूजीदान, वहमन, लहसुन, रेवदचीनी)।

वक्तव्य—इसके अतिरिक्त समस्त उत्तेजनपूर्ण, सक्षोभजनन (लाज़ेआ मुहय्यिजा), शोणितोत्क्लेशक (मुहम्मिरा), विलयन (मुहल्लिला), दहन (काविया), और व्रणजनन (मुकर्रेह) ओपधियाँ वाहिनीविस्फारक वा वाहिन्युद्घाटिनी (मुफत्तेह उरूक) है। इसी प्रकार लगभग समस्त विरेचन, मूत्रल और स्वेदन द्रव्य भी तत्सवधी अवयवोकी वाहिनियोंको विस्फारित (उद्घाटित) कर देते हैं।

मुफत्तेह सुकूबए इनबिय्या[1], बासितात हद्का, मुमद्दिदुल् हद्का—वह द्रव्य जिसके उपयोगसे आँखकी पुतली वा तारका (सुक्वे इनबिय्या या हद्का) विस्फारित हो जाती है। आँखकी पुतली विकसित वा विस्फारित करनेवाले द्रव्य। जैसे—जौहर यवरूज (ऐट्रोपीन)। द्रव्य—खुरासानी अजवायन, यवरूज (वेलाडोना), धतूरा।

मुफर्रेह (वहुव०—मुफर्रेहात)–(अरवी फर्ह=आह्लाद, प्रसन्नता, खुशी, फरहत। तफ्रीह=आह्लादन, खुशी देना) आह्लादजनक, चित्तमें सौमनस्य, उल्लास और आह्लाद (फरहत व सुरूर) उत्पन्न करनेवाला द्रव्य[2]। यह द्रव्य हृत्स्थ ओज वा प्राणौज (रूह कलवी)को निर्मल करते हैं, और शरीरमें प्रसारित करते हैं, तथा उसको अधिक उत्पन्न करते हैं और उसके मिज़ाजको मो'तदिल (अनुष्णाशीत) करते हैं। निम्नलिखित द्रव्योंकी गणना यूनानी वैद्योने 'मुफर्रेहात'के अतर्भूत की है, परतु इस विषयमें बहुत ही विशालहृदयता (वा मुक्तहस्तता)से काम लिया गया है। गभीरतापूर्वक विचार करनेके उपरात इस सूचीमें पर्याप्त परिवर्तन और सशोधनकी अनिवार्यता प्रतीत होगी।

वक्तव्य—इस प्रकारके द्रव्य मस्तिष्ककी क्रियाओको तीव्र करनेके साथ आतरिक रूपसे उपयोग करने पर सौमनस्य, मन प्रसाद या मनोल्लास (तफ्रीह अर्थात् मसर्रत व इम्वसात) उत्पन्न करते हैं, जैसे—मद्य और कपूर इत्यादि। इस प्रकारके प्राय द्रव्य जो प्रलापकारक (मुहज्जी) होते हैं, वह सौमनस्यजनन (मुफर्रेह) भी होते हैं जैसा कि भग और मद्यसे प्रलाप (हज़यान) और मन प्रसाद (तफरीह) उभय कर्म प्रकाशित होते हैं। द्रव्य—नीवूका रस, अवरेशम, इलायची, आम, अमरूद (खट्टा और मीठा), अनार, अनन्नास, विल्लीलोटन (वादरजवूया) वालगू, बुसुद (प्रवाल मूल), (श्वेत व रक्त) वहमन, भग, विही, पान, पेठा, ताडका फूल, तालीसपत्र, इमली

---

१. आयुर्वेदमें इसे 'तारकाविकास' या 'कनीनिकाविस्तारक' कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'मिड्रिएटिक्स– Mydriatics' कहते हैं।

२ मुफर्रेह द्रव्यको आयुर्वेदमें 'सौमनस्यजनन', 'मन प्रसादकर' (च०) वा हृद्य (च०) और पाश्चात्य वैद्यकमें 'एक्सिलरेण्टस् Exhilarants' कहते हैं।

तेजपात, जावित्री, जायफल, जदवार, जगली तुलसी, चाय, चकोतरा, छडीला, खस, सुगधद्रव्य, कुलजन, दरूनज अकरवी, जरवाद, केसर, पन्ना (जमुर्रद), ज़हरमोहरा (खताई), वालछड, सगतरा, सीप, मद्य, शीतल और स्वादिष्ट शर्वत, चदन (श्वेत), वशलोचन, अर्कवेदसादा, अर्क वेदमुश्क, अर्क केवडा, अर्क गुलाव, अवर, फरजमुश्क, फिरोजा, कपूर, किशमिश, खिरनी, केवडा, कहरुवा, गाजर, गावजवान, गिल अरमनी, गुल चाँदनी, गुलदाउदी, गुलसुर्ख, गुल सेवती, गुलगावजवान, गुल गुडहल, गिल मख्तुम, गुल मौलसिरी, गुलाव, गुलाव जामुन, ईख (गन्ना), लाजवर्द, लौकाट, लौंग, लीची, मुक्ता (मरवारीद), कस्तूरी, नारज, चाँदीका वर्क, सोनेका वर्क, याकूत, यशव, (नख अर्थात् अज़्फ़ारुत्तीव, तज, नाशपाती, तुरज (विजौरा), आँवला, नीवूके फूल, नीवूका छिलका, मूँगा, वसफाइज, लाजवर्द, अगर (ऊद), निलोफरके फूल, पुदीना, पिस्तेकी गिरी, नागरमोथा (सुअद), शकाकुल, फावानिया, धनिया, हड, आलूवोखारा, कुदुर, कतीरा, उस्तूखुद्दूस)।

वक्तव्य—इनमेंसे निम्न द्रव्य विशेपतया पुनरपि विचारकी अपेक्षा रखते हैं—प्रवालमूल (वुसुद), पन्ना (जमुर्रद), ज़हरमोहरा, वशलोचन, फीरोजा (पेरोजक), गिल अरमनी, गिल मख्तूम, लाजवर्द, मुक्ता, याकूत और यशव। इनके अतिरिक्त वहुश अन्यान्य द्रव्य भी विचारणीय हैं। इनमेंसे कतिपय द्रव्य अप्रत्यक्ष या औपचारिक रूपसे (विल्अर्ज) सौमनस्य या उल्लास (तफ्रीह) प्रदान करते हैं, और कतिपय द्रव्यका कर्म वहुत ही सूक्ष्म वा स्वल्प होता है।

मुवख़्खिर (बहु० मुवख्खिरात)—(अरवी वुखार = वाष्प, ज्वर। तव्ख़ीर = वाष्प वनाना), अर्थात् वाष्प उत्पन्न करनेवाला। वह द्रव्य जो पाचनको विगाडकर दूपित वाष्प और दुष्ट दोप उत्पन्न कर देता है। इससे शरीरकी प्रकृति (मिज़ाज) विकृत हो जाती है, और कभी-कभी इससे अल्प उष्णता भी वढ जाती है। ऐसे द्रव्य वायुकारक (मुवल्लिद रियाह) हुआ करते हैं। द्रव्य—गदना, आडू, प्याज, अरवी, उडदकी दाल (दाल माश)।

मुवद्दिलात = वदलनेवाला, परिवर्तन[1] करनेवाला।

वह द्रव्य जिसके उपयोगसे क्रमश और किसी गुण-विशेपके प्रकाशके विना शरीरके भीतर ऐसा परिवर्तन उपस्थित होता है, कि रोगी पूर्ववर्ती वास्तविक स्वास्थ्य लाभ करता है। चिरकालपर्यन्त और अल्पप्रमाणमें सेवन करनेसे कोई विशेप रुग्ण अवयव या सपूर्ण शरीर निरोग होकर स्वास्थ्यावस्थामें परिणत हो जाता है। परतु सेवनके समय उत्तेजक या विरेचन आदि जैसे किसी गुणविशेपकी प्रतीति नही होती। रोगी धीरे-धीरे आरोग्य हो जाता है। ऐसे द्रव्य दीर्घकालमें अपना प्रभाव प्रगट करते हैं, और केवल चिरकालानुवधी रोगोंमें, और अत्यल्प प्रमाणमें दिये जाते हैं। समस्त ऐसे द्रव्योंमें विशेप प्रभाव यह देखा गया है, कि यह रक्तका प्रसादन करते हैं। उसमें जो विप-द्रव्य मिला हो, उसे प्राकृतिक द्रवोंके मार्गसे उत्सर्गित कर देते हैं। इसे मुअद्दिलात भी कहते हैं। देखो—'मुअद्दिलात'। द्रव्य—पारदके योग, जैसे—पारदगुटिका (व्ल्यू पिल) जिसमें पारद, गुलकद और मुलेठी होती है तथा दालचिकना जिसे मुलेमानी भी कहते हैं, इत्यादि।

मुवर्रिद[2] (वहुव०-मुवर्रिदात)-(अरवी वर्द, वरूदत = शीतलता, ठढक। वारिद = शीवल, ठढा) शीतल करनेवाला। शीतलता या ठढक पहुँचानेवाला। वह द्रव्य जो अपनी आत्मीय शक्ति (शीत) से शरीरमें शीतलता

---

१ आयुर्वेदमें इसे 'परिवर्तक' (वा 'सशमन') और पाश्चात्य वैद्यकमें 'आल्टरेटिव्ह Alterative' कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें मुवर्रिद औपधको दाहशमन, दाहप्रशमन, दाहहर, निर्वापण, दाहनाशन, शीत-जनन और शीतल कहते हैं। यूनानी वैद्यकमें इसे मुत्फी, मुकल्लिल् हरारत, और मुसक्किन हरारत भी कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'रेफ्रिजरेन्ट्स Refrigerants', 'फ्रिगोरिफिक् Fregorific' और 'कूलर Cooler' कहते हैं।

उत्पन्न करता है। इससे वे द्रव्य अभिप्रेत हैं, जो स्थानीय या सार्वदैहिक रूपसे वाहिनियोंको संकुचित करके या शारीरिक परिवर्तन (तगय्युरात व इस्तिहालात)में गुप्त रुकावट डालकर उत्तापोत्पत्तिको कम कर देते हैं, या किसी रीतिसे दाहनाशनक्रिया (जैआन हरारत)को तीव्र करके शारीरिक ऊष्माको प्रकृतावस्था (एतदाल)में गिरा देते हैं। समस्त वाहिनीसंग्राहिक (काबिज़ उरूक), रक्तस्तम्भन (हाबिस खून), स्वेदन (मुअर्रिक) और प्राय स्वापजनन (मुखद्दिर) द्रव्य शीतल (बारिद) हैं, जिनकी द्रव्य-सूची उन-उन शीर्षकोंके अन्तर्भूत दी गयी है। द्रव्य—कपूर, अहिफेन, काहू, चंदन, गुड़हल पुष्प, निलोफर, आलूबोखारा, कुलफा, कद्दू, पालक, पेठा, तुरई, इमली, ककडी, खीरा, रसवत, गदहीका दूध।

मुबस्सिर (बहु०व०—मुबस्सिरात)-(अरबी बुस्र, बुस्रा = फुंसी, दाना। बहु० व०—बुसूर। बस्रा = दाना या फुंसी निकलना) दाने या फुंसी उत्पन्न करनेवाला द्रव्य। मुबस्सिर द्रव्य मुहम्मिर (शोणितोत्क्लेशक) शीर्षकके अंतर्गत एक साथ लिखे गये हैं।

मुबह्ही (बहु०व०—मुबह्हियात), मुबैही, मुबही—(अरबी बाह = बाह, वाजि, काम, Aphrodisia = मैथुनेच्छा और रतिशक्ति)। मैथुनेच्छा और रतिशक्ति बढानेवाला, मैथुनेच्छाको तीव्र करनेवाला औषध, रतिशक्ति पैदा करनेवाला आहार और औषध। प्रकृतिस्थ (मोतदिल) उष्णता और मलभूत द्रवो (रतूबत फुज़लिय्या)के कारण यह वातनाडियों और उत्पादक अंगोंमें सान्द्र वायु (रियाह ग़लीज़) और वीर्य उत्पन्न करके मैथुनशक्ति वा रतिशक्ति (कुव्वतजिमाअ) प्रदान करता है। यूनानी वैद्यकमें इसे मुकव्वी बाह भी कहते हैं। देखो 'मुक़व्वी बाह'।

वक्तव्य—मुबह्हीका शुद्ध रूप 'मुबय्यिह' था, परन्तु अशुद्ध होते हुए भी मुबह्ही और मुबैही प्रसिद्ध हो गया। द्रव्य—सोंठ छुहारा, तीतर-बटेर-कुक्कुट-अजामास और बगुलाका मास, अर्धभृष्ट कुक्कुटाण्ड (बैज़ा नीमबिरिश्त), चटकमास, चटकका भेजा, बकरीका दूध, गोदुग्ध, गोघृत, खीर (शीर बिरिंज), फिंदक़, शका-कुल, बूज़ीदान, हालो, कौंचके बीज, बाबूना, सफेद मुसली, काली मुसली, सेमलका मुसला, अकरकरा, मस्तगी, गदनेके बीज, खाकसीर (खूबकलाँ), पिप्पली, छडीला (उश्ना), लोबिया, बेदमुश्क, असारून (तगर), जरवाद, नर-कचूर, आडू, कस्तूरी, ईस, इन्द्रजौ, शुद्ध मडूर, रेगमाही, माही रोबियाँ (झींगा मछली), चना, सक़्क़ूर, अजीर, वटक्षीर, अलसीबीज, सूरजान शीरी, केसर, अंगूर, जावित्री, करेला, शलगम, बत्तखका मास, कडके बीजकी गिरी, मैदालकडी, घुँघची, यवासशर्करा (तुरंजबीन), गाजरके बीज, काला तिल, दारचीनी, हब्बुल् महलिब, बूज़ये अरमनी, रीठा, केकडा (सरतान नहरी), मेथी, बिनौलेकी मींग, बाकला, कटहल, चोबचीनी, बादामकी गिरी, अखरोटकी मींग, चिलगोजेकी मींग, पनीर माया शुतुर, हींग, पिस्ता, सालबमिश्री, कुलजन, तज, गोखरू, सफेद बहमन, लाल बहमन, तोदरी जर्द, तोदरी सफेद, खोपरा, प्याजके बीज, मूलीके बीज, मोती, अंबर, सांडा और रेशम।

मुमल्लिस (मुमल्लिसात)—(अरबी अम्लस् = मसृण, कोमल, चिकना, समतल) मसृण वा चिकना करने-वाला। कर्कश वा खुरदरी (खरस्पर्श) जगहको समतल और मसृण करनेवाला। वह द्रव्य जिससे त्वचाके धरातल या श्लैष्मिक कलामें प्रदाह (खराश) दूर होकर, चिकनाहट उत्पन्न हो जाती है। यह अपनी लस वा चेंप (लज़ू-जत)के कारण अवयवके खर वा कर्कश पृष्ठ पर आवरित होकर उसमें मृदुता और चिकनाहट उत्पन्न कर देता है या इनके प्रभावसे उक्त पृष्ठ पर आर्द्रता (रतूबत) दौड आती है जिससे कर्कशता छिप जाती है। यदि वह कर्कशता-को निवारण कर दे, तो वास्तविक मृदुकरण (तम्लीस) और यदि उसको छिपा दे तो अवास्तविक (मृदुकरण) है, ऐसा समझना चाहिये। लेखनीय (जाली), प्रक्षालनीय (गस्साल) और छिलका उतारनेवाली (काशिर) औषधियाँ कर्कशताका निवारण करती हैं। द्रव्य—तुख्म खुब्बाजी, तुख्म खतमी, रेशा खतमी, गावज़बान पत्र, बिही-दाना, जैतूनतेल, गुलरोगन, रोगन बादाम, तिलतेल (रोगन कुंजद), चर्बी, तेल, अलसी (तुख्म कतान), इसबगोल, तुख्म रैहाँ, तुख्म कनौचा, तुख्म बारतंग, तुख्म बालंगू, कतीरा, बबूलका गोंद (समग अरबी),

आलूबुखारा, उन्नाव, अजीर, लिसोडा (सपिस्ताँ), मुलेठी, सरेश (हुलाम), कले पाये, शुद्ध मधु, शर्करा (कद सफेद), छिलका उतारा हुआ जौ, यवमड (माउश्शईर), श्वेतसार (निशास्ता) और वेलगिरी।

मुम्बिते (मुम्वते) लहम—व्रणमे मासरोहण करनेवाले द्रव्य। व्रणरोपण द्रव्य। ऐसा द्रव्य व्रणस्थ रक्तकी प्रकृतिमें समता लाकर उसमें किसी प्रकार खुश्की पहुँचाकर उसको स्कदित कर देता है, तथा उसको स्वस्थ मास बनाकर रोपण करता है[1]। द्रव्य—दम्मुल्अख्वैन, कतीरा, रोगन जैतून।

मुम्बित शा'र(= बाल उगानेवाले द्रव्य)। यह द्रव्य शिर और श्मश्रुके केशोको उत्पन्न करते और सर्वधित करते हैं[2]। द्रव्य—खतमी, बेरीके पत्ते, सरोके पत्ते, माशकी दालका लुआव, मोलसिरीके फूल, खोपरेका तेल और अडेकी जर्दीका तेल।

मुम्सिक मनी—(अरबी इम्साक् = रुकना, वद करना, इमसाकमनी = मनीकी रुकावट, शुक्रस्तभन (बहुव०—मुम्सिकात)। धात्वर्थ इम्साक (स्तभन) उत्पन्न करनेवाला, पकडनेवाला, ठहरानेवाला, निकलनेसे रोकनेवाला। परिभाषामें शुक्रस्तभन करनेवाला द्रव्य, अर्थात् वह द्रव्य जो वीर्यको रोके और शीघ्र स्खलित (इन्ज़ाल) न होने दे। स्खलन (इन्ज़ाल)में रुकावट और सुरतकालको दीर्घ (ताखीर) करनेवाला द्रव्य[3]। ऐसे द्रव्य सक्षोभहारक (मुसक्किन लज़्अ) वा वीर्यकोप वा जननाङ्गोकी वढी हुई स्पर्शशक्ति वा उकसाहट (स्पर्शासहिष्णुता–ज़िकावतेहिस्स)को कम करनेवाले और स्वापजनन (मुखद्दिर) होते हैं। ये रूक्षता और सूक्ष्म उष्णताके कारण शुक्रको स्खलित नही होने देते। द्रव्य—अभ्रक, उटगन, खुरासानी अजवायन, अहिफेन, भग, बीजवद, इमलीके बीज, धतूरके बीज, यशद, (जस्ता), चरस, चुनियाँगोद, पारद, भगबीज (शाहदाना), शिगरफ, अकरकरा, कुचला, लौंग, मोचरस, (जायफर, बीरबहूटी, गुग्गुल, कालीमिर्च, जावित्री, केसर, मस्तगी, दालचीनी, सोठ, कस्तूरी, अकरकरा, बबूलके फूल, सत गिलोय)।

मुरक्किक = पतला (रकीक) करने वाला।

वह द्रव्य जो प्रवेशनीय शक्ति (कुव्वत नाफ़िज़ा) और उष्णता एव स्निग्धताके कारण दोषो और द्रवोको पतला करता है[4]। (बहुव०—मुरक्किकात)। द्रव्य—मधु, शुक्त (सिरका), खाँड, सातर और पुदीने का अर्क।

मुरख्खी, मुर्ख्खी (अरबी इर्खाऽ = ढीला करना, सुस्त करना, कमजोर करना। बहुव०—मुर्ख्खियात, मुर्ख्खियात)। नरम करनेवाला। शिथिल वा ढीला करनेवाला। वह द्रव्य जो त्वचा पर लगानेसे तत्स्थानीय त्वचाको कोमल और उसकी धातुको ढीला कर देता है। इस प्रकारके द्रव्य जो अपने उष्ण एव स्निग्ध वीर्यसे शरीरके अग-प्रत्यगो और उनके स्रोतोको मृदु करते हैं। इसलिये स्रोतविस्फारित हो जाते हैं, और मलोका उत्सर्ग सुगम हो जाता है। द्रव्य—कुटी हुई अलसी, जैतूनका तेल, बादामका तेल, मोम, चर्वी, (करमकल्लेके पत्र, रोगन गुल, सोआ, खतमी।

वक्तव्य—स्मरण रखो कि खरबूजा कोष्ठमार्दवकर (मुर्ख्खी अह्शा) है, और रुव्व बिही तथा जो आमाशयमार्दवकर (मुरखी आमाशय) हैं।

मुरत्तिब (अरबी रतब = तर, स्निग्ध। रतूबत = तरी, नमी, गीलापन, तर चीज। बहुव०—मुरत्तिबात)। स्निग्ध करनेवाला द्रव्य। वह द्रव्य जो अपने गुणकर्मके विचारसे स्निग्ध वा तर हो अर्थात् अपनी स्निग्धता

---

१ आयुर्वेदमें 'मुम्बित' औषधको 'उत्सादन' (सुश्रुत) कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें मुम्बित शा'र औषधको 'रोमसजनन' (सुश्रुत) या 'लोमसजनन' कहते हैं।

३ आयुर्वेदमें 'मुम्सिक मनी' औषधको शुक्रस्तभन कहते है। पाश्चात्य वैद्यकमे ऐसे द्रव्यको 'अवेरिशस-Avaricious' कहते हैं।

४ पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'डायल्युएट Diluent' या 'ऐटेनुऐण्ट Attenuant' कहते हैं।

(रतूवत)के कारण अग-प्रत्यगोंमें तरी या स्निग्धता (रतूवत) उत्पन्न करनेवाला द्रव्य[1]। द्रव्य—खरबूजा, लौआ, (कद्दूए दराज), तरबूज, इसबगोल, गोदुग्ध, अजा दुग्ध, खीरा, ककडी, खीरा-ककडीके बीज (तुख्म खियारैन), गदही का दूध, बिहीदाना और भिण्डी।

मुलत्तिफ (अरबी लतीफ = पतला, रकीक। लताफत = पतलापन, रकीक व खफीफ होना = रिक्कत व खिफ्फत। बहुव०–मुलत्तिफात) पतला या रकीक (लतीफ) बनानेवाला द्रव्य। वह द्रव्य, जो प्रगाढ़ीभूत दोष-सघात (गलीज मवाद् वा अखलात)को पतला या रकीक (द्रवीभूत) बना दे[2]। इसका उल्टा 'मुकस्सिफ' है। इस प्रकारके द्रव्य अपनी उष्णताके कारण प्रगाढीभूत दोषोको पतला और नरम करते हैं, जिसके यह दो प्रकार हैं—(१) जिसमें पतलापन (लताफत) उत्पन्न करनेकी शक्ति अधिक होती है, वह प्राकृतिक स्थिति (मोतदिलुल् किवाम)से भी अधिक पतला करते है, और (२) जिसमें यह शक्ति अल्प होती है वह पूर्व अवस्थासे पतला कर देते हैं, यद्यपि प्रकृतिस्थ अवस्था तक नही पहुँचता। द्रव्य—अब्रेशम, आबनूस, हाऊबेर (अबहल), अजवायन, इज़खिर, उस्तूखुदूस, अफ्तीमून विलायती, उकहवान, अगर, ईरसा, बिरजासफ, बूरए अरमनी, बाबूना, कासनीमूल, पान, पुदीना, प्याज दस्ती, बलसांके बीज, सँभालूके बीज, काला तूत, तोदरी, जदवार, अवरवेद (जुअदा), जुदवेदस्तर, चाय, चिरायता, हाशा, हुर्फ (हालो), हरमल, चूका (हुम्माज़), राई, दालचीनी, रतनजोत, जरावद, जूफा, सुदाब, सिरका, सकबीनज, सोसन, सातर, अकरकरा, उशबा मगरबी, मकोय, ऊदसलीब, गाफिस, किर्दमाना, कड (कुर्तुम), कबाबचीनी, कसूस, लहसुन, नीबू, मरोडफली, कस्तूरी, मिश्कतरामशीअ, नमाम, नौशादर, बच (वज्जतुर्की), हसराज, (मस्तगी, जिंतियाना, असारून, तुख्मअजुरा, शोरा, अजवायन, कालीमिर्च, बिल्ली-लोटन, नागरमोथा)।

मुलय्यिन, मुलय्यिन अम्आऽ (मुलय्यन) (अत्रका मृदु (तलय्यिन् अम्आऽ) करनेवाला द्रव्य। हलकी इजाबत (दस्त) लानेवाला द्रव्य। कब्ज (विबध वा मलावरोध) दूर करनेवाला द्रव्य। कब्ज़कुशा द्रव्य। पेटको नरम करनेवाला द्रव्य[3]। नरम अल्लाब। वह द्रव्य जिससे कब्ज़ दूर हो जाय और खुलकर दस्त आ जाय। यूनानी वैद्यकमें इसे 'मुलाय्यन बत्न' 'मुलयिय्यन तबा' और 'मुसहिल बित्तलय्यिन' भी कहते हैं। (बहुव०–मुलय्यिनात)। मुलय्यिन और मुसहिलका अर्थभेद—वह औषध, जिससे कब्जनिवारण होकर सरलतापूर्वक मलोत्सर्ग हो जाय और केवल आमाशय और अन्नस्थ दोष विसर्जित हो जायँ, उसे 'मुलय्यिन' कहते हैं, और जो द्रव्य सपूर्ण शरीरस्थ दोषका मलमार्गसे निर्हरण करे उसे 'मुसहिल' कहते हैं। इस प्रकारके द्रव्योकी द्रव्य-सूची मुसहिलातमें अवलोकन करे।

मुलय्यिन (मुलय्यिनात) वरम (= शोथको नरम और मृदु करनेवाला द्रव्य)।

इस प्रकारके द्रव्य वास्तवमें शोथविलयन है। अस्तु, समस्त विलयन (मुहल्लिल) द्रव्योंको मुलय्यिन वरम[4] (शोथ मृदुकर) समझना चाहिए। (ये द्रव्य विलयन-शक्तिसे दोष और शोथको कोमल और विलीन करते हैं)।

---

१ आयुर्वेदमें मुरत्तिब औषधको 'स्नेहन (स्निग्ध, पिच्छिल)' और पाश्चात्य वैद्यकमे 'डिमल्सेन्ट्स Demulcents' कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें मुलत्तिफ औषधको 'दोष-तारल्यजनक' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'डिमल्सेन्ट्स Demulcents', 'लेनिटिव्ह Lenitive' और 'ऐटेनुऐण्ट Attenuant' कहते हैं।

३ आयुर्वेदमे मुलय्यिन औषधको अनुलोमन, आनुलोमिक (च०), सर (सु०) और मृदुविरेचन (च०) तथा पाश्चात्य वैद्यकमें 'लैक्सेटिव्स Laxatives' या 'ऐपेरिएण्ट Aperient' कहते हैं।

४ आयुर्वेदमें इसे 'ग्रन्थिविलयन' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'रिझॉल्वेंट्स Resolvents' या 'डिसेन्शिएन्ट Disentient' कहते हैं।

नीचे कतिपय ग्रथिविलयन (मुलय्यिन वरम) द्रव्य उदाहरणस्वरूप दिये जाते हैं—गेहूँका आटा (आर्द गंदुम), खुरासानी अजवायन, इसबगोल, अलसी, इक्लीलुल्मलिक, ईरसा, बाबूना, झावुक पत्र, बत्तखकी चर्बी, कुक्कुटकी चर्बी, खतमी बीज, कनौचा बीज, रोगन बिनौला, एरण्डतैल, जिफ्तरूमी, शिलारस, करजुआ, गुग्गुल, लादन, मुरमक्की (बोल), मोम, मेंहदी (अबर, नागरमोथा, गो या छागीकी नलीकी मज्जा (मग्ज), जैतूनका गोद, मेथी, अडेकी जर्दी)।

मुल्हिम (मुलहि्हम)—(बहुव०–मुलहिमात)। व्रणरोपण द्रव्य। (सधानीय) दे० 'मुदम्मिल'।

मुबख्खिरात सुकूर—देरमें नशा लानेवाले द्रव्य—बिही, बादाम, खोपरा, सूखा धनिया।

मुर्वरिम (वरम = शोथ) = श्वयथुकर।

मुवल्लिदखून—रक्त (खून) उत्पन्न करनेवाले द्रव्य। रक्तवर्धक द्रव्य। इस विषयमें यह स्मरण रखना चाहिये कि समस्त उत्तम पोषण या जीवनीय आहार शोणितवर्धक (मुवल्लिद खून) हैं, अस्तु, द्रव्य-सूचीकी सक्षिप्तता पर ध्यान देनेकी आवश्यकता नही है। द्रव्य—फौलाद, अडेकी ज़र्दी, छुहारा, अगूर, अनार, आम, मासरस (यखनी गोश्त) और दूध।

मुवल्लिद मनी (बहुव०–मुवल्लिदात मनी)। (=शुक्र (मनी) उत्पन्न करनेवाले द्रव्य)। जिस द्रव्यसे शुक्रकी वृद्धि हो, उसे आयुर्वेदकी परिभाषामें शुक्रजनन, शुक्रल, शुक्रविवर्धन कहते हैं। इस वर्गका प्रधान कार्य शुक्र या वीर्य (मनी)धातुको उत्पन्न करना और बढाना है। स्वास्थ्य और पाचन सुधारके साथ उक्त प्रयोजनके निमित्त निम्नलिखित द्रव्य प्राय प्रयुक्त किये जाते हैं—

द्रव्य—प्याजका रस, आम अरबी, असगध नागौरी, अजीर, इन्द्रजौ (मीठा), अगूर, बूजीदान, बह्मन, तालमखाना, गाजरका बीज, गदनाबीज, शलगमका बीज प्याजबीज, तोदरी, सालबमिश्री, छुहारा, चटकमस्तिष्क (दिमाग उस्फूर), अडेकी जर्दी, शतावर, सिंघाडा, सेमल, शकाकुलमिश्री, कद्दू (कुर्तुम), कटहल, तिल, महुआ (मधूक पुष्प), कुक्कुट मास, उडद, झींगा मछली (माही रोबियाँ), पिस्ताकी गिरी, नारियलकी गिरी, अखरोटकी गिरी, बादामकी गिरी, बिनौलेकी गिरी, हब्बुल्जुल्मकी गिरी, चिलगोजेकी गिरी, फिंदककी गिरी, नारियलकी गिरी, मखाना, मुनक्का, मुसली, नागकेसर, चना (नखुद), हलियून, समस्त बल्य (मुक़व्वी) औषधियाँ, (मीठा सूरजान, कँगनीके चावल, दूध और घी, कच्ची प्याज, छडीला, अलसी, शलगम, भेजा (मग्ज़), हालो, जिरजीर, गुजा, तोदरी, सोठ, कस्तूरी और केशर)।

मुवल्लिद रि(रे)याह—('रियाह' अरबी 'रीह' सज्ञाका बहुवचन है। 'रीह'का धात्वर्थ 'वायु' है)। वायु उत्पन्न करनेवाला द्रव्य। वायुजनक। वातकारक। यहाँ पर यह बात ध्यानमें रहे कि पाचनकी निर्बलताकी दशामें सूक्ष्म वा लघुतम (लतीफतरी) आहार (उदाहरणत अनार और दूध) भी वायुकारक सिद्ध होता है। अतएव वायुकारक द्रव्यो (मुवल्लिदात रियाह)का एक स्थानमें सग्रह करना दुष्कर है। इसलिये कतिपय प्रसिद्ध द्रव्य यहाँ लिखे जाते हैं। द्रव्य—कटहल, बडहल, लस्सी, आडू, बैगन, अरबी, आरिया, उडद (माश), अरहर, लोबिया, मटर, चना, केला, अमरूद और अगूर।

मुवल्लिद लब्न (=स्तनमें दूध उत्पन्न करनेवाले द्रव्य[1])। प्राय शुक्रल औषधियाँ (मुवल्लिदात मनी) स्तन्यजनन (मुवल्लिद लब्न) है, तथा आहार और पाचनके सुधारसे स्तन्यकी उत्पत्तिमें वृद्धि होती है। तथापि, कतिपय द्रव्य उदाहरणस्वरूप लिखे जाते हैं। द्रव्य—शतावर, कलौंजी, तोदरी, सफेद जीरा, बिनौला, असगध, महुआ (मधूक पुष्प), शकाकुल, दूध और लोबिया।

---

१ आयुर्वेदमें मुवल्लिदलब्न औषधको 'स्तन्यजनन' या स्तन्यवृद्धिकर' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'गैलेक्टोगॉग Galactogogue' कहते हैं।

मुवस्सिख कुरूह (अरबी वस्ख = (१) सान्द्र पूय, (२) मल, मुवस्सिख = मलिनीभूत या दूषित करनेवाला। बहुव०—मुवस्सिखात। कुरूह, 'कर्ह' या 'कर्ह'का बहुव० = व्रण)। वह द्रव्य जो व्रणस्थ द्रवको बढाये और उसके शोषण और रोपणमें बाधा उत्पन्न करे। वह स्निग्ध (रतूबतदार) द्रव्य, जो व्रणस्थ स्नेह वा द्रवसे मिल जाता है। उक्त अवस्थामें व्रणस्थ द्रव और मल विवर्धित हो जाता है और वह शुष्क नही हो सकता और फटनेसे सुरक्षित रहता है, प्रत्युत व्रणस्थ दोष प्रवाहित होता है। ऐसी ओषधिका द्रव प्रवाही नही होता, प्रत्युत प्रगाढीभूत और लेसदार होता है, जैसे—रोगन और मोम।

मुशन्निजात (अरबी तशन्नुज = आक्षेप) आक्षेपकारक औषध।

मुशय्यित—धात्वर्थ 'ठहरानेवाला'।

परिभाषामें वह द्रव्य, जो अपनी चिकनाई या लेपके कारण अन्यान्य द्रव्योंके साथ मिलकर उनको उस स्थानमें बन्द कर देता है, जहाँ उनका दीर्घकाल पर्यन्त अधिष्ठान आवश्यक है, जिसमें वह उस स्थानमें अधिष्ठित होकर अपना पूर्ण प्रभाव प्रगट करे। अस्तु, गोंद अश्मरीघ्न औषधोंके साथ यही कर्म करता है।

मुशह्ही[१], मुश्तही—(अरबी इश्तिहा = क्षुधा, भूख)। क्षुधाजनक और क्षुधावर्धक द्रव्य। वह द्रव्य जिसके सेवनसे भूख लगती है और खानेकी इच्छा प्रतीत होती है[२]। द्रव्य—नीबू, जामुन, मूली, अरण्ड खरबूजा (पपीता), देशी अजवायन, अजमोद (तुख्म करफ्स), जीरा, कुस्या (कारवी), इलायची, सौंफ, अनीसून, पुहकरमूल, सिरका, काँजी (आबकामा), कबरकी जडकी छाल, हुर्फ, सज्जी और प्राय पाचन ओषधियाँ, (नीबूका रस, तुरज (बिजौरे)का छिलका, सिकंजबीन सफरजली, जरिश्क, नीबूका छिलका, आडू, कालीमिर्च, सांभर नमक, मस्तगी, कुलजन, शीतल जल, छोटी इलायची, ऊँटनीका दूध, शलगम, पुदीना, अजवायन, जीरा, सोठ)।

मुसक्किन (बहुव०—मुसक्किनात = धात्वर्थ 'तसकीन देनेवाला')—वह द्रव्य जो दोषोंके उत्ताप एव प्रकोपको शमन करके शान्ति प्रदान करे। आयुर्वेदमें ऐसे द्रव्यको 'सशमन' या 'शमन' कह सकते हैं[३]। देखो 'मुअद्दिल'।

वक्तव्य—यह शमनकर्म वातसस्थान और वाहिनीसस्थान अर्थात् रक्ताभिसरण सस्थान पर होता है। इनकी क्रियाको जो रोगके कारण अभिवर्धित हो गयी हो, घटाकर यह शाति प्रदान करता है। यह भी ज्ञात रहे कि मोहजनन (नारकोटिक) और मादक एव स्वप्नजनन (मुनव्विम) औषध अवसादक (सिडेटिव्ह) भी है। परतु भेद यह है कि अवसादक (मुसक्किन) ओषधियोमें मोहजनन ओषधियोकी भांति प्रथमत उत्तेजनकर्म प्रकाशित नही होता और न वह मदकारि होती है। तात्पर्य यह कि मोहजनन (नारकोटिक) और स्वप्नजनन ओषधियाँ अवसादक भी हैं, परतु अवसादक ओषधि मोहजनन नही हैं। द्रव्य—शूकरान, तमाकू, वछनाग, अहिफेन, हब्बकाकनज, खुरासानी अजवायन, बत्तखकी चर्बी, वेलाडोना, मुर्गीके अडेकी सफेदी, कतीरा, निशास्ता, बबूलका गोद, कडवा बादाम, (क्रियाजोट, क्लोरोफॉर्म, डिजिटेलिस इपीकेक्वाना, जलमिश्रित लवणाम्ल)।

मुसक्किन(नात)अतश—(अ० 'अतश' = प्यास, तृष्णा अत्शान = प्यासा, तृषित)। तृष्णा (अतश) शमन करनेवाला द्रव्य। प्यास बुझानेवाली ओषधि[४]।

---

१ शह्वत अर्थात् कामेच्छावर्धक द्रव्यके अर्थमें भी इसका उपयोग होता है।

२ आयुर्वेदमें इसे 'दीपन' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'स्टोमेकिक्स Stomachics' कहते हैं।

३ आयुर्वेदमें इसे अवसादक भी कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'सिडेटिव्ह Sedative' या 'ऐब्टुन्डेंट Abtundent' कहते हैं।

४ आयुर्वेदमें मुसक्किन अतश औषधको 'तृष्णानिग्रहण', 'तृष्णाघ्न', 'पिपासाघ्न', 'तृट्प्रशमन' कहते हैं।

मुसक्किन (नात) अतूस। (अ०–अत्स = छीक) 'छिक्कानिग्रहण' द्रव्य।

मुसक्किन अलम्, मुमक्किन वजा, मुमक्किन दर्द—वेदनाको नष्ट (शमन) करनेवाला द्रव्य। दर्द (अलम्, वजा)को तसकीन देनेवाली ओषधि[1]। द्रव्य—खुरासानी अजवायन, अफसतीन, अहिफेन, अकाशवेल, अलसी, अनीसून, वारतग, एरण्डपत्र, अर्कपत्र, आडूकी पत्ती, मेंहदीकी पत्ती (वर्ग हिना), भग, वछनाग (वीश), पुदीना, पोस्त (खशखाश), पियारांगा, तुख्मखशखाश, तुख्मकाहू, तमाकू, जदवार, जुदवेदस्तर, चर्वी, चोवहयात, चूका, छडीला, कुलजन, दालचीनी, दरूनज अकरवी, रेवदचीनी, जरावद, शिलारस, सँभालू, सूरजान, टकण, शूकरान, शैलम, सातर, लौंग, कुष्ठ, कपूर, कुटकी, कसूस, कघी, मदार पुष्प, वकुल पुष्प, सफेद मोम, यबरूज।

मुसक्किन आसाव व दिमाग[2]—मस्तिष्क और वातनाडियोंके क्षोभको निवारण करनेवाला अर्थात् उन्हें शान्ति प्रदान करनेवाला द्रव्य। ये द्रव्य वातनाडियोंको उत्तेजना प्रदान करनेवाले द्रव्योंके विपरीत है। इनके यह दो भेद हैं—(१) वाह्यशमन ओषधियाँ—जैसे अहिफेन, पोस्तेकी डोडी (पोस्त खशखाश), टकण (तकार), लुफ्फाह, यब्रूज तथा अन्यान्य सज्ञाहर और वेदनास्थापन द्रव्य। (२) आतरिक वातनाड्यवसादक ओषधियाँ—जैसे अहिफेन, कपूर, हरित खर्वक (खब्रक अख्जर), यास्मिन ज़र्द, कसूस, छोटी चदड (सर्पगधा)।

मुमक्किन कल्व—हृदय (कल्व)को शान्ति प्रदान करनेवाले और हार्दिकी क्रियाको प्रकृत अवस्था पर लानेवाले द्रव्य। वह द्रव्य जिससे हृदयकी गतियोंके उद्वेग और अनियमितता (असयम)का निवारण होता है। द्रव्य—अहिफेन, शैलम, शूकरान, धतूरा, वछनाग (वीश), भग, खर्वक, यवरूज, प्याज असल (कांदा)।

मुसक्किन (मुसक्किनात) कै—वमन (कै) रोकनेवाला द्रव्य। इसे मानेआत कै' भी कहते हैं[3]। द्रव्य—पुदीना, समुद्रफेन, नीवू का रस, जायफल, चूका, वसलोचन, सफेद या सुर्ख इलायची, धनियेके पत्ते, जहरमोहरा, शाहतरा (पित्तपापडा), जरिश्क, जरावद, सुमाक़, जौका सत्तू, खट्टा सेव, कलौंजी, अजवायन, फिरनी, अगूर, लौंग, सज्जी, पोस्त-जद, विजौरा (तुरज)।

मुसक्किनात गसयान (गसी)—(= (अ०) ग़सी = उत्क्लेश, मिचली) उत्क्लेश अर्थात् मिचली (गसी)को रोकनेवाला द्रव्य[4]। द्रव्य—पुदीना, पुदीना और नमाम जैसा एक पौधा (ना'ना'), हृड समुद्रफेन, सौंफ, चावल, वलूत, यवासशर्करा (तुरजवीन), इमली, जायफल, सगवसरी, कच्चा अगूर, चूका, इलायची सुर्ख व सफेद, कलौंजी, पित्तपापडा (शाहतरा), सातर, जरिश्क, रैवास, सुमाक, वालछड, सोआ, अगरु, लौंग, शाहदाना (भग वीज), कुदुर, लादन, अजमोदा, अजवायन, विजौरेके ऊपरका पीला छिलका और चमेली।

मुमक्किन तनफ्फुस (अ०–'तनफ्फुस = श्वास-प्रश्वास)। श्वासोच्छ्वास (तनफ्फुस)को शाति प्रदान

---

१ आयुर्वेदमें मुसक्किन अलम् औषधको 'वेदनास्थापन' (च०), 'वेदनाहर', 'वेदनाघ्न', 'वेदनाहारक', 'पीडाहर' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'ऐनोडाइन्स Anodyncs तथा एनाल्जेसिक्स' Analgesics' कहते हैं।

२ पाश्चात्य वैद्यकमें मुसक्किन आसाव और मुसक्किन दिमाग औषधको क्रमश 'नर्व्ह डिप्रेसेंट्स Nerve depressants' और 'सेरीबिअल डिप्रेसेंट्स Cerebial depressants' कहते हैं।

३ आयुर्वेदमें मुसक्किन कै औषधको 'छर्दिनिग्रहण', 'वमिनिग्रहण' या 'वमिहर' और पाश्चात्य वैद्यकमें ऐन्टि–इमेटिक Anti–emetic' कहते हैं।

४ आयुर्वेदमें मुसक्किनात गसी औषधको 'उत्क्लेशहर' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'ऐन्टिनॉशिएन्ट Antinauscant' कहते हैं।

करनेवाला द्रव्य। श्वासोच्छ्वासेन्द्रियोकी उत्तेजना और सक्षोभ (हैजान व लज्अ)को शमन करनेवाली ओषधि[1]। द्रव्य—अहिफेन (अफ्यून), पोस्तेकी डोडी (पोस्त खशखाश), धतूरा, शूकरान, तमाकू दश्ती, खुरासानी अजवायन, काहू, यबरूज, रोगन तारपीन, यास्मीन जर्द, सावरश्रृग (कर्नुल् ईल), पोस्तेका दाना (तुख्म खश-खाश), तुख्म काहू और अभ्रक भस्म।

मुसक्किन फवाक (अ०—फवाक़ = हिचकी)। हिक्का वा हिचकीको दूर करनेवाला द्रव्य। आयुर्वेदमें इसे 'हिक्कानिग्रहण' या 'हिक्काघ्न' कहते है।

मुसक्किन मेदा (आमाशयको शान्ति प्रदान करनेवाला द्रव्य)।

आमाशयकी क्रियाओको मद करनेवाली ओषधि। आमाशयावसादक। मदाग्निकारक। द्रव्य—वर्फ, अहिफेन, पोस्तेकी डोडी, यवरूज, चूनेका पानी (आव आहक), तुख्म काहू, खुरासानी अजवायन, तुख्म खशखाश, सखिया[2], मरकशीशा।

मुसक्किन (वहुव०—मुसक्किनात) हरारत[3]—सताप या उष्णता (हरारत)को शमन वा कम करनेवाला द्रव्य। सतापहर। उष्णताहर। देखो—'मुत्फी' और 'मुवरिंद'। यहाँ पर केवल वह शीतल (दाहप्रशमन) ओषधियाँ अकित की जाती हैं, जो विवर्धित उत्तापकी अवस्थामे उपयोग की जाती हैं, जिससे शारीरिक उष्णतामें न्यूनाधिक कमी आ जाती है। द्रव्य—खट्टे अनारका रस, मीठे अनारका रस, हरी कासनीकी पत्तीका रस, हरे कुलफेकी पत्तीका स्वरस, गूलरकी जडका रस, विजौरे (तुरज)का रस, तरवूजका रस, हरे खीरेका रस, इमलीका जुलाल (आव जुलाल तमरेहिंदी), सरों का रस, सतरेका रस, हरे धनियाका रस, कमरखका रस, लोकाटका रस, नीवूका रस, नारगीका रस (आव नारज), वर्फ, ताडी, छाछ, खस, दही, सिरका, खीरा-ककडीके वीजका शीरा, धनियेके वीजका शीरा, काहूके बीज का शीरा, कुलफाके वीजका शीरा, पालकके वीजका शीरा, कासनीके वीजका शीरा, चदनका शीरा, अर्कवेदसादा, अर्क वेदमुश्क, अर्क केवडा, अर्क गुलाव, अर्क निलोफर, फालसा, कपूर, कतीरा, कँवलगट्टा और बिहदानाका लवाव।

मुसख्खिन (वहुव०—मुसख्खिनात)—(अरवी 'सुख्न', 'सखीन' = उष्ण। सख्न = उष्ण हो जाना। सुखू-नत = उष्णता, गर्मी)। उष्णताजनक औषध। शारीरिक ऊष्माको विवर्धित करनेवाली ओषधि। यहाँ इससे समस्त उष्ण ओषधियाँ अभिप्रेत नही है, अपितु केवल वह कतिपय ओषधियाँ लिखी जाती है, जिनसे सार्वदैहिक उत्ताप सवर्धित हो जाता है[4]। द्रव्य—कस्तूरी, जुदवेदस्तर, चाय, भिलावाँ, जावित्री, अवर, कुलजन, पान, कालीमिर्च, पिप्पली, अगर, पीपलामूल, वालछड (सुवुलुत्तीव), जरावद, लहसुन, प्याज, शर्करा, अकरकरा, गुड, मधु, मद्य, पपीता, कुचला, जवाहरमोहरा।

मुसद्दिअ (अरवी सुदाअ = शिर शूल)। वह द्रव्य जो वाष्प (तवखीर)के कारण शिर शूल उत्पन्न करता है। शिर शूलजनन[5]। द्रव्य—चकोरका मास, मधु, पिस्ता, विपखपरा, तृण, जदवार, नख (अज्फारुत्तीव), अज-वायन खुरासानी, खाकसी, लोवान, गदना, सोआ, लहसुन, कुलजन, प्याज, मसूर, दरूनज, मेथी, अलसी, तुरज, शहतूत, अनीसून, सातर, इज़खिर, दारचीनी, गुलखैरू, शकाकुल, मूली, वैंगन, जरवाद, तुख्म शल्गम, छुहारा,

---

१ आयुर्वेदमें मुसक्किन तनफ़्फ़ुस औषधको 'श्वासहर' या 'श्वासशमन' कहते हैं।

२ उत्तरकालीन यूनानी वैद्योंने 'सखिया'की गणना 'मुसक्किनात मेदा' ओषधियोंमें की है।

३ आयुर्वेदमें 'मुसक्किन हरारत' औषधको 'दाहप्रशमन', 'दाहशमन' 'दाहहर', 'दाहनाशन' या 'निर्वा-पण' कहते है। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'रेफ्रिजरेन्ट्स Refrigerants' कहते हैं।

४ पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'कैलोरिफिक Calorific' कहते हैं।

५ इसे पाश्चात्य वैद्यकमें 'सेफेलेजिक Cephalagic' कहते हैं।

वलूत, जायफल, फरजमुश्क, कालीमिच, वत्तखका मास, हब्बुलखुरम, शवेबू, सुदाव, घुँघची, केसर, लोवान और सँभालू।

मुसद्दिद[1] (बहुव०-मुसद्दिदात)—मुद्दा[2] उत्पन्न करनेवाला। सुद्दा डालनेवाला। वह द्रव्य जो अपनी रूक्षता, भौमत्व (अरजिय्यत), गौरव (कमाफ़त) और मान्द्रत्व (गिल्ज़त)के कारण नालियों (मजारी)में रुक कर 'सुद्दा (विवध)का माद्दा बन जाता है और अपने चेप (पिच्छिलता)के कारण रसवहासिराओं (मजारी और मनाफिज)में अवरुद्ध होकर उनको अवरुद्ध कर देता है। इसका उलटा 'मुफत्तेह' है। द्रव्य—तुख्म राशखाश सफेद, जामुनकी गुठलीको गिरी, कुटा हुआ इसबगोल, दुवाको चकती, विहीका गूदा, चदन, इमलीके बीज, सफेदा इत्यादि।

मुसब्बित मुस्वित—(अरबी 'सुबात = गम्भीरनिद्रा', तन्द्रा)। गूढ नीद लानेवाली ओषधि। यह शारीरिक अवयवोंको संज्ञाशून्य करके नीद लाती है। देखो—'मुनव्विम'। दवाऽ मुनव्विम। द्रव्य—शिलारस, केसर, ल्गैआ, काहू, नेव, तुलसी, गुलाला, अहिफेन और हब्ब काकनज।

मुसफ्फ़ी (बहुव०-मुसफ्फ़ियात) खून[3]—वह द्रव्य जो रक्तमें उचित परिवर्तन करके उसके दोषदूषित दोष (फ़ासिद मवाद्–विकृति)को उत्सर्ग योग्य बना दे, जिससे वर्तमान शोणित शुद्ध एवं निर्मल होकर स्वाभाविक स्थितिमें आ जाय। वे ओषधियाँ जो रक्तको शुद्ध करती है। दूषित रक्तको साफ करनेवाली दवा।

वक्तव्य—जो द्रव्य रक्तस्थ मलोंको मलमूत्रमार्गसे या स्वेद इत्यादिके रूपमें उत्सर्गित किया करते हैं, प्रगट है कि इन साधनोंसे भी रक्तकी शुद्धि एवं प्रसादन (तस्फ़िया) और शोधन (तनकीह) होता रहता है। इस विचारसे यह भी रक्तसंशोधक (मुसफ़्फ़ी खून) हैं। किन्तु कभी-कभी रक्तमें इस प्रकारका दोष उत्पन्न हो जाता है कि इन साधनोंसे उक्त दोष निवृत्त नही होता, फिर भी कुछ द्रव्य ऐसे हैं जो आतरिक रूपसे ऐसे परिवर्तन उत्पन्न करते हैं, कि रक्तस्थ ये दूषित अंश अज्ञात रूपसे उत्सर्गित हो जाते हैं और उनका असर नष्ट हो जाता है। उदाहरणत पारद और मल्लके योग इत्यादि। जिन द्रव्योंकी गणना यूनानी वैद्योंने मुसफ्फ़ियाते खूनमें की है, उनमेंसे अधिकांशका उल्लेख नीचे दी हुई द्रव्य-सूचीमें किया गया है। उसमें अभेदरूपेण हर प्रकारकी मुसफ्फ़ियात (रक्त संशोधक द्रव्य) उल्लिखित है। उनमें कतिपय अन्त्रकी क्रियाको तीव्र करके रक्तका शोधन करते हैं, कतिपय वृक्कोंकी

---

1 आयुर्वेदमें मुसद्दिद ओषधको 'अभिष्यन्दि', स्रोतावरोधक, अवरोधजनक, विबंधकारक कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'ऑब्स्ट्रुएन्ट Obstruent' कहते हैं।

2 सुद्दा अरबी ('सुद', बहुव० 'सुदद' = मल या मवादकी गाँठ या ग्रन्थि जो आँतों या रगों-स्रोतसमें पड़ जाती है।) भाषाका शब्द है जिसका धात्वर्थ 'रोक', 'आड़' अर्थात अवरोध (या विबंध) है। परिभाषामें वह गाढी (गलीज़) और लेसदार वस्तु जो शरीरमें किसी जगह गुरूत्रीभूत (घनीभूत) होकर मार्गको अवरुद्ध कर दे। दोषोंके परस्पर ग्रथित होनेको भी कोई सुद्दा (विबंध) कहते हैं। वह ग्रन्थि (गिरह) जो अंतड़ियों या वाहिनी इत्यादिमें प्रगाढ़ीभूत दोषसे पड़ जाय और शारीरिक मलों और द्रवोंके उत्सर्गमें रुकावट पैदा करे। (स्किवोला—Scybola)। सुद्दाका धातु 'सद्द' (= सुद्दा डालना, मार्ग अवरुद्ध करना, रोक, आड़ रुकावट, विबंध) है। कभी ग्रन्थि और खुरडके अर्थमें भी 'सुद्दा' शब्दका व्यवहार होता है। सुद्दा और इन्सिदाद (Obstruction) का अर्थभेद विद्वद्वर कर्शीके अनुसार यदि स्वर्गीय स्रोतों और वाहिनियों (रगों)के मुँह बन्द हों तो वैद्यकीय परिभाषामें उसे 'इन्सिदाद' कहते हैं। इसके अतिरिक्त और जहाँ कहीं भी रुकावट हो जाती है उसे 'सुद्दा' कहते हैं।

3 आयुर्वेदमें मुसफ्फी खून (मुसफ्फिए खून) ओषधको 'रक्तप्रसादन' या 'रक्तशो(संशो)धक' कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'ब्लडप्योरिफायर Blood-purifier' कहते हैं।

क्रियाको तीव्र करके रक्तप्रसाद (तस्फिया खून)का साधन बनते हैं, कतिपय त्वचाकी क्रियाको तीव्र करके स्वेदके रूपमें दूषित अशको उत्सर्गित करते हैं, कतिपय अज्ञातरूपसे दुष्ट दोष पर असर करके या परिवर्तन (इस्तिहाला)को तीव्र करके, उन्हें उत्सर्ग योग्य बना देते हैं। खजाइनुल् अदवियाके सकलयिताने मुअद्दिलातको इसका पर्याय मानकर इन उभय कर्मोंके उत्पादक द्रव्योका एक साथ वर्णन किया है, और उसके बाद ही दोषत्रयकी मुअद्दिलात (सशमन) ओषधियाँ भी दी है। उसमे मुअद्दिलातकी परिभाषा यह लिखी है, "यह ओषधियाँ सूक्ष्म (लतीफ) शीतलता, या उष्णता और स्निग्धता या रूक्षताके कारण रक्तको स्वाभाविक स्थिति (मौतदिलुल् किवाम.में लाती है।" आयुर्वेदीय शोणितस्थापनसे इसका समन्वय स्पष्ट है—"शोणितस्य दुष्टस्य दुष्टिमपहृत्य तत् प्रकृतौ स्थापयतीति शोणितस्थापनम्।' (चक्र०)। परन्तु अन्य दोषोंके मुअद्दिलातको आयुर्वेदकी परिभाषामें 'सशमन' या 'शमन' कह सकते है, जैसे—कफसशमन (मुअद्दिलात बल्गम), पित्तसशमन (मुअद्दिलात सफरा) और सौदासशमन (मुअद्दिलात सौदा। देखो—'मुअद्दिल'।

रक्तप्रसादन द्रव्य—आवनूसका बुरादा, आँबाहलदी, अडूसा, उस्तूखूदूस, अजीर दश्ती, बकुची, बिल्लीलोटन (वादरजबूया), मेंहदीकी पत्ती (और बीज तथा पुष्प), ब्रह्मदण्डी, बकाइन, जलपिप्पली (बुक्कन), भगरा, गुलाबाँसकी जड, पँवाड, कचनारकी छाल, ताडी, झाऊ, चावलमुँगरी (तुवरक), चिरायता, तिक्त चिर्चिडा, चोबचीनी, छुईमुई, कनेर (खरजहरा), दारुहलदी, दुद्धी, रसकपूर, हलदी (ज़र्द चोब), सरफोका, सिरस, मल्ल (सम्मुल्फार), सनाय, सखाहुली, सहदेवी, पारद, पित्तपापडा (शाहतरा), शीशम (बुरादा या पत्र), लाल चदन (बुरादा), सफेद चदन (बुरादा), उशबामगरबी, उन्नाव, गाफिस, फर्रास, कासनी, कालादाना, काहू, सफेद कत्था, छोटी कटाई, कुचला, करजुआ, गिलोय, गधक, घीकुआर, मालकँगनी, मछेछी बूटी, जलाया हुआ ताँबा (मिस सोख्ता), मुडी, निगद बावरी, नीलकठी, नीम (पत्र व पुष्प), हिरनखुरी, काली हड, कासनीबीज, धनिया, उन्नाव, शाहतरा (पत्र व बीज), आलूबुखारा, गुल निलोफर, गुल बनफशा, अफतीमून, बेरीकी लकडी, वर्ग सदल, वर्ग गावजबान, कासनीपत्र, मकोयपत्र, काबुली हडका वक्कल, पीली हडका वक्कल, केवडेकी जड, बसफाइज, श्लेष्मातक वृक्षत्वक्, फालसेके वृक्षकी छाल, निम्बवृक्षत्वक्, धातकी पुष्प, सेवती पुष्प, धमासा पुष्प, गुलाब पुष्प, शुक्तशार्कर (सिकजबीन), नीबूका अर्क, शर्बत उन्नाव, सौंफका अर्क, शर्बत सदल, शर्बत गाजर, मधुशार्कर (माउल्अस्ल) और जो द्रव्य वायुका निर्हरण करते हैं, वह रक्तके प्रगाढपनको निवारण करते हैं। कोई-कोई इसी प्रकरणमें 'मुअद्दिलात'के नामसे निम्नलिखित द्रव्योकी भी गणना करते है। जैसे—सखिया, दारचिकना, फौलाद, मण्डूर (खुब्सुल्हदीद), ईरसा, कहवा, नौसादर, माजरियून और अनन्तमूल।

मुसम्मिन बदन (अरबी 'सम्न = स्नेह, मेद, समीन = मेदस्वी, मोटा, चर्बीला)।

शरीरको फर्बा (मोटा, स्थूल, परिवृंहित) करनेवाला द्रव्य[1]। द्रव्य—नारियलकी गिरी (खोपरा), पिस्ताकी गिरी, बिनौलेकी गिरी, कद्दूके बीजकी गिरी, तरबूजके बीजकी गिरी, हब्बुल्खज़राकी गिरी, चिलगोजेकी गिरी, हब्बुल्ज़ुल्मकी गिरी, मग्ज हब्बुल्कुलकुल, मग्ज़ फिंदक, मग्ज़ चिरौजी, मवीज मुनक्का, छुहारा, खूबानी, आम, अगूर, तिल, तिल तेल, घी, मक्खन, दूध, दही, बहमन, सालबमिश्री, तोदरी, हरमल (इस्पन्द), सेमल, इक्षुरस, ताडी, कतीरा, यवासशर्करा (तुरजबीन)।

मुसल्लिब, मुसलिब (बहुव०-मुसल्लिबात)—(अरबी सलाबत, सलब = कठिनाई, कडाई, सख्ती)। सख्त या कठोर करनेवाला द्रव्य। सख्ती पैदा करनेवाली ओषधि। वह द्रव्य जो शरीरके अग-प्रत्यगके वीर्य (जौहर

---

१ आयुर्वेदमें मुसम्मिन बदन औषधको 'वृंहणीय' या 'वृंहण' (च०) एव 'स्थौल्यकारक' कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'फैटेनिंग—Fattening' कहते हैं।

उज्व) या धातु (मवाद्)को शीत, रूक्षता और स्थूलता (कसाफ़त)के कारण कठोर कर देता है[१]। द्रव्य—शकाकुल (शिश्नदार्ढ्यकर) और शूकरवसा, मुस्तव्जला।

मुस्किृत जनीन, मुजहृहिज़—(अरबी इस्कात, इजहाज़ = गर्भ गिरना, पेट गिरना)। गर्भपात करानेवाली ओषधि[२]। द्रव्य—सूरजमुखी, चीता, अञ्जरूत, इन्द्रायनका फल, कलौंजी, गधाविरोजा, वृजीदान, हीग, मेंहदीके बीज, सुदाब, आडूका फूल, और सरख्स (मेलफर्न)।

मुस्किर (बहुव०-मुस्किरात)—(अरबी सुक्र = नशा, मद)। नशा लानेवाला द्रव्य। वह द्रव्य जिससे नशा, मस्ती, सरूर (मद) उत्पन्न हो। यह द्रव्य बहुश वाष्प मस्तिष्कके मानसिक रूहोंकी ओर आरोहण कराता है, जो उससे मिलकर उसको स्वाभाविक क्रियाओंसे पराङ्मुख कर देते हैं। अतएव उसमे आत्मीय कर्म निष्पन्न नही हो सकते। द्रव्य—मद्य, भग, जायफल, महुआ, कद्दूकी जड किसी कदर मादक (मुस्किर) है[३]।

मुस्‌लिह् (मुसलेह मनी)—(अरबी इस्‌लाह = सुधार, शोधन, मुस्लेह् = शरीरके धातुओंका दोष दूर करनेवाली दवा। शोधक। बहुव०-मुस्लिहीन)।

शुक्रशोधन या शुक्रदोषविनाशन द्रव्य।

मुस्लेह् लब्न—

स्तन्यशोधन या स्तन्यशुद्धिकर द्रव्य।

मुस्‌हिर (बहुव०-मुस्‌हिरात)—(अरबी 'सहर' = जागरण, जागना, जागर्ति, बेदारी)। निद्राको दूर (दूर कर जागर्ति उत्पन्न) करनेवाला द्रव्य। निन्द्रान्तक। जागर्ति उत्पादक। द्रव्य—चाय, सिरका, राई, कालीमिर्च, लवण, इयारिज फैंकरा, कपूर सूँघना, लवग, पुदीना, पक्षी विशेष (फारिक्ता)की विष्ठा सिर पर बाँधना और कस्तूरी सूँघना, कहवा।

मुस्‌हिल (बहुव०-मुस्‌हिलात)—(अरबी इस्‌हाल = विरेक या दस्त लाना)। वह द्रव्य जो अधोभाग (गुद, मलमार्ग)मे शरीरके दोषोका निर्हरण करे। दस्त लानेवाले द्रव्य। वह द्रव्य जो आँतो पर असर करके विरेक लाते है[४]।

न्यूनाधिक क्रियाभेदसे इन द्रव्योंके कतिपय निम्न भेद होते है —

(१) मुलय्यिनात, मुस्‌हिल बित्तलय्यीन—बहुत ही निर्बल विरेचन। मृदुविरेचन। देखो—'मुलय्यिन'। द्रव्य—आलूबोखारा, आम, अखरोट, समूचा इसबगोल, उशक, अलसी, अजीर, बकुची, बादाम, बायबुवा, बथुआ, कबरकी जडकी छाल, ताडी, खुब्बाजी बीज, खरबूजबीज, इमली, तूत, यवासशर्करा (तुरजबीन), चाय, खूबानी, रोगन अलसी, रोगन बादाम, एरण्ड तेल, जैतूनका तेल, वृषपित्त (ज़हरे गाव), श्लेष्मातक (सपिस्तां), सखाहुली, शाहतरा, शुद्ध मधु, शीरखिश्त, साबुन, उन्नाब, गुड (कद स्याह), कुटकी, कसूस (बीज), कुचला, करजुआ, किशमिश, कुकरौंदा, कलौंजी, गावजबान, इक्षुरस, गधक, गुल बनफशा, गुल चाँदनी, गुलाबपुष्प,

---

१ आयुर्वेदमें मुसल्लिब ओषधिको 'काठिन्यजनन' या 'दार्ढ्यकर' कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इस 'हार्डेनिंग—Hardening' कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें मुस्किृतजनीन औषधको 'गर्भपाति' (गर्भपातक, गर्भशातक) कहते है। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे एक्बोलिक्स Ecbolics' या 'ऐबोर्टिफेशिएण्ट्स—Abortifacients' कहते है।

३ आयुर्वेदमें मुस्किर औषधको 'मदकारि', 'मद्य', 'मदनीय', 'मादन' और 'मादक' कहते है। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'इन्टॉक्सिकेटिंग—Intoxicating' या 'नारकोटिक-Narcotic' कहते है।

४ आयुर्वेदमें मुस्‌हिल औषधको 'रेचन', 'विरेचन', 'अनुलोमनीय या 'अधोभागहर' और पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'पर्गेटिव्स—Purgatives' कहते है।

(गुल सुर्ख), मालकँगनी, अमलतासका गूदा, गुग्गुल (मुक्ल), मवीज़ मुनक्का, नीम, हींग, यवरूज, (चिरौंजी, करमकल्ला, खुरफेका साग, मूली, बिनौलेकी गिरी, दती, आडू, सिरका, पालक, सौंफ, बकरी और भेडका दूध, पुरानी इमली, अरडखरबूजा, गुलकद (पुष्प खण्ड), अर्क सौंफ, वथुआका साग, वथुएके बीज, दवून, अकरकरा, बीजयुक्त अमरूद, अकाशबेल, अदरक, तुख्म कासनी, बिहीदाना, हसराज (परसियावशाँ), बहेडा, रीठा, सरसो, जूफा खुश्क, मुलेठी, वादावर्द, अफ्तीमून, तुख्म सुदाव, शिलारस, हरमल, नीलके बीज, बालछड, कलौंजी, बसफाइज, शुकाई, तगर (असारून), उस्तुखुद्दूस, बिल्लीलोटन (बादरजबूया), ईरसा, वायविडग, अनीसून, जरबाद, कासनीका रस, चिकनी डली, मग्ज बादाम और जितने लबाबदार बीज हैं यदि भृष्ट न कर लिये गये हो, तो कोष्ठमार्दव (तलय्यिन) उत्पन्न करते है। परन्तु भर्जित कर लेनेसे वे सग्राही (काबिज़) हो जाते हैं। अधिक मक्खन-सेवन और गवक इत्यादि)।

(२) मुस्हिलात—कतिपय द्रव्य अन्त्रकी मलविसर्जनी शक्ति (कुव्वत दाफेआ)को तीव्र या बलवती बनानेके अतिरिक्त तद्द्रवोद्रेकको भी अभिवर्धित कर देते हैं, जिससे द्रव (रकीक) विरेक आने लगते हैं। इनको अद्विया मुस्हिला (विरेचनौषध) कहते है। इन विरेचन औषधो (मुस्हिल अद्विया)के अनेक कर्मके, वीर्य-भेद एव न्यूनाधिक क्रिया-भेदसे निम्न प्रकार होते हैं

(१) वह द्रव्य जिनका विरेचनीय कर्म अपेक्षाकृत हलका होता हैं। इनको 'मुस्हिलात ज़ईफा' या 'मामूली मुस्हिलात' कहते है। यह दोपोको नरम और ढीला करके निर्हरण करते हैं, इसलिए 'मुस्हिल-बिल्-इर्खाऽ' कहलाते हैं और दोपोको फिसलाकर निकालनेके कारण मुसहिल बिल् इज़्लाक' कहलाते हैं[1]। द्रव्य—ईरसा, एलुआ, रेवद, सनाय मक्की, सूरजान, कमीला और वृषपित्त।

(२) वह द्रव्य जिनका विरेचनीय कर्म तीक्ष्ण होता है, परिभाषा में 'मुस्हिलात कविय्या' या 'मुस्हिल शदीद' कहलाते हैं[2]। द्रव्य—जयपाल तैल (रोगन इब्बुस्सलातीन), किस्साउल्हिमार, सकमूनिया (महमूदा), उसारारेवद, कालादाना (हब्बुन्नील), त्रिवृत् या निशोथ (तुर्बुद), इन्द्रायनका गूदा और जलापामूल।

(३) तीक्ष्ण विरेचनका वह भेद जिससे (विरेचन औषधियोंसे) पतले-पतले पानी जैसे दस्त (माइय्यत) बहुतायतसे आते हैं। यूनानी वैद्यकमें उसे 'मुस्हिलात माइय्या (-य्यत) या 'मुस्हिल बित्तर्कीक' कहते हैं[3]। द्रव्य—जयपाल, बदाल, खर्बक स्याह इत्यादि।

(४) श्लेष्माको मलमार्गसे निर्हरण करनेवाले द्रव्य। विरेचन औषधोंसे सामान्यतया जलीय या द्रवीभूत (रकीक या माई) और प्रगाढीभूत (गलीज़) कफ न्यूनाधिक अवश्य उत्सर्गित हुआ करते है। अस्तु, जिन तीक्ष्ण विरेचन औषधो (मुस्हिलात कविय्य)से प्रचुर प्रमाणमें श्लेष्मा उत्सर्गित होती हैं, उसे 'मुस्हिलात बल्गम' कहते हैं। लगभग समस्त तीक्ष्ण विरेचन द्रव्य इसी कोटिके हैं[4]। प्राचीन यूनानी वैद्योंने निम्नलिखित द्रव्योंको श्लेष्म विरेचन लिखा है। द्रव्य—उस्तूखुद्दूस, अफ्तीमून विलायती, अजरूत, ईरसा, वायविडग, चमेली पत्र, बसफाइज,

---

१ आयुर्वेदमें मामूली मुस्हिलातको 'सुखविरेचन' या स्रंशन' (च०) और पाश्चात्यवैद्यकमें 'सिम्पल पर्गेटिव्स—Simple purgatives' कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें मुस्हिलात कविय्याको 'भेदन' या 'तीक्ष्ण विरेचन' (च०) और पाश्चात्य वैद्यक में 'ड्रास्टिक पर्गेटिव्स—Drastic purgatives' कहते हैं।

३ आयुर्वेदमें इसे 'विरेचन' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'हाइड्रेगॉग पर्गेटिव्स—Hydragogue purgatives' या 'हाइड्रेगॉग्स—Hydragogues' कहते हैं।

४ आयुर्वेदमें इसे 'श्लेष्मविरेचन' या 'कफसारक' और पाश्चात्य वैद्यकमें फ्लेगमेगॉग-Phlemagogue' कहते हैं।

पँवाड, निशोथ, थूहड, जलापा, कालादाना, एरडतैल, मैनफल, जरावद, सकवीनज, सनायमक्की, सूरजान, इन्द्रा-यनका गूदा, शुकाई, कलौंजी, एलुआ, कुष्ठ, गारीकून, कतूरियून, छोटी कटाई, कपी, गुग्गुल (इयारिज फैकरा, फ़र्फ़्रियून, करेला, सेंधानमक, दिवरम, शाहपसद, लाहौरी नमक, कुटकी, काबुली हड, सूरजान शीरी, रेवदचीन, बूरेअरमनी, सकमूनियाँ निसोथके साथ, लवण और उसारारेवद)।

(५) सौदा (दोष)को मलमार्गसे निर्हरण करनेवाले द्रव्य (मुस्हिलात सौदाऽ)। सौदा विरेचन। मेलैनेगॉग Melanagogue -(अं०)। प्राचीन यूनानी वैद्योकी द्रव्यसूचीमे न्यूनाधिक निम्नलिखित द्रव्य इस प्रकरणमें लिखे गये हैं। द्रव्य—जमालगोटाकी गिरी, इन्द्रायनका गूदा, खर्वक स्याह, कतूरियून, कालादाना, अफ्तीमून विलायती, निशोथ, सनाय मक्की, काली हड, काबुली हड, वायविडग, पवांड (चक्रमर्द), उस्तूखूदूस[1], बसफाइज, लाजवर्द (राजावर्त), हजर अरमनी, आमला, उशक, (शाहपसद, गारीकून, उसारारेवद, इन्द्रायनके फलका गूदा, लाहौरी नमक, गुलाचीन वृक्षकी छाल, सक़मूनिया लाजवर्दके साथ, शहतूतकी जड और अतरछाल यानी गाभा, कालादाना हडके साथ, लवण-साल्ट)।

(६) पित्तको गुदमार्गसे निर्हरण करनेवाले द्रव्य। कतिपय द्रव्य यकृत्से अन्त्रकी ओर पित्तके गिरने (इन्स-बाब सफ़रा)को बढा देते हैं, और जो पित्त उत्पन्न होता है उसको पुन अभिशोषित नही होने देते, जिससे पित्तके विरेक आने लगते हैं। इनको मुस्हिलात सफ़रा[2] कहते है। यह विरेचन द्रव्य ऐसे हैं जिनसे पित्त अधिक उत्पन्न होकर जो सचित हो, उसका अन्त्रमार्गसे निर्हरण होता है। द्रव्य—सनायमक्की, सकमूनिया, शीरखिश्त, यवासशर्करा (तुरंजबीन), एलुआ, पीली हड, ईरसा, गुलसुर्ख, गुलकद, खूबानी, आलूबोखारा, इमली, गुलब-नफ़्शा, शाहतरा, अफ्मतीन, काबुली हड, माजरियून, शाहपसद, निशोथ, खर्वक स्याह, रेवदचीनी (और रसकपूर इत्यादि)।

मुहक्किक, हक्काक, मुख्रिश—(हक, हक्क = खुरचना, छीलना) खारिश या खुजली उत्पन्न करनेवाली ओपधि। वह द्रव्य जिसके उपादान शोपित होकर वातनाडियोके छोरोमें विशेप उत्तेजना और गुदगुदी उत्पन्न करते हैं। वह द्रव्य जो अपनी तीक्ष्णता एव उष्णताके कारण तीक्ष्ण और काटनेवाले दोपोको स्रोतोंकी ओर आकर्षित करते हैं, परतु त्वचाको क्षतयुक्त नही करते। द्रव्य—कौंचकी फली, भिण्डीकी पत्ती, मुश्कदाना (लताकस्तूरिका पत्र), अजुरा, नागफनीका रोआँ, खैरीपत्र (वर्ग खैरी), अरवीकी पत्ती, कवीकज, भिण्डीका रोआँ, सूरण (जमीकद) और कमलेका[3] रोआँ।

मुहज्ज़िल (बहुव०—मुहज्ज़िलात)—(हज़्ल = कर्पण, लेखन, दुर्वल वा कृश करना। हुज़ाल = दौर्बल्य, कार्श्य, कृशता। महज़ूल = दुर्वल, कृश)। शरीरको दुर्वल वा कृश करनेवाली ओपधि[4]। यह वृहण वा वृहणीय (मुसम्मिन)के विपरीत है। द्रव्य—राल, लाख (लाक्षा), काँजी (आवकामा) और सिरका।

मुहय्ज़ी (बहुव०—मुहय्ज़ियात)—आंतरिक रूपसे उपयोग करनेसे जो द्रव्य चिंता (तशवीश) और प्रलाप (हज़ियान)का कारण (मुहय्ज़ी) सिद्ध होता है, जैसे—भग इत्यादि यह वस्तुत मस्तिष्ककी क्रियाओंमें ऐसी अनि-

---

१ खोजकर्ताओंके समीप यह बात विवादास्पद है, कि उस्तूखूदूस, हजर लाजवर्द, हजरअरमनी, आमला और उशक रेचन ओपधों (मुस्हिलात)के अतर्भूत हैं अथवा नहीं, और यदि हैं, तो किस श्रेणीके रेचन है। इसके वादविवादका द्वितीय दरजा उनके 'सौदाविरेचन (इस्हालसादा)'के सवधमें है।

२ आयुर्वेदमें इसको 'पित्तविरेचन' या 'पित्तसारक' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'कोलेगॉग पर्गेटिव्स—Cholagogue purgatives' या 'कोलेगॉग्स—Cholagogues' कहते हैं।

३ 'कमला' एक रोऍदार कीड़ा है, जो शाकोंमे उत्पन्न हो जाता है।

४ आयुर्वेदमें मुहज्ज़िल ओपधिको 'लेखन', 'लेखनीय', 'कर्पण', 'कर्शन' कहते हैं।

यमित उत्तेजना पहुँचाता है, जिससे विवेक और विचार विकृत हो जाते हैं और मनुष्य ऊटपटाग, मूर्खतापूर्ण और असवद्ध भाषण-प्रलाप (हज़यान) करने लगता है[१]।

मुहम्मिर (बहुव०--मुहम्मिरात) (अरबी अह्मर = लाल)। सुर्ख वा लाल करनेवाला। रागकारक। वह द्रव्य जो अपनी उष्णता और आकर्पकारिणी शक्तिसे, जिस प्रत्यगमें वह लगाया गया होता है, उसमें उष्णता उत्पन्न करके अथवा त्वगीय वाहिनियोको विस्फारित करके पतले रक्तको अपनी ओर खीच लाता है (रक्तागमको त्वचाकी ओर बढाकर) और उस अग वा त्वचाके वर्णको रक्तिमा वा रागयुक्त कर देता है[२]। द्रव्य--तेलनीमक्खी (जरारीह), रोगन विहरोजा, जयपाल तैल, रोगन सुदाव, रोगन इक्लीलुल्मलिक, रोगन लोमूँ, सिरका, मद्य, उशक, राई खरदल), यवरूज, थूहड, चित्रक पत्र, जगली मूली (तुर्बदश्ती), हुर्फ, माजरियून, लौंग, च्यूँटा, कबाबचीनी, जिफ्त रतब (जगली चीडका गोंद), हीग, हुस्नयूसफ, (शूक), कपूर, पुदीना, चावल मुँगरी, लहसुन, प्याज (राई, अजीर, गुल लाला, नारगीके छिलके, छडीला, बालछड, इजखिर, दालचीनी, वूरए अरमनी, एमोनियाका हलका विलयन, *कई बारको खीची हुई मदिरा (शराब मुकर्रर), उशक, रोगन कहरुवा, रोगन माजरियून, रोगन तारपीन,* लाल-मिर्च, रोगन अनीसूनमें विलीन किया हुआ कपूर इत्यादि।

मुहय्यिज (बहुव० मुहय्यिजात)-प्रकुपित वा उत्तेजित करनेवाला। वह द्रव्य जो किसी दोष वा शक्तिको उद्दीप्त या उत्तेजित करता है, जैसे--इक्षुरस पित्तको, अम्ल द्रव्य कफको, फल (फवाकेहात) रक्तको और, मेवे बाह (काम)को उद्दीप्त करते हैं। प्रकोपण। उद्दीपन। उत्तेजक। देखो--'मुहर्रिक'।

मुहर्रिक (बहुव० मुहर्रिकात) उभाडने या उसकाने वाला। सचेष्ट या उत्तेजित करनेवाला। वह द्रव्य जो शारीरिक शक्तियो और ओजो (कुव्वा व अरवाह) विशेपकर प्राण शक्ति एव प्रकृत देहाग्नि (कुव्वत हैवानी व हरारत गरीजी)को उत्तेजित एव उद्दीप्त करे और हृदयको बल प्रदान करे[३]। इसके कतिपय निम्न भेद हैं--

मुहर्रिक आसाब--वातनाडियोमें उत्तेजना (जोश व हैजान) और उनकी क्रियामें तीव्रता एव स्फूर्ति उत्पन्न करनेवाली औषधि[४]। द्रव्य--कुचला, पपीता, मल्ल, यवरूज, कस्तूरी, तेलनीमक्खी, हीग, नौसादर, बालछड, कहवा शैलम, भग।

मुहर्रिक दिमाग--मस्तिष्कमें उत्तेजना प्रगट करनेवाली और मस्तिष्ककी क्रियाको तीव्र कर देनेवाली औषधि[५]। द्रव्य--अफसंतीन, कहवा, चाय, मद्य, भग।

मुहर्रिक दौरान खून--रक्ताभिसरण क्रियाको तीव्र करनेवाली औषधि। सम्पूर्ण शरीरकी शोणित-परिभ्रमण-क्रिया पर प्रभाव डालनेवाली कतिपय औषधियाँ उदाहरण स्वरूप नीचे लिखी जाती हैं--मद्य, चाय, कुचला, जवाहरमोहरा, कपूर, मुबुल।

---

१ आयुर्वेदमें मुहज्जी औषधिको 'प्रलापकारक' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'डेलिरिफेशिऐण्ट्स--Delerifacients' या 'डेलिरिऍट्स--Delerıants कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें मुहम्मिर औपधिको 'शोणितोत्क्लेशक' या 'त्वग्रागकारक' कह सकते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'रुबिफेशिऐण्ट्स--Rubifacients' कहते हैं।

३ आयुर्वेदमें इसे 'उत्तेजक' एव 'उद्दीपक' कहते हैं और पाश्चात्य वैद्यकमें 'स्टिमुलैण्ट Stimulant' 'एक्साइटैण्ट् Excitant' या 'कॉर्डिअल Cordial' कहते हैं। यूनानी वैद्यकमें इसे 'मुनइश' या 'मुनब्बिह' भी कहते हैं।

४ पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'नर्वस्टिम्युलैंट--Nerve stimulant' कहते हैं।

५ पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'सेरिबिअल स्टिम्युलैंट Cerebial Stimulant' कहते हैं। आयुर्वेदमें इसे 'मस्तिष्कोत्तेजक' कहना चाहिये।

मुहर्रिक वाह—

कामोत्तेजक द्रव्य। देखो—'मुकव्वी वाह'।

मुहल्लिमात रद्दिया। (अ०) हुल्म, हुलुम = स्वप्न) कुस्वप्न प्रदर्शन करनेवाले द्रव्य। ये वाष्पारोहण (तवख़ीर)के कारण व्याकुलताकारक स्वप्न (ख्वाबे परीशान) दिखलाते हैं, जैसे—अतिशय मद्यसेवन, कच्ची प्याज खाना, आलूकी तरकारी, बैंगन, बाकला, गदना, लोबिया, गोभी और मसूर।

मुहल्लिल (बहुव०–मुहल्लिलात)। (अरबी हल (हल्ल) = घुल जाना, विलयन, मुहल्लल = विलीन किया हुआ = विलयन)। विलीन (तहलील) करनेवाला। परिभाषामें इसका प्रयोग इन दो अर्थोंमें होता है —(१) वह द्रव्य जो अपने उष्ण वीर्य और विलीनीकरण शक्तिसे सान्द्र एवं श्लेपभूयिष्ठ दोषोंको वाष्पीभूत करके नष्ट कर देते हैं। मुलत्तिफकी अपेक्षया यह अधिक बलशाली होते हैं। कतिपय शीतल औषधियाँ भी मुहल्लिल होती हैं[1]। द्रव्य—जरावंद दराज, जरावंद गिर्द, मर्जञ्जोश, जुंदबेदस्तर, इकलीलुल्मलिक (नाखूना), चमेलीके पत्र, नरगिस, तुर्मुस, बाबूना, खतमी, हंसराज, अबखेद (जाद), तगर (असारून), साफसिया, वच, पुदीना कोही, करेला, उशक, प्याज, दश्ती (कांदा), जावशीर, एरण्ड, गाफिस, जुफ्न, झाऊ, बुतमका गोंद, लादन, हाशा, बाकला, राई, हलदी, दारचीनी, केकडा (सरतान), मकोय, कासनी, सोआ, गारीकून, इसबगोल, अमलतास, मूँग, बरज़ासिफ़, रेवदचीनी, गुलबनफ्शा, बकरीकी मींगियाँ, गूलरका दूध, जौ, जीरा, इज़्खिर, रसवत, सौसन, गधाबिरोजा, आवाहलदी, एलुआ, सँभालू, गुलाचीनके जडकी छाल, सूरजमुखी, बकाइन, रोगन बलसाँ, पखानवेद, हालो, दरूनज, बहमन, बिनौलेकी गिरी (हब्बुल् कुतन), चोबचीनी, सरोके पत्र, चाकसू, अलसी, मेथी, अकाकिया, बालछड, उश्वा, धोई हुई लाक्षा (लुक मग्सूल), नीम, अफसंतीन, तेल, केसर, हाऊबेर (अबहल) और गेहूँ। (२) वह द्रव्य जो अपनी उष्णता और रूक्षतासे वायुके किवाम (भौतिक स्थिति)को सूक्ष्म एवं पतला (लतीफ व रकीक) कर दे, जिसमें वह विलीन हो जाय अथवा अपने रुके हुए स्थानसे दूर हो जाय, जैसे—गुलबाबूना और सुदाब इत्यादि। मुहल्लिल रियाह। (रियाह, रीहका बहुव० = वायु)। वातविलयन। देखो—'कासिर रियाह'।

(३) वह द्रव्य जो गाढे (गलीज़) दोषको द्रवीभूत व पतला (रकीक) बना दे। द्रावक। दोषविलयन।

मुहल्लिल वरम—शोथको विलीन करनेवाला द्रव्य। सूजन उतारनेवाली औषधि। नीचे लिखी हुई औषधियाँ विभिन्न प्रकारके दोषोंको विविध रीतिसे विलीन (तहलील) करती हैं। कोई-कोई औषधियाँ उष्ण होनेके कारण अपने आत्मीय गुणसे (बिज्जात) कार्य करती हैं और कोई शीतल एवं बाहिनीसाग्राहिक होने पर भी औपचारिक रूपसे (बिल्अर्ज़) कार्य करती हैं[2]। द्रव्य—आतरीलाल, आँवाहलदी, इज़्खिर, तगर (असारून), इसबगोल, उशक, मुलेठी, अलसी, अफसंतीन उकहवान, इकलीलुल्मलिक, अञ्जुदान, अज़रूत, ऊँटकटारा, ईरसा, एलुआ, बाबूना, बिल्लीलोटन (बादरजबूया), कडवा बादाम, बाकला, बालछड, विधारा, अकपत्र, एरण्डपत्र, अश्वगंधपत्र, मूलीकी पत्ती (वर्ग तुर्ज), तमाकूका पत्ता, चमेलीपत्र, वर्ग सरो, कासनीकी पत्ती, गुलाबाँसकी पत्ती, मकोयकी पत्ती, बिरजासफ, विषखपरा, बकाइन, बिरोजा, भँगरा, कासनीकी जड, पान, पपीता, पखानभेद, पहाडी पुदीना, शिरीष वृक्षकी छाल, पुष्करमूल, पियारांगा, प्याज़ असल (जंगली कांदा), पीपल, पीपलामूल, मूलीके बीज, तुख्म तुरज, तुर्मुस, तुलसी जंगली, तूत स्याह, थूहड, तेजपात, जावित्री, जावशीर, जदवार, जादा, जयपाल, जुंदबेदस्तर, चाकसू, चित्रक, चर्बी, चिरचिटा, चुकंदर, चोजहयात, चोबचीनी, चूना, छडीला, हाशा, मेंहदी (हिन्ना),

---

१ आयुर्वेदमें मुहल्लिल औषधको '(दोष) विलयन' एवं 'ग्रन्थिविलयन' और पाश्चात्य वैद्यकमें रिजॉल्वेण्ट Resolvent' या 'डिस्क्युशिएट Discutient' कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें मुहल्लिल वरम औषधको 'शोथहर', 'श्वयथुविलयन', 'विम्लापन', 'शोथविलयन' या 'शोफघ्न' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'एण्टिफ्लोजिस्टिक—Antiphlogistic कहते हैं।

कौडी (खरमोहरा), खतमी, दारूहलदी, दरमिना (किरमानी अजवायन), दूकू, तेलनीमक्खी (जरारीह), राई, रस-वत, रोगन बलसाँ, रोगन लीमू, रेवदचीनी, जरवाद, जरावद, केसर, जिफ्त, जूफा खुश्क, जीरा, जलाया हुआ केकडा, सिरका, सकमूनिया, सकवीनज, सहेआ, सँभालू, समुदरफल, सूरजमुखी, सूरजान, सौसन, सावरशृंग (शाख-गोजन), शुकाई, शिगरफ, मधु, साबुन, सातर, उशबा, ऊदसलीब, गारीकून, गाफिस, फरजमुश्क, लौंग, कुष्ठ, कर्तूरियून, कपूर, कालीजीरी, कबाबचीनी, कबर, कसूस, तितलौकी, करेला, कसौंदी, धनियाँ, किशमिश, तिल, गुलबनफ्शा, गुलचाँदनी, गुलदाउदी, गदना, गधक, गूमा, घुँघची, गेदा, लादन, धोई हुई लाख (लुक मग्सूल), लोबिया, लहसुन, माज़रियून, लालमिर्च, मर्जञ्जोश, मुरमकी (बोल), गुग्गुल (मुक्ल), मकोय खुश्क, मोम, मेथी, मैंदालकडी, मैनफल, निगदबावरी, नौशादर, नीम, हालो, हिरनखुरी, हलदी, हलियून और हसराज।

मुहरक (बहुव० मुहरकात)—(मुहरक = भस्मीभूत, जलाया हुआ)। धात्वर्थ जलानेवाला या दाहक।

परिभाषामें वह द्रव्य जो स्वजात उष्ण वीर्य एव प्रवेशनीय शक्ति (कुव्वत नफूज़)से पतले भागों (लतीफ़ अज्ज़ा) अर्थात् अगके द्रवोको बाष्प बनाकर उडा देता और अगप्रत्यगको जला देता है एव प्रदग्ध (जले हुए) दोषोको भस्म रूपमें तलस्थित कर देता है[1]। द्रव्य—फरफ़ियून, हीग, हडताल, सज्जी, जगार, अजुरा, चूना, नौरा (लोमशातनौषध), उश्नान, चीता, अर्कक्षीर और नीलाथोथा।

रादेअ (बहुव०–रादिआत)। दोषविलोमकर्ता। हटानेवाला। वह दवा जो विकृत माद्देको अगविशेषसे हटा दे।

लाजेअ (लज्ज़ाअ)—सक्षोभजनन। जलन (सोजिश) उत्पन्न करनेवाला।

लुआबी—लबाबदार। लुआबदार। पिच्छिल। लेसदार। वह वस्तु जिसमें चेप हो।

सम्मी—जिसमें ज़हर अथवा विष हो। (सम्मीयत = (१) विषत्व, (२) विष, जहर, विष का असर। देखो—'कातिल'।

हाज़िम—(अरबी 'हज़्म = धात्वर्थ तोडना', परिभाषामें आहारपचन, पचाव, तब्ख़)। वह द्रव्य जो आमाशय और पक्वाशयके अन्न-पचन (हज़्म गिज़ा)में सहायता करते हैं[2]। हाज़ूम। मुहज़िम। द्रव्य—काँजी (आवकामा), नीबूका रस, अजवायन, इत्रखिरक्षुद्रैला, वृहदैला, अम्लवेत, अनारदाना, सौंफ, बादियान खताई, पुदीना, कबरमूलत्वक्, बिजौरेका छिलका (पोस्त तुरज), पोस्त सगदाना मुर्ग, जावित्री, जवाखार, चाय, चित्रक, दालचीनी, जरिश्क, ज़रवाद, जीरा, साज़िजहिंदी, सज्जी, सोठ, टकण, मधु, कबाबचीनी, (कबाबा), गुड, माल-कँगनी, कालीमिर्च, मूली, नरकचूर, कालानमक, समस्त दीपन या आमाशयबलप्रद (मुकव्वीमेदा) द्रव्य, पीपलामूल, शहद, सिरका, अचार और जामुनका अर्क)।

हाबिस (बहुव० हाबिसात)—(मुमसिक) धात्वर्थ रोकनेवाला (रोधक, स्तभन) या बद करनेवाला। परिभाषामें वह द्रव्य जो शोणित, मूत्र, स्वेद प्रभृति शारीरिक द्रवोको निकलनेसे रोके। इसमे या तो कब्ज (सग्रहण, सकोच वा मलवरोध) धारक होता है जिसके कारण ये नालियोको बद कर देते हैं, अस्तु, वे खुल नही सकती और उक्त अवस्थामें निर्हरण योग्य द्रव उत्सर्गित नही हो सकते या चेप (श्लेप) उत्पन्न कर देते हैं। इसलिये मार्गोंके मुख बद हो जाते हैं या ऐसा कठिन शीत उत्पन्न करता है कि धातु (माद्दा) प्रगाढीभूत हो जाता है और जम जाता है। कुछ द्रव्योंसे सुप्तिजनन (तख्दीर)के कारण यह कर्म निष्पन्न होता है। कुछ द्रव्य माद्दा (दोष)को दूसरी ओर फेर

---

१ आयुर्वेदमें मुहरक़ औषधको 'दहन' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'करोंसिव़्-Corrosive' या 'एस्करॉटिक-Escharotic' कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें हाज़िम औषधको 'पाचन', 'जरण', या 'जरणीय' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'डाइजेस्टिव्स-Digestives' या 'डाइजेस्टैण्ट्स-Digestants' कहते हैं।

देते हैं, इसलिये यह अपने नालोके मार्गसे उत्सर्गित नहीं होता[1]। द्रव्य—बकरी या भेड़की कलेजी, सिरे और पाये, अजवारकी जड़, कचनार, कचालुक, सुमाक़, तुख्म बारतंग, जीरा, गुलमर्ग्हीं, इसबगोल, कनौचा, बारतंग, सौंफ़, हब्बुल्आस, इलायचीके बीज, बलोतून (ये सभी भुने हुए), दक्नमार, लादन, सफेदा, तूतिया, कसीरा, माजू, अनारका छिल्का, दारचीनका तेल, जौहर माजू, जलमिश्रित गुग्गाम्ल, गिरवा, दम्मुल्अख्वैन, कत्था, गन्धिकाम्ल, सुरए अरमनी, पतंग, गर्गर (मगरवरी)।

हाबिस अरक—देखो 'मानें अरक'।

हाबिसदम, कातिउलजोफ, मानेअत नज़फुद्दम—रक्तस्राव बंद करनेवाला। यह द्रव्य जो रक्तको बंद करे। यह द्रव्य जो अपनी संग्राही शक्ति (कुव्वतमासिका) और शीतताके कारण रगों (धमनी-सिरा-स्रोतस्)में संकोच उत्पन्न करके या रक्तमें स्कंदकारी शक्ति (कुव्वत उन्जमाद) अभिवर्धित करके रक्तस्राव बंद कर देता है[2]। द्रव्य—फिटकिरी, जलमिश्रित गंधकाम्ल, सुरमा, अर्दशी सफेदी, लोबान, केसर, जलाया हुआ कागज, कहरुवा, कार्ड, चौलाई, कत्था, जलाया हुआ कैतान, हरा माजू (माजुए सब्ज़), याकूत, अकुआ, तूतिया, दम्मुल्अख्वैन, प्रवाल (मर्जान), वरी, धातकीपुष्प (गुलधावा), जलाई हुई सीप, अभ्रक, मुक्ता (मरवारीद), सरेशममाही (मछलीका सरेश), गुलाबपुष्प केसर (ज़र्दवर्द), संगजराहत, आयरस, मार्ई, सफेदा, रूमी, मस्तगी, अंजबार, जलाया हुआ अभ्रक, सरेश, नागकेसर, लोहेके बीज, प्रवाल भस्म (बुस्सद सोख्ता), गर्जब, अकाकिया, गोदन्ती, अहिफेन, पोस्त खशखाश, गुग्गुल, अकीम, मायफल, गेरु, बारतंग, हीराकसीस, सन्दल, मुर्दासंग (रसौत), गुलनार, पतंग, मस्तगी, बदा या बांदा (बदाक), खिल, गिल अरमनी, अनारका छिल्का, गूलर और माराज।

हाबिस बोल—यह द्रव्य जो पेशाबको रोके और बंद करे। यह द्रव्य जो मूत्रोद्रेकको कम कर देते है[3], जैसे—कुन्दुर। मुकल्लिलात बोल।

हालिक, हुल्लाक—बाल मूँड़नेवाली, बाल साफ करनेवाली या बाल उड़ानेवाली औषधि। वह द्रव्य जो बालोंकी जड़को कमजोर करके उनको गिरा देती है। बालसफा। मुज़ह्यिलुश्शार। हल्लाकुश्शार। नूरा[4]। द्रव्य—चूना, हड़ताल, चूना, सफेदा, गन्ध, मजाऊनुल् अदवियाके अनुसार एक प्रकारकी मुबद है, जो पावनेके उपरांत पेरस्ताका रख देती है। इसके लेपसे तुरत बाल उतर कर क्षत हो जाता है। कभी इन द्रव्योंके असावधानीपूर्वक उपयोग से यथेष्ट गंभीर क्षत पड़ जाते हैं, विशेषकर चूना और हड़तालके उपयोगसे जो भारतवर्ष आदिमें सामान्य रूपसे प्रचलित है।

---

१ आयुर्वेदमें हाबिस औषधको 'स्तंभन' या 'स्तंभी' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'स्टिप्टिक–Styptic' या 'ऐनेस्टाल्टिक–Anastaltic' कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें हाबिसदम औषधको 'रक्तस्तंभन', 'रक्तसांग्राहिक' कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'स्टिप्टिक–Styptic' या 'हीमो-स्टिप्टिक–Haemo-styptic' या 'हीमो-स्टेटिक–Haemostatic' कहते हैं।

३ आयुर्वेदमें हाबिस बौलको 'मूत्रसंग्रहणीय' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'युरिनरी ऐस्ट्रिंजेंट्स–Urinary astringents' कहते हैं। मुकल्लिलात बौलको पाश्चात्य वैद्यकमें 'युरिनडिमिनिशर 'Urine-diminisher' कहते हैं।

४ आयुर्वेदमें हालिक औषधको 'रोमशातन' या 'लोमशातन' और पाश्चात्य वैद्यकमें 'डेपिलेटरी' Depilatory' कहते हैं।

औषधप्रतिनिधि-विज्ञानीय पंचम अध्याय

बदल वा प्रतिनिधि

कभी-कभी यह नितांत अनिवार्य हो जाता है, कि जिस प्रयोजनके लिये हम एक द्रव्यका उपयोग करना चाहते हैं, यदि किसी कारणवश हम उसका उपयोग नही कर सकते तो उक्त प्रयोजन या उद्देश्यके लिये हम कोई अन्य तत्प्रयोजनसाधक द्रव्यका उपयोग करते हैं। इस प्रकारके द्रव्यको जो अन्य द्रव्यके प्रयोजनो (प्रयोजनीय गुण-कर्मो)में स्थानापन्न (तत्प्रयोजनसाधक—प्रतिनिधि) बन सकता है, यूनानी वैद्य बदल[1] कहा करते हैं। बदल (प्रतिनिधि द्रव्य)की आवश्यकता कब होती है? (१) जब कोई द्रव्य अप्राप्य होता है। (२) जब कोई द्रव्य बहुत मुल्यवान् होता है और रोगीकी आर्थिक दशा खराब होनेसे वह उसके मूल्यका भार वहन करनेमें असमर्थ होता है। (३) जब किसी द्रव्यको हम किसी विशेष प्रयोजनकी सिद्धिके अभिप्रायसे उपयोग करना चाहते हैं, परतु उसमें कोई अहितकर गुण वर्तमान होता है, तब उस अवस्थामें कभी हम उसी द्रव्य का शोधन करके उपयोग कर लेते हैं। कभी उसका सर्वथा त्याग कर उस विशेष प्रयोजनके लिये कोई अन्य ऐसा द्रव्य ग्रहण करते हैं, जिसमें अहित (दोप)का उक्त पहलू भी नही होता और प्रयोजनकी सिद्धि भी सम्यक्रूपसे हो जाती है। पर यदि ऊहापोह और गवेपणात्मक दृष्टिसे गभीर विचार किया जाय तो हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि 'कोई द्रव्य वास्तविक अर्थमें अन्य द्रव्यके समस्त गुण-कर्मों में उसका प्रतिनिधि नही हो सकता।' क्योकि यदि ऐसा होना सभव हो तो इन उभय द्रव्योके सयोगी उपादान (तरकीबी अजूज़ा) और जातिविशेपक स्वरूप (सूरतेनौइय्या) भी अभिन्न हो जायँ और दोनो दो भिन्न द्रव्य होनेके स्थानमें एकरूप और अभिन्न (मुत्तहिदुल् माहिय्यत) बन जायँ। कदाचित् इसी कारण यूनानी द्रव्यगुणके प्राचीन ग्रथोंमें प्रत्येक द्रव्यके लिये औपध-प्रतिनिधि लिखनेकी बात देखनेमें नही आती। आयुर्वेदमें तो प्राचीन क्या अर्वाचीन द्रव्यगुणविपयक ग्रथोंमें भी ऐसा देखनेमें नही आता, या बहुत कम देखनेमें आता है। पर यदि यह कहा जाय कि "यह द्रव्य ऐसे विचित्रप्रत्यारव्य—विलक्षण गुणविशिष्ट (अजीबुल्-खवास) हैं कि इनका कोई एक धर्म (खास्सा)भी किसी अन्य द्रव्यमें नही पाया जाता," तो यह सर्वथा मिथ्या है और अनहोनी बात है। उन औपधद्रव्योमेंसे कोई द्रव्य ऐसा नही जिसके कतिपय गुणकर्म अन्य द्रव्योंसे निप्पन्न न हो सकते है। अस्तु, उन कतिपय समान गुणकर्मो (खवास)के विचारसे वे उनका प्रतिनिधि हो सकते हैं। अस्तु, उत्तरकालीन यूनानी वैद्योने निघटुग्रथोंमें अन्यान्य गुणकर्मोंके साथ औपध-प्रतिनिधि (बदल) लिखनेका नियम भी नितात अनिवार्य स्वीकार किया है। सुतरा इस विपयकी जो पुस्तकें तालिका वा सारणी (जदाविल) रूपमें लिखी गई हैं, उनमें एक कोष्ठक औपध-प्रतिनिधिका भी स्थिर किया गया है और उसका पूरण नितान्त अनिवार्य समझा गया है। सकलनकर्त्ताओंको इस अनिवार्य नियम-पालनमें अनेकानेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुई हैं और उनमे असख्य भूलें भी हुई हैं, जिनका निर्देश अपनी कुल्लियात अद्विया नामक ग्रथमें विद्वद्वर मुहम्मद कबीरुद्दीन महोदयने स्पष्टरूपसे किया है। वे लिखते हैं, मैंने प्रतिनिधिके कोष्ठकको समीक्षाकी दृष्टिसे आद्योपान्त अवलोकन किया है। उससे मैं जिस परिणाम पर पहुँचा उसका सार यह है—प्राय औपधद्रव्य प्रतिनिधिरहित हैं, और प्रतिनिधिका कोष्ठक वस्तुत शून्य है। जिन कोष्ठकोंको पूरण किया गया है, बहुधा उसमें केवल कोष्ठकपूरण और भरतीसे काम लिया गया है। जिन्हें

---

१ आयुर्वेदमें बदलको 'प्रतिनिधि' कहते हैं—"कदाचिद्द्रव्यमेक वा योगे यत्र न लभ्यते। तत्तद्गुणयुत द्रव्य परिवर्तन गृह्यते"।

निरीक्षणकी दृष्टि प्राप्त है वे जब इस समस्याको अपने विचारका विषय बनायेंगे, तब मेरे निर्णयमें उन्हे अनेकानेक सत्यांश दृष्टिगत होंगे और अनेक रहस्योंका उद्घाटन हो जायगा (कुल्लियात अदविया)।"

प्रतिनिधिमे वीर्यभाग (जुज्वफअ्आल) और उनके वैद्यकीय उपयोगोकी उपपत्तिका विचार नितात आवश्यक है—सच तो यह है कि प्रतिनिधिविषयक समस्या रसायनकी समस्या (मसलएकीमिया)से कम जटिल नही है। जिस प्रकार तर्क और युक्तिसे यह नही बताया जा सकता कि किसी चीजसे साधारण धातुका वर्ण क्यो परिवर्तित हो जाता है, इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्यके लिये प्रतिनिधि बताना भी सहज नही है। परन्तु अनुमान और अनुभवके पथप्रदर्शन (सहायता)से इतना अवश्य बताया जा सकता है, कि यदि कोई कार्यकर वीर्यभाग कतिपय द्रव्योंमें सम्मिलित रूपमें पाया जाय और उसी वीर्यभागका कर्म उन द्रव्यकी आत्मासे (विलज़ात) अभीष्ट हो, तो दृढ अनुमान यह है, कि वह समस्त औषधद्रव्य इस उद्देश्यमें प्रयोगके समय एक दूसरेका प्रतिनिधि सिद्ध होंगे।

उदाहरणार्थ मीठे बदामकी बीजोंकी गिरी, तरबूजके बीजकी गिरी, पेठेके बीजकी गिरी और प्राय गिरियोंमें कतिपय अवयव सम्मिलित रूपमें पाये जाते है। इसलिये यह एक दूसरेके स्थानापन्न हो सकते है। सीप और मोतीके उपादानोंमें एक विशेष अनुपात साम्य है। प्राय कषाय द्रव्य जो संग्राही सत्वसे सोताको सकुचित करते है, उक्त कर्ममें एक दूसरेके प्रतिनिधि बन जाते है। इमली और आलूबुखारा, छोटी इलायची और बडी इलायची, यवासशर्करा (तुरजबीन) और शीरखिश्त, अनीसून, सौफ और इसी प्रकारके अन्यान्य द्रव्य एक दूसरेके समीचीन प्रतिनिधि है। इसी तरह वे द्रव्य भी प्रतिनिधि बन सकते है, जिनके वीर्यभाग (अज्ज़ा फअ्आल) एक दूसरेसे भिन्न होने पर भी उनके वैद्यकीय उपयोगोकी कार्यकारणमीमासा अथवा कर्म-पद्धति (नौइय्यते अमल) लगभग समान है। परतु इतने पर भी चूंकि प्रत्येक द्रव्यके विशेष सयोगी उपादान-साधनभूत घटक (अजज़ा तरकीबी) अन्य द्रव्योंसे भिन्न होते है, अतएव कभी-कभी सूक्ष्मभेद एव अतर निकल आता है, और प्रतिनिधित्वकी समस्यामें जटिलता उत्पन्न हो जाती है।

प्रतिनिधि द्रव्योंसे मर्यादित आशाएँ रखी जायँ—प्राय प्रतिनिधि द्रव्योंसे मर्यादित आशाएँ रखनी चाहिये। उदाहरणत दिरमना विशेषतया उदरके लम्बे कृमियो (केचुओ-हय्यात) पर कार्य करता है और उसका प्रतिनिधि अफसतीन या सुदाव लिखा गया है। इसके यह अर्थ नही है कि केचुओ पर जो विशेष कर्म दिरमना का होता है, ठीक वही कर्म अफसतीन या सुदावका भी हो। इसी तरह सरख्स (मेलफर्न)का विशेष कर्म उदरके प्रघ्नाकार कृमियो ('कद्दूदाना' नामी कृमि) पर होता है, किन्तु यह आवश्यक नही कि सर्वदा ठीक वही कर्म उतनी ही तीव्रता और विशेष प्रभावपूर्वक उसके प्रतिनिधि द्रव्य कमीलेका भी हो। इसी प्रकार यदि एक औषधद्रव्य किसी अन्य औषधद्रव्यके साथ मिलकर एक विशेष स्वरूप और गुण प्राप्त कर लेता है, तो उसके प्रतिनिधिद्रव्यसे वही आशा रखना असभव-सा है और बहुधा अनुभवकी कसौटी पर वह मिथ्या सिद्ध होगा। उदाहरणत शोरा और गधकका चूर्ण मिलनेसे एक ज्वलनशील पदार्थकी उत्पत्ति होती है, जिसे बारूद कहते है। इसका यह अर्थ नही है कि बारूद बनाते समय यदि शोरा या गधक उपलब्ध न हो, तो उनके प्रतिनिधिद्रव्यसे वही आशा रखी जाय और शोरेके स्थानमें लाहौरी नमक डालकर बारूद बना ली जाय। बादरजबूया (बिल्लीलोटन)की सुगध पर स्वभावत बिल्ली आसक्त है, और ज्यों ही इसे उसकी सुगधि प्राप्त हो जाती है वह उस पर मुग्ध होकर लोटने लग जाती है। इसीलिये बादरजबूयाको हिंदीमे बिल्लीलोटन कहते है, अर्थात् बिल्लीके लिये यह एक ऐसी मनोरम वस्तु है कि वह इस पर लोटने लग जाती है। यदि हमें बादरजबूया प्राप्त न हो और बिल्लीको हम बहकाना और उसकी इस आसक्तिका निरीक्षण करना चाहें, तो क्या इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये हमें इसके प्रतिनिधि अवरेणससे सफलता प्राप्त हो सकती है ? प्रयोग करके देख लीजिये। यह सर्वोत्तम कसौटी है। इन बातोंसे अनुमान किया जा सकता है कि जिन द्रव्योंको प्रतिनिधि कहा गया है, वह कहाँ तक प्रतिनिधि बननेकी योग्यता रखते है। (कुल्लियात अदविया)।

अहितकर और निवारण-विज्ञानीय षष्ठ अध्याय

द्रव्यगत अहितकर गुण—कर्म (मुज़िर, मुज़िर्र) और उसका निवारण (मुस्लेह)

प्रतिनिधिविषयक समस्याकी भाँति अहितकर और निवारण (मुजिर्र एव मुस्लेह)की समस्याको भी द्रव्य-गुणके किसी ग्रथमें यूनानी द्रव्यगुण-ग्रथके किसी भी सकलयिताने आलोचना एव विचारणाका विषय नही बनाया है। इसी कारण यह परमोपादेय समस्या बहुधा अघतमसाच्छन्न रह गयी और यूनानी चिकित्सा प्रेमी अगणित प्रवचनाओ और भूलोमें पडे हुए हैं। परम हर्षका विषय है कि हालहीमें विद्वद्वर मुहम्मद कबीरुद्दीन महोदयने अपने 'कुल्लियात अदविया' नामक ग्रथके एक स्वतत्र अध्यायमे बडे ही सुन्दर एव मार्मिक रीतिसे उक्त विषयका शास्त्रीय ढगसे प्रतिपादन और विशद विवेचनाकी है। अस्तु, आवश्यक टिप्पणी आदिके सहित यहाँ उसका विवरण किया जाता है।

अहित (इज़रार) और उसका परिहार—निवारण (इस्लाह)

जिन उपयोगी द्रव्योको हम किसी विशेष उद्देश्यके लिये उपयोग करते हैं कभी-कभी उनमें उस अभीष्ट हितकर गुणकर्मके साथ अन्य अहितकर गुणभी होता है[1]। उस अवस्थामें विवेकशील और बुद्धिमान वैद्यका यह कर्तव्य है कि इष्ट प्रयोजनके साथ उसके उक्त अहितकर गुणको विस्मृत न कर दे अर्थात् उस विशेष द्रव्यसे लाभ भी प्राप्त करे और तत्स्थ अहितकर गुण (दोष)का किसी तरह निवारण (इस्लाह) भी कर डाले, जिससे एक रोग निवृत्त होनेके साथ कोई अन्य रोग उत्पन्न न हो जाय[2]।

द्रव्यगत अहितकर गुणोके निवारण वा परिहार (इस्लाह)की रीतियाँ—अहितकर गुणों (दोषो)के परिहार वा निवारण की विभिन्न रीतियाँ है, यथा —

(१) सस्कार[3]—कभी-कभी औषध द्रव्योके गुण और स्वरूप (कैफिय्यत और शकल) परिवर्तनसे उनके अहितकर गुणो (दोषो)का परिहार हो जाता है। उदाहरणत भर्जन वा भृष्ट करना, दहन (सोख्ता करना), शोधन, प्रक्षालय, उष्णीकरण, शीतीकरण सामान्यतया सस्कारसे शरीरके लिये हितकर गुणोंकी वृद्धि की जाती है।

---

१ आयुर्वेदमें 'हिताहितानि' शब्दसे ऐसे ही द्रव्योंकी ओर सकेत किया गया है—'हिताहितानि तु यद्वायो पथ्य तत्पित्तस्यापथ्यमिति ॥' (सुश्रुत)। अर्थात् इससे वे द्रव्य अभिप्रेत हैं, जो सेवन करने पर शरीरके एक अग पर हितकर और दूसरे अग पर अहितकर परिणाम एक ही समयमें किया करते है।

२ आयुर्वेदके अनुसार चिकित्साका मूल सूत्र और विशेषता भी यही है। कहा है—'प्रयोग शमयेद् व्याधि योऽन्यमन्यमुदीरयेत्। नाऽसौ विशुद्ध शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत् ॥' (अ० हृ० सू० अ० १३/१६)। 'यो ह्युदीर्णं शमयति नान्य व्याधि करोति च। सा क्रिया न तु या व्याधि हरत्यन्य-मुदीरयेत् ॥' (सु० सू० अ० ३५)।

३ आयुर्वेदमें सस्कारके सबधमें लिखा है—'सस्कारो हि गुणाधानमुच्यते। ते गुणास्तोयाग्निसनिकर्ष-शौच-मथन-देश-काल-वशेन भावनादिभि कालप्रकर्षभाजनादिभिश्चाधीयन्ते।' (चरक)। 'सस्कार-भेदेन गुणभेदो भवेद्यत। योग प्रभावेण गुणान्तरमपेक्षते ॥' (भा० प्र०)। सस्कारसे दोषका परिहार होता है—'गुरूणा लाघव विद्यात् सस्कारात्सविपर्ययम्। व्रीहेर्लाजा यथा च स्यु सक्तूना सिद्ध-पिण्डका ॥' (चरक)।

(२) योजना[1] वा कल्पना—कभी-कभी औषधद्रव्यकी सेवन-विधि (योजना, युक्ति) बदल देनेसे अहितकर गुण (मजरत)का परिहार हो जाता है। अर्थात् अहितकर द्रव्य हितकर हो जाता है। उदाहरणत एक द्रव्य मुखसे खिलानेसे वमन कराता है, और आमाशयमें व्याकुलता और व्यग्रता उत्पन्न करता है। परतु वही द्रव्य जब बस्ति-द्वारा प्रयुक्त किया जाता है, तब उससे होनेवाले उक्त दोष (अहितकर गुण) प्रकाशमें नही आते।

(३) सयोग[2]—कभी कभी उसके साथ तदवगुणहारक कोई अन्य द्रव्य मिलानेसे तज्जन्य (द्रव्यगत) अवगुण (अहितकर गुण)का परिहार (निवारण) हो जाता है। इस प्रकारके उस अन्य द्रव्यको निवारण (मुस्लेह्) कहा जाता है। दोषपरिहारकर्त्ता वा निवारणद्रव्य (दवाऽमुस्लेह्) जो किसी अन्य द्रव्यसे मिलकर उसके दोषो (अहितकर गुणो)-का परिहार किया करता है, उसके उक्त कर्म (दोषपरिहार) करनेकी रीतियोमेंसे कुछ रीतियोका उल्लेख यहाँ किया जाता है —

(क) कभी-कभी निवारण (दोषपरिहारक) द्रव्य मूलद्रव्यके साथ मिलकर उसके वीर्यभाग (जुज्व मुव-स्सिर)की तीक्ष्णताको जो वैद्यकीय प्रमाण (प्रयोजन)से अधिक होती है, घटा देता है। उदाहरणत एक द्रव्य अत्यत अम्ल या क्षारीय है। यदि उसे इसी तीक्ष्णताकी दशामें उपयोग किया जाय, तो त्वचा, श्लैष्मिककला और अन्यान्य शारीर धातुएँ दग्ध हो जाँय या उनमें दाने, विस्फोट (आबले) और क्षत इत्यादि उत्पन्न हो जायँ। पर यदि उसके साथ अधिक परिमाणमें जल सम्मिलित कर दिया जाय, तो अत्र तीव्र औषधि (अम्ल हो या क्षारीय) सरलतापूर्वक और निरापदरूपसे प्रयुक्तकी जा सकती है।

यहाँ जलका उल्लेख उदाहरणस्वरूप किया गया है। जलके अतिरिक्त इस प्रयोजनके लिये वाह्यान्त प्रयोगकी औषधियोमें अन्यान्य बहुसख्यक द्रव्य, जैसे—मोम, रोग़न (स्नेह) मधु, शर्करा, स्वादरहित और सादे लबाब (लुआ-बात जैसे—बबूलका गोद और कतीरा) इत्यादि सम्मिलित किये जाते हैं। नीबूका पानक (शर्बत) बनाकर पीना, मद्यमें जल मिलाना, शिरकामें शहद या शर्करा मिलाकर सिकजबीन (शुक्तशार्कर) बनाना, इसी वर्गमें समाविष्ट हैं।

(ख) कभी-कभी निवारण औषधद्रव्य (दवाऽ मुस्लेह्) विरुद्ध होनेके कारण प्रधान द्रव्यके साथ मिलकर नवीन मिज़ाज (प्रकृति)[3] का प्रादुर्भाव कर देता है और प्रकृतिगत (प्राकृतिक) वा असली और जातिगत (नौई) गुणो (खवास)को न्यूनाधिक परिवर्तित कर देता है[4]। इसके पुन ये दो अवान्तर भेद हैं—

---

१ आयुर्वेदमें योजनाको युक्ति कहते है—'युक्तिश्च योजना या तु युज्यते।' (चरक)। इस योजनाविशेषमें ओषधिके वाह्य प्रयोगके समय 'अभ्यङ्गस्वेदप्रदेहपरिषेकोन्मर्दनादि'का विचार और अत प्रयोगके समय 'मात्रा-काल-क्रिया-भूमि देह-दोष-गुणातर'का विचार होता है। आयुर्वेदके मतसे किसी द्रव्यका शरीर पर हितकर-अहितकर कार्य वैद्यकी योजना पर निर्भर होता है—'योगादपि विष तीक्ष्णमुत्तम भेपज भवेत्। भेपज वापिदुर्युक्त तीक्ष्ण सपद्यते विषम्' ॥ (चरक) 'जगत्येवमनौषधम्। न किञ्चि-द्विद्यते द्रव्य वशान्नानार्थयोगयो। (वाग्भट)। 'नास्ति मूलमनौषधम्॥ योजकस्तत्र दुर्लभ। (सुभा-षित)। अस्तु, योजना द्वारा अहितकरको हितकर बनाया जा सकता है।

२ आयुर्वेदमें सयोगका अर्थ 'दो या अधिक द्रव्योंका मेल' है। यहाँ द्रव्य प्रकृतिके अतिरिक्त कार्यकारक-मेल अभिप्रेत है—'सयोगो द्वयोर्बहूना वा द्रव्याणा सहतीभाव। सविशेषमारभते य पुनरेकैकशो द्रव्याण्यारभन्ते। तद्यथा-मधुसर्पिषोर्मधुमत्स्यपयसां स सयोग। (चरक वि० १ अ०)।

३ सस्कारादिसे गुणातराधान किया हुआ कृत्रिम गुण। योगके पश्चात् गुणाधान किया हुआ गुणयोग।

४ आयुर्वेदके मतसे सस्कार आदिसे जो स्वाभाविक गुण-परिवर्तन होते हैं—'सस्कारो हि गुणान्तराधान-मुच्यते।' (चरक)। सस्कार किन्तूत्पन्नस्यैव तोयादिना गुणातराधानमिति दर्शयति, तच्च प्राकृत-

(अ) दोषपरिहारकर्त्ता अर्थात् निवारणद्रव्य (दवाऽ मुस्लेह्) वस्तुत उस अहितकर उपादान (मुज़िर्र जुज़) पर कार्य करता है जो किसी मिश्रवीर्य (मुरक्कबुल्कुवा) द्रव्यमें प्रधान वीर्य (असली जौहर फअ्आल अर्थात् प्रकृति-निष्ठ)के साथ पाया जाता है। निवारणद्रव्य से जव उस अहितकर उपादानका सगठन (तरकीव मिज़ाज) विघटित हो जाता है, तव उसका कार्य (कार्यक्षमता) भी व्यर्थ वा मिथ्या (निष्क्रिय) हो जाता है। इससे प्राकृतिक (असली, स्वाभाविक) प्रधान वीर्यके सगठन पर कोई प्रभाव नही पडता और उसका वीर्य (कुव्वत) यथावत् स्थिर रहता है।

(आ)—दोषपरिहारकर्त्ता अर्थात् निवारण द्रव्य प्रत्यक्षतया प्रधानवीर्य (जौहर फअ्आल) पर कार्य करता है। उदाहरणत किसी द्रव्यका प्रधान वीर्य आवश्यकतासे अधिक अम्ल है। जब ऐसे द्रव्य अम्लके साथ उपयुक्त प्रमाणमें लवण मिला दिया जाता है, तब उसकी उक्त अम्लता दूर होकर यथेच्छ कम हो जाती है। यहाँ यह भी स्मरण रहे कि यदि चिकित्सा या उपचारकी दृष्टिसे अम्लत्व अनिवार्य हो और उसके साथ अधिक प्रमाणमें लवण और क्षारकी योजना कर दी गयी हो तो अम्लताका सर्वथा ह्रास हो जायेगा और अभीष्टकी प्राप्ति कदापि न होगी।

इसी उदाहरणकी भाँति क्षारीय उपादानको जिसका ह्रास अम्लत्वके सयोगसे होता है और महाभूतों (अना सिर)के अन्यान्य समवाय वा मिश्रणो (मिज़ाजात) और सगठनो (तराकीव)का अनुमान करें जो परस्पर एक दूसरेसे मिलकर वदल जाते हैं।

(३)—कभी-कभी दोपपरिहारकर्त्ता (निवारण) द्रव्य न सादे तौर पर औषधद्रव्यकी तीक्ष्णताको कम करता है और न द्रव्यके मिजाज (प्रकृति)में परिवर्तन (इस्तिहाला व तगय्युर) उत्पन्न करता है, अपितु वह केवल शरीर और उसके अग-प्रत्यगो पर होनेवाले अपने कर्मके विचारसे विरुद्ध कार्य करता है। उदाहरणत वेदनाशमनके लिये हमें एक वेदनास्थापक औषधद्रव्योकी आवश्यकता है, किंतु हमारे ज्ञानमें जो द्रव्य इस प्रयोगकी सिद्धिके लिये उपादेय है, वह यद्यपि वेदनास्थापक है, परतु वह हृदयको निर्वल करनेवाला है। इसलिये उसके साथ हम ऐसा द्रव्य योजित कर देंगे जो हृदयको वल प्रदान करनेवाला और उत्तेजक हो। उक्त अवस्थामें असली वेदनास्थापक द्रव्यको यदि हृदयके लिये अहितकर कहा जायेगा तो उस उत्तेजक द्रव्यको दोपरिहारकर्त्ता वा निवारण (मुस्लेह्)। कभी-कभी चिकित्सकको शोणितस्तभन या किसी अन्य द्रवका प्रवाह या स्राव रोकनेके लिए स्तभन (हाविस) और शीतसग्राही (काविज) द्रव्यकी आवश्यकता पडती है। सुतरा उक्त द्रव्यसे यदि किसी अगके द्रव एव रक्तका स्राव अवरुद्ध हो (रुक) जाता है, तो उसके साथ ही आँतोमें कब्ज (मलावरोध) उत्पन्न हो जाता है। उक्त अवस्थामें किसी मृदु-सारक (मुलय्यिन) द्रव्यसे अत्रस्थ कब्जका निवारण कर दिया जाता है। यह प्रगट है कि अर्श, प्रवाहिका (पेचिश), रगड (सहज्ज) और अत्रव्रण (कुरूह अमआऽ)में अत्रशुद्धिके लिए कभी-कभी मृदुसारक और हलके विरेचन द्रव्यकी आवश्यकता पडती है, परतु सारक और विरेचन द्रव्योसे रगड एव खराश (सहज्ज व खराश)के वढनेका भय होता

गुणोपमर्देनैव क्रियते। यतो तोयाग्निसन्निकर्षशौचैस्तण्डुलस्थ गौरवमुपत्य लाघवमन्ने क्रियते। यदुक्त—सुधौत प्रस्तुत स्विन्न सन्तप्तश्चौदनोलघु।" वह व्यक्तिका स्वभाव परिवर्तन होते हैं, जातिका नहीं। इस पर भी व्यक्तिका वह स्वभाव इसलिये वदल जाता है, कि उससे (सस्कारादि)से वह द्रव्यान्तर या जात्यन्तरमें चला जाता है—"गुणो द्रव्यविनाशाद्वा विनाशमुपगच्छति। गुणा-न्तरोपघाताद्वा" इति (चक्र०)।

'यत्र तु सस्कारेण व्रीहेर्लाजलक्षण द्रव्यान्तरमेव जन्यते। तत्र गुणान्तरोत्पाद सुष्ठुवेव।" (चरक वि० अ० ५) कई द्रव्य अपने स्वभावको नहीं भी छोड़ते। यथा—अग्नि उष्णताको, वायु चलत्वको, तेल स्निग्धताको, क्योंकि ये गुण यावद्द्रव्यभावी' है। अस्तु, आयुर्वेदमें जो यह लिखा है कि स्वाभाविक गुण वहुधा निष्प्रतिक्रिय होते हैं—स्वभावो निष्प्रतिक्रिय (चरक)। वह सत्य है।

है। उक्त अवस्थामें सारक और विरेचन द्रव्योके साथ फिसलानेवाले लन्नावो (पिच्छिल द्रव्यो)को मिलाकर उपयोग किया करते हैं, जो निवारणका काम देते हैं। यहाँ उन निवारण द्रव्योंका उल्लेख है जिनका सबध गुण और कर्मसे है। उक्त विवेचनसे रसका सुधार विवक्षित नही है।

यहाँ पर कतिपय आधारभूत सिद्धातोका प्रतिपादन सोदाहरण किया गया है, जिनसे मुज़िर (अहितकर) और मुस्लेह (निवारण) विषयक समस्या पर प्रकाश पड सकता है। (कुल्लियात अदविया)।

❁

योगौषधविज्ञानीय (अद्‌विया मुरक्कबा) सप्तम अध्याय

प्रकरण १

द्रव्य संयोगके[1] नियम

संसृष्टासंसृष्ट द्रव्य—उद्भिज्ज, जाङ्गम और खनिज प्राकृतिक औषधद्रव्य जो नैसर्गिक अवस्थामें पाये जाते हैं अर्थात् मानवी भैषज्यकल्पना द्वारा उनमें कोई परिवर्तन उत्पन्न नहीं किया जाता वह परिभाषाके अनुसार स्वतंत्र वा असंसृष्ट द्रव्य (मुफ्‌रदात, दवाऽमुफ्‌रद) कहलाते है। इन प्राकृतिक असंसृष्ट द्रव्यो (कार्यद्रव्यो)के संयोग, संसर्ग समवाय वा मिश्रणसे जिन भेषजो (कल्पो)की कल्पना की जाती है, वह योग, योगौषध, संसृष्टद्रव्य, मिश्रद्रव्य वा कल्प (मुरक्कबात) कहलाते हैं, चाहे वे दो द्रव्यो से संसृष्ट (मुरक्कब)हो या अधिकसे। प्राकृतिक औषधद्रव्य (कार्यद्रव्य)को असंसृष्ट वा स्वतंत्र (मुफ्‌रद) कहना केवल एक पारिभाषिक कल्पना है, वरन् गत पृष्ठोमें इस विषयका प्रतिपादन किया गया है कि इस प्रकारके असंसृष्ट औषधद्रव्यो (मुफ्‌रदात)मेंसे लगभग समस्त उद्भिज्ज एवं जाङ्गम और अधिकाश खनिज द्रव्य वस्तुत संसृष्ट द्रव्य (मुरक्कबात) ही हैं, जिनके संगठनमें विभिन्न उपादान और विभिन्न वीर्य (जौहर) पाये जाते हैं, बशर्ते कि यदि मनुष्यने अपने कार्यों द्वारा उन्हें शुद्ध और अमिश्र न बना लिया हो। विविध धातुएँ (उदाहरणत लोहा, चाँदी, ताँबा, राँगा, जस्ता, पारा इत्यादि) और उपधातुएँ (उदाहरणत गधक, शिंगरफ, हडताल, संखिया इत्यादि) अपनी खानोसे जब निकलती है, तब शुद्ध और अमिश्र नहीं होती, अपितु विभिन्न प्रकारके मिश्रणो और खोटसे अशुद्ध एवं मिश्रीभूत होती हैं। संखिया और गधक प्रभृतिके नाना वर्ण जिनके कारण उनके विविध भेद बतलाये जाते हैं, इसी मिश्रण और खोटके कारण होते है। वरन् ये द्रव्य अपने प्राकृतिक मूल स्वरूप (माहिय्यतेज़ात)के विचारसे केवल एक वर्णके होने चाहियें। जब हम इनको कृत्रिम साधनोंसे शुद्ध कर लेते हैं तब इनका वास्तविक वर्ण व्यक्त हो जाता है और मिश्रण एवं खोट दूर होनेके उपरात इनका वह परिवर्तित वर्ण भी लुप्त हो जाता है। उपर्युक्त विवरणसे यहाँ यह अभिप्रेत है कि उद्भिज्ज और जाङ्गम औषधद्रव्योंकी भाँति अधिकाश पार्थिव और खनिज द्रव्य भी जब तक वह अपनी नैसर्गिक दशामें होते हैं, संसृष्ट (मुरक्कब) ही होते हैं।

संसृष्टासंसृष्ट भेषजोपचार—रोगके प्रतीकारार्थ कभी हम केवल एक द्रव्यसे काम लेते है। इसको यूनानी चिकित्सक इलाज बिल्‌मुफ्‌रदात (असंसृष्ट वा स्वतंत्र भेषजोपचार) कहते हैं और कभी एकसे अधिक द्रव्य मिलाकर क्वाथ, फाण्ट, अर्क, चूर्ण, माजून या शार्कर (शर्बत) इत्यादि कल्पनारूपमें प्रयुक्त करते हैं। इसको यूनानी वैद्य इलाज बिल्‌मुरक्कबात (संसृष्ट भेषजोपचार, योगौषध वा कल्पचिकित्सा) कहते हैं।

इलाज बिल्‌मुफ्‌रदात अर्थात् असंसृष्ट भेषजोपचारका वास्तविक भाव—यदि किसी व्याधिके प्रतीकारके निमित्त हम क्वाथ या फाटका व्यवस्थापत्र (नुसखा) लिखें और उसमें स्वतंत्र औषधद्रव्यो (मुफ़्रद अद्‌विया) की एक लंबी सूची डाल दे, तो सिद्धात अशास्त्रीय अर्थात् दूषित होनेके अतिरिक्त उसे इलाज बिल्‌मुफ्‌रदात (स्वतंत्र भेषजोपचार) कहना सर्वथा असंगत होगा। क्योकि माजून और जुवारिश (खाडव) प्रभृति कल्पनाओंकी

---

१ इससे दो या अधिक द्रव्योंका मेल अभिप्रेत है—"संयोगो द्वयोर्बहूना वा द्रव्याणां संहतीभाव। स विशेषमारभते यं पुनर्नैककशो द्रव्याण्यारभन्ते। तद्यथा—मधुसर्पिषोर्मधुमत्स्यपयसा च संयोग।" (चरक)।

भाँति क्वाथ और फाट भी योगौषधों (मुरक्कबादीन)के अंतर्भूत हैं, जिनका उल्लेख अन्यान्य योगौषधोंके करावादीन[1] अर्थात् किताबुल् मुरक्कबात (योग-ग्रंथ)में किया जाता है। रहा यह प्रश्न कि क्वाथ (जोशांदा)के योगमें चूँकि बहुधा असंसृष्ट द्रव्य (अद्विया मुफ़्रदा) होते हैं, अतः इसको इलाज बिल्मुफ्रदात (असंसृष्ट वा स्वतंत्र भेपजोपचार) ही कहना चाहिये? इसका उत्तर यह है कि माजून और जुवारिशके योगमें भी अनेक असंसृष्ट वा स्वतंत्र औषधद्रव्य ही हुआ करते हैं। संसृष्ट या योगौषध (दवाऽ मुरक्कब)का अर्थ यही है कि वह कतिपय स्वतंत्र द्रव्योंसे मिलकर बने। जिस प्रकार जुवारिश और माजून प्रभृतिकल्प स्वतंत्र द्रव्योंके संयोगसे बनते हैं, उसी प्रकार क्वाथ और फाट भी स्वतंत्र द्रव्योंसे प्रस्तुत किये जाते हैं। अंतर केवल यह है कि क्वाथ और फाट कुछ दिनोंतक रखे नहीं जा सकते और ये शीघ्र विकृत हो जाते हैं, इसलिये हम उन्हें प्रतिदिन नवीन प्रस्तुत करनेका आदेश देते हैं और माजून तथा जुवारिश आदि चिरस्थायी योजनाएँ हैं तथा शर्करा और मधुकी चाशनी (किवाम)के कारण या किसी अन्य कारणवशये शीघ्र विकृत और दूषित नहीं होते, इसलिये इन्हें हम एक बार बड़े प्रमाणमें प्रस्तुत करके शीशियों और मर्तबानोंमें सुरक्षित कर लेते हैं। यदि क्वाथ और फाट आदि विकृतिशील न होते, तो उन्हें भी हम अन्य माजून और अर्क इत्यादिकी भाँति एक बार प्रस्तुत कर रख लेते और एक निश्चित काल तक उपयोग करते रहते। सुतरां मत्बूख हफ्तरोजा क्वाथ होने पर भी कई दिन तक विकृत नहीं होता। यहाँ तक कि सप्ताह और पक्ष (हफ्ता अशरा) तक बिना किसी विशेष विकारके सुरक्षित रहता है।

स्वतंत्र औषधोपचारकी श्रेष्ठता और उपादेयता—किसी व्याधिके प्रतिकारके समय "यदि हम किसी स्वतंत्र द्रव्यको अपनी इष्ट-सिद्धिके लिये पर्याप्त पाते हैं, तो उससे हम किसी संसृष्ट औषध या योगको श्रेय नहीं देते, अपितु असंसृष्ट (स्वतंत्र) द्रव्योंको ही श्रेयस्कर मानकर उसका ग्रहण करते हैं।" (कर्शी और शैख)।

प्राचीन विद्वानोंकी इस उक्तिसे यह प्रगट है कि एक व्याधिका एक ही द्रव्यसे प्रतिकार करना जिसको इलाज बिल्मुफ्रदात (असंसृष्ट भेपजोपकार) कहा जाता है, वैद्यकीय सिद्धांतके विचारसे श्रेष्ठ और अधिकाधिक प्रशस्त है।

विस्तृत योग सिद्धांततः अवैज्ञानिक एवं दोषपूर्ण हैं—इसी तरह यदि किसी प्रकारकी बाध्यता और अनिवार्यताके आधार पर एक द्रव्यसे काम न निकल सकता हो, तो यथासंभव ऐसे संक्षिप्त योगसे चिकित्सा या उपचार करना चाहिये, जिसके उपादान थोड़े हों। लंबे-लंबे योग लिखना, जैसा कि हमारे देशके कतिपय यूनानी वैद्योंका नियम है, वैद्यकीय सिद्धांतके विचारसे न केवल अप्रशस्त, अपितु महान् दोषावह है। "स्मरण रहे कि परीक्षित औषध (सिद्ध भेषज) अपरीक्षित औषधसे श्रेष्ठतर है और किसी एक प्रयोजनके लिये कम द्रव्योंका योग अधिक द्रव्योंके योगसे श्रेयस्कर है।" (कानून)।

हमारे देशके यूनानी वैद्योंका एक वर्ग लंबे-लंबे योग लिखना विद्याका चमत्कार समझता है। इन योगोंके निर्माणमें केवल इस बातका ध्यान रखा जाता है कि एक-एक प्रयोजनके लिये द्रव्यसूचीमेंसे समानगुणविशिष्ट दस-दस, पंद्रह-पंद्रह द्रव्य केवल सामान्य रीतिसे एकत्रित कर दिए जायँ। सामान्य रीतिसे एकत्रित करनेका तात्पर्य यह है, कि योगके ये बहुसंख्यक उपादान उन उद्देश्योंको लक्ष्यमें रखकर संगृहीत नहीं किये जाते जिनके लिए सिद्धांततः द्रव्योंको समवेत वा संसृष्ट (मुरक्कब) करनेका आदेश किया गया है और जिनका उल्लेख आगे आनेवाला है। परंतु इस वर्गके विपरीत यूनानी वैद्योंका एक अन्य वर्ग भी पाया जाता है जो अल्पतर उपादानोंसे उपकार वैद्यक विद्याका चमत्कार एवं श्रेष्ठता और उपादेयता स्वीकार करता है और जिनके योगोंमें केवल दो-चार द्रव्य समाविष्ट हुआ करते हैं।

---

१ 'करावादीन' यूनानी भाषाका शब्द है, जिसका अर्थ "योगौषधविशिष्ट ग्रंथ अर्थात् योग-ग्रंथ—अद्विया मुरक्कबाकी किताब" है।

औषधका सेवन कब और किस अवस्थामें करना चाहिये इस युक्तिका यथार्थ ज्ञान और उनसे आशानुरूप लाभ-प्राप्तिकी क्षमता प्रत्येक चिकित्सकमें समान रूपसे नही होती। जिन चिकित्सकोंको रोगकी उपपत्ति पूर्णतया ज्ञात है और द्रव्योके वैद्यकीय उपयोगोकी मीमासाका भरपूर ज्ञान प्राप्त है, उन्हें अपने इस प्रत्यक्षमूलक ज्ञानके अनुसार अधिक सक्षिप्त (मुख्तसर) द्रव्योसे उपचार करनेकी सामर्थ्य होती है। योगमें अनेक द्रव्योको यह आशा करके लिख देना कि--"इतने बाणोमेंसे कोई-न-कोई बाण तो लक्ष्य पर लग ही जायगा" एक प्रकारकी विवशताका द्योतक है, जो इस बातका प्रमाण है कि चिकित्सको द्रव्यके कर्मोंका कार्यकारणभाव (मीमासा)और सेवनकाल (मौका इस्तेमाल) पूर्णतया ज्ञात नही है, इसलिए वह लक्ष्यहीन अधकारमें असख्य ढेले मार रहा है। शैखुर्रईस कानून (पाँचवी पुस्तक योगग्रथ–किताब खामस, अक्राबादीन)में लिखते है—"प्रत्येक व्याधिके उपचारमें, विशेषतया ससृष्ट व्याधियोकी चिकित्सामें हमें सदैव इस उद्देश्यमें सफलता नही मिलती कि व्याधिकी चिकित्सा स्वतत्र द्रव्य ही से करें (अर्थात् प्रत्येक व्याधिका मुकाबला प्रतियोगितासे कर सके)। यदि इसमें हमें सफलता मिल जाय तो हम कदापि ससृष्ट औपधको असंसृष्ट द्रव्यसे श्रेयस्कर स्वीकार न करे (अपितु सदैव हम व्याधिनिवारणके लिए एक ही द्रव्य पर सतोप किया करें)।' शैखके उक्त कथनसे यह प्रगट है कि व्याधिकी चिकित्साके समय योगौपधो या एकाधिक द्रव्यका उपयोग केवल विवशताकी दशामें कतिपय आवश्यकताओसे बाध्य होकर किया जाता है। बिना विवेकके अनेक द्रव्योको ससृष्ट (मुरक्कब) करनेमें अन्यान्य दोपोके अतिरिक्त एक जटिलता या दोप यह भी है कि ससृष्ट या योगौपधोमें सयोगके पश्चात् (सगठनके कारण) कोई शरीरको अहितकारक नूतन प्रकृति (मिज़ाज) और नवीन जातिस्वरूप (सूरते नौइय्या) उत्पन्न हो जाता है जो केवल अनुमानसे समयसे पूर्व, किसी प्रकार ज्ञात नही हो सकता या सयोगके उपरात ऐसा नवीन मिज़ाज उत्पन्न हो जाता है जिससे औपधीय गुण-कर्म परिवर्तित होकर आवश्यकतासे तीव्रतर हो जाता है अथवा वह घटकर वैद्यकीय आवश्यकता और औपचारिक उद्देश्यसे मदतर हो जाता है या उसमें एक ऐसे गुण कर्मकी उत्पत्ति हो जाती है जो प्रयोजनके विरुद्ध और विपरीत अर्थात् प्रत्यनीक (ज़िद्द और नकीज़) होता है।

द्रव्य-सयोगकी आवश्यकता—वह कौन सी आवश्यकताएँ हैं जो हमें एक द्रव्य के साथ अन्य द्रव्यके मिलानेके लिए विवश कर देती हैं और क्यो हम उपचारकालमें कभी असंसृष्ट औपधके स्थानमें ससृष्ट वा मिश्र औपध (योग)का ग्रहण करते हैं? वह आवश्यकताएँ अनेक है और कतिपय प्रयोजनोको लेकर हम सरलताका परित्याग कर औपधके योगकरण (तरकीब अद्विया)के झमेलेमें पडते है। यथा—(१) औषधके दोपपरिहारके लिये, (२) औपधीय कर्मोंको तीव्र करनेके लिये, (३) औषधीय कर्मोको मद वा निर्बल करनेके लिए, (४) औपधको मदकारी या मदप्रवेशक्षम (बतीउन्नुफूज़) बनानेके लिये, (५) औपधको आशुकारी या शीघ्रप्रवेशक्षम (सरीउन्नुफूज़) बनानेके लिये, (६) ससृष्ट वा समिश्र व्याधियोके उपचारके लिये, जबकि कतिपय व्याधियाँ ससृष्ट हो और प्रत्येक व्याधि अन्य औषधिकी उपेक्षा रखती हो, (७) औपधके सरक्षणके हेतु, (८) परिमाण-वर्धनके लिए और (९) अन्य उद्देश्यके लिये। नीचे इनमेंसे प्रत्येकका विशद निरूपण किया जाता है—

(१) औषधके दोष परिहारके लिये—मूल या प्रधान औपधके साथ, जो रोगके प्रतिकारके लिये तजवीज़ किया गया है, कभी हम अन्य औषधद्रव्य इसलिये मिला देते हैं, कि उसके हानिप्रद गुणका परिहार हो जाय, जो उसमें पाया जाता है। इस हानिकर गुणके यह दो भेद हैं—(१) वह प्रधान द्रव्य व्याधिमें अपने कर्मके विचारसे लाभकारी हो, परतु किसी अन्य शरीरावयवके विचारसे कोई अहितकर गुण रखता हो, जैसा कि "अहितकर और निवारण विज्ञानीय अध्याय"में वर्णन किया गया है। (२) वह प्रधान द्रव्य कर्मके विचारसे कोई अहितकर गुण नही रखता, परतु वह रस, गध, स्वरूप (शकल व सूरत), वर्ण आदिके विचारसे ऐसा घृणोत्पादक एव अप्रिय होता है कि प्रकृति उसे ग्रहण नही करती।

अहितकर कर्मका परिहार—प्रथम भेदमें प्रधान वीर्यवान् (मुवस्सिर) द्रव्यके साथ कोई अन्य दोप परिहारकर्त्ता द्रव्य मिला दिया जाता है, जिसके दोषपरिहारकी रीतियोका निरूपण 'अहितकर और निवारण-विज्ञानीय अध्याय'में किया गया है। उदाहरणत इन्द्रायनके गूदेके उपयोगसे मरोड उत्पन्न होनेकी प्रबल सभावना है।

करनेमे उनका प्रभाव तीव्रतर हो जाता है। उदाहरणत रोहिणीवत् गलरोग विशेष (खुनाक) और कण्ठशोथमें प्रयुक्त क्वाथके योगमें, जिसमें तूतका पत्ता प्रथमसे होता है, जब शर्बत तूत या रुब्ब तूत (शहतूतका सत) मिला दिया जाता है, तब उसका प्रभाव बलवान हो जाता है। मुरलानफीस कहते हैं—"जब कोई व्याधि बलवान् होती है और उसके प्रतीकार योग्य कोई ऐसी एक अमिश्र (स्वतन्त्र) औषधि नही मिलती जिसका प्रभाव यथेष्ट हो, तब उस समय योगकरण (तरकीब)की आवश्यकता उपस्थित होती है, जिसमें योगौषधके पृथक्-पृथक् अवयव वा उपादान रोगके प्रतिकारमें एक दूसरेकी सहायता करें और समुदायका कर्म व्याधिके प्रतिकारके लिये पर्याप्त हो जाय।" शैखुर्रईस द्रव्य-सयोग (तरकीब अद्विया)की आवश्यकता और अनिवार्यताके सबधमें लिखते हैं—"कभी-कभी ऐसा होता है कि ससृष्ट व्याधियों और अवस्थाओंके प्रतीकारार्थ हमे एक मिश्रवीर्य (मुरक्कबुल्कुवा) द्रव्य प्राप्त होता है, जिसमे दो (या अधिक) विभिन्न गुण-कर्मनिष्ठ उपादान पाये जाते हैं, इसलिये वह अपने विभिन्न वीर्योंसे ससृष्ट अवस्थाओंमे दो (या अधिक) कर्मोंका प्रकाश कर सकता है। परन्तु उसके एक उपादानका कर्म हमारी आवश्यकतामे निर्बल होता है, इसलिये उसके साथ हम कोई ऐसी वस्तु योजित कर देते हैं, जिससे उसका उक्त कर्म तीव्र (क़वी) हो जाता है। उदाहरणत बाबूना एक मिश्रवीर्य (मुरक्कबुल्कुवा) द्रव्य है जिसमें विलयन (तहलील) और सग्रहण (कब्ज)के उभय वीर्य पाये जाते है। परन्तु विलयन (तहलील)की शक्ति अधिक है और सग्रहण (कब्ज)की निर्बल वा अल्प। इसलिये उसके साथ जब हम कोई सग्राही उपादानका योजन कर देते है, तब उसकी सग्राहिणी शक्ति अधिक हो जाती है।" शैख यह भी लिखते हैं कि "कभी-हमारे पास ऐसा अमिश्र उष्णताकारक द्रव्य होता है जिसमें उष्णकरणकी शक्ति हमारी आवश्यकतामें अल्प पाई जाती है। उक्त अवस्थामें हम उसके साथ अन्य उष्णताजनक द्रव्य समवेत कर देते हैं जिससे उसकी उष्णताजनन सामर्थ्य यथेच्छ बढ जाय"। "कभी-कभी हमें ऐसे द्रव्यकी आवश्यकता होती है जो (उदाहरणत) चार अशोंसे उष्णता प्रगट कर सके, परतु हमें ऐसा द्रव्य न उपलब्ध होता हो, प्रत्युत हमें दो द्रव्य इस प्रकारके प्राप्य हों जिनमेंसे एक द्रव्य तीन अशोंसे उष्णता उत्पन्न करनेवाला हो और दूसरा पाँच अशोंसे। उक्त अवस्थामें इन उभय द्रव्योंको हम यह आशा करके समवेत कर देंगे कि इस सयोग या समवाय (तरकीब)से जो योगसमुदाय प्राप्त होगा, वह चार अशोंसे उष्णता प्रगट कर सकेगा (जो अभीष्ट है)।"

(३) द्रव्याश्रित (औषधीय) कर्मको हीनवीर्य करनेके लिये हीनवीर्यकारक योग वा कल्पना (दवामुज्इफ़ अमल)—कभी-कभी उपक्रमकालमें हमें ऐसे द्रव्यसे वास्ता पडता है, जिसके कर्मकी शक्ति (कुव्वतेतासीर) हमारी वैद्यकीय आवश्यकतासे अधिक होती है, चाहे वह कर्म अतिसरण (इस्हाल), मूत्रोत्सर्जन (इद्रार), व्रणोत्पादन (तक्रीह) या विस्फोटजनन (तन्फ़ीत) और प्रदाहजनन (लज्अ) या किसी और प्रकारका हो। उक्त अवस्थामें हम उनके साथ कोई ऐसा द्रव्य मिला देते हैं जिससे कर्मकी उग्रता वा तीव्रता टूट जाती है। ऐसे द्रव्यको हीनकर्मकारक (मुजइफ़े अमल) कहते हैं जो सहायक (मुअइय्यन)के विपरीत हैं। उदाहरणत हम चाहें कि रोगीकी आँतें शुद्ध हो जायँ और विना निर्बलताके एक या दो मृदु और स्वाभाविक इजाबतें (मलोत्सर्ग) आ जायँ जिसको परिभाषामे तल्ईन (मृदुकरण) कहते है, परतु जो द्रव्य हमे उपलब्ध हो उससे अधिक विरेक और दौर्बल्यकी सभावना हो तो उक्त अवस्थामें वैद्यकीय नियमोंके अनुसार कभी ऐसे वीर्यवान् (क़वी) द्रव्यकी मात्रा घटा दी जाती है और कभी उसके साथ कोई अन्य स्तम्भी और सग्राही द्रव्य मिला दिया जाता है जिससे विरेचनीय औषधके अतिसरणकी शक्ति विघटित हो जाती है। इसी उद्देश्यका निरूपण शैख इस प्रकार करते हैं—"कभी-कभी हमारे पास एक उष्णताकारक अमिश्र द्रव्य होता है। किंतु हमें उससे अल्प उष्णता और उत्तापकी आवश्यकता है। उक्त अवस्थामें हमें इस बातकी आवश्यकता होती है कि हम उसके साथ कोई शीतल औषध मिला दें।" यह उष्णताकारक द्रव्य (दवा मुसख्खिन) उदाहरणस्वरूप लिखा गया है। इसी तरह विरेचन, मूत्रल, स्वेदन, प्रदाहजनन और विस्फोटजनन (मुनफ्फित) आदिका अनुमान करना चाहिये।

(८) औषधको चिरकारी वा मदप्रवेशक्षम (बतीउन्नुफूज) बनानेके लिये—व्याधिकी चिकित्सामे जिस प्रकार इस बातकी अनिवार्य आवश्यकता हुआ करती है, कि किसी द्रव्यकी शरीरमे प्रवेश करनेकी (कुव्वते नफ्फाजा)को तीव्र किया जाय, जिसका उल्लेख आगे आनेवाला है, उसी प्रकार इस बातकी भी आवश्यकता हुआ करती है, कि औषधिकी प्रवेशकारिणी शक्तिको, जो आवश्यकतासे अधिक है, मद किया जाय, जिसमे अभीष्ट अवयव तक उसके उपादान विलवसे अल्प पहुँचे। इसको इक्ताऽनफूज (औषधकी प्रवेशकारिणी शक्तिको मद कर देना) कहा जाता है। विद्वद्वर नफीसके कथनानुसार इसके यह दो भेद है–(१) इक्ताऽ जाती और (२) इक्ताऽ अरजी। इक्ताऽ जातीसे यह अभिप्रेत है, कि अन्य द्रव्य मिलाकर प्रत्यक्षतया प्रधान द्रव्यकी प्रवेशनीय शक्ति (कुव्वते नफफाजा)को मद कर दी जाय। इक्ताऽ अरजीसे यह अभिप्रेत है कि अन्य द्रव्य प्रत्यक्षतया प्रधान द्रव्य पर कोई प्रभाव न करे, अपितु शरीरमें पहुँचकर किसी शरीरावयवमें वह कोई ऐसा परिवर्तन उपस्थित कर दे, जिससे प्रधान द्रव्यके कार्यमे किंचित् बाधा उपस्थित हो जाय, और उसके शोषण और प्रवेशका क्रम (गतिविधि) किंचित् परिवर्तित हो जाय। प्रथम कर्म (इक्ताऽ जाती)के उदाहरण और उनके भावका यथावत् ग्रहण बहुत ही स्वाभाविक (बदीही) है। इसके लिये एक सर्वतत्र सिद्धात वा नियम स्थिर किया जा सकता है। सुतरा जब किसी आशुप्रवेशनीय वस्तुके साथ कोई मदप्रवेशनीय वस्तु मिला दी जायगी, तब उसकी प्रवेशनीय शक्ति (कुव्वते नुफूज)में निस्सन्देह अतर आ जायगा, और उस मदगतिके साहचर्य और मैत्रीके कारण उसे भी मथर गतिसे चलना पड़ेगा। यह ज्ञात है कि मद्य और शुक्त (सिरका) जलकी अपेक्षया आशुकारी है। इसलिये इन उभय वस्तुओकी प्रवेशकारिणी शक्ति जलके सयोगसे, मिश्रणके अनुपातके अनुसार अवश्य न्यून हो जायगी। बबूलका गोद, कतीरा और बहुश सान्द्र (गलीज) और पिच्छिल (लुआबी) पदार्थ जब अन्यान्य द्रव्योंके साथ समवेत होते हैं, जिनकी प्रवेशनीय शक्ति इन पैच्छिल्य (लुआबियत)से तीव्र होती है, तब प्रगट है कि इन द्रव्योंकी प्रवेशकारिणी शक्ति मद हो जाती है। अन्यान्य द्रव्योंकी भांति स्नेह द्रव्य (तैल आदि) भी तरलता वा सूक्ष्मता और सान्द्रता वा स्थिरता (लताफत और गिलज़त) केविचारसे विभिन्न श्रेणियोंमें विभक्त होते हैं। कपूर यदि एक सूक्ष्म तेल (स्नेह)का उदाहरण बन सकता है, तो एरण्ड तेल स्थूल (स्थिर) तेलका एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इन विभिन्न श्रेणीके अस्थिर-स्थिर (लतीफ और गलीज) तेलोको परस्पर मिलाया जायगा तो प्रगट है कि सूक्ष्म तेलकी प्रवेशनीय शक्ति उस मद एव शिथिल सहचर (स्थिर वा सान्द्र)के कारण कम हो जायगी। इसी उद्देश्यसे अनेक बार कपूर, सत पुदीना, सत मिश्रेया (जौहर बादियान), सत अजवायन जैसी सूक्ष्म वस्तुओंको जो तेलके भेदोंमेंसे है, अन्यान्य स्थूल या स्थिर (कसीफ व गलीज) तेलोंके साथ मिलाकर शरीर पर अभ्यग और मर्दन किया जाता है। इसी प्रकार कभी-कभी मोम, तेल और कैरूतीके साथ ऐसे सूक्ष्म तेल मिलाये जाते हैं जो दीर्घकाल पर्यंत शरीर पर स्थित रहते हैं[1], और मथर गतिसे शोषित होते रहते हैं। इस भावको भी इसी सिद्धातका द्योतक बताया जा सकता है कि सखिया-सेवनके उपरात या साथ-साथ यदि घृत, अंडेकी सफेदी बड़ी मात्रामे मिला दी जाय, तो सखियाके विपाक्त घटकोंके प्रवेशमें मदता और चिरकारिता उत्पन्न हो जाती है। इसी कारण कतिपय विषोंके उपचारमे इस तरहके उपायोका निर्देश किया जाता है। आहारके साथ या उसकी उपस्थितिमें कोई विपाक्त पदार्थ या कोई अन्य द्रव्य उपचारके उद्देश्यसे खिलाया जाय, तो उसके प्रवेशमें विलंब (चिरकारिता) उत्पन्न हो जाता है। इसका अतर्भाव भी उपर्युक्त नियमके वर्गमें हो सकता है।

द्वितीय कर्म (इक्ताऽ अरजी)—इस सिद्धातको हृदयगम करनेके पश्चात् द्वितीय कर्मका समझना सरल हो जाता है, कि प्रत्येक मूत्रल औषधि स्वेदल औषधिके कर्मको मद या वीर्यहीन अर्थात् निष्क्रिय कर देती है और इसके विपरीत प्रत्येक वमन द्रव्य विरेचन द्रव्यके कर्मको हीनवीर्य वा निष्क्रिय कर देता है। और इसके विपरीत, उक्त सिद्धान्तसे यह स्पष्टतया प्रगट है कि यदि हम किसी स्वेदन औषधिके कर्मको मद करना चाहें और उसके साथ किञ्चित् मूत्रल द्रव्य सन्निविष्ट कर दे, तो प्रगट है कि यथामिश्र स्वेदन द्रव्यका कर्म मद (चिरकारी) हो जायगा

1 मोम रोगन और क़ैरूतीके कारण।

और उसके वीर्यवान् (कार्यकारी) अवयव त्वचाकी ओर जितनी शीघ्र गतिसे प्रवेशाभिमुखी थे, उनकी उक्त गति बाधित हो जायगी। इसी प्रकार यदि हम किसी मूत्रल द्रव्यके कर्मको मद करनेके लिये किंचित् स्वेदन द्रव्य योजित कर दें तो सिद्ध है कि मूत्रल द्रव्यके वीर्यभाग जिस तीव्रताके साथ वृक्कोंकी ओर प्रवेश करनेकी क्षमता रखते थे, उसकी प्रवेशनीय शक्तिमें मदता आ जायगी। इसी उदाहरण पर विरेचन और वमन द्रव्यको अनुमित किया जा सकता है अर्थात् वमन हो जानेसे आँतोकी ओर विरेचनीय द्रव्यकी प्रवेशनीय शक्ति कम हो जाती है, जिससे विरेक कम आते हैं। इसी तरह दस्तोके जारी हो जानेसे वमन द्रव्यकी शक्ति विघटित हो जाती है और वमनकी सख्या और तीव्रतामें कमी आ जाती है। द्रव्योंका उक्त कर्म दोष विलोमकरण (इमाले मवाद्)के कर्मसे बहुत कुछ सादृश्य रखता है, जिससे दोषोका रुख न्यूनाधिक दूसरी ओर फिर जाया करता है। इसी तरह वमन और विरेचन द्रव्योके योगसे मूत्रल द्रव्योंका कर्म कमजोर हो जाया करता है, और मूत्रलके योगसे विरेचन द्रव्योंका।

(५) औषधको आशुप्रवेशनीय वा आशुकारी (सरीउन्नुफूज) बनाने और विलीन (हल) करनेके लिये बद्रका (अनुपान)—कतिपय औषधद्रव्य आशुप्रवेशनीय होते हैं या अकेले प्रवेशके अयोग्य वा प्रवेशाक्षम होते हैं। इसलिये ऐसे द्रव्योकी प्रवेशक्षमता (कुव्वते नुफूज)को यथेच्छ बढानेके लिये हम अन्य द्रव्य योजित कर दिया करते हैं। ऐसे द्रव्योको बद्रका[1] (रहनुमा—अनुपान) कहा जाता है। कोई-कोई औषधद्रव्य स्वस्थ त्वचामें बिलकुल प्रवेश नही करते या अत्यल्प प्रवेश करते है। परतु ऐसे द्रव्योंके साथ जब अन्य द्रव्य सम्मिलित कर दिये जाते हैं जिनमें प्रवेश करनेकी क्षमता पाई जाती है, तब वह बद्रका एव रहनुमा (पथप्रदर्शक) बनकर अपने साथ अन्य द्रव्योको भी भीतर पहुँचा देते हैं। हमारे चिकित्सासूत्र (उसूल इलाज) और योगौषध विषयक ग्रथोंमें ऐसे द्रव्य प्रचुरतासे उपलब्ध होते हैं जिनको किसी तेल या तैलीय स्नेहद्रव्योंके साथ मिलाकर त्वचापर लगाया जाता है। ऐसे द्रव्य तेल और चर्बी इत्यादिमें विलीनीभूत होकर उसके साथ भीतर शोषित हो जाया करते हैं[2]। अहिफेन और लुफाहके कतिपय परमोपादेय उपादान तेलमें विलीनीभूत हुआ करते हैं। इसी तरह कपूर स्नेहो और मद्यमें विलीन हुआ करता है।

शर्करा, लवण और क्षारके अधिकाश भेद जलमें विलीन हो जाया करते हैं। इसलिये उनको बहुधा जलके साथ मिलाकर विलयन रूपमें दिया जाता है। इसी तरह अन्यान्य द्रव्य विभिन्न अनुपातमें विभिन्न द्रव्योंमें विलेय होते है। "विलेयता (इन्हलाल)के प्रकरण"में किसी भाँति विस्तारपूर्वक इसके विषयमें बताया गया है। विद्वद्वर अलाउद्दीन कर्शी लिखते हैं—"कभी-कभी औषधद्रव्य मदप्रवेशक्षम वा चिरकारी (बतीउन्नुफूज) होता है, इसलिये इसके साथ ऐसे द्रव्यको योजित करनेकी आवश्यकता होती है जो उसे आशुकारी अर्थात् आशुप्रवेशनक्षम (सरीउन्नुफूज) बना दे, जिसकी यह दो सूरते हैं—(१) दूसरे द्रव्यके समवायमे इसके प्रवेशको शक्ति सामान्य रूपसे अभिवर्धित हो जाय और उसमें किसी अवयवविशेषका अनुबध (अपेक्षा) न हो।" उदाहरणत किसी प्रगाढ (गलीजुल् किवाम) और मदप्रवेश्य (बतीउन्नुफूज) वस्तुके साथ किसी सूक्ष्म (लतीफ) और प्रवेशनीय (मुनफ्फिज) वस्तुका मिला देना। (२) दूसरे द्रव्यके कारण किसी विशेष शरीरावयवकी ओर इसको प्रवेश करनेकी शक्ति तीव्र हो जाय या किसी विशेष अवयवकी ओर इसकी प्रवृत्ति बढ जाय। उदाहरणत मूत्रल द्रव्योके साथ तेलनीमक्खी (जरारीह)का सम्मिलित

---

१ यह बद्रहा (= सरक्षक, पथप्रदर्शक)का अरबीकृत है। वैद्यकीय परिभाषामें उस द्रव्यको कहते हैं, जो अन्य द्रव्य (औषध)के प्रभावको शरीरमें पहुँचाने और तीव्रतर करनेके लिए दिया जाय। पेशदारू (फा०)। विहिकल Vehicle (अ०)। आयुर्वेदमें इसे अनुपान—(अनु सह पश्चाद्वा पायते, इत्यनुपानम्) अथवा—योगवाही—कहना उचित है।

२ कतिपय द्रव्य इस प्रकारके भी हैं, जो अकेला जलमें या अन्य विलायक (मुहल्लिल)में विलीन नहीं होते, परतु जब उसके साथ कोई तीसरी चीज सम्मिलित कर दी जाती है, तब वह विलीन हो जाते है।

करना (नफीस)। जरारीह् (तेलनीमक्खी) पर्याप्त मूत्रल है। जब यह अन्य द्रव्योके साथ मिलाई जाती है, तब उनको वृक्कोकी ओर तीव्रताके साथ प्रवृत्त कर देती है।

(६) संसृष्ट व्याधियोके चिकित्सार्थ—जब शरीरमें विभिन्न कारणोसे कतिपय रोग संसृष्ट हो जाते हैं, तब प्रत्येक रोगके लिए भिन्न औषधिकी आवश्यकता होती है। परतु कोई ऐसा अमिश्र (स्वतत्र) द्रव्य उपलब्ध नही होता, जो अकेला रोगसमुदायका प्रतीकार कर सके। उक्त अवस्थामें प्रत्येक व्याधिको ध्यानमे रखकर योग-निर्माणकी आवश्यकता प्रतीत होती है। उदाहरणत प्रतिश्यायहर और ज्वरहर योगमें उभय रोगको नाशक औषधियाँ योजित की जाती है। या हमें कोई ऐसा द्रव्य प्राप्त होता है, जिसमें दो वीर्य पाये जाते है और प्रत्येक वीर्य संसृष्ट व्याधिमेंसे अलग-अलग व्याधिका प्रतीकार कर सकता है, परतु इन उभय वीर्योमेंसे एक वीर्य आवश्यकताके विचारसे बलवान् और द्वितीय वीर्य बलहीन होता है। उक्त अवस्थामें ऐसा द्रव्य मिलानेकी आवश्यकता होती है, जो हीनवीर्य शक्तिको यथेच्छ अभिवर्धित कर दे और बढी हुई शक्तिको यथेष्ट घटा दे। या हमें ऐसा द्रव्य मिलता है जिसके उभय वीर्य समान है। परन्तु संसृष्ट व्याधिका एक अवयव दूसरेसे बलवान् और प्रबल होता है। उक्त अवस्थामें इस बातकी आवश्यकता होती है, कि द्रव्यकी उस शक्तिको जो प्रबल व्याधिके प्रतीकारके लिए खडी होगी, अन्य द्रव्य मिलाकर अधिक बलवान् बना दिया जाय। द्रव्यगत वीर्यको घटाने और बढानेके विचारसे ये कर्म वस्तुत वही हैं, जो इससे पूर्वगत अध्यायोमें निरूपित किये गये हैं।

(७) औषधसंरक्षणार्थ—एक द्रव्यको दूसरे द्रव्यके साथ कभी इसलिये मिलाते है, कि वह उसको विकृत वा प्रकुपित होने अथवा हीनवीर्य होनेसे सुरक्षित रखे। मधु और शर्कराकी चाशनीमे द्रव्योके मिलानेमे एक लाभ यह भी होता है, जैसा कि फलखड (मुरब्बा), पुष्पखड (गुलकद) और शार्कर (शर्बत) तथा खमीरा इत्यादिके उदाहरणोमें पाया जाता है। नुतरा लवण और सिरका भी द्रव्योको सडने और बिगडनेसे रोकता है।

(८) परिमाणवृद्धिके लिए—प्राय तीव्र एव विष औषधोकी वैद्यकीय मात्रा इतनी अल्प होती है कि इन अत्यल्प मात्राओमें उक्त द्रव्यका विभाजन दुस्तर होता है। उदाहरणत कतिपय द्रव्योकी मात्रा एक चावल, अर्धचावल या चौथाई चावल होता है, और कतिपयकी मात्रा सरसोंके बराबर या इससे भी अल्पतर होती है। उक्त अवस्थामें इस बलवान् द्रव्यके साथ कोई सादा और निरापद द्रव्य मिला दिया जाता है, और मिलानेमें महान् सावधानी और यत्नसे काम लिया जाता है। इससे उक्त द्रव्यकी मात्रा बढ जाती है जिससे उसको विभिन्न भागोमें विभाजित करना सुगम हो जाता है। इस प्रकारके सादे द्रव्य शुष्क और श्लक्ष्ण चूर्णरूपमे भी होते हैं, उदाहरणत श्वेतसार (निशास्ता), खडी मिट्टी (गिल्ल कीमूलिया), शर्करा इत्यादि, और प्रवाही एव अर्ध सान्द्र भी होते हैं, उदाहरणत जल, मधु और शर्कराकी चाशनी इत्यादि।

(९) अन्यान्य प्रयोजनोके लिए—कभी-कभी एक द्रव्य अन्य द्रव्यके साथ उपर्युक्त प्रयोजनोके अतिरिक्त किसी ऐसे उद्देश्यको लेकर समवेत किया जाता है, जिसका अतर्भाव उपर्युक्त प्रकरणोमें नही हो सकता। उदाहरणत एक व्याधिमे अनेक उपक्रम—यद्यपि कभी-कभी व्याधि एकातिक और स्वतत्र होती है, तथापि उसके उपक्रम या उपचारमें अनेक नियम दृष्टिके समक्ष होते है और विभिन्न विषयोका ध्यान रखना पडता है। अर्थात् एक व्याधिमे अनेक उपक्रमोसे लाभ पहुँचता है जिसके लिये अनेक औषधद्रव्य समवेत करने पडते हैं। जैसे किसी दूषित ज्वर (अफूनी बुखार)की औषधिके साथ अन्त्रमार्दवकर (मुलय्यिन अम्आऽ) औषधोका सम्मिलित करना, जिसमें अन्त्र शुद्ध रहें और उनके मल निरतर निकलते रहें। इसी प्रकार ज्वरके औषधके साथ कभी स्वेदन या मूत्रल औषध आदि सम्मिलित किये जाते है, जिसमें विभिन्न मार्गोसे दोष आदिका शोधन वा निर्हरण हो। इसी प्रकार प्रसेक (नज्ला)की अवस्थामें प्रसेककी प्रधान औषधिके साथ कभी मृदुसारक या स्वेदन औषधियाँ योजित की जाती है।

एक व्याधिके अनेक उपद्रव—कभी रोग यद्यपि एक होता है, परतु उसके उपद्रव अनेक होते हैं। इसलिये प्रधान व्याधिके उपचारके साथ उन उपद्रवोको ध्यानमें रखते हुए विविध औषधियाँ समवेत की जाती हैं।

उदाहरणत प्रसेक (नज़ला) और ज्वरके साथ यदि तीव्र शिर शूल होता है, तो प्रसेक और ज्वरकी औषधियोंके साथ कभी वेदनास्थापक औषधियाँ सम्मिलित की जाती हैं। सुतरा प्रसेक इत्यादिके साथ यदि कठशूल होता है, तो प्रसेकके योग (नुसखा) में शर्वततूत बढा दिया जाता है। कभी-कभी दो या अधिक औषधियाँ इसलिये मिलाई जाती है कि उनके मिलनेसे परिवर्तन (तगय्युर व इस्तिहाला) उपस्थित होता है, और तुरत या न्यूनाधिक कालके पश्चात्, उनसे एक नवीन वस्तु उत्पन्न हो जाती है, जो हितकारी और उपयोगी हो जाती है।[1]

●

१ कतिपय द्रव्योंके परस्पर सयोगसे वाष्प उठते हैं, जो किसी विशेष प्रयोजनके लिए लाभकारी होते हैं। ऐसे द्रव्य जब मिलाकर प्रयुक्त किये जाते हैं, तब आमाशयके भीतर अधिक वाष्प उठनेसे भरपूर उद्गार आते हैं। कतिपय प्रकारके लवण और अम्लके मेलसे यही गुण प्रगट होता है। तीक्ष्ण सिरका जब भूमि पर गिरता है, तब वायुके बुद्बुद अधिक उत्पन्न हो जाते हैं। यह भी इसका एक उदाहरण है।

प्रकरण २

विरुद्ध कर्म और विरुद्ध औषध

(मुतनाकिज[1] आसार और मुतनाकिज़ अद्‌विया)—वाहिनियोंका प्रसारण और आकुंचन अर्थात् संग्रहण (तफ्‌तीह् व कब्ज)—रक्तस्रावजनन और रक्तस्तंभन, अतिसरण और मलसंग्रहण (कब्ज), स्वेदन और स्वेदापनयन, मूत्रप्रवर्तन और मूत्रसङ्ग, उष्णताजनन (तस्‌खीन) और दाहप्रशमन (तब्‌रीद), दोषोंको विलीन करना और संचय करना, दोषोंका पाकापाककरण (नुज्‌ज व फजाजत), हृदयकी गतिको तीव्र और मंद करना, ये समस्त कर्म एक दूसरेके विरोधी हैं। इसी प्रकारके कर्मोंको परिभाषामें आसारे मुतनाकिजा[2] कहा जाता है और उन परस्पर विरुद्ध औषधोंको जो इस प्रकारके विरुद्ध कर्म (मुतज़ाद आसार) एक दूसरेके मुकाबिलेमें उत्पन्न करते हैं, अद्‌विया मुतनाकिजा या अद्‌विया मुतज़ादा[3] (विरुद्ध औषध या कार्यविरुद्ध द्रव्य) कहा जाता है।

अम्लत्व और क्षारत्व (हुमूजत व बोरकिय्यत)—अम्लता (हुमूजत-तुर्शी)के विषयमें विद्वद्वर नफीसने शरह् असबाबमें लिखा है कि "यह क्षारत्व (बोरकिय्यत अर्थात् शोरिय्यत)का शत्रु है।" इससे यह विवक्षित है कि यह उभय पदार्थ भी इसमें परस्पर विरुद्ध एवं प्रत्यनीक (मुतज़ाद् व मुतनाकिज) हैं, जो परस्पर मिलकर और एक दूसरेके मिज़ाजको परिवर्तित कर तीव्रताको विघटित कर दिया करते हैं।[4]

उपर्युक्त विवरणसे यह प्रकट है कि यदि हम ऐसे विरुद्ध (मुतनाकिज) द्रव्योंको सम-प्रमाणमें परस्पर मिला दें, तो दोनोंका संगठन विघ्न हो जायगा और इष्ट कार्यकी उपलब्धि कदापि न होगी, न अम्ल पदार्थकी अम्लता स्थिर रहेगी, और न क्षार पदार्थकी क्षारीयता और न इन दोनोंके इष्ट गुणकर्म स्थिर रहेंगे। परन्तु जब ये उभय पदार्थ न्यूनाधिक होते हैं, तब दोनोंके परस्पर विरोधी (मुतकाबिल) उपादानकी शक्ति विघटित होकर प्रधान उपादानका गुण (बलके तरतमके प्राबल्यके अनुसार) शेष रह जाता है। योगकी कल्पना (तरकीब)में कभी-कभी स्वेच्छापूर्वक ऐसा किया जाता है जो न केवल उचित एवं समीचीन है, अपितु वैद्यकीय आवश्यकता उसकी अपेक्षा रखती है, और उक्त कल्पना (तरकीब)से बहुत ही लाभकारी परिणाम प्राप्त होते हैं।

कतिपय औषधद्रव्य ऐसे हैं कि वह जब अन्य औषधके साथ मिलाये जाते हैं, तब उनका स्वरूप (शक्ल व सूरत) विकृत हो जाता है, चाहे वर्ण परिवर्तित हो जाय या भौतिक स्थिति (किवाम) बदल जाय या स्वच्छताकी

---

१ यह उचित एवं प्रासंगिक प्रतीत होता है कि द्रव्ययोजना (तरकीब अद्‌विया)के नियमोंके साथ विरुद्ध औषधों (मुतनाकिज़ अद्‌विया)के नियम भी निरूपित किये जायँ, जिसमें योजना (तरकीब) और संयोग (इम्तिजाज)के समय यह बातें ध्यानमें रहें।

२ आयुर्वेदमें इसे 'विरुद्ध कार्य' या 'प्रत्यनीक कार्य' कहते हैं।

३ आयुर्वेदमें इसे 'कर्मविरुद्ध द्रव्य' कहते हैं।

४ आयुर्वेदमें इसे 'रसविरुद्ध द्रव्य' कहते हैं और इस प्रकारके विरोधको 'रसद्वन्द्व' या 'रसविरोध'। यथा—"अत ऊर्ध्वं रसद्वन्द्वानि रसतो वीर्यतो विपाकतश्च विरुद्धानि वक्ष्याम —तत्र अम्ललवणो रसत। (सु० सू० अ० २०)। क्षार अम्लके साथ मिलनेपर मधुरताको प्राप्त (उदासीन क्रियायुक्त हो जाना है—"क्षारो हि याति माधुर्यं शीघ्रमम्लोपसहित" (च० सू० स्थान)।

जगह अस्वच्छ या गदला हो जाय।[1] जिस प्रकार कतिपय औषधद्रव्य समवेत होकर अन्यान्य अविलेय औषधोंके विलीनीकरणमें सहायता करते हैं, उसी प्रकार कतिपय औषधद्रव्य मिलकर विलेय द्रव्योको अविलेय (तलस्थिती रासिब) रूपमें परिणत कर देते हैं, जिसके घटक तलमें स्थित हो जाते हैं। इसी प्रकार कतिपय द्रव्य अन्य द्रव्योंके साथ मिलनेकी क्षमता ही नही रखते है, उदाहरणत तेल और जल। इसी कारण जनसाधारणमें 'तेल पानीका वैर'की कहावत प्रचलित है। सुतरा जहरमोहरा, वशलोचन, लाख और राल जैसे द्रव्य जलमें बिलकुल विलीनीभूत नही होते।

ऊपर जो इतना विस्तारपूर्वक और स्पष्टीकरण करते हुए वर्णन किया गया है, उससे यह अभिप्रेत है कि योगके निर्माण (तरकीवे नुसखा)के समय इस तरहकी बातें ध्यानमें रहे, जिसमें चिकित्सक अपने मतव्यके अनुकूल और यथासभव योग (दवा)के उन दोपो और विकारों (वदनुमाई)का परिहार कर सके।

जहरमोहरा और वशलोचन जैसे अविलेय द्रव्योको यदि प्रवाही रूपमें देना हो तो लवावो (लुआवात)के साथ दे, जिसमें वे तलस्थित न हो सकें (निलवित रहे) और रालदार पदार्थों एव स्नेहोको शीरा (हलीब)के रूपमें दे।

विरोध (तनाकुज)के प्रकार (भेद)[2]—उपर्युक्त समस्त विपयोको यदि ममुख रखकर सक्षेप (समास) किया जाय, तो विरोध वा विरुद्ध पदार्थों (तनाकुज व नकीज़ात)के प्रथमत ये दो वडे भेद होते हैं—(१) तनाकुज़ फे'ली और (२) तनाकुज मिज़ाजी। इनमेंसे यहाँ प्रत्येकका वर्णन किया जाता है—(१) तनाकुजफे'लीके अनेक उदाहरण प्रारभमें दिये गये हैं। उदाहरणत वाहिनीविस्फारण और सग्रहण वा आकुचन (तक्सीफ़), अतिसरण और मलसग्रहण (कब्ज) इत्यादि। इस प्रकारके विरोधी (मुतनाकिज) द्रव्य—मुतनाकिजात फे'लिया[3] कहलाते हैं। इससे वह द्रव्य अभिप्रेत है जो परस्पर मिलकर द्रव्योकी भौतिक स्थिति (क़िवाम) और मिज़ाज पर कोई प्रभाव नही करते हैं, अपितु उनके शरीरके अग-प्रत्यगो पर होनेवाले कर्म एक दूसरेके विरुद्ध होते हैं इस प्रकारके दो या अधिक द्रव्य यदि मिलाकर दिये गये और दोनो समवल हैं, तो विलकुल कोई कर्म प्रगट नही होगा और यदि एक प्रवल और दूसरा पराभूत है तो प्रावल्यके तारतम्यके अनुसार प्रवल उपादानका प्रभाव किसी प्रकार प्रकाशित होगा। उक्त विवेचनके उपरात यह प्रकट है कि सिद्धाततः इस प्रकारके द्रव्योको मिलाना अनुचित है, क्योकि इससे कभी औपधीय कार्याल्पता (द्रव्योकी क्रियाओंकी हानि) और कभी विलकुल कार्याभाव अनिवार्य होता है। पर कभी-कभी द्रव्य—कर्मोंकी उग्रता कम करनेके लिये बुद्धि एव विवेकसे स्वेच्छापूर्वक अन्य विरोधी द्रव्य मिलाया जाता है। जैसे—जयपाल-जैसे विरेचनीय द्रव्यके साथ कोई सग्राही (काविज) द्रव्य मिला दिया जाय, जिससे जयपालके दोषोका किंचित् परिहार हो जाय, या उदाहरणस्वरूप किसी द्रव्यकी उष्णताकी तीक्ष्णता या शीतकी उग्रता कम करनेके लिये उसका विरोधी द्रव्य समाविष्ट कर दिया जाय।

---

१ आयुर्वेदमें इसे 'स्वरूपविरोध' और पाश्चात्त्य वैद्यकमें 'फिजिकल इनकम्पैटिविलिटी—Physical incompatibility' कह सकते हैं।

२ आयुर्वेदमें लिखा है—'देहधातुप्रत्यनीकभूतानि द्रव्याणि देहधातुभिर्विरोधमापद्यन्ते परस्परगुणविरुद्धानि कानिचित्, कानिचित् 'सयोगात्, सस्कारादपराणि, देशकालमात्रादिभिश्चापराणि।' (चरक सू० अ० २६)।

३ आयुर्वेदमें इसे 'कार्यविरोध' कहते है। आयुर्वेदके अनुमार रस, वीर्य और विपाकका जो विरोध है उसे कार्यविरोध कहते है—"रसवीर्य विपाकत विरुद्ध कार्यविरुद्ध।" पाश्चात्य वैद्यकमें इसे 'फिजियोलॉजिकल इन्कॅम्पैटिविलिटी—Physiological incompatibility' कहते हैं।

(२) तनाकुज मिज़ाजी[1]—इससे वह विरोध अभिप्रेत है, जिसमें मिश्रण और सगठनका सापेक्ष विचार किया जाता है। इसके पुन ये दो अवातर भेद हैं—(क) तनाकुज सूरी और (ख) तनाकुज़ कैफी। इसमें प्रथम (क) तनाकुज़ सूरी[2] से वास्तविक विरोध अभिप्रेत है, जिसमें मिलनेके उपरात द्रव्यका पूर्व स्वरूप (माहिय्यत) और जातिस्वरूप परिवर्तित हो जाता है और एक वा अधिक नवीन द्रव्य उत्पन्न हो जाते हैं। यह नवीन द्रव्य जो मिश्रणके उपरात प्राप्त होता है, शारीरिक कर्म (क्रिया)के विचारसे इसके भी ये तीन[3] अवातर भेद होते हैं—(१) यह नवीन द्रव्य शारीरिक कर्मके विचारसे हितकर एव उपादेय होता है। (२) शारीरिक कर्मके विचारसे अहितकर होता है। (३) शारीरिक कर्मके विचारसे यह नवीन द्रव्य न अहितकर होता है और न हितकर, अपितु सर्वथा हीनवीर्य होता है। इससे प्रगट है कि प्रथम भेदका उपयोग वैद्यकीय लाभके लिये स्वेच्छापूर्वक किया जाता है। जैसे कतिपय अम्लका क्षारके साथ मिलाना, जिससे वाष्प उद्भूत होते है, और वह आमाशयमें प्राप्त होकर वायुके पाचन और उत्सर्गमें सहायता करते हैं। परतु द्वितीय और तृतीय भेद सर्वथा वर्ज्य हैं। अस्तु, उनकी उपपत्ति वा मीमासा अनावश्यक है। प्रत्यक्ष (इहसाल) और अप्रत्यक्ष (अदम इहसाल) भेदसे तनाकुज सूरीके यह दो भेद हैं—एक (१) भेदसे ऐसा प्रत्यक्ष परिवर्तन उपस्थित होता है कि उससे जो नवीन द्रव्य बनता है, वह स्पष्टरूपसे ज्ञात वा प्रतीत होता अर्थात् प्रत्यक्षगम्य होता है। उदाहरणत विलीन अवयवका तलस्थित हो जाना या उससे प्रत्यक्ष रूपसे झाग और वाष्प उद्भूत होना (प्रत्यक्ष अनुभवगम्य विरोध—तनाकुज़ हिस्सी)। गैर मुतजानिस। द्वितीय (२) भेदमें जो परिवर्तन उपस्थित होता है, वह प्रत्यक्ष नही होता और चक्षुओंसे उसकी भौतिक स्थिति (किवाम)में कोई परिवर्तन दृष्टिगत नही होता, चाहे वर्णमें न्यूनाधिक परिवर्तन उत्पन्न हो जाय जो प्रत्येक अवस्थामें आवश्यक नही है (अप्रत्यक्ष विरोध वा सामान्य विरोध—तनाकुज़ खफी)। मुतजानिस तनाकुज सूरीका प्रसिद्ध उदाहरण अम्ल क्षारमें पाया जाता है अर्थात् अम्ल क्षारका शत्रु है और क्षार अम्ल का।

(ख) तनाकुज़ कैफीमें सगठनके उपरात कोई वास्तविक परिवर्तन नही होता अर्थात् उभय पदार्थोंके पूर्व मिज़ाज विघटित नही होते या दोनोमें मिलने और विलीन होनेकी क्षमता ही नही होती, जैसा कि तेल और पानीके उदाहरणमें निरूपण किया गया है, या ससर्गके पश्चात् अन्य विलेय द्रव्य अविलेय रूपमें परिणत हो जाते हैं। उदाहरणत विलीनीभूत मधुयष्टि (अस्लुस्सूस महलूल)में यदि अम्ल मिला दिया जाय, तो उसका स्वच्छ विलयन

---

१ आयुर्वेदमें 'तनाकुज मिज़ाजी'को 'सगठनविरोध' कहना चाहिये।

२ इसीको अधुना 'तनाकुज़ कीमियावी'की नव्यपरिभाषासे स्मरण करते हैं, जिसमें कारणद्रव्यों (अनासिर) का सगठन परिवर्तित हो जाता है।

३ सुश्रुतके अनुसार भी इसके इन तीन भेदोंका उल्लेख मिलता है—(१) एकातहितकर "सयोगतश्चैकान्तहितानि × × × भवन्ति।" अर्थात् जो सयोगसे सदैव हितकर (एकात हितकर) होते हैं। (२) एकात अहितकर, "सयोगतश्चैकान्ताहितानि × × भवन्ति।" सुश्रुतमें लिखा है कि दूसरे कुछ पदार्थ अन्य पदार्थोंके साथ मिलकर विषके समान हो जाते हैं, सयोगस्त्वपराणि विषतुल्यानि भवन्ति।" (सु० सू० अ० २०)। दो हितकर पदार्थोंका सयोग तब विषतुल्य हो सकता है, जब दोनोंके सयोगसे एक तीसरा पदार्थ बन जाय और जो शरीरके लिये अहितकर हो। ऐसे पदार्थोंको सयोगविरुद्ध (Chemically incompatible) पदार्थ कहते हैं। आयुर्वेदोक्त 'कर्मविरुद्ध (सस्कारविरुद्ध) और मानविरुद्ध द्रव्य' इसके भेद है। (३) हिताहित "सयोगतश्च हिताहितानि च भवन्ति।" अर्थात् सयोगसे जो कभी हितकर और कभी अहितकर होते हैं।

अस्वच्छ हो जाता है और उसका सत्व (जौहर) तलस्थित हो जाता है। लाख, राल, वंशलोचन इत्यादि जैसी अविलेय वस्तुओंके नियम ऊपर बताये जा चुके हैं, इनका इसी तनाकुज़ कैफीमें अंतर्भाव होता है।[1]

०

---

१ आयुर्वेदमें इसे 'स्वरूपविरोध' 'फिजिकल इन्कॉम्पैटिबिलिटी—Physical incompatibility' कहते हैं।

वक्तव्य—इन विरोधोंके अतिरिक्त चरकमें संपूर्ण विरोध निम्न प्रकारसे बतलाये हैं—

"यच्चापि देशकालाग्निमात्रासात्म्यानिलादिभि । संस्कारतोवीर्यतश्च कोष्ठावस्था क्रमैरपि ।। परिहारोपचाराभ्या पाकात् संयोगतोऽपि च । विरुद्ध तच्च न हित हृत्संपद्विधिभिश्चयत् ।।" (चरक सू० अ० २६)।

प्रकरण ३

सगठन और मिश्रणके विभिन्न नियम

मिश्रणके नियम–शेखके निम्नलिखित कथनोंसे विरोधी द्रव्य-सगठन (तरकीव)के नियम और, सगठनविकार (तरकीव मुफासिद) इत्यादि पर प्रकाश पडता है।

शैखुर्रईस (क़ानूनके द्वितीय ग्रथमें) 'अम्लताके नियम वा आदेश (अहकाम हमाज़त)'के प्रकरणमें लिखते हैं—"कभी मिश्रणके कारण कतिपय द्रव्योके कर्म तीव्र (क़वी) और कभी मद वा मिथ्या (बातिल या नाकिस) हो जाते हैं (जैसा कि विरुद्ध औषधोंके मिश्रण वा ससर्गके उपरात हुआ करता है) और कभी मिश्रणके कारण तज्जन्य दोनोंका परिहार हो जाता है।" पुन वे अन्य स्थल[1] पर लिखते हैं—"औषधद्रव्यके किसी-किसी सगठन (तराकीव)से लाभके स्थानमें हानि उत्पन्न हो जाती है (जिनके अनेक प्रकार है), और किसी सगठनसे औषधका गुण और कर्म बलवान् वा तीव्र हो जाता है।" अर्थात् कभी-कभी एक द्रव्यको अन्यके साथ समवेत (मुरक्कब) करनेसे न केवल उनके कर्म अपूर्ण या फलहीन हो जाते हैं, प्रत्युत नाना प्रकारके विकार लग जाते है। उदाहरणत इससे औषधका स्वरूप (शकल व सूरत) विकृत हो जाता है, या उससे परिवर्तनके उपरात एक ऐसा द्रव्य उत्पन्न हो जाता है जो गुण और कर्मके विचारसे अहितकर वा प्राणघातक हो सकता है। उदाहरणत मिश्रणके आदेशो वा नियमोंके उदाहरण शैखने इस तरह दिये हैं—"पहली सूरत (कर्मके बलवान् हो जाने)का उदाहरण यह है कि किसी द्रव्यमें विरेचनीय शक्ति हो, किंतु वह सहायक मुअइईन या मददगार की इसलिए अपेक्षा रखता हो कि उसके सत्व-(जौहर)में स्वभावत कोई प्रबल सहायक विद्यमान न हो (जैसा कि किसी-किसी समय अन्य द्रव्योमें पाया जाता है)। ऐसे द्रव्यके साथ जब सहायक द्रव्य मिला दिया जाता है, तब उसका कर्म प्रबल हो जाता है। उदाहरणत निशोथ जिसमें यद्यपि विरेचनीय शक्ति पायी जाती है, किंतु यह तीक्ष्णतारहित (ज़ईफुल हिद्दत) है, इसलिये यह तीव्र विलीनीकरणक्षम नही होती और इससे केवल वही द्रवीभूत कफ (रकीक बल्गम) उत्सर्गित हो जाता है, जो वहाँ वर्तमान होता है। परतु जब इसके साथ सोंठ मिला दिया जाता है, तब सोठकी तीक्ष्णताके साहचर्यसे बहुल प्रमाणमें लेसदार, शीतल और गाढे दोष (ख़ुजाजी खिला)को मलमार्गसे उत्सर्गित कर देता है और उससे उसकी विरेचनीय शक्तिकी गति तीव्र हो जाती है।" "इसी तरह अफ्तीमून एक मद विरेचन (वतीउल् इस्हाल) है, परतु इसके साथ जब काली-मिर्च जैसी तारल्यजनक (मुलत्तिफ) औषधियाँ मिला दी जाती हैं, तब शीघ्रतापूर्वक विरेक आने लग जाते हैं, क्योंकि कालीमिर्च अपनी विलीनीकरण शक्तिसे अफ्तीमूनकी सहायता करती है।" सुतरा जरावदमें सग्राही शक्ति यद्यपि बलवान् है, परतु इसके भीतर सग्राही शक्तिके साथ प्रमाथी शक्ति (कुव्वत मुफत्तेहा) भी है, जिससे उसका मलसग्रहण-कर्म (फेले कब्ज़) निर्बल हो जाता है। फिर भी इसके साथ गिलअरमनी या अकाकिया मिला दिया जाता है, तो उसकी सग्राहक शक्ति तीव्र एव बलवान् हो जाती है।" कभी एक द्रव्यके साथ इसलिये मिलाया जाता है कि वह औषधके प्रवेश (नुफूज़)में सहायता करे और बद्रका (अनुपान या पथ-प्रदर्शक) बने, जैसा कि केसरको गुलाब, कपूर और प्रवालमूल (बुसद)के साथ मिला दिया जाता है, जिसमें केसर[2] इन

---

१ कानूनका पचम ग्रथ, 'कैफिय्यते तरकीब'का अध्याय।

२ यह उदाहरण इसलिये अन्वेषणीय है कि इस कर्मकी उपपत्ति देना किंचित् दुरूह है कि केसर किस प्रकार इन औषधियोंको हृदय तक पहुँचाता है। कोई-कोई उत्तरकालीन चिकित्सक केसरकी श्रेष्ठताको अधिक महत्त्व नहीं देते और इसके गुणकर्मोंको अतिशयोक्तिपूर्ण और प्रवचनामय मानते है।

औषधियोको हृदय तक पहुँचा दे।" "कभी औषधके समवाय (आमेज़िस)का उद्देश्य उसके विरुद्ध (प्रवेशमें बाधा उपस्थित करना) होता है, जैसा कि प्रवेशनक्षम तारल्यजनक द्रव्यो (अदविया मुलत्तिफा नफ्फाज़ा)के साथ कभी मूलीका बीज इसलिये मिला दिया जाता है, कि यह द्रव्य यकृत्में प्रवेश करनेके उपरात इतनी देर तक रहें कि जो कर्म उनसे इष्ट हैं, वह उक्त कालमें पूरे हो जायँ, क्योकि जब यह द्रव्य अपनी सूक्ष्मता (लताफत)के कारण यकृत्में प्रवेश करते है, तब कर्मके उत्कर्षसे पूर्व शीघ्रतापूर्वक निकल जाते हैं। परतु मूलीके बीज चूँकि वामक हैं, और विरुद्धदिक् गति प्रदान करते हैं, इसलिये इन द्रव्योंके यकृत्से वाहिनियो (उरूक)की ओर जानेमें बाधा उपस्थितकर देते हैं।"

कर्माभाव (बुत्लान अमल)का उदाहरण—"उन द्रव्योका उदाहरण जिनके कर्म मिश्रणोपरात विघटित हो जाते हैं, यह है कि दो द्रव्य एक कर्म करते हो। किंतु दो वीर्योंसे जो एक दूसरेकी अपेक्षया विरुद्ध हों या विरुद्धो-पक्रम हो, ऐसे दो द्रव्य जब एकत्र होगे, तब दो बातोंसे रिक्त नही होगे। यदि इनमेंसे एकका कर्म दूसरेसे प्रथम होगा, तो इनका कुछ कार्य हो सकेगा और यदि इन दोनो के कर्म पूर्वापर न हुए, प्रत्युत एक साथ हुए तो दोनो एक दूसरेके कर्ममें बाधा उपस्थित करेंगे। उदाहरणत वनफ्शा और हृडको कल्पनाकर लिया समेटकर विरेक लाती जाय, वनफ्शा मृदुरेचक है (अर्थात् वनफ्शा दोषको मृदु करके विरेक लाता है) और हृड दोषोको निचोडकर और (मुसहिल बिल् असर वत्तक्सीफ) है। यह दोनो द्रव्य यदि एक साथ शरीरमें प्राप्त होगे, तो दोनोका कर्म मिथ्या हो जायगा। सुतरा यदि प्रथम हृड खिलाई गई, उसके अनतर वनफ्शा, तो भी किसी एकका कार्य प्रगट नही होगा। परतु यदि प्रथम वनफ्शा खिलाया गया, जिसने पहुँचकर दोषको मृदु कर दिया और उसके पश्चात् हृड प्राप्त हुआ, जिसने निचोडनेका कार्य किया तो उक्त कर्म प्रबलतर हो जायगा।"

कर्मके परिष्कार (इस्लाह)का उदाहरण—"तीसरी वस्तु दोषरिहार (इसलाह मजर्रत) का उदाहरण एलुआ, कतीरा और गुग्गुल हैं। एलुआ (सिब्र) विरेचन है और आँतोका शोधन करता है, परतु वह आँतोंमें रगड़ (सहज्ज) और खराश उत्पन्न कर देता है और वाहिनियो (रगो)के मुख खोल देता (जिससे रक्तस्राव हो जाता) है, परतु कतीरा लेस पैदा करनेवाला (मुगर्री) है और गुग्गुल सग्राही है। जब एलुआके साथ कतीरा और गुग्गुल मिला दिया जाता है जब एलुआसे आँतोंमें जो खराश उत्पन्न होती है उसे कतीरा अपने लेसके द्वारा चिकना कर देता है और गुग्गुल स्रोतोके मुँहको बलवान् (कवी) कर देता है, जिससे शाति लाभ होती है और एलुआजन्य दोष दूर हो जाते हैं।" (शैखुर्रईस)के उक्त कथनोमें यद्यपि कतिपय विषय अन्वेषणीय एव विचारणीय हैं, तथापि समष्टि रूपसे उनके कथनोंमें बहुश वैद्यकीय उद्देश्यो (मतालिब)का अतर्भाव होता है। (कुल्लियात अदविया)।

•

प्रकरण ४

सयोग सिद्धान्त या योग विज्ञान

(उसूल तरकीब)

आवश्यकता पड़ने पर कतिपय औषधद्रव्य किस तरह परस्पर संसृष्ट (मुरक्कब) किये जाते हैं और सयोग (तरकीब)की दशामें उनके परिमाण क्या रखे जाते हैं ? इसको शैखुर्रईसने एक उदाहरणमें समझाया है "यदि तुम्हें किसी उपक्रममें चार आवश्यकताएँ अपेक्षित हों और तुम्हें कोई ऐसा अमिश्र या असंसृष्ट द्रव्य प्राप्त न हो, जिससे तुम्हारी चारों आवश्यकताएँ पूरी होती हों, इसलिए तुम्हें कृत्रिम रूपसे चार अमिश्र द्रव्योंको संसृष्ट करना पड़े—उदाहरणार्थ विरेकके लिए तुम्हें सकमूनिया, इन्द्रायनका गूदा, एलुआ और निशोथ चारोंकी आवश्यकता है। इसलिए तुम्हें कृत्रिम रूपसे चार अमिश्र द्रव्योंको संसृष्ट करना पड़े—उदाहरणार्थ विरेकके लिए तुम्हें सकमूनिया, इन्द्रायनका गूदा, एलुआ और निशोथ इन चारोंकी आवश्यकता है। इसलिए तुमने चाहा कि इन चारोंको एकत्र करके अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये एक सर्वांगपूर्ण योग या कल्प बना लिया जाय। उस समय तुम्हें यह विचार करना चाहिये कि उनकी और उनके कर्मकी आवश्यकता कितनी है। यदि चारोंकी आवश्यकता बराबर-बराबर हो और उस अवस्थामें जबकि ये चार हैं, तो प्रत्येककी वैद्यकीय मात्राकी चौथाई ली जाय और सबको मिश्रित कर लिया जाय। यदि चारोंकी आवश्यकता समान न हो, प्रत्युत किसीकी आवश्यकता अधिक हो और किसीकी कम, तो अपनी बुद्धिमत्ता, विवेक और चिंतनाशक्तिके प्रयत्नसे प्रत्येक द्रव्यके कर्मकी आवश्यकताका अनुमान स्थिर किया जाय और प्रत्येक द्रव्यकी मात्रा प्रयोजनानुसार ग्रहणकी जाय अर्थात् प्रयोजनके अनुसार उन चारोंमेंसे किसी द्रव्यकी मात्रा कम की जाय और कोई द्रव्य बढ़ा लिये जायें। इसके पश्चात् सबको संसृष्ट (मुरक्कब) कर लिया जाय।" इस सयोगमें चारकी संख्या उदाहरणस्वरूप ली गई है, वरन् यदि द्रव्य तीन होंगे और सबके प्रयोजन समान, तो हर द्रव्य की मात्रा तिहाई ली जायगी। इसी तरह यदि औषधद्रव्य छ होंगे तो सबमें से छठवाँ भाग ग्रहण किया जाय।

संसृष्ट द्रव्यों या योगों (मुरक्कबात)मे प्रधान[1] (असल) वा आधार (अमूद)—शैख लिखते हैं, "योगोंमें (१) कुछ औषधद्रव्य अस्ल व अमूद (जुज्व आजम) होते हैं (जो वस्तुत योगमें कार्मुक—शामिल होते हैं और जिनका कर्म द्रव्यकी आत्मासे—विज्ञात अभीष्ट होता है)। यदि ये योगमेंसे पृथक् कर दिये जायें, तो सिरेसे योगका गुण और कर्म ही निरर्थक हो जाता है, उदाहरणत तिर्याकमें सर्पमांस और इयारिज फैंकरामें एलुआ (सिब्र) या इयारिज लूगाज़ियामें खर्बक।" (२) "कुछ औषधद्रव्य इस प्रकारके अनावश्यक होते हैं कि योगोंसे उनको (बिना किसी महान् अनिष्ट के) पृथक् किया जा सकता है या उनके प्रतिनिधिस्वरूप अन्य औषधि डाली जा सकती है या उनकी मात्रामें न्यूनाधिकता की जा सकती है।" (३) "कुछ औषधद्रव्य इस प्रकारके होते हैं कि यदि उन्हें योगमें बढ़ा लिया जाय, तो वह अनिष्टका कारण बन जाते हैं। उदाहरणार्थ यदि तिर्याकमें भिलावाँ (बिलादुर) डाल दिया जाय, तो औषधियोंको प्रधानतया सर्पमांसको विकृत कर देता है।" (४) "कुछ औषधद्रव्य इस प्रकारके होते हैं कि यदि वह योगमें बढ़ा दिये जायें, तो कोई हानि न उत्पन्न करें। उदाहरणार्थ तिर्याकमें यदि जायफल बढ़ा दिया जाय, तो यह कोई ऐसा बड़ा अपराध या दोष नहीं है।"

---

१ योगोंमें द्रव्यकी प्रधानता—च० कल्प १२ अ० ४४-४९।

२ (अमूदका बहुव० उमुद = खंभा) स्तम।

सयोग या योजना (तरकीब)के आशीर्वाद—कतिपय हितकर गुणकर्म सयोगोपरात केवल योजना या सगठनके आशीर्वाद स्वरूप सर्वथा नवीन उत्पन्न हो जाते हैं, जो उनके कार्यद्रव्यो (मुफरदात)में जो वस्तुत योगके उपादान (समवायीकारण) हैं, कदापि पाये नही जाते। इस रहस्य वा सत्यका निरूपण शैखुर्रईसने इस प्रकार किया है "यह ज्ञात रहे कि तिर्याक जैसी कतिपय हितकारी औषधियो के कुछ गुण-कर्म उनके उपादानो अर्थात् कार्यद्रव्यो (मुफरदात)के विचारसे होते हैं और कुछ गुण-कर्म (आसार व आमाल) उनके जातिस्वरूप (सूरते नौइय्या)के कारण होते है (जो योग वा मुरक्कबमें योजना वा तरकीव और सयोगके उपरात उत्पन्न हो जाता है)। इसी जातिस्वरूपकी प्राप्तिके लिए एक निश्चित काल तक तिर्याकके उपादानोको खमीर (सधान) किया जाता है जिसमें इस नूतन प्रकृतिके कारण तिर्याकके उपादानोमें नवीन गुण-कर्म और वीर्य (कुवा) खीचकर आ जायें, जो कभी-कभी कार्यद्रव्यो (मुफरदात)के गुणकर्मोंसे बढकर होते हैं। इसलिये उन लोगोकी बातो पर कान न धरना चाहिये जो इस तरह कहा करते है कि, "तिर्याकका यह कार्य सुबुलके कारण करता है और यह कार्य मुर्र (मक्की)के कारण निष्पन्न करता है।" प्रत्युत सत्य यह है कि उसके कार्यकी पद्धति (सूरत) वही है जिसका ऊपर वर्णन किया गया (अर्थात् वह अपनी नूतन प्रकृतिके कारण कार्य करता है)। तिर्याकमें गुणकर्मोंके विचारसे प्रधान, मूल वा स्तभ (अस्ल, अमूद और सुतून) तिर्याकका जातिस्वरूप (सूरतेनौइय्या) है, जो सगठनके उपरात अकस्मात् उत्पन्न हो गया और प्रयोग एव परीक्षण (तजरिबा)से भव्य एव उपादेय सिद्ध हुआ है। इसके उक्त गुण-कर्म क्यो है और इसके जाति-स्वरूपका उनके गुणकर्मोंसे क्या सवध है, यह स्पष्ट रूपसे बताना और समझाना हमारे लिये असभव है।"

व्यवस्थापत्र वा योग (नुसखा)के उपादान—नुसखा (व्यवस्थापत्र)को अरबीमें तज़्किरा भी कहा जाता है। नुसखा उस कागजको कहा जाता है, जिस पर औषधके उपादान सेवनविधिके सहित लिखे होते हैं। उपर्युक्त वर्णनो (ससृष्टाससृष्टभेषजोपचार और सयोगके नियम)से प्रकट है कि असंसृष्ट भेषजोपचारकी दशामें नुसखा (व्यवस्था-पत्र)में केवल एक अवयव (जुज्व) हुआ करता है, जिसके साथ बहुधा कोई सामान्य अनुपान (बद्रका) भी होता है। उदाहरणत प्रधान औषधके साथ जल, दूध, शर्करा और मधु इत्यादि। ऐसे व्यवस्थापत्र (नुसखा) सादा (साधारण) कहलाते हैं, जो वैद्यके अभ्यासकी सपूर्णता और कुशलता पर निर्भर हैं, परन्तु प्रत्येक व्याधि और प्रत्येक अवस्थामें सादगीकी यह सूरत सरल नही और न प्रत्येक वैद्य इसका सहजमें दावा कर सकता है, जैसा कि गत अध्यायोमें वर्णन किया गया है। इसी तरह ससृष्टौषधोपचारकी दशामें नुसखाके अवयव (अज्ज़ा) दो और इससे अधिक होते हैं, परतु नुसखाके अवयव चाहे सहस्र हों, समस्त औषधियोका अतर्भाव केवल चार शीर्षको वा प्रकरणोमें हो जायगा अर्थात् कोई औषध इन शीर्षक-चतुष्टयसे वहिर्भूत न होगा। हाँ, यह सभव है कि इन चारोमेंसे केवल दो प्रकारकी ओषधियाँ हो या तीन प्रकारकी या चारो प्रकार की। उदाहरणत प्रधान औषधके साथ केवल अनुपान वा बद्रका हो या निवारण हो या सहायक मुअय्यनीय्यन) हो।

१ **नुसखाके प्रधान वीर्यवान् अवयव** (असली अज्ज़ाऽमुवस्सिरा) जिनको शैखने अस्ल व अमूद नाम दिया है और जिसके पृथक् करनेसे नुसखाका वास्तविक लाभ निरर्थक हो जाता है। उदाहरणत इयारिज फैक्रामें एलुआ। इसको आयुर्वेदमें प्रधान द्रव्य कहते है।[1]

२ **सहायक औषध**[2] (दवाइन, मुअइय्यन-मुआविन, मुमिद्द व मुसाइद फेल)—जैसा कि शैख ने कहा है कि कभी-कभी नुसखामें ऐसे द्रव्य मिलाये जाते है, जिनसे प्रधान औषधका कर्म बलवान् हो जाता है। उदाहरणत

---

१ चरक कहते है—"यद्धि येन प्रधानेन द्रव्य समुपसृज्यते। तत्सज्ञक स सयोगो भवतीति विनि-श्चितम्॥" (च० कल्प० अ० १२—श्लो० ४६)।

२ इसको आयुर्वेदमें अप्रधान वा गौण द्रव्य कहते हैं—"फलादीना प्रधानाना गुणभूता सुरादय'। ते हि तान्यनुवर्तंते मनुजेंद्रमितेवरे॥" (च० कल्प० अ० १२ श्लो० ४७)।

निशोथके साथ सोठका खिलाना। (३) दोपपरिहारकर्ता औषध (दवा मुसलेह्)[1]—जिससे योग (मुरक्कब नुसखा)में किसी अहितकर अवयवके दोपका परिहार लक्षित होता है। उदाहरणत एलुआके साथ कतीरा और गुग्गुलका मिलाना। इसी वर्गमें वह औषधियाँ भी अतर्भूत हैं जिनसे द्रव्यगत रस, गध और स्वरूप इत्यादिके दोपोका परिहार किया जाता है। (४) वद्रका वा अनुपान—जो औपधके विलीनीभवन (हल) और प्रवेशमें मार्गदर्शकका काम करता है। उदाहरणत अर्क या जलमें किसी ओपधिको विलीन करके खाना। यदि मूल (अस्ल व अमूद)के साथ केवल कोई सामान्य (सादा) अनुपान हो, तो उसे अससृष्ट (मुफ्रद) नुसखा कहा जायगा या मुरक्कब ? मूल परिभापाके शब्दोंको यदि देखा जाय तो ऐसे सादा नुसखाको ससृष्ट (मुरक्कव) ही कहना चाहिये, परतु साधारणरूपसे उसको सादा और मुफ्रद नुसखा भी कह दिया जाता है और इसकी अधिक परवाह नही की जाती और न इसमें व्यवहारत अधिक लाभ है। इस शाब्दिक एव पारिभापिक विवादमें हमें अधिक पडनेकी आवश्यकता नही। ऐसे नुसखाको चाहे अससृष्ट (मुफ्रद) कह दिया जाय या ससृष्ट (मुरक्कब) उसमें अत्यधिक अतर नही है। शारीरिक कर्मोका जहाँ तक सबध है, ऐसे नुसखाको अससृष्ट (मुफ्रद) ही कहा जायगा, क्योकि वीर्यवान् भाग (जुज्वमुवस्सिर) इस नुसखामें एक ही है जिसके साथ हानि-लाभके समस्त नियम आबद्ध हैं और दूसरी वस्तु सादर स्वीकार की गयी है जिसका सबध औपधके इष्ट कर्मसे कुछ भी नही है। उदाहरणस्वरूप विरेचनार्थ सनायको दूधमें पकाकर पिलाया गया, तो प्रगट है कि यदि विरेक आयेंगे, तो सनायके कारण आयेंगे और उदरमे इस ससृष्ट (मुरक्कब) नुसखासे यदि मरोड पैदा होगी तो वह सनाय ही के कारण होगी और दोपनिवारण और उपचारके समय सनाय ही का विचार किया जायगा। इस उदाहरणमें यदि यह सदेह किया जाय कि सभव है कि सनायके विरेकमें दूध भी कुछ सहायता करता हो, तो मैं इस प्रसगगत प्रश्नको अधिक विस्तार नही दूँगा। इस उदाहरणके स्थानमें अन्य सहस्रश उदाहरण वर्तमान हैं। उदाहरणत उपर्युक्त उदाहरणसे दूधको पृथक् कर दिया जाय और सनायको दूधमें उबालनेके स्थानमें उसे जलमें उबाला जाय, तो उक्त सदेह भी निवृत्त हो जाता है।

व्यवस्थापत्र लिखनेके नियम (दस्तूर किताबत)—हमारे यूनानी वैद्योकी यह सामान्य परिपाटी है कि नुसखा (व्यवस्थापत्र)के मध्यमें 'होवश्शाफी'[2] या इसीका कोई परिवर्तित रूप लिखा करते हैं, जो यूनानी वैद्यकी एक परिपाटी-सी बन गई है। इसके पश्चात् मात्रासहित औषधके उपादान और इसके उपरात औषध-सेवनविधि और आवश्यक आदेश लिखे जाते हैं, जो प्राय फारसी भापा एव फारसी लिपिमें होते हैं। परतु अत्यधिक सुविधाके विचारसे अब कुछ लोग उर्दूमें भी लिखने लग गये है। अतमें चिकित्सकका हस्ताक्षर, तिथि एव तारीख होती है। इनके सिवाय कभी नुसखा पर रोगीका नाम भी लिखा जाता है जिसमें विभिन्न रोगियोंके नुसखोंमें (विशेपतया एक घरके रोगियोंमें) सदेह न रहे। (कुल्लियात अद्विया)।

●

---

१ आयुर्वेदके मतसे सयोगमें प्रधान और अप्रधान द्रव्योंके परस्पर विरुद्ध वीर्य होनेपर भी अप्रधान द्रव्योंका वीर्य प्रधान द्रव्यके वीर्यका बाधक नहीं होता। यदि दोनोंका वीर्य तुल्य हों तो वह सयोग क्रियामें अधिक समर्थ होता है। कहा है—"विरुद्ध वीर्यमप्येषा प्रधानानामबाधकम्। अधिक तुल्यवीर्येऽपि क्रियासामर्थ्यमिष्यते॥ (च० कल्प० अ० १२ श्लो० ४८)। 'समानवीर्यन्त्वधिक क्रिया सामान्यमिष्यत' ग०। आयुर्वेदमतेन विरुद्धवीर्यद्रव्यसयोग हेतु—'इष्टवर्णरसस्पर्श गन्धार्थं प्रति चामयम्। अतो विरुद्धवीर्याणा प्रयोग इति निश्चितम्॥' (च० कल्प० १२ अ० श्लो० ४९)।

२ इस अरबी पद का अर्थ है—"ईश्वरही आरोग्य देनेवाला है।"

परिभाषा और भेषजकल्पना-खंड

कल्पनारूपविज्ञानीय अध्याय १

कल्पों के नाम और रूप

ससार के समस्त द्रव्य इन तीन अवस्थाओ या रूपो (किवाम)मे पाये जाते हैं—(१) पार्थिव वा ठोस (जामिद), (२) जलीय वा तरल (सय्याल) और (३) वायव्य (हवाई)। शेप समस्त अवस्थाएँ इन्हीकी विविध श्रेणियाँ हैं। सुतरा ससृष्ट और असमृष्ट (स्वतत्र) औषधियाँ (कल्प) भी इन्ही तीनो अवस्थाओमें पाई जाती है। रही अन्य माध्यमिक अवस्थाएँ, वह अधिकतया इन्हींके विभिन्न मिश्रणोसे प्राप्त हुआ करती हैं। चाहे उनमेंसे दो अवस्थाओकी प्राप्ति हो अथवा तीनो अवस्थाओंकी। उदाहरणत जब तरल और ठोस द्रव परस्पर मिश्रीभूत हो जाते है तब उनके तारतम्य के अनुसार एक माध्यमिक रूप प्राप्त हो जाता है जिसको न ठोस कहा जा सकता है और न तरल। उक्त अवस्थामे उनको 'अर्धसाद्र' या "अर्धतरल" कहा जाता है। उनमें कभी साद्रत्व (गिल्ज़त) प्रधान होनेके कारण साद्रके समीप (आसन्नसाद्र) होते हैं या तारल्य (रिक्कत) प्रधान होनेके कारण वे तरलके समीप होते हैं।

साद्र औषध (ठोस कल्प) के विभिन्न रूप—हब्ब (गोली), बुदुका (बडी गोली), कुर्स (टिकिया), शाफ़ा (वर्ति), हमूल (फलवर्ति), फिर्जजा (योनिवर्ति), फतीला, कबूस, बाह्य उपयोगकी टिकिया या रोटी, सफूफ (चूर्ण), कुश्तामस्फूफ (चूर्ण की हुई भस्म), सनून (दत-मजन), मजूग, बरूद, कुह्ल (चूर्णांजन), काजल (कज्जल), ज़रूर (अवचूर्णन), नफ़ूख़ (प्रधमननस्य), अतूस (नस्य-सुँघनी), गाजा (उबटना), गालिया (अरगजा), नौरा (लोमशातनौषध), मुरब्बा (फलखड), गुलकद (पुष्पखड), रुब्बखुश्क, हलवाए खुश्क।

आसन्नसाद्र[1] और अर्धसाद्र औषधियाँ (कल्पनाएँ)—माजून, अत्रीफल (त्रिफला रसायन), अनोशदारू (धात्रीरसायन), जुवारिस (खाडव), दवाउल्मिस्क, मुफर्रेह, लुबूब, याकूती, बरशाशा, ज़रऊनी, खमीरा, हलवातर, लऊक (लेह), उसारा व रुब्ब (जो घन वा साद्र रूपमें न हो), हरीरा (हसूऽ), फालूदा, मरहम, कैरूती, मोम रोगन, ज़िमाद (लेप), लसूक, लजूक, लतूख, पट्टी।

तरल वा जलीय (सय्याल-माइअ) कल्पोके विविध रूप—जल, रस या अर्क (माइय्यात), दहीका तोड (माउल्जुब्न), जुल्लाव, मधुशार्कर (माउलअस्ल), मासार्क (माउल्लह्म-आवगोश्त) माउश्शईर (यवमड), उसारात सय्याल (प्रवाही रसक्रिया), माउल्बकूल[2], माउल्फवाके[3] शूरबा (मरक्का)। अर्क (अर्कियात)—माउल्लहम या

---

१ आसन्नसाद्र और अर्धसाद्र औषधियों की गणना एक साथ इसलिए की गयी कि उनकी भौतिक स्थिति (किवाम)की साद्रता और तरलतामें विभिन्न कारणोंमे न्यूनाधिक अतर और भेद उत्पन्न हो जाया करता है।

२ माउल्बुकूलका अर्थ हरी वनस्पतियोंका रस (अरबी 'माऽ = जल', बुकूल, बकूल का बहुव० = सब्जी, तरकारी) है जैसे—हरे मकोयकी पत्तीका रस, हरी कासनीकी पत्तीका रस।

३. माउल्फवाके का अर्थ फलोंका रस (अ० माऽ, फवाकेह्, फाकिह का बहुव० = मेवा, फल) है, जैसे—अनारका रस, तरबूजका पानी, ककडी या खरबूजाका रस, कद्दूका रस।

मामार्थ (अर्क रूपमें परिस्रुत किया हुआ), रूह (उदाहरणत रूह दागर, रूह केवड़ा, रूह गुलाब इत्यादि), मय, दर-वहरा (आसव), शुराब (नबीज) या अरिष्ट। शर्बत (शार्कर कल्प)—दियाकूजा, सिकंजबीन (शुक्तमधु), खल्ल (सिरका), आबदात—मुर्बा (पाक), जवारिश—सर्वांग (पवार), माउल्‌जगूल (मूलयवाग), माउल्‌बजूर (बीज क्वाथ), गेसांदा (फाण्ट), नकीय (नुगतर)। दोना (हरीव), लुआब, मज़ीज (मिश्रण), जुलाल (शीतकषायभेद), महलूल (विलयन, घोल), तुरूख (परिषेक), गरूप, जरूर (पाचन), कतूर (आश्च्योतन)। वजूर (कठपूरण), जरूक (पिचकारी), नज़ल सन्वाल (नस्य), नश्तर, निना (पतला लेप), मगम (अभ्यंगार्थ तेल), मसूह, दलूक, आवजन, नरूर। कद्हान (रोगन या स्नेह)-(तैल कल्प)। मज्मजा (कुल्लोकी औषधि—गण्डूल), गरगरा (कवल), निजाव (केशकल्प), सुनन (सुर्यांजन), हुक्ना (वस्ति)।

वाष्पीय या वायव्यरूप कल्प—बुखूर (धूप), इन्किबाव (ऊष्मस्वेद, बफारा), शमूम (आघ्राण), लख-लखा, नतूर[1]।

हब्ब (गोली)—अरबी हब्ब (बहुव० हबूब) शब्दका तात्पर्य 'दाना' या 'बीज' है। परन्तु परिभाषा में उन ठोस या अर्धठोस कल्प को कहते हैं, जो कृत्रिम रूपसे गोल-सा बनाया जाता है, चाहे उसके उपादान अनेक हों या केवल एक। आयतन और परिमाणके विचारसे गोलियाँ (हब्ब) छोटी-बड़ी होती हैं, उदाहरणत बाजरे, मूँग, चना, मटर या झड़बेरीके प्रमाणकी। यदि गोलियाँ रीठेके बराबर हों, तो उन्हे बुंदुक कहा जाता है। अरबीमें 'बुंदुक' का अर्थ 'गोला' है, और इसका बहुवचन 'बनादिक' है। पर्य्या०—गुटिका, वटिका, वटी—सं०। गोली—हिं०, प०, उर्दू। हब—फा०। पिल Pill (बहुव० पिल्स Pills)—अं०। पिल्युला Pilula (बहुव० पिल्युली—Pilulae)—लै०। बड़ी गोलीके पर्य्या०—बन्दूक—अ०। मोदक—सं०। बोलस Bolus—अं०।

प्रयोजन—गोली या टिकिया (कुर्स) रूपमें कल्प निर्माण करनेके कतिपय निम्न प्रयोजन हैं —(१) गोलीका बिना चबाये गलेके नीचे उतारना सरल होता है। (२) औषधके कुस्वादसे रसनेन्द्रिय बहुत करके प्रभावित नहीं होने पाती। (३) इन्हें नियत मात्रामें रोगियोंको बाटनेमें सुविधा होती है और हर समय नापने-तोलनेकी झंझट नहीं करनी पड़ती।

कुर्स[2] (टिकिया)—'कुर्स' या टिकियाके नियम और प्रयोजन गोलियोंके अनुरूप हैं, केवल रूपका अंतर है। 'हब्ब' गोल होती है, और 'अक्रास' टिकियायें रूपमें चपटी, जिनका मुखमें धारण करना, जैसा कि कभी-कभी चूसनेके अभिप्रायसे मुखमें धारण की जाती है, अधिक सुकर होता है। चूँकि यंत्रोंके द्वारा कुर्स-निर्माण गोलियो-की अपेक्षा सहज है, इसलिये अधुना अक्रासका प्रचलन दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है, और गोलियोंको कुर्स (टिकिया) रूपमें परिणत किया जा रहा है।

वक्तव्य—छोटी टिकिया (अक्रास सगीरा)को अँगरेजीमें टॅब्लेट—Tablet एवं टब्लाइड—Tabloid और लेटिनमें टॅबेला—Tabella कहते हैं। ट्रॉक—Troch लेटिन संज्ञाका व्यवहार बड़ी टिकियाके अर्थमें होता है। ट्रॉकिस्कस—Trochiscus लेटिन और लॉजेंज—Lozeng अँगरेजी शब्दका धात्वर्थ लौज (बहुव० लौज़ात—अ०) अर्थात् बादामनुमा टिकिया है। परन्तु संप्रति इनका व्यवहार भी गोल या अंडाकार टिकियोंके अर्थमें होता है। लौज़ीना फारसीमें बादामके हलुएको कहते हैं। 'लौजीनज' इसीकी अरबीकृत संज्ञा है, और इस लौजीनजसे ही अँगरेजी 'लोजज' या 'लॉजज' संज्ञा व्युत्पन्न है। कुर्स गोल और चपटी बनाई जाती है, पर कभी-कभी चौकोर या

---

१ अरबीमें नतूरके यह दो अर्थ होते हैं—(१) वह औषधि जो सूँघी जाय, और (२) वह औषधि जो नाकमें सुड़की जाय।

२ 'कुर्स' अरबी धातु 'कर्स' (=टिकिया बनाना)से व्युत्पन्न है। कुर्स का बहुवचन 'अक्रास' है। इसे हिंदीमें "टिकिया", संस्कृतमें "चक्रिका" और अँगरेजीमें "टॅब्लेट Tablet" कहते हैं।

तिकोनी या अंडाकार चपटी भी बनाई जाती हैं, इसके आविष्कर्त्ता द्वितीय अदरूमाखस (Andromachus) हैं, जिन्होंने तिर्याक कबीरके योगको परिपूरण किया था। सर्वप्रथम अक्रास सफाईका कल्प निर्माण किया गया था।

शियाफ[1]—कुछ औषधियोंको कभी-कभी गोलीके स्थानमें वत्ती (वर्ति)के रूपमें या शक्वाकार (गोपुच्छाकार) बनाकर रख लेते हैं, जिसमें वह अन्य गोलियोंसे भिन्न पहचानी जा सके। यह भिन्नतासूचक आकृति बता देती है कि यह औषधि बाह्य उपयोगकी है, आतरिक उपयोगकी नहीं। नेत्रमें[2] लगानेकी प्राय औषधियाँ इसी प्रकार बनाकर रखी जाती हैं, जिसमें बारीक तरफमे पकडकर घिसनेमें सुविधा हो। उदाहरणत शियाफ अब्यज, शियाफ अह्मर, शियाफ असफर, शियाफ अख्जर, शियाफ ज़ाफरान इत्यादि। जब किसी व्रण[3] वा नाडीव्रणके लिये बत्ती बनाई जाती है और सपूर्ण वत्तीको उसमें स्थापन करना होता है, तब उसे यवाकृतिकी बारीक-बारीक बनाते हैं। कभी सादा साबुनको शक्वाकार या यवाकृतिकी, जिसकी मोटाई न्यूनाधिक उँगली-प्रमाणकी हो, बनाकर गुदा[4]के भीतर प्रविष्ट की जाती है। कभी वस्त्र या पिचु आदिकी वर्ति (वत्ती) बनाकर और कोई औषधि आप्लुत करके नासिका[5], कर्ण, गुदा[6] और स्त्रियोंकी योनिके भीतर स्थापन की जाती है।

योनिमें प्रयुक्त वत्ती (शाफा)की लवाई पाँच-छ अगुल और मोटाई लगभग एक अगुल होनी चाहिए। इसी तरह गुदवर्ति आयुके विचारानुसार चार-पाँच अगुल लबी होनी चाहिए। पर्य्या०—शाफा, फतीला (फ़ुतुल, फताइल-बहुव०)—अ०। वर्ति, फलवर्ति—स०। वत्ती—हिं०। बूजी–Bougie, सपोजिटरी–Suppository—अं०। सपोजिटोरियम्–Suppositorium–ले०।

वक्तव्य—सपॉजिटरी और बूजी सज्ञाका प्रयोग केवल उन्ही वर्तियोंके अर्थमें होता है, जो योनि, गुदा या मूत्रद्वारमें प्रयुक्त की जाती है। शिश्नमें रखनेके लिये बनी फलवर्तिको अँगरेजीमें यूरेथ्रल बूजी Urethral bougie कहते हैं।

हुमूल (बहुव० हमूलात)—इस प्रकारकी वर्ति (शियाफ) जो कपडे इत्यादिकी बनाकर और औषधद्रव्य आप्लुत करके (लगाकर) योनि (फर्ज वा कुब्ल) या गुदा (दुब्र वा मबर्ज)में धारण की जाती है, उसे हुमूल कहते हैं। पर्य्या०—सपॉजिटरी Suppository, पेसरी Pessary —अं०। फलवर्ति—स०। बुदुका, हुमूल—अ०।

फि (फ)र्ज़जा (बहुव० फराज़िज)—वह वर्ति जिसे औषधद्रव्यसे आप्लुत करके स्त्री अपनी योनिमें स्थापन करती है। फिर्ज़जाकी एक अन्य विधि यह भी है कि एक महीन स्वच्छ वस्त्रमे औषधद्रव्यकी पोटली उन्नावके बरा-

---

१ शियाफ अरबी 'शाफ'का बहुवचन है। शियाफ़ का भी बहुवचन शियाफात है। 'शाफा'का धात्वर्थ 'बत्ती (वर्ति)' है। इसे अरबीमें फतीला भी कहते हैं।

२ आँखमें लगाने के लिये बनाई जानेवाली वर्तिको आयुर्वेदमें 'नेत्रवर्ति' कहते हैं।

३ गले हुए मासवाले, कोटर (भीतर पोल)वाले और भीतर पीबवाले व्रणोंमें तिलका कल्क-शहद और घी (या अन्य घृत-तैल-मरहम आदि) लगाई हुई जो कपड़े या सूतकी वर्त्ती रखी जाती है) उसे आयुर्वेदकी परिभाषामें विकेशिका कहते हैं—"तिलकल्कमधुघृताक्तवस्त्रस्य सूत्रस्य वा वर्ति 'विकेशिका' इत्युच्यते" (सु० सू० अ० १८, सू० २१ पर डल्हण टीका)।

४ गुदा, योनि और शिश्नमें चढानेके लिये औषधिद्रव्योंकी जो वर्ति बनाई जाती है उसको आयुर्वेदमें 'फलवर्ति' कहते है। स्त्रियोंको तेलमें भिगोया हुआ फाहा (फोहा) योनिमें रखा जाता है, उसको तैल-पिचु' कहते हैं—"पिष्टै सिद्धस्य तैलस्यपिचु योनौ निधापयेत्" (च० चि० अ० ३०, श्लो० ७५)।

५ नासिकाके भीतर रखी जानेवाली इस प्रकारकी वर्तिको आयुर्वेदमें 'नासापूरण' कहते हैं। कानमें धारण की जानेवाली उक्त वर्तिको आयुर्वेदमें 'कर्णपूरण' वा कर्णवर्ति कहना चाहिए।

६ गुदा और योनिमें स्थापन की जानेवाली इस प्रकारकी वर्तिको भी आयुर्वेदीय कल्पनाके अनुसार फलवर्ति कह सकते हैं। यूनानी कल्पनाके अनुसार इसे हुमूल कहते हैं।

वर बांधकर योनिके भीतर इस प्रकार स्थापन की जाय कि वह पोटली गर्भाशयिकद्वार तक पहुँचे और पोटलीका थोड़ासा कपड़ा या उसका धागा, खींच लेनेके लिए बाहर निकला रहे।

वक्तव्य—औषधद्रव्योंके चूर्णको कपडेमें पोटली बनाकर या औषधद्रव्योंका कल्क जो योनिमें रखा जाता है, उसको आयुर्वेदमें योनिपूरण कहते है। पर्य्या०—फल्वर्ति (योनिपूरण, योनिवर्ति)—स०। फि (फ)र्जजा—अ०। टैम्पन Tampon, पेसरी Pessary, वेजाइनल सपॉसिटरी Vaginal suppository—अं०। पेसस Pesus (बहुव० पेसी Pessi)—लै०।

फतीला (बहुव० फुतुल, फताइल)—कपडे या पिचु (रूई) इत्यादिकी जो वर्ति बनाकर किसी सान्द्र या तरल औषधद्रव्यमें तर करके शरीरके किसी छिद्र (नासिका, कर्ण, योनि इत्यादि) या नाडीव्रण वा व्रणछिद्र इत्यादिमें रखते हैं, उसे फतीला कहते हैं। पर्य्या०—वर्ति—स०। फतीला—अ०। पलीता, बत्ती–उर्दू। बूजी Bougie—अं०।

कमूस[1]—आर्द्र या शुष्क औषधद्रव्यको पीसकर बडी या छोटी टिकिया बनाते है। फिर उसे रोगस्थल पर रखकर ताजा पत्ता बांध देते है, जिसमें औषधद्रव्यकी आर्द्रता चिरकाल तक स्थिर रहे। यही कमूस कहलाती है। इसी तरह कभी उडद (माष)की मोटी रोटी पकाकर, जिसे एक ओरसे कच्चा रखा जाता है और कच्चे धरातल पर कोई औषधद्रव्य लगाकर गरम-गरम सिर पर बांधा जाता है। इसी तरह कभी कुक्कुट या कपोतको वध करके और उसके उदरको अन्न आदिसे शुद्ध करके गरम-गरम सिर आदि पर बांध दिया जाता है। यह उभय विधियाँ सेक (तक्मीद)के अंतर्भूत है। दे० "जिमाद"।

सफूफ (बहुव० सफूफात)—शुष्क पिसे हुए औषधद्रव्यको सफूफ कहते है। यह आतरिक रूपसे खाया जाता है और बाह्य उपयोगोंमें भी काम आता है। प्रयोगभेदसे इसके अलग-अलग नाम हैं। जैसे—सनून (मञ्जन), जरूर (व्रणचूर्णनकी औषधि), नफूख (नासिका आदिमें फूँकनेकी औषधि), अतूस (नस्य, नसवार), गाजा, सुरमा इत्यादि। भस्में साधारणतया चूर्णरूपमें रखी जाती हैं, और कभी चक्रिका (कुर्स) इत्यादि रूपमें बना ली जाती हैं। पर्य्या०—चूर्ण, रज, क्षोद—स०। सफूफ—अ०, फा०, उर्दू। चूरन, फकी (प०), बुकनी–हि०। पाउडर Powder—अं०। पल्विस Pulvis—लै०।

सनून (बहुव० सनूनात)—यह शुष्क पिसी हुई औषधि (दवा सफूफ वा सफूफ) जो प्रधानतया दाँतो पर मलनेके लिए बनाई जाती है। पर्य्या०—मञ्जन, दन्तमञ्जन—स०। सनून–अ०। 'डेंटिफ्राइस Dentifrice', 'टूथ पाउडर Tooth powder'—अं०।

मजूग़ (अरबी धातु मज्ग = चबाना) अर्थात् चबानेकी औषधि। वह औषधि जो मुखमें दाँतोंके बीचमें रखकर देर तक चबाई जाय, जैसे—अकरकरा। मैस्टिकेटरी Masticatory—अं०।

बरूद—बहुत महीन सरल किया हुआ चूर्ण जो नेत्रमें सुरमाकी भाँति उपयोग किया जाता है। इसके योगमें इसके आविष्कर्त्ताने प्रथमतः केवल शीतल औषधियाँ समाविष्ट की थी। इसलिये इसका नाम "बरूद" रखा गया, परन्तु बादको यह प्रतिबंध दूर हो गया। "बरूद"के नामसे कतिपय योग ऐसे भी मिलते हैं, जिनमें औषधद्रव्य चूर्णरूपमें होनेकी जगह प्रगाढ प्रवाहीरूपमें होता है। किसी-किसीके अनुसार नेत्रका चोभ (चोवा) जिसमें प्राय शीतल औषधद्रव्य पडते हैं। नेत्रमें ठंडक डालनेवाली औषधियाँ। आई वॉश Eye wash—अं०।

कुहल—परिभाषा और सेवनकालके विचारसे बरूद और कुहलमें कोई अंतर नहीं है (यह भी बारीक चूर्ण रूपमें होता है) जिसे सलाईसे नेत्रमें लगाते हैं। परंतु कुहलकी कतिपय विधियाँ और कल्प ऐसे भी मिलते है जिनमें औषधद्रव्य चूर्णरूपमें होनेकी जगह सान्द्र रूपमें होते है। उसे जल इत्यादिमें घिसकर नेत्रमें लगाया जाता है। उदाहरणत कुहल 'चुक्की दवा'। खजाइनुल् अदवियाके मतसे हिंदी 'घर्रा' कुहलका एक भेद है। पर्य्या०—चूर्णाञ्जन

---

1 अरबी धातु 'कब्स = ठूसना, भरना, पाटना, दबाना'।

—स० । सुरमा, अजन—हि० । कुहल, तूतीया और इस्मिदका अर्थान्तर—कुहलका अर्थ 'सुरमा' है या हर एक ऐसी वस्तु जो नेत्रमें अजन की जाय । 'इस्मिद' काला सुरमा (खनिज)को कहते हैं और तूतिया भस्म किये हुये यशदको ।

काजल—किसी पदार्थको जलाकर प्राप्त किया हुआ धूआँ (धूम्र) जो नेत्र में लगाया जाता है । कज्जल—स० । नोट—इसकी निर्माणविधि 'तद्खीन'में देखें ।

जरूर—वह पिसा हुआ औषधद्रव्य (सफूफ) जिसे शरीरके किसी धरातल पर अवचूर्णन किया जाय । उदाहरणत मुखपाकमें जिह्वा पर और व्रण आदिमें व्रणित धरातल पर इस प्रकारके औषधद्रव्य छिडके जाते हैं । अवचूर्णन—प० । धूडा—हि० । डस्टिंग पाउडर Dusting powder—अ० ।

नफूख—(फूँकनेकी औषधि । अरबी धातु 'नफूज = फूँकना' । बहुव०-नफूखात । वह महीन चूर्ण जिसे नलकी या किसी अन्य वस्तु (प्रधमनयन्त्र[1] आदि)के द्वारा रोगीकी नाक, कठ या किसी अन्य छिद्रमें फूँका जाता है । पर्य्या०—(नस्यार्थ चूर्ण) ध्मापन, आध्मापन, प्रध्मापन या प्रधमन (नस्य)—स० । नफूख—अ० । इन्सफ्लेशन Insufflation—अ० ।

अतूस (छीकको औषधि) । वह महीन चूर्ण जिसके सूँघनेसे छींक आती है । छीक लानेवाली औषधि (चूर्ण) । इसके अन्य पर्याय 'उत्तास' और 'मुअत्तिस' हैं और बहुवचन 'अतूसात' । अतूसकी औषधि प्राय शुष्क होती है और जब यह प्रवाही होती है तब इसे 'सऊत' कहते हैं । नस्य लेनेकी क्रियाको अरबीमें 'उतूस' कहते हैं । पर्य्या०—नस्य, नावन—स० । नास, नसवार, सुँघनी—हि० । स्नफ Snuff—अ० ।

वक्तव्य—अतूसका प्रयोग दोषपाचन और शोधनोपरात करना चाहिये, क्योकि यह दोष और शरीरावयवको अपने आत्मप्रभावसे (विज्ज्ञात) उत्तेजना प्रदान करता है । अस्तु, भरे हुए कोष्ठ (इम्तिलाऽ)की दशामें इसके उपयोगसे अहितकी सभावना है । दिल्लीके हकीम शरीफखाँके अनुसार अतूस ऐसे सऊतको कहते हैं जो छीक लानेके लिए उपयोग किया जाता है । परतु यह सत्य नही, क्योकि सऊनका उपयोग प्रवाही औषधिके लिये होता है, किंतु अतूसका उपयोग शुष्क औषधिके लिये किया जाता है । उन्होने स्वय भी लिखा है कि सऊन उस प्रवाही भेषजको कहते हैं जो नासिकामें डाला जाय ।

आयुर्वेदमें 'नस्य या 'नावन' शब्द सामान्यत सब प्रकारके नस्यो (नस्य, अवपीड, ध्मापन, धूम और प्रतिमर्श)के लिये प्रयुक्त होता है । नाकके द्वारा औषधद्रव्योका धूआँ खीचनेको आयुर्वेदमें 'धूम (नस्य)' कहते हैं ।

गाजा—वह महीन चूर्ण जो मुखमडल (चेहरे) इत्यादि पर वर्णप्रसादन वा रग निखारनेके लिये मर्दन किया जाता है । इससे चूर्णका एक महीन स्तर मुखमडल पर स्थित हो जाता है । पर्य्या०—सौंदर्यवर्धन चूर्ण—स० । गुलगूना, रुशोया, हुस्न अफ्ज़ा—फा० । मुहस्सिन, गुम्ज़ा, गाजा—अ० । कॉस्मेटिक Cosmetic—अ० ।

उबटना—कतिपय औषधद्रव्य मल दूर करनेके लिये और शरीरको सुवासित करनेके लिये शरीर पर मले जाते हैं और तदुपरात उसको धोया जाता है । इसको उर्दूमें 'उबटना' और आयुर्वेदमें 'उद्वर्तन' कहते हैं ।

गालिया (अरगजा)—एक सुगधित योगौषध जिसमें कस्तूरी, अबर और कपूर इत्यादि द्रव्य पडते हैं । इसको सूँघा जाता या शरीर पर मला जाता है ।

नू (नौ)रा—वह औषधि जिसे लगानेसे बाल गिर जाते हैं । लोमशातन (बाल मूँडनेवाली) औषध । पर्य्या०—हल्लाक, मुजय्यिलुश्शार—अ० । डेपिलेटरी Depilatory —अ० ।

मुरब्बा—अरबीमें मुरब्बाका अर्थ 'परिपालित (परवर्दा)' है । सेब, बिही, नासपाती, गाजर, ताजा आमला, ताजी हड आदि जैसे सड जानेवाले फलो (मेवो)को पकाकर और गलाकर चीनी या मधुकी चाशनीमें रख छोडते हैं जिसमें आगामी ऋतुओं तक वे सडने-गलनेसे सुरक्षित रहें । कभी-कभी मुरब्बा-निर्माणसे उक्त लाभके अति-

---

१ प्रधमनयन्त्र को अगरेजी में 'पल्वर सफ्लेटर Pulver sufflator' कहते हैं ।

रिक्त यह लक्ष्य होता है कि उसका कुस्वाद शकराके कारण अपेक्षाकृत कम हो जाय और वह रुचिकर बन जाय। उदाहरणत मुरब्बा आमला, मुरब्बा हलैला। इसका पर्याय 'मुरब्बव' बहुवचन 'मुरब्बियात' है। प्रीजर्व Preserve, कनजर्व Conserve—अं०।

वक्तव्य—मुरब्बा खांड या मधु इत्यादिकी चाशनीमें डाला हुआ (पालन किया हुआ) फल है, इसलिये संस्कृतमें इसका फलखंड नाम रखना उचित है। (स०) राज खाडव (यो० र०), रागखाडव।१।२४८ रागपाडव (च० सू० अ०, २७)।

गुलकंद (गुलशकर)—(फा० गुल = गुलाबपुष्प, कंद = खांड या शर्करा)। गुलकंद भी एक प्रकारका मुरब्बा है, जिसमें फलके स्थानमें फूल उपयोग किया जाता है। इसमें गुलाबपुष्प और खण्ड या शर्करा यही दो वस्तुएँ योजित की जाती हैं। पर कभी-कभी गुलाबपुष्पके स्थानमें गुलबती इत्यादि और शर्कराके स्थानमें मधु सम्मिलित किया जाता है। जुलञ्जबीन—यह गुलकंदकी ही अन्यतम सज्ञा है। यह वस्तुत फारसी गुलअगबीन सज्ञाका अरबीकृत है। गुलसे अभिप्रेत गुलाबपुष्प और अगबीनका अर्थ मधु है। पर अधुना परिभाषाके अनुसार मधुका प्रतिबंध दूर कर दिया गया है अर्थात् शकरासे बनाये हुये गुलकंदको भी जुलञ्जबीन कहा जाता है।

वक्तव्य—पुष्प और खण्ड (शकर व कंद)के योगसे बना होनेके कारण गुलकंद वा गुलशकरका संस्कृतमें पुष्पखण्ड या पुष्पखाण्डव और जुलञ्जबीनका 'पुष्पमधु' वा 'पुष्पखण्ड' नाम रखना उचित है।

रुब्ब—वह सत्त्व जिसे किसी वानस्पतिक द्रव्य (फल, फूल, पत्र, मूल इत्यादि)का रस निकालकर या उसको भिगोकर या क्वाथ करके और इस प्रकार उनका रस और जौहर प्राप्त करके गरमी पहुँचाकर शुष्क या गाढ़ा कर लेते हैं। रसवत, रुब्बुस्सूस, रुब्बुस्सूस (सत मुलेठी इसी प्रकारके वानस्पतिक सत्त्व हैं। एलुआ और सत-मुलेठी शुष्क रुब्ब (सत्त्व) हैं और रसवत साधारणतया अर्धसान्द्र हुआ करता है। परंतु अधुना जो कतिपय रुब्ब औषधालयोंसे प्राप्त होते हैं वह इस प्रकार बनाये जाते हैं कि मेवों—फलों (अनार, जामुन, अंगूर, जरिश्क, सेव, बिही इत्यादि)का रस अथवा ओषधियोंका फाण्ट या क्वाथ इस प्रकार पकाया जाता है कि वह चौथाई रह जाता है। तदुपरात उस रसकी तौलसे आधी मिश्री या चीनी मिलाकर चाशनी करके अर्धसान्द्र (शवतसे गाढा) रुब्ब प्रस्तुत किया जाता है। कोई-कोई रुब्ब इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि निचोड़े हुये रस, फाण्ट या क्वाथमें चतुर्थांश चीनी या मिश्री मिलाकर इतना पकाते हैं कि चाशनी गाढी हो जाती है। पर्य्या०—रसक्रिया, अवलेह, फाणित, लेह, सत्व, निस्सार (नवीन)—स०। सत—हिं०। रुब्ब, खुलासा, उसारा (इसके बहुवचन क्रमश रुबूब या रुबूबात, खुलासात, उसारात)—अ०। एक्स्ट्रैक्ट Extract—अं०। एक्स्ट्रैक्टम् Extractum—लै०। दे० 'उसारा'।

वक्तव्य—जालीनूससे पूर्व रुब्बका उपयोग यूनानी चिकित्सामें नही होता था। इससे पूर्व 'उसारा' उपयोग किया जाता था। जालीनूसने यह देखकर कि विशेष द्रव्यके कारण उसारा देर तक स्थिर नही रह सकता और उसको स्थिर या सुरक्षित रखनेवाले शर्करादि मधुर द्रव्य हैं, प्रत्येक व्याधिके अनुकूल 'रुब्ब'का आविष्कार किया। यह विशेषतया कठ और श्वासोच्छ्वास सबधी अगोंकी व्याधियोंमें उपकारी होता है। जो रसक्रिया, राब जैसी नरम उसको फाणित, उससे थोडी गाढी चाटने योग्य हो उसको अवलेह और उससे भी गाढी गोली बनने योग्य हो उसको घन कहनेकी वैद्योंमें प्रथा है। फाणितको पाश्चात्य वैद्यकमें लिक्विड् एक्स्ट्रैक्ट Liquid extract—अं०, एक्स्ट्रैक्टम् लिक्विडम् Extractum liquidum—लै०, और घनको सॉलिड एक्स्ट्रैक्ट Solid extract या कसंट्रेटेड एक्स्ट्रैक्ट Concentrated extract कहते हैं।

हल्वा—अरबी भाषामें हल्वा मिठाईको कहते हैं। उसीसे हलवाई (मिठाई बनाने और बेचनेवाला) सज्ञा व्युत्पन्न है। शुष्क और आर्द्र भेदसे हल्वा दो प्रकारका होता है। कभी-कभी इनको बरफी और कलाकदकी भाँति चौकोर या निश्चित आकार-प्रकारके कतलोंके रूपमें काट लिया करते हैं। चिकित्सामें उपादेयताकी दृष्टिसे हल्वा दो प्रकारका होता है—(१) पोषणकारी (जीवनीय-गिजाई) या सादा (औषधीय)। सादा हलवोंमें मैदा या आटा, चीनी, मधु आदि और घी ये तीन द्रव्य मूल उपादान रूपमें पाये जाते हैं। कभी-कभी उनमें बादामकी गिरी,

किशमिश, नारियलकी गिरी इत्यादि समाविष्ट कर दिये जाते हैं। इन मूल उपादानत्रयमें न्यूनाधिक अंतर और परिवर्तन भी किया जाता है, उदाहरणत गाजरके हल्वे (हल्वाए गज़र)में मैदाके स्थानमें गाजर होते है जिनको कद्दूकशसे कस लिया जाता है या सिल-वाटसे पीस लिया जाता है। औषधीय हलवोसे यह अभिप्रेत है कि हलवाके उपर्युक्त मूल उपादानोके साथ कुछ औषधद्रव्य भी सम्मिलित कर दिये जायें जो किसो रोगावस्थामें लाभकारी सिद्ध होते है, जैसे—हल्वाए सालव, हल्वाए घीक्वार इत्यादि।

मा'जून—यह अरवी भाषाका शब्द है और 'अज्न'से, जिसका अर्थ 'गूँथना या खमीर करना' है, व्युत्पन्न है। इससे भी चूर्ण वनाये हुये औषध द्रव्य किसी चाशनीमें गूँधे या मिलाये जाते है, इसलिये इसको माजून कहते हैं। इसके वहुवचन 'मआजीन' और 'मा'जूनात' है। परिभाषामें माजून उस अर्ध-साद्र कल्पको कहते है जिसके पिसे हुये उपादान मधु या शर्कराकी चाशनीमें या किसी प्रवाही सत्व (सय्याल रुव्व)की चाशनीमें, मिला लिये जाते है। माजूनकी चाशनी न्यूनाधिक तर हल्वेकी भाँति रखी जाती है। वहुत सी माजूनें इसी सामान्य 'माजून' सज्ञासे पुकारी जाती हैं, जिसके साथ भिन्नताद्योतक या पहिचानके लिये विशेषणकी भाँति या सवधसूचक कोई शब्द जोड दिया जाता है, उदाहरणत माजून इज़ाराकी, माजून अक्सीरुल्वदन (माजूनेलना), माजून फलासफा, माजून कुदुर, माजून मासिकुल्वौल इत्यादि। परतु इनके अतिरिक्त ऐसी भी कतिपय माजूनें हैं जिनके नामके साथ माजून सज्ञा व्यवहार नही की गयी होती, अपितु उसके गुण-कर्म या उपादानोके विचारसे अन्य मान प्रसिद्ध हो गये है, उदाहरणत इत्रीफल, जरऊनी इत्यादि। पर्य्या०—मा'जून—अ०। इलेक्चुअरी Electuary, कन्फेक्शन् Confection—अ०। इलेक्चुएरिअम् Electuarium, कन्फेक्शियो Confectio ले०।

वक्तव्य—आयुर्वेदके अनुसार यह अवलेहका ही एक भेद है। जवारिशकी भाँति इसका स्वादिष्ट होना अनिवार्य नही है। डॉक्टरीमें कन्फेक्शन चीनी या मधुयुक्त अवलेहको कहते हैं। इलेक्चुअरी या अवलेहकी चाशनी कन्फेक्शन् वा माजूनकी अपेक्षया कम गाढी होती है—वह ऐसी वनी हुई होती है जो उँगलीसे चाटी जा सके।

अ(इ) त्रीफल—(सस्कृत 'त्रिफल'का अरवीकृत)। त्रिफला हड, वहेडा और आमला इन तीन फलोंके समाहारको कहते है। अत वह माजून जिसमें यह द्रव्यत्रय प्रधान उपादान है, अतरीफल कहलाता है। इसका उच्चारण 'इत्रीफल' भी करते हैं।

वक्तव्य—सस्कृतमें इसको त्रिफला रसायन (च०) कहना उचित जान पडता है।

अनोशदारू, नोशदारू—माजूनकी तरहका एक कल्प जिसमें प्रधान उपादान आमला है। हकीम शरीफखाँ लिखते हैं, अनोशदारू फारसी सज्ञा है जिसका अर्थ "दवा हाज़िम (पाचनौषध)" है, अतएव इसके नाम पर उक्त माजूनका नाम रखा गया। इसका प्रधान उपादान धात्री (आमला) होनेसे सस्कृतमें इसका 'धात्री-रसायन' वा आमलकी (आमलक) रसायन (च०) नाम रखना उचित है।

ज(जु)वारिश—यह फारसी 'गुवारिश (पाचनकर्त्ता = हाज़ूम)की अरवीकृत सज्ञा है। माजूनका एक विशेष भेद जो सावारणतया पचनेद्रियो (आमाशय, अत्र इत्यादि)के सुधारके लिये उपयोग किया जाता है। स्वादिष्ट पाचनशक्ति वढानेवाला अवलेह। पारस्य चिकित्सकोने अब्बासियोंके लिये इसका आविष्कार किया था। (सु०) खाण्डव।

दवाउल्मिस्क—कुछ ऐसी वहुमूल्य, स्वादिष्ट, सुगंधित माजूनोंके नाम 'दवाउल्मिस्क' है, जिनमें अन्यान्य उपादानो और रत्नोंके साथ 'कस्तूरी भी होती है। (दवाउल्मिस्क = कस्तूरीघटित कल्प)।

मुफर्रेह—दवाउल्मिस्ककी भाँति कतिपय ऐसे मूल्यवान् माजूनोंके नाम 'मुफ़र्रेह' हैं, जो गुण-कर्मके विचार से मन प्रसाद (तफरीह)कर माने जाते है।

लुवूव—कतिपय शक्तिवर्धक माजूनोंके नाम 'लुवूव' इस कारण रखे गये है कि उनके उपादानोंमें वहुमूल्यक गिरियाँ (उदाहरणत वादामकी गिरी, पिस्ताकी गिरी, चिलगोजाकी गिरी इत्यादि) सम्मिलित होती हैं। लुवूब लुव्व (गिरी)का वहुवचन है।

याकूती—दवाउल्मिस्क और मुफर्रेहकी भाँति कतिपय ऐसे बहुमूल्य उपादानघटित माजूनोंके नाम 'याकूती' हैं, जिनमें अन्य उपादानोंके साथ याकूत (मानिक) भी योग (कल्प)का एक उपादान होता है।

वरशाशा—एक प्राचीन बहुत प्रख्यात अहिफेन घटित यूनानी माजून जिसकी कल्पना प्राचीन यूनानी वैद्योंने बहुत ही सावधानीपूर्वक की है। इसके पश्चात् उक्त कल्पको अवलोकनकर अन्यान्य लोगोंने कुछ नूतन प्रयास एव परिवर्तन भी किये हैं। सभवत यह शब्द यूनानी भाषाका है, जिसका अर्थ तात्कालिक आरोग्य अर्थात् फौरी आराम (वरउस्साआ) है।

सुरंजनी—एक विशेष माजून जो वृक्क, कटि और वाजीकर शक्तिको वल प्रदान करनेके लिये उपयोग की जाती है। प्रयत्न करने पर भी इसके नामकरणके कारण एव निरुक्तिका पता न चल सका।

खमीरा—माजूनकी तरहका एक कल्प जिसमें प्रथमत कतिपय औषधद्रव्य क्वाथ किये जाते हैं। फिर उसको मल छानकर और शर्करा मिलाकर चाशनीको चाटने योग्य गाढा कर लेते है। इसके वाद ऊपरसे मिलाये जानेवाले औषधद्रव्य मिला देते हैं। अतमें इसे, चूल्हेसे उतारकर लकडीके घोटनेसे इतना घोटते हैं कि चाशनीकी रगत श्वेत या श्वेताभ (सफेद मायल) हो जाती है।

लऊक—(लेह्य कल्प, चटनी। वहुव०–लऊकात)—माजूनके प्रकारका एक कल्प जिसकी चाशनी शर्वतसे गाढी और माजूनसे ढीली रखी जाती है और जिसे चाटा जा सकता है। ऐसी औषधि जो चाटकर खायी जाय। लऊक अधिकतर उरो-फुफ्फुस-रोगों और कठ रोगो (नजला, कासश्वास इत्यादि)में उपयोग किया जाता है। पर्य्या०–लेह, अवलेह—स०। चटनी—हि०। लऊक़—अ०। लोक Loch, लिंक्टस Linctus, लिंक्चर Lincture, इलेक्चुअरी Electuary—अ०।

वक्तव्य—अंगरेजी लोक अरवी लऊकका अपभ्रश है। अरवी 'लऊक' और सस्कृत 'लेह्'में उच्चारण और अर्थ दानोंहीका वहुत साम्य है। माजूनसे लेकर लऊक पर्यंत सभी कल्प अवलेहके ही विविध भेदोपभेद हैं।

उसारा (अफशुर्दा, वह वस्तु जो निचुड कर प्राप्त हो।) वनस्पतियों या फलों व मेवोंके रसको कहते हैं, जो उनसे निचोडकर प्राप्त किया जाता है। उसाराके यह दो रूप है—(१) तर एव प्रवाही (पतला रस) और (२) शुष्क वा सान्द्र। शुष्क सान्द्र। शुष्क-सान्द्र और अर्ध-सान्द्र उसाराकी अन्यतम सज्ञा रुब्ब (देखो 'रुब्ब') भी है। इसे सूर्यताप या अग्निपर सुखाकर वनाते हैं। हर चीजका उसारा उससे लघु होता है। पर्याय—रसक्रिया, सत्त्व स०। सत–हि०। उसारा, रुब्ब—अ०। एक्स्ट्रैक्ट Extract–अ०। प्रथम प्रकार (प्रवाही)के पर्याय—स्वरस—स०। निचोड, रस, हि०। उसारा, असीर–अ०। अफ़शुरदा, अफसुरदा, अफशुरा–फा०। अफशुरज–(अरवीकृत)। एक्सप्रेस्ड जूस Expressed juice–अ०। सक्कस् Succus–लै०।

हरी(रे)रा, हसूऽ—वह गाढा प्रवाही आहारकल्प जो घूँट-घूँट पी जाय। एक प्रकारका प्रवाही आहारकल्प जो रोगीको दिया जाता है, और साधारणतया आटे या सूजीको घीमें भूनकर और चीनी एव मेवा मिलाकर प्रस्तुत किया जाता है। इसका वहुवचन 'अह्साऽ' है।

फालूदा—एक विशेष प्रकारका स्निग्ध (मरतूब) आहारकल्प जो निशास्ता (गेहूँका सत) या श्वेतसारीय उपादानों (चावल इत्यादि)को जल, दूध आदिमें पकाकर वनाया जाता है। शीतल होने पर यह कतलाके रूपमें जम जाया करता है। कभी इसको जौ या मोटी सेवइयाके रूपमें लानेके लिये गरम होनेकी दशामें चलनी आदिके छिद्रोंसे गुजारकर (छानकर) जलमें लिया जाता है। पर्य्या०—फालूजज, फालूजक—अ०। (ये फारसी 'पालूदा'से अरवीकृत हैं)।

मर्हम (वहुव०–मराहिम)—वह अर्ध-सान्द्र कल्प जो एक वा अनेक औषधद्रव्योंको मोम, चर्वी या किसी स्नेह (तैल आदि)में मिलाकर प्रस्तुत किया जाता है, और फोडे-फुसियों एव शोथ आदि पर इसका वाह्य प्रयोग

होता है। पर्य्या०—मलहर–स०। मर्हम–अ०। ऑइंटमेंट Ointment, माल्वी Salve–अ०। अग्वेंटम् Unguentum–ले०।

वक्तव्य—यह प्राचीन कल्प है। कहते हैं कि माजूनके सिवाय इससे, प्राचीन कोई कल्प नही है। इसका आविष्कर्ता वुकरातको वतलाते हैं। एक वार उनके विचारमें आया कि व्रणपूरणके समय दुष्टमासको दूर करनेके लिये जगारकी आवश्यकता होती है। परतु दाहक (अक्काल) औपधसे शरीरके प्रत्यगमें विकार उत्पन्न हो जाता है। अस्तु, उसके साथ ऐसा द्रव्य होना चाहिए जो चेपदार हो, सुतरा उसके साथ मोम सम्मिलित किया गया। फिर गोद और लवाव भी मिलाने लगे। योगरत्नाकर आदि आयुर्वेदीय ग्रथोमें इससे 'मलहर' यह सस्कृत शब्द वनाया गया है।

केरूती (मोम रोगन)—मरहमके सदृश एक कल्प जिसमें मोम और रोगन (स्नेह) मिश्रीभूत होते हैं और प्राय अन्य औपधद्रव्य भी सम्मिलित कर दिये जाते हैं। उदाहरणत केरूती आर्द्र करस्ना।

जिमाद, ज़माद (वहुव०–ज़मादात, अज्मद)—लेप वा गाढा लेप जो शरीरके वाह्य भाग पर लगाया जाता है। इसके यह दो भेद हैं—(१) यदि वह पतला और प्रवाही हो जो उँगलीसे लगकर चला आये, जैसे—रोगन (स्नेह) तो तिला कहा जाता है, और (२) यदि वह गाढा और गलीज हो तो उसे ज़िमाद (लेप) कहा जाता है, उदाहरणत. अलसीका ज़िमाद, राईका ज़िमाद। पर्य्या०—लेप—स०। तिला—अ०, एम्ब्रोकेशन् Embrocation, लिनिमेंट Liniment—अ। ज़िमाद—पेष्ट Paste—अ०।

वक्तव्य—यूनानी वैद्यकमें व्रण पर बाँधनेकी पट्टी वा वध (Bandage)को भी ज़िमाद (अरवी) कहते हैं। 'मिफ्ताह' के रचयिताके अनुसार जिमाद और तिला उभय कल्पोके आविष्कर्ता बुकरात हैं। आयुर्वेदीय कल्पनाके अनुसार हम तिलाको प्रलेप' और जिमादको 'प्रदेह' कह सकते हैं।

लज़ूक, लसूक (धात्वर्थ 'चिपकनेवाली वस्तु')। परिभापामें वह चिपकनेवाला कल्प जो कागज या वस्त्र अथवा खाल वा चमडे पर लगाकर त्वचा पर चिपका दिया जाय, जैसे—सरेस इत्यादि। पर्य्या०—लज्ज़ाक़, लज़ूक़, लसका, मुशम्मा—अ०। पट्टी, पलस्तर—उर्दू। प्लॅस्टर Plaster—अ०। इम्प्लास्ट्रम् Emplastrum—ले०।

वक्तव्य—अरवीमें 'मुशम्मा' मोमजामाको कहते हैं। विलायतके कतिपय वने-वनाये पलस्तर मोमजामाके सदृश होते हैं। इसलिए उनको भी 'मुशम्मा' कहते हैं। आयुर्वेदके अनुसार यह भी एक प्रकार का 'लेप' है।

लतूख़ (वहुव०–लतूखात)। औपधद्रव्यकी लुगदी। वह वस्तु जो शरीरमें मली जाय। लथेडनेका वह कल्प जो जिमादसे पतला और तिलासे गाढा होता है।

वक्तव्य—कभी 'लतूख़', 'लज़ूक' और 'लसूक' ये तीनो सज्ञाएँ पर्याय स्वरूप व्यवहार को जाती है, और इनमें कोई भेद नही किया जाता। लज़ूक और लतूख़के कतिपय कल्प कभी कभी साद्र होते हैं और उपयोगके समय उन्हें उत्ताप पहुँचाकर गरम करना पडता है जिसमे वह प्रवाही वनकर पट्टी पर फैलाये जा सकें।

माउल्‌जुब्न (दूधका पानी)। वह पानी जो दूधसे, उसके फाडनेके वाद छानकर पृथक् किया जाता है। फटे हुए दूधका पानी। दूधको फाडनेके वाद पनीर जमकर पृथक् हो जाता है। इसलिए दूधके उस पानीको 'पनीरका पानी' कहा जाता है। पर्य्या०—माउल्‌जुब्न (माउ = जल, पानी, जुब्न, जुबुन = पनीर)—अ०। आव पनीर (आव = पानी)—फा०। व्हे Whey—अ०।

वक्तव्य—दहीका तोड अर्थात् दधिमस्तु भी एक प्रकारका माउल्‌जुब्न ही है। मड—स०।

माउल्‌असल—शहदके साथ जल या कोई अर्क मिलाकर पकाते हैं, यही 'माउल्‌असल' है। इसमें कभी औपधद्रव्य भी मिलाये जाते हैं। उस समय इसे 'माउल्‌असल मुरक्कव' कहते हैं। माउल्‌असल ही को जुल्लाव भी कहा जाता है। जैसा कि आगेके वर्णनसे ज्ञात होगा। पर्य्या०—माउल्‌असल (माउ = जल, असल = मधु), माऽमुअस्सल—अ०। शहदका पानी—उर्दू। आव शहद—फा०। हाइड्रोमेल Hydromel, मिआड Miad—अ०।

वक्तव्य—शर्करासे बने हुये शर्वतको आयुर्वेदमें 'शार्कर' कहते हैं। अस्तु, मधुके साथ बने हुये शर्वत अर्थात् माउल्असलका संस्कृतमें 'मधुशार्कर' नाम रखना उचित है।

जुल्लाब—फारसी 'गुल-आब' संज्ञासे अरबीकृत है। (जुल = गुल अर्थात् गुलाबपुष्प, आब = जल)। यूनानी वैद्यककी परिभाषामें शर्वतशहदको कहते है, अर्थात् शहदको गुलाबपुष्पार्कमें पकाकर चाशनी तैयार की जाती है। कभी शहदके स्थानमें शर्करा भी डाली जाती है। इस प्रकार बने हुये शर्वतको माउस्सुक्कर कहते हैं। उर्दूमें जुल्लाब सनाका व्यवहार मुञ्जिज और 'मुस्हिल' (पाचन और विरेचनीय औषध)के अर्थमें होता है।

माउल्लह्म-धात्वर्थ (अ० माऽ = पानी, उल्, लह्म = मास) आवेगोश्त वा गोश्तका पानी अर्थात् मासरस। पानीमें मासको गलाकर यख्नीकी भाँति गोश्तका पानी (मांसरस) छानकर और निचोडकर पृथक् कर लिया जाता है। इसी प्रकार माउल्लह्म उस अर्कको भी कहा करते है, जो नल और भभके द्वारा माससे प्राप्त किया जाता है और जिसके विषयमें मैंने गत पृष्ठोमें विस्तारपूर्वक विवेचना की है, कि यह एक निरर्थक पदार्थ है। क्योकि मासके परमोपादेय और वीर्यवान् उपादान अर्करूपमें ऊर्ध्वपातित नही हुआ करते। मासार्क। मासरसके पर्य्या०—यख्नी, माउल्लह्म—अ०। शोरबा, आवेगोश्त—फा०। मीटजूस Meat juice, सूप Soup—अ०।

माउश्शईर—धात्वर्थ (माऽ = पानी, शइर = जौ) अर्थात् जौकापानी, आवेजौ अर्थात् आयुर्वेदीय कल्पनाके अनुसार यवमण्ड। परिभाषामें यह पानी जो जौको जलमें पका और छानकर प्राप्त किया जाता है। यह चावलोके मण्डकी भाँति न्यूनाधिक पतला और गाढा हुआ करता है। इसका अर्थ यवमण्ड (आशेजौ या जवाश) है। पर्य्या०—यवमण्ड—स०। माउश्शईर, कश्कुश्शईर—अ०। कदवाव, आशेजौ—फा०। वार्ली वाटर Barley water—अ०। यदि जौको भूनकर गलाया जाता है, तो उसके पानीको 'माउश्शईर मुहम्मस'[1] कहते है। आशेजौ बिर्या—(फा०)। भुने हुये जौ या वाटका पानी। आयुर्वेदमें इसे वाटयमण्ड कहते है।

वक्तव्य—प्रथम जौको नम(भिगो)करके कूटकर उसका छिलका उतार लिया जाता है। पुन उनको सुखाकर भूनकर उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार कभी अत्यधिक पोषण एव बलवर्धनके लिये जौके साथ मास भी समाविष्ट कर देते है। तब उसे माउश्शईर मुलह्हम कहा जाता है। संस्कृतमें इसे माससिद्ध यवमण्ड कह सकते हैं। माउश्शईर (यवमण्ड)में कभी उन्नाब और श्लेष्मानक(लिटोरा) इत्यादिका क्वाथ मिला दिया करते हैं, तब उसे माउश्शईर मुदब्बिर या आशेजौ मुदब्बिर कहा जाता है। संस्कृतमें इसे शोधित यवमण्ड कहना चाहिये।

वक्तव्य—इसी प्रकार चावलोंसे जो 'मंड' प्रस्तुत किया जाता है, उसे आयुर्वेदमे धान्यमण्ड, फारसीमें आशेदकोक और आशे बिरज, अँगरेजीमें राइस ब्रॉथ Rice broth और राइस वॉटर Rice water कहते हैं। चावलोंके धोवनको संस्कृतमें 'तण्डुलोदक' और फारसीमें 'आब बिरज' कहते हैं।

माउल्बुकूल—(अ० माऽ = पानी, उल्, बुकूल, बक़ल का बहुव० = सागपात, सब्जियाँ) शाकों और हरी बूटियोंका पानी। उदाहरणत हरे मकोयकी पत्ती या हरी कासनीकी पत्तीको कुचलकर या कूटकर उसका रस निचोड लिया जाता है। कई द्रव्योंको भूभलमे भुल-भुलाकर उसका रस प्राप्त किया जाता है, उदाहरणत ताजे कद्दू का रस। यह वास्तवमें प्रवाही स्वरस (उसारा सय्याल) है।

माउल्फवाके (अ० माऽ = पानी, रस फ़वाकेह फाकिहृका बहुव० मेवो, फलो(= फलरस)—फलो (मेवो)का रस जो उनके निचोडनेसे प्राप्त होता है, जैसे—अंगूरका रस, तरबूजका रस, अनारका रस इत्यादि।

रूह—अर्कोमें रूह परिभाषाके अनुसार उस अर्कको कहते हैं, जिसमें जल बिल्कुल न हो या अत्यल्प हो। उदाहरणत रूह समर (शराबकी रूह)में जलाश अत्यल्प होता है, बल्कि उसका अभाव-सा होता है। परतु बहुतसे अर्कोंमें ये नाम केवल एक व्यापारिक हैसियत रखते हैं, जिसका यह अर्थ है कि साधारण बाजारू अर्कोंसे उनमें

---

1 अरबी मुहम्मसका अर्थ भुना हुआ (भृष्ट या भर्जित) है।

वीर्यवान् उपादानोंका अनुपात अधिक है, और अर्कपरिस्रावण कालमें जल अपेक्षाकृत कम डाला गया है जिससे उसका सुगंधिपूर्ण वीर्य बलवत्तर हो जाता है। उदाहरणत साधारण अर्ककेवडा और रूह केवडामें यह अतर है कि साधारण अर्ककेवडामें अर्क परिस्रुत करते समय जितने पुष्प डाले जाते हैं, उससे चतुर्गुण या इससे भी अधिक पुष्प डालकर जो अर्क खींचा जायगा, उसे रूह–केवडा कहा जायेगा। इसी उदाहरण पर गुलाब इत्यादिको अनुमान किया जा सकता है।

शराब—उस विशेष सूक्ष्म द्रव्यका नाम है जो श्वेतसार, श्वेतसारीय पदार्थ, शर्करा और द्राक्षाके उपादानोंके सधान वा अभिषव[1](तखमीर)से ऊर्ध्वपातन द्वारा प्राप्त किया जाता है। शुद्ध होनेकी दशामें इसकी गध विशेष प्रकारकी एव प्रिय तथा रुचिकर होती है। शराबके यद्यपि अनेक भेद है, तथापि उन सबमें एक वस्तु समान रूपसे पाई जाती है, जिसे शराबका जौहर खास और अल्कुहोल[2] कहते हैं। 'अल्कुहोल' एक अरबी सज्ञा है। जलके साथ इस जौहर खासकी मात्रा विभिन्न शराबोंमें न्यूनाधिक होती है। इसी जौहरखास (सुरासार)के अनुपात पर शराबके प्रधान कर्म और समस्त गुण-प्रभाव निर्भर करते हैं। यह एक उडनशील स्वच्छ पतला प्रवाही है। अभिषव वा सधान (तखमीर) और परिस्रावण (तकतीर) कालमें विविध सुगध-द्रव्य और विभिन्न औषध-द्रव्य समाविष्ट किये जाते हैं। इससे मद्यमें उनकी सुगध और उनके गुण-कर्म आ जाते हैं। सुतरा शराब रैहानी इसी प्रकारकी योगकृत सुगधित शराब है। शराबका आतरिक प्रयोग उत्तेजक, हृदयबलप्रदायक (हृ), मस्तिष्कोत्तेजक और अधिक मात्रामें मदकारी (मुस्किर) है। पर्या०—(स०) मद्य, मदिरा, सुरा, (अ०) खम्र, शराब, राह, रहीक़, (फ़ा०)—म, (अ०) वाइन Wine, स्पिरिट Spirit, (ले०)—वाइनम् Vinum।

नबीज़ व फ़ुक्का(का)अ—इन उभय सज्ञाओंके प्रयोगमें बहुत कुछ मतभेद है। अस्तु, साहब मञ्जद लिखते हैं, "नबीज—वह मदिरा है जो अगूर या छोहारेसे प्रस्तुत की जाती है।" इसी प्रकार सामान्य मद्यको भी नबीज कहते हैं। "फ़ुक्काअ—वह मदिरा है, जो जौसे प्रस्तुत की जाती है।" सस्कृतमें इसे 'कोहल' कहते हैं। अन्य लेखकोने लिखा है कि नबीज़ एक विशेष प्रकारकी अपरिस्रुत[3] मदिरा है। इसके निर्माणकी विधि उन्होने इस प्रकार लिखी है—प्रथम कतिपय औषध द्रव्योको (जिनमें ऐसे उपादान भी पाये जाते हैं, जो अभिषव वा-तखमीरके उपरात सुरासारमें परिणत हो सकें, उदाहरणत श्वेतसार और शर्करामय उपादान) क्वाथ करते हैं। पुन इस क्वाथमें अन्य औषध द्रव्योंको भिगोकर छोड देते (सधान करते) हैं। इस प्रकारके बने हुए मत्बूख तखमीरो या जाशांदा तखमीरीको आयुर्वेदका परिभाषामें अरिष्ट कहा जाता है। नबीजहीके लगभग दरबहरा है। अर्थात् यह भी एक प्रकारकी अपरिस्रुत मदिरा है, जिसके निर्माणकी विधि यह है—कतिपय औषध द्रव्योको भिगोकर खमीर उठनेके लिये छोड देते हैं। जब उसमें भली-भाँति उबाल उत्पन्न होनेके उपरात उबाल वद हो

---

१ अभिषव वा सधान (तखमीर)की क्रियासे श्वेतसार और शर्कराके उपादान परिवर्तन (इस्तिहाला व तगय्युर)के फलस्वरूप सुरासार (जौहर शराब, अल्कुहोल)में परिवर्तित हो जाते हैं, जो अर्क खींचते समय जलके साथ ऊर्ध्वपातित हो जाते हैं। पुन जब बार-बार उसको परिस्रुत किया जाता है, तब जलकी मात्रा अल्पतर होती चली आती है, क्योंकि जल अपेक्षाकृत कम सूक्ष्म है और सुरासार अधिक सूक्ष्म है। इसलिये हर बार उड़नेमें सुरासार श्रेष्ठतर होता जाता है और जलसे अधिक चला जाता है। इसलिये बार बार चुआई हुई मदिरा (शराब मुकर्रर) परम वीर्यवान् होती है। वेदोंमें कई जगह सुरा-सज्ञाका प्रयोग हुआ है। खम्र खमीर का लघु रूप है, खम्र = खमीर करना, मदिरा, शराब।

२ इसे सस्कृतमें सुरासार या मद्यसार, अरबीमें रूहुल्खमर, फारसीमें शराब मुकर्रर, उर्दूमें जौहर शराब और ॲंगरेजीमें ऐल्कोहल (Alcohol) कहते हैं।

३ नबीजकी कतिपय कल्पनाओंमें यह लिखा हुआ भी मिला है कि यदि चाहे तो इसे अर्करूपमें परिस्रुत भी कर सकते है। परिस्रुत मदिरा = सुरा।

जाता है, तब छानकर उपयोग करते हैं। इस प्रकार बने हुए नकूअ तख्मीरी या खिसादा तख्मीरीको आयुर्वेदमें आसव कहते हैं, उदाहरणत लोहासव (नबीज़ फौलाद)। उपर्युक्त दोनों दशाओमें द्रवके अतर्भूत औषधद्रव्य और मद्यके उपादान परस्पर मिश्रीभूत होते हैं। इन दोनोको एक ही नाम साइलात तख्मीरीसे सबोधित कर सकते हैं। अँगरेजीमें इनको फर्मेन्टेड लाइकर्स (Fermented liquors) कह सकते हैं

वक्तव्य—शार्ङ्गधर प्रभृति कई आचार्योंने क्वाथ करके बनाया हुआ अरिष्ट और विना क्वाथ किये हुये बनाया हुआ आसव "यदपक्वौषधाम्बुभ्या सिद्ध मद्य स आसव । अरिष्ट क्वाथसाध्य स्यात्"—(शा० म० अ० १०), यह आसव-अरिष्टकी परिभाषा लिखी है। यूनानी ग्रथोमें आसव-अरिष्टका जो उपर्युक्त विवरण दिया गया है, उसमें इसी परिभाषाको लक्ष्यमें रखकर विवरण किया गया है, परतु चरक-सुश्रुत आदिमें इन कल्पोका नाम देते समय इस परिभाषाका व्यभिचार देखनेमे आता है।

शर्बत—उस प्रवाही मधुर कल्पको कहते हैं, जो फलोंके रस (उदाहरणत अगूर, अनार, सेब, फालसा इत्यादि) और चीनी या मिश्री मिलाकर और चाशनी बनाकर प्रस्तुत किये जाते है अथवा औपधद्रव्योको भिगोकर या उबालकर छान लेते हैं और उसमें (अर्थात् द्रव्योके हिम, फाण्ट या क्वाथमें) चीनी मिश्री या मधु मिलाकर चाशनी बना लेते हैं, उदाहरणत शर्वत बनफशा, शर्वत उन्नाब इत्यादि। अर्कोंकी सूरतमें सादा तौर पर अर्कमें चीनी इत्यादि सम्मिलित करके चाशनी प्रस्तुत कर लिया जाता है, उदाहरणत शर्वत केवडा, शर्वत गुलाब इत्यादि। अथवा औषधियोंका लुआव (पिच्छा) या शीरा लेकर यथाविधि चीनी मिलाकर शर्वत कल्पना की जाती है, उदाहरणत शर्वत बादाम इत्यादि। अरबीमें शर्वतको 'शराब' कहते हैं। आयुर्वेदकी परिभाषामें इसे 'शार्कर'[1] कहते हैं। पर्य्या०—शर्वत, शराब (बहुव०–अशरिबा, शराबात)—अ०। शर्वत (बहुव०–शर्वतहा)—फा०। शार्कर—स०। सिरप् Syrup (बहुव०–सिरप्स Syrups)—अ०। सिरुपस Syrupus (बहुव० सिरुपी Syrupi)—ले०। (अरबी 'शुर्ब' = पीना)।

वक्तव्य—अरबी 'शर्वत' और 'शराब' इन उभय सज्ञाओका धात्वर्थ 'पेयपदार्थ' (Drink) है। शर्वत सज्ञाका व्यवहार इसके सिवाय "औषधकी सेवनीय मात्रा"के अर्थमें भी होता है। शराब सज्ञासे बहुधा 'मद्य'का अर्थ लेते हैं। मिस्रमें सम्प्रति शराब सज्ञाका व्यवहार पारिभाषिक शर्वत (शार्कर)के अर्थमे होता है। यही अर्थ उपर्युक्त अँग्रेजी और लेटिन सज्ञाओंका है। अरबी शर्वत एव शराब सज्ञाका व्यवहार 'पानक'[2] के अर्थमें भी होता है। यूनानी कल्पोमें यह सबसे प्राचीन कल्प बतलाया जाता है। कहते हैं कि इसके आविष्कर्ता पीथागोरस (Pythagorus) हैं जिसका अरबी रूपातर फीसागोरस है।

सिकजबीन—यह भी वस्तुत एक शर्वत है जो सिरका और शहद (या चीनी)से बनाया जाता है। सिकजबीन फारसी 'सिरकङ्गबीन' (सिरका = शुक्त, अगबीन = मधु)से अरबीकृत सज्ञा है। इसका सस्कृतमें 'मधुशुक्त' या 'शुक्त शर्कर' नाम रखना उचित है। डॉक्टरीमें इसे ऑक्सिमेला (Oxymella) कहते हैं। यह भी यूनानीका प्राचीन कल्प है।

दयाकूजा—यह भी वास्तवमें एक प्रकारका शर्वत है, जिसका प्रधान उपादान पोस्तेकी डोंडी (पोस्त खश-खाश) है। यह यूनानी भाषाका शब्द है जिसका अर्थ 'शर्वत खशखास' है। यह पोस्तेके दानों (तुख्म खशखाश)से नहीं, अपितु पोस्तेकी डोंडीसे बनाया जाता है। कोई-कोई मिश्रामिश्र शर्वतखशखाशके अर्थमें उक्त सज्ञाका व्यवहार करते हैं।

---

१ द्रव्यगुणविज्ञानम् में लिखा है—"हिमे फाण्टे शृतेऽर्के वा शर्करा द्विगुणां क्षिपेत् । मन्देऽग्नौ साधित पूत पटात्तच्छार्कर स्मृतम् ॥"

२ पानक या पन्नाके सबधमें द्रव्यगुणविज्ञानम् में लिखा है—"फलमम्ल जले स्विन्न शीताम्बुपरिमर्दितम् । सितामरिचसमिश्र पूत स्यात् पानक वरम्" ॥

सिरका—जिस द्रव्यमें शर्करा या श्वेतसारके उपादान हो, यदि उसका रस या क्वाथ वा फाण्ट-जल लेकर या स्वय उनको जलमें भिगोकर कुछ दिनो रख छोडें, जिससे उसमें अम्लता उत्पन्न हो जाय, तो इसे ही सिरका कहते हैं। इसी सिद्धात पर इक्षुरस, जामुनका रस, गुड, अगूर, खजूर, अजीर, ताडी, जौ, गेहूँ, चावल इत्यादिसे सिरका वा शुक्त प्रस्तुत किया जाता है। सिरकाका रग रक्ताभ-पीत अर्थात् भूरा होता है, और स्वाद अम्ल एव तीक्ष्ण और गध विशेष प्रकारकी होती है। परन्तु सिरकाको जब परिस्रुत कर लिया जाता है, तब उसका भूरा रग स्वच्छतामें परिणत हो जाता है। सिरका वस्तुत सधानक्रियाका एक परिणाम है। जिस खमीरके प्रभावसे सिरका प्रस्तुत होता है उसे (सिरकाकी जननी—शुक्तबीज) कहा जाता है। यही कारण है कि द्रवमें जोडनकी भाँति थोडा-सा सिरका मिला दिया जाता है, या सिरका ऐसे पात्रमें बनाया जाता है, जिसमें पूर्वसे सिरकाका असर वर्तमान होता है—उदाहरणत मिट्टीका बरतन जिसमें पहलेसे सिरका रखा हुआ हो। फलत शुक्त बीज घडे वा मटकेकी दीवारोमें विद्यमान होता है, जो रसको सिरकामें परिणत कर देता है। शराब चूँकि इसी प्रकारके शर्करामय और श्वेतसारीय पदार्थसे बना करती है, अतएव शराब (मद्य) भी सिरकाके रूपमें सरलतापूर्वक परिणत हो जाती है। पर्य्या०—खल्ल (बहुव०–खुलूल)—अ०। सिरका (बहुव०–सिरकहा)—फा०। शुक्त, चुक्र–स०। सिरका—हिं०। विनेगर Vineger–अ०। एसीटम् Acetum (बहुव० एसीटा Aceta)–लै०।

मुरिय्य—इसको फारसीमें आबकामा तथा सिरकए हिंदी और हिंदीमें काँजी कहते हैं। यह भी वास्तवमें एक प्रकारका सिरका है, जो सिरका ही की भाँति प्रस्तुत किया जाता है। इसके प्रयोग और उपादान भिन्न-भिन्न हैं। यथा—(१) राई, लवण, जीरा और अजवायन, (२) चावल, गेहूँ, जौ या ज्वार इत्यादि, (३) गेहूँकी रोटी, सिरका, लवण, पुदीना, सोंठ, काली मिर्च इत्यादि। इन द्रव्योको पानीमें डालकर अम्ल होने तक छोड देते हैं।

वक्तव्य—आबकामा 'आब = जल और कामा = कामुख = सालन या अचार' इन दो शब्दोका यौगिक है। इस विचारसे आबकामाका अर्थ 'पानीका अचार' या 'पानीका सालन' हुआ। मुरिय्य और आबकामा वस्तुत यूनानी कल्पना द्वारा निर्मित काँजीका नाम है। अतएव उसे काँजी विलायती कहना चाहिये। भारतीय कल्पनाको काँजी (काञ्जिक) और सिरका हिंदी (शुक्त) कहते हैं। उपर्युक्त कल्पनामें तृतीय कल्पना यूनानी है।

जोशाँदा—एक वा अनेक औषध द्रव्योंको साधारण या औषधीय जल अथवा किसी अर्कमें न्यूनाधिक उबाल कर छान लेते हैं। यही छनाहुआ द्रव जिसमें औषध द्रव्यके विलीनीभूत अवयव होते हैं, जोशाँदा[1] कहलाता है। यह कभी पिलाया जाता है और कभी बाह्य रूपसे उपयोग किया जाता है। जोशाँदाके औषध (क्वाथ्य) द्रव्य कभी कुछ घटे पूर्व या रात्रि भर भिगो दिये जाते हैं। इसके उपरात क्वाथ किये जाते हैं। जोशाँदा (क्वाथ) और खेसाँदा (फाण्ट) होनेके उपरात कभी उसमें ऊपरसे पिसे हुये या बिना पिसे हुये[2] शुष्क औषधद्रव्यका प्रक्षेप[3] देते हैं। इनको सरदारू (सरदारूज) कहते हैं। सरदारूज फारसी सरदारू (सर = सिर वा शीर्ष, दारू = औषध अर्थात् औषधका सिर या औषधका ऊपरी भाग)का अरबीकृत सज्ञा है। आयुर्वेदकी परिभाषामें इसे 'प्रक्षेप' द्रव्य कहते हैं। पर्य्या०—क्वाथ, शृत, निर्यूह–स०। तबीख, मत्बूख, (बहुव०–मत्बूखात), मुग़ला—अ०। जोशाँदा

१ गियासुल्लुगातके अनुसार यह 'दयाकूदा' यूनानी सज्ञाका अरबीकृत रूप है। उसके मतसे इसका अर्थ 'शर्बत खशखास' है।

२ इसको आयुर्वेदमें क्वाथ, शृत और निर्यूह कहते हैं। चरकमें लिखा है—"वह्नौ तु क्वथित द्रव्य शृतमाहुश्चिकित्सका।" (च० सू० अ० ४)। "क्वाथो निर्यूह।" (अ० स० क० अ० ८)।

३ जैसा कि खाकसीको बिना पिसे ऊपरसे प्रक्षेपकर (छिड़क) दिया जाता है और प्रयोगमें लिखा जाता है "बालायश खाकसी पाशीदा" अर्थात् उसके ऊपर खाकशी छिड़की हुई।

(बहुव० जोशाँदहा)—फा० । काढा—हिंदी । डिकॉक्शन Decoction, टिजन् Ptisan–अ० । डिकॉक्टम् Decoctum—लै० ।

माउल्उसूल (अ० माऽ = पानी, उसूल, अस्लका बहुवचन = जडें)—यह भी एक प्रकारका क्वाथ है, जिसमें ओषधियोंके मूल पडते हैं, जैसे—बेखबादियान (मिश्रेया मूल), बेख कासनी (कासनीमूल), अस्लुस्सूस (मुलेठी) इत्यादि । वस्तु, सस्कृतमें इसे मूलक्वाथ कहना उचित है ।

माउल्बुजूर—(अ० माऽ = पानी, बुजूर, बज्रका बहुवचन = बीज अर्थात् बीजोका पानी)—यह भी एक प्रकारका क्वाथ है जिसके योगमें कतिपय बीज सन्निवेशित होते हैं, जैसे—तुख्म खियारैन (ककडी और खीरा दोनोके बीज) इत्यादि । सस्कृतमें इसका 'बीजक्वाथ' नाम रखना उचित है ।

खेसांदा—एक वा अनेक ओपधद्रव्योंको कूटकर या अधकुट करके या यूँ ही (समूचा), साधारण या औषध सिद्ध जल अथवा किसी अर्कमें कुछ देरके लिये भिगोकर रख देते हैं । पुन ओपधियोको मलकर या बिना मले छान लेते हैं । यही छना हुआ पानी जिसमें ओपधद्रव्यके घुले हुये (महलूल) अवयव सम्मिलित होते हैं, खिसांदा वा खेसांदा[1] कहलाता है । जोशांदाकी भांति खेसांदाके प्रयोगमें भी अधिकतया वानस्पतिक (औद्भिद) द्रव्य उपयोग किये जाते हैं । पर्य्या०—शीत (कषाय), हिम, फाण्ट, चूर्णद्रव—स० । नकूअ, नकीअ, मकूअ (बहुव०—मकूआत)—अ० । खिसांदा (बहुव० खिसांदहा), खेसांदा—फा० । इन्फ्युजन Infusion–अ० । इनफ्युजम Infusum—लै० ।

वक्तव्य—यूनानी वैद्यकमें 'हिम' और 'फाण्ट' इन दोनोको खेसांदा कहते हैं । शीत और हिमको अँगरेजीमें कोल्ड इन्फ्युजन (Cold infusion) कहते हैं । यदि कोई ओपधद्रव्य जलकी जगह मद्य या मद्यसार (जौहर शराब या रूह शराब)में भिगोया जाय और उसका खेसांदा (फाण्ट) प्रस्तुत कर छान लिया जाय, तो उसे सबीग्र कहा जाता है । यह शब्द 'अरबी सब्ग (रगना)'से व्युत्पन्न है । अँगरेजी टिंक्चर (Tincture) शब्दका भी यही अर्थ है । मद्यघटित फाण्टों (शराबके मन्कूआत)में रगीन अवयव भी घुलकर द्रवमें आ जाते हैं, इसलिये इसको सबीग (रगीन, वर्णयुक्त) कहा जाता है । इस प्रकारके कल्पको पाश्चात्य वैद्यकमें टिंक्चर (Tincture) और आयुर्वेदमें सुरासव या मद्यासव मतातरसे वारुणीसार कहते हैं । चरकमें लिखा है—"आसुत्य च सुरामण्डे मृदित्वा प्रसृत पिबेत्" । (च० क० जामूतकादिकल्प अ० २) । "सुग्या सूयते तोयकार्यं क्रियते यस्मिन् स सुरासव" । (डल्हण) । पर्य्या०—सुरासव, मद्यासव, मतातरसे वारुणीसार—स० । सबीग, सिबगा (बहुव० अस्बाग)—अ० । टिंक्चर (Tincture)—अ० । टिंक्च्युरा (Tinctura)–लै० ।

वक्तव्य—प्राचीन अरबी यूनानी वैद्य भी ओपधद्रव्योको मद्यमें भिगोकर उनका फाण्ट प्रस्तुत किया करते थे । इसको वे खिसांदाखम्मरी या नकूअ खमरी (मद्यघटित फाण्ट) कहते थे । यह भी वस्तुत टिंक्चर और सुरासव जैसी कल्पना थी । अस्तु, इस प्रकारके खिसांदाका उदाहरण मुहीतआजममे भी शैलमके वर्णनमें मिलता है ।

हलीब (शीरा)—(१) कतिपय ओपधद्रव्योंकी प्रयोगविधि यह है, कि उनको जल या अर्कमें पीसकर और छानकर या बिना छाने पिला देते है, इसे ही 'शीरा' (हलीब) कहते हैं । शीरोकी भौतिक स्थिति (किवाम) न्यूनाधिक दूध जैसी प्रवाही हुआ करती है । शीराके रूपमें अधिकतया गिरियाँ और बीज उपयोग किये जाते हैं—उदाहरणत मीठे कद्दूके बीजकी गिरी, बादामकी गिरी, खीरा-ककडीके बीज (तुख्म खियारैन), खुरफाके बीज, काहूके बीज इत्यादि । कभी-कभी आलूबुखारा और बेलगिरी जैसे द्रव्य शीराके रूपमें उपयोग किये जाते हैं । गिरियाँ (मग्जियात) और वे बीज जिनमें श्वेत गिरियाँ होती है शीराके रूपमें दूधकी तरह (क्षीरवत्) श्वेत दृष्टिगत होते हैं । इसी कारण प्रथमत उन्हें शीरा (शीर = क्षीर) या हलीब (हलब—सद्य क्षीर) कहा गया । इसी प्रकार अरबी सज्ञा

---

[1] खेसांदा आयुर्वेदोक्त 'फाण्ट' ही है । अतर केवल यह है कि फाण्ट उबलते हुये जलमें औषधद्रव्य डालकर बनाया जाता है । यथा—"क्षिप्तवोष्णतोये मृदित तत् फाण्टमभिधीयते" ।। (च० सू० अ० ४) ।

हलीव भी हलब (दूध दूहना या शीरा निकालना)से व्युत्पन्न है। इसके उपरात उक्त सज्ञाका व्यवहार इस प्रकार जलमें पिसे हुये सभी पदार्थोंके अर्थमें, चाहे वे क्षीरवत् श्वेत हो अथवा न हों, होने लगा अर्थात् उन्हें शीरा कहने लगे। (२) एरड तैल और बबूलके गोदके लबावको यदि भलीभाँति खरलमें आलोडितकर मिलाया जाय, तो दोनों यद्यपि एक दूसरेमें विलीन नही होते, तथापि परस्पर मिश्रीभूत होकर शीराके रूपमें परिणत हो जाते हैं। इसे भी परिभापाके अनुसार शीरा कहा जाता है और जो अविलेय वस्तु इस प्रकार प्रस्तुत की जाती है, उसे यही नाम दिया जाता है। उक्त अवस्थामें स्नेहके अवयव विलीन होनेकी जगह पिच्छिल द्रवमें निलबित होते हैं। अतएव उक्त क्रियाको तअ्लीक (निलबन) कहा जाता है। कुछ स्नेह इस प्रकारके हैं कि जब उनमें कोई क्षारद्रव्य या कोई औषधद्रव्य मिलाया जाता है, तब स्नेह एक श्वेत शोराके रूपमें परिणत हो जाता है। उक्त क्रियामें स्नेहावयव परिवर्तन और परिणामके फलस्वरूप साबुनी उपादानोंमें परिणत हो जाते हैं। इसलिये उक्त क्रियाको तसब्बुन (साबुन बनना) कहा जाता है।

लुआब—कुछ औपधद्रव्य पिच्छिल (लुआबी) हैं, जिनके पिच्छिलावयव (लुआबदार अजज़ाऽ) जल और अर्कमें भिगोकर प्राप्त किये जाते हैं, जिसे लुआब (पिच्छा) कहा जाता है। तात्पर्य यह कि लुआब वस्तुत औषध-द्रव्योका फाण्ट है—उदाहरणत लुआव बिहदाना, लुआव रेशाख़त्मी, लुआब समग़अरबी (बबूलके गोदका लबाब), लुआब तुख़्मकत्तान (अलसीका लवाव) इत्यादि। पर्य्या०—अरबी लुआवका बहुवचन 'लुआबात' है। म्युसिलेज Mucilage—अ०। म्युसिलेगो mucilago—लें०।

मज़ीज—अरबी 'मज्ज' और 'मिज़ाज' का अर्थ मिश्रण वा मिलावट है। मज़ीज इसी मज्ज धातुसे व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ मिली हुई वस्तु वा द्रव्य (मख़्लूत) है। परिभाषामें मज़ीज ऐसे द्रव्यको कहते हैं जिसमें जलके अतर्भूत सामान्य रूपसे कोई औषधद्रव्य विलयनके रूपमें या किसी लुआवके भीतर अविलेय द्रव्यके उपादान अवलबित रूपमें हो। उक्त परिभाषाके अनुसार लुआब और शीरा उभय मज़ीजके प्रकारान्तर है। पर्य्या०—मज़ीज (बहुव० मज़ाइज), ममज़ूज (बहुव० मम्ज़ूजात)—अ०। मिक्सचर Mixture—अ०। मिस्च्युरा Mistura—लें०। सस्कृतमें इसका 'मिश्रण' नाम रखना उचित है।

ज़ुलाल—कुछ औषधद्रव्योको (चाहे उसके भीतर न्यूनाधिक लुआब वर्तमान हो या न हो) जल या अर्कमें सामान्यतया भिगो दिया जाता है और बिना मले उसके ऊपरका निथरा हुआ पानी छान लिया जाता है। इसीको 'ज़ुलाल' कहते है। उदाहरणत —ज़ुलाल आलूबोखारा, ज़ुलाल तमरहिन्दी (इमली का ज़ुलाल), ज़ुलाल गिल मुलतानी इत्यादि।

वक्तव्य—ज़ुलाल शीतकषाय (Cold infusion)का ही एक भेद है।

महलूल—लवण, शर्करा और इसी प्रकार अन्यान्य बहुश विलेय खनिज, वानस्पतिक और प्राणिज द्रव्य जल या किसी अन्य द्रवमें विलीन हो जाया करते है। इसी प्रकारके घुले हुये (विलीन) पदार्थ महलूल व सय्याल कहलाते हैं, उदाहरणत नमक महलूल, काफ़ूर सय्याल इत्यादि। इसे सस्कृतमें विलयन' या 'द्रव', हिंदीमें 'घोल' और अगरेजीमें सोल्युशन (Solution) कहते हैं। यूनानी वैद्यकमें बहुत महीन पिसे हुये औपधद्रव्यको भी महलूल कहा जाता है, उदाहरणत मरवारीद महलूल (मुक्ता पिष्टी)। परतु इसका निरूपण इस समय विवक्षित नही है। आयुर्वेदमें पिष्टी या पिष्टिका इसी प्रकारके कल्प हैं।

नतूल (परिषेक, तरेडा)—वह प्रवाही औषधि (क्वाथ, फाण्ट, मिश्रण वा मज़ीज और घोल) जो शरीरके किसी अग-प्रत्यग पर शीतल या उष्ण होनेकी दशामें डाली जाय। इस क्रियाको तन्तील (सेचन, परिसेचन) कहा जाता है। धारे जानेवाले द्रवकी शीतलता और उष्णताके विचारसे इसे नतूल हार्र (उष्ण परिषेक) और नतूल बारिद (शीतल परिषेक) कहा जाता है। नतूलको अँगरेजीमें 'डूश (Douche)' और 'इरिगेशन (Irrigation)' कहते हैं।

सकूब—शीतल या उष्ण जल (जोगांदा या खेसांदा) जो कुछ ऊँचाईसे सपूर्ण शरीर या शरीरके किसी भाग पर गिराया जाय, इस क्रियाको 'सकूब (धारना)' कहा जाता है, उदाहरणत सन्निपात विशेष (सरसाम) और उन्माद इत्यादिमें शीतल जल रोगीके सिर पर धारा जाता है, जिसे 'मकूब बारिद' कहा जाता है और जलके उष्ण होनेकी दशामें सकूब हार्र।

वक्तव्य—दूरसे तरेडा करनेको नतूल और समीपसे धीरे-धीरे धारनेको सकूब कहते हैं। सकूब बारिद (इन्सकाब)को अँगरेजीमें कोल्ड डूश (Cold douche) और सकूब हार्रको हॉट डूश (Hot douche) कहते हैं।

ग़ुसूल, ग़स्सूल—वह प्रवाही औषध (चाहे वह विलयन रूपमें हो अथवा साधारण मिश्रण रूपमें) जिससे किसी अवयवको धोया जाय या भिगोया जाय। पर्य्या०—धावन—स०। गसूल, गस्सूल (बहुव० गसूलात)—अ०। लाशन (Lotion)—अं०। लोशियो (Lotio)—ले०।

आबज़न—यह फारसीका शब्द है, परतु अरबीमें भी यही शब्द प्रयुक्त है। किसी बडे पात्र, जैसे टब इत्यादिमें कुनकुना पानी या औषधद्रव्योंका स्वच्छ और कोष्ण क्वाथ, फाण्ट या कोई औषधीय द्रव भरकर उसमें रोगीको जल शीतल होने तक बिठाना 'आबजन' कहलाता है। पर्य्या०—अवगाह—स०। आबज़न, आबजन रतब—अरबीकृत, हम्माम जलूसी—अ०। सिट्जबाथ (Sitz-bath), हिप बाथ (Hip bath)—अ०।

पाशाया—यह फारसी शब्द है (पा = पाद, पैर, शोया = धोई, शुस्तन = धाना)। वह क्रिया जिसमें रोगीके पाँव साधारणतया उष्ण जल या औषधियोंके कोष्ण क्वाथ या द्रवमें घुटनों तक डाले जाते हैं अथवा डालकर धोये जाते हैं और पाँवको घुटनोसे नीचेकी ओर सोंता या मला जाता है। इसके समान ही दस्तशोया (हस्त-स्नान)की क्रिया है। पर्य्या०—पादस्नान—स०। पाशोया, गस्लेपा, गस्ले कदमी—अ०। फुटबाथ (Foot bath) अं०।

नजूह (बहुव०—नजूहात)—परिषेक वा छिडकनेको प्रवाही औषध। वह द्रव जो रोगीके शरीरपर छिडकनेके लिये उपयोग किया जाता है, जिस तरह गुलाब पुष्पपार्क (अर्क गुलाव) और अर्क केवडाको गुलाबपाशमें डालकर छिडका जाता है।

वजूर (बहुव०—वजूरात)—वह प्रवाही औषधि जो कण्ठके भीतर टपकाई जाय। वह औषध जो रोगी या शिशुके मुखमें चमचा इत्यादिसे उस समय डाली जाती है, जबकि वह स्वय खान-पानके अयोग्य होता है। बशूग़।

ज़रूक़—(बहुव०—ज़रूकात, अरबी ज़र्क = पिचकारी करना)—पिचकारीकी औषधी। वह द्रवकल्प जो पिचकारी (ज़र्राका, मिज़रका, मिहक़ना)के द्वारा मूत्रद्वार, योनि, नासिका, कर्ण, नाडीव्रण इत्यादिमें पहुँचाया जाय। विभिन्न स्थानोंके विचारमे पिचकारीकी औषधियोके अनेक भेद हैं, उदाहरणत वस्ति वा हुक्ना (ज़रूक मिअ्वी), उत्तर वस्ति (ज़रूक इह्लीली), नासाप्रक्षालन या नासाधावन (ज़रूक अन्फी), योनिवस्ति (ज़रूक मह्बिली), त्वगधोऽन्त क्षेपकी औषधि (ज़रूक तह्तुल्जिल्द), पेश्यन्त क्षेप (ज़रूक अज्ली), सिरात क्षेप (ज़रूक वरीदी) इत्यादि।

वक्तव्य—पिचकारीको अँगरेजीमें सीरिंज (Syringe) कहते हैं। त्वग्भेदकर पिचकारीके द्वारा औषधोंका जो द्रव कल्प (ज़रूक़) शरीरके भीतर प्रविष्ट किया जाता है, उसको और उक्त क्रिया दोनोको अँगरेजीमें इजेक्शन (Injection) कहते हैं।

सऊत (बहुव०—सऊनात)—नासिकामें टपकानेकी तर औषधि। पर्य्या०—सऊन—अ०। नस्य, नावन (सुश्रुत), मर्श (वाग्भट, वृद्धवाग्भट)—स०।

वक्तव्य—अवपीडनस्य भी यूनानी सऊत का एक भेद है जिसमें औषधद्रव्योंके कल्कको कपडेमेंसे उँगलियोंसे दबाकर नाकमें उसका स्वरस निचोडते हैं। आयुर्वेदमें यद्यपि 'नस्य' या 'नावन' शब्द सामान्यतया सब प्रकारके

नस्योंके लिये प्रयुक्त होता है, तथापि नाकमें जो स्नेह डाला जाता है उसके लिए विशेष अर्थमें भी नस्य या नावन शब्दका प्रयोग होता है, यथा—"तत्र य × × × × स्नेहो विधीयते तस्मिन् वैशेषिकको 'नस्य' शब्द । (सु० चि० अ० ४०) । इस अर्थमें ये प्राय यूनानी 'सऊत'के पर्याय है । सऊत और नशूकका अर्थ भेद—जल या स्नेहके प्रकारकी जो वस्तु नाकमें टपकाई जाय वह 'सऊत' है और जो वस्तु नाकसे सुडकी जाय वह 'नशूक' है । नस्यकी महीन पिसी हुई औषधिको 'अतूस' कहते हैं ।

तिला (वहुव० अतूलिया)—लेपकी वह औषधि जो पतली और प्रवाही हो चाहे वह स्नेह वा रोगनके प्रकारकी हो अथवा विलयन और जलीय (माइयत) इत्यादिके प्रकारकी । पतला लेप । पर्य्या०—इम्ब्रोकेशन Embrocation, लिनिमेंट् Liniment, पेंट Paint, पिगमेंट Pigment—अ० ।

मरूख—वह स्नेह या स्नेहौषधकल्प जो शरीर पर चुपडा जाय । अभ्यञ्जनीय तैल (मालिशका तेल) आदि जिसे शरीर पर मर्दन करें । तेल चुपडनेकी क्रियाको तम्रीख (तेल लगाना, तेल या किसी औषधिका शरीर पर अभ्यग करना) कहा जाता है । पर्य्या०—मरूख (वहुव० मरूखात, मरावुख),

दुह्न (वहुव० दुह्नात), दहान—अ० । रोग़न मालिश, दवा मालिश–फा० । लिनिमेंट Liniment, इम्ब्रोकेशन् Embrocation—अ० । लिनिमेंटम् Linimentum—ले० ।

मसूह (वहुव०–मसूहात)—(१) वह औषधकल्प जिसे साधारणरूपसे शरीर पर लगाकर हाथ फेरा जाय, जोरसे मलनेका प्रयास न किया जाय । (२) गाजा–उबटना । शुष्क औषधकल्प जिसे शरीर पर मला जाय । (३) खजाइनुलमुलूकके अनुसार एक योगौषध कल्प जिसे शिश्नपर मर्दन करते हैं । इससे उसमें शक्ति आती है और मैथुनमें आनद प्राप्त होता है ।

दलूक (वहुव०—दलूकात)—मालिशकी दवा । वह औषध-कल्प जिसे शरीर पर लगाकर भलीभाँति उसकी मालिश की जाय । मालिशकी क्रियाको दल्क (मालिश करना, मलना-दलना) कहा जाता है । इसके कतिपय निम्न भेद हैं—(१) दल्क कवी, (२) दल्क जईफ, (३) दल्क खशिन और (४) दल्क अम्लस इत्यादि ।

दुह्न (वहुव० अद्हान)—वह ज्वलनशील द्रव जिसका जलके साथ मेल नही खाता । चर्वी, मोम और घी एक विशेष उत्ताप पर सान्द्र वने रहते हैं, परतु उनका सगठन और गुण-धर्म स्नेहोंके समान हैं । इस कारण इनको भी वहुधा तेल कहा जाता है । विविध प्रकारके तेल वहिराभ्यातरिक रूपसे, विभिन्न रीतिसे उपयोग किये जाते हैं । पर्य्या०—स्नेह, तैल–स० । दुह्न, रोग़न,–अ० । तेल–हिं० । ऑइल Oil–अ० । ऑलियम् Oleum–ले० ।

वक्तव्य—तेल मलने वा लगनेकी क्रियाको अरवीमें दह्न, तद्हीन, इद्हान और अँगरेजीमें ल्युब्रिकेशन् Lubrication कहते हैं ।

मज्मजा (वहुव० मजामिज)—कुल्लीकी औषधि । वह प्रवाही कल्प चाहे वह क्वाथ हो या फाट या विलयन अथवा मिश्रण (मज़ीज) इत्यादि, जिसे (सारे) मुखमें घुमा-फिराकर वाहर फेंक दिया जाय (कुल्ली कर दिया जाय) । यह कठ तक नही पहुँचाया जाता । कुल्ली या मजमजाकी औषधिको मज़ूज़ा (वहुव० मज़ूज़ात) भी कहते हैं । इसके विपरीत 'मसमसा'की औषधि केवल आधे मुँहमें फिराई जाती है । आयुर्वेदमें मज्मजाको 'कवल' और मसमसाको 'कवलग्रह' कहते हैं ।

गरग़रा (वहुव० गराग़िर)—कुल्ली (मज्मजा)की भाँति यदि कोई प्रवाही कल्प आकठ पहुँचाकर वाहर फेंक दिया जाय तो उसे गरगरा या गरारा कहते हैं । किसी द्रव पदार्थको कठमें घुमाना-फिराना । आयुर्वेदमें इसे 'गण्डूप' और अँगरेजीमें गारगेरिज्मा Gargarisma या गार्गल Gargle कहते हैं ।

खिज़ाब—वह औषधि (मेंहदी या वस्मा-नील इत्यादि) वा कल्प जिससे श्वेत वालोंको रगीन किया जाय । चाहे उन पर काला रग चढाया जाय या कोई और रंग । स्वरूपके विचारसे यह प्रवाही भी होता है और अर्धसान्द्र भी । (अरवी ख़ज़्व = रंग चढाना, रँगना । सस्कृतमें इसे 'केशकल्प' या 'केशरञ्जन' कहते हैं ।

सब्ग़—जिस ओषधिसे त्वचाके वर्णको परिवर्तित किया जाता है, चाहे उससे स्थायी वर्ण प्राप्त हो या अस्थायी, उसे सब्ग़ और साबिग कहा जाता है; जैसा कि श्वित्र (बरस)के श्वेत चिह्नको दूर करनेका प्रयत्न किया जाता है। स्वरूपके विचारसे यह भी प्रवाही होती है और अर्धसान्द्र भी। उक्त क्रिया (रजन)को भी सब्ग़ ही कहा जाता है। सवर्णकरण—स०।

हुक्ना (बहुव०-हुक़न्)—वह प्रवाही ओषध और आहार जो पिचकारी (वस्तियन्त्र)के द्वारा गुदा-मलद्वारमें प्रवेशित किये जायँ। उक्त क्रियाको इहतिक़ान या हुक्न कहा जाता है। पर्य्या०—हुक्ना, अमल—अ०। दस्तूर—फ़ा०। बस्ति, बस्तिकर्म—स०। पिचकारी—हिं०। ऐनीमा Enema, ऐनीमेटा Enemata, क्लिस्टर Clyster, लेवीमेन्ट Levement, रेक्टल इन्जेक्शन Rectal injection—अ०। वस्तियन्त्रको अरबी और अँगरेजीमें क्रमश 'मिहक़ना' और 'अनीमा सीरिंज' कहते हैं। जिसको वस्ति दी जाती है, उसे अरबीमें 'मुहतक़िन' कहते हैं।

बख़ूर (बहुव०-बख़ूरात)—धात्वर्थ सुगध या सुगध-द्रव्य, जैसे—कस्तूरी, अबर, लोबान इत्यादि। परिभाषाके अनुसार वह कल्प जिसे जलाकर उसका धूआँ और वाष्प किसी अग तक पहुँचाया जाय। उक्त क्रियाको तब्ख़ीर (अग्नि पर ओषधद्रव्य जलाकर सपूर्ण शरीर या शरीरके किसी अग विशेष जैसे—नाक, कान इत्यादिमें यथाविधि धूम्र या गध पहुँचाना) और तद्ख़ीन कहा जाता है। (तब्ख़ीर = वाष्प पहुँचाना, तद्ख़ीन = धूआँ पहुँचाना)। पर्य्या०—बख़ूर, तब्ख़ीर—अ०। धूपन, धूप—स०। धूनी—हिं०। फ्युमिगेशन Fumigation—अ०।

वक्तव्य—शुष्क ओषधोंकी धूनी देनेको 'बख़ूर' और आर्द्र ओषधोंका वाष्प लेनेको बफारा या इकिबाब (वाष्पस्वेद या ऊष्मस्वेद) कहते हैं। नाकके द्वारा ओषधद्रव्योंका धूआँ खीचनेको आयुर्वेदमें 'धूम्रपान' लिखा है।

इकिबाब—धात्वर्थ 'औंधा करना'। परिभाषाके अनुसार क्वाथ या उष्ण जलके वाष्पको शरीरके किसी अग या सम्पूर्ण शरीर तक पहुँचाना। (कबूब = बफारेकी दवा। वह द्रव्य जिससे बफारा लिया जाय)। पर्य्या०—इकिबाब—अ०। ऊष्मस्वेद (नाडीस्वेद इसीका एक भेद है)—स०। बफारा देना—हिं०। व्हेपर बाथ Vapour bath—अ०।

शमूम—वह द्रव्य (कल्प) जिसे सूँघा जाय, जैसे—फूल, इत्र आदि। सूँघनेका शुष्क वा आर्द्र कल्प। उक्त अवस्थामें ओषधोंके सूक्ष्मावयव वाष्पके रूपमें उड़कर नाक और वायु प्रणालियों तक पहुँचते हैं। पर्य्या०—शमूम (बहुव० शमूमात), शम्मामा—अ०। आघ्राण—स०।

वक्तव्य—उक्त क्रियाको 'इश्माम' (सूँघना) कहते हैं। किसी शुष्क वा आर्द्र द्रव्य सूँघनेकी क्रियाको 'शम्म' या 'शुमूम' (बहुव० शुमूमात) कहते हैं।

लख़लख़ा—वह पतली ओषधि जो किसी चौड़े मुखके शीशीमें रखकर रोगीको सुँघाई जाय। प्राय लखलखे प्रवाही हुआ करते हैं। इसमें कभी कुछ सुगधित फूल इत्यादि भी डाल दिये जाते हैं। कभी ऐसा भी किया जाता है, कि किसी सुगधित शुष्क ओषधिको न्यूनाधिक कूटकर और पोट्टलीमें बाँधकर शुष्कावस्थामें या किसी प्रवाही द्रव्यमें क्लेदित करके सुँघाया जाता है। यह अतिम रूप वस्तुत 'शमूम'का है। लखलखाके रूपमें भी द्रव्योंके वाष्पीय घटक उड़कर नाक और वायुप्रणालियों तक पहुँचते हैं। पर्य्या०—लख़लख़ा (बहुव० लख़ालिख़)—अ०। आघ्राण, धूमपान (सु०)—स०। इन्हलेशन Inhalation—अ०।

नशूक़ (बहुव०-नशूक़ात। अरबी नश्क = सूँघना)—नशूक़के यह दो अर्थ हैं—(१) सूँघनेकी ओषधि। इस अर्थमें यह 'शमूम'का पर्य्याय है, (२) प्रवाही द्रव्य जो नाकमें सुड़का जाय। इस अर्थमें यह प्रवाही सऊत (द्रव नावन)का पर्याय है। उभयक्रियाओंको इन्शाक़ और इस्तिन्शाक़ 'नस्यकर्म' कहा जाता है।

किमाद—(१) वह वस्तु जिससे किसी अगको सेकें। (२) सेंक। टकोर। पर्या०—किमाद (बहुव०—किमादात, अकमिदा), तक्मीद—अ०। तापस्वेद—स०। तपाना, सेकना, टकोरना—हिं०। फोमेटेशन Fomentation—अ०।

कतूर—(क़ुतूर) वह प्रवाही औषधि, जो शरीरके किसी छिद्र, जैसे—कान, नाक, नेत्र आदिमें बूंद-बूंद टपकायी जाती है या उसमें वत्ती (फतीला) तर करके रखी जाती है। कानमें टपकानेकी दवाको, कुनकुना टपकाना चाहिये। पर्य्या०—कतूर (बहुव०-क़तूरात)—अ०। गट्टी Guttae, ड्राप्स Drops—अ०।

वक्तव्य—नेत्रमें बूंद टपकानेकी क्रियाको आयुर्वेदमें 'आश्च्योतन' और अंगरेजीमें 'आई ड्राप्स Eye drops' कहते हैं। कान और नाकमें बूंद टपकानेको आयुर्वेदमें क्रमश 'कर्णपूरण' एव 'अवपीड नस्य' कहते हैं। द्रव्योंके द्रवमें रूई भिगोकर या उनका चूर्ण रूई परले कर नाकमें भर देते हैं, आयुर्वेदमें उसको 'नासापूरण' कहते हैं।

भेषजप्रयोगविधिविज्ञानीय अध्याय २

भेषज-सेवनके मार्ग

प्रयोजनभेदसे भेपज किस प्रकार और किन-किन मार्गोंसे प्रयोग किये जाते हैं ? इससे पूर्वके अध्यायमें दिये हुए विवरणसे, जिसमें कल्पोंके नाम और रूपोंका विवरण किया गया है, इस प्रश्नके उत्तर पर प्रकाश पडता है। भेपज सेवनोपयोगी मार्गोंके विचारसे प्रथमत कल्पों (औपघो)के यह दो भेद हैं—(१) आतरिक प्रयोगकी औषधियाँ और (२) बाह्य प्रयोगकी औषधियाँ।

आन्तरिक प्रयोगकी औषधियाँ—इससे वह औषधियाँ अभिप्रेत हैं, जो शरीरके भीतर किसी नैसर्गिक मार्ग वा छिद्र (मुख-नासिका-कर्ण-नेत्र-गुद-मूत्रमार्ग-योनि आदि) या किसी अस्वाभाविक मार्ग या स्रोत (जैसे—पिच-कारीकी सूईसे त्वचा और वाहिनी आदिको छेदकर)के द्वारा प्रवेशित की जाती हैं। इस विचारसे मुखकी झिल्ली, जिह्वाका धरातल और दाँत एव मसूढे पर जो औपधियाँ लगाई जाती हैं या जिनसे कुल्ली और गण्डूष किया जाता है, वे सब आतरिक प्रयोगको औपधियोंके अतर्भूत हैं।

बाह्य प्रयोगकी औषधियाँ—इनसे वह औपधियाँ अभिप्रेत हैं, जो किसी प्रकार बाह्य त्वचा पर प्रयोग की जाती हैं।

आतरिक प्रयोगकी औषधियाँ (कल्प)

अन्नमार्ग वा महास्रोतस्—आतरिक प्रयोगकी औपधियोमें सबसे बडी सूची उन औपधियोकी है जो अन्नमार्गके मुखकी राह भीतर प्रविष्ट होती हैं। इनके यह दो भेद हैं—कुछ औपधोका असर स्थानिक मुख और कठ आदिमें अभीष्ट होता है। प्राय औपधियाँ मुख, कठ और अन्नमार्ग (मरी)से आगे बढती हुई आमाशय तक पहुँचती हैं, जो यही न्यूनाधिक वाहिनियोमें शोपित हो जाती हैं या अवशेष रही हुई आँतो तक पहुँच कर अपना कार्य करती हैं। ऐसी औपधियोंको खाद्य-पेय औषध (माकूलात व मश्रूबात) कहते हैं।

औषधका शोषण—औपधका शोपण अधिकतया औपधके भेदोपभेद और उसके उपादानो पर निर्भर करता है, परतु किसी सीमा तक औषधके स्वरूपको भी इसमें दख्ल है। अस्तु, आमाशय और अन्त्रसे गोलियाँ और टिकियाएँ (विशेषकर जबकि यह अधिक शुष्क हो चुकी हों) प्रवाही औषधोकी अपेक्षया देरमें शोषित होती हैं। यहाँ तक कि कभी-कभी गोलियाँ विना घुले और कम हुए यथावत सोने या चाँदीके वरकमें लिपटी हुई मलके साथ निकल जाती हैं। इसी प्रकार प्राय औपधियाँ खाली आमाशयमें शीघ्र शोपित होकर कार्य करती हैं। इसी कारण बहुधा यह आदेश किया जाता है, कि औपधियाँ खाली पेट ली जायें। परतु कतिपय विप औपधियोको निरन्न आमाशयमें देनेसे वर्जित किया जाता है, उदाहरणत सखिया और कुचला।

गुद वा सरलान्त्र—इस मार्गसे तीन प्रकारसे औपधियाँ प्रवेशित की जाती हैं—(१) वर्ति रूपमें, (२) वस्तिके रूपमें और (३) गुदाको उलट कर (या जबकि वह स्वयमेव किसी कारणसे बाहर आ गयी हो) उस पर औषध लगाना या किसी औषधीय द्रवसे गुदप्रक्षालन करना। सरलान्त्र द्वारा औषधप्रयोगके निम्न कई प्रयोजन हैं—(१) जबकि स्थानीय रूपसे गुदा और सरलान्त्र पर औपधका प्रभाव अभीष्ट हो। (२) जबकि कण्ठगत शोथ इत्यादिके कारण औषधसेवन वर्जित हो। (३) जबकि वमन और उत्क्लेश (मिचली)की उग्रता हो और इस वातका सशय हो कि

औषधि आमाशयसे तुरत निकल जायगी। (४) जबकि गर्भाशय और उसके समीपवर्ती अवयवोको प्रभावित करना हो, जैसा कि प्रसवके समय। (५) जबकि आँतोंको शुद्ध करना हो, ताकि जो कष्टदायक दोष वाहिनियोंमें शोषित हो रहे हैं और मस्तिष्क एव हृदय आदिकी क्रियाओंको विकृत कर रहे हैं, वह शीघ्र उत्सर्गित हो जायें। यदि विरेचनीय औषधि ऊपरसे खिलाई जाय, तो उसका कार्य देरमें होता है, क्योंकि आमाशयसे आँतोंतक पहुँचनेमें पर्याप्त समय लग जाता है, किन्तु बस्तिकी क्रिया साधारणतया शीघ्र और सुगमतापूर्वक हो जाती है। इसी कारण इसको शेखने "श्रेष्ठतम चिकित्सा (मुआलिजा फाज़िला)"की उपाधि प्रदान की है[1]। परतु यदि औषधियोंका असर वाहिनियोमें पहुँचाना हो तो यह शोषणकी शक्ति सरलान्त्रकी अपेक्षया आमाशय तथा अन्य आँतोंमें अधिक है।

वायुप्रणाली (श्वासोच्छ्वास मार्ग)—वायुपथका प्रवेशद्वार नासिका है। इसके उपरात स्वरयत्र, फुफ्फुसप्रणाली, वायुप्रणालिकाएँ और फुफ्फुस। इस मार्गसे वाष्प और धूम्ररूपमें औषधियाँ प्रवेशित कराई जाती हैं, उदाहरणत शमूम, गालिया, लखलखा आदि। उनका असर सम्मिलित रूपसे उपर्युक्त समस्त अग-प्रत्यगो पर होता है। परतु कतिपय औषधियाँ स्थानीय रूपसे नासिका, कठ और स्वरयन्त्रमें उपयोग की जाती हैं। उदाहरणत. नासिकामें कतिपय प्रवाही औषधियाँ सुडकी जाती हैं, कतिपय औषधियाँ बूँद-बूँद करके नासिकामें टपकायी जाती हैं, कतिपय शुष्क औषधियाँ छीक लानेके लिये सूँघी जाती हैं या फूँकी जाती है, कतिपय औषधियाँ वर्तिके रूपमें नासिकाके भीतर स्थापन की जाती हैं, कतिपय पतली औषधियाँ पतले लेपके रूपमें लगाई जाती हैं। कभी-कभी प्रवाही औषधोंसे पिचकारीके द्वारा नासिकाको प्रक्षालन किया जाता (सकूव अन्फ़ी-नासिकाधावन या नासिका प्रक्षालन) है।

स्वरयन्त्रमें लखलखा, नफूख और शमूमके अतिरिक्त कभी पतली औषधियाँ पहले लेपकी भाँति लगाई जाती हैं। फुफ्फुसोंके अतिरिक्त वायु-मार्गों तक किसी पतली और प्रवाही औषधिका पहुँचाना या किसी तिला इत्यादिका लगाना सभव ही नहो, शमूमात और लखालिख (आघ्राण)के रूपमें केवल औषधियोंके उडनशील घटक पहुँचाये जा सकते हैं। कतिपय औषधोंके सूँघनेसे मनुष्य मूर्छित हो जाता है। उक्त अवस्थामें केवल औषधीय वाष्प रक्त इत्यादिमें अभिशोषित होकर और मस्तिष्क तक पहुँचकर प्रभावकर हुआ करते हैं, जिससे शोषणीय प्रमाण पर पर्याप्त प्रकाश पड सकता है। वायुको हम फुफ्फुसों तक पहुँचाते हैं, जिससे ओज (रूह) और शरीरकी प्राकृतिक ऊष्मा (हरारते गरीजिया)का सबध है। यह भी शोषणकी गति और उसकी मात्राको बतलाती है।

नेत्रपथ—सामान्यतया नेत्रमें प्रवाही और शुष्क औषधियाँ लगाई जाती हैं, जिनको सुरमा, काजल और बरूद कहा जाता है। कभी शुष्क वर्तियोंको जल आदिमें घिसकर नेत्रमें सलाईसे लगाया जाता है। कभी प्रवाही औषधियोसे नेत्रको प्रक्षालित किया जाता है (गसूल चश्म), उदाहरणत त्रिफलाका पानी। कभी नेत्रके भीतरी भागमें मरहम लगाये जाते या महीन औषधि छिडकी जाती है।

कर्ण-पथ—कानमें जो औषधियाँ डाली जाती हैं, वह केवल कानके पर्दा तक पहुँचती हैं और केवल उस त्वचासे स्पर्श करती हैं जो कानकी नालीके भीतर और उस पर्देके बाह्य धरातल पर आवरित होती हैं। इस विचारसे यह भी वस्तुत त्वचाका एक छोटा-सा विशेष मार्ग है। कानमें सामान्यतया प्रवाही औषधियाँ बिंदुरूपमें डाली

---

१. आयुर्वेदके मतसे कायचिकित्सामें बस्तिको चिकित्सार्ध (या सपूर्णचिकित्सा) इसलिये मानते हैं—"यथा प्रणिहित सम्यग्बस्ति कायचिकित्सिते" (सुश्रुत शा० ८ अ० ३५ सू०), कि बस्तिके प्रयोगसे सपूर्ण शरीरगत रोग विशेष करके त्रिदोषोंमें प्रधान दोष जो वायु उससे होनेवाले रोग ठीक हो जाते हैं—"शाखागता कोष्ठगताश्च रोगा मर्मोर्ध्वसर्वावयवाङ्गाश्च। ये सन्ति तेषां न हि कश्चिदन्यो वायो पर जन्मनि हेतुरस्ति ॥३८॥ विण्मूत्रपित्तादिमलाशयानां विक्षेपसघातकर स यस्मात्। तस्यातिवृद्धस्य शमाय नान्यद्बस्ति विना भेषजमस्ति किञ्चित् ॥३९॥ तस्माच्चिकित्सार्धमिति ब्रुवन्ति सर्वां चिकित्सामपि बस्तिमेके।" (चरक, सिद्धिस्थान अ० १) ॥

जाती हैं और कभी प्रवाही औषध टालकर कोई अवचूर्णनकी औषधि छिड़क दी जाती है। कतिपय औषधियाँ वर्ति-में आप्लुत करके प्रवेशित की जाती हैं। कभी-कभी कर्णको कुनकुना औषधीय या सादे द्रवसे धोया जाता है और पिचकारी की जाती है (जरूक़ात सक़ूव उज़्नो, कर्णधावन या कर्णप्रक्षालन)।

मूत्रमार्ग—मूत्राशय और मूत्रमार्गस्थ व्याधियों, जैसे—औपसर्गिक पूयमेह (सूजाक और मूत्राशयशोथकी दशा)में मूत्रमार्गकी राह प्रवाही औषधियोंकी पिचकारी की जाती है और मूत्रमार्गके रोगोंमें कतिपय औषधियाँ वर्तिके रूपमें मूत्रमार्गके भीतर स्थापन की जाती हैं।

योनिमार्ग—गर्भाशय, बीजग्रंथि और योनिके रोगोंमें योनिपथसे प्रवाही औषधियोंको पिचकारी द्वारा पहुँचाया और धोया जाता है। कभी-कभी औषधियोंको वर्तिकाके रूपमें अथवा पोट्टलीके रूपमें प्रवेशित किया जाता है। कभी-कभी औषधियाँ बूँद-बूँद टपकायी जाती हैं, और कतिपय मलहमके रूपमें गुह्यांगोंमें लगायी जाती हैं, उदाहरणत मरहम दाखिलयून। कभी-कभी औषधियाँ सादे तौर पर गुह्यांगके भीतर उँगली आदिसे लगा दी जाती हैं।

बाह्य प्रयोगकी औषधियाँ—इससे वे औषधियाँ अभिप्रेत हैं, जो त्वचा पर प्रयोगकी जाती हैं, चाहे उनका प्रभाव सीधे त्वचा (नफ़्से जिल्द)में अभीष्ट हो अथवा पेशियो, वातनाडियो और आतरिक अवयवोंमें। इस वर्गकी औषधियोंके यह दो भेद हैं—(१) कतिपय औषधियाँ सामान्यरूपसे त्वचा पर लगा दी जाती हैं और (२) कतिपय औषधियाँ त्वचा पर लगाकर मर्दन भी की जाती हैं। इनमें प्रथम (१) अर्थात् जो औषधियाँ त्वचा पर सामान्य रीतिसे लगा दी जाती हैं या स्पर्श करती हैं, स्वरूपके विचारसे उनके कतिपय निम्न भेद हैं—उदाहरणत पतला लेप, मालिशका तेल, अवचूर्णन, सौंदर्यवर्धन चूर्ण, लेप, लसूक़ (लेप वा पलस्तर—लजूक), ज़्रूर (लेप विशेष), मरहम, मैरती या मोमरोग़न, टकोर, पट्टी, कबूस (सेक भेद), खिजाब, सब्ग़, लोमशातनौषध। अवगाह, सकूब जिल्दी (त्वचा पर पानी धारना), हम्माम (स्नान), पाशोया (पादस्नान), नतूल (परिषेक) और ग़ुसूल (धावन) भी इसी वर्गके अतर्भूत हैं। कभी-कभी त्वचा पर वाष्पस्वेद और धूपनके द्वारा भी औषध प्रभाव पहुँचाया जाता है। (२) कतिपय औषधियाँ त्वचा पर लगाकर न्यूनाधिक उनका मर्दन किया जाता है, उदाहरणत मरूख़, दल्क (मालिशकी दवा), उबटन इत्यादि। कभी-कभी त्वचाको सूचिकाओंसे गोदकर (बारीक छिद्र करके), या तीव्र नश्तरकी नोकसे खराश पहुँचाकर और बारीक चीरा देकर औषधि मल दी जाती है। शीतलाका टीका इसी प्रकार लगाया जाता है। इसी प्रकार कभी-कभी त्वचाके उपरिस्तर पर स्फोट उत्पन्न करके उतार देते और उसके अधःस्तर (वास्तविक त्वचा) पर औषध लगाते हैं।

त्वगस्थ व्रणकी दशामें व्रणकी गभीरताके विचारसे उपर्युक्त औषधका प्रभाव त्वचा, [illegible], [illegible] और अन्य गभीर धातुओं तक पहुँचता है, उदाहरणत नाडीव्रण और गंभीर व्रणोंमें वर्तिके रूपमें औषधियाँ भीतर प्रविष्टकी जाती हैं, जो पेशी आदिसे स्पर्श करती हैं, बिंदु टपकाये जाते हैं, अवचूर्णन औषध छिड़के जाते हैं और मरहम आदि लगाये जाते हैं। त्वचाके व्रण, क्षत और नाडीव्रण वस्तुत त्वचाके अप्राकृतिक छिद्र हैं जो रोगके कारण अप्राकृतिक रूपसे प्रगट हो गये हैं और इस मार्गसे हमें दूर तक (मांसपेशी और वातनाडी आदि तक) औषधियोंके प्रवेशका अवसर प्राप्त हो जाता है। ऐसी औषधियाँ कई कारणोंसे आतरिक प्रयोगकी औषधोंमें [illegible] हो सकती हैं। परतु कभी-कभी हम कृत्रिम रूपसे त्वचामें बारीक नोकदार पिचकारीसे छेद करके औषधियाँ [illegible] धातुओं तक, उदाहरणत पेशियों, त्वगधःस्थ धातु, सिराओं और वातनाडियों तक प्रवेशित कर देते हैं। इस क्रियाको [illegible] (सूचिकाभरण, पिचकारी करना) और इह्तिक़ान (बस्तिकर्म) कहा जाता है। इस अवस्थामें वे [illegible] औषधियोंके अतर्भूत हैं, जो त्वचा द्वारा भीतर प्रविष्ट की जाती हैं। जो औषधियाँ सीधे [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] धातुओंमें प्रवेशित की जाती हैं, वह अति शीघ्र शोषित हो जाती और तीव्रताके साथ [illegible] करती हैं। [illegible] उस अवस्थामें भेषजीय मात्रा अत्यल्प रखी जाती है।

नक्ल दम—एक स्वस्थ मनुष्यकी धमनीसे शुद्ध रक्त लेकर उसका अत क्षेप रोगीके शरीरमें प्रत्यक्ष सिरा द्वारा करना[1]। कभी-कभी किसी बलवान् और परिपुष्ट मनुष्यकी सिराको छेदकर उसका रक्त एक नलकी (अबूबा)में प्रवेशित किया जाता हैं और पुन रोगीकी सिराको छेदनकर उसमें यह रक्त प्रविष्ट कर दिया जाता है। कभी-कभी पिचकारीके द्वारा त्वचा और पेशी आदिको छेदनकर उदरगुहा, उरोगुहा और अडकोश आदिमें औषधियाँ प्रविष्टकर दी जाती हैं और इन गुहाओंको पीप इत्यादिसे धोया जाता है। इसी प्रकार कभी-कभी मस्तिष्क और सुषुम्णाकी कलाओंके भीतर और उनके अवकाशोंमें औषधियाँ प्रवेशित की जाती हैं।

●

---

१. अंग्रेजीमें इसे 'ब्लडट्रांस्फ्युजन' (Blood transfusion) कहते हैं। इसे सस्कृतमें 'रक्तसक्रम' कहना चाहिए।

भेषज-संग्रहण-संरक्षण-विज्ञानीय अध्याय ३

प्रकरण १

भेषज-संग्रहण

औषधद्रव्य खनिज हो या वानस्पतिक और प्राणिज, प्रत्येक स्थानमें उत्पन्न नही होते। यदि वे अनेक स्थानोमें उत्पन्न होते हैं तो वीर्यवान् उपादान (अजूज़ाऽमुवस्सिरा)के विचारसे प्रत्येक स्थानकी ओषधियाँ समानवीर्य नहीं होती। अतएव प्राचीन यूनानी चिकित्सकोंके आदेशानुसार जिन देशों और स्थानोकी ओषधियाँ परीक्षण एव अनुभवसे उत्कृष्ट और वीर्यवान् सिद्ध हों और ख्यात हो, उन्हें उन (ग्रहणयोग्य) देशों से योग्य ऋतुमें प्राप्त करें, जबकि उनकी वृद्धि आदि चरम सीमाको पहुँच चुकी हों (जब वे परिणतवीर्य हों)। गुलबनफशा काश्मीरी, केशर (ज़ाफ़रान) काश्मीरी, उन्नाब विलायती, किन्नबे हिन्दी (भग), लाजवर्द काश्मीरी, फ़ीरोजा नेशापूरी, चाय खताई, मुश्क तिब्बी व नैपाली (कस्तूरी), सिब्रसकोतरी (एलुआ), सक़मूनियाए अताकी, सनाय मक्की, समग़ अरबी (बबूलका गोद), अफ़्यून हिंदी (अहिफेन), अफ्यून मिस्री, रेवदचीनी, रेवदतुर्की, रेवदहिंदी, काफूर कैसूरी, इसी तरह अन्यान्य बहुधा द्रव्य अपने-अपने उत्पत्ति स्थानकी ओर निर्दिष्ट होते हैं अथवा उससे जहाँ ये अपेक्षाकृत अधिक उत्तम होते हैं। सुतरा रेवदचीनी रेवदतुर्की और हिंदीसे उत्कृष्टतर होता है और अहिफेन मिस्री भारतीय अहिफेनसे अधिक वीर्यवान् होता है।

औषधिग्राह्याग्राह्यविचार[२]—किसी ओषधिकी उत्कृष्टता (ग्राह्यता)का एक सामान्य और सिद्धातपरक (कुल्ली) लक्षण यह है, कि उक्त ओषधिके गध, वर्ण, रस और अन्यान्य समस्त भौतिक लक्षण उसमें उच्च कक्षामें

---

१ आयुर्वेदमें औषध ग्रहणके लिए प्रशस्त भूमिकी परीक्षाका विवरण सुश्रुत सूत्रस्थान भूमिप्रविभागीयाध्यायमें और संग्रहयोग्य भेषजका वर्णन सुश्रुत सूत्र भूमिप्रविभागीयाध्याय, चरक कल्प अध्याय १ और अष्टागहृदय कल्पअध्याय ६ में तथा भूमिविशेषमे औषधग्रहणके नियमका वर्णन सुश्रुत सूत्र-भूमिप्रविभागीयाध्यायमें सविस्तर किया गया है।

२ सुश्रुतमें लिखा है—

विगधेनापरामृष्टमविपन्न रसादिभि.। नव द्रव्य पुराणा वा ग्राह्यमेव विनिर्दिशेत् ॥१५॥
(सु० सूत्र अ० ३६)

सर्वाण्येव चाभिनवान्यन्यत्र मधुघृतगुडपिप्पलीविडङ्गेभ्य ॥
भवति चात्र—

विडङ्ग पिप्पली क्षौद्र सर्पिश्चाप्यनव हितम्। शेषमन्यत्वभिनव गृह्णीयाद्दोषवर्जितम् ॥८॥
सर्वाण्येव सक्षीराणि वीर्यवन्ति, तेषामसम्पत्तावतिक्रान्तसवत्सराण्याददीतेति ॥९॥
सर्वावयवसाध्येषु पलाशलवणादिषु। व्यवस्थितो न कालोऽस्ति तत्र सर्वो विधीयते ॥११॥
(सु० सूत्र अ० ३६)

नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिल कर्मसु। विना विडङ्ग कृष्णाभ्या गुण धान्याज्यमाक्षिके ॥
(शार्ङ्ग प्र० ख० अ० १)

शेष और वर्तमान हों और बाह्य मिश्रण अथवा खोटसे सर्वथा शून्य हो, क्योंकि घुनने और वर्ण, गध एव स्वाद परिवर्तनसे वह खराब हो जाती है। उनके वीर्यकी काल-मर्यादा समाप्त हो जानेके उपरात भी ये खराब हो जाती हैं।

फलादि किस अवस्थामे ग्रहण करने वा त्यागने योग्य होते हैं—वृक्ष, पौधे और जडी-बूटियाँ कम अवस्थाकी उत्कृष्टतर (उपादेय) होती हैं या अधिक अवस्थाकी अर्थात् ओपधिके वीर्यवान् उपादान अल्पायुके पौधेसे अधिक प्राप्त होते हैं अथवा अधिक आयुके पौधेसे ? इसका उत्तर यह है कि अनुभवके सिवाय इसके लिए कोई सर्वतन्त्र नियम नही बतलाया जा सकता। कतिपय पौधे अल्प अवस्थामें अधिक वीर्यवान् होते हैं और कतिपय इसके विपरीत अधिक अवस्थामें, उदाहरणत रेवदचीनीका वृक्ष छ वर्षमें पूर्णायु और उपयोगयोग्य होता है। कभी-कभी अल्प अवस्थाके नवाकुर (कोमल, नन्ही-नन्ही पत्तियाँ और छोटी छोटी बदमुख कलिकाएँ) उपयोग की जाती हैं और कभी-कभी बडी-बडी पूर्णायुकी पत्तियाँ और सम्यक् विकसित पुष्प। इसी तरह कभी-कभी हम अपनी आवश्यकताके अनुसार अपक्व वा अर्धपक्व फलोंका उपयोग करते हैं। यह उभय उदाहरण अँबिया (अपक्व अर्थात् बालाम्र) और पक्के आममें पाये जाते हैं। यह प्रगट है कि कच्चे आममें जो शैत्यकारक और शामक अम्ल उपादान पाये जाते हैं, वह एक विशेष अवस्थामें लू लगनेकी दशामें काम आते हैं और पके आममें जो बल्य एव परिबृहणीय मधुर उपादान पाये जाते हैं वह अन्य अवस्थामें बलवर्धन और बृहणके अर्थ उपयोगी होते हैं। आमलेका पूरा पका फल ग्रहण किया जाता है।[1]

निम्न ओषधियाँ सदैव आर्द्रावस्थामें प्रयोग करनी चाहिये—

गुडूची कुटजो वासाकूष्माण्ड च शतावरी, अश्वगधा सहचरी शतपुष्पा प्रसारणी। प्रयोक्तव्या सदैवार्द्रा ॥ (शार्ङ्ग०)

वासानिम्बपटोलकेतकबलाकूष्माण्डकेन्दीवरी, वर्षाभूकुटजाश्च कन्दसहिता सा पूतिगन्धाऽमृता। ऐन्द्री नागबला कुरुण्टकपुरश्छन्नाऽमृता सर्वदा। सार्द्रा एव तु न क्वचिद्द्विगुणिता कार्येषु योज्या बुधै ॥ मधुन शर्करायाश्च गुडस्यापि विशेषत। एक सवत्सरे वृत्ते पुराणत्वं बुधै ॥ (भावप्रकाश)

बृहणके लिए मधु नवीन ग्रहण किया जाता है—

बृहणीय मधु नव नातिश्लेष्महर सरम्। (सुश्रुत)

घृत निम्न रोगोंमें नवीन व्यवहृत होता है—

योजयेन्नवमेवाज्य भोजने तर्पणे श्रमे। बलक्षये पाण्डुरोगे कामलानेत्ररोगयो ॥
(भावप्रकाश)

1. आयुर्वेदमें लिखा है—

फलेषु परिपक्व यद्गुणवत्तदुदाहृतम्। बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमाम तद्धि गुणोत्तरम् ॥
व्याधित क्रिमिजुष्ट च पाकातीतमकालजम्। वर्जनीय फलं सर्वमपर्यागतमेव च ॥
कर्कश परिजीर्णं च क्रिमिजुष्टमदेशजम्। वर्जयेत् पत्रशाक तद्यदकालविरोहि च ॥
बाल ह्यनार्तव जीर्णं व्याधित क्रिमिभक्षितम्। कन्द विवर्जयेत् सर्वं यो वा सम्यङ्न रोहति ॥
फल पर्यागत शाकमशुष्क तरुण नवम् ॥ (सु० सू० अ० ४६)
हिमानलोष्णदुर्वातव्याललालादिदूषितम् ॥
जन्तुजुष्ट जले मग्नमभूमिजमनार्तवम्। अन्यधान्ययुत हीनवीर्यं जीर्णतयाऽति च ॥
धान्य त्यजेत्तथा शाक रूक्षसिद्धमकोमलम्। असञ्जातरस तद्वच्छुष्क चान्यत्र मूलकात् ॥
प्रायेण फलमप्येव तथाऽऽमबिल्ववर्जितम्। (अ० स० सू० अ० ७)

औषध-ग्रहण (सग्रह) काल—बहुधा यह नियम व्यवहारोपयोगी है कि पुष्प और पत्रको उन वृक्षोंसे उस समय ग्रहण किया जाता है, जबकि वे पूर्णताकी सीमाको पहुँच चुकते (परिणतवीर्य होते) हैं।[1] परतु वर्ण, गध और स्वरूप-परिवर्तन, मुरझाने और पतनसे पूर्व, पुन उसको धूलिकण और आर्द्रतासे बचाकर सावधानीपूर्वक सायामें सुखाते हैं। पर कतिपय द्रव्य ऐसे भी हैं, जिन्हें धूपमें सुखानेसे उनकी शक्ति कम नही होती। प्राय बीजो और फलोको उस समय सग्रह करते हैं, जबकि उस वृक्षके पत्ते कुम्हलाने लगते है, और वे पूर्णतया पक्व हो जाते हैं, बशर्तेकि उसके फलके मुरझानेका समय न आया हो। फिर उनमें-से जो सुखाने योग्य होते हैं उनको पुष्प और पत्रकी भाँति पूर्ण सावधानीपूर्वक सुखा लेते हैं। बीजको ग्रहण करते समय यह देख लें कि उनका छिलका अलग न हो गया हो, क्योंकि प्राय अधिक वीर्य उन छिलकोंमें ही हुआ करता है।

जडोको प्रायश शरद् ऋतुमें और भदई (खरीफ)के अतमें (मतातरसे ग्रीष्ममें) पुष्प लगनेसे पूर्व सग्रह करते हैं और काटकर सुखा लेते हैं। प्राय जडो और गाँठोंको पुराने पत्तोंके झड जानेके बाद और नवपल्लव निकलनेसे पूर्व खोदना चाहिये। जडो और पत्तोंके ग्रहणकी विधि यह है, कि रबीकी ऋतुके अतमें चाँदके पिछले दिनों रात्रिमें लेवें, क्योकि रबीके मध्यमें मासके प्रारभ और दिनमें ग्रहण करनेसे द्रव उत्तेजित रहते हैं। इसलिये उनमें प्राय प्रकोथ और विकार उत्पन्न हो जाता है।

शाखा, त्वचा और वल्कलको वृक्षसे उस समय छीलते हैं जबकि वह युवा (प्रौढ) हो, परतु मुरझाये हुए, शुष्कीभूत और वक्रीभूत या टेढे-कुबडे न हो गये हो और बसतकी ऋतु हो। किंतु क्षुपों वा झाडियोंसे पतझडमें वल्कल ग्रहण किया करते हैं। छाल उस ऋतुमें ग्रहण करना चाहिये जब वह लकडीसे सरलतापूर्वक पृथक् हो सके।

बूटियो (हशाइश, हशीशका बहुव० = सूखी घास)को उस समय सुखाना चाहिये जब कि वह सम्यक् तरोताजा हों, और उनकी वृद्धि और यौवन पराकाष्ठाको पहुँच चुका हो।

निर्यास वा गोद (सुमूग़-अ० समग़का बहुव०)को वृक्षसे उस समय ग्रहण करना श्रेयस्कर है, जबकि फूल गिरने लगे हों, प्रात काल सूर्योदयसे पूर्व या सायकाल सूर्यास्तके उपरात, इसके पूर्व कि वह कण-कण होकर स्वय वृक्षसे गिरने लगें। गोद जिस प्रकारके वृक्षोंमें होता है, यौवनके समय प्राय सरदोके दिनोमें स्वय छाल फटकर वृक्षके बाहर एकत्रीभूत हो जाता है। मोटी छालमें वृक्ष पर क्षत (घाव) कर देनेसे भी निर्यास निकलता है। इसे घनीभूत होनेके उपरात और शुष्क होनेसे पूर्व सग्रह करना चाहिये।

क्षीर वृक्षोंका सफेद रगका वह द्रव है, जो कतिपय वृक्षोपर घाव होनेसे अथवा पत्र वा शाखा तोडनेसे प्रवाहित होने लगता है। इसके सग्रह करने और रखनेकी कई विधियाँ हैं। उनमें एक विधि यह है—(१) इसे किसी पात्रमें इकट्ठा करके शुष्क किया जाय। (२) कोई कपडा इस दूधसे तर करके सुखा लिया जाय और जरूरतके समय उस कपडेको जलसे भिगोकर निचोड लिया जाय। (३) किसी क्षीरी वृक्षकी शुष्क या आर्द्र छालको उबालकर और खूब हिलाकर छानकर सुखा लिया जाय।

उपर्युक्त विवरण बडे और बहुवर्षी वनस्पतियोंके विषयमें है। इससे भिन्न एक वर्षीय वनस्पतियाँ जो प्रतिवर्ष स्वयभू वा बोनेसे उत्पन्न होती हैं, उनके समस्त अगोंकी असली शक्ति एक वर्षपर्यंत रहती है। इसके उपरात शक्ति कम हो जाती है। परतु जब तक ये सडें या घुने नही और इनका वर्ण, गंध और स्वाद परिवर्तित न हो तब तक ये सेवनयोग्य रहती हैं। इनका पत्ता उस समय लेना चाहिये जब ये फूलने और फलनेके समीप हों। कली, फूल, फल और बीजोंके ग्रहणका जो काल ऊपर लिखा गया है, उसीके अनुसार इसका भी ग्रहण करना चाहिये, जब फूलने और फलनेके उपरात पौधा सूखनेके समीप हो जाय।

---

१ दृढबल लिखते हैं—

तेषा शाखापलाशमचिरप्ररूढ वर्षावसन्तयोर्ग्राह्य, ग्रीष्मे मूलानि शिशिरे वा शीर्णप्ररूढपर्णाना, शरदित्वक्कन्द क्षीराणि, हेमन्ते साराणि, यथर्तु पुष्पफलमिति॥ (चरक कल्प अ० १)॥

वक्तव्य—ऊपर वनस्पतियोंके जिन अगोंके ग्रहणका काल लिखा गया है, उसका केवल अभिप्राय यह है कि उस समय वे अग-प्रत्यग पूर्णशक्तिसपन्न (सम्यक् परिपुष्ट) होते हैं, न यह कि उससे आगे-पीछे ग्रहण करनेसे वे सेवनके योग्य होते ही नही। वनस्पतियोंको शुष्क ऋतुमें सग्रह करना चाहिये न कि उस समय जबकि वे वर्षा और ओससे भीगी हो। प्रतिवर्ष नवीन सग्रह करना चाहिये और इन्हें एक वर्षसे अधिक न रखना चाहिये। बीज (बज्र और हब्ब) एक निश्चित काल तक वानस्पतिक वीर्योंकी रक्षा करते हैं। वनस्पतियोमेंसे जितने साग-भाजी हैं, उनसे रक्त अत्यल्प बनता है। उनका द्रवाश पतला और दूषित रक्त उत्पन्न करनेवाला (रद्दीउल्गिजा) है। उनसे शरीरको बहुत कम लाभ प्राप्त होता है। कच्चा खानेसे ये देरमें पचती हैं। समस्त वनस्पतियोंकी जडें दूषित रक्त उत्पन्न करनेवाली हैं। सातर, पुदीना और सुदाब जैसी चरपरी वा तीक्ष्ण वनस्पतियोके भक्षणसे पित्त उत्पन्न होता है। जब तक ये हरी होती हैं अल्पवीर्य होती हैं। सूखनेके उपरात इनके गुण बढ जाते हैं और अब उनमें पोषण गुण नही रहता, औषधीय गुण आ जाता है। सूखने पर ये आहारकी भाँति सेवनीय नही अपितु केवल आहारको सुवासित करने योग्य रह जाती हैं। कतिपय वनस्पतियोके पत्र और शाखाएँ आदि भूमिके ऊपरका भाग जडसे उत्कृष्टतर और वीर्यवान् होते हैं, जैसे—काहू, करम-कल्ला, गोभी, कासनी इत्यादि। किसीकी जड अपेक्षाकृत अधिक वीर्यवान् होती है, जैसे—प्याज, मूली, शलगम इत्यादि। जिन तरकारियोके पत्ते और डालियाँ खाते हैं, उनके बीज और जड न खाना उत्तम है, और जिसकी जड और बीज खाते हैं उसकी शाखायें और पत्र न खाना श्रेयस्कर है। वन्य वनस्पतियोमें उद्यानारोपितसे अधिक रूक्षता होती है और दूषित रक्त उत्पन्न होता है। बागोमें द्रवाश अधिक होता है। जिसकी प्रकृति कठोर होती है वह पकानेसे नरम हो जाती हैं और शीघ्र पच जाती हैं, जैसे—गदना। फलों और मेवोंकी अपेक्षया साग और तरकारियाँ औषधीयता (दवाइय्यत)के अधिक समीप हैं। इसलिए इनको अवस्था, ऋतु और प्रकृतिके अनुकूल थोडा सा खाना चाहिये। कोई जगली तरकारी, साग और सब्जी बिना औषधीय प्रयोजनके कदापि न खाना चाहिये। तरकारीके बागी भेदको मासके साथ और सादा पकाकर खाना चाहिये और थोडा खाना चाहिये (खजाइनुल् अदविया)।

प्राणिज औषध द्रव्य—प्राणिज द्रव्य प्राय तीन प्रकारसे उपयोग किये जाते हैं—(१) सम्यक् अर्थात् समूचा, जैसे—वीरबहूटी और केचुए, (२) आमाशय और अन्न आदि निकालकर, जैसे—रेगमाही और केकडा, तथा (३) किसी विशेष प्राणीका विशेष अग, जैसे—मत्स्यपित्त और ऊदबिलावके वृषण (जुदबेदस्तर)। प्राणिज द्रव्योको ऐसे प्राणियोंसे ग्रहण करे जो युवा, स्वस्थ, पुष्ट एव परिवृहित और पूर्णाग वा अविकलाग (कामिलुल्खिल्कत) हो। बलवान् और युवा प्राणीके सकल अग उपादेय होते हैं। परतु यह नियम भी अनेक स्थानोमें मिथ्या सिद्ध हो जाता है। उदाहरणत कभी-कभी विशेष रूपसे वृद्ध कुक्कुटको ग्रहण किया जाता और उसका मासरस (शोरबा) पिलाया जाता है। इसी तरह मुर्गीके बच्चो, अल्पावस्थाके बकरों, भेडो और वध (जब्ह) किये हुये अन्यान्य प्राणियोंके मास अधिक उपादेय और शीघ्रपाकी होते हैं। ये द्रव्य जीवित और नीरोग प्राणीसे ग्रहण करना चाहिये, मृत और रुग्ण प्राणीसे नहीं। उक्त प्राणियोसे ये द्रव्य लेकर यथाविधि सुखाकर सावधानीपूर्वक सुरक्षित रखना चाहिये, जिसमें वे प्रकुथित (सडगल) और कृमिभक्षित न हो जायें। जब तक इनका वर्ण, गध और स्वाद परिवर्तित न हो जाय तब तक ये प्रयोगके योग्य हैं।

खनिज-द्रव्य—इसके ग्रहणका कोई समय निर्दिष्ट नही है और न इनके देखनेसे यह ज्ञात हो सकता है, कि यह किस समय अपने स्थानसे लिये गये हैं। इनके उत्तम होनेकी पहिचान यह है कि पाषाण और घनीभूत द्रव्यके प्रत्येक अशका वास्तविक वर्ण और आभा-प्रभा स्थिर एव अपनी पूर्ण अवस्था पर हो। जो वस्तु प्रवाही या मृदु हो, उसमें कोई अन्य वस्तु मिली न हो तो उसकी शक्ति नष्ट नही होती। वरन् ये विकृत् और दूषित हो जाते हैं। बहुत पुराना होनेसे भी इनकी शक्ति घट जाती है।

प्रकरण २

भेषज-संरक्षण (विधि)

यद्यपि द्रव्य-संरक्षण (औषधि-रक्षण)का विषय अति विस्तृत है, तथापि संक्षेपमें यहाँ उसके कतिपय परमोपयोगी संकेतोंका सिद्धांत(कुल्ली उसूल)रूपसे निरूपण किया जाता है[1]—(१) कपूर, सत पुदीना (पिपरमिंट), सत अजवायन जैसे सुगंध-द्रव्योंको जिनके सुगंधपूर्ण घटक निरंतर उड़ते रहते हैं, वायुके गमनागमनसे संरक्षित रखना चाहिये। (२) पुदीना, जटामासी, गुलाबका फूल जैसी सुगंधित वनस्पतियों और फूलोंको भी वायुसे सुरक्षित, ढक्कनदार डब्बोंमें बंद रखना चाहिये, वरन् जैसे-जैसे उनकी गंध उड़ती रहेगी, वैसे-वैसे वे हीनवीर्य होते चले जायँगे। (३) अर्क, सिकंजबीन, माजून (जवारिश, खमीरा, मुरब्बा, गुलकंद, तैल-तात्पर्य यह कि समस्त द्रव वा प्रवाही एवं आर्द्र (मरतूब) भेषजों वा कल्पोंको शीशी, चीनीके पात्रों और चीनी-मिट्टीके मर्तबानोंमें रखना चाहिये। (४) धातुओंके कलईदार पात्रोंमें कतिपय सादे और स्वादरहित अर्कों को कुछ दिन तक रखा जा सकता है, परंतु इनका कुछ काल उनमें रखना भी उत्तम और निरापद उपाय नहीं है। (५) परंतु शर्बत, सिकंजबीन, माजून, जवारिश जैसे कल्पोंको, प्रधानतया इनमेंसे उन कल्पोंको जिनमें अम्लत्व और कषाय पाया जाता हो, धातुके पात्रोंमें कदापि न रखना चाहिये। यदि रखनेके लिये विवश होना पड़े, तो उन्हें कलई कराके काममें लेवें और यथाशीघ्र उनसे पृथक् कर देवें। (६) एक द्रव्य (वा कल्प)को दूसरेके साथ एक डब्बेमें (अधिक काल तक) मिला कर रखना, चाहे वे द्रव्य शुष्क हों अथवा उन दोनोंकी पुड़ियाँ पृथक्-पृथक् हों, कदापि उचित नहीं है। (७) आर्द्रता वा रतूबत (रतूबत) द्रव्योंको दूषित करने में अत्यधिक सहायक सिद्ध होता है। इसलिये द्रव्योंको आर्द्रता (सील व नमी)से बचाने का भरपूर प्रयत्न करें। उन्हें उष्णता और आर्द्रतामें मोनदिल गृहोंमें रखें, जिसमें न अधिक उष्णता हो, न अधिक आर्द्रता। (८) खमीरा, माजून, मुरब्बा और इसी प्रकारके अन्यान्य शीघ्र या विलंबसे सड़ जानेवाले कल्पों (या द्रव्यों)को विशेषत ग्रीष्म और वर्षाऋतुमें यथासंभव शीतल स्थानमें रखना चाहिये। (९) धूप, गर्मी और हवासे प्राय द्रव्य हीनवीर्य हो जाते हैं। अतएव मिश्रामिश्र औषध-द्रव्योंको उनसे यथाशक्य सुरक्षित रखनेका प्रयत्न करें। (१०) वस्त्र और टाटके थैलीमें द्रव्योंके रखनेमें दिन-प्रतिदिन उसकी शक्ति घटती चली जाती है, विशेषत गंधयुक्त द्रव्योंकी, जिनके भीतर सूक्ष्म घटक पाये जाते हैं। क्योंकि उनके वीर्यवान् सुगंधावयव वस्त्र और टाटके छातोंमें निरंतर नष्टप्राय होते रहते हैं और वायुगत क्लिन्नता और आर्द्रता उनमें सर्वदा पहुँचती रहती है। (११) वटिका, चक्रिका और चूर्ण जैसे शुष्क और सान्द्र (घन) सिद्धौषधोंको कुछ दिन तक धातुके कलईदार पात्रोंमें रखना विशेषत उस समय जबकि यह लवण, क्षार और अम्लतारहित हो, अधिक चिंताकी बात नहीं होते। तथापि उचित यह है कि शीघ्रसे-शीघ्र धातुके पात्रोंको खाली कर दिया जाय। (१२) प्राय पाचनचूर्णों और यकृद्वटी (हब्ब कबिद) जैसी गुटिकाओंमें लवण, क्षार और अम्ल पाये जाते हैं। इसलिये उनको धातुके पात्रोंमें नहीं रखना चाहियें। (१३) मधु या शीरेके अन्दर बहुसंख्यक द्रव्य सड़ने-गलनेसे सुरक्षित रहते हैं। यदि मधु या शीरेकी चाशनी पतली हो तो उसे गरम करके

---

१. आयुर्वेदमें लिखा है—

"गृहीत्वा चानुरूपगुणवद्भाजनस्थान्यागारेषु प्रागुदग्द्वारेषु निवातप्रवातैकदेशेषु नित्यपुष्पोपहारबलिकर्मवत्सु, अग्निसलिलोपस्वेदधूमरजोमूषकचतुष्पदामनभिगमनीयानि स्ववच्छन्नानि शिक्येष्वामज्य स्थापयेत् ॥" (चरक कल्पस्थान अध्याय १)॥ "प्लोतमृद्भाण्डफलकशङ्कुविन्यस्तभेषजम्। प्रशस्तायां दिशि शुचौ भेषजागारमिष्यते॥ (सु० सू० भू० प्र० अ० ३६)॥ धूमवर्षानिलक्लेदैः सर्वर्तुष्वनभिद्रुते। ग्राहयित्वा गृहे न्यस्येद्विधिनौषधिसंग्रहम्॥" (सु० सू० अ० ३८)।

गाढा कर लिया जाय। अपक्व और ताजे फल और अन्यान्य सडनेवाले स्निग्ध (मरतूब) द्रव्य उदाहरणत प्राणियों-की अस्थिमज्जा (मग्ज-भेजा), प्राणियोका पित्त यदि मधुमें डुबाकर रखे जायँ तो चिरकाल तक सडने या दूषित होनेसे सुरक्षित रहते हैं। सुदूरवर्ती देशोंसे चटक (गौरा)के भेजे इसी तरह मधुके साथ आया करते हैं या उनको घीमें भून लेते हैं। (१४) किसी-किसी द्रव्यके समस्त अगोको कूटकर फैलाकर (फर्श वना कर) छाँहमें सुखा कर रखते हैं, जैसे—गाफ़िस इत्यादि। (१५) उसके साथ कोई ऐसी वस्तु मिला कर रखनी चाहिये जो उसकी सर-क्षिका हो। उदाहरणत कपूरके साथ कालीमिर्च और गेहूँ मिला कर रखते हैं। (१६) सँकरे मुँहके पात्रमें जो द्रव्य-के वीर्यको न खींचे (जैसे काँच और चीनीके पात्र), मुँहको मजवूतीसे वद करके रखना चाहिये, जिसमें वायुके प्रवेश-से द्रव्यगत वीर्य विलीनप्राय न हो जाय, जैसे कस्तूरी और अबर इत्यादि। (१७) हीग इत्यादि जैसे वलवान् और तीक्ष्णगधी द्रव्योके साथ और समीप बनफशा, और निलोफर आदि जैसे सूक्ष्म द्रव्योंको न रखना चाहिये; क्योकि उनकी तीक्ष्णतासे इनकी शक्ति लुप्तप्राय हो जाती है। (१८) औषधद्रव्योको तीव्र वायु और धूलिकण आदिसे भी सुरक्षित रखें।

●

प्रकरण ३

भेषजायु · कालमर्यादा

कालवशसे द्रव्यो और कल्पोके गुणोकी हानि-वृद्धि तथा निर्वीर्यकाल (भेषजवीर्य-कालावधि)का विचार—कालवशसे द्रव्योंके गुणोंकी हानि-वृद्धि (भेषजायु)से यह विवक्षित होता है, कि वह कितना कालपर्यंत अपने मिज़ाज (गुण-प्रकृति) वा रचनात्मक रूप (हय्य तरकीबी) और अपने जातिस्वरूप पर स्थिर रहते हैं। यह प्रगट है कि औषधीय गुण-कर्म उसी समय तक उससे निष्पन्न हो सकते हैं, जब तक औषधद्रव्योके उपादान (अज्ज़ाऽ तरकीबिया) अपने विशेष सगठन और समवाय (इम्तिज़ाज) पर उनमें स्थिर रहते हैं। मिजाज (सयोग)की विरलता और अविरलताके अध्यायमें यह निरूपण किया गया है, कि कतिपय औषधद्रव्य बहुत सरलतापूर्वक अपने चतुर्दिक्के वातावरण (वायु, जल, वाष्पजन्य क्लेद, उष्णता और प्रकाश आदि)से प्रभावित हो जाते हैं और अपना सगठन परिवर्तित कर देते हैं। पर कतिपय द्रव्य इनके विपरीत परिस्थितिजन्य कारणोंसे अत्यल्प और कठिनतापूर्वक प्रभावित होते हैं। इसी दृष्टिसे द्रव्य-प्रकृतिको ढीला वा कमजोर (विरल) और दृढ़ वा मुस्तहकम (अविरल)कहा जाता है और तदनुसार (इसके तरतमके अनुसार) औषध-द्रव्यकी वीर्यकालमर्यादा न्यूनाधिक होती है। औषधों (द्रव्यों)के आयुर्बलका निरूपण अत्यत दु साध्य है। इसके विषयमें यहाँ जो कुछ विवरण दिया जायगा वह वस्तुत प्राचीन यूनानी वैद्यों द्वारा वर्णित आनुमानिक आयु प्रमाण है, जो अनेकानेक नियमोपनियमसे ग्रथित (आवद्ध) है। वस्तुस्थिति यह है, कि जैसी परिस्थिति वा वातावरणमें कोई औषधद्रव्य रखा गया होता है उसका आयुर्बल उसी पर निर्भर होता है। अर्थात् यह बहुत सभव है कि एक द्रव्यका आयुर्बल बहुत ही अल्प है और अत्यल्प कालमें सामान्य कारणोंसे उसका सगठन विकृत हो सकता है। पर यदि उसे विशेष उपायसे रखा गया और उसे विकृत एव दूषित करनेमें साहाय्यभूत समस्त कारणोंसे सुरक्षित रखा गया, तो सभव है कि वह द्रव्य दीर्घकाल पर्यंत अपने विशेष सगठन पर स्थिर रहे। यह स्वयसिद्ध बात है कि मासजातीय उपादान और मासवत् प्राणिज औषधद्रव्य सामान्य खुले हुये वातावरणमें बहुत शीघ्र सड जाते हैं। पर यदि उनको प्रकोथके कारणोंसे बचाकर ऐसे वातावरणमें रखा जाय जो कोथप्रतिबधक हो, तो सभव है कि इस प्रकार द्रव्य दीर्घकालपर्यंत अपने स्वरूप और आकृति तथा प्राकृतिक गुणो पर स्थिर रह सकें। बर्फमें दबाना, नमक मिलाकर सुखाना, भूनकर मधुकी चाशनीमें डाल देना, वायुके गमनागमनसे सुरक्षित रखना, ये कतिपय कर्मों (उपायों)के ऐसे उदाहरण हैं, जो प्रकोथसे बाज रखते हैं अथवा उन्हें सम्यक्तया रोक देते हैं। इसी तरह कपूर जैसे गधमय द्रव्य, चाहे सुगधिपूर्ण हो अथवा दुर्गंधिपूर्ण, जिनके सूक्ष्म घटक साधारण खुले हुये वातावरणकी ऊष्मासे निरतर उडा करते हैं, यदि ऐसे द्रव्योंको सामान्य वातावरणमें खुला छोड दिया जाय, तो उनकी आयु अत्यल्प सिद्ध होगी। किंतु यदि इसी प्रकारके सूक्ष्म द्रव्योंको शीशीमें बद करके शीतल और सुरक्षित स्थानमें रखा जाय, तो दीर्घकाल तक उनमें वीर्य स्थिर रहेगा।

गुलाबके फूलकी तरो-ताजी पखुडियाँ सामान्य परिस्थितिमें प्रभावित होकर कुछ घटोमें मुरझा जाती हैं और उनका गुलाबी रग एव भीनी-भीनी मनोहारी गध बहुत शीघ्र बदल जाती है। पर यदि उक्त परिस्थितिको बदल दिया जाय और सरक्षणका नियम पालन किया जाय तो उनकी तरोताजगी और उनकी विशेष सुगध दीर्घकाल पर्यन्त बनी रह सकती है। औषधद्रव्योंकी आयु और उनके जीवनकी अवधिका ज्ञान प्राप्त करनेका साधन सिद्धातत यह है, "जब तक इन औषधद्रव्योंके वर्ण, गध, रस, स्वरूप और आकृति, भार, शुद्धता और स्वच्छता आदि भौतिक गुण (बाह्य लक्षण) स्थिर हैं, उस समय तक यह समझना चाहिये कि अभी यह औषध द्रव्य जीवित (वीर्यवान्) है, उसकी आयु शेष है, उसकी सघटनात्मक स्वरूप-आकृति स्थिर है और उससे अभीष्ट कर्म

निष्पन्न हो सकते हैं ।" यह नियम खनिज वा वानस्पतिक वा प्राणिज हर प्रकारके औषधद्रव्यके लिए व्यापक रूपसे लागू है। इस नियमकी स्पष्ट विस्तृत व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है, कि औसत द्रव्योंके यह बाह्य प्रत्यक्ष लक्षणों वा भौतिक गुणो (गध, वर्ण, रस आदि)में क्रमश जितनी कमी आती जायगी, उतना ही उसके कर्मोंमें भी निर्वलता आती जायगी। उदाहरणस्वरूप कस्तूरी, केसर और अवर जैसे द्रव्योमें उसकी विशिष्ट गध तीक्ष्णताके साथ जब तक स्थिर है, उस समय तक यह समझना चाहिये कि उनके गुणकर्मोंमें कोई कमी नही आई है। और जब उनकी गध अपेक्षाकृत निर्वल हो गयी है, तव यह समझना चाहिये कि उसी अनुपातमें उनकी शक्तिका ह्रास हो चुका है। यही दशा उन औषधद्रव्योंकी है जिनके प्रधान वीर्य तिक्त, कषाय, मधुर, अम्ल या अन्यान्य रसविशिष्ट हैं। जैसा कि पूर्वमें भी निरूपण किया गया है, उत्पत्तिभेदसे औषधद्रव्य तीन प्रकारके होते हैं—(१) खनिज वा पार्थिव (मादनी), (२) वानस्पतिक वा उद्भिज्ज (नबाती) और (३) जागम वा प्राणिज (हैवानी)।

पाषाण वा प्रस्तर (अहजार)—खनिज द्रव्योंमें बहुश पाषाण, जैसे—हीरक, याकूत, जमुर्रद, लाल, सगमूसा आदि सामान्य परिस्थितिसे अत्यल्प प्रभावित हुआ करते हैं। इसलिये इनको दीर्घायुष्य प्राप्त है और उनकी कोई निश्चित सीमा निर्धारित नही की जा सकती। धातुएँ (फिलिज्ज़ात (अ०-फिलिज्ज़का बहुव० = धातु)—खनिजद्रव्योंमेंसे धातुओंकी आयु न्यूनाधिक होती है। कतिपय धातुएँ परिस्थितिगत वायु और आर्द्रतासे अल्प प्रभावित होती हैं। उदाहरणत सुवर्ण, रौप्य यशद, सीसक, ताम्र, और कतिपय अधिक, जैसे—लोह। यदि इन धातुओंको जल और पृथिवीके भीतर गाड दिया जाय, तो विकारकी गति अनुपातानुसार तीव्रतर हो जाती है। जो उपर्युक्त धातुओमें सुवर्ण सर्वोत्तम (अशरफ़ व आला) धातु कहा जाता है जो इस विचारसे सत्य है कि वायु, जल और पृथ्वीसे सुवर्ण बिल्कुल प्रभावित नही हुआ करता। इसी कारण मसजिदों और मदिरोंके बुर्जों और मीनारों पर जो सुवर्णके कलसादि स्थापित किये जाते हैं, धूलिकण और मेघ तथा वायुके होनेपर भी शताब्दियों पर्यन्त उसी तरह चमकते रहते हैं।

मखजनुल्अद्वियाके रचयिता सय्यद मुहम्मदहुसैन उलवी लिखते हैं—जगार—एक वर्षके उपरात इसका वीर्य घटना प्रारभ हो जाता है और धीरे-धीरे वह सम्यक् वीर्यहीन हो जाता है। सफेदाका वीर्य छ वर्ष तक और मुरदासग, अकलीमिया, मरकशीशा और तूतियाका दीर्घकाल पर्यन्त शेष रहता है। फादेजहर मादनी (जहरमोहरा खताई)—जो सुदर वर्णका, चिकना और सुगधिपूर्ण होता है, इसका वीर्य दीर्घकाल तक स्थिर रहता है। मरवारीद[1]—जब तक इसकी आभा-प्रभा और स्वच्छता शेष है, तब तक यह उपयोगी है। इसी प्रकार शुक्ति वा सीप और प्रवाल आदिको भी अनुमान करना चाहिये।

गिलेदागिस्तानी, गिलेमख्तूम और इसी प्रकारकी अन्यान्य सुगध-मृत्तिकाओंकी आयु मोतीसे अल्प होती है। "पाषाणो (हजरियात) और मृत्तिकाओ (अरजियात)को जब पीस लिया जाता है और पीसी हुई दशामें जब वे देर तक रखे रहते हैं तब उनका वीर्य क्रमश निर्वल हो जाता है।" "इनमेंसे जो द्रव्य गधयुक्त हैं और जब तक उनमें गध स्थिर है तब तक ये वीर्यवान् हैं, इसके उपरात उनका वीर्य निर्वल और निष्क्रिय हो जाता है।" इसी सिद्धातके अनुसार समस्त औषधद्रव्यो और उनके समस्त भौतिक गुणो (वर्ण, रस इत्यादि)को अनुमान करना चाहिये। यह नियम (हुक्म) पाषाणो और मृत्तिकाओके सवधमें लागू नहीं है।

उद्भिज्ज या वानस्पतिक द्रव्य—मख्जनुल्अदवियाके निर्माताके अनुसार वानस्पतिक औषधद्रव्योंके ये ११ भेद हैं—(१) निर्यास और निर्याम एव निर्यास वा गोंदकी तरहके द्रव्य (सुमूग), (२) वानस्पतिक ओषधियोंके निचोडे हुए रस—स्वरस, (३) अविकसित पुष्पमुकुल या वदमुख कलिकायें और विकसित पुष्प (अज्हार व फुक्काह), (४) स्नेह वा तेल, (५) वनस्पतियोंका क्षीर (अल्बान व यतूआत), (६) पत्र अर्थात् पत्ते (औराक़)

---

१. मोती (मरवारीद) और सीप (शुक्ति)की गणना प्राणिज द्रव्यमें होने पर भी मादद्यके कारण खनिज द्रव्योंमें किया गया है। इसी तरह प्रवाल (मरजान) एक प्राणिज द्रव्य है और फादेजहर हैवानी भी।

(७) फल (अस्मार), (८) बीज (बुजूर), (९) शाखायें (अग्सान), (१०) जड अर्थात् वृक्षमूल और वृक्षकी दाढियाँ[1] (उसूल व लहा) और (११) त्वचा और बल्कल अर्थात् छाल (कुशूर)।

सम्गियात (निर्यास, गोंद)—उदाहरणत बबूलका गोंद, कतीरा, उशक, जावशीर, सकबीनज, लाख, खूनखरावा (दम्मुल्अख्वैन) आदि, इनके वीर्य लगभग तीन वर्ष तक शेप रहते हैं। उसारात सुखाया हुआ ओपधि-स्वरस वा घनशुष्क सत्त्व (रसक्रिया), जैसे—अकाकिया, रसवत (हुजुज), कत्था आदि इनकी आनुमानिक आयु निर्यासोंसे कम है। कलिकायें और पुष्प—जैसे गुलबनफ़शा, गुलनिलोफर, गुलाबपुष्प, गुलगावजबान, इजखिरकी कली (फुक्काहइजखिर), लौंग, कैसूमकी कली आदि। इसी प्रकार पत्र जैसे मक्की सनायके पत्र, गावज़बान पत्र, माजरियूनके पत्र, तेजपत्ता, हब्बुल्आसके पत्र (वर्गमोरिद), हसराज आदि। इन उभय प्रकार के द्रव्योंकी आयु कक्षा-भेदसे एक वर्षसे दो वर्ष तक शेप रहती है। इसके उपरात इनके वीर्य क्रमश निर्बल और हीनवीर्य हो जाते हैं। क्षीरी औषधद्रव्य (अल्बान व यतूआत), उदाहरणत सकमूनिया, फरफियून और अहिफेन आदि। इनकी आयुएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। सकमूनियाका वीर्य बीस वर्ष तक, फरफियूनका चालीस वर्ष तक और अहिफेनका पचास वर्ष तक शेष रहता है। (प्राचीन परिभाषामें इसकी गणना उसारोंमें की गयी है)। इसके उपरात ये क्रमश हीनवीर्य हो जाते हैं। इसी तरह शेष अन्य क्षीरोंकी शक्ति लगभग दस वर्ष तक शेप (स्थिर) रहती है।

वक्तव्य—दूध और गोंदकी असली शक्ति उस समय तक स्थिर रहती है, जब तक कि इनका वर्ण, गध और स्वाद परिवर्तित नही होता। तेल (अदहान), जैसे—रोगन जैतून, रोगन वलसाँ, रोगन विहरोजा और कत-रान। इनमेंसे शीतल-स्निग्ध तेल यहाँ तक कि दो-तीन सप्ताहमें बिगड जाते हैं और जो उष्ण स्निग्ध है, वह एक वर्षसे दो वर्ष तक बिगड जाते हैं। परतु रोगन वलसाँकी शक्ति दीर्घकालपर्यंत स्थिर रहती है। इसके विषयमें यह भी कहा जाता है कि यह (और रोगन जैतून) जितना पुराना होता है, उतना ही वीर्यवान् और उत्तम होता है। इसी तरह रोगन काफूर (कर्पूर तैल), रोगन जैतून और रोगन इजखिरकी शक्ति दो वर्ष तक स्थिर रहती है। फल जैसे उन्नाब, सपिस्ताँ, हब्ब वलसाँ, माजू, वलूत, आलूबोखारा, आलूबालू, सेब, बिही, अनार, बादाम, अखरोट, जायफल, इलायची, कालीमिर्च (फिलफिल), आँवला, हड, बहेडा आदि। इनमेंसे जो द्रव्य प्रचुरतैलपूर्ण (कसीरुल्-दुह्न) हैं, जैसे—अखरोट, बादाम, नारियल इत्यादि, उनकी शक्तियाँ एक वर्ष पर्यंत शेप रहती हैं, जबकि यह अपने छिलकोंके भीतर बद हो, वरन् एक सप्ताहमें प्रत्युत कभी-कभी इससे भी पूर्व विकृत हो सकते हैं। विशेषत पिस्ते और अखरोटकी गरियाँ, बहुत ही शीघ्र बिगड जाती हैं। परतु जिनमें चिकनाई (स्नेह) कम होती है वे सुरक्षित रखनेपर उनमें दो-तीन वर्ष तक शक्ति बनी रहती है। बीज जैसे—सौंफ, जीरा, कारवी वा कुरुया, (विलायती स्याहजीरा), कासनीके बीज, धनिया, काहूके बीज, पोस्तेका दाना, तिल, खीरेके बीज, हिनवानेके बीज, खरबूजेके बीज, कद्दूके बीज। इन द्रव्योंमेंसे जिनमें स्नेहाश अपेक्षाकृत अल्प है, उदाहरणत मेथी, हालो (चद्रसूर), राई आदि इनकी शक्ति दोसे तीन वर्ष तक और जिनमें स्नेहाश अधिक हैं, जैसे—तिल, कद्दूके बीज, पोस्तेके बीज इत्यादि, इनकी आयु उनसे अल्प है।

वक्तव्य—वृक्षसे प्रतिवर्ष उत्पन्न होनेवाली वस्तु, अर्थात् पत्र, कलिका, पुष्प, फल और बीजकी सम्यक् शक्ति केवल एक वर्ष तक रहती है। इसके अनतर वे अल्पवीर्य हो जाते हैं। यदि इनको सावधानीके साथ सुरक्षित रखा जाय तो सेवन-योग्य रहते हैं, वरन् बिलकुल खराब हो जाते हैं। परतु कल्पना जैसे—मुरब्बा वा गुलकद आदि बनानेसे उनकी शक्ति अधिक कालपर्यंत रहती है। (खजाइनुल् अदविया)। शाखा, मूल, जटा और त्वचा वा वल्कल, जैसे—ऊदबलसाँ, तालीसपत्र, चीता, शुकाई, बादावर्द, कासनीमूल, सौंफकी जड, लुफाहकी जड, अजमोदाकी जड, इजखिरमूल, जितियाना, अकरकरा, निशोथ, दालचीनी व किरफा, तज (सलीखा), माहीजहरज,

---

१ उदाहरणत वटजटा (बरगदकी डाढ़ी या बरोंह) यह भी वास्तवमें उस वृक्षकी जड़ें हैं, जो पृथ्वी तक पहुँचकर भीतर घुस जाती हैं।

कबरमूलत्वक्, अजवार आदि। इनकी आयुएँ भिन्न-भिन्न हैं। परतु इनमेंसे जो-जो द्रव्य कुष्ठ (कुस्त), जरावत, बच, दरूनज, हलदी, दालचीनी और खर्बक जैसे हैं, उनके वीर्य दस वर्ष पर्यंत और इससे भी अधिक शेष रहते हैं, परतु जो द्रव्य चोबचीनी, सोंठ, नरकचूर, बहमन, शकाकुल इत्यादि की भाँति इस तरहके हैं जिनमें शीघ्र घुन लग जाता है, तो वे शीघ्र ही हीनवीर्य हो जाते हैं। इसी तरह वृक्ष के मूल और जटाओंमेंसे जो द्रव्य विरेचन हैं, उनकी शक्ति तीन वर्ष तक शेष रहती है।

प्राणिज वा जाङ्गम औषध द्रव्य—उदाहरणत चर्बी, प्राणियोंके पित्त (जह्‌रा), पनीरमाया (इन्फ़ह), सीग, खर, नख, गोबर, मीगनियाँ, रक्त आदि। चर्बीको जब लवण मिलाकर सुखा लिया जाता है तब उसकी शक्ति एक वर्ष तक शेष रहती है। परतु ऐसी लवणाक्त चर्बीका उपयोग मलहमोंमें और बहुश अन्य दशाओं और व्याधियोंमें नही किया जाता। इसी तरह प्राणियोंके पित्तेकी शक्ति दीर्घकाल पर्यंत शेष रहती है, बशर्ते कि उसे शुष्क कर लिया जाय और सुरक्षित रखा जाय। पनीरमायाकी शक्ति एक वर्षसे दो वर्ष तक, पशुओंके शृग, खुर और नख इत्यादिकी शक्ति कुछ वर्षों तक और पशुओके गोबर, मेंगनी, बीट और रक्तकी शक्ति एक वर्ष तक मुश्किलसे शेष रहती हैं। जुदबेदस्तरकी शक्ति दस (पाठातरसे दो) वर्षपर्यंत स्थिर रहती है। कस्तूरी और अबरकी शक्ति सिद्धात उस समय तक शेष रहती है जब तक उनकी सुगधियाँ स्थिर हैं। कस्तूरी जब तक नाफेके भीतर है, उसकी शक्ति तीन वर्ष तक शेष रहती है और बिना नाफेके बरस रोज तक।

औषधद्रव्योकी उक्त आयु (वीर्यकाल) जिनका निरूपण यूनानी वैद्योंने किया है, उनके विषयमें अनेक कारणोंसे अभी बहुत कुछ वक्तव्य है और विभिन्न अवस्थाओसे उन आयुओमें बहुत कुछ भेद हो सकता है, जिसका विस्तार-पूर्वक स्पष्टोल्लेख ऊपर किया गया है। अर्थात् यह आयुएँ (वीर्यकाल-मर्यादा) अति दीर्घ और अत्यल्प भी हो सकती है।

भेषजकल्पनाविज्ञानीय अध्याय ४

प्रकरण १

(इल्म सैदला[1]—फ़न्ने दवासाज़ी)

दवासाज़ी—तरकीब अद्‌विया (भेषजकल्पना वा भेषजनिर्माण)–द्रव्यगुणशास्त्रका वह विशेष प्रयोगात्मक विभाग है, जिसमें विभिन्न औषधद्रव्योंको वैद्यकीय प्रयोजनसे संस्कार अर्थात् संघट्टन और विघट्टनके द्वारा शरीर पर प्रयोग करनेके लिए उपयुक्त बनाया जाता है। भेषजकल्पनामें जिस प्रकार असंसृष्ट औषधद्रव्योंसे कल्पनाके द्वारा संसृष्ट वा योगौषध (कल्प) प्रस्तुत किये जाते हैं, जैसे—माजूनें, शर्बत आदि, उसी प्रकार संसृष्ट वा योगौषधों (मुरक्कब मवाद्द और मुरक्कब अदविया)से कभी-कभी (विश्लेषण और विलीनीकरण द्वारा) उसके उपादान पृथक् किये जाते हैं जैसे—कद्दूके बीजकी गिरी, कद्दूके बीज, बादामकी गिरी आदिसे तेल निकालना, सौंफ, पुदीना, गुलाब, केवडा, वेदमुश्क आदिसे अर्क परिस्रुत करना, वानस्पतिक, प्राणिज और खनिज द्रव्योंके प्रधान वीर्य प्राप्त करना, वनस्पतियोंको दग्ध करके उनसे लवण और क्षार निकालना, सुगंधद्रव्योंसे सुगंधित सार–इत्र आदि निकालना, वृक्षोंसे राल और निर्यास प्राप्त करना, कर्पूर-काष्ठसे कपूर निकालना, कासनी, मकोय और मूली इत्यादिकी हरी पत्तियोंसे नियरा हुआ पानी (आबे मुरव्वक़) प्राप्त करना। इसी प्रकार भेषजकल्पनामें और बहुश संस्कार (प्रक्रियायें) हैं, जो विश्लेषण और विलीनीकरणसे संबंध रखते हैं। तात्पर्य, यह कि तरकीब अद्‌विया (द्रव्यसंयोग) शब्दसे जिसका व्यवहार दवासाजी (भेषजकल्पना)के अर्थमें किया गया है, धोखा न खाना चाहिये।

भेषजकल्पनाके यह दो विभाग हैं—(१) बृहत् या मुख्य (खास दावासाजी) और (२) द्वितीय क्षुद्र, गौण वा सहायक (जुज़्वी दवासाजी) जो औषधविक्रेता या अत्तारको अत्तारखानेकी दुकानमें औषध देते समय करनी पडती है।

खास दवासाज़ी (प्रधान भेषज कल्पना)में करावादीन (योगग्रंथों)के योगके अनुसार औषधनिर्माणविधिका निरूपण होता है, जैसे अर्क परिस्रुत करना, सत्त्वपातन, माजून या शार्करकल्पना आदि। यह प्रगट है कि इस प्रकारके कल्प यथासमय थोडे थोडे प्रमाणमें प्रतिदिन प्रस्तुत नही हो सकते। अतएव प्रथमसे ही ये बडे प्रमाणमें प्रस्तुत करके भेषजागारमें सुरक्षित रखे जाते हैं। आवश्यकता पडने पर औषध-विक्रेता व्यवस्था-पत्र (नुसखा)के अनुसार उसमेंसे निश्चित प्रमाणमें लेकर और नाप-तौलकर रोगीको देता और उसमें लिखी हुई आवश्यक सेवन-विधि आदि उसे

---

[1] सैदला (जिसको कभी-कभी सैदना भी कहा जाता है) की निरुक्तिकी खोज करनेपर यह सिद्ध होता है, कि कोश ग्रंथोंमें इसके कई अर्थ लिख गये हैं, जैसे—(१) द्रव्यगुणविज्ञान अर्थात् इल्मुल् अद्‌विया। अस्तु, अबुरैहान लिखित ग्रंथका नाम इसी कारण सैदना है, (२) इमाम फ़ख़रुद्दीन राज़ी (अपनी सित्तीनमें) लिखते हैं कि इल्म सैदनासे औषधपरीक्षणशास्त्र (दवाशिनासीका इल्म) अभिप्रेत है, (३) सैदला 'भेषजके व्यापार' को भी कहते हैं। इस अर्थके अनुसार ही औषधविक्रेता या अत्तारको सैदली और सैदलाली कहा जाता है।

परंतु भेषजकल्पनाशास्त्रका इन तीनों अर्थोंसे संबंध है, इसलिये यदि सैदला संज्ञाका भेषज-कल्पनाके इस विशेष अर्थमें उपयोग किया जाय, तो इसमें कोई विशेष हानि नहीं है। (कुल्लियात अद्‌विया)।

समझा देता है। जुज्वी दवासाजी (गौण वा सहायक भेषजकल्पना)से वह छोटे-मोटे कार्य अभिप्रेत हैं, जो औषधविक्रेताको या अत्तारको अत्तारखानामें औषध-वितरणकालमें तात्कालिक रूपसे चिकित्सकके व्यवस्थापत्रके अनुसार करने पड़ते हैं, जैसे शर्बत और अर्कको नापकर और एक शीशीमें मिलाकर देना, भस्म और माजूनको तौलकर परस्पर मिलाकर देना, अर्क, शार्कर, शुक्तशार्कर जैसे प्रवाही कल्पोंको शीशीमें डालकर सेवनीय औषधप्रमाणके चिह्न लगाकर रोगीको सुपुर्द करना, प्रयोजनानुसार औषधद्रव्योंका पेषण वा कुट्टित करना, यवकुट कर देना, छिलके उतार देना इत्यादि।

भेषजकल्पनाकी अनिवार्यता और औषधनिर्माताके लक्षण—भेषज कल्पना वृहत् हो या क्षुद्र (अत्तारके कर्त्तव्य हों अथवा दवासाज या औषधनिर्माताके) परमावश्यक और उत्तरदायित्वका काम है, क्योंकि यदि औषधनिर्माता योगग्रंथके अनुसार योगनिर्माण न करे या अत्तार चिकित्सकके द्वारा लिखित व्यवस्थाके अनुसार उत्तम, शुद्ध और वास्तविक औषध रोगीको न दे, तो उक्त भेषज और ऐसी व्यवस्था (नुसखा)से व्याधिमें उपकार एवं रोगनिवृत्तिके स्थानमें हानिकी संभावना है। यही नहीं, अपितु कभी-कभी औषधविक्रेता और औषधनिर्मातासे ऐसी भूल हो जाती है जिससे रोगीके लिए प्राणसंकट उपस्थित हो जाता है। इन कारणोंसे औषधविक्रेता और औषधनिर्माताका शिक्षाप्राप्त होना आवश्यक है। वह इतना पढ़ा हो कि चिकित्सककी लिखित व्यवस्थाकी घसीट फारसी एवं उर्दू वाक्योंको भली-भाँति पढ़ सके। औषधद्रव्योंके शोधन, भर्जन, मसीकरण करनेके विधि-विधान, उनके पर्यायनाम और आवश्यक परिभाषाओंसे भलीभाँति अवगत हो। मिश्रामिश्र कल्पो, विशेषकर विषौषधोंकी सेवनोपयोगी मात्राका ज्ञान रखता हो एवं उन समस्त सूचनाओं और ज्ञातव्य आवश्यक बातोंसे पूर्ण-परिचय रखता हो जो भेषजकल्पनाविषयक सिद्धांतोंसे संबंध रखती हैं और जिनको उसने क्रियात्मक रूपसे सीखा हो। उपर्युक्त गुणोंके अतिरिक्त औषधनिर्माताको सच्चरित्र, धर्मभीरु एवं ईमानदार भी होना चाहिये जो जीवनका मूल्य समझता हो और हृदयमें ईश्वरका भय रखता हो और जो रोगीसे सदाचारका व्यवहार कर सके। इसके सिवाय उसका शुचि (शरीर और मनसे पवित्र) और स्वच्छताप्रिय होना अनिवार्य है। चिकित्सकके आदेशानुसार नुसखा बाँधकर और भेषज प्रस्तुत कर रोगीको दे देना ही औषधविक्रेता या अत्तारके कर्त्तव्योंमें समाविष्ट हो, सो बात नहीं है, प्रत्युत नुसखेमें औषधसेवनविधिके संबंधमें जो बातें लिखी हैं, उनको भलीभाँति हृदयंगम करा देना भी उसके कर्त्तव्योंके अंतर्भूत है। कभी-कभी नुसखामें भक्षणीय औषधोंके साथ बाह्योपयोगके विषौषध भी होते हैं। यदि औषधविक्रेता या अत्तारने आदेश करनेमें तनिकसी असावधानी बरती, तो संभव है कि रोगी बाह्य उपयोगकी विषैली औषधको आंतरिक उपयोगमें ले आवे, जिससे प्राणनाशकी संभावना है।

•

प्रकरण २

भेषजकल्पनाविषयक संस्कार (प्रक्रियाएँ)

(आमाले दवासाजी)

औषधनिर्माताको भेषजकल्पनाकालमे बहुधा निम्न संस्कारो (प्रक्रियाओ)से काम्ना पड़ता है —

(१) तक़्तीअ (काटना)—कभी-कभी काष्ठ, मूल और त्वक् जैसे कठिन औषधद्रव्योंको बारीक कूटने-पीसने और भिगानेसे पूर्व काटकर टुकडे कर लिया करते है, उदाहरणत मुलेठी, चोबचीनी आदि। पर्य्या०—तक़्तीअ–अ०। कटिंग Cutting, स्लाइसिंग Slicing–अं०।

(२) दक़्क़ व रज्ज़ (कूटना और कुचलना)—कभी-कभी शुष्क एव कठोर जडो, काष्ठो, वल्कलो, पत्रो, फलों और फूलोको क्वाथ या फाट बनाते समय कूटकर कुचल दिया जाता है, जिसमें जल आदिमें उनके कार्यकर वीर्य भाग शीघ्र एव भली-भांति विलीन हो जायें। ऐसी दवाओंके साथ क्वाथ आदिके नुसखेमें "नीमकोफ्ता (अधकुटा)" लिखा जाता है। उदाहरणत अस्लुस्सूसमुक़श्शरनीमकोफ्ता (छिलका उतारी हुई अधकुटी मुलेठी), बेख़बादियान नीमकोफ्ता (अधकुटा सौंफ मूल), इस प्रकार कभी तरोताज़ी हरी बूटियोको हावनदस्ता, ओखली इत्यादिमें कुचल दिया जाता है, जिसमें निचोडकर स्वरस और सत्त्व (उसारा) प्राप्त किया जा सके। कभी-कभी बारीक चूर्ण करनेके लिए भी औषधद्रव्य कूटे जाते है। सप्रति बडी औषधनिर्माणशालाओंमें कूटनेके लिए यत्र भी उपयोग किये जाते हैं, जिसमें मानवीशक्तिका अपव्यय कम होता है और अल्प कालमें बडा काम हो जाता है। पर्य्या०—दक़्क़, रज्ज़–अ०। ब्रूसिंग Bruising, कन्ट्यूजन Contusion–अं०।

(३) बर्द (बुरादा करना)—कभी-कभी कुचला और हाथीदांत जैसे कठोर द्रव्योको जिनका सूक्ष्म चूर्ण करना दुष्कर होता है, सोहान (रेती)से बुरादा कर लिया जाता है। बुरादारूपमें ऐसे औषधद्रव्य योगोपधो वा कल्पोंमें प्रविष्ट किये जाते है अथवा इनको भिगोकर फाण्ट और क्वाथ किया जाता है। उदाहरणत बुरादे आबनूस, बुरादे मदल (चदनका बुरादा), बुरादे दन्दांफील (हाथीदांतका बुरादा) आदि। वानस्पतिक एव प्राणिज औषध-द्रव्योंके अतिरिक्त कभी-कभी भस्म आदि करनेके लिये फौलाद (तीक्ष्ण लोह) जैसी कठिन धातुएँ भी बुरादाकी जाती हैं। पर्य्या०—बर्द (मब्रूद = बुरादा किया हुआ)—अ०।

(४) नख़्ल वा गर्बल (पोतन)—चलनी या कपडेमें छानना। इस विधिसे किसी औषधद्रव्यके महीन अशसे मोटे अशको पृथक् किया जाता है। जिस प्रकार रेशमके वस्त्र और मलमलमें छिद्रोंकी सूक्ष्मताके विचारसे भेद है, उसी प्रकार तार या बालों या किसी और वस्तुकी बुनी हुई चलनियोमें भी अपने छिद्रोंकी सूक्ष्मताके विचारसे भेद होता है, जो विभिन्न प्रकारके औषधद्रव्योंके छाननेके लिये काममें ली जाती हैं। इन छिद्रोकी गणनाके विचारसे चूर्णकी कक्षायें स्थिरकी जाती है। कपडे और चलनी (गिर्बाल) आदिमें जिस प्रकार शुष्क चूर्ण छाने जाते हैं, उसी प्रकार उनमें प्रवाही और अर्धप्रवाही द्रव्य भी छाने जाते हैं। इमली, आलूबोखारा, अञ्जीर, मुनक्का, सेबका मुरब्बा आदिका कोमल गूदा भी कभी-कभी चलनीमें छाना जाता है, जिसकी विधि यह है कि तारोकी मजबूत चलनीमें इसके गूदेको रखकर दबा दिया जाता है। पर्य्या०—नख़्ल, गर्बल (मुग़रबल = बेख़ता, छना हुआ द्रव्य)—अ०। सिफ्टिंग Sifting—अं०।

(५) सहक़् (पीसना)—(तस्हीक व इस्तिलात)। शुष्क औषधद्रव्योको पीसकर चूर्ण बनाना। खरल करना। रगडना। घिसना या तर औषधिका पीसना। औषधद्रव्य कभी पत्थर, चीनी और शीशेके खरलमें या सिल-बाट पर या चक्कीमें पिसे जाते हैं और कभी लोहेके हावनदस्तामें या काठकी ओखलीमें कूटे जाते है। सम्प्रति

बडी औषधनिर्माणशालाओमें बडे प्रमाणमें पीसनेके लिये पीसनेवाले यन्त्र भी निर्माण किये गये हैं, जिनमें सरलत पूर्वक अल्पकालमें बडे प्रमाणमें औषधद्रव्य पिसे जाते हैं।

वक्तव्य—शुष्क औषधद्रव्योंके पीसनेको अरबीमें सफ़्फ़ (सफ़ूफ़ वा चूर्ण बनाना) और चक्कीमें पीसने तह्न कहते हैं। (मसूहक = पिसा हुआ औषधद्रव्य, चूर्ण)। पर्य्या०—सहक—अ०, पल्वराइजेशन Pulveriz… ion, लेविगेशन Levigation, ट्रिट्यूरेशन Trituration—अ०।

(६) तस्वील (निथारना)—यह भी शोधन (तस्फिया)की एक विधि है, जिसमें मिट्टी, चूना आदि … औषधद्रव्यको जो जलमें लवणकी तरहसे विलेय नही होते, ककड पत्थर जैसे उपादानोंसे भिन्न कर लिया जाता है इसकी विधि यह है कि ऐसे बारीक पिसे हुये चूर्णको जलमें मिलाकर थोडी देरके लिये छोड देते हैं, जिससे … चूर्णके मोटे कण—ककड, पत्थर, रेत आदि तलस्थित हो जाते है और उक्त कालमें उस चूर्णके महीन भाग जल तैरते रहते हैं। इसके बाद धीरेसे ऊपरके पानीको निथार लेते हैं जिसके साथ बारीक अश जलमें मिले हुये … आते हैं। तलस्थित अशको फेंक देते हैं, बशर्ते कि वह ककड-पत्थरकी तरह निष्प्रयोजनीय बाह्य मिश्रण हो जिन… पृथक् करना इष्ट है। यदि वह अभीष्ट वास्तविक द्रव्यके स्थूल भाग हो तो उन्हें दोबारा बारीक पीसकर उपर्यु… रीतिसे निथार लेवें। फलत इस प्रकार निथरा हुआ पानी जो प्राप्त होता है और जिसमें बारीक कण निलंबि… होते हैं, उसे एकात स्थानमें रख छोडते हैं जिससे यह महीन भाग भी न्यूनाधिक तलस्थित हो जाते हैं। उस सम… ऊपरके स्वच्छ जलको धीरेसे निथारकर मूल द्रव्यको सुखा लेते हैं। इसके उपरात प्रयोजनानुसार चाहे उसे चू… कर लेवें अथवा यूँ ही रख लेवे। जो औषधद्रव्य इस प्रकार चूर्ण किये जाते हैं उनके उपादान अत्यत सूक्ष्म हु… करते हैं। पुन इस क्रियामें जितनी अधिक सावधानीसे काम लिया जाता है, उतना ही बार उक्त प्रक्रियाको दोह… राया जाता है अर्थात् निथरे हुये पानीको जिसमें औषधद्रव्यके सूक्ष्म अश होते, थोडी देर ठहराकर बार-बार निथार… हैं और तलस्थित द्रव्य, गाद वा तलछट (रासिब)को हर बार पृथक् करते जाते हैं। पर्य्या०—तस्वील—अ० एल्युट्रिएशन Elutriation—अं०।

(७) तरवीक[1] (फाडना-स्रवण-चुआना)—यह भी छानने और साफ करनेकी एक विधि है। यह उस सम… काममें लाई जाती है जबकि किसी द्रवमें ऐसा अविलेय मल मिश्रीभूत हो, जो साफी (छनना) आदिमें फँसकर र… जाय, और उसका विलेय अश द्रवके साथ छन जाय। इस प्रकार साफी या छननेके द्वारा जो वस्तु छानी जाती है उसे मुरव्वक कहा जाता है, उदाहरणत आब कासनी सब्ज मुरव्वक (हरी कासनीका फाडाहुआ रस)। कभी कभी कपडेकी साफ़ी (छनना)के स्थानमें सछिद्र शोषक कागज (सोख्ता) भी उपयोग किया जाता है। जिस पात्र… यह क्रिया सपन्न होती है उसे रावूका कहते हैं। साफ़ीसे छाननेकी एक विधि यह है कि चौकोर वस्त्रखडको फैला कर उसके चारों कोनोको बाँध देते हैं और उसके भीतर द्रवको डाल देते हैं। इससे धीरे-धीरे उसके विलीनीभू… (घुले हुये) अश बिंदुरूपमें छन जायेंगे और सिट्ठी साफीके पृष्ठ पर अवशिष्ट रह जायगी। इसे निचोडना न चाहिये क्योंकि इससे स्वच्छ द्रवके गदला हो जानेकी सभावना रहती है। यही रीति 'रगरेजोंकी रेनी'की है जिससे वे नील इत्यादि साफ किया करते है। तरवीककी दूसरी विधि यह है—किसी औषधद्रव्यका मोटा चूर्ण लेकर एक लबे मर्त… बानतुमा पात्र (पोतनपात्र—रावूका)में भर दें जिसके निचले सिरेमें एक छिद्र होता है। उस छिद्रपर मलमल इत्यादिका एक टुकडा बाँध दें और उसके भीतर दूसरा विलीन करनेवाला द्रावक द्रव डाल दें जिसमें यह उस पदार्थके विलेय भागको लेता हुआ नीचेके पात्रमें टपकता रहे।

(८) तस्फिया (छानकर साफ करना)—वह सस्कार जिसमें मधु, मोम, चर्बी जैसी अर्धसाद्र वस्तुओंको पिघलाकर रोएँदार मोटे कपडेकी साफी (छनने)मे छान लेते हैं। यह क्रिया तरशीह और तरवीककी क्रियाके समान

---

[1] तरवीक, तरशीह, तस्फिया और तक्तीर अरबीमें ये चारों शब्द अर्थ एव प्रयोगके विचारसे परस्पर बहुत सादृश्य रखते हैं और एक दूसरेके स्थानमें प्रयुक्त किये जाते हैं।

हैं। अरबी रवूक और सफ्फाका अर्थ साफीमें छानना है। अंगरेजीमें इसे स्ट्रेनिंग और तन्क़ीह एवं ततहीरको क्लेरिफिकेशन Clarification कहते हैं।

(९) तरशीह (टपकाना, स्रवण, क्षरण)—किसी द्रव या प्रवाही द्रव्यको किसी मोटे कपडे या सछिद्र शोषक कागजके द्वारा छानकर उसके स्थूल अविलेय अंशको पृथक् किया जाता है। इससे गदला प्रवाही निर्मल एवं स्वच्छ हो जाता है। पर्य्या०—तरशीह—अ०। फिल्टरेशन Filteration, परकोलेशन Percolation—अ०।

(१०) तक़्तीर (परिस्रुत करना, परिस्रावण, कशीद करना)। अर्क कल्पना, अर्क चुआना, अर्क खीचना। इसका वर्णन आगे किया जायगा।

(११) इरग़ाऽ, इज़्बाद (झाग उतारना)—किसी वनस्पतिके स्वरस या मधु इत्यादिको क्वथित करते हैं। जब उसके मल ऊपरी सतह पर झागके रूपमें आ जाते हैं, तब उस झागको बडे चमचा (कफगीर) आदिसे उतारकर फेंक देते हैं। चीनी आदिकी चाशनी और हरी बूटियोंके स्वरस इसी तरह साफ किये जाते हैं। पर्य्या०- इरग़ाऽ, इज़्बाद—अ०। डिस्प्युमेशन Despumation—अं०।

(१२) इज़ालएलौन या दाफ़िउल्लौन (रंग उतारना)—इस संस्कार द्वारा कतिपय औषधद्रव्योंके रंगको उडा दिया जाता है। इस प्रयोजनके लिये हड्डीका कोयला विशेष रूपमें उल्लेखनीय है। इससे औषधद्रव्योंके अतिरिक्त चीनीको भी साफ किया जाता है। यह जनसाधारणमें प्रसिद्ध है। पर्य्या०—इज़ालेलौन, दाफ़िउल्लौन—अ०। डीकलरेशन Decolouration—अं०।

(१३) तज्फ़ीफ (सुखाना)—आर्द्र औषधद्रव्यको शुष्क करना जिसमें आर्द्रताके कारण वह शीघ्र विकृत वा दूषित न हो जाय। इस प्रयोजनके लिये उत्ताप पहुँचाया जाता है, चाहे यह उत्ताप सूर्यका हो अथवा अग्निसे कमराको उष्ण कर लिया जाता है। गरम तनूर जिसका उत्ताप अतिशय तीव्र न हो कि वह द्रव्य जल सके, इस प्रयोजनके लिये काम आ सकता है। पर्य्या०—तज्फ़ीफ—अ०। डेसिकेशन Desiccation, ड्राइंग Drying —अं०।

(१४) तब्ख़ीर (बाष्पकरण)—बाष्प (बुखारात) बनाकर उडाना। यह संस्कार विभिन्न प्रयोजनोंके लिये किया जाता है। उदाहरणतः यदि कोई औषधद्रव्य अधिक पतला हो और उसे गाढा करना हो तो उत्ताप पहुँचाकर उसके जलीय वा तरल अंशको उडा दिया जाता है, जिससे वह द्रव औषधद्रव्य घन वा गाढा हो जाता है। प्रायः रसक्रियायें (रुब्ब और उसारात) इसी विधिसे सुखाई जाती हैं। कभी-कभी सत्त्वपातनके लिये, जिसे ऊर्ध्वपातन (तसईद) कहते हैं, यह विधि काममें लाई जा सकती है। पर्य्या०—तब्ख़ीर—अ०। एवापोरेशन Evaporation —अं०।

(१५) तस्ईद (ऊर्ध्वपातन वा सत्त्वपातन अर्थात् जौहर उडाना)—यह संस्कार अर्कल्पनाके बहुत समान है। अंतर केवल यह है कि इस संस्कारमें प्रवाही किसी ठोस द्रव्यको प्रथम उत्ताप पहुँचाकर वाष्पके रूपमें परिणत किया जाता है। तदुपरांत उन वाष्पोंको शीतल करके दूसरे पात्रमें ठोस (मुन्जमिद) बना दिया जाता है। रसकपूर, लोबान, संखिया प्रभृतिके सत्त्व इसी विधिसे प्राप्त किये जाते हैं। पर्य्या०—तस्ईद-अ०। ऊर्ध्वपातन— सं०। सब्लिमेशन Sublimation—अं०।

(१६) तरसीब (अवक्षेपण)—यह संस्कार ऊर्ध्वपातनके विपरीत है, जिसमें किसी विलयन (घोल)के कतिपय स्थूल अंश अधः क्षेपित हो जाते हैं। उस अवक्षेप या तलछट (रसोब)को विलयनसे पृथक् कर लेना सरल हो जाता है। पर्य्या०—तरसीब—अ०। अधःपातन, अधःक्षेपण, अवक्षेपण—सं०। प्रेसिपिटेशन Precipitation—अं०।

(१७) अस्र (निचोडना, प्रपीडन)—इस संस्कार द्वारा औषधद्रव्यको दबाकर उसका स्वरस (उसारा) प्राप्त किया जाता है और गिरियोंसे तैल निकाला जाता है। इसी प्रकार फाण्ट और क्वाथ आदिमें भीगी हुई वस्तुओं-

को दबाकर उनकी सीठी (नि सार भाग) दूर कर दी जाती है। पर्य्या०—अस्र—अ०। एक्सप्रेशन Expression—अ०।

(१८) तह्लील (विलीनीकरण)—किसी सान्द्र द्रव्यको (जो विलेय वा विलीनीक्षम हो) किसी ऐसे अन्य द्रव्यमें मिला देना जिससे सान्द्र द्रव्य द्रव वा प्रवाहीका रूप धारण कर ले। इसे विलयन (महलूल) कहते हैं। इस सस्कारके लिये यह दो बातें अनिवार्य हैं—(१) विलेय द्रव्य (मुहल्लल—काबिल इन्हिलाल माद्दा) और (२) विलीन करनेवाला द्रव्य अर्थात् विलायक (मुहल्लिल)।

वक्तव्य—अरबीमें बारीक पीसनेको भी 'हल' कहते हैं और ऐसी पिसी हुई वस्तु (सूक्ष्म चूर्ण)को 'महलूल'। अँगरजीमें विलीनीकरण या विलीनीभवन सस्कार (हल, तहल्लुल, इन्हिलाल) और विलीनीभूत द्रव्य (मुहल्लल) अर्थात् विलयन दोनोको सोल्यूशन Solution और विलेय द्रव्यको सोल्यूट Solute तथा विलीनकर्ता द्रव्यको सॉल्वेंट् Solvent या मेन्स्ट्रुअम् Menstruum कहते हैं।

इजाबत (द्रावण, पिघलाना, द्रवीभूत करना)—किसी घन वा ठोस द्रव्यको उत्ताप पहुँचाकर पिघलाना, उदाहरणत मोम, लाक्षा, मरहम इत्यादिको आँच देकर पिघलाना। सहूर = Fusion, तज्वीब = Liquifaction)।

(२०) गली, तब्ख (क्वथन, उबालना)—वानस्पतिक औषद्रव्योको जल या अर्क आदिमें डालकर न्यूनाधिक काल पर्यंत उबालना (क्वाथ करना)। इस प्रकार जो वस्तु प्राप्त होती है उसे यूनानी वैद्यकमें तबीख, मुगला, मत्बूख और जोशाँदा (क्वाथ वा काढा—Decoction) कहते हैं। पर्य्या०—ग़ली, तब्ख—अ०। क्वथन—स०। डिकाक्ट Decoct—अ०।

(२१) नक्अ (भिगोना)—हिम वा फाण्ट कल्पना करना। इस सस्कार में वानस्पतिक औषधद्रव्योको शीतल वा उष्ण जलमें न्यूनाधिक काल तक भिगो लेते हैं। इस प्रकार जो द्रव्य प्राप्त होता है उसे नकूअ, नकोअ, मन्कूअ और खेशाँदा (हिम वा फाण्ट) कहते हैं, जिसको छानकर सिट्ठी वा फोक (Marc)से पृथक् कर लिया जाता है। पर्य्या०—नक्अ—अ०। इन्फ्यूज Infuse, मेसरेट Macerate—अ०। उपर्युक्त सस्कार जिस प्रकार जलमें किया जाता है, उसी प्रकार कभी सिरका, मद्य या किसी अन्य अरकमें भी किया जाता है। सुरा या सुरासारसे जो फाण्ट (नकूअ) कल्पना किया जाता है उसे अरबीमें सबीग, सस्कृतमें सुरासाव और अँगरेजीमें टिंक्चर Tincture कहते हैं। कभी-कभी फाण्टको उष्ण स्थानमें इसलिए रखते हैं कि घुलने (इन्हिलाल)की क्रिया तीव्र हो जाय। इस सस्कारको कभी-कभी 'हज़्म' (पाचन) भी कहा जाता है।

(२२) तह्बीब या तकव्वुने हुबैबाब (दानेदार चूर्ण बनाना)—कुछ औषधद्रव्य इस प्रकारके होते हैं कि उनको कूटकर या पीसकर चूर्ण बनाना कठिन होता है। उक्त अवस्थामें विशेष विधिसे उसका दानेदार चूर्ण बना लिया जाता है। उसकी विधि यह है कि—उदाहरणत शोरा या नौसादर जैसे स्फटिकीय द्रव्यमें जल मिलाकर उसे अग्नि पर इतना रखते हैं कि उसका जलाश बाष्प बनकर उड जाय। उस अवस्थामें उसे बराबर किसी चीजसे चलाते हैं। इससे वह अतत दानेदार चूर्णके रूपमें परिणत हो जाता है। पर्य्या०—तह्बीब, तकव्वुने हुबैबाब—अ०। ग्रेन्युलेशन Granulation—अ०।

(२३) इक्लाऽ(क्षार बनाना, खार निकालना)—इक्लाऽ और कला अरबी 'क़ली' से जिसका अर्थ क्षार (Alkali) है (अरबीमें 'कलीका' अर्थ भूनना भी है) व्युत्पन्न हैं। इस सस्कारके द्वारा उन लवणाशोको ठोस द्रव्यसे पृथक् कर लिया जाता है जो उसमें वर्तमान होते हैं। इसकी विधि यह है—उस द्रव्य या भस्म (राख)को जिसके अदर वे लवणके घटक वर्तमान होते हैं, पहले जलमें घोल लेते हैं जिसमें जलविलेय लवणके उपादान पानीमें घुल जायँ और अविलेय पार्थिव घटक आदि अवक्षेपित हो जायँ। इसके बाद ऊपर निथरे हुए पानीको पृथक् कर लेते हैं जिसके साथ लवण या क्षारीय उपादान विलयन रूपमें चले आते हैं। इस क्षारीय विलयनको उत्तापके द्वारा (धूप

या आतप अथवा अग्नि पर रखकर) वाष्पीभूत करते हैं। इस प्रकार जलांश उड जानेके उपरात उस पात्र में लवण शेष रह जाता है, जिसको कली[1] कहते हैं। क्योंकि लवणमें उडनेका गुण नही पाया जाता। समुद्रके क्षारीय जल या क्षारीय झीलोके जलसे इसी प्रकार लवण प्राप्त किया जाता है। अपामार्ग, मूली, जौ आदिसे लवण या क्षार इस प्रकार प्राप्त किया जाता है कि प्रथम उनको जलाकर राख किया जाता है। फिर उस राखको जलमें घोलकर उपर्युक्त पद्धतिका अनुसरण किया जाता है। क्षारनिष्कर्षकी इस विधिको अरबी में इक्लाऽ और अँगरेजीमें लिक्सीव्हीएशन Lixiviation कहते हैं। क्षारोदकको अँगरेजीमें 'लाय Lye' कहते हैं।

(२४) तब्लूर (स्फटिक या कलम बनाना)—स्फटिक या बिल्लौरके रवे निसर्गत आपसे आप पर्वतोमें बन जाते हैं। शुद्ध शोरेको यदि जलमें विलीन करके वाष्पीकरण द्वारा उस जलको सुखाया जाय, तो फिर यह स्फटिकके रूपमें परिणत हो जाता है। गधकको यदि पिघलाकर छोड दिया जाय, तो वह स्फटिकाकार हो जाती है। इसी प्रकार कतिपय द्रव्य ऊर्ध्वपातनसे और कतिपय अध पातनसे स्फटिकके रूपमें आ जाते हैं। यह द्रव्योंके प्राकृतिक भौतिक धर्म हैं जो मानवज्ञानसे परे हैं। पर्य्या०—तब्लूर—अ०। क्रिस्टलीकरण, स्फटिकीकरण—सं०। क्रिस्टलाइजेशन Crystalization—अ०।

(२५) तक्शीर (पपडी बनाना—पर्पटीकरण)—कज्जलकी देशी स्याही जो साधारणतया बाजारोंमें मिलती है, वह वस्तुत बारीक-बारीक पपडियाँ होती हैं। इसी प्रकार कुछ औषधद्रव्योको भी पर्पटी या छिलके (क़श्र)के रूपमें परिणत किया करते हैं। इसकी कल्पना मसी या स्याहीकी कल्पनाके तुल्य है, अर्थात् प्रथम औषधद्रव्यका गाढा घोल बनाकर उसे शीशे, चीनी या तामचीनीके समतल और मसृण धरातलपर फैला देते हैं। सूख जाने पर वह घोल पपडीके रूपमें जमकर टूट जाते हैं। यह घोल जितना अधिक पतला फैलाया जायगा, उतनी ही यह पपडियाँ अधिक बारीक होगी। पर्य्या०—तक्शीर—अ०। पर्पटीकरण[2]—स०। स्केलिंग Scaling—अ०।

(२६) एहराक व तक्लीस (मसीकरण व मारण)—औषध द्रव्यको जलाकर चूना (किल्स) जैसा बना देना तक्लीस (अ० तकल्लुस = चूना बनाना) कहलाता है। परतु एहराक़ (हर्क = जलजाना = Burn)की परिभाषा बहुत ही व्यापक है। यदि वह द्रव्य जलकर राख (क्षार, भस्म) हो जाय, तो भी उक्त क्रियाको एहराक कहा जाता है। यदि वह जलकर कोयला (मसी) बन जाय तो भी उसके लिये एहराक संज्ञाका व्यवहार किया जाता है। अर्थात् जलकर क्षार वा भस्म होने और जलकर कोयला होने[4] अर्थात् भस्मीकरण और मसीकरण इन उभय अर्थोंमें तक्लीस[3] संज्ञाका व्यवहार होता है। तक्लीस व एहराक़में कभी उपला इत्यादिके द्वारा तीव्र अग्नि दी जाती है और कभी भट्ठियाँ उपयोग की जाती हैं। इसी प्रकार उपले कभी समतल भूमिमें चुने जाते हैं और कभी बद गड्ढे

---

१ क़लीको आयुर्वेदमें 'क्षार' कहते हैं।

२ आयुर्वेदमें 'पर्पटी' पारद और गधकके योगसे पपड़ीके रूपमें बने एक विशेष कल्प को कहते हैं।

३ आयुर्वेदमें तक्लीसको 'मारण' कहते हैं—"शोधितांल्लोहधात्वादीन् विमर्द्य स्वरसादिभि। अग्निसयोगतो भस्मीकरण मारण स्मृतम्।" अँगरेजीमें इसे 'कैल्सिनेशन Calcination' कहते हैं।

४ आयुर्वेदमें औषधद्रव्योंको इस प्रकार जलानेको कि उसके कोयले बने, राख न बने मसीकल्पना या मसीकरण और यूनानी वैद्यकमें एहराक़ और पाश्चात्य वैद्यकमें, 'इन्सिनरेशन—Incineration' कहते हैं। इस प्रकार जलाकर कोयला बनाई हुई वस्तुको आयुर्वेदमें 'मसी' और यूनानी वैद्यकमें 'मुहरक' कहते हैं। यदि सफेद राख बने तो आयुर्वेदमें उसको 'क्षार' और यूनानी वैद्यकमें 'कली' कहते हैं। आयुर्वेदमें लिखा है, "कृष्णस्य सर्पस्य मसी सुदग्धा" (सु० चि० अ० ९)। इसकी व्याख्यामें डल्हण लिखते हैं कि—"कृष्णसर्पो दह्यमानो यदाऽति कृष्णत्व गच्छति तदा तच्चूर्ण 'मसी' इत्युच्यते, स एव यदाऽतिदह्यमानो शुक्लत्व याति तदा 'क्षार' इत्युच्यते"। इस क्षारको ही भस्म (अरबीमें 'मुकल्लस') या मृत (अरबीमें 'मक्तूल') और पाश्चात्य वैद्यकमें 'ऑक्साइड Oxide' कहते हैं।

में। मसीकरण सस्कारके उपरात जो जली हुई वस्तु प्राप्त होती है, उसे मुहूरक (मसीकृत) कहा जाता है, उदाहरणत सर्तान मुहूरक (मसीकृत कर्कट) और जो वस्तु मारण सस्कार (अमले तक्लीस)के उपरात चूना (सुधा)के रूपमें प्राप्त होती है उसे मुकल्लस (कुश्ता = मृत, क्षार वा भस्म) कहा जाता है।

(२७) तह्मीस (भूनना वा खील करना)—खील करना, खिलाना या शिगुफ्ता करना। भूनना, भृष्ट करना, भर्जित करना या बिर्यां करना। तह्मीस वस्तुत चना या दाना भूननेको कहते हैं। यहाँ इससे अभिप्रेत इतना भूनना है कि वह औषधद्रव्य जलकर बिल्कुल राख न हो जाय। इससे कभी यह प्रयोजन होता है कि वह औषध पिसने योग्य हो जाय या यह कि वह शुष्क हो जाय और उसमें सग्राही वीर्य बढ जाय। इस प्रकार जो औषधद्रव्य भृष्ट किये जाते हैं उनको अरबीमें मुहम्मस, फारसीमें बिर्यां (फा० बिरिश्तन = भूनना और सस्कृतमें भृष्ट वा भर्जित कहते हैं, उदाहरणत अफ्यून मुहम्मस (अफ्यून बिर्यां—भृष्टअहिफेन), अबरेशम मुहम्मस (अबरेशम बिर्यां—भृष्टरेशम)। पर्य्या०—तह्मीस—अ०। भर्जन—स०। टोरीफैक्शन Torrefaction—अ०।

(२८) तक्लिया (तलना)—यद्यपि तश्विया और तक्लिया का अर्थ और इनका भाव एक दूसरेसे मिलता-जुलता है, तथापि परिभाषाके अनुसार इनके प्रयोगोमें भेद किया जाता है। यदि कोई शुष्क द्रव्य किसी पात्रमें रख कर भूना जाता है, तो उसे तह्मीस (भर्जन, भृष्ट करना) कहते हैं, जैसे—तुख्म कनौचाका भृष्ट करना। यदि कोई द्रव्य स्नेह (तेल)में भृष्ट किया जाता है तो उसे तक्लिया (तलना) कहते हैं, उदाहरणत माजूका घीमें भूनना। यदि कोई तरोताजा फल या तरकारी, जैसे कद्दू, सेब या खीरा अग्निमें भूना जाता है, या कोई औषधद्रव्य ऐसे ताजे फलमें रखा जाता है और उस फलको अग्निमें भूना जाता है, तो इस क्रियाको तश्विया (भुलभुलाना) कहते हैं। औषधद्रव्योको स्नेहके अदर तलने (तक्लिया)से भी एक प्रकारका शोधन (इस्लाह और तद्बीर) होता है। अस्तु, इसी आशयसे माजूको तिलके तेलमें इतना भूनते हैं कि वह खिल जाता है, हडको बादामके तेल या घीमें भूनते हैं जिससे वह फूल जाते हैं और उनकी रूक्षता कम हो जाती है। पर्य्या०—तक्लिया—अ०। रोस्टिंग Roasting—अ०।

(२९) तश्विया (भुलभुलाना)—अरबी तश्विया शब्दका अर्थ भुलभुलाना है और जो वस्तु भुलभुलाई जाती है उसे यूनानी वैद्यकमें मश्वी या मुशव्वा (भूना हुआ) कहते हैं, उदाहरणत सकमूनिया मुशव्वा। प्रयोजनभेदसे तश्वियाकी क्रिया भिन्न-भिन्न प्रकारसे की जाती है—(१) जब किसी आर्द्र द्रव्यका स्वरस तश्वियाके द्वारा निकालना अभीष्ट होता है, तब उस आर्द्र द्रव्य पर कपरौटी करके या कपडमिट्टीके बिना भूभल (भौरा) या गरम बालू या मदाग्निमें रखते हैं। कुछ देरके बाद निकालकर उस द्रव्यका स्वरस निचोड लेते हैं। इस विधिसे कद्दू, खीरा, प्याज, तरबूज इत्यादिका स्वरस निकाला जाता है और उक्त स्वरसको आब कद्दूए मुशव्वा (भुलभुलाये या भूने कद्दूका स्वरस), आब खियार मुशव्वा (भुलभुलाये हुए खीरेका स्वरस) आदि कहा जाता है। (२) कभी-कभी औषधद्रव्यको किसी फल या बूटीकी लुगदी (कल्क) या अण्डे आदिके भीतर रखकर और गरम भूभलमें दबाकर या घी तेलमें तलकर तश्विया किया जाता है। इससे यह अभीष्ट होता है कि औषधद्रव्यको जिस वस्तुके भीतर रखकर तश्विया किया जाता है, औषधद्रव्य उसके प्रभाव और रसको ग्रहण कर ले। सुतरा सकमूनियाको सेबके भीतर रखकर तश्विया किया जाता है और 'सकमूनिया मश्वी या मुशव्वा' कहलाता है। इसके अतिरिक्त भस्मोंके निर्माण करनेमें भी इस विधिकी प्राय आवश्यकता पडा करती है। (३) तश्वियाकी एक विधि यह भी है कि औषधद्रव्यको किसी वनस्पतिके रस या किसी अन्य तर वस्तुमें खरल करनेके पश्चात् आतशी शीशी या मूषा (बूता)में डालकर गरम तनूर या भाडमें जबकि उसके भीतर अग्नि न जलती हो, एक लोहेकी तिपाई पर रख देते और तनूर या भाडका मुँह बद कर देते हैं। इस विधिसे भी औषधका तश्विया भलीभाँति हो जाता है और औषधका रस अतीव उत्तमतासे शुष्क हो जाता है। (४) उपर्युक्त विधिके अतिरिक्त एक विधि यह भी है कि औषधद्रव्यको किसी वनस्पतिके कल्कमें रखकर कपडमिट्टीके उपरात उपलोकी अग्निमें इतनी देर रखते हैं कि वनस्पतिका रस सूख जाता

है। परंतु इस वातकी सावधानी रखते हैं, कि कहीं अग्नि इतना तीव्र न हो कि कपडमिट्टी और बूटी जलकर औषध भी जल जाय। (५) तश्वियाकी एक विधि यह भी है, कि औषधद्रव्यको लुगदी (नुगदा), कपडमिट्टी या मूषा (बूता)के सहित तौल लेते हैं और उससे तिगुना या न्यूनाधिक जगली उपले बारीक कूटकर और उसके मध्य मूषा (बूता) रखकर निर्वात स्थानमें अग्नि देते हैं।

वक्तव्य—जिस प्रकार यूनानी भेषजकल्पनाविज्ञानमें औषधद्रव्योंका स्वरस निकालनेके लिये तश्वियाकी कल्पना की जाती है, उसी प्रकार आयुर्वेदमे बिना गरम किये स्वरस न निकलनेवाले औषधद्रव्यों, जैसे नीम, बेल, अडूसा, कुटज आदि कुछ वृक्षोंकी पत्ती-छाल आदिमे स्वरस निकालनेके लिये 'पुटपाक'की कल्पना की गई है। लिखा है—' पुटपक्वस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यत । अतस्तु पुटपाकस्य विधिरत्रोच्यते मया ॥" अस्तु, यूनानी 'तश्विया'के लिये पुटपाक शब्दका प्रयोग उचित प्रतीत होता है।

गस्ल (धोना)—अरबीमे गस्लका अर्थ 'औषधद्रव्योंका धोना' है। इसका उद्देश्य कभी यह होता है कि औषधद्रव्योंकी तीक्ष्णता और विष कम हो जाय, अथवा उसके स्थूल अश तलस्थित हो जायें और सूक्ष्म अश पानीमें फैलकर पृथक् हो जायें। यह तस्वील (निथारनेकी क्रिया)के द्वारा पृथक् कर लिये जाते हैं।

(३१) तद्हीन (अ० दुह्न = तेल, घी, वसा। स्नेहाक्त करना, स्निग्धकरण, स्नेहन, चर्ब करना)—किसी शुष्क औषधद्रव्यको स्नेहाक्त (रोगनदार) करना, स्नेह वा तेलमें मिलाना। इस परिभाषाका उपयोग अधिकतया हड़ोंके लिये किया जाता है। अर्थात् इत्रीफल कल्पनाके समय बहुधा चूर्ण बनाये हुये हड़ोंको मीठे बादामके तेल, घी अथवा तिलतेल आदिके साथ मिलाकर चमचा आदिमे चलाया जाता है। इस सस्कारमे किसी हद तक उक्त औषधद्रव्योंके दोषोंका परिहार हो जाता है।

(३२) तख्मीर व ता'फीन (सधान = खमीर उठाना व कोथ)—सिरका और मद्य दोनो सधान और प्रकोथकी क्रियाके परिणाम हैं। अर्थात् सधान और प्रकोथ वह हलके भौतिक परिवर्तन (उन्सुरी इस्तिहालात[1]) हैं, जिनके परिणाममें शर्कराके उपादान (अज्ज़ाऽ सुक्करिय्या) शुक्त या मद्यमें परिणत हो जाते हैं। आटेमें सधान-क्रिया उत्पन्न करनेके लिये हम जोटनकी भाँति सुराबीज (खमीर) मिला दिया करते हैं। इसी प्रकार यह भी आवश्यक है, कि सिरका बनानेके लिए रसमें जोडन या खमीरकी भाँति सधानोत्पादक द्रव्य मिला दिया जाय या वह अज्ञातरूपसे स्वयमेव कहींसे मिल जाय। अज्ञातरूपसे मिलनेका उदाहरण यह है, कि रसको हम ऐसे मटकेमें भर दें जिसमें पहलेसे सिरका मौजूद हो। इस प्रकार शुक्तोत्पादक द्रव्य मटकेकी सतह और स्रोतोंमे रसमें सम्मिलित होकर अपना कार्य प्रारभ कर देते हैं। यही दशा मद्य एव समस्त सधानकारक द्रव्यो की है।

इत्फाऽ व तत्फिया (बुझाव देना)—किसी वस्तु, उदाहरणत किसी धातुको तपाकर किसी द्रवमें बुझानेको 'बुझाव देना' कहते हैं। यूनानी ग्रथोंके अनुसार इसे हिंदीमें 'पुट देना' भी कहते हैं। परतु आयुर्वेदीय रसतत्रकी परिभाषाके अनुसार इसका समीचीन पर्य्याय 'निर्वाप', 'निर्वापण' और 'स्नपन' है[2]।

वक्तव्य—भावना देनेको यूनानी वैद्यकमें 'तस्किया' कहते हैं। घी-तेल आदिकी तीक्ष्णता एव दोषको धोकर दूर करनेको अरबीमें 'ततरिया' (तरी पहुँचाना) कहते हैं।

●

---

१ भौतिक परिवर्तनको रासायनिक परिवर्तन (इस्तिहालात कीमियाविय्या) भी कहा जाता है।

२ आयुर्वेदमें लिखा है—"तप्तस्याप्सु विनिक्षेपो निर्वाप स्नपन च तत्।"

प्रकरण ३

अग्नि(आँच)देना (अग्नि जलाना)

भेषजकल्पनाविषयक विविध सस्कारों (प्रक्रियाओ)के क्रममें मद, तीव्र विविध प्रकारकी अग्नियाँ दी जाती हैं और आंचके लिये विभिन्न वस्तुयें जलाई जाती हैं। उदाहरणार्थ सत्त्वपातनार्थ दीपककी मोटी लौके वरावर अग्नि दी जाती है। सत्त्वपातनके लिये मिट्टीके तेलके चूल्हे भी काममें आ सकते हैं, जिनमें एक सुविधा यह है कि उसकी आँच एक काल तक एक ही गति पर स्थिर रहती है और वार वार लकडी जलाने और देखने-भालनेकी कोई आवश्यकता नही होती। मसीकरण और मारणके लिये सामान्यतया तीव्र अग्नि दी जाती है। यहाँ तक कि कभी-कभी जगली उपले मनोके प्रमाणमें जला दिये जाते हैं। कभी थोडी आँचमें वस्तुएँ भस्म (कुश्ता) या मसी (सोख्ता) हो जाती हैं और इसके लिये दो-अढाई सेर जगली उपले काफी हुआ करते हैं। इन प्रयोजनोंके लिये विशेष रूपसे जगली उपलोको इसलिये ग्रहण किया जाता है, कि वे वनाये हुये उपलोंसे साधारणतया मोटे होते हैं और उसकी आँच देर तक स्थिर रहती है। यदि वनाये हुये उपले मोटे-मोटे वना लिये जायँ तो यह भी जगली उपलोंके स्थानमें काम आ सकते हैं। इसी प्रकार आँचके लिये कभी लकडी या पत्थरके कोयले और कभी लकडी उपयोगकी जाती है। कभी तनूर आदिकी केवल गरम राखसे आँचका काम लिया जाता है, उदाहरणत कुछ मेवोके भुलभुलानेमें। शर्वत, माजून और अरक आदि कल्पना करनेके लिये चूल्हा ऐसे स्थानमें वनाना चाहिये, जहाँ वायुके झोंके न पहुँचते हो। वरन् झोकोकी उपस्थितिमें एक समान आँच नही लगती। भस्मकल्पना (कुश्तासाजी) आदिमें जव देर तक आँचकी आवश्यकता होती हैं, तव वकरी या भेड आदिकी मीगनियाँ या धानकी भूसी प्रभृतिकी अग्नि देते हैं। कतिपय भस्मोके निर्माणके लिये कपडेकी अग्नि भी दी जाती है। इस प्रयोजनके लिये कपडेकी धज्जियाँ करके भस्म की जानेवाली वस्तुके ऊपर एक-एक करके लपेटकर गोला-सा वना लेते और वायु आदिसे सुरक्षित स्थानमें अग्नि देते हैं और जब तक यह गोला विल्कुल शीतल नही हो जाता, उस समय तक उसमे औषधि नही निकालते। भस्मीकरण, अरकपरिस्रावण, तैलनिष्कासन, सत्त्वपानतमें किस प्रकारकी अग्नि दी जाती है, एवत्सवधी परिभाषाओ, आदेशो और नियमोंका उल्लेख उन शीर्षकोके अतर्गत किया जायगा।

प्रकरण ४

औषधद्रव्योंका कूटना-पीसना और छानना

यदि किसी ऐसे नुसखाके औषधद्रव्योको कूटना-पीसना हो, जो भेषजकल्पनाविषयक प्रक्रियाओंके विचारमे विभिन्न प्रकारके हो, तो उन विभिन्न औषधद्रव्योंको विभिन्न वर्गोमें विभाजित कर दें और प्रत्येक वर्गको अलग-अलग कूटें-पीसें। उदाहरणत यदि किसी नुसखामें कद्दूके बीजकी गिरी जैसी कतिपय गिरियाँ हो, कतिपय रत्न (जवाहिरात) और पाषाण (हजरियात) हो, कस्तूरी, केसर, अवर जैसे सुगधद्रव्य हों, विविध प्रकारके शुष्क निर्यास हो, जो चिपक और लचक न रखते हो, मुलेठी, सौफकी जड जैसे काष्ठद्रव्य हो, तो इन विभिन्न प्रकारकी पुडियोको विभिन्न वर्गोमें बाँटकर कूटना-पीसना प्रारभ करें। इस प्रकार कूटने-पीसनेसे बडी सुगमता हो जाती है।

कडे और शुष्क औषधद्रव्य—इनके लिये हावनदस्ता लोहे या पीतल या अष्टधातुका उत्तम होता है। इनमेंसे जिनको प्रथम कूटना पडता है उनको चाहिये कि हावनदस्तामें बहुत एक ही बार न डालें, प्रत्युत थोडा-थोडा करके हावनदस्तामें डालकर धीरे-धीरे कूटे जायें जिसमें कूटनेके जोरसे औषधद्रव्य हावनदस्तासे बाहर न निकले। प्रयोजनानुसार महीन हो जाने पर उसे चलनीसे चालें। चालनेके बाद जो अवशेष (सिट्ठी) रह जाय, उसको पुन हावनदस्तामें डालकर कूटे और इतना बारीक करें कि चालने पर कुछ भी शेष न रहे। यदि फिर भी अवशेष रहे और अल्प प्रमाणके कारण हावनदस्तामें कट न सके तो उसे कदापि न फेंके, क्योंकि वह नुसखाका उपादान है, प्रत्युत उसको खरल या सिल-बट्टा पर खूब बारीक करके सम्मिलित करें। जो द्रव्य सहजमें चूर्ण हो सकते हैं, जैसे—लवण और गधक इत्यादि, उनके चूर्ण करनेके लिये खरल काफी है। खरलके खुरदरे होने और ऐसे द्रव्यके परस्पर घिसनेसे जो चूर्ण हो जाता है, उसके लिये चीनी और शीशेका खरल काममें लेते हैं। ऐसे गुरु पदार्थोके लिये जो सहजमें पिस जाते हैं और जलमें घुल जाते हैं, पत्थरका खरल भी उपयोगी है।

गुटिका और चक्रिका—कल्पनाके लिये जो औषधद्रव्य कूटे-छाने जायें, वह अत्यत महीन होने चाहियें और उनको महीन कपडेमे छानना श्रेष्ठतर है, क्योंकि खूब महीन किये हुये औषधद्रव्योकी वटी, गोलियाँ और चक्रिकायें सहजमे ही बन जाती है।

हड आदि (हलैलाजात)—यदि कूटे जानेवाले औषधद्रव्योंमें हड, बहेडा और आँवला हों तो उनको पृथक्-कूट-छानकर नुसखाके आदेशानुसार बादामके तेल या गोघृतसे स्नेहाक्त (चब) करलें, जैसाकि इतरीफलो आदिमें इस बातका निर्देश किया जाता है। किसी-किसी औषधद्रव्यके कूटनेके विषयमें यह निर्देश किया जाता है कि उसको कूटकर अधिक बारीक छलनीसे न चालें, प्रत्युत ऐसी मोटी चलनीसे चालें जिससे चालने पर औषधद्रव्य खुरदरा (दरदरा) रहे।

विशेष औषधद्रव्योका चूर्ण करना

यहाँ पर कतिपय ऐसे विशेष औषधद्रव्योके कूटने-पीसनेके नियम लिखे जाते है, जिनका सामान्य रूपसे चूर्ण होना परम दुरूह है। यदि औषधनिर्मापक भेषजकल्पनाके इन नियमोंसे अपरिचित हो तो वह बडी कठिनाईमें पडनेके सिवाय औषधकी कल्पना उससे ऐसी विकृत हो जायगी कि कभी-कभी उसमे उग्र परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं।

छुहारेका आटा (आर्द खुर्मा)—छुहारेका कूटना और उसका आटा बनाना उसमें अन्तर्भूत लेस, आर्द्रता (नमी) एव मधु जैसे द्रवके कारण बहुत ही कठिन है, विशेषत वर्षाऋतुमें। इसको चूर्णरूपमें लानेकी विधि यह है कि छुहारेकी गुठली निकालकर और कडाही में डालकर अग्नि पर यहाँतक शुष्क करे कि सूखकर वह कूटनेके योग्य हो जाय। यदि ग्रीष्म ऋतु हो, तो तीव्र आतपमें शुष्क कर लेना भी कभी-कभी पर्याप्त हुआ करता है।

चूर्ण किया हुआ उशक और गूगल (उशक व मुकुल मस्फूफ)—उशक और गूगल और अन्यान्य चिपकनेवाले गोंदोंके चूर्ण करनेकी विधि यह है, कि तवे या कडाहीमें रखकर मदाग्नि पर शुष्क कर लिया जाय और सूख जाने पर पीस लिया जाय।

अहिफेन चूर्ण (अफ्यून मस्फूफ)—अहिफेनको चूर्ण करके किसी चूर्णौषध या माजून इत्यादिमे डालना हो, तो इसको भी अग्नि पर भृष्ट (मुहम्मस वा विर्या) करके वारीक पीसना चाहिये।

चूर्ण किया हुआ रसवत (रसवत मस्फूफ)—रसवत और इसके सदृश अन्यान्य गीले ओषधद्रव्योको अग्नि पर शुष्क करके चूर्ण वनाकर माजून आदिमें मिला सकते हैं।

मस्तगी चूर्ण (मस्तगी मस्फूफ)—मस्तगीको अनुष्ण खरलमें डालकर वहुत हलके हाथसे पीसना चाहिये, वरन् खरल की उष्णता और रगडके उत्तापसे मस्तगी नरम होकर खरल और वट्टा (दस्ता)के साथ चिपक जाती है। उस अवस्थामें इसका चूर्ण होना कठिन हो जाता है। मस्तगीको अकेले पीसना चाहिये। खरलमें पीसते समय अन्य औषधद्रव्यके साथ मिलाना न चाहिये।

गिरियो (मग्ज़ियात)का चूर्ण बनाना—इनके चूर्ण करनेकी विधि यह है, कि इनको सिल-वट्टापर या खरलमें पीसा जाय। इनके छाननेकी आवश्यकता नही है।

कुचलाको वुरादा करना या पीसना—कुचला जैसे कडे औषधद्रव्यको कूटनेसे पूर्व उसे वुरादा कर लिया जाता है। इसके वाद हावनदस्तामें कूटकर या खरलमें अत्यत महीन करके काममें लाया जाता है। पर वहुधा वुरादा ही सम्मिलित कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त शोधनोपरात जवकि वह नरम होता है, उसी नरमीकी दशामें कूट लिया जाता है, यहाँ तक कि खूव वारीक हो जाता है। इसके उपरात माजून आदिमें प्रविष्ट किया जाता है।

वक्तव्य—इसी प्रकार मुलेठी और नारगीका छिलका आदि सरलतापूर्वक कूटकर चूर्ण न हो सकनेवाले द्रव्योको प्रथम छुरी या सरोता आदिसे टुकडे करके खूव सुखा लिया जाता है। छडीला शुष्क नही कुट सकता, इसलिये उसे थोडा जलमें तर करके कूटें तो कुट जाता है।

इमलीके बीजो (तुख्म इमली–चीआँ)का कूटना-पीसना—इमलीके वीजोको भाडमें भुनवायें और छिलका आदि दूर करके गिरीको कूट-छानकर उपयोगमें लेवें या इमलीके वीजोको कुछ दिन जलमें भिगो रखें या आर्द्र भूमिमें गाड देवें। जव यह फूल जाय तव छिलका दूर करके उसी समय नरमीकी दशामें कूटकर वारीक कर लें और सूख जाने पर छानकर काममे लावें। किंतु यदि मग्ज सूखे हो और आकारमें वडे हों तो उनको वुरादा करके भी वारीक कर सकते हैं।

अब्रेशम चूर्ण (अवरेशम मस्फूफ)—इसको चूर्ण करनेकी विधि यह है, कि इसको पहले कैंचीसे वारीक कतर कर फिर गरम तवे पर भूनते हैं। इसके वाद इसे खरलमें वारीक कर लेते हैं। इस उपायसे यह सहजमें ही चूर्ण हो जाता है।

औषधद्रव्योका खरल करना

खल्व-भेद—सगमरमर, सगस्याह (सगमूसा), सगखारा, सगसमाक इन सव पत्यरोके खरल वनते हैं। कभी-कभी इनके सिवाय अन्यान्य पत्थरोंके भी खरल मिलते हैं। इनमें सगसमाकका खरल सवसे अधिक दृढ़ और कम घिसनेवाला होता है। परतु यह इतना मूल्यवान् होता है कि साधारण औषधनिर्माताओके लिये इनका खरीदना सहज नही। औषधमें प्रयुक्त रत्न (जवाहिरात) और कडे पत्थर इसीमे पीसे जाते हैं। इसके वाद कडाई और कम घिसनेमें सगखाराका नवर है। इसके वाद सग चकमाक और सग कसौटीका। सगमरमर और सगमूसा इन सबमें नर्म पत्थर हैं। इनमे रत्न और पत्थर नही घोटे जाते। यदि इनमें रत्न और पत्थर पीसे जायें, तो खरल

जवारिश आदि जैसे किसी आर्द्र कल्पमें केसर डालना हो, तो इसको अर्क केवडा, अर्क वेदमुश्क या अर्क गुलाबमें खूब खरल करें। यह जितना ही अधिक काल तक खरल किया जायगा, उतना ही उत्तम होगा।

अभ्रकके महलूल (सूक्ष्म—महीन) करनेकी विधि[1]—वारीक अभ्रकको वडे कुकरौंधाके रसमें खूब खरल करें। फिर उसे पानीसे धोकर साफ करलें या मूलीके भीतर भरकर उसीको डाट लगाकर घोडीको लीदमें रखें और चौथे दिन निकालकर खरल करें।

चूर्ण—चूर्ण वनानेके लिए उन समस्त नियमोको लक्ष्यमें रखना चाहिये जिनका उल्लेख कूटने, पीसने, खरल-करने और छाननेके प्रकरणमें किया गया है। यहाँ पर कतिपय शेप रहे हुए फुटकर नियमोका उल्लेख किया जाता है —(१) यदि चूर्णमें रत्नोपरत्न और पत्थर हो तो उनको अलग-अलग खरल करके शेप द्रव्योंके साथ मिलाना चाहिए। (२) यदि चूर्णमें गिरियाँ (मग्ज़ियात) प्रविष्ट हो तो उन्हें अलग-अलग वारीक पीसकर अन्य चूर्ण किये हुए औपधद्रव्यके साथ मिलाना चाहिये। (३) यदि चूर्णमें केसर और कपूर जैसे सुगधित और सूक्ष्म औपधद्रव्य हों, तो प्रथम शेप औपधद्रव्योका चूर्ण कर ले। इसके वाद केसर या कपूर मिलाकर इतना खरल करे कि वह वारीक होकर योगके समस्त घटकोसे भली-भाँति मिल जाय। (४) यदि चूर्णके अतर्भूत नौसादर-शोरा आदिके समान नमीसे पिघलनेवाले (ज़ाज़िव रतूवात) द्रव्य हो, वर्षा ऋतुमें जिनके आर्द्र होकर विकृत होनेकी आशका हो, तो ऐसे चूर्णको शीशेमें डालकर उसके भीतर चूनेकी पोटली एक धागाके द्वारा डाटसे बाँधकर लटकायें जिसमें चूना वायुगत आर्द्रताको खूब शोपण करता रहे। इस उपायसे चूर्ण आर्द्र नही होगा। इसके अतिरिक्त यदि ऐसा चूर्ण पात्रमें भलीभाँति वायुसे सुरक्षित वद रहे तो उसके आर्द्र होनेकी कोई सभावना नही है। उसमें यदि आर्द्रता आती है तो वाह्य वायुगत आर्द्रतासे आती है। अस्तु, जव कोई मार्ग न मिलनेसे उसका प्रवेश वद हो जायगा, तव आर्द्र होनेका कोई कारण शेप न रहेगा।

आमाशयिक रोगोमे प्रयुक्त चूर्ण—कतिपय पुराकालीन यूनानी वैद्य यह उपदेश करते हैं, 'यदि चूर्ण आमाशयके रोगोके लिए बनाया जाय, तो औपधद्रव्योंके वारीक करनेमें अतिशयोक्तिसे काम न लेना चाहिये'। परतु इसके विपरीत द्वितीय वर्गके लोग, इस नियमका पालन आवश्यक नही समझते और इसको अधिक प्राधान्य नही देते। तुख्म रैहाँ, वारतग और इसवगोल तथा कनौचा जैसे बीजोको जिनसे लवाव, चेंप किंवा फिसलन अभीष्ट हो, समूचा रखें, कूटें नही।

वक्तव्य—यह प्राचीन कल्प है। इसका उपयोग यकृत्, प्लीहा और वृक्कको दुर्वलतामें लाभकारी होता है। परतु आमाशयकी दुर्वलता और भरे हुए उदरको दशामें इसका उपयोग वर्जित है।

---

१ इसके अतिरिक्त भसीकरण (मुहरक़)के उपरात अभ्रक सहजमें वारीक (महलूल) हो जाता है।

प्रकरण ५

विशेष द्रव्योंका निथारना और धोना (तस्वील व गस्ल)

तस्वीलको क्रियाको यूनानी वैद्य कभी गस्ल भी कहते हैं और जो वस्तु इस प्रकार प्राप्त होती है उसे मग्सूल (धोया हुआ) कहा जाता है, उदाहरणत शादनज मग्सूल, लाजवर्द मग्सूल इत्यादि। परतु इसके अतिरिक्त ग़स्ल (धोने)की और भी विधियाँ हैं, जिनमेंसे कतिपयका उल्लेख यहाँ किया जाता है।

पत्थरोका धाना (गस्ल हजरियात)—प्राय पत्थरोंके धोनेकी विधि यह है कि उन्हें खूब बारीक खरल करके जलमें घोलें। इससे उसके अत्यत सूक्ष्म भाग पानीमें मिलकर फैल जाते हैं और मोटे भाग पानीके तलेमें बैठ जाते हैं। फिर उस पानी को सूक्ष्म घटक सहित किसी अन्य पात्रमें पृथक् करलें और उसे स्थिर छोड दें, जिससे वे सूक्ष्म अश तलस्थित हो जायँगे। यही अश प्रयोजनीय है। इन्हें सुखाकर सुरक्षित रख लें। मोटे अश जो घोलते समय जलमें नही मिले थे, अपितु तलेमें एकत्रित हो गये थे, उन्हे पुन खरल करके जलमें उसी प्रकार घोलें और जलको अलग करते जायँ। इसी प्रकार फिर करे यहाँ तक कि अतत समस्त भाग जलमें घुलकर अलग हो जायँगे और मोटे अश बिल्कुल न रहेंगे। सफेदा (आबार), सुरमा, तूतीया, हजर अरमनी, माणिक, प्रवालशाखा व मूल, पन्ना, शादनज, अकीक, लाजवर्द, हजरुल्यहूद (बेरपत्थर) इत्यादि इसी रीतिसे धोये (मग्सूल किये) जाते हैं।

धोया हुआ चूना (चूना मग्सूल)—चूनाको धोनेकी विधि यह है—चूनाको बहुतसे पानीमें भलीभाँति घोलें। जो कुछ ककड-पत्थर इत्यादि तलेमें बैठ जाय उसे दूर कर दे और जलमें मिले हुये शेपको स्थिर होनेके लिये छोड दें। इससे चूना तलेमें बैठ जायगा और जल ऊपर आ जायगा। उस पानीको धीरेसे गिरा दें। फिर दूसरा पानी डालकर उसी प्रकार घोले और तलछटको दूर करें। इसी प्रकार सात बार करें। इसी प्रकार सौबार धोया हुआ चूना (शतधौत सुधा) अग्निदग्धमें बहुत ही गुणकारी है। खरियामिट्टी को भी इसी प्रकार धोते हैं। धुली हुई लाक्षा (लुक् मग्सूल)—लाखको तृण और काष्ठ आदिसे शुद्ध करके पीसे और रेवदचीनी एव इज़खिर मक्कीका क्वाथ थोडा-थोडा पीसते समय प्रविष्ट करके पानीको पृथक् निथार लें और जो कुछ तलेमें अवशेप रहे उसको क्वाथमें पीसकर वही क्रिया करें। फिर जो कुछ उस निथारे हुये पानीमे तलस्थित हो उसको सुखाकर काममें लेवें। धोया हुआ एलुआ (सिब्र मग्सूल)—एलुयेको धोनेकी विधि यह है, कि बालछड, चिरायता, तगर, तज, जावित्री, जायफल, बोल, दालचीनी, ऊदबलसाँ, हब्बबलसाँ, इज़खिरकी कली, मस्तगी प्रत्येक १०॥ माशेको अवकुटा करके एक सेर पानीमें क्वाथ करें और अर्धावशेष रहने पर छान लें। पुन आधसेर बारीक पिसा हुआ एलुआ उसमें मिलाकर पानी निथार लें और सिट्ठी (सुफल)को फेंक दें। निथरे हुये पानीमें जो कुछ तलस्थित हो उसको सुखाकर उपयोगमें लेवें। धोया हुआ मृद्दारशृग (मुरदारसग मग्सूल)—इसके धोनेकी विधि यह है, कि मुरदारसगको समभाग लवणके साथ पीसकर उस पर इतना पानी गिरायें कि चार अगुल पानी ऊपर आ जाय। एक सप्ताह पर्यंत प्रतिदिन तीन-बार हिलाते रहें। एक सप्ताहके पश्चात् पानी बदल देवे। यहाँ तक कि चालीस दिवस व्यतीत हो जायँ। इसके उपरात सुखाकर उपयोगमें लेवे। मृत्तिकाओका धोना (गस्ल अत्यान)—जिस मृत्तिका (तीन = मिट्टी)को धोना चाहें उसको इतना पानीमें भिगोयें कि वह इसको ढँक ले। इसके उपरात मिट्टीको जलमें घोलकर कपडेमें छान लें। पुन छने हुये जलमें जो कुछ तलस्थित हो उसे सुखाकर काममें लेवें। धोया हुआ खर्पर (सगबसरी मग्सूल)—मुहीतमें इसके धोनेकी विधि यह लिखी है—सगबसरीको पोटलीमें बाँधे। फिर एक पात्रमें तितलौकीका रस भरकर उसमें पोटलीको इस प्रकार लटकायें कि पेदेमें न लगे। इसे आधघडी तक उबालकर निकाल ले। धोया हुआ अस्पज (अस्पज मग्सूल)—जले हुये अस्पजको खूब पीसकर जलमें घोल दे। जब स्थिर

हो जाय, तब ऊपरसे जलको निथारकर तलस्थित घटकोंको पुन जलमें पीसकर घोलें। इसी प्रकार तीन बार पीसें और घोलें। इसके बाद रात्रि भर ढककर रख दे। फिर जलको निथारकर काममें लेवे। **धोया हुआ इसबगोल (अस्पगोल मग्सूल)**—गनामनामें बहराम बिन् कलाम्नुमीने लिखा है कि मीठा और शीतल जल एक चौड़े सरवाले पात्रमें रखे और उसमे इसबगाल डाले। जब वह चिपकने लगे, तब उसको थोड़ा-थोड़ा टपकाये। इसके बाद फिर जल डाले और धीरे-धीरे टपकाये, यहां तक कि इसबगोलके सिवाय कुछ और शेष न रहे। **धोया हुआ अकाकिया (अकाकिया मग्सूल)**—अकाकियाको पीसकर जलमें घोले और थोड़ी देर ठहरकर ऊपरसे उसका पानी निथारकर फेक दे। कई बार इसी प्रकार करे। जब पानी साफ निकलने लगे, तब अकाकियाको लेकर सुखा ले।

स्नेहादिका धौत करना (धोना)—(गस्ल रोगनियात—तत्रिया इत्यादि)—धौत गोघृत (रोग़नजर्द मग्सूल)—घीके धोनेकी विधि यह है—घीको कांसी आदिकी थालीके पानीमें डालकर उँगलियोसे खूब मिलायें और फेंटे। इसके बाद घीको अलग कर लेवें और पानीको फेंक दे। इसी प्रकार नुसखे (योग)की कल्पनामें जितनी बार धौत करनेको लिखा हो, उतनी बार धौत[1] करे। अन्य स्नेहों (रोगनों)को भी इसी प्रकार धौत किया जाता है। **धौत मोम और जिफ्त (मोम और जिफ्त मग्सूल)**—मोम और जिफ्त जैसे द्रव्यको धौत करनेकी विधि—जिस वस्तुको धौत करना चाहें उसको अग्नि पर पिघलाकर कई बार स्वच्छ एव गुनगुना जलमें गिराये जिसमें उसके अविलेय मल तलस्थित हो जायँ और जो कुछ पानीके ऊपर हो उसको उतार (काछ) कर रखें। **तिलतैलका धोना (गस्ल शीरज)**—तिलतैलको नमकके पानीके साथ खूब अच्छी तरह फेंटकर मदाग्नि पर क्वाथ करे। इसके बाद नमकका पानी निकालकर और बहुत साफ पानी डालकर पकायें। पुन इस पानीको पृथक् करके तेलको काममें लेवे।

१ इसी प्रकार सौ बार और हजार बार धोये हुये घीका प्रयोग आयुर्वेदमें भी होता है जिसे क्रमश 'शत-धौतघृत' और 'सहस्रधौतघृत' कहते हैं।

प्रकरण ६

तरवीकके शेष नियम और सूचनायें

सब्जियोंकी तरवीक—हरे पत्तोंका हरा रस अर्थात् उसका निचोड़ा हुआ पानी जब अग्नि पर रखा जाता है, तब वह फट जाता है। अर्क (रस) अलग हो जाता है, और सब्जी (हरियाली) पृथक्। फिर उसे कपड़ेमें छानते हैं, जिसमें स्वच्छ जल (आब मुरव्वक़) निकल आता है, और सब्जी (हरियाली) कपड़ेके अन्दर रह जाती है। हरे मकोयकी पत्तियोंका पानी (आब बर्गइनबुस्सालब सब्ज़), हरी कासनीकी पत्तियोंका पानी, हरे बारतंगकी पत्तियोंका पानी, हरे शलजमकी पत्तियोंका पानी, हरे चुकन्दरके पत्तोंका पानी, हरी मूलीकी पत्तियोंका पानी, प्राय यह उपर्युक्त औषधियाँ उक्त विधिसे फाड़ कर छानी जाती हैं। यह भी उस समय जबकि इन पत्तियोंके पानी आन्तरिक रूपसे प्रयुक्त किये जाते हैं। लेप (जिमाद) आदिमें इनके फाड़ने और साफ (मुरव्वक) करनेकी आवश्यकता नहीं हुआ करती है।

जर्र अलकी—यह भी तरवीककी एक विधि है जो इस प्रकार है—एक प्यालामें प्रवाही द्रव्य रखकर उसको किंचित् टेढ़ा करके रख दें। उसके समीप दूसरा प्याला पहले प्यालाके पास किसी प्रकार उससे नीची जगहमें रखें और रूईकी मोटी बत्ती (अलक़ा) बनाकर जलमें भिगोकर उसका एक सिरा औषधके प्यालेमें और दूसरा खाली प्यालेमें रख दें। इससे समस्त स्वच्छ जल बत्तीके द्वारा खाली प्यालेमें चला आयेगा। इसका नाम जर्र अलकी इस कारण रखा गया है, कि 'जर्र' का अर्थ 'खींचना' और अलका का अर्थ 'जोंक' है। यहाँ रूईकी मोटी बत्तीका नाम अल्का (जोंक) रखा गया है, जिसके माध्यमसे एक प्यालेका स्वच्छ जल खिंचकर दूसरे प्यालेमें आ जाता है। नमक आदि इसी प्रकार धोये जाते हैं।

प्रकरण ७

तास्फ़िया अर्थात् शोधन

तस्फ़िया[1] का अर्थ जिस प्रकार छानना है, उसी प्रकार 'साफ करना (शोधन)' है। जब कोई औषधद्रव्य दूषित उपादानो और मिश्रणोंसे शुद्ध हो जाता है, तब उसे मुसफ्फा कहा जाता है, उदाहरणत सिलाजीत मुसफ्फा (शुद्ध शिलाजीत), सीमाब मुसफ्फा (शुद्ध पारद) इत्यादि। विभिन्न औषधद्रव्योंके शोधनकी विधियाँ भिन्न-भिन्न हैं, उदाहरणत, कतिपय द्रव्य छाननेसे, कतिपय छीलनेसे, कतिपय मलाय करनेसे शुद्ध हो जाते हैं।

शोधित पारद (पारा मुसफ्फा)—पारदशोधनकी अनेक विधियाँ हैं, जिसमेंसे कतिपय प्रसिद्ध विधियोंका उल्लेख यहाँ किया जाता है—(१) रेंडके पत्तोंका स्वरस लेकर और किसी गहरे खरलमें पारा डालकर इतना आलोडन करें कि पाराका मैल और उसकी स्याही दूर हो जाय। फिर वह पानी निकालकर मकोयकी पत्तियोंका रस डालकर खरल करें। फिर यह रस निकाल लें। यदि इन बूटियोंका रस उपलब्ध न हो सके तो त्रिफलाका शीतकषाय पर्याप्त हो सकता है। इसमें पारा उतना खरल करें कि निर्मल हो जाय। (२) पारेको गाढेके कपडेमें चालीस बार छाने, फिर उसको तिगुना सिरकाके साथ कढाहीमें अग्नि पर रखें। पारेकी स्याही इसमें आ जायगी। फिर पुरानी ईंटके बुरादामें एक दिन खरल करें। इसके बाद घीकुआरके लबाब और अमलतासके गूदेके काढेमें दो-दिन खरल करके वस्त्रपूत कर लेवें। पारा परम शुद्ध हो जायगा। (३) पारेको पल्ली ईंट (अर्धपक्व ईंट) या पुरातन ईंटके चूरामें चार पहर खरल करके जलसे धोकर पारा पृथक् कर लें। दूसरे दिन पुन ईंटका ताजा चूरा डाल कर खरल कर ले। इसी प्रकार जितना अधिक खरल करेंगे पारा उतना ही अधिक शुद्ध होगा। तीन बार इसी प्रकार करनेसे वह प्रयोग करने योग्य हो जाता है। (४) कोई-कोई पारेको इस प्रकार शुद्ध करते हैं—पाव भर पारा आध सेर जलके साथ हांडीमें मदाग्नि पर पकाते हैं। जितना जल कम हो जाता है उतना पानी और भी डाल देते हैं। यहाँ तक कि पारेकी स्याही पानीमें आ जाती है, और पारा हानिकर दोषोंसे मुक्त हो जाता है। यद्यपि पारदशोधनकी अन्यान्य बहुत लम्बी-चौडी विधियाँ भी हैं, पर विस्तारभयसे उनका यहाँ उल्लेख नही किया गया है।

शुद्ध शिलाजीत (सिलाजीत मुसफ्फा)—(सतसिलाजीत)। शिलाजीतके शोधनकी यह दो विधियाँ हैं—(१) शिलाजीतको शुद्ध जल या त्रिफला[2] जलमें घोलकर छान ले और कुछ घटे तक रख छोडें जिसमें तलछट तलस्थित हो जाय। इसके उपरात निथरा हुआ पानी लेकर अग्नि पर इतना पकायें कि गाढा हो जाय। इसको सुखाकर काममें लेवें। इसीको सतसिलाजीत आतशी[3] कहते हैं। (२) शिलाजीतको पानी या प्रागुक्त त्रिफला-जलमें घोलकर मिट्टीके कोरे पात्रमें डालकर धूपमें रख दें, जिसमें वह प्रगाढ़ीभूत हो जाय। इसके उपरात किसी चमचा इत्यादिके द्वारा प्रगाढीभूत अश ऊपरसे उतारकर मिट्टीके दूसरे कोरे पात्रमें रखकर महीन कपडेसे ढाँक दें, जिसमें वह धूलि-कणादिसे सुरक्षित रहे। इसे सूख जाने पर काममें लेवें। इसी प्रकार पहले पात्रके शेष भागके

---

१ आयुर्वेदमें 'तस्फ़िया'के लिये 'शोधन' और 'मुसफ्फा'के लिये 'शुद्ध' वा 'शोधित' सज्ञाका व्यवहार होता है।

२. हड़, बहेड़ा, ऑवला अधकुट करके चौगुने पानीमें भिगोकर कुछ घटोंके पश्चात् पानी छान लें। यही 'त्रिफलाजल' है।

३ आयुर्वेदमें इसको 'अग्नितापी' शिलाजतु कहते हैं।

ऊपरसे प्रगाढीभूत अंश पृथक् करके कोरे पात्रमें डालकर शुष्क करें। दो-चार बार इसी प्रकार करनेसे शुद्ध शिला-जीत पृथक् होकर शेष तलछट रह जायगा। इसको सतसिलाजीत आफताबी[1] कहते हैं।

शुद्ध विरोजा (बिहरोज़ा मुसफ्फ़ा)—शुद्ध गधाबिरोजाको ही 'सत बिहरोज़ा' कहते हैं। इसके शोधनकी विधि यह है—एक देगचीमें पानी भरकर और मुँह पर कपड़ा बाँधकर कपड़े पर बिहरोज़ा रखें। देगचीके नीचे अग्नि जलाएँ। बाष्पकी उष्णतासे बिहरोजा पिघलकर पानीमें चला जायगा और तृणादि मल कपड़े पर रह जायेंगे। यदि चाहें तो एकाधिक बार इसी प्रकार करें। फिर बिहरोजाको सुखाकर काममें लेवें।

शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ मुसफ्फा)—शिंगरफको चार पहर तक नीबूके रसमें खरल करें, शुद्ध हो जायगा।

शुद्ध मधु (शहद मुसफ्फ़ा)—मधुके शुद्ध करनेकी विधि यह है, कि इसे उबाला जाय। उबलनेसे जो झाग (कफ) इसके ऊपर आ जाय और उबालके शांत होने पर भी बना रहे, उसे पृथक् कर दिया जाय। इसी प्रकारके मधुको झाग दूर किया हुआ (कफ गिरफ्ता) कहते हैं। यह भी स्मरण रहे कि मधु जब तक अग्नि पर रहता है झाग बराबर निकलते रहते हैं। यह कभी समाप्त नहीं होते। उसे दूर न करना चाहिए वरन् संपूर्ण मधु इसी प्रकार समाप्त हो जायगा।

शुद्ध केंचवा (खरातीन मुसफ्फ़ा)—केंचवोंको छाछके अंदर, जिसमें लवण मिलाया गया हो, डाल दें। केंचुए समस्त मिट्टी छाछके अंदर उगल देंगे। इसके बाद निकालकर और धो-सुखाकर काममें लेवें।

शुद्ध जवादिकस्तूरी (ज़वाद मुसफ्फ़ा)—बारीक कपड़ेमें इसकी पोटली बाँधकर गरम जलमें इतना मलें कि साफ हो जाय। बाल इत्यादि पोटलीमें रह जायें। फिर दोबारा साफ करें।

---

[1] आयुर्वेदमें इसको 'सूर्यतापी शिलाजतु' कहते हैं।

प्रकरण ८

अर्क परिस्नुत करना (अर्क खींचना या चुआना)

यूनानी वैद्यककी परिभाषामें अर्क[1] उस स्वच्छ एव बूंद-बूंद टपके हुये परिस्नुत (मुकत्तर) द्रव[2] को कहते हैं, जो औषध द्रव्योंसे अर्क-कल्पना-विधिसे प्राप्त किया जाता है।[3] अर्कको अरवीमें कभी-कभी माऽ (जल) कहते हैं। उदाहरणत माउल्वर्द (अरक गुलाव), माउलखिलाफ (अरक वेद) आदि।

वक्तव्य—ससारके समस्त पदार्थ दो प्रकारके होते हैं—(१) वह जो उत्ताप पानेसे वाष्प या वायव्यके रूपमें परिणत हो जाते हैं, 'उडनशील', 'उत्पत्' या 'अस्थिर', अरवीमें 'सीमाबतवा (पारदस्वभावी)' और अंगरेजीमें 'वॉलेटाइल Volatile' कहलाते हैं। (२) वह जो उत्ताप पाने पर वाष्पके रूपमें परिणत नही हो सकते, सस्कृतमें स्थिर, अरवीमें कायम या ग़ैर सीमावतवा और अंगरेजीमें 'फिक्स्ड (Fixed)' कहलाते हैं। इन द्विविधात्मक पदार्थोंमेंसे केवल उडनशील पदार्थ ही परिस्नुत हो सकते हैं। प्राचीन कालमे केवल गुलाव का अरक व्यवहार होता था। फिर धीरे-धीरे अन्य द्रव्योका अरक व्यवहारमें आने लगा।

अरक निकालनेसे लाभ—(१) इसके द्वारा किसी प्रवाही द्रव्यको शुद्ध करते है अर्थात् उस उडनशील द्रवको जिनमें स्थिर वा स्वल्प उडनशील अथवा विजातीय द्रव्य घुले हों, इस क्रियासे भिन्न करते हैं। इससे द्रव उडकर अरकपात्रमे आ जाते हैं और स्थिर वा स्वल्प उडनीय पदार्थ अवशेष रह जाते हैं। उदाहरणत वह जल जिसमें नमक घुला है, शुद्ध करनेके लिये जब परिस्नुत करते हैं, तब नमक पीछे रह जाता है और शुद्ध जल उडकर अरक-पात्रमे आ जाता है। इसी प्रकार मद्यको जलसे भिन्न करते हैं। मद्य जलकी अपेक्षया अधिक उडनशील है। अतएव इसे जलकी अपेक्षया कम उत्ताप देना होता है। प्रथम मद्यके वाष्प बनकर जलसे भिन्न हो कर निकल आते हैं। यदि हम इसके वाद भी उत्ताप दिये जायँ या उत्तापको तीव्र करे, तो इसके उपरात जलवाष्प भी आने प्रारभ होगे। इसलिये एक सामान्य रीति यह है कि जब किसी द्रवको परिस्नुत करते हैं तो एक-तिहाई या अधिक पीछे करअम्बीकमें छोड देते हैं। इस विधिसे उक्त द्रव्य शुद्ध प्राप्त होता है। (२) इससे औषध द्रव्योमें होनेवाले कुस्वाद का परिहार हो जाता है। (३) सुगधित पुष्पो-जैसे गुलाव, केवडा, वेदमुश्क आदि, फलो और बीजो जैसे-सौंफ आदि, पत्र जैसे—पोदीना आदि, छालो जैसे-चन्दन आदि और जडो जैसे-खस एव अनतमूल आदिसे उडनशील

---

१ अर्क अरवी 'अरक़'का अपभ्रश है, जिसके निम्न अर्थ होते हैं—(१) जल, (२) दवाओंका खींचा हुआ पानी, (३) मद्य, शराब, (४) पसीना। प्राचीन आयुर्वेदके ग्रथोंमें अर्कका वर्णन प्राप्त नहीं होता। पश्चात्कालीन ग्रथोंमें इसका वर्णन जरूर मिलता है, यथा—'यत्रेण नलिकाख्येन वह्निसता-पयोगत। विंदुशो यत् स्नुत नीर तत् परिस्नुतमुच्यते। (र० त० त० २)।

२ अरबीमें इसे मियाह मुकत्तर, अंगरेजीमें डिस्टिल्ड वॉटर (Distilled Water) और लेटिनमें अक्वा डिस्टिलेटा (Aqua distillata) कहते हैं,

३ जब किसी द्रव पदार्थको स्थिर या कम उड़नशील विजातीय द्रव्यसे पृथक् करनेके लिये उसे किसी पात्रमें रखकर उत्तापके द्वारा वाष्पके रूपमें परिणत करनेके उपरात उनको सर्दी पहुँचाकर पुन द्रवके रूपमें परिणत करके किसी अन्य पात्रमें सगृहीत करते हैं, तब उक्त क्रियाको अरवीमें 'तक्तीर' या 'तअरीक' 'सस्कृतमें अर्ककल्पना या 'परिस्नावण', उर्दू या हिंदीमें 'कशीद करना, 'अर्क खीचना', 'अर्क चुआना', 'अर्क निकालना' और अंगरेजीमें 'डिस्टिलेशन (Distillation)' कहते हैं।

जब सब अरक अरकपात्रमें टपक जाय, तब देगचाको चूल्हेसे उतार ले। अरक निकालते समय देगको चूल्हा पर उस टोटी (नली) की ओर जिससे अरक निकलता है किंचित् झुका हुआ रखना चाहिए, वरन् अरक बाहर नही निकलेगा। अर्क समाप्त होनेकी पहिचान यह है कि अतमें अरक बहुत कम और देरसे आता है और जलका शब्द कम हो जाता है। कभी-कभी अरककी गध बदल जाती है।

दूसरी विधि—क़रअ अबीकके अतिरिक्त अरक निकालनेकी एक और विधि है जिसको हम्माम नारिया कहते हैं। यह भी वास्तवमें करअ-अबीकका ही एक भेद है। इसके द्वारा पुष्पों, फलो या मास आदिका विशुद्ध अरक या रूह निकल आती है और औषध जलनेसे सुरक्षित रहता है। विधि यह है—जिस फल, फूल या बूटी या मासका अरक या रूह निकालना हो, उनको कुचलकर एक सँकरे मुँहके ताँबेके कलई-दार पात्रमें डाले और उसके मुँह पर अबीक या अरक निकालनेका नल भबका लगायें और एक बडी देग या लोहेकी कडाही जिसमें औषधका पात्र आधा डूब सके जलसे भरकर चूल्हे पर रखे। इस देग या कडाही में जिसमें औषधका पात्र आधा डूब सके जलसे भरकर चूल्हे पर रखें। इस देग या कडाहीमें एक तिपाई या तीन ईंटें रखकर उनपर औषधका देग रखकर नीचे अग्नि जलायें। जलके उबलनेसे देगचा गरम होकर औषधका पानी बाष्प बनकर उडेगा और ऊपर अबीकके पानीकी शीतलतासे जल बनकर नलीके द्वारा बोतलमें गिर जायगा। करअ अबीकके ऊपर पानी ऊष्ण होने पर बदल दिया करें। जब देग या कडाहीका पानी कम हो जाय, तब उसमें और पानी डालें। इसमें और साधारण करअ-अबीकमें केवल यह अतर है, कि करअ अबीकमें सीधे उसके नीचे अग्नि जलाई जाती है और इसमें करअ अबीकको उबलते हुये जलकी देग या कडाहीमें रखते हैं जिसमें औषध जलने नही पाती और उनका विशुद्ध जलशून्य अरक या रूह निकल आती है। यह देग बरदेग (देगोपरि देग) का एक रूप है।

हम्माम नारिया

चित्र २
विवरण—१ अबीक, २ देगचा, ३ कड़ाही, ४ बोतल (अर्कपात्र), ५ तिपाई।

तीसरी सरल विधि (तक़्रीक हव्ली[1])—अर्क निकालनेकी दूसरी सरल विधि यह भी है, कि एक लबी गरदनकी देगनुमा देगची लेकर उसके ऊपर एक मिट्टीका पात्र ऐसा रखें जिससे देगचीका मुँह भलीभाँति बद हो जाय। फिर सधियोको आटे या चिकनी मिट्टीसे भलीभाँति बद कर दें। परतु यह ध्यानमें रहे कि इस पात्र (मिट्टी वाले)का पेदा आवश्यकतानुकूल प्रथमसे तोड डाला गया हो। इस पात्रके भीतर टूटे हुए किनारो पर चार लकडियाँ एक दूसरेके समानातर रखकर उसपर ताँबेका कलई किया हुआ कोई पात्र रख दें। फिर उस पात्रके मुँह पर खास-

करते थे। इस शब्दकी निरुक्ति यह है—अलेम्बिक शब्द अरबी 'अल् अबीक' का ही किंचित् परिवर्तित रूप है। अरबी अबीक सज्ञा यूनानी अबिक्स (अबिकोस) सज्ञासे, जिसका अर्थ 'प्याला' है, व्युत्पन्न है। अर्क खींचनेमें इस प्रकारका पात्र देगके ऊपरका ढक्कन होता है, इसलिए उसे उक्त सज्ञा (अबीक)से अभिधानित किया गया। अरबवासी इसमें 'अलिफ लाम' अर्थात् 'अल्' उपसर्ग जोड़कर करअ अबीक कहते हैं। उपर्युक्त अलेम्बिक (अलम्बीक—फ्रा०) अँगरेजी सज्ञा इसी अरबी 'अल् अबीक़' सज्ञाका यत्किंचित् परिवर्तित रूप है, जिसका प्रयोग करअ अबीकके लिए होता था।

१ आयुर्वेदकी परिभाषामें इसे गर्भयत्र कहते हैं—

दान (ताम्बूल पात्र)के ढकनेकी तरहका एक ढकना इस प्रकार रखें जिसमें उसका उभरा हुआ (उन्नतोदर) पेंदा ताँबेके बरतनके भीतर रहे। मिट्टीके पात्रके मुँह पर आटा लगा दें। खासदानके ढकनेमें शीतल जल भर दें। फिर देगचीके नीचे अग्नि जलाएँ और ढकनेका पानी बदलते रहें। कुछ समय पश्चात् ढकना उठाकर जितना अर्क ताँबेके कलई किये हुए पात्रमें हो निकाल लें, और फिर उसी प्रकार रख दें। इस प्रकार जितना चाहें अर्क निकालें। इस प्रकार अर्क निकालनेका नाम तअ्रीक हुव्ली (हुव्ल = तार, रस्सी, डोरी) है। आयुर्वेदमें इसे गर्भयन्त्र कहते हैं।

चौथी सरल विधि—तअ्रीक हुवलीके द्वारा अर्क निकालनेकी एक विधि यह भी है। यद्यपि इससे अर्क अल्प प्रमाणमें निकालता है, तथापि आवश्यकताके समय इससे भी अर्क निकाल सकते हैं। विधि यह है—

एक ऊँची देगचीमें आधेसे कम औषध जलके सहित भर दें और उसके भीतर चार लकड़ियाँ फँसाकर उस पर ताँबे या चीनीका प्याला रख दें। फिर उसके मुँह पर खासदानका ढकना औंधा कर रखें जो देगचीके मुँह पर ठीक आ जाय और उसके नीचेका गोल भाग प्यालेके भीतर रहें। इसके उपरात आटे इत्यादिसे सधियोंको भली-भाँति वद करके मद अग्नि देवें, जिसमें उवलकर औषध प्यालेमें न आ जाय। जव पानीका शब्द कम हो जाय, तव देगची उतार लें। शीतल होनेके उपरात खोलकर धीरेसे प्याला निकालें। इसमें अर्क वर्तमान होगा। इस विधिमें अग्नि वहुत मृदु होनी चाहिए। वरन् औषध उवलकर प्यालेमें आ जायगा और अर्कमें मिलकर उसे विगाड देगा।

पाँचवी विधि—एक विधि यह भी है कि जिस औषधका अर्क निकालना हो, प्रथम उसको रात्रिके समय इतना जलमें भिगो रखें कि वह जल औषध द्रव्यमें शोषित हो जाय। इस प्रकार तर किये हुए औषध द्रव्यको एक देगचीके ठीक मध्यमें एक ईंट रखकर उसके चतुर्दिक् फैलायें। ईंटके ऊपर प्याला रखकर देगचीके मुँह पर ढक्कन दे देवें। फिर ढक्कनमें शीतल पानी भर दें। सधियोंको भली-भाँति आटे इत्यादिसे वद करके नीचे अग्नि जलायें। कुछ देर पश्चात् औषधका अर्क उक्त प्यालेसे निकाल लें। परतु अग्नि वहुत मृदु होनी चाहिए। प्रत्युत कोयलों और अगारोंकी अग्नि पर देगचीको रखें। क्योंकि तीव्र अग्निसे औषध जल जायगा। इस विधिसे भी यद्यपि अर्क स्वल्प निकलता है, तथापि अत्यत तीक्ष्ण होता है। यह भी तअ्रीक हुव्ली (गर्भयन्त्र)का एक भेद है।

नल-भबका (नलिका यत्र)

चित्र ३

विवरण—१ देग, २ नल (नलिका) ३ अर्कपात्र (काबिला), ४ चूल्हा, ५ जलपात्र।

छठवी विधि—इस विधिसे अर्क निकालना यद्यपि क्लिष्टसाध्य है, तथापि कभी-कभी इसके विना कोई और उपाय नही, विशेषत जबकि अधिक प्रमाणमें अर्क निकालना इष्ट हो, या उसकी सुगधिकी रक्षा खूब अच्छी तरह करनी हो।

देग-भबका—की विधि सर्वोपरि है, क्योंकि इसमें औषधके वाष्प सम्यक् वद एव सुरक्षित रहते हैं। गुलाव, केवड़ा, वेदमुश्क इत्यादि जैसे सुगधद्रव्योंके अर्क सदा इसी विधिसे खीचे जाते हैं, और इत्र खीचते समय इसी यत्रका उपयोग किया जाता है। अर्थात् इस प्रकार प्राप्त अर्कके ऊपरसे इत्र (स्नेह) उतार लिया जाता है। इत्र उतारते समय वहुत सावधानीपूर्वक अग्नि देना चाहिए। क्योंकि अग्नि अधिक पहुँचने पर भवके पेंदेमें जलनेकी आशका होती है। इसमें इन दो वातोंकी सावधानी अवश्य रखनी चाहिए—प्रथम अग्नि मृदु देवें, और द्वितीय यह कि इनके लिए किसी न किसी करल अबीकमें पेंदेसे कुछ इच ऊपर एक छिद्रयुक्त रकावी लगी होती हैं जिस पर पुष्प इत्यादि रख देते हैं।

देग-भबका (नल भवका)—इसके अधोलिखित अवयव है

(१) देग—जिस पर गुंबदकी आकृतिका ढक्कन रखा जाता है।

(२) गुम्बदाकार ढक्कन—जिसमें एक छिद्र होता है। उसके भीतर नैचा (नल)का ऊपरी सिरा दृढ़ता-पूर्वक प्रविष्ट करके मिला दिया जाता है।

(३) नैचा (नल) नरकट या बाँसके दो टुकड़ोंसे कुहनीदार बनाया जाता है, और उसको कपड़ा और रस्सी आदि लपेटकर खूब दृढ़ कर लिया जाता है। इसका ऊपरी सिरा यदि ढक्कनसे भली-भाँति मिला होता है तो दूसरा सिरा सँकरे मुँहके ताँबेके कलई किए हुए पात्रमें रखकर खूब अच्छी तरहसे दृढ़ कर दिया जाता है, जिसमें वाष्प बाहर न निकलने पाये।

(४) काबिला(अर्कपात्र)-अर्थात् सँकरे मुँहका पात्र जिसमें नलका निचला सिरा लगा होता है। क़ाबिलाको शीत जलसे भरे हुए एक नाँदमें रखा जाता है, जिसमें काबिलामें वाष्प पहुँचकर सर्दीसे जलके रूपमें परिवर्तित होते रहें।

इस विधिमें कोई कोई ताँबेके ढक्कनके स्थानमें मिट्टीका ढक्कन बनाते हैं, परन्तु निश्चित समय पर उसके टूटनेका भय रहता है।

नाडीयन्त्र (तक़्रीक लौलब्वी)
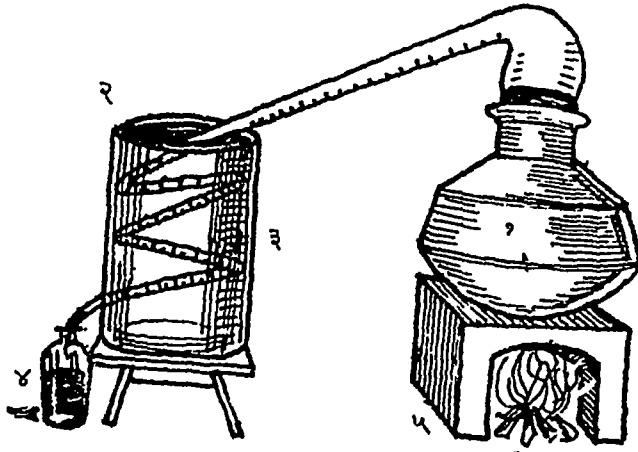
चित्र ४

विवरण—१ देग, २ ठंढा पानी डालनेका छिद्र, ३ ठंढे पानीका पात्र जिसमें पेचदार (लौलवी) नालियाँ हैं, ४ अर्कपात्र, ५ चूल्हा।

इस विधिमें इस बातकी पहिचान कठिन है कि अब अर्क समाप्त हो गया या नहीं। सुतरां इस बातके ज्ञान-के लिये कुछ (दो-तीन) कौड़ियाँ या चीनीके टुकड़े देगमें डाल देना चाहिये, जिसमें उबालके साथ वे खनखनाते रहें। जबतक उनके खनखनानेका शब्द आता रहे तब यह समझें कि देगमें अभी बहुत जल है और अर्क आ रहा है। जब उनका खनखनाना बंद हो जाय, तब जान ले कि अब देगमें पानी नहीं है। इसलिये कौड़ियोंके और चीनीके टुकड़े तलस्थित हो गये। जिस समय अर्क समाप्त होने पर होगा, कौड़ियोंका शब्द ध्यानपूर्वक श्रवण करनेसे मालूम होगा। उस समय तत्क्षण अग्नि देना बंद कर दे।

सातवीं विधि (तक़्रीक लौलब्वी)[१]—अर्क निकालनेकी एक और विधि तक़्रीक लौलब्वीके नामसे प्रसिद्ध है। इसको लौलब्वी इसलिये कहते हैं कि इसमें एक पेचदार नलिका वा नाली होती है। (लौलब = पेच, पेचदार, पेचकश)।

इसकी विधि यह है—औषधवाली देगके ऊपर अबीक रखनेके स्थानमें एक ऐसा ढक्कन रखा जाता है जिसमें एक पेचदार नलिका (नाली) लगी होती है जिसको देगके समीप शीतल जलसे भरे हुए पात्रमें डालकर उसका

१ कुल्लियात अद्वियाके ख्यातनामा लेखक विद्वद्वर मुहम्मद कबीरुद्दीन महाशय इसका हिंदी नाम "नाडीजत्तर" लिखते हैं। कदाचित् यह नलिकायंत्रका ही अपभ्रंश है जिसको आयुर्वेदकी परिभाषामें तिर्यक्पातनयंत्र भी कहते हैं। करअ अबीक, नलभभका और द्रावकाम्ल (तेज़ाब) बनानेके द्वितीय यंत्र से यह बहुत समानता रखता है।

अतिम सिरा बाहर समीपमें हो रखे हुए अर्कपात्र (काबिला)में रखते हैं। औषधीय जलके बाष्प पेचदार मार्ग (लौलब्री नाली)से होते हुए शीतल जलके पात्रमें पडे हुए भागमें जल बनकर अतिम पात्र अर्थात् अर्कपात्र (काबिला) में टपकते रहते हैं।

वक्तव्य—पेचदार नलीमें यह दोष है, कि इसको अच्छी तरह साफ नही कर सकते। कोई सुगध द्रव्य एक बार परिस्रुत करनेके बाद अन्य द्रव्य उसमें परिस्रुत नही कर सकते, क्योंकि प्रथम द्रव्यके कण उसमें कुछ न कुछ रह जाते हैं। केवल जल या मद्य परिस्रुत करनेके लिये यह बहुत प्रयोगमे आता है। मद्य परिस्रुत किये जाने वाले यत्रको आयुर्वेद (सस्कृत)में वारुण्यत्र (आलए खमरिया) कहते हैं।

अरक निकालनेके लिये औषधद्रव्य और जलका प्रमाण—१०-१५ तोले औषधसे एक सेर अरक निकालना श्रेयस्कर है। यह अरक बादियान (अरक सौंफ) जैसे मामूली अर्कोंकी बात है। वरन् औषधद्रव्य और जलके अनुपातके विषयमें जैसा क़राबादीन (योगग्रथ)के नुसखेमें लिखा हो, उसका पालन करना चाहिये। यदि पाव भर औषधद्रव्यमें दो सेर अरक निकालना अभीष्ट हो तो लगभग चार सेर जलमें औषधद्रव्य भिगोयें तब दो सेर अरक प्राप्त होगा। **सूचनाएँ**—(१) यदि अरकमें दूध भी सम्मिलित हो, तो उसको प्रात काल अरक निकालनेके समय मिलाना चाहिये। यदि दूध रात्रिमें ही डाल दिया गया है, तो वह बिगड जायगा। (२) यदि अरकके नुसखा में कस्तूरी, केसर, अबर प्रभृति जैसे सुगधद्रव्य हो, तो उनको पोटलीमें बाँधकर नलिकाके नैचेमें इस प्रकार लटकाये कि अरक उस पर बूँद-बूँद पडे, फिर उससे टपककर पात्रमें सगृहीत हो। पर यदि भबकाके द्वारा अर्क निकालना हो, तो पोटलीको नल वा नाडीके निचले भाग (नैचाके मुँह)में रखना चाहिये। (३) यदि अरकमें गिरियाँ (मग्ज़) हों, तो उनका शीरा निकालकर डालना चाहिये। **अरक गावज़बान**—गोजिह्वापत्र (बर्ग गावज़बान)में पुष्कल प्रमाणमें लबाब होता है, और उसमें अत्यधिक उबाल एव जोश आया करता है। इसलिये अरक निकालनेमें बडी सावधानी की आवश्यकता है, अर्थात् बहुत मद अग्नि पर इसका अरक निकालना चाहिये, जो अनुभव और अभ्यासका काम है। यही दशा अन्यान्य लबाबदार पदार्थोंकी है।

•

प्रकरण ९

ऊर्ध्वपातन और जौहर उडाना (तसूईद)

सत्त्व वा जौहर—परिभाषामें सत्त्व वा जौहर किसी द्रव्यके सूक्ष्म उपादानोंको कहते हैं, जो ऊर्ध्वपातनकी विधिसे उडा लिये जाते हैं। पारा, रसकपूर, सखिया, शोरा, कपूर, लोबान, नौसादर, हडताल और गधक इत्यादिका जौहर प्राय. उडाया जाता (ऊर्ध्वपातन किया जाता) है। इन सबकी विधि बहुधा समान है। विधि—जिस द्रव्यका जौहर उडाना हो, उसे भँकरे मुँहकी मिट्टीकी एक हाडीमें रखें और समान मुँखवाली दूसरी हाँडीके भीतर पानीमें पिसी हुई खडी मिट्टी लथेडकर सुखा लें, और पहली हाँडीके ऊपर इसे औंधाकर रखें। दोनों पात्रोंकी सधिमें गुँधा हुआ आटा (वा कपडमिट्टी) लगाकर उनका मुँह वद करके अग्निपर रखें और नीचे हलकी आँच करें। उदाहरणत मोटी वत्तीका दीपक जलायें या बेरीकी पतली-पतली लकडियोंसे दीपककी शिखा (लौ)के बराबर आँच करें। ऊपरकी हाँडीपर चार-पाँच तह कपडा जलमें भिगोकर रखें। कपडा जैसे-जैसे गरम होता जाय वैसे-वैसे बद लता रहे। कोई-कोई जलके स्थानमे दूध डालते हैं। सत्त्व या जौहर उडकर ऊपरकी हाँडीमें चारो ओर लगकर एकत्रित हो जायेगा। शीतल होने पर धीरेसे उतारकर ऊपरवाली हाँडी पृथक् करके जौहरको ऊपरसे झाड लें और काममें लेवें। दो हाँडियोंके स्थानमें मिट्टीके दो प्यालों या दो सरावो (कूज़ो)से भी काम ले सकते हैं। रसकपूर या सखियाका जौहर उडानेसे पहले प्राय इसे मद्यमें घोटकर बारीक कर लेते हैं। फिर टिकिया बनाकर नीचेकी हाँडीमें रखकर जौहर उडाते हैं। मिट्टीके दोनो पात्रोंको (चाहे वे दोनों हाँडियाँ हो या प्याले या कूजे अर्थात् सराव) उनका मुख दृढतापूर्वक जमानेके लिये उचित यह है, कि समान मुखवाले दोनो पात्रोंके मुँहको समतल स्थानपर घिसकर बराबर कर लिया जाय। इन दोनों पात्रोंका मुँह मिलानेके उपरात सधियोको वद करनेके लिये कभी गेहूँका आटा, कभी उडदका आटा (या मुलतानी मिट्टी) काममें लाया जाता है। यदि नीचेके पात्रमें कुछ कच्ची दवा शेष रह गई हो, और उसका जौहर न उडा हो तो उतने हिस्सेको पुन उडा सकते हैं। काल—कितने कालमें औषधद्रव्यका कितना प्रमाण जौहर या सत्व रूपमें ऊर्ध्वपातित हो जाता है? इस बातका यथार्थ निर्णय कठिन है। इसका कारण औषधद्रव्यके प्रमाणके अतिरिक्त अग्निकी न्यूनाधिकता है। चार-पाँच तोले औषधके लिये सामान्य दशामें डेढ-दो घटे पर्याप्त हुआ करते है। यदि कुछ देर तक अग्नि लगती रहे तो कोई हानि नही। जिस प्रकार अरकमें औषधके जल जाने तथा अरकके दुर्गन्धित हो जानेका भय रहा करता है, वह बात इसमें नही हैं।

डमरूजन्तर

चित्र ५

विवरण—१ चूल्हा, २ कपडौटीकी हुई नीचेकी हाँडी, ३ ऊर्ध्वपातन किए जानेवाले द्रव्यका बाष्प, ४ कपडौटी की हुई ऊपरी हाँडी, ५ दोनों हाँडियोंके बीच कपडौटी किया हुआ सधिस्थान, ६ अग्नि, ७ नीचेकी हाडीमे उडकर ऊपरकी हाडीमें लगा हुआ पारा या अन्य जौहर।

वक्तव्य—यहाँ पर जौहर उडाने (तसूईद)की जिस विधि और यत्रका उल्लेख किया है, वह वस्तुत भारतीय है। भारतीय आयुर्वेदकी परिभाषामें इस विधिको ऊर्ध्वपातन और यन्त्रको विद्याधर यन्त्र या डमरू यन्त्र कहते हैं।

यूनानी वैद्यककी परिभाषा (अरबी)मे ऊर्ध्वपातन क्रियाको तसईद और यत्रको 'आलए तसईद' एव 'क़िद्रीन (क़िदर = देग, हांडी)' और फारसीमें 'देग बरदेग' कहते हैं। ऊर्ध्वपातन क्रियाको अंगरेजीमे सब्लिमेसन (Sublimation) कहते हैं। श्यामदेशीय और पश्चिमी कीमियागरो तथा औषधनिर्माताओंको ऊर्ध्वपातन विधि कठिन और कष्टसाध्य होनेसे यूनानी औषधनिर्माताओने इस भारतीय विधिका ग्रहण किया।

ऊर्ध्वपातित लोबान (लोबान मुसअ्अद)—लोबानका सत निकालनेकी सरल विधि यह है, कि लोबानके टुकडे करके एक मिट्टीकी हांडीमे रखते हैं। उसके ऊपरसे हँडियाके मुंह पर आधा या पौन गजके लगभग मोटे कागजकी लबी टोपी बनाकर चिपका देते हैं। हांडीके नीचे तैलके दीपककी हलकी आँच देते हैं।

प्रकरण १०

धूमकल्पना या कज्जलकल्पना (तदखीन)

काजल (कज्जल) या धूआँ (दुखान) इकट्ठा करने, लेने या पाडनेकी क्रिया भी तब्खीर (वाष्पीकरण) एव तसईद (ऊर्ध्वपातन)से समानता रखती है। धूआँ (धूम्र) अर्थात् काजल लेनेकी यह तीन विधियाँ हैं—(१) औषध द्रव्यको निर्वात स्थानमें जलाये और उसके धुएँ पर मिट्टीका कच्चा पात्र रखें। उस पात्र पर जितना धुआँ लगे, उसे लेकर काममे लेवे। (२) शुष्क औषधद्रव्यको महीन पीसकर और कपडेमें वत्तीकी तरह लपेटकर दीपकमें रखें और तेल डालकर जलायें। ऊपर मिट्टीकी रकाबी रखकर काजल लेवें। (३) शुष्क औषधद्रव्यको जलमें पीसकर या आर्द्र औषधद्रव्यको स्वरस निकालकर उस रसमें कपडा भिगोकर सुखायें। फिर वत्ती बनाकर यथाविधि मिट्टीके पात्र पर काजल इकट्ठा करें।

कुदुरका धुँआ (दुखान कुदुर)—कुंदुरको एक कोरे प्यालामें रखकर उसके ऊपर कागजकी टोपीके आकारका (कुलाहनुमा) आवरण रखकर प्यालेसे चिपका देवें। प्यालेके नीचे दीपकमें मोटी वत्ती डालकर प्रज्वलित करें। कागजके आवरणके भीतर कुछ तृण टेढे-तिरछे रख देना चाहिए, जिसमें कुदुरका धुँआ उन पर जमता रहे। कुछ देरके पश्चात् शीतल होने पर धीरेसे आवरण पृथक् करके उसमेंसे काजल इकट्ठा कर लें।

●

प्रकरण ११

अस्र (प्रपीडन, निचोडना) उसारा और रुब्ब

उसारा[1]—यदि किसी ऐसी वनस्पतिकी पत्तियोका स्वरस निकालना हो, जिनसे रस न निकलता हो, तो उसमें किंचित् जलका छीटा देकर कूटना और निचोड लेना चाहिये। कोई-कोई उक्त अवस्थामें जलका छीटा दिये विना वालोंके साथ पत्तोको कूटकर निचोड लेते हैं। इस प्रकार कुछ स्वरस निकल आता है। उसारए अकाकिया ववूल (सत)के वृक्षकी नरम और ताजी (हरी) फलियाँ लेकर और कूटकर स्वरस निचोड लेते हैं। इसके उपरात उसे अग्नि पर पकाते या धूपमें रखते हैं। यहाँ तक कि वह गाढा हो जाता है। इसके उपरात सुखाकर काममें लाते हैं।

उसारए ववूल—उसारए अकाकियाको कहते है। उसारए दारहल्द—रसाजन या रसवतका नाम है। दारुहरिद्रावृक्षकी लकडी और जडको टुकडे-टुकडे करके पानीमें उवालते हैं। जब उसका समस्त वीर्य जलमें आ जाता है, तव छानकर इतना पकाते हैं कि वह गाढा हो जाता है। इसके वाद सुखाकर काममें लेते हैं।

उसारए रेवद—रेवदचीनीको छोटे-छोटे टुकडे करके पानीमें पकाते हैं। जव खूव पक जाता है, तव छान लेते हैं। फिर इस छने हुये रसको पुन इतना पकाते हैं, कि गाढ़ा होकर सूख जाता है। इसके वाद काममें लेते हैं। रुब्बकी व्याख्या पृ० १८५ पर देखें।

---

१ आयुर्वेदमें इस प्रकारकी कल्पनाको 'स्वरस' और शुष्क उसाराको 'रसक्रिया' कहते हैं। तात्पर्य यह है कि अरबी 'उसारा' सज्ञा आयुर्वेदके स्वरस और रसक्रिया इन उभय कल्पनाओंके अर्थमें प्रयुक्त होती है।

प्रकरण १२

भिगोना या खेसाँदा करना (नकुअ)

खेसाँदाकी व्याख्या गत पृष्ठो पर देखें। नियम (१) यदि खेसाँदाके नुसखामें जड, लकडी और कठिन छिलकायुक्त ऐसे बीज हो, जिनके भीतरकी गिरी ही औपघके लिए अभीष्ट हो, तो उनको अधकुटा करके भिगोना चाहिये। इन्हें अधिक महीन करनेकी आवश्यकता नही है। अलसीके बीज और बिहदानाको फाण्ट और क्वाथमें कूटनेकी आवश्यकता नही है। उन्नाव और लिसोढा (सपिस्तां)को कुचल देना चाहिये।

(२) फाण्टकल्पना-पात्र—जिस पात्रमें औषधद्रव्य भिगोकर रखे जायँ, वह कलई किया हुआ होना चाहिये और उसको ढाँककर रखना चाहिये, जिसमें धूलिकण आदिसे सुरक्षित रहे। यदि चीनी, तामचीनी, शीशा या मिट्टीका कोरा पात्र हो तो उत्तम है। (३) खेसाँदाके नुसखामें सिकजवीन और शर्वत आदि मिलाना हो, तो छाननेके उपरात मिला सकते हैं। यदि फाण्टमें गुलकद मिलाना हो, तो छाननेके उपरात गुलकदको पीसकर मिलायें और फिर दोबारा छान लें। (४) यदि सभव हो तो फाण्टकी कल्पनामें परिस्रुत जल या कोई उपयुक्त अरक उपयोग किया जाय, या यथासभव स्वच्छ एव शुद्ध जलादि दिया जाय। अरकगावजबान परिस्रुत जलके स्थानमें काम आ सकता है। (५) यदि नुसखेमें प्रयुक्त समस्त औषधद्रव्योको पोटलीके रूपमें बाँधकर फाण्ट बनाना हो, तो पोटलीके लिये मलमल जैसा बारीक एव स्रोतपूर्ण वस्त्र ग्रहण करना चाहिये, और उस पोटलीको फाण्टके पात्रमें डोरेसे बाँधकर मध्यमें अवलबित रखना चाहिये। (६) बाहरी हवामें यदि शीतलता है, तो फाण्ट देरमें प्रस्तुत होता है। यदि हवा उष्ण है, तो औषधद्रव्यके घटक जलमें शीघ्र विलीन हो जाते हैं। इसलिए फाण्टकी कल्पनामें इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है। (७) नवीन तैयार किया हुआ फाण्ट लाभकी दृष्टिसे अतीव श्रेयस्कर होता है और बासी (पर्युषित) फाण्ट कभी इसकी बराबरी नही कर सकता। फाण्ट और क्वाथ जब देर तक रखे रहते हैं, तब धीरे-धीरे उनमें परिवर्तन होते रहते हैं, चाहे वह प्रगट रूपमें प्रकाशमें न आये।

(८) क्वाथ और फाण्टका सरक्षण—यदि एक दिनका बनाया हुआ क्वाथ या फाण्ट अधिक काल तक अविकृत या सुरक्षित रखना चाहें, तो उसकी विधि यह है—उसे खूब उष्ण करके स्वच्छ और सुखाये हुये शीशोमें लबालब मुँहतक भरकर दृढतापूर्वक इस प्रकार डाट लगा दें, कि भीतर वायु न बाकी रहे और न बाहरसे जा सके। यदि डाट लगानेके उपरात बाहरसे गर्दन तक रबडकी या जस्ता सीसा या राँगके परतकी टोपी चढा दें, तो अधिक उपयुक्त है। इस प्रकारका फाण्ट और क्वाथ दो-तीन सप्ताहपर्यंत सुरक्षित रह सकता है। (९) कभी-कभी थोडे पानीमें अधिक प्रमाणमें औषधद्रव्य सम्मिलित करके रसक्रिया (रुब्ब) या घन (गलीज उसारा)रूप बहुत ही प्रगाढीभूत फाण्ट और क्वाथ प्रस्तुत कर रख लेते हैं। आवश्यकतानुसार प्रतिदिन जल या अरकमें इसको उपयुक्त प्रमाणमें विलीन करके उपयोग करते रहते हैं। ऐसा उस समय किया जाता है, जबकि प्रतिदिन इसको नवीन प्रस्तुत करनेमें कोई बात बाधक होती है। परतु इसके गुण नवीन प्रस्तुत किये हुये फाण्ट और क्वाथके तुल्य कदापि नही हो सकते। प्रत्युत कतिपय द्रव्योके बासी और पुराने खेसाँदे बहुधा वीर्यहीन और निरर्थक हो जाते हैं।

प्रकरण १३

क्वथन, पकाना, उबालना, जोशाँदा बनाना

(तब्ख़)

वक्तव्य—खेसांदा (फाण्ट)के बहुश नियम ऐसे मिले जुले हैं, जिनका यहाँ क्वाथके प्रकरणमें विचार करना अनिवार्य है।

जोशाँदा (मत्बूख)—व्याख्या पृ० १९६ पर देखे।

(१) यदि औषधद्रव्यका अधिक वीर्य लेना अभीष्ट हो, तो रात्रिको शीतल जलमें भिगो रखें, और प्रात काल क्वथित करके काममें लेवें। बहुश क्वाथोमें साधारणतया यही नियम प्रचलित है। परतु कतिपय क्वाथोमें यह उपदेश किया जाता है कि उन्हें 'खफीफ जोश' दिया जाय और औषधद्रव्यको अधिक कालतक पकाया न जाय जैसा कि बिहदाना, उन्नाब, लिसोढाके नुस्खामें "जोश खफीफदादा" अर्थात् 'हलका जोश दिया जाय' लिखा जाता है। इसमे यह अभिप्रेत है, कि इन औषधद्रव्योको बहुत अधिक देरतक न पकाया जाय कि द्रव अत्यधिक गाढा हो जाय। (२) छाननेके उपरात काढेमें शर्बत, खमीरा या मिश्रीमेंसे जो मिलाना हो मिलाकर उपयोग करें। यदि गुलकद मिलाना हो, तो पीसकर मिलायें और फिर दोबारा छानकर उपयोग करें। यदि क्वाथमें तुख्म कुसूस और अफ्तीमून जैसे औषधद्रव्य हो, तो उन्हें स्वच्छ और महीन वस्त्रकी पोटलीमें बाँधकर अन्य औषधद्रव्योके साथ डालना चाहिये जैसा कि पूर्वजोंने[1] बताया है और नुसखामें "बर्सुरए बस्ता (पोटलीमें बाँधकर)" लिखा जाता है। किसी-किसीके मतानुसार इसे उस समय डालें, जब अग्नि परसे उतारनेको हो। इसके बाद दो-तीन जोशसे अधिक न दें। (३) यदि क्वाथमें मूल, लकडियाँ और मोटे छिलकेवाले बीज हो, तो उनको अधकुट करके डालना चाहिये। यदि इनके अतिरिक्त पत्र-पुष्प जैसे मृदु एव सूक्ष्म उपादान हो, तो प्रथम कडे द्रव्योको डालकर पकायें। और जब वे अधपके हो जायें, तब इन पुष्पपत्र आदिको मिलाकर पकायें। यदि क्वाथ विरेचनीय हो और उसमें अमलतासका गूदा हो, तो क्वाथ छाननेके उपरात अमलतासका गूदा घोलकर छान लें, क्योकि उबालनेसे अमलतासके गूदेका वीर्य शक्तिहीन हो जाता है। (इसी प्रकार शीरखिश्त और तरजबीन भी क्वाथ छानने पर मिलाना चाहिये।) (४) क्वाथका पात्र कलई किया होना चाहिये और क्वाथ करते समय पात्रको ढँक देना चाहिये। अम्ल और कषाय द्रव्योंसे प्राय धातुके पात्र खराब हो जाते हैं, और उसका असर काढेमें आ जाता है। बरतनका मुँह खुला रखकर काढा बनानेसे औषधके सूक्ष्म घटक वायु बनकर नष्ट हो जाते हैं। (५) क्वाथको मद अग्नि पर पकायें, क्योंकि तीव्र अग्नि पर पकानेसे उनके वीर्यवान् अश वायुमें मिलकर काढेमें, अत्यल्प शेष रह जाते हैं। (६) शिफाउल् अस्कामके अनुसार क्वाथ हो चुकनेके उपरात सीठी तुरत अलग कर देना चाहिये, क्योकि क्वाथके समय औषधके वीर्य (सारभाग) जलमें आ जाते है। परतु जब गरमी जाती रहती है, तब सीठी अपने कतिपय वीर्योको पुन वापस ले लेती है। अतएव पानी (काढ़े)का कर्म निर्बल हो जाता है। उपयोग—दाहयुक्त, दुर्बल, क्षीण और कृश मनुष्योको क्वाथ लाभकारी सिद्ध होता है, क्योकि औषधोका क्वाथ उन औषधीय उपादानो (जिर्म)की अपेक्षया अधिक सूक्ष्म एव शीतल होता है। फाण्ट इससे भी शीतल होता है। चूर्ण और गुटिका आदिसे क्वाथ श्रेष्ठतर स्वीकार किया जाता है, क्योकि इसमें औषधिके स्थूल घटक जो नाना प्रकारके विकारोके उत्पादक हैं, न रहकर केवल उनके गुण और वीर्य ही आते हैं।

●

---

१ इसकी साधार, मतोषदायिनी स्पष्ट वैज्ञानिक कार्य-कारण मीमासा अद्यावधि ज्ञात न हो सकी। सभव है भविष्यमें बुद्धिकी सहायतासे एतद्विषयक अज्ञानकी यवनिका उठ जाय।

प्रकरण १४

लवण या क्षारकल्पना (इक्ला)

क्षार (कली)की व्याख्या गत पृष्ठोमें देखें ।

औद्भिदक्षार कल्पनाकी विधि—जिस उद्भिज्जद्रव्यका क्षार बनाना हो, उसको जलाकर उसकी भस्मको जलमें घोल, हाथोंसे खूब हिलाकर दो-तीन पहर तक रखें । इसके उपरात एक पात्र पर एक कपडेमें जिसको चारों-ओर पात्र पर खीचकर बांध दिया गया हो, यह क्षारोदक डाल दें, जिसमें क्षारके विलीनीभूत अश जलके साथ छनकर उक्त पात्रमें सगृहीत होते रहें । पात्रमें निथरे हुए स्वच्छ जलको देगचामे डालकर पकायें और पानीको वाष्पके द्वारा उडायें, यहाँ तक कि समस्त जलाश जलकर केवल क्षार अवशेप रह जाय । उसको सुखाकर रख ले । इस रीतिसे चिरचिटा, मूली, जौ आदिका क्षार निकाला जाता है । क्षार निष्कर्पकी द्वितीय विधि यह भी है, कि राख या भस्म बनाकर और एक पात्रमें डालकर उसपर प्रचुर प्रमाणमें जल डाले और हाथोंसे खूब हिलायें । इसके उपरात कुछ काल तक स्थिर रख छोडें । फिर स्वच्छ निथरा हुआ जल लेकर छानें । इसके अनन्तर इतना पकायें कि समस्त जल जल जाय, क्षार अवशेष रह जाय, जिसे सुखाकर रखें । यह उभय रीतियाँ वस्तुत एक हैं। इनमें केवल अशत भेद हैं । इस रीतिसे चिरचिटा, मूली, जौ आदिका क्षार निकाला जाता है ।

अपामार्ग क्षार (चिरचिटाका खार या नमक)—चिचिडी (अपामार्ग)को सुखाकर एक स्वच्छ मिट्टीके बडे पात्रमें जैसे नांद इत्यादिमें डालकर जलायें । इससे जो राख प्राप्त हो उसे प्रचुर प्रमाण जलमें घोलें । बीच-बीचमें उसे हाथसे कई बार खूब हिलावें । फिर कई घंटे तक स्थिर रख छोडें। इसके उपरात स्वच्छ निथरे हुये जलको कपडेसे छानकर और देगचा इत्यादिमें डालकर उबालें । समस्त जलाश जल जानेपर नीचे केवल क्षार अवशेष रह जायगा । उसको शुष्क करके रखें ।

मूलक क्षार (नमक तुर्ब, खार मूली)—इसकी कल्पनाकी विधि अपामार्ग क्षार-कल्पनाके तुल्य है । मूलीसे प्रचुर प्रमाणमें क्षार निकलता है । अस्तु, यदि मूलीकी राख पचीस तोले हो, तो उससे चौदह तोले क्षार निकलता है । यदि मूलीकी पत्तियोकी राख है, तो सौ तोले राखमेंसे वीस तोले क्षार निकलता है । **जवाखार**—जौके समूचे पौधोंको सुखाकर जलाया जाता है और अपामार्ग, मूलक इत्यादि की भाँति जवाखार कल्पनाकी जाती है ।

प्रकरण १५

जलाना, सोख्ता करना, मसीकल्पना (एह्राक)

एह्राक (अ०—हर्क = जलाना, ह्रिक, ह्रीक = जला हुआ द्रव्य)का भाव गत पृष्ठोमें व्यक्त किया गया है। इसलिये यहाँ पर अब विशेष द्रव्योंके जलाने (मसीकल्पना कोयला बनाने)की विधियाँ लिखी जाती है। मसीकृत अस्पज (अस्फज सोख्ता)—अस्पंज (मुआ बादल—अस्फज)को साबुनसे धो, खूब निचोट, सुखाकर बारीक कतर और मिट्टीके पात्रमें रखकर अग्नि पर इतना जलायें कि वह पिसनेके योग्य हो जाय, परतु इतना न जलाये कि वह जलकर क्षार हो जाय।

मसीकृत अबाबील (अबाबील मुह्रक)—अबाबीलको वध करके, पर (पख) दूर करके आमाशय और अत्र निकालकर मास पर लवण छिडक कर मिट्टीके सकोरेमें रखकर ऊपरसे कपडमिट्टी करके अग्निमें या तनूरमें रख दें। जब जल जाय तब निकाल लेवें। यह अपने अधीन है कि चाहे केवल सकोरेके मुंह पर कपडमिट्टी करे या समस्त सकोरे पर। वक्तव्य—शशक वा खरहेके मसीकरणकी विधि भी यही है। इन्हे तनूर या हम्मामके चूल्हेमें रखकर जलाते हैं।

मसीकृत तृणकात मणि (कहरुवा सोख्ता)—कहरुवाको जलाने (सोख्ता करने)की विधि यह है—कहरुवाके छोटे-छोटे टुकडे करके मिट्टीके सकोरामें रखकर उसका मुंह बद करके कपडमिट्टी करके सुखायें। पुन इसे एक रात गरम तनूरमें रखे। प्रात काल निकालकर बारीक खरल करके काममें लेवे। मसीकृत प्रवालमूल (बुस्सुद सोख्ता)—बुसुद प्रवालमूल 'बेखमर्जान'के नामसे प्रसिद्ध है। इसको कभी सामान्य रीतिसे जलाया जाता है और कभी भस्म (कुश्ता) किया जाता है। इसे जलानेकी विधि यह है—इसे टुकडे-टुकडे करके मिट्टीके सकोरामें डाले। फिर उसके ऊपर कपडमिट्टी करके एक रात तनूरमें रख छोडे। प्रात काल निकालकर बारीक पीसकर काममें लेवें। वक्तव्य—यह ज्ञात रहे कि तनूरमें अग्नि इतना तीव्र न होनी चाहिये कि बुस्सुद (प्रवालमूल) राख हो जाय, केवल उसे कोयला (मसी) करना अभीष्ट है। तनूरके अतिरिक्त उपलोकी अग्निमें भी जला सकते हैं। इसी प्रकार समुद्रफेन भी मसीकृत किया जाता है। इसके भस्मकल्पनाकी विधि प्रवाल भस्म (कुश्ता मर्जान)के समान है। मसीकृत प्रवाल शाखा (मर्जान सोख्ता)—प्रवाल (मिर्जान)के जलानेकी विधि बुस्सुद सोख्ताके समान है। इसकी भस्म (कुश्ता) बनानेकी विधि तक्लीसके प्रकरणमें वर्णित है। मसीकृत खर्पर (सगबसरी)—तिब्बुश्शीआमें लिखा है, कि सगबसरीके बरक करके उसमें तिहाई गधकका चूर्ण मिलाकर और दो सकोरोके भीतर सपुट करके अग्निमें फूंक लेवें। मसीकृत कतरान—बदीउल्नबादिरमें लिखा है कि मजनमें डालनेके लिये कतरानको इस प्रकार जलायें—इसको कपडमिट्टी किये हुये प्यालेमें रखकर इतनी अग्निमें रखें कि आधा रह जाय। फिर पतली-पतली गोल लकडियों पर पतला-पतला लेप करके वायुमें रख दें, जिसमें सूख जाय। यह शुष्क न हो सके तो दोबारा अग्नि देवें। मसीकृत लवण (नमक सोख्ता)—नमक जलानेकी विधि यह है—लवणको घीकुआरके रसमें खूब मिला, हांडीमें रखकर उसके ऊपर कपडमिट्टी करके बीस सेर उपलेमें फूंक देवें। यदि इसी प्रकार पद्रह आँच दें, तो उत्तम हो जायगा। मसीकृत लोम (मूये सोख्ता)। बालके दग्ध करनेकी विधि अबरेशमके समान है। दग्ध वा मसीकृत कर्कट (सर्तान मुह्रक)—नहर या नदीका बडा केंकडा लेकर उसके पैर आदि अलग करके उदर विदारण करें। फिर उदरस्थ आमाशय एव अत्र आदिको दूर कर नमकके पानीसे और पीछे साफ पानीसे धोयें। इसके बाद उसे मिट्टीके कोरे पात्रमें रख, ऊपर कपडमिट्टी कर, फिर खूब गरम तनूरमें चार पहर रखे और तनूरका मुंह

वद कर देवे, अथवा इतना पुट देवें कि श्यामवर्णकी मसी हो, श्वेतवर्णकी भस्म न हो जाय । ठढा होने पर निकाल कर वारीक पीसे और काममें लेवें ।

वक्तव्य—इसे केवल नमकसे धोना भी काफी है। विना धोये भी केकडेको दग्ध किया जा सकता है।

दग्ध वा मसीकृत जतूका (चमगादड सोख्ता)—चमगादडके वच्चेको लेकर उसका उदर विदारण करके आमाशय और अन्न आदि वाहर निकालकर फेंक देवे । इसी प्रकार उसके रोगटोको साफ करके खूब धोयें और लवण छिडककर मिट्टीके सकोरेमें वद करके कपडमिट्टी करे । फिर तीव्राग्निमें रख देवें । जव अग्नि शीतल हो जाय, तव वाहर निकालकर आवश्यकतानुसार काममें लेवें । **सर्पका दग्ध या मसी (सोख्ता) करना**—जिस प्रकारका सर्प दग्ध करना हो, उसे (जीवित वा मृत) मिट्टीके पात्रमें वद करके कपडमिट्टी करें और जलते तनूरमें एक रात रहने देवें। प्रात काल निकालकर पीसें और आवश्यकतानुसार काममें लेवें । कभी-कभी इस प्रकार दग्ध सर्पको जैतूनके तेलमें मिलाकर कठमाल पर लगाते हैं । **कछुएका दग्ध करना**—कछुयेका पेट चीरकर आमाशय और अन्नादिको दूर करें और खूब धोयें। फिर उसे मिट्टीके पात्रमें वद करके उसके ऊपर कपडमिट्टी करें और तीव्र अग्निके तनूरमें रखें । वह जलकर श्वेत क्षार वन जायगा । इसे यथासमय काममें लेवें । *अगूरकी लकडीकी राख, लवण और उष्ण जलसे कई वार धोनेसे कछुयेकी हड्डी साफ हो जाती है ।*

मसीकृत अथवा भृष्ट वृश्चिक—जीवित विच्छूको मिट्टीके पात्रमें रखकर और उसपर ढक्कन रखकर सधियोको आटे आदिसे वद कर दे । फिर तनूरकी गरमीमें रात भर रखें । सवेरे निकालकर और पीसकर वारीक कपडेमें छानें और काममें लेवें ।

वक्तव्य—तनूरकी गर्मीसे यह अभिप्रेत है, कि तनूरमें खूब अग्नि जलाकर अग्निको निकाल लें और साफ कर लें । इसके वाद उसके भीतर मुँह वद किये हुये उस विच्छूवाले पात्रको रखकर तनूरको वद कर दें। तनूरमें जलानेके लिए श्रेष्ठतर लकडी अगूरकी होती है । यदि विच्छूको क्षार करना हो, तो तीव्र अग्नि देवें जिसमें वह क्षार हो जाय, इसके लिए नर विच्छू अधिक उपादेय है, और उसकी पहिचान यह है कि वह दुर्वल एव कृश होता है ।

मसीकृत अडत्वक् (पोस्त वैजा मुहरक)—जिसमेंसे वच्चा निकला हो उस अडेका छिलका प्रशस्ततर है। शुतुर्मुर्गके अडेका छिलका सर्वोत्तम स्वीकार किया जाता है । इसके मसीकरण वा भस्मकरणके लिए मेरा लिखा हुआ 'यूनानी रसायन-विज्ञान' नामक ग्रथ अवलोकन करें। सावरशृग, मृगशृग और अन्यान्य धातूपधातुओंके मसीकरणकी विधि भी उसी ग्रथमें अवलोकन करें ।

मसीकृत हस्तिदत—हाथीदांतको सोहान (रेती)से रेतकर बुरादा वनाकर मिट्टीके वरतनमें रखकर तीन कपडमिट्टी करे । फिर एक गज घनफुट गड्ढा खोदकर जगली उपलोंमें रखकर जलायें ।

प्रकरण १६

तह्मीस (भर्जन, भूनना, बिर्यां करना)

एह्राक और तह्मीस यह उभय कल्पनाये परस्पर बहुत साम्य रखती हैं। इसी कारण कतिपय द्रव्योंको सोख्ता (मसीकृत) और बिर्यां (भृष्ट) पर्याय रूपमें लिखते हैं। उदाहरणत अफ्यून बिर्याको कभी अफ्यून सोख्ता कहा जाता है। किंतु साधारणतया तह्मीसमें औषधद्रव्यको इतना नही जलाते, कि उसका रग कोयलाकी भाँति काला हो जाय।

आबरेशम मुहम्मस (भुना हुआ अबरेशम)—अबरेशमको उसके भीतर स्थित कीडेसे शुद्ध करके बारीक कतर डालें। फिर उसे मिट्टीके पात्रमें रखकर अग्निपर रखें और जल्दी-जल्दी हिलाते रहें, यहाँ तक कि गरमीके कारण अबरेशम कडा होकर पिसने योग्य हो जाय।

अफ्यून मुहम्मस (भुना हुआ अहिफेन)–इसके छोटे-छोटे टुकडे करके अग्नि पर रखें और जल्द-जल्द हिलाते रहें, यहाँ तक कि अफीम कडा होकर पिसने योग्य हो जाय। अथवा किसी लोहेकी सीख (पतला छड)में अफीमको लगाकर दीपककी लौमें पकायें। परतु यह स्मरण रहे, कि दीपक मिट्टीके तेलका न हो, अपितु उसमें तिल या सरसोका तेल जल रहा हो।

शिव्व यमानी बिर्यां (भुनी हुई फिटकिरी)—फिटकरीको किसी बरतनमें रखकर अग्निपर इतना पकाते हैं, कि वह द्रवीभूत होनेके उपरात शुष्क एव खीलके समान हो जाती है। टकण भी इसी प्रकार भृष्ट किया जाता है। नीलाथोथा बिर्यां (भृष्ट तुत्थ)—नीलाथोथाके भृष्ट करनेकी विधि फिटकिरीके समान है। तुख्म रैहाँ बिर्यां—तुख्म रैहाँको किसी बरतनमें रखकर अग्निपर रखें और उसे जल्दी-जल्दी हिलाते रहें जिसमें वह जल न जाय। जब वह सुर्ख हो जाय और गध आने लगे, तब उतार लें।

वक्तव्य—बारतग, कनौचा, खशखाश (पोस्ता), धनियाँ, जीरा और अनीसून–इन बीजोंके भृष्ट करनेकी विधि रैहाँ बीजवत् है। भृष्ट किये हुए इन बीजोको क्रमश तुख्म बारतग बिर्यां, तुख्म कनौचा बिर्यां, तुख्म खशखाश बिर्यां, तुख्म कश्नीज बिर्यां, तुख्म जीरा बिर्यां और तुख्म अनीसून बिर्यां कहते हैं। मद्यमें भिगोकर कपडेमें बाँधकर कपरौटी करके एक रात मध्यमग्निके तनूरमें रखनेसे भी अनीसून भृष्ट हो जाता है।

एलुआ मुहम्मस (भृष्ट एलुआ)—साफ ठीकरे पर रखकर भून लें जिसमें हर तरफसे अग्नि छू जाय, परतु जले नही। ऐसे एलुआको नेत्ररोगोंमें प्रयुक्त नेत्राजनोपयोगी सुर्मों (कुह्लो)में मिलाते हैं।

बाल बिर्यां (भृष्ट बाल)—बालोंमें साबुन लगाकर धोयें और सुखाकर कघी करें। फिर बारीक कतर कर अग्निपर इतना खिलावें कि पीसनेयोग्य हो जायँ और उनसे गध आने लगे। मनुष्यके शिरके केश इसके लिए प्रशस्ततर होते हैं।

माई मुहम्मस (भृष्ट मायिका)—माईको कूट, मधुमें मिला, कपडेमें बाँध, कपरौटी करके मध्यमाग्निके तनूरमें रात्रि भर रखें। इसके उपरात निकालकर काममें लेवें। यह मजनमें काम आती है।

प्रकरण १७

तक्लीस (मारण, कुश्ता या भस्म बनाना)

गत पृष्ठोमें इस विषयका निरूपण किया गया है कि कुछ औषधद्रव्योको जलाकर चूना जैसा बना दिया जाता है। इस सस्कार (कल्पना)को तक्लीस[1] (मारण, भस्मकरण) कहा जाता है, और जो वस्तु मारण क्रियाके उपरात श्वेत क्षार वा चूनाके रूपमें (न्यूनाधिक भेद-प्रभेदके साथ) प्राप्त होती है, उसे कुश्ता (मुकल्लस) कहा जाता है।

निम्नलिखित द्रव्योंके लिये भस्म बनानेकी (मारण) क्रियाका अवलवन किया जाता है—(१) फिलिज्ज़ात या ज़विल् अज्साद (धातुयें), यथा—सुवर्ण, रजत, ताम्र, यशद, वग, नाग, लौह इत्यादि। (२) हजरिय्यात या अहजार मादनिया (पाषाण वा पत्थर), यथा—पन्ना, माणिक, यशव, अकीक, सगजराहत, मोती, सीप, प्रवाल, प्रवालमूल, वेरपत्थर (हजरुल्यहूद) इत्यादि। (३) ज़विल् अरवाह (उपधातुयें), यथा—गधक, हडताल, सखिया, शिगरफ, रसकपूर, दारचिकना, पारा। ज़विल नुफूस, यथा—नौसादर, शोरा, फिटकिरी आदि।

वक्तव्य—इन द्रव्योको जविल् अरवाह इसलिये कहते हैं, कि तीव्र अग्निपर इसके घटक वाष्प (अरवाह) बनकर उड जाते हैं। मानो इनकी रूहें निकल जाती हैं।

अनुभव और अभ्यास—भस्मनिर्माण परम चतुर एव अनुभवी पुरुषका काम है। नौसिखुआ और प्रारभ करनेवालेको प्राय असफतासे पाला पडा करता है। अस्तु, यहाँ पर हम भस्मनिर्माण विषयक कतिपय उन सूचनाओं (सूत्ररूप सिद्धान्त)का निरूपण करते हैं, जिनका पालन परमावश्यक है।

भस्म बनाने और पुट देनेके विषयोमे आवश्यक सूचनाएँ —

सामग्रीकी उत्कृष्टता—जिस द्रव्यकी भस्म बनानी हो, वह शुद्ध एव उच्चकोटिका हो और उसको निर्दिष्ट विधानके अनुसार शुद्ध (मुसफ्फ़ा या मुदब्बर) कर लिया गया हो। सुतरा भस्मनिर्माण क्रममें जो सामग्री उपयोग की जायें, जैसे औषधद्रव्य, वनस्पतियोका स्वरस आदि वह भी अपेक्षाकृत उत्तम हो, जिसमें असफलताका यह भी कारण दूर हो जाय।

वनस्पतियोका स्वरस—भस्म बनानेके लिये जिन वनस्पतियोका स्वरस डाला जाता है, उसे बहुधा फाड लिया जाता है अथवा परिस्रुत कर लिया जाता है। यदि शुष्क उद्भिज्ज द्रव्य कल्पनामें समाविष्ट हों, तो वे एक वर्षसे अधिक कालके न हो और छायामें सुखाकर रखे गये हो।

नियम-पालन—भस्म बनानेके लिये जिन द्रव्योंका वजन लिखा हो अथवा किसीने अपने अनुभवके आधार पर बताया हो, उन्हें उसी प्रमाणमें लेना चाहिये। अपने विचारसे न्यूनाधिक करनेसे प्राय ठीक भस्म प्रस्तुत नहीं

---

१ अरबी भाषामें 'किल्स', चूनाको कहते हैं, और जिस क्रियासे कोई द्रव्य जलाकर चूना किया जाता है उसे 'तक्लीस' और इस क्रियाके फलस्वरूप प्राप्त चूर्णको 'मुकल्लस' कहते हैं। फारसी 'कुश्तन (= मारना) धातुसे 'कुश्ता' शब्द व्युत्पन्न है। 'कुश्ता'का अर्थ 'मृत' है। यूनानी रसायनशास्त्रमें कुश्ता (फारसी) और मुकल्लस (अरबी) दोनों पर्याय हैं। अरबीमें इसी कारण कोई-कोई कुश्ताके लिये 'मक्तूल (मृत)' सज्ञाका व्यवहार करते हैं। आयुर्वेदमें तक्लीसके लिये 'मारण, भस्म' या 'क्षारकरण' तथा मुकल्लस और कुश्ताके लिये 'भस्म वा मृत (क्षार भी)' सज्ञाका व्यवहार होता है। मारण क्रिया भारतीय रसायन-शास्त्रियोंका आविष्कार एव उनकी निधि है। उन्हींसे यूनानी विद्वानोंने इसको सीखा है। इसी कारण प्राचीन यूनानी वैद्यकीय ग्रथोमें इसका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है।

हुआ करती। यदि प्रस्तुत भी हो जाय, तो प्राय उनमें वे गुण नही आते जिनका उल्लेख किया गया होता है। मान-तौलमें न्यूनाधिकता करनेके अतिरिक्त किसी विधिमें भी फेर-फार न करें और न खरल करने, पकाने या अग्नि देनेकी जो अवधि निर्धारित की गई है उसके विरुद्धका आचरण करे। कभी-कभी अनुभवशून्य अज्ञ पुरुष औषध-द्रव्योके निर्दिष्ट अनुपातसे न्यूनाधिक द्रव्य लेकर भस्म वनाना चाहते हैं, और असफल होते हैं। अस्तु निर्धारित वजनको अनुपातके विचारसे भी न्यूनाधिक नही होना चाहिये।

मूषा (वूता)मे औषधद्रव्यका वद करना और निकालना—यदि कोई द्रव्य किसी वनस्पतिके स्वरस या किसी अन्य प्रवाही वस्तुमें खरल किया गया हो, तो उसको शुष्क होने पर मूषामें वद करें और जव तक मूषा शुष्क न हो जाय, उसको अग्नि न दें। फिर जव तक अग्नि विल्कुल शीतल न हो जाय, औषधको वूतासे वाहर न निकालें। जव वूताको अग्निसे वाहर निकालें, तव पहले राखसे भली-भाँति साफ कर लें। इसके वाद धीरेसे खोलकर औषध निकाल लेवें।

पुरातन भस्मकी गुणवृद्धि—निर्दिष्ट नियमके अनुसार जव भस्म उत्कृष्टतर हो जाय, तव उसके छ मास या वर्ष भरके उपरात सेवन करना श्रेयस्कर है, विशेषकर उस समय जवकि भस्म किसी विषैले द्रव्यसे प्रस्तुत की गई हो। अनुभवी लोगोका यह कथन है कि भस्म जितनी ही पुरानी होगी, उतनी ही अधिक लाभकारी होगी। पर यदि अति शीघ्र उसका उपयोग करना ही पडे, तो कुछ लोगोंके मतसे उसे इस प्रकार सेवन करायें—प्रथम शीशीको वद करके आर्द्र भूमिमें तीन-चार दिन तक गाड देवें। इस विधिसे भस्मकी तीक्ष्णताका वहुताशमें सुधार हो जाता है। यह भी कहते हैं कि गेहूँ या जौ की राशिमें भस्मकी शीशी कुछ काल पर्यंत रखनेसे भस्मके दोषोंका किसी भाँति परिहार हो जाता है।

अपक्व भस्म—यदि भस्म कच्ची रह जाय, तो उसको दोवारा अग्नि देकर अपुनर्भव भस्म प्रस्तुत कर लिया जाय। ऋत भस्म वहुधा लाभके स्थानमें हानि पहुँचाया करती है।

भस्मकी रक्षा—प्रस्तुत होनेके उपरात भस्मको किसी शीशी या डिवियामें रखना चाहिये। कागजकी पुडियामें न रखें और न खुला रहने दें। ऐसा करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जाता है। इसके पश्चात् भस्मको जल और वायुसे भी सुरक्षित रखना चाहिये। इससे भी भस्मके गुण एव वीर्यको हानि पहुँचती है।

अग्निका प्रमाण और भेद—भस्म वनानेमें अग्नि देनेके लिये वडी सावधानीकी आवश्यकता है। उसके निर्माणकी जो विधि और जो प्रमाण लिखा हो, उसका अक्षरश पालन किया जाय। अनुभवी एव अभ्यस्त व्यक्ति यदि आवश्यकता समझे तो उसमें कुछ फेर-फार कर सकता है। यद्यपि प्रायश विधियोमें अग्नि देनेके लिये उपलोका वजन लिखा हुआ होता है, पर कुछ स्थलोंमें उपलोंके वजनके स्थानमें पारिभाषिक नाम, यथा—गजपुट इत्यादि लिख दिया जाता है। ऐसे स्थलमें जो पारिभाषिक सज्ञा दी हो, उसीके अनुसार अग्नि देवें। गजपुट, कूकरपुट (कुक्कुटपुट), वाराहपुट, महापुट इत्यादि विशेष-विशेष प्रमाणके गड्ढे हैं जिनमें उपले भर कर अग्नि (पुट) देते हैं। भस्म वनानेके लिये जितने उपलोंकी अग्नि देना हो, उनमें आधेसे अधिक उपले नीचे विछायें। इसके ऊपर वह वस्तु रखें जिसका भस्म वनाना हो। फिर अवशिष्ट उपलोको रखकर अग्नि लगा देवें। जव अग्नि विल्कुल शीतल हो जाय तव औषध निकाल लेवें। भस्म वनानेके लिये गड्ढा खोदना चाहिये। गड्ढा ऐसे स्थान पर खोदना चाहिये जहाँ वायुके झोंके न लगें। यदि वायुसे रक्षा न हो सके, तो गड्ढेके ऊपर एक वडी नाँद रखकर उसके वीचमें एक छिद्र वना देवें अथवा वालू, राख और मिट्टी इत्यादिसे ढँक देवें, परतु, मध्यसे कुछ भाग खुला रहने दे। कभी-कभी यद्यपि निर्धारित वजनके अनुसार अग्नि दी जाती है, तथापि केवल वायुके झोंके लगनेसे भस्म तैयार नही होती, क्योंकि वायुके झोकोंसे अग्नि शीघ्र प्रज्वलित होकर औषधको आवश्यकतासे अधिक उत्ताप पहुँचा देती है अथवा अग्नि शीघ्र वुझ जाती है। इस कारण इच्छित काल तक उत्ताप नही पहुँचता। उभय दशाओमें औषध खराव हो जाता है। इस कारण इच्छित काल तक उत्ताप नही पहुँचता। उभय दशाओमें औषध खराव हो जाता है। यदि

किसी औषधको प्रस्तुत करनेके लिये अग्निका वजन ज्ञात न हो, तो कम अग्नि देनेसे औषध कच्चा रह जाता है और अधिक अग्नि देनेसे वह जल जाता है। उक्त अवस्थामें कई वार प्रयोग करनेसे अग्निका वास्तविक प्रमाण ज्ञात हो सकता है। जहाँ तीव्र अग्नि देना आवश्यक हो, वहाँ पुराने उपलोकी अग्नि दे। परतु जिस जगह अधिक तीव्र अग्निकी आवश्यकता न हो, वहाँ जगली उपलो (अरना)से काम लेवें।

बूता[1]—मिट्टीका एक छोटा-सा कटोरीके आकारका पात्र, जो विशेप विधिसे वहुत दृढ वनाया जाता है और कई वार अग्नि देनेसे भी नही टूटता। सोनारोकी कुठालियाँ (घडियाँ)भी ऐसी ही होती हैं, और इसी प्रकारकी मज-बूत मिट्टी (गिल हिकमत)से वनाई जाती है। बूतक (अरवी) सोनारोकी कुठालियाँ और अन्य मूषायोग्य पात्र वाजारमें तैयार मिलते हैं। उनको यथावश्यक खरीद ले। बूता पर लेप लगाने या कपडमिट्टी करनेके लिये यदि निम्न विधिसे तैयार की जाय, तो इससे अत्यत दृढ़ता प्राप्त होती है। विधि यह है—चिकनी मिट्टी १ सेर, नमक शोरा ५ सेर, जौकी भूसी ४ तोला, कैंचीसे छोटे-छोटे टुकडे किये हुये मनुष्यके वाल २ तोला—इन सवको मिलाकर दो-तीन दिन कूटें और थोडा-थोडा पानी मिलाते जायें। जितना अधिक कूटेंगे उतना ही श्रेष्ठतर होगा।

पुट या पुठ—'पुट' हिंदी सज्ञाका व्यवहार इन तीन पारिभापिक अर्थोमे होता है। इन विभिन्न अर्थोको हम प्रयोगस्थानसे समझ सकते है कि यहाँ यह शब्द किस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है-(१) जब किसी द्रव्यको किसी अरक या पानीमें खरल किया जाता हैं, तव कभी कहा जाता है कि उदाहरणत 'इसको सात पुट दें।' इसका तात्पर्य यह कि उक्त द्रव्यको खरलमें डालकर वह अरक इतना डालें कि औषधसे एक अगुल ऊपर आ जाय और इतना खरल किया जाय कि वहुत सूख जाय। यह एक पुट हुआ। इसी प्रकार सात तक पहुँचाये। (२) किसी द्रव्यको तपाकर किसी द्रवमें बुझानेको भी 'पुट देना'[2] कहते हैं। उदाहरणत यदि कहा जाय कि 'सोनेको तेलमें सात पुट दें' तो उसका आशय यह हैं, कि सोनेको तपाकर तेलमें बुझायें। यह एक पुट हुआ। इसी प्रकार सात वार करें। (३) कभी-कभी अग्नि देनेको भी 'पुट देना'[3] कहते हैं। उदाहरणत यदि कहा जाय कि प्रवालको आदीके स्वरसमें खरल करके दस सेर उपलोकी अग्नि दें, इसी प्रकार तीन पुट दें। इसका अर्थ यह होगा कि प्रत्येक वार आदीके रसमें खरल करना पडेगा और प्रत्येक वार दस सेर उपलोंकी अग्नि देनी होगी। इसी तृतीय अर्थके विचारसे यहाँ पुटके कतिपय भेदोका निरूपण किया जाता है, जो भस्म निर्माणक्रियासे सवध रखते है।

आँच (पुट) विषयक विविध परिभाषाएँ—

वाराहपुट—यदि किसी कल्पनामें 'वाराहपुट'[4] की अग्नि देना लिखा हो, तो एक हाथ लवा, एक हाथ चौडा और एक हाथ[5] गहरा गड्ढा खोदकर अग्नि देना चाहिये। वालुपुट—एक मिट्टीके घडेमे वालू (रेत) भर कर और मध्यमें औषध रखकर मुँह वद करके चारो ओर उपले या कोयलोकी निर्दिष्ट अग्नि दें। इसे 'वालुपुट' कहते हैं। वज्रपुट—तीन हाथ लवा, तीन हाथ चौडा और तीन हाथ गहरा गड्ढाके एक तिहाई भागमें पहले मीगनियाँ, फिर उपले, फिर लकडियाँ विछाये, इसके वाद औपधका सकोरा रखकर उसके ऊपर लकडियाँ, फिर उपले फिर मिगनियाँ विछाकर अग्नि लगा दें। शीतल होनेपर औपध निकाल लें। यह आँच 'वज्रपुट'की आँच कहलाती है। भाण्ड

---

१ आयुर्वेदीय रसग्रंथोंमें 'बूता' और 'कूजा' (सकोरा) इन उभय सज्ञाओंके लिये सस्कृत 'मूपा' सज्ञाका सामान्यतया व्यवहार होता है।

२ रसतत्रकी आयुर्वेद परिभापामें इसे 'निर्वाप' और 'स्नपन' कहते है। यथा—"तप्तस्याप्सु विनिक्षेपो निर्वाप स्नपन च तत्।"

३ आयुर्वेदमें पुटके लक्षण—"रसादि द्रव्यपाकाना प्रमाणज्ञापन पुटम्। नेष्टो न्यूनाधिक पाक सुपक्व हितमौपधम्॥"

४ वाराहपुटका लक्षण आयुर्वेद मतमें यह है—'इत्थ चारत्निके गर्ते पुट वाराहमुच्यते।'

५ कुहनीसे लेकर मध्यमा उंगलीके अंतिम पोवें तक हाथकी नाप समझनी चाहिये।

पुट—एक घडेमें चावलकी भूसी भरकर उसके बीचमें औषधका सपुट रखकर चूल्हे पर रखें। इसके नीचे निश्चित समय तक अग्नि जलायें। यह 'भाण्डपुट'[1] कहलाता है। भूधरपुट—भूमिको दो अगुल खोदकर उसमें सपुट रखें, उसके ऊपर निश्चित प्रमाणके अनुसार उपले रखकर अग्नि दें। यही 'भूधरपुट' कहलाता है। सम्पुट—किसी धातुकी डिबियामें औषध रखकर ढँकनेसे दृढतापूर्वक ढांकना अथवा दो सकोरो या दो सरावो या दो प्यालोंके बीच औषध रखकर कपरौटी करना 'सम्पुट' कहलाता है। सपुटके बाद आँच दी जाती है। जब औषधद्रव्योको प्यालो या कूजो (शरावो)में सपुट किया जाता है, तब उसकी विशेष सज्ञा 'शरावसम्पुट' है। सम्पुटकी विधिका नाम पुटजन्तर (पुटयत्र) भी है।

शीतल पुट—एक छोटे गढेमे एक-दो सेर उपलोको बद करके दी हुई आँच शीतल पुट कहलाती है। कपोतपुट—एक छोटा गढा जिसमें एक पाव या उससे कम उपले आ सकें, खोदकर अग्नि देनेको 'कपोतपुट'[2] कहते हैं। कुक्कुटपुट[3]—इसकी आँच ऐसे छोटे गढेमें दी जाती है जिसमें दो-तीन उपले आ सकें। लखपुट। कुभपुट—एक घडेमें कई छिद्र करके उसके भीतर कोयले भर दें और बीचमें औषध रखकर कुछ सुलगते हुये कोयले भी डालें और मुँह बद करके रख देवें। शीतल होने पर औषध निकालें। यही 'कुभपुट' है। गजपुट—प्राय भस्मोकी कल्पनामें यह शब्द आता है। भूमिमें ऐसा गड्ढा खोदें जो लम्बाई, चौडाई और गहराईमें डेढ़ हाथ हो। उसमें जगली उपले भरकर मध्यमें औषधका सपुट रखें और ऊपरके भागमें अग्नि लगा दें। इसे ही गजपुट[4] कहते हैं। गोवरपुट—एक छोटे गड्ढेमें जिसमें एक सेर गोवरका चूरा या धानकी भूसी आ सके, आँच देनेको 'गोवरपुट'[5] कहते हैं। मृत्भाण्डपुट—एक घडेमें मिट्टी भरकर उसके बीचमें औषध रखकर मुँह बद करके चूल्हे पर रखें। उसके नीचे निश्चित काल तक अग्नि जलायें। इसको 'मृद्भाण्डपुट' कहते हैं। महावज्रपुट—कुम्हारोंके आँवाकी तरह दस-बारह मन उपलोकी अग्नि देनेको कहते है। महापुट[6]—इसके लिये एक गज लम्बा, एक गज चौडा और एक गज गहरा गड्ढा खोदकर आँच देते हैं। लावकपुट[7]—औषधको किसी पात्रमें डालकर ढाँप दें और ऊपर बारबार आँच जलायें। (कुल्लियात अदविया)।

---

१ आयुर्वेद या रसतत्रमें भाण्डपुट का लक्षण—'स्थूल भाण्डे तुपापूर्णे मध्ये मूपासमन्विते। वह्निनाविहिते पाके तद्भाण्डपुटमुच्यते॥'

२ आयुर्वेदीय रसतत्रमें कपोतपुटका लक्षण इस प्रकार लिखा है —
यत्पुट दीयते भूमावष्टसख्यैर्वनोपलै।
बद्धसूतक भस्मार्थं कपोत पुटमुच्यते॥

३ षोडशाङ्गुलविस्तीर्णं पुट कुक्कुटक मतम्॥

४. गजहस्त प्रमाणेन विस्तृत चैव निम्नकम्। गर्तं विधाय तस्यार्धं पूरयेद्वनजोपलै॥ विन्यसेत् सपुट तत्र पुटनद्रव्यपूरितम्। प्रपूर्य शेष गर्तं तु गिरिण्डैर्वह्निना दहेत। एतद्गजपुट प्रोक्त महागुणी विधायकम्॥

५ आयुर्वेदीय रसतत्रमें 'गोवरपुट'के विषयमें लिखा है—
गोष्ठान्तर्गोक्षुरक्षुण्ण शुष्क चूर्णितगोमयम्। गोवर तत् समाख्यात वरिष्ठ रससाधने॥ गोवरैर्वा तुषैर्वाऽपि पुट यत्र प्रदीयते। तद्गोवरपुट प्रोक्त सिद्धये रसभस्मना।

६ आयुर्वेदीय रसतत्रमें 'महापुट'का लक्षण इस प्रकार लिखा हैं—निम्ने विस्तरतो गर्ते द्विहस्ते वर्त्तुले यथा। वनोपलसहस्रेण पूरिते पुटनौषधम्। क्रौञ्च्यां रुद्ध प्रयत्नेन मध्येगर्तं निधापयेत्। वनोपल सहस्रार्धं क्रौञ्चिकोपरि विन्यसेत्॥ वह्निप्रज्वालयेत्तत्र महापुटमिद स्मृतम्।

७ आयुर्वेदीय रसतत्रमें 'लावकपुट'का लक्षण यह लिखा है—ऊर्ध्व षोडशिकामात्रैस्तुषैर्वा गोवरै पुटम्। दीयते लावकाख्य तत सुमृदुद्रव्यसाधने॥

गिलहिकमत (तीनुल हिकमत)और कपडौटी-कपड मिट्टी—यद्यपि गिलहिकमत और कपडौटीका सबध विशेप रूपसे भस्मनिर्माणसे नही है, परतु मारण क्रिया (कुश्तासाजी)के प्रकरणमें इसका उल्लेख आ गया है और इससे काफी सवध भी है। इसलिये इसी स्थानमें उसका उल्लेख कर देना अधिक सगत प्रतीत होता है।

गिल हिकमत—गीली मिट्टीमें रूई मिलाकर हावनदस्तासे खूब कूटे। जव रूई और मिट्टी भली-भाँति मिल जाँय तव उसे प्याला (आवखोरा) और शीशी पर हर तरफसे लगाकर सुखा दें। यह मिट्टी गरमी और आँचसे फटने नही पाती है। कभी-कभी कपडौटीको भी 'गिल हिकमत' कहते हैं, जिसके तैयार करनेकी विधि गत पृष्ठोमें 'बूता'के प्रकरणमें वर्णित हुई है।

कपडौटी—सराव, मिट्टीके पात्र या आतशी शीशी पर कपडा और मिट्टी लपेट कर सुखा देते हैं। इसका प्रयोजन यह है कि कपडौटी किया हुआ पात्र गरमी और आँचसे टूटने नही पाता। किसी-किसी दशामें यह लाभ होता है कि इसके कारण उसके भीतर वायु प्रवेश नही कर सकती, और न भीतरके वाष्प वाहर आ सकते हैं। कभी-कभी साधारण चिकनी मिट्टीके स्थानमें मुलतानी मिट्टी लगाते हैं, जो अधिक टिकाऊ होती है।

●

प्रकरण १८

तख्मीर व ता'फ़ीन (ख़मीर बनाना और सड़ाना)

(सधान और प्रकोथकी क्रिया)

तख्मीर ताअ्फीन—(सधान एव प्रकोथ) नैसर्गिक क्रियाएँ हैं, जिनके परिणामस्वरूप विविध प्रकारके द्रव्य उत्पन्न हो जाते हैं, उदाहरणत सुरासार (जौहर शराव, अल्कुहोल), शुक्त, विभिन्न प्रकारके अम्ल और विविध गधमय पदार्थ आदि। इसी कारण यहाँ पर मद्य, अरिष्ट, शुक्त और काँजी आदिका उल्लेख किया जाता है।

शराव या खमूर (मद्य)—मदिरा विभिन्न पदार्थोंसे बनायी जाती है। इसी कारण इसके नाना भेदोपभेद है। इसी प्रकार कुछ भेदोंमें सुरासार अधिक प्रमाणमें होता है, और कुछमें अल्प। इसी तर-तम भेदके विचारसे मदिरा मद और तीक्ष्ण कहलाती है। सुरा जिन द्रव्योंसे बनायी जाती है, उनमें माधुर्य (शर्कराजनक उपादान-अज्ज़ा सुक्करिय्या) अथवा पिष्टमय पदार्थ व निशास्ताका होना अनिवार्य है, उदाहरणत अगूर, किशमिश, मुनक्का, महुआ, छुहारा, खजूर, जौ, गेहूँ, चावल आदि। देशी शराव खींचनेकी एक साधारण एव प्रसिद्ध विधि यह है, कि गुड, ववूलके वृक्षकी ताजी छाल और बेरके पेडकी ताजी छाल टुकडे-टुकडे करके सबको मटका, शराव आदिके पीपामे डालकर यथाप्रमाण जल डालें। फिर गुडका दसवाँ भाग महुएका सूखा फूल एक कपडेकी थैलीमें वहुत ढीला वाँधकर उसमें छोड देवें। यदि किशमिश और मुनक्का जैसे मेवे मिलाने हो, तो उनको भी मद्यपात्रमें डाल दें। जब सधानपात्रमें लहन[1] उठ आये, तब महुएके फूलकी थैली पृथक् करके यथाविधि अरक खींचें। यदि शरावमें वैद्यकीय प्रयोजनसे अधिक मद वा नशा अभीष्ट हो तो परिस्रावण-कालमें खुरासानी अजवायन, भग, धतूरके बीज और पोस्तेकी डोडी उचित प्रमाणमें लेकर एक रात-दिन तर करके लहनमें मिलाये। इसी प्रकार यदि वल्य औषधद्रव्य आदि मिलाना हो तो उनको एक रात-दिन फाण्टके विधानके अनुसार भिगोकर परिस्रावणके समय लहनमें मिलायें। क्योंकि ऐसे उपादानोके लहनमें डालनेसे बहुधा लहन विकृत हो जाता है तथा उन उपादानोंका भी गुण और कर्म दूषित हो जाता है। यदि मद्यमें मासरस प्रविष्ट करना हो, तो मासरस प्रस्तुत कर परिस्रावणके समय मिलाये। यदि दूध मिलाना हो तो उसे भी ताजा, कच्चा खीचनेके समय लहनमें मिलायें। यदि एक वारकी खीची हुई शरावमें दूसरी वार औषधके उपादान मिलाकर शराव खीची जाय, तो यह शराव दो आतशा (दो वार खीची हुई) कहलाती है, जो अपेक्षाकृत तीव्र होती है। ऐसी शरावमें जलाश अल्प और सुराके घटक अधिकाधिक होते हैं। इसी प्रकार यदि वारवार परिस्रावण किया जाय, तो जलाश प्राय नि शेष समाप्त हो जाता है और शुद्ध सुरासर शेष रह जाता है। यह अग्निसे तुरत प्रज्वलित हो उठता है। यदि सुरामें जलके अश अत्यल्प प्रमाणमें हो, तो विना बुझा हुआ चूनेकी डली डालनेसे जलके उक्त अश डलीमें शोषित हो जाते हैं और पानीसे लगभग शून्य हो जाती है।

नवीज़ (अरिष्ट)—नवीज भी एक विशेष प्रकारकी अपरिस्रुत मदिरा है। इसके निर्माणकी विधि यह है—प्रथम औषधद्रव्यको भिगोकर क्वाथ बनाते हैं। जब आधा जल शेष रह जाता है, तब अन्य औषधद्रव्य मिलाकर ऐसे मिट्टीके पात्रमें डालकर धूपमें रखते हैं, जो आधा खाली रहे। इसके उपरात दो-चार वार लकडीसे औषधको हिलाते हैं। इसके अनतर जब औषधमें उफान (जोश) आकर वह शात हो जाता है, तब मोटे कपडेमें विना मसले और हिलाये छानकर चीनी या शीशाके पात्रमें रखते हैं।

दरवहरा[2] (आसवन)—यह भी एक विशेष प्रकारकी अपरिस्रुता मदिरा है। एतल्लिखित द्रव्योको मिट्टीके एक वडे पात्रमें डालकर इतना पानी डालें कि आधा पात्र खाली रहे। इसके उपरात उस पात्रको घोडेकी लीदमें

---

१ लहन = उफान और ख़मीर—वह द्रव्य जिसमें सधान (ख़मीर) और उफान आ रहा हो।

२ खजाइनुल् अदवियामें इसके स्थानमें 'दढ़वहढ़ा' लिखा है।

इस प्रकार गाड देवें कि पात्रका मुंह खोल और वदकर सकें। गाडनेके पश्चात् तीन-चार दिन तक लकडीसे औषध-को हिलाते रहें। इसके बाद देखते रहें। जब वह उबाल मारकर स्वयमेव उसका उफान शात हो जाय, तब बिना मसले और हिलाये कपडेसे छानकर शोशी या चीनीके पात्रमें रखें।

खल्ल (शुक्त-सिरका)—की व्याख्या गत पृष्ठो पर देखें।

इक्षुरसकृत शुक्त—गन्नेका रस लेकर एक चिकने घडेमें या ऐसे घडेमें जिसमें पहले सिरका डाला गया हो डालकर मुँह वद करके रख दें। जब उसमे अम्लता उत्पन्न हो जाय तब उसे छानकर रखें ओर उपयोगमें लेंवे। यही गन्नेके रसका सिरका है। यदि सिरकेको तीक्ष्ण करना हो, तो द्रव्यमें थोडी-सी राई डाल सकते हैं।

गुडकृत शुक्त (सिरके कदी)—गुड दस सेर लेकर पचीस सेर पानीमें डालकर इक्कीस दिन तक धूपमें रखे। शर्कराकृत शुक्त (सिरके शुक्कर)—उपर्युक्त विधिसे शर्कराकृत शुक्त (शकरका सिरका) बना सकते हैं। द्राक्षाकृत शुक्त (सिरके अगूरी)—मुनक्का या किसमिस पाँच सेर ले, खूब अच्छी तरह साफ करके पद्रह या बीस सेर जलमे एक मिट्टीके घडे में जिसमें पहले सिरका बन चुका हो, डाले। इसके बाद उसका मुँह भली-भाँति वद करके सुरक्षित रखें। इक्कोस दिनके अतर उसमें, फिटकिरी, लाहौरी-नमक प्रत्येक ५ तोले डालकर पुन मुँह वद कर देवे। तीस दिनके पश्चात् छान लेवे।

वक्तव्य—यदि अगूर या किसमिस ताजे हो तो उनका स्वरस निकालकर गन्नेका सिरका बनानेकी विधिके अनुसार उससे सिरका बना सकते हैं। उपर्युक्त विधिसे जामुन आदिका सिरका भी बनाते हैं मद्यकृत शुक्त (सिरके शराव)—यदि हलकी शरावको खोलकर ऐसे स्थानमें रख दें, जहाँ वह वायुसे सुरक्षित न हो और वातावरणका उत्ताप ६८ से ८० अश (प्रचलित तापमापक यत्रसे), हो तो वह शुक्तमें परिणत हो जाती है।

काँजी (मुरिय्य)—इसको सिरकएहिंदी और आबकामा भी कहते हैं। यूनानी निघटुलेखकोंके अनुसार भारतीय (हिंदी) ग्रथोमें इसके बनानेकी ये दो रीतियाँ लिखी हैं—(१) विना धूँएकी अग्नि पर जीरा, लहसुन और तेल डालकर उसके ऊपर मिट्टीका प्रयोगमें लाया हुआ पात्र औंधा करके रख देवें, जिसमें तेल प्रभृतिके अग्नि पर डालनेसे जो धूआँ उठे वह पात्रमें शोषित हो जाय। इसके बाद राई, लवण, अजवायन और जीराको जलमें घोल कर उक्त पात्रमें डालकर और मुँह वदकरके धूपमें रखें, जिसमें खट्टा हो जाय (गर्मीमें शीघ्र और सर्दीमें देरसे खट्टा होगा)। यह काँजी जितनी ही पुरानो होगी, उतनी हो उत्तम होगी। इस काँजीमें कभी उडदके बडे डालकर भी खाते हैं। (२) जो काँजी औषधोमे प्रयुक्त है, वह चावल, गेहूँ, जौ, ज्वार इत्यादिसे निर्मितकी जाती है। इसकी विधि यह है, कि एक या जितने प्रकारका अन्न चाहें, लेकर चीनी या स्नेहाक्त पात्रमें डालकर जल भरकर किंचित लवण मिलाकर पात्रका मुँह भली-भाँति वद कर देवें। इसके पश्चात् चालीस दिन तक धूप या चूल्हेके पीछे रखें, जिसमें खूब खट्टा हो जाय। इसके बाद छानकर काममें लेवें।

(३) काँजी बनानेकी विधि एक यूनानी ग्रथमें निम्न प्रकार लिखी है—गेहूँकी मोटी गरम रोटी आध सेर वजनको लेकर एक हाँडोमें वद करके रखें। जब वह सड (मुतअफ्फुन हो) जाय, तब खूब कुचलकर पाँच सेर सिरका और आध पाव लवण मिलाकर चार सप्ताह धूपमें रखें। इसके बाद छानकर उसमें पुदीना ६ तोला, साठ ३ तोला, काली मिर्च ५ तोला, पालकके बीज २ तोला मिलाकर एक सप्ताह धूपमें रखें। इसके बाद कपडेसे छानकर शीशोमें रखें।

प्रकरण १९

रोगन-दुहून (तैल[1])

वक्तव्य—तेलको सस्कृतमें स्नेह या तैल, फारसी और अरबी भाषामे क्रमश 'रोग़न' और 'दुहून' और अँगरेजी तथा लेटिन भाषामें क्रमश ऑइल (Oil) एव ओलेउम् (Oleum) कहते हैं। हिंदी चुवा या चुआ (चोआ)-से भी यही अभिप्रेत होता है।

यह प्राचीन कल्प है। कहते हैं कि इसके आदि आविष्कर्त्ता बुकरात (Hippocrates) हैं। परतु विद्वद्वर अताकीके मतसे यह उनसे भी पूर्व आविष्कृत हो चुका था। अस्तु, 'जवामेउत्तरकीव' में यह उल्लेख है कि फीसा-गोरस (Pythagoras) पिस्तोका तेल निकालकर उसमें कुलग (क्रौञ्च या करॉकुल पक्षी)का पित्त मिलाकर नस्य (सऊत) लिया करता था और कभी मर्दन भी करता था। आयास (रियाजत)के समय भी मर्दन करता था। तात्पर्य यह कि, तेल बहुत ही गुणकारी वस्तु है, शक्तिकी रक्षा करता, त्वचाके चिह्नोंको दूर करता तथा मासका रोहण करता है, इत्यादि।

तेल स्थिर और अस्थिर (उडनशील) भेदमे दो प्रकारका होता है। कई तेल जितने ही पुराने होते जाते हैं, उतना ही उनका गुण उत्तरोत्तर बढता जाता है। किसी-किसी तेलमें उक्त गुण पाया जाता है, जैसे—हब्बुल्बानका तेल और बहार खुर्मा (अरबी कुफर्रा, फारसी गुञ्चए खुर्मा) कोपोत्थ तैल देरमें बिगडते हैं। जिन योगोमें ये पडते हैं, वे भी दुर्गंधित एव खराब नही होने पाते। इनमें गुञ्चएखुर्मा (छोहारेकी कली वा फूल)का तेल जो अपने प्रभावसे हर प्रकारके तेलोंको विकृत नही होने देता।

अधिक स्नेह-द्रव्योंसे तेल निकालना—यदि बादाम, चिलगोजा, कद्दूके बीजकी गिरी और तुख्म काहू इत्यादि जैसे बीजोसे तेल निकालना हो, जिनमें स्नेहाश प्रचुर प्रमाणमें होता है, तो उनसे तेल निकालनेकी कतिपय विधियाँ हैं, जिनमेंसे कुछ एक सरल एव प्रचलित विधियोंका यहाँ उल्लेख किया जाता है—(१) कोल्हूमें पेरकर तेल निकाला जाता है। (२) गिरियो या बीजोको कुचलकर और जल मिलाकर पकायें। खूब पक जानेके उपरात अग्निसे उतारकर रखें। तेल जलके ऊपर और सिट्ठी नीचे होगी। तेलको धीरेसे काछकर पृथक् कर लेवें। इस विधिसे रेंडीका तेल भी अल्प प्रमाणमें निकाला जाता है। (३) गिरियोको कुचलकर थोडी मिश्री और थोडा पानी मिलाकर गुनगुना निचोडते हैं। इस विधिसे तेल निकल आता है। (४) गिरियोको दरदरा कूटकर उसमें किंचित् मिश्री और जल मिलाते हैं। फिर ताँबेके कलई किये हुए पात्र या चीनीके पात्रमें रखकर कोयलोकी अग्नि पर रखते हैं। जब यह उष्ण हो जाता है, तब मुट्ठी या चमचेसे दबाते हैं (पात्रको किंचित् तिरछा रखें)। इसी प्रकार कई बार करनेसे तेल निकल जाता है। (५) कद्दूकी गिरी, और काहूके बीज जैसे द्रव्योको बारीक पीसकर और लुगदी बना-कर मूँजके भीतर रखें। पुन उसे अग्नि पर गरम करके इतना बलपूर्वक दबावें कि सपूर्ण तेल निकल आये। उसके नीचे चीनी या शीशाका पात्र रखें जिसमें तेल उसमें गिरता रहे।

स्वल्प स्नेहयुक्त द्रव्योंसे तेल निकालना—ऐसे द्रव्योंसे तेल निकालना हो जिनमें तेल कम हो, तो उसकी विधि यह है, कि एक कलई की हुई पतेलीमें उसका आधा भाग जलसे भर दें। फिर उसपर एक महीन कपडा

---

१ तेलको सस्कृतमें 'तैल' वा 'स्नेह', फारसीमें 'रोगन', अरबीमें 'दुह्न' और अँगरेजी तथा लेटिनमें क्रमश 'ऑइल (Oil)' एव 'ओलेउम् (Oleum)' कहते हैं। हिंदी 'चुवा' या 'चुआ' वा 'चोआ'से भी यही अभिप्रेत होता है।

बाँधकर उसके ऊपर अधकुट किया हुआ स्नेहद्रव्य रख दें। पतेलीके किनारे पर आटा लगाकर उस पर तवा या कोई अन्य लोहेका पात्र रख दें। परतु तवेको उक्त द्रव्यसे किंचित् ऊपर रखना चाहिए। पतेलीके नीचे अग्नि जलायें और तवेके ऊपर कुछ कोयले सुलगाकर रखे। थोडी देरमें जलके भीतर तल निकल आयेगा। इसके बाद पतेलीको धीरेसे चूल्हेसे उतारकर खोलें और शीतल होनेपर पानीसे तेल काछ ले। इस विधिसे वीरबहूटी, लौंग, दारचीनी, इत्यादिका तेल निकाला जा सकता है। इसकी दूसरी विधि मुगरबला (चालनीयत्र) है। यह मुगरबला अर्कपरिस्रावणोपकरणके प्रकरणमें वर्णित मुग़रबला यत्रके नाम और रूपमें समान हैं। इसमें उससे अतर केवल यह है, कि अर्क़ निकालनेके मुगरबलेमें दो पात्र (लगन) होते है, और इस मुगरबलेमें उसके स्थानमें दो प्याला।

अत्यल्प स्नेहयुक्त द्रव्योसे तेल निकालना—यदि ऐसे द्रव्योसे तेल निकालना हो, जिनके अदर स्नेहांश बहुत ही अल्प हो, तो उसकी विधि यह है—**पुष्पसार वा पुष्पतैल**—(१) यदि वह द्रव्य पुष्पजातीय और वह भी ताजा हो, तो साफ फूल चार भाग लेकर, पाँच भाग तिलोके तेलमें डालकर धूपमें रखे। जब दस-बारह दिन बीत जायें और पुष्प भली-भाँति मुरझा जाय, तब पुष्पोको मसलकर तेलको छान लें और शीशीमें रखें। यदि तेलको उग्रवीर्य बनाना हो, तो इस प्रकार बने हुए तेलमें दूसरी बार तीन भाग और तीसरी बार दो-दो भाग नवीन पुष्प मिलाकर उसी प्रकार धूपमें रखें। इसके उपरात तेलको छानकर काममें लेवें। इस विधिसे **रोगन गुल** (गुलरोग़न) और **रोगन बाबूना** आदि बनाया जाता है। **रोगन मोरचा** (च्यूँटेका तेल) भी इसी प्रकार बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य ताजा फूलोका तेल भी उक्त विधिसे बनाया जाता है। **औषधसिद्धतैल कल्पना**—दूसरी विधि यह भी है कि ताजा फूलोंका रस निचोडकर तीन भागमें दो भाग तिल-तेल मिलाकर इतना पकायें कि रस जलकर तेल मात्र अवशेष रह जाय। परतु जितना ही मृदु अग्नि पर पकायेंगे उतना ही उत्तम होगा। इसके उपरात छानकर रखें। यदि पुष्प या औषध शुष्क हो, तो प्रथम उसको जलमें भिगो रखें। इसके बाद क्वाथ करें। जितना यह काढा हो उससे तौलमें आधा तिल-तैल (या कोई अन्य तेल) मिलाकर इतना पकायें कि जलाश जलकर केवल तेल शेष रह जाय। इसे छानकर शीशीमें रखें। **तेल पकानेकी द्वितीय विधि**—यह भी है कि तिलतेलमें शुष्क औषधद्रव्य डाल कर इतना पकायें कि औषधका रग कालापन लिये लाल होने लगे। उस समय अग्निसे उतारकर शीतल होने पर कपडेसे छानकर रखें। यदि पुष्पोके अतिरिक्त हरे पत्तो और ताजी जडों एव काष्ठोका तेल बनाना हो, तो उनका रस (शीरा) निकालकर तिल-तेल आदिमें पकाकर तेल बनाना चाहिये। पर यदि पत्ते और जड आदि शुष्क हों, तो शुष्क पुष्पोके तेलके समान उनका काढा करके तेल बनाया जा सकता है।

वक्तव्य—तेलकल्पनाकी उपर्युक्त विधियोंमें जिनमें द्रव्योंको तिल-तेलमें पकाते या धूपमें रखते हैं, तिल-तेलमें औषधीय वीर्य लेना अभिप्रेत होता है।

बासकर तेल निकालना—कभी-कभी तिलोंको सुगधित पुष्पोमें बसाते हैं, और फिर कोल्हूके द्वारा उनका तेल निकालते हैं, जैसे—रोगन चमेली।

योगौषधो द्वारा सिद्ध-तैल-कल्पना—कभी एकके स्थानमें कई औषधद्रव्योसे भी उपर्युक्त रीतिसे तैल कल्पना की जाती है। कभी-कभी योगौषध-सिद्ध तैल कल्पनामे औषधद्रव्योको किसी तेलमें इतना उबाला जाता है, कि औषधद्रव्य कालापन लिये लोहित वर्णका हो जाता है। इसके उपरात छानकर रखते हैं। कोई-कोई योगौषध सिद्ध-तैल इस प्रकार बनाये जाते हैं—प्रथम औषधद्रव्योंका क्वाथ करते हैं। इसके बाद काढेमें तेल मिलाकर तैल (रोगन) प्रस्तुत करते है। यदि तेलमें केसर, कपूर आदि जैसे सुगधितद्रव्य प्रविष्ट करने हों, तो तेलको अग्निसे उतार, छानकर साफ करनेके उपरात सुगधद्रव्यको भलीभाँति हल करना चाहिये। इस तेलको परम मृदु अग्नि पर पकाना चाहिये। तीव्र अग्नि पर पकानेसे इसका वीर्य नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार कभी-कभी पातालयत्रके द्वारा भी तेल निकाला जाता है। इसलिये यहाँ पर उसका वर्णन कर देना उचित प्रतीत होता है।

पताल (पाताल) जन्तर[1]—इस विधिसे तेल (रोगन), तिला, रोगन तिला और चुआ निकाला जाता है। इसके कतिपय निम्न भेद हैं—(१) प्रथम आतशी शीशी पर कपडमिट्टी करें। फिर जिस वस्तुका तेल और चुआ निकालना हो, उसको अधकुटा करके (यदि वह कूटने योग्य हो) शीशीमें डाल दे और उसके मुँहमें लोहेका तार या घोडेकी पूँछके वाल अटका देवें जिसमें शीशीके औंधाने पर उसके भीतर रखा औषधद्रव्य वाहर न गिरे। फिर एक घडा लेकर उसका पेंदा अलग करके घडेको उलटाकर चूल्हे पर रखे और शीशीकी गरदन घडेके मुँहमे निकालकर औंधा दे। घडेमें उपले भरकर अग्नि लगा दे। शीशीके मुँहके नीचे कोई पात्र रख दें जिसमें तेल इकट्ठा हो सके। जब गरम पहुँचेगी तब शीशीके द्रव्यसे तेल वहकर नीचेके पात्रमें टपकेगा। यदि समय पर आतशी-शीशी न मिल सके, तो मिट्टीके सराव (कूजा)में नीचेकी ओर छिद्र करके शीशीकी जगह काममें ले सकते हैं।

पताल-जन्तर
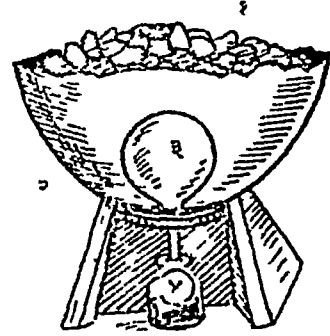
चित्र ६
विवरण—१ उपलें; २ घडेका पेंदा, ३ औषधपात्र, ४ तैलकी शीशी (पात्र)।

(२) मिट्टीका एक प्रयोगमें लाया हुआ पात्र जैसे मटका लेकर उसके पेंदेमें तीन-चार वारीक छिद्र कर दें। पात्रको औषधसे भरकर और मुँह पर ढक्कन रखकर भलीभाँति कपडमिट्टी कर देवें। इसके वाद जमीनमें ऐसा गड्ढा खोदें जिसके ऊपरी घेरे पर यह पात्र अच्छी तरह रखा जा सके, परंतु उसके भीतर न चला जाय। इसके वाद गड्ढेके भीतर चीनीका प्याला रखकर उसके ऊपर उक्त पात्र इस प्रकार रखे कि पात्रके पेंदेका छिद्र ठीक प्यालेके ऊपर रहे। फिर गड्ढेकी सधियोको भली प्रकार वद करके गड्ढेके चतुर्दिक् और ऊपरकी ओर उपलें विछाकर अग्नि लगायें। अग्निके उत्तापसे औषधद्रव्योका तेल निकलकर मटकाके छिद्रोंसे प्यालेमें टपकेगा। अग्नि वुझ जाने पर धीरेसे मिट्टी दूर करके पात्रको निकालें और नीचेके प्यालेसे इकट्ठा हुआ तेल लेकर काममें लेवें। यदि उपर्युक्त विधिमें गड्ढेके दोनो ओर ऐसा छिद्र वना देवें कि तेल टपकता हुआ अवलोकन किया जा सके तो उत्तम हो। जब तेलका टपकना वद हो जाय, तब अग्नि हटा देवें।
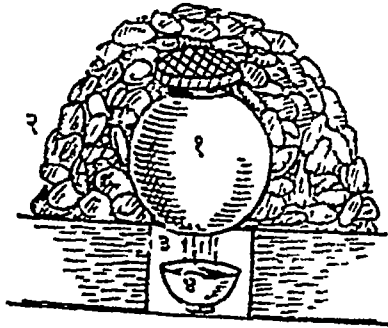
चित्र ७
विवरण—१ औषधपात्र २ उपले, ३ गड्ढा, ४ प्याला (तैलपात्र)

(३) एक वडा घडा तोडकर उसका पेंदा अलग कर देवे और केवल ऊपरका भाग औंधा करके चूल्हे पर रखें और गरदनके स्थानमें औषधद्रव्यका पात्र जिसके पेंदेमें छिद्र हो, रखकर सधियोको गिल-हिकमत (कपडमिट्टी)से दृढ कर देवें। चूल्हेमें घडेकी गरदनके सामने छिद्रोंके नीचे प्याला रखें। पात्रके ऊपर पेंदा पृथक् किये हुये घडेमें पात्रके चतुर्दिक् और ऊपर उपले रखकर अग्नि लगा देवें। अग्निकी गरमीके कारण औषधसे तेल निकलकर नीचे प्यालेमें इकट्ठा होगा। तेलके ठीक प्यालेमें गिरनेके लिये छिद्रोंके भीतर तार रख देते हैं। इनके द्वारा तेल सीधे प्यालामें गिरता है।

गर्भजतर (गर्भयंत्र)

इसके द्वारा वहुधा तेल निकाला जाता है, यद्यपि इससे अरक भी निकाला जा सकता है। इसकी विधि निम्न है —

---

१. यह संस्कृत 'पातालयंत्र'का ही अपभ्रंश है, जिसका ग्रहण यूनानी ग्रंथोंमें किया गया है। अरवीमें इसको 'मगारवा' कहते हैं।

एक मिट्टीकी हांडी या तांबेका देगचा लेकर उसके भीतर एक ईंटा या तिपाई रखकर उसके ऊपर चीनी मिट्टीका प्याला रखें और ईंटाके चारो ओर तेल निकाली जानेवाली औषधियोको जौकुट करके डाल देवें (अथवा चीनी मिट्टीके प्यालेको तारोंसे बांधकर देगचाके बीचमें लटका दिया जाय और तारका अंतिम छोर गलेमें बांध दिया जाय) और देगचाके मुँह पर एक पात्र, जिसका पेंदा बाहरकी ओर उभरा (उन्नतोदर) हो, रखकर संधियोको भली-भांति बंद कर देवें। पुन देगचाको चूल्हे पर रखकर अग्नि जलावें तथा ऊपरके पात्रमें शीतल जल भर देवे। औषधियोसे वाष्प उडकर और ऊपरके पात्रसे लगकर तेल या अरकके रूपमें चीनीके प्यालामें गिरेंगे।

गरभ जतर (गर्भयंत्र) का चित्र
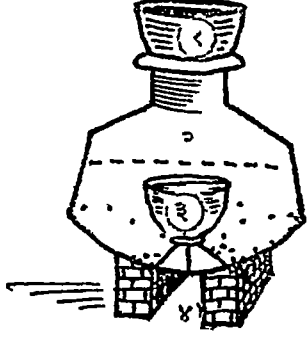
चित्र ८

विवरण—१ कटोरा, २ देगचा, ३ प्याला (तैल पात्र), ४ चूल्हा।

अन्य विधि—एक देगचामें आधे तक पानी भरकर चूल्हे पर रखते है, और देगचाके मुख पर एक दृढ वस्त्र बांध कर उसके ऊपर अधकुटी औषधियां बिछा देते हैं। उसके ऊपर एक कटोरा औंधा करके रख देते हैं जिसमें कटोरेके दबावसे वस्त्र पर दबाव रहे और वाष्पके जोरसे उठने न पाये। थोडी देर बाद कटोरा हटाकर वस्त्रको हटाते और पोटली बनाकर गरम-गरम किसी लकडीके सिकजामें निचोडते हैं। इस प्रकार कई बार करनेसे औषधियोका सपूर्ण तेल निकल आता है। इसमें जो थोडा-बहुत जलांश होता है, उसको मदाग्नि पर रखकर सुखा लेते हैं या तेल को धीरे-धीरे ऊपरसे पृथक् कर लेते हैं, नीचे पानी रह जाता है।

गर्भजतर अन्यान्य विधियोंसे भी बनाया जाता है जो अधिकतर अरक परिस्रावण करनेके काम आता है।

जलजंतर

इस जतर (यत्र)का उपयोग बहुधा रसायनी औषधका तेल निकालने या किसी औषधिको अग्निस्थायी करनेके लिये करते हैं। इसकी विधि यह है कि एक लोहेकी कडाहीमें औषध डालकर उसपर एक कटोरा औंधा करके रख देते है। कटोरा और कडाहीके संधिस्थलको जलमुद्रह्[1] नामक एक विशिष्ट मसालासे भलीभांति दृढ कर देते हैं। तदुपरांत कडाहीको पानीसे भरकर नीचे अग्नि जलाते हैं। एक विशेष कालपर्यंत उक्त क्रिया करनेसे औषधि अग्निस्थायी या तेल बन जाती है। पुन पानीको कडाहीसे निकालकर कटोरेको उखाडते हैं, और तेल या अग्निस्थायी हुई औषधिको लेकर प्रयोगमें लेते हैं।

जलजतर जलमुद्रा पर अधिकतया निर्भर करती है। जलमुद्रा ऐसे मसालेसे बनाया जाय जिससे पानी भीतर औषधि तक प्रवेश न कर सके। अस्तु, जलमुद्राकी विधि नीचे दी जा रही है।

जलमुद्रह—एक विशेष प्रकारका मसाला है, जो जलजतर द्वारा किसी औषधिका तेल निकालने अथवा उसे अग्निस्थायी करनेके लिये प्याला और कढाहीके संधिस्थानको जोडनेके लिये बनाया जाता है, जिससे औषधि

१ 'जलमुद्रह्' संभवत संस्कृत 'जलमृत्तिका' का अपभ्रंश प्रतीत होता है। इसके लिए संस्कृतमें 'तोयमृत्स्ना' तथा 'जलमृत्' आदि पर्याय भी प्रयुक्त होते हैं। यह यन्त्रकी संधिबंधके लिए बनाया हुआ एक मसाला होता है, जिससे संधि पर लेप देकर सुखा देनेसे यन्त्रके भीतरसे बाहर या बाहरसे भीतर जलका प्रवेश नहीं हो सकता। गीली मिट्टीकी भाँति लेपके लिए प्रयुक्त होनेसे इसे 'मृत्तिका' संज्ञा दी गयी है।

लेहवत्कृतबब्बूलक्वाथेनपरिमर्दितम् ।
जीर्णकिट्टरज सूक्ष्मगुडचूर्णसमन्वितम् ॥ २१ ॥
इय हि जलमृत् प्रोक्ता दुर्भेद्या सलिले खलु।

तक पानी प्रवेश नहीं कर सकता। इसलिये इसे जलमुद्रह् अर्थात् पानीको रोकने वाला कहते हैं। इसे तैयार करनेकी अनेक विधियाँ हैं जिनमेंसे कुछ-एकका विवरण नीचे किया जाता है, यथा—

(१) विरोजाको गरम पानीमें डालकर पकायें, जिसमें वह कठोर हो जाय। तदुपरात उसे खड-खड करें। पुन सफेदा कलई, हरा तूतिया, सीसेका बुरादा और पारा समतौल लेकर खरलमें डालकर थोडा-थोडा विरोजा डालते और खरल करते जायें। खरल खूब जोरसे करें जिसमें यह मोमकी भाँति नरम हो जाय। पुन उसको अहरन पर रखकर हथौडेसे इतना कूटे कि वह नरम और लेसदार हो जाय। अब उसकी वत्ती बनाकर कटोरेके चतुर्दिक् रख देवे। यह अग्निकी उष्णतासे प्याला और कडाहीके सधिस्यलमें चिमट जायगा और पानी डालनेसे ऐसा कठोर हो जायगा कि पानी भीतर नहीं घुस सकेगा। काम हो जाने पर, उसे पृथक करके सुरक्षित रख लेवें और समय पर पुन यथाविधि काममें लेवें। कोई-कोई इसका कडा बनाकर हाथमें पहिन लेते है और आवश्यकता होने पर, काममें लेते हैं। इसीको कडाजलमुद्रा कहते है।

जलमुद्राकी दूसरी विधि यह है—ताजा पनीर लेकर परत-परत करे और एक समतल पत्थर पर बारीक किया हुआ चूना बिछाकर उसके ऊपर पनीरके परतोंको पृथक् रखकर वह चूना इतना छिडकें कि समस्त परत (वरक) छिप जायें। पुन उनके ऊपर एक भारी समतल पत्थर रखकर दस दिन तक धूपमें रखें जिसमें पानीकी सपूर्ण चिकनाई दूर हो जाय। तदुपरात उसे पानीसे धोयें और दोबारा ऊपर-नीचे चूना देकर यथापूर्व दो पत्थरोंके बीच एक सप्ताह पर्यंत रखे। यदि अभी भी चिकनाई अवशेष हो तो पानी और नमकके साथ देगचामें पकायें जिसमें शेष रही हुई चिकनाई पानीके ऊपर आ जाय। इसके उपरात सुखाकर महीन पीस लेवे और धूलि-कणसे सुरक्षित साफ शीशीमें रखें। आवश्यकता होनेपर मुर्गीके अडेकी सफेदी एक शीशीमें डालकर इतना हिलायें कि सपूर्ण सफेदी झागदार हो जाय। तदुपरात थोडी देर रग छोडे, जिसमें वह स्वच्छ जलवत् हो जाय। इसके पश्चात् यथावश्यक बारीक किया हुआ पनीर खरलमें डालकर थोडा-थोडा अडेकी सफेदीका पानी डालकर खरल करें। जब भलीभाँति हल हो जाय और खरलसे बट्टा चिपकने लगे तब चूनेका स्वच्छ साफ पानी बूँद-बूँद डालकर मिलायें, यहाँ तक कि उसकी भौतिकस्थिति सबानके योग्य हो जाय। इससे अत्युत्तम जलमुद्रा प्रस्तुत हो जाता है और इसके द्वारा टूटे हुए शीशे और पत्थर जोडे जा सकते हैं।

(३) शीशेका बुरादा आवश्यकतानुसार लेकर उसमें वटक्षीर यथावश्यक डालकर इतना कूटें कि मोमवत् हो जाय। फिर इसकी वत्ती बनाकर पूर्वोक्त प्रकारसे उपयोग करें।

(४) उडदके आटे और अडेकी सफेदीसे भी अत्युत्तम जलमुद्रा बनाया जाता है।

जलमुद्राकी उपर्युक्त विधियोंके अतिरिक्त सदरूस तैलसे भी जलमुद्राका काम लेते हैं। इसको अधिक कठोर एव दृढ करनेके लिये चूना मिलाकर वत्तीकी भाँति बना लेते और कटोरेके चतुर्दिक् लगाते है।

मुख्य-मुख्य तेलो (रोग़न) की कल्पनाएँ

रोगन भिलावाँ (भल्लातक तैल)—भिलावेकी टोपियाँ अलग करके एक हाँडीमें भरें और हाँडीके पेंदेमें छिद्र करके उसके मुँह पर ढक्कन रखकर मिट्टीसे मुँह बद कर दे। फिर भूमिमें एक बडा गड्ढा खोदकर उसमे एक छोटा गड्ढा खोदे। उस छोटे गड्ढामें चीनीका प्याला रख दें। छोटे गड्ढे के ऊपर हाँडी रखकर गीली मिट्टीसे उसकी सधियाँ बद कर दे। फिर उसके ऊपर जगली उपले भरकर अग्नि जलायें, जिसमें उष्णता पाकर भिलावेका तेल हाँडीके छिद्रसे चीनीके पात्रमें टपक आये। (यदि हाँडीके छिद्रमें एक लोहेका इतना बडा तार जो प्यालेमें पहुँचे, लगायें तो उत्तम हो, क्योंकि उसके द्वारा बहुत उत्तम रीतिसे तेल निकलेगा)। ठडा होनेके बाद हाँडीको धीरेसे हटाकर प्यालेसे तेल निकाल लें। उपर्युक्त विधिके अतिरिक्त आतशी शीशीके द्वारा भी भिलावेका तेल निकाला जा सकता है। प्रपीडन-यत्र (Press Machine)में दबाकर इसका तेल निकालना बहुत ही सरल है। उपयोग

भल्लातके-तैलको किसी निवारण (मुस्लेह) द्रव्यके साथ उपयोग करना चाहिए, वरन् इसके उपयोगसे शोफ और दाने उत्पन्न हो जाते हैं।

रोगन बैज़ा (अडेका तेल)—अंडेसे तेल निकालनेकी कई विधियाँ हैं, जिनमेंसे कुछ प्रसिद्ध विधियोंका उल्लेख यहाँ किया जाता है—(१) अडोको उबालकर और उसकी ज़र्दी निकालकर ताँबेके पात्रमें रखें और अग्निपर खूब भूनें। इसके बाद कपडेमें रखकर तेल निचोड लें। (२) अडाको उबालकर ज़र्दी पृथक् करें। इसके बाद समस्त ज़र्दियोंको हाथसे खूब अच्छी तरह मसलकर ज़र्दी पीछे एक माशा खनिज नौसादरका चूर्ण मिला दें। फिर उसको एक आतशी शीशीमें भरकर उसपर कपडमिट्टी करें। उसके मुँहमें बारीक तिनके (सीकें) लगायें और एक ठीकरे (या मिट्टीका घडा लेकर उसके पेंदे)में छिद्र करके उसमेंसे शीशीकी गरदन निकालकर चूल्हे पर रखें। शीशीके मुँहके नीचे चीनीका प्याला रखें। परतु प्याला जलसे भरे पात्रमे रहे जिसमें टूट न जाय। शीशीके ऊपर ठीकरे (हाँडी)में जगली उपलोकी अग्नि जलायें, जिसमें उत्ताप पाकर अडोकी जर्दीका तेल निकल-निकलकर प्यालेमें इकट्ठा हो। अतमें प्यालेसे एकत्रीभूत तेल लेकर शीशीमें रखे। (३) अडा उबालकर और जर्दी निकालकर एक पात्रमें रखें। फिर उस पात्रको मृदु अग्निपर या तीव्र धूपमें रखें। जिस तरफ अडा हो, उस तरफका सिरा कुछ ऊँचा रखें और ज़र्दीको चमचासे दबाते रहें। तेल बहकर पात्रमें इकट्ठा होता जायगा।

रोगन गदुम (गोधूमतैल)—गेहूँका तेल निकालनेकी एक विधि यह है, कि उसको रात्रि भर इतना पानीमें तर रखे कि सारा जल उसमें शोषित हो जाय। इसके बाद आतशी-शीशीके द्वारा तेल टपकायें। दूसरी विधि यह है कि—उष्ण निहाई (अहरन) पर दाने रखकर हथौडेको गरम करके उससे दबाये। दबानेसे जो तेल निकले उसको अलग लेते जायँ। दद्रु, नीलिकाविशेष (कल्फ) आदि पर बहुधा इसी प्रकार तेल निकालकर लगाया जाता है।

रोगन मस्तगी (मस्तगीतैल)—मस्तगीका तेल निकालनेकी विधि यह है—पाँच भाग जैतूनका तेल लेकर एक शीशीमें रखें। फिर एक भाग मस्तगी शीशीके अदर डालकर और बोतलके मुँहपर डाट लगाकर एक देगचीमें सीधा रखें। देगची किसी ओर टेढी न होने पाये। देगचीमें इतना जल डालें, कि उबालते समय शीशीके ऊपर न आये। अब उबालें। जब मस्तगी तेलमें विलीन हो जाय तब उसे बाहर निकाल लें। यद्यपि तिलतेलमें भी इसी प्रकार मस्तगी डालकर मस्तगीका तेल तैयार कर सकते हैं, परतु उपर्युक्त विधिसे प्रस्तुत किया हुआ रोग़न मस्तगी परमोत्कृष्ट एव अतीव लाभकारी होता है।

रोगन मोरचा कलाँ (बडे चिऊँटेका तेल)—चमेलीका तेल पाँच तोले एक शीशीमें डालकर कब्रिस्तानके बडे-बडे सौ च्यूँटे उसमें डालकर चालीस दिन सूयके आतप (धूप)में रखे। इसके बाद छानकर सुरक्षित रखें। इसे रोगन मोरचा कहते हैं।

रोगन नखुद (चणकोत्थ तैल)—चना या अन्यान्य अनाजोके तेल निकालनेकी विधि गोधूमतैलके समान है।

रोगन बेहरोज़ा (गधाबिरोजेका तैल)—इसके तेल निकालनेकी विधि रोगनमोमके समान है, परतु बेहरोज़ाके साथ बालू या आमकी लकडीकी राख मिलाकर तेल निकालना चाहियें।

रोग़न मोम (मधूच्छिष्ट तैल)—इसके निकालनेकी विधि तेज़ाब निकालनेके समान है। परतु इसमें हाँडीके स्थानमें घडा काममें लेना चाहिये और तिरछा रखनेके स्थानमें दोनो घडे दो चूल्होपर बराबर रखना चाहिये। रोगन मोम निकालनेमें मोमके साथ साँभर नमक बारीक पीसकर नीचे बिछा देना चाहिये। रोगन मोम निकालनेकी एक उत्तम विधि यह भी है, कि आतशी-शीशीको कपडमिट्टी करके सुखा लें और उसके भीतर मोमके साथ बालू या साँभर लवण भर दें। फिर शीशीको चूल्हेपर रखकर उसके नीचे मृदु अग्नि देवें। शीशीके मुँह पर शीशीकी अबीक (जो अर्क निकालनेकी अबीकके समान होती है) लगाकर उसको खूब अच्छी तरह आटेसे मजबूत करके उसके बारीक मुँहके सामने चीनीका बरतन रखें, ताकि उसमें तेल टपके। जब रोग़न (तेल)का आना बद हो जाय तब शीशीको उतार ले।

तिलाऽ (रोगन तिलाऽ)—यहाँ उस रोगन तिलाऽका उल्लेख किया जाता है, जो पातालयन्त्रकी विधिसे निकाला जाता है और शिश्न पर लगाया (तिला किया) जाता है। शिश्न पर तिला करनेके लिये साधारणत निम्न विधिसे तेल निकाला जाता है। शुष्क औषधद्रव्योको कूट छान कर यदि कोई तेल योगमें हो, तो उसे मिलाकर खरल करके बडी-बडी वटिकाएँ बनाकर पातालयन्त्रके द्वारा तेल निकाल लें।

पातालयन्त्रकी विधिका ऊपर विस्तारपूर्वक वर्णन हो चुका है। यदि नुसखामें कोई तेल न हो, तो कभी यथा-प्रमाण जलमें गुटिकाएँ बनाकर शुष्क करके तेल निकाला जाता है। यदि तिलाके अतर्गत सखिया और हड़ताल जैसे औषधद्रव्य हो, तो तेल निकालनेमे इस बातकी सावधानी रखें कि उन द्रव्योका कोई अश तेलमे न जाय। तिला-कल्पनाके लिये बहुत मृदु अग्नि होनी चाहिये, जिसमें औषधद्रव्यके जल जानेके कारण तिला बिगड न जाय। कोई-कोई तिला सामान्य रूपसे इस प्रकार प्रस्तुत किये जाते हैं, कि औषधद्रव्योको कूट-छानकर किसी तेल या घीमें मिला लेते हैं।

प्रकरण २०

तेजाव[1] (हामिज़)

शङ्खद्राव (द्रावकाम्ल कल्पना)

हामिज़ (अम्ल)—तेजावका नाम इस कारण रखा गया है, कि ससारकी प्रत्येक अम्लास्वाद (तुर्श-खट्टी) वस्तु तेजाव है और कोई तेजाव अम्लताशून्य नही है, चाहे वह औद्भिद (वानस्पतिक) हो या प्राणिज अथवा खनिज। अम्ल और क्षार परस्पर शत्रु और विरुद्ध है। दूध जब दही होकर खट्टा हो जाता है, तब उसका यह अर्थ है कि उसके भीतर तेजाव (दुग्धाम्ल-हामिज लब्नी) उत्पन्न हो जाता है। इमली, खट्टा अनार, खट्टा सेव, कागजी नीबू इसी प्रकार अन्यान्य अम्ल फलोंमें अम्लता इसलिये पाई जाती है, कि उनके वीर्य (जौहर)में एक अम्ल पदार्थ पाया जाता है, जो विश्लेषणके साधनोसे पृथक् भी किया जा सकता है। दहीका तेजाव यदि प्राणिज है, तो इन फलोंका अम्लवीर्य वानस्पतिक। परतु गधकका तेजाव खनिजाम्ल है। अनेक द्रव्य जब सडते-गलते हैं, तब परिवर्तनके उपरात उनमें तेजाव उत्पन्न हो जाता है। अस्तु, सिरका उसीका एक उदाहरण है। कोई-कोई अम्ल निसर्गत स्वय उत्पन्न हुआ करते हैं, जिसमे मानवी कला-कौशलका कोई हाथ नही होता। परतु कुछ अम्ल मनुष्य भेषजकल्पना विषयक अपने कला-कौशल द्वारा भेषजनिर्माणशालाओमें बनाते हैं, जो प्रकृतिकी निर्माणशालामें स्वय भी नैसर्गिक सश्लेषणकी क्रिया द्वारा बना करते हैं। कुछ अम्ल (तेजाव) ऊर्ध्वपातनके तौर पर बनते हैं, जिसकी निम्न दो विधियोंका यहाँ उल्लेख किया जाता है।

वक्तव्य—तेजावको सस्कृतमें 'द्रावकाम्ल' कहते है। द्रावकाम्लो (तेजाबों)का विधान आयुर्वेदके प्राचीन ग्रथोमें देखनेमें नही आता। भैषज्यरत्नावली, रसतरङ्गिणी आदि सर्वथा नवीन ग्रथोमें शङ्खद्रावके जो कई प्रयोग लिखे हैं, वह तेजाबके उपर्युक्त योगके समान होनेसे, तेजावके ही योग हैं, यह सिद्ध होता है। आयुर्वेदमें यह कल्पना दक्षिण भारतके सिद्धसप्रदाय या यूनानी वैद्यकसे ली गई ऐसा प्रतीत होता है।

तेजाव खींचनेका जतर
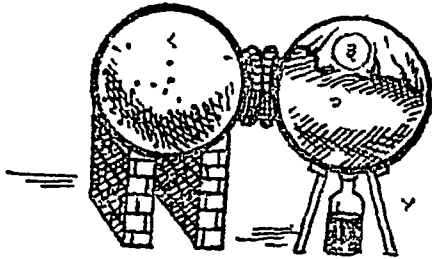
चित्र ९
विवरण—१ तेजावकी औषधि, २ ३ भिगोया हुआ वस्त्र, ४ तेजावकी शीशी।
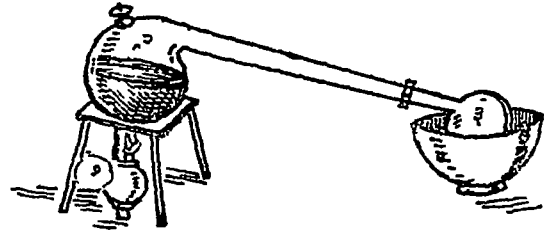
चित्र १०
विवरण—१ चूल्हा, २ औषधकी शीशी, ३ तेजाव की शीशी, ४ जलपात्र।

---

१ 'तेजाव' फारसी भाषाका शब्द है, जिसका शब्दार्थ (तेज़ = तीक्ष्ण, तथा आव = जल) तीक्ष्णजल या तेजोजल है। इसको अरबी, सस्कृत एव अँगरेजीमें क्रमश 'हामिज़', 'अम्ल' और 'एसिड (Acid)' इसलिये कहते है, कि यह प्राय अम्लास्वाद होता है।

तेज़ाब खीचनेकी विधि (प्रथम)—औषधद्रव्योको अधकुटा करके घडेमें रखे और उसके मुँह पर एक हांडी या घडा जिसका मुँह रगडकर घडेके मुँहके बराबर किया गया हो, रखकर सधियोको आटेसे खूब अच्छी तरह बद कर दें। इसके उपरात औषधवाले घडेको चूल्हे पर तिरछा रखकर आंच कर दे और हांडी या दूसरे घडेको ऐसी चीज़ पर रखे जो चूल्हेसे समान हो। उस हांडीको पानीसे भिगोये हुए कपडेसे शीतल करें। उसके पार्श्वमें एक छिद्र करके उस छिद्रसे एक शीशीका मुँह मिलाकर रख दें, जिससे उसमें तेज़ाब टपकता रहे।

द्वितीय विधि यह है—दो आतशी-शीशियां लेकर एक शीशीमें औषध डाले और उसके मुँहमें दूसरी शीशीका मुँह प्रविष्ट करे। फिर औषधकी शीशीको चूल्हे पर रखकर उसके नीचे अग्नि जलायें और दूसरी शीशीको जलसे भरी हुई नांदमें रखें। जब जल गरम हो जाय तब बदल दिया करे। जलमें रखी हुई शीशीमें टपककर तेज़ाब इकट्ठा होगा। जब तेज़ाब आना बद हो जाय, तब अग्नि देना बद करे।

प्रकरण २१

सत (उसार, जौहर)

यूनानी वैद्यकीय ग्रंथोमें सस्कृत सत्त्व को सत लिखते है, जिसका प्रयोग बहुत ही व्यापक अर्थोमें होता है। कभी उसारा और रुब्बको भी सत कहा जाता है, और कभी किसी ओषधिके वीर्य (जौहर)को जो अन्य वीर्य (सिट्ठी, नि सार भाग, फुज़ला)की अपेक्षया अधिक कार्यकर एव अधिक वीर्यवान् हो। इन्ही विभिन्न परिभाषाओंके विचारके सत-कल्पनाकी विधियाँ विभिन्न हैं, उदाहरणत स्वरस निचोडकर और शुष्क करके उसार बनाना (रसक्रिया), ऊर्ध्वपातनके द्वारा जौहर (सत्व) उडाना आदि।

उसाराकी विधि—सत कभी लकडी, जड, पत्र, शाखाओ आदि वानस्पतिक उपादानोंसे बनाया जाता है। यदि वे उपादान आर्द्र (भीगे, हरे-हरे) हैं, तो उनको कुचलकर उनका स्वरस प्राप्त किया जाता है और फिर रस क्रिया (उसारा वा रुब्ब)की कल्पनाकी भाँति उत्ताप पहुँचाकर शुष्क कर लिया जाता है। यदि शुष्क हैं, तो जल आदिमें भिगोकर भलीभाँति मसलें। इससे जो रस प्राप्त हो, उसे कपडेमें छानकर उक्त विधिके अनुसार उत्ताप पहुँचा कर शुष्क करे। कभी-कभी सत धोने और निथारने (गस्ल व तस्वील)से बनता है, जैसा कि बाजारू सतगिलोय बनाया जाता है। इसके बनानेकी विधि यह है—लकडी या जड या कोई आर्द्र वानस्पतिक अगको कुचलकर स्वरस निकालें, और यदि वह शुष्क है, तो उसको जलमें भिगोकर और भलीभाँति मसलकर उसका रस प्राप्त करें। पुन उस रसको कपडेमें छानकर किसी बरतनमें रखे। तलछट तलस्थित हो जाय और पानी निथर जाय, तब उस पानीको बत्ती (जर्र अलको)के द्वारा टपका लें। इस (तक़्तीर)के बाद जो सूक्ष्म उपादान तलस्थित हों, उनको धूपमें रखकर या किसी अन्य विधिसे उत्ताप पहुँचा कर शुष्क कर लेवें। गिलोयका बाजारू सत जो उक्त विधिसे निकाला जाता है, वह वस्तुत 'गिलोयका निशास्ता–स्टार्च' होता है और इसके लाभकारी और वीर्यवान् अश जो स्वादमें तिक्त होते हैं, वह जलमें विलीन होकर, जलके साथ विनष्ट हो जाते हैं। अस्तु, यदि गिलोयका सत (गुडूचीसत्व-रूब्ब गिलो) निम्न विधिसे निकालें तो उत्तम है—गिलोय (गुरुच)को कूटकर जलमें अहोरात्रि भिगो रखें। इसके बाद हाथसे खूब मसलकर पानी छान लें और इस तिक्त जलको पात्रमें डालकर अग्नि पर पकायें। जब जलाश जलकर रसक्रिया (रूब्ब)की भाँति घनीभूत हो जाय, तब उसे शुष्क कर रखे। इसको सतगिलो आतशी (अग्निसिद्धगुडूची-सत्व) कहते हैं। यह एक वास्तविक वीर्यवान् वस्तु होगी। आयुर्वेदकी सशमनी इसी प्रकार प्रस्तुत किया हुआ 'गुडूची सत्व' है।

सत लोबान—'जौहर लोबान' को कहते हैं, जो ऊर्ध्वपातनकी विधिसे प्राप्त किया जाता है।

सत बेहरोजा और सतसिलाजीत—वस्तुत शुद्ध गधाविरोजा और शुद्ध शिलाजीत (सिलाजीत मुसफ्फा)के अन्यतम पर्याय और अयथार्थ नाम हैं।

●

प्रकरण २२

पाकसिद्धकल्प (क़िवामी अद्विया)

इससे औषधद्रव्योंके वे कल्प अभिप्रेत हैं, जो शर्करा या मधु प्रभृतिकी चाशनीमें बनाये जाते हैं, जैसे—शर्बत, सिकजबीन, माजून, जुवारिश, अत्रीफल, लऊक, मुरब्बा आदि।

इस प्रकरणमें प्रथम पाक (चाशनी या क़िवाम)के कतिपय सामान्य नियमोका निरूपण किया जाता है —

पाक (चाशनी–किवाम)—किसी-किसी कल्प (किवामका चाशनी) अपेक्षाकृत गाढा रखा जाता है, और किसीका अपेक्षाकृत पतला। इसी प्रकार शर्करा, खाँड, मधु, गुड, तरजवीन, शीरखिस्त आदि विविध द्रव्योंके किवाम वनाये जाते हैं। सुतरा उनकी कल्पना विषयक ऐसे विभिन्न नियम हैं, जिनका यहाँ उल्लेख कर देना उचित प्रतीत होता है।

मधुका किवाम—मधुका क़िवाम वनाना हो, तो पहले उसे कपडेसे छान लेना चाहिये। इसके उपरात कलई की हुई देगचीमें डालकर अग्नि पर पकायें। जव मैले झाग आने लगें, तव उनको चमचेसे पृथक् करते जायें। इसके वाद अग्निसे नीचे उतारकर औषधद्रव्य मिलायें। खाँडका और गुडका किवाम—खाँडसे यहाँ देशी शक्कर अभिप्रेत है, जो अधिक स्वच्छ एव दानेदार नही होती। खाँड या गुडको प्रथम यथाप्रमाण जलमें खूब अच्छी तरह घोलकर छान लेवें। इसके वाद थोडी देर रख छोडें, जिसमें मिट्टीके अश तलस्थित हो जायें। फिर ऊपरसे नियार-कर और कलई की हुई देगचीमें डालकर पकायें। उवलते समय दूधकी लस्सीका छीटा देते रहें। जो झाग-मैल ऊपर प्रगट हो, उनको चमचासे उतारते जायें, यहाँ तक कि खूव साफ हो जाय।

मिश्री, दानादार कद और वूराका किवाम—इनको पानीके साथ अग्नि पर रखे। इसके घोलको छाननेकी आवश्यकता नही है। इसे पकाकर खाँडकी तरह किवाम (पाक) वनायें।

गुड (कदस्याह) पाक कल्पना—गुडको टुकडे-टुकडे करके यथाप्रमाण जलके साथ अग्निपर पिघलाये। जव गुड खूव अच्छी तरह जलमें घुल जाय, तव अग्निसे नीचे उतारकर छानें और कुछ देर रख छोटें। इसके उप-रात निथरा हुआ घोल लेकर अग्निपर पकायें। जो मैल ऊपर आये उसे चमचासे उतारते जायें, यहाँ तक कि खूव साफ हो जाय। यदि अधिक साफ वनाना हो, तो उवलते समय दूधकी लस्सीका छींटा देते रहें। जव किवाम वन जाय तव अग्निसे उतार लें और औषधद्रव्य मिलाकर रखें।

शकर सुर्ख (खड)का किवाम—इसका किवाम भी गुडकी तरह साफ करके वनाना चाहिये।

तरजबीनका किवाम—इसका पाक अकेले बहुत कम बनाया जाता है। प्राय इसको मधु या खाँड या मिश्रीके साथ मिलाकर पाक बनाते हैं।

तरजवीन (यवासशर्करा)को प्रथम जलमें घोलकर छान ले और रख छोडें जिसमें मिट्टी आदि तलस्थित हो जायें। इसके पश्चात कपडेसे छान पश्चात् निथरा हुआ घोलकर मधु या खाँड या मिश्रीमेंसे जो वस्तु मिलानी हो मिलाकर यथाविधि किवाम वनायें। यदि मधु या खाँड मिलाना हो तो उसको घोलकर दोवारा छान लेना चाहिये।

पाक-परीक्षा—पाक (क़िवाम)की पहिचान वारवारके अनुभव और अभ्यास पर निर्भर है। यह एक प्रयो-गात्मक कार्य (कर्माभ्यास) है जो ग्रथोंके केवल अध्ययनसे कदाचित् प्राप्त नही हो सकता। शर्वत—यदि शर्वत वनाना हो तो इसके पाकको पाकका प्रथम कक्षा समझ लेना चाहिये। जिस समय पाकका एक विंदु चिपकने लगे या चमचासे किवामको उठाकर डालनेसे अतिम विंदुसे तार प्रगट हो तो समझ लेना चाहिये कि अव शर्वतका पाक हो गया। फिर तुरत अग्निसे उतार लेना चाहिये। माजून—इसका पाक शर्वतके पाकसे गाढा होना चाहिये। खमीरा-

का माजूनसे अधिक गाढा बनाना चाहिये। पाक बनानेके लिये अग्नि मध्यम होनी चाहिये, और प्रधानत पाकके अतमें, जबकि पाक तैयार होने लगे, तब अग्नि हल्की कर देनी चाहिये, क्योंकि तीव्र अग्निसे पाकके जल जानेका भय रहता है। यदि पाक जल गया तो फिर वह बिल्कुल निरर्थक हो जायगा। जिस समय पाक बन जाय, उस समय इस बातकी विशेष रूपसे सावधानी रखें कि बाहरसे कच्चे पानीका एक बिंदु भी न पडने पाये, क्योंकि इससे पाक शीघ्र बिगड जाता है। जबकि पाकमें लिसोढा (सपिस्ताँ), बिहदाना प्रभृति जैसे लबाबदार द्रव्योंका लबाब पडा हो (जैसाकि शर्बत एव लऊकमें हुआ करता है), तो उक्त अवस्थामें पाक बनानेमें धोखेसे बचना चाहिये। क्योंकि लबाबके कारण पाकके लक्षण शीघ्र प्रकाशित होने लगते हैं। जबकि मधुके साथ कोई अन्य पदार्थ (शर्करा, मिश्री आदिके प्रकारसे) मिलाकर पाक बनाना हो तो थोडासा पानी भी मिला लेना चाहिये।

शर्बत (शार्कर)

शर्बत उस प्रवाही मधुर कल्प (योगौषध)को कहते हैं, जो फलोंके रस (जैसे—अगूरका रस, अनारका रस, सेवका रस इत्यादि) या औषधद्रव्योंके फाण्ट तथा हिम या क्वाथसे प्रस्तुत किया जाता है और चीनीवा शर्करा (कद सफेद) या मिश्री इत्यादि मिलाकर किवाम (चाशनी) बना दिया जाता है। शर्बत—बनानेसे यह लाभ होता है, कि शर्कराकी चाशनीके कारण सडने गलनेवाले एव बिगडनेवाले द्रव्य (उदाहरणत ताजे फलोंके रस और औषधद्रव्योंके फाण्ट-हिम और क्वाथ) बिगडनेसे बच जाते है तथा औषधद्रव्योंके वीर्य मधुर एव विलेय द्रव्यमें निलबित रहते हैं। इसलिये कुस्वादु द्रव्योंके बुरे स्वादका भी बहुत करके सुधार हो जाता है। शर्बतके रूपमें जो द्रव्य पाकके अदर विलीन या निलबित होते हैं, उनके उपयोगमे सुविधा यह है कि जल या अरकमें मिलाया और पिला दिया जाता है।

फल-शार्कर—यदि रसपूर्ण फलो (अगूर, अनार आदि)का शर्बत बनाना हो, तो उनका रस निकालकर उससे अढाई-तीन गुनी चीनी मिलाकर शर्बतका पाक बनायें। यदि ऐसे फलोंकी शार्करकल्पना करना हो, जिनको निचोडनेसे स्वरस नही निकलता, वह यदि अम्ल हो जैसे—आलूबोखारा, इमली, जरिश्क आदि तो उनको जलमें भिगोकर मलकर छान लें फिर उसमें शर्करा आदि, मिलाकर शार्करकल्पना करें। यदि फल मधुर है, जैसा—उन्नाव, अजीर आदि तो उनको जलमें उबालकर छान लें। पुन इसमें शर्करा मिलाकर शर्बतका पाक करे। शुष्क औषधद्रव्यकृत शार्कर—यदि शुष्क औषधद्रव्यसे शर्बत बनाना हो, तो औषधद्रव्योंको अठगुने या दसगुने जलमें रात्रिमें भिगो रखें और प्रात काल पकायें। जब तृतीयाश जल शेष रहे, तब मामूली तौरपर मसलकर छान ले। फिर उसमें दुगुना-तिगुना या न्यूनाधिक मधुर पदार्थ मिलाकर शर्बतका पाक बनायें। शर्बतका पाक (चाशनी) जितना गाढा होगा उतना ही अधिक काल तक खराब न होगा। शर्बतके पाकके पक्व होनेका लक्षण यह है, कि पाकका एक-दो बिंदु लेकर उठायें। यदि उसमेंसे तार निकले तो समझ लें कि, उसका पाक तैयार हो गया। परिपक्व या तैयार हुये पाकका एक लक्षण यह भी है, कि उसका बिंदु जहाँ गिराया जाता है, वह गोल रहता है, फैलता नही। कुछ शर्बतोंमें शर्करा (कद सफेद) या मिश्रीके साथ शीरखिश्त, शहद अथवा तरजबीन मिलाकर पाक किया जाता है, परतु तरजबीनको प्रथम औषधियोंके रस, क्वाथ अथवा फाण्टमें घोलकर छान लेना चाहिये, फिर अग्नि पर चढाकर पाक प्रस्तुत करना चाहिये। इसी प्रकार जब शार्करकल्पनामें मधु हो, तब उसको छानकर मिलाना चाहिये। शार्करकल्पनामें यद्यपि सामान्यत औषधद्रव्योंके रस क्वाथ या फाण्टमें दुगुना या तिगुना शर्करा (कद सफेद) या मिश्री मिलाकर पाक बनाया जाता है, परतु कुछ शर्बतोंमें इसका प्रमाण न्यूनाधिक भी होता है। यदि शर्बतमें कतीरा, दम्मुलअख्वैन प्रभृति जैसे अविलेय द्रव्य मिलाने हो तो उनको शर्बतका पाक तैयार होने पर नीचे उतारकर बहुत महीन पीसकर मिलाना चाहिये। यदि खाँड या मिश्रीसे शर्बत कल्पना की जाय, तो इसलिये कि पाक कडा न हो, अतिम पाकके समय थोडा सा मधु भी मिला दें। परतु शैख दाऊद अताकीके कथनानुसार उचित यह है कि मधु न मिलाकर कई दिन तक (दिनमें एक-दो बार) अजीरकी लकडीसे हिलाते रहे। इससे वह कडा नही पडेगा। यदि बर्तनमें

अवर, कस्तूरी जैसे सुगंधद्रव्य मिलाने हों तो उसे शीतल होने पर बारीक करके मिलाये। बलवर्धनके लिये प्रयुक्त फलोंके शर्वतमें फलस्वरससे तिहाई मीठा मिलावें। प्राचीन यूनानी वैद्योंका यह मत है कि रोगीकी शक्ति परिवर्तित होकर उसका यकृत स्वभावतः मधुर पदार्थोंका इच्छुक हो जाता है। अधिक मीठा होने पर वह अधिक हानिकर होगा और प्रकृतिपर बोझ हो जायगा। मीठा कम रहने पर अधिक शोषित न होगा। रोगीकी प्रकृतिके अनुकूल शर्करा और मधु आदि प्रविष्ट करना चाहिये। शर्वत तीन दिनमें मिज़ाज पकड लेता है। वर्ष रोज तक इसमें शक्ति रहती है। इसके बाद ये बिगड जाते हैं। बहुत दिन रहनेसे उनमें खमीर उत्पन्न हो जानेसे खट्टे हो जाते हैं।

शार्कर-पात्र—जिस बरतनमें शर्वत रखना हो, उसे शुष्क होना चाहिये। यदि किंचित् भी आर्द्रता होगी, तो उसमें बहुत शीघ्र फफूँदी लग जाने और बिगडनेका भय है। शार्कर रखनेके लिये धातुके पात्र न होने चाहिये। इसके लिये शीशी या चीनीके पात्र उत्तम होते हैं। शर्वतके पक जानेके पश्चात् किसी प्रकारकी आर्द्रता (रतूबत)या जलबिंदु न मिलना चाहिये, वरन् अतिशीघ्र विकृत हो जाने (उफान एवं सधान क्रिया उत्पन्न हो जाने)की आशंका है। खूब उष्ण शर्वत गरम किये हुये पात्रमें भरकर तत्क्षण बंद कर दिये जायँ, तो वह चिरकाल तक विकृत होनेसे बचे रहते हैं। उसमें किंचित् मद्य या कोई उडनशील तेल मिला देनेसे भी वे सुरक्षित रहते हैं, एवं उसे शीतल स्थानमें रखना चाहिये। यदि शर्वतमें सपिस्ताँ (लिसोडा) और बिहदाना जैसी पिच्छिल वस्तुओंका लवाब पडा हो तो उस दशामें धोनेसे बचना चाहिये और भली-भाँति (पाकको) पकाना चाहिये, क्योंकि लवाबके कारण शीघ्र ही (समयसे पूर्व) किवाम (चाशनी)के लक्षण प्रगट होने लगते हैं। वक्तव्य–खजाइनुल अदवियाके निर्माताके अनुसार शर्वतकी कल्पना आयुर्वेदसे ली गई मालूम होती है। अस्तु, वे लिखते है—"अगले जमानेके वैद्य शर्वतकी आसव या अरिष्ट इस्तेमाल करते थे, मगर पिछले जमानेके वैद्योंके अनुसरणसे (हसब तक्लीद) यूनानी वैद्योने शर्वतके कई योग ईजाद किये हैं।" कहते हैं कि इससे उत्तम और उपादेय कोई अन्य कल्प ऐसा नही जो उष्ण एवं शीतल व्याधियोंमें दोषोंको सम्यक् तरलीभूत (लतीफ) बनावे और अवरोधोंका उद्घाटन करे।

सिकंजबीन (शुक्तमधु, शुक्तशार्कर)

सिकञ्जबीन वस्तुतः फारसी भाषाका शब्द है, जिसका अरबी ग्रंथोंमें भी प्रयोग किया गया है। यह 'सिरका = शुक्त' और 'अगबीन = मधु' दो शब्दोंका यौगिक है। सिकंजबीन प्रथमतः शुक्त और मधुसे कल्पनाकी गई, परंतु इसके अनंतर शुक्त (सिरका) और शर्करा (कंद)से भी कल्पना की जाने लगी और उसको भी इसी नामसे स्मरण किया गया। जैसा कि मैंने गत पृष्ठोंमें बतलाया है कि शुक्त और मधुसे कल्पनाकी जानेके कारण संस्कृतमें इसका शुक्तमधु और शुक्त एवं शर्कराकी चाशनी करके कल्पनाकी जानेके कारण शुक्त शार्कर नाम रखना उचित है। सिकंजबीन—(सिकजबीन) भी एक प्रकारका शर्वत (शार्कर) है, जो सिरकामें मधु या शर्करा (शकर सफेद) मिलकर प्रस्तुत किया जाता है।

सिकंजबीन कल्पनाविधि[1]—शुद्ध तीक्ष्ण सिरका यथाप्रमाण लेकर तिगुनी या किंचिदधिक शर्करा या यथाप्रमाण मधु मिलाकर शर्वतका पाक बनायें। सिकंजबीन लीमूनी और नानाई—यद्यपि सिकंजबीन सिरका और शकर सुफेद या मधुसे बनाये हुये शर्वतको कहते हैं, पर यदि सिरकाके स्थानमें नीबूका रस डाला जाय तो उसको सिकंजबीन लीमूनी और अरक़नाना डाला जाय तो सिकंजबीन ना'नाई कहते हैं। भेषजकल्पनाविषयक शेष सिद्धांत, नियम और सूचनायें वही हैं जिनका शार्करकल्पनाके प्रसंगमें उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार इनकी प्रत्येक कल्पनामें सिरका प्रविष्ट होगा अथवा इमली या नीबू या सेब या बिही (सफरजल) इत्यादि। फिर उनमेंसे

---

१ 'अञ्जुमन आराए नासरी' नामक बृहत् पारस्य अभिधानग्रंथके अनुसार यह फारसी 'सिरकअंगबीन'की अरबीकृत संज्ञा है।

प्रत्येक मधुके साथ होगा अथवा शर्करा या खाँड इत्यादिके साथ। इस विचारसे इनके अनेकानेक भेदोका उल्लेख यूनानी ग्रथोमें मिलता है। सिकजवीनकी व्याख्या पृष्ठ १९५ पर देखें।

उपयोग—यह उष्णताजन्य शिर शूलको तत्काल आराम पहुँचाता है, पित्त एव रक्तके रोगोको नष्ट करता, गाढे दोषोको पतला करता और पतलेको गाढा करता है। यह श्वासप्रणालीस्थ द्रवोका प्रसादन करता, कृच्छ्रश्वास, अवयवोकी ऊष्मा विशेषत यकृत् और आमाशयकी ऊष्माको शमन करता, यकृत्के अवरोधोका उद्घाटन करता, तृष्णा शमन करता, तालु और मुखशोषका निवारण करता, दोषोंकी दूष्यताको मिटाता और मूत्रका प्रवर्त्तन करता है। इसका अधिकतर गुण उष्ण एव शीत और समिश्र दोषाद्भुत ज्वरोमे प्रकाशित होता है। तात्पर्य यह कि जहाँ पर इसके गुण अपरिमित हैं वहाँ पर अनेक दशाओमें यह अवगुण भी करता है। शीत और आमाशयकी निर्बलता (मदाग्नि), अतिसार (पित्तातिसार)में गुणकारी है। प्रतिश्याय (नजला और जुकाम), शुष्ककास, उर क्षत इत्यादि रोगोमें इसका सेवन वर्जित है।

लऊक़ (अवलेह-चटनी)

लऊक—अरबी भाषाका शब्द है जो अरबी धातु 'लऊक़ (= लेहन, चाटना)'से व्युत्पन्न है। लऊक़का अर्थ लेह्यौषध (चाटनेकी दवा) है जिसको उर्दूमें चटनी और सस्कृतमें लेह् वा अवलेह् कहते हैं, चाहें इसमें अम्ल सम्मिलित हो या न हो। इसकी व्याख्या पृष्ठ १९१ पर देखें।

लऊक (अवलेह)—की चाशनी शर्वतसे गाढ़ी और माजूनसे पतली होती है। लऊक अधिकतया कास, कृच्छ्रश्वास (जीकुन्नफस) प्रभृति उर कठ एव अन्नप्रणाली (मरी)के रोगोमें प्रयोग करनेके लिये बनाया जाता है। यदि केवल शुष्क औषधद्रव्योंसे लऊक बनाना हो, तो उनको कूट-छानकर चीनी वा शकर सफेद या मिश्रीके किवाम या झाग उतरे हुये मधुमें मिलाकर प्रस्तुत करना चाहिये। इसके उपरात मसल और छानकर मिश्री, शकर सफेद या मधु मिलाकर किवाम बनायें। इसके अनन्तर अग्निसे उतारकर शुष्क द्रव्योका चूर्ण थोडा-थोडा करके चमचेसे मिलायें।

यदि उबलनेवाली औषधिमें अमलतासका गूदा भी पडा हो तो उसको उबालना न चाहिये, क्योंकि क्वाथ करनेसे उसकी शक्ति निर्बल हो जाती है। प्रत्युत जब शेष औषधद्रव्योका क्वाथ बन जाय, इस समय उसमें अमलतासके गूदेको घोलकर छान लेना चाहिये। फिर मिश्री या शर्करा (शकर सफेद) इत्यादि मिलाकर किवाम (चाशनी) बनायें और यथाविधि लऊक कल्पना करें। शेष औषधद्रव्योके कूटने-छानने और रखनेके विषयमें माजून आदिके प्रकरणमें जिन नियमों और सूचनाओका उल्लेख किया गया है, उनका पालन करें।

वक्तव्य—कहते हैं कि लऊक़ उत्तरकालीन चिकित्सकोका आविष्कार है। उन्होने शर्बत और माजूनके किवाम पर इसको निकाला है। यूनानी योगग्रथो (करावादीनो)में इसका उल्लेख नही है; परतु जबरैल बिन बख्तीशूअके कथनानुसार इसके प्रवर्तक जालीनूस हैं। अनुमानत यह ज्ञात होता है कि जालीनूस द्वारा आविष्कृत माजून हब्बुल् कुल्तका नाम उत्तरकालीन चिकित्सकोने लऊक हब्बुल्कुल्त रख लिया होगा। इस प्रमाणसे जालीनूसको लऊकका आविष्कर्त्ता समझ लिया होगा। मेरे विचारसे लऊककी कल्पना आयुर्वेदोक्त लेह वा अवलेहसे ली गई मालूम होती है।

खमीरा

खमीराको उक्त सज्ञासे अभिहित करनेका कारण यह है, कि उक्त कल्पमें कुछ कालके उपरात खमीर (अभिषव) उत्पन्न हो जाता है।

खमीराकी व्याख्या गत पृष्ठोमें देखे। यह माजून-जातीय कल्प (मुरक्कब) है जिसमें प्रथमत न्यूनाधिक औषधद्रव्य क्वाथ किये जाते हैं। इसके उपरात उनको मल-छानकर और शर्करादि मिलाकर गाढा पाक (किवाम) करके अन्य शुष्क प्रक्षेप द्रव्योंको चूर्ण करके मिलाते हैं। फिर उसे चूल्हेसे उतार कर लकडीके घोटनेसे इतना घोंटते हैं

कि किवामकी रंगत श्वेत हो जाती है। खमीराको जितनी देर तक घोटा जाता है, उतनी ही उसमें सफेदी अधिक आती है। यदि खमीरामें अवर, कस्तूरी, केसरमेंसे कोई द्रव्य मिलाना हो, तो उसको घोटते समय किसी उपयुक्त सुगंधित अर्कमें घोलकर मिलायें। खमीरा घोटनेके लिये विशेष रूपसे लकडीका 'घोटना' बनाया जाता है। यह आगेसे चपटा और मोटा होता है। मुठिया (दस्ता) मजबूत रखी जाती है, जिससे खूब बलपूर्वक घोटा जा सके।

खमीराकल्पना एवं खमीरा-सरक्षणमें शेष उन सिद्धातो, नियमों और सूचनाओका पालन करना चाहिये, जिनका निरूपण माजूनके प्रकरणमें किया गया है।

माजून

उस अर्ध-घन आर्द्र (तर) कल्पको कहते हैं, जो मधु या चीनी (कद सफेद) आदिके किवाम (चाशनी) में बारीक किये हुये औषधद्रव्योंको मिलाकर कल्पना किया जाता है। इसको नरम हलुएकी भाँति मृदु (मुलायम) रखा जाता है। 'माजून'की व्याख्या गत पृष्ठमें देखें।

माजून-कल्पना-विधि—उत्तम ताजे औषधद्रव्य लेकर उनको साफ करके अलग-अलग, अथवा जो कठोरता और मृदुतामें परस्पर समान हो ऐसे उपादानोको एक साथ कूटकर छान ले, और कल्पोमें प्रयुक्त करे। जो द्रव्य जलाने, धोने, शुद्ध करने, भूनने या खील करने अथवा हल करने योग्य हो, उसे उक्त सस्कार द्वारा तैयार करनेके उपरात इसमें डालें। निसोथ और हर्डोको बादामके तेलमें चिकना करके मिलावें। स्नेहयुक्त बीजोको पत्थरके खरलमें रगड लें, जिसमें वे कुस्वादु न हो जायँ। तात्पर्य यह कि समस्त द्रव्योको अलग-अलग चूर्ण करके तौल लें और सबको मिलाकर पुन पीसें जिसमें सब मिलकर एक हो जायँ। इसके बाद शर्करा वा मधुकी आगे लिखी हुई विधिके अनुसार चाशनी तैयार करें। फिर प्रथम उसमें सांद्र (कसीफ) द्रव्य और उसके बाद तरल (लतीफ) द्रव्य प्रविष्ट करें। समस्त प्रक्षेप द्रव्य मिला चुकनेके उपरात लकडीसे माजूनको चलाते रहे। जब खूब शीतल हो जाय, तब उपयुक्त पात्रमें रखें। माजूनमें मधु, मिश्री या चीनी (कद सफेद) आदि सामान्यतया औषधद्रव्योके प्रमाण (वजन) से तिगुने हुआ करते हैं, पर किसी-किसी नुसखेमें दुगुने भी होते हैं। चाशनी (किवाम)—माजूनमें यदि कोई अर्क सम्मिलित हो, तो मिश्री या चीनी (कद) का किवाम उस अर्कमें करना चाहिये। वरन् यथाप्रमाण जल मिलाकर क़िवाम बनाना चाहिये। किवाम (चासनी) ऐसा होना चाहिये कि शुष्क औषधद्रव्योके चूर्णको शोषित (जज्ब) करनेके उपरात मुलायम हलवेके समान नरम रहे। यदि माजून मधुमें बनाई जाय तो उसमें जल डालनेकी आवश्यकता नही है। मधुको छानकर मृदु अग्नि पर पकाये और झाग (फेन) तथा मैलसे शुद्ध करके नीचे उतार कर प्रक्षेप द्रव्य मिलायें। औषधद्रव्योका चूर्ण मिलाकर (प्रक्षेप देकर) माजून बनायें।

किवाम (पाक)मे औषधद्रव्योका मिलाना (प्रक्षेप देना)—यदि माजूनमें मुरब्बे और गिरियाँ इत्यादि हों, तो प्रथम मुरब्बोको अलग पीसकर पाकमें मिलायें और पकाये। इसकी गिरियोको अलग बारीक पीसकर और शुष्क औषधद्रव्योको कूट-छानकर मिलायें। यदि माजूनमें मस्तगी पडी हो, तो उसको शेष औषधद्रव्योके साथ न कूटें, क्योंकि वह कूटनेसे नरम होकर बारीक नही होती प्रत्युत खरलमें डालकर बहुत हलके हाथसे खरल करें। इस विधिसे मस्तगी अत्यत महीन हो जायगी। इसको किवाम (चाशनी)के शीतल होनेपर मिलायें। किवाममें बारीक किये हुये औषधद्रव्य एक साथ न मिलाये जायँ, प्रत्युत थोडा-थोडा औषधद्रव्योका चूर्ण बुरकते और चमचासे चलाते जायँ, जिसमें प्रक्षेप द्रव्य भलीभाँति मिल जायँ। यदि माजूनमें केसर, कस्तूरी प्रभृति सुगधद्रव्य पडे हो, तो उनको माजूनके शीतल होनेपर अर्क केवडा या अर्क बेदमुश्क आदिमें घोटकर मिलाना चाहिये। यदि माजूनमें मुक्ता या अन्य पाषाण जातीय द्रव्य हो, तो उनको खरलमें अलग अत्यत महीन करके सम्मिलित करना चाहिये। यदि माजूनमें सुवर्ण या रौप्यके वर्क हो, तो उन्हें औषधमें मिलानेके उपरात एक-एक करके भलीभाँति मिलाना चाहिये। यदि उसमें अवर या मोमियाई (सत्त सिलाजीत) मिलाना हो, तो इन्हे अकेला बारीक करके या मिश्रीके साथ पीसकर या दुगुने बादाम, चिलगोजा या पिस्ताके तेलमें घोटकर मिलायें।

माजून-पात्र—माजूनको धातुके पात्रमें रखनेमे उसके विगडनेका भय है। इसलिये इसे सदा शीशा या चीनीके पात्रमें रखना चाहिये। माजूनको रखनेसे पूर्व पात्रको धोकर खूब अच्छी तरह सुखा लेना चाहिये, क्योंकि यदि जरा भी नमी रहेगी, तो उसके शीघ्र विगड जानेकी आशंका है। माजूनको पात्रमें रखनेके बाद उस समय तक उसका मुँह बद न करें, जब तक वह पूर्णतया शीतल न हो जाय। पात्र इतना बडा लेवें कि चौथा या तीसरा हिस्सा खाली रहे।

अनोशदारु, अत्रीफला, जूवारिश, लऊक आदि माजून-सदृश कल्प वनाते समय इस प्रकरणमें कहे हुए समस्त नियमोका पालन करना चाहिए।

माजूनोके विभिन्न नाम—गुण-कर्मकी दृष्टिसे अथवा किसी कल्पके कल्पना-वैशिष्ट्यके कारण उसके विभिन्न नाम है। उदाहरणत मुफर्रेह, दवाउल्मिस्क, याकूती इत्यादि। इन सबके सिद्धात, नियम और सूचनाएँ एक ही हैं। भेपजकल्पनाके विचारमे इनमें परस्पर कोई अतर और भेद नही हैं।

वक्तव्य—यह अतिप्राचीन यूनानी कल्प है। शेख दाऊद अताकीके मतसे यह एक ऐसा कल्प है, जिसके रहते अन्य कल्पोकी आवश्यकता नही रह जाती। इस एक ही कल्पमें हर प्रकारके गुण और लाभ वर्तमान हैं।

अनोशदारू या नोशदारू (आमलकी रसायन या धात्रीरसायन)की व्याख्या पृ० १९० पर देखें। माजून जातीय एक कल्प जिसमें प्रधान उपादान आमलकी (धात्री) होती है।

अनोशदारु कल्पना-विधि—खूब पके हुये हरे आँवले तौल लेवे। फिर उसे जलमें पकाकर और खूब अच्छी तरह मसलकर उसके वीज अलग करें। इसके वाद उसे झीने वस्त्रमें छानें, जिसमें ततु या रेशे अलग हो जायें और आमलेका गूदा छनकर आ जाय। तव वीज (गुठली) और ततुको तौलकर आमलेके गूदेके वजनका निश्चय करें। फिर जितना यह आँवलेका गूदा हो उससे दुगुनी चीनी या मिश्री मिलाकर चाशनी करें। चाशनी तैयार हो जानेपर उसे गरम रहनेकी दशामे ही उसमें अन्य उपादानोका चूर्ण मिलायें। परतु यदि आमले शुष्क हो, तो उनकी गुठली निकालकर वजन करके धो डालें, जिसमे वह धूलिकण आदिसे शुद्ध हो जायें। इसके वाद उसे इतना गाक्षीर (गायका दूध)में भिगोये कि आँवला डूब जाय। चार पहरके वाद पर्याप्त प्रमाणमें जल डालकर उवालें जिसमें आँवलेका कषायपन और दूधकी चिकनाई निकल जाय। फिर ताजे जलमें उवालकर उपर्युक्त विधानके अनुसार अनोशदारू वनायें।

वक्तव्य—किसीने 'नोशदारू' और 'अनोशदारू' सज्ञाको अरवीकृत और किसीने फारसी लिखा है और इनका अर्थ 'पाचन औषध' वतलाया है। कहते हैं कि समस्त नोशदारूमें आहार-पाचन होती हैं, इसलिये उक्त सज्ञासे अभिधानित की गई। किसी-किसीके मतसे इनका अर्थ 'ईश्वर प्रदत्त' है। कोई कहते हैं कि 'नोश' शब्दका व्यवहार हड, वहेडा, आँवला, लोहकिट्ट और मधुके अर्थमें होता है। इसीलिये ऐसे कल्पको जिसमें ये पाँचों द्रव्य हों पजनोश कहते है। चूँकि इस माजूनमें प्रधान एव उत्कृष्ट उपादान आमलकी या धात्री है, इसलिए इसको 'नोश' कहते हैं। आयुर्वेदमें ऐसे ही योगको धात्रीरसायन या आमलकी रसायन कहते हैं। प्राय यूनानी वैद्य नोशदारूको 'जुवारिश कदी' कहते हैं। इसका कारण कदाचित् यह हो कि कदीका आविष्कृत भारतीय योग (नुसखे हिंदी) प्रचलित है। अथवा इस कारण कि, उसके उक्त योग में कुछ परिवर्तन हुये हैं।

उपयोग, मात्रा आदि—उत्तम यह है कि इसे वनानेके चालीस दिन वाद सेवन करे। दो वर्ष तक इसकी शक्ति शेप रहती है। मात्रा—४॥ माशे से १३॥ माशे (४ ५ ग्राम से १३ ५ ग्राम) तक। इसे भोजनसे पूर्व या भोजनोत्तर जव चाहें सेवन करें। उष्ण प्रकृतिवालोको शीतल द्रव्योंके साथ देना चाहिए। आमाशयको बल प्रदान करनेके लिये परमोपयोगी भेपज है। यह मुखमें सुगध उत्पन्न करती, शरीरके वर्णको निखारती और साफ करती तथा दिलकी धडकन एव भयमें लाभकारी है।

जुवारिश (खाडव)—माजूनकी जातिका कल्प जो साधारणत आमाशयके रोगोके लिये प्रस्तुत किया जाता है (व्याख्या पृ० १९० पर देखें)। जुवारिशकी कल्पनामें भेपजकल्पना विपयक उन समस्त सिद्धातो एव सूचनाओंका

ध्यान रखना चाहिये जिसका माजूनके प्रकरणमें उल्लेख किया गया है। जवारिशके द्रव्यों (उपादानों) का चूर्ण किंचित् दरदरा (दरदरा या मोटा) रखा जाता है। परन्तु यह कोई अनिवार्य नियम (शर्त) नहीं है। इनमें औषध द्रव्योंको मधु और शर्करा या मिश्रीकी चाशनीमें मिलानेके उपरांत एक पात्रमें रख छोड़ते हैं।

वक्तव्य—आयुर्वेदमें 'खाडव' इन प्रकारके स्वादिष्ट एवं पाचन कल्प हैं। खजाइनुल अदवियाके अनुसार हिंदीमें उसके लिये चटनी शब्दका व्यवहार होता है।

अ(इ)तरीफल (त्रिफला रसायन)—माजूनकी जातिका यह कल्प जिसमें त्रिफला (हड़—हलेलाजर्द, बहेडा और आंवला) प्रधान उपादानके रूपमें प्रविष्ट होता है (व्याख्या पृ० १९० पर देखें)। अ(इ)तरीफल-कल्पनामें उन समस्त नियमों और सूचनाओंका पालन करना चाहिए, जिनका निरूपण माजूनके प्रकरणमें किया गया है। इसकी कल्पनामें केवल यह अंतर है कि हड़, बहेडा और आंवला अर्थात् त्रिफलाको बारीक कूट छानकर बादामके तेल या गोघृतसे स्नेहाक्त (चर्ब) करके चाशनी (किवाम)में मिलाते हैं। ऐसा करनेसे उसकी शक्ति चिरकाल तक बनी रहती है और किवाम नरम रहता है।

वक्तव्य—अ(इ)तरीफल संस्कृत त्रिफलासे फारसी 'अतरीफल' द्वारा अरबीकृत शब्द है। अरबी यूनानी वैद्योंने आयुर्वेदसे पारस्य वैद्यों द्वारा प्राचीन समयमें ही इसका ग्रहण अपने वैद्यक ग्रंथमें किया। मुतज्रिबुल्लुगात और बह्रुल् जवाहिर नामक अरबी कोशग्रंथसे यही निष्पन्न होता है। राजी और शेखके ग्रंथोंमें भी इस कल्पका उल्लेख मिलता है।

लुबूब—वस्तुतः माजूनकी ही जातिका कल्प है, जिसमें गिरियाँ (उदाहरणतः बादामकी गिरी, कद्दूकी गिरी, अखरोटकी गिरी, खीरा-ककड़ीकी गिरी प्रभृति गिरियाँ—मिरिजयात) समाविष्ट हुआ करती हैं। इसी कारण इसका नाम लुबूब या माजून लुबूब है (लुबूब 'लुब्ब'का बहुवचन है। लुब्ब = गिरी या मग्ज)। लुबूब प्रायः वाजीकरणके लिये उपयोग किये जाते हैं। इसकी कल्पनामें माजूनमें लिखित समस्त नियमों और सूचनाओंका पालन करना चाहिये।

मुरब्बा (फलपाक)—फलोंको पकाकर या बिना पकाये खांड या मधु आदिकी चाशनी (किवाम)में रख छोड़ते हैं, वही मुरब्बा कहलाता है। अरबी मुरब्बा शब्दका अर्थ 'पालन किया हुआ (परवर्दा)' है। मुरब्बा वस्तुतः परिपालित (परवर्दा) फल है, जिनका परिपालन (तरबियत) किवाम (चाशनी)में होता है। मुरब्बा कल्पना-विधि—जिस फलका मुरब्बा बनाना हो, उसको छीलकर या वैसे ही जलमें इतना पकाये कि वह गलकर नरम हो जाय और जलांश सूख जाय। फिर चीनी का पाक बनाकर उसको पाकमें डाल दें। आगामी दिवस किवाम पतला हो जाया करता है। इसलिये मुरब्बा सहित किवामको पुनः इतना पकायें कि चाशनी ठीक हो जाय। इसके बाद उतारकर रख दें। यदि तीसरे दिन किवाम पुनः कुछ पतला हो जाय, तो फिर पकाकर ठीक कर लें। मुरब्बा डालनेके लिये फल खूब पके हुये और बड़े लिये जायें। परन्तु आमका मुरब्बा पके आमोंसे नहीं, अपितु कच्चे आमों (अंबिया)से बनाया जाता है। यदि फलोंको छीलकर (जिनके छीलनेकी आवश्यकता न हो उनको वैसे ही) बांसकी तीली या लोहेकी पतली छड़ (सीख)से गोदकर पकायें। इसके उपरांत उक्त विधिसे किवाममें डालें, तो उससे किवाम फैलकर अंदर बहुत अच्छी तरह शोषित हो जाता है, और फलका कुस्वाद बहुत कम हो जाता है। बेलगिरीका मुरब्बा—इसका छिलका दूर करके और उसके गोल-गोल फांक (काशें) काटकर यथोक्त विधिसे डालना चाहिये।

पेठा (कूष्माण्ड)का मुरब्बा—यदि पेठेका मुरब्बा बनाना हो, तो उसको छीलकर उसके अंदरसे बीजोंको निकालकर चार-चार अंगुलकी मोटी फांकें काट लें और एक पात्रमें आधे तक जल भरकर उसके मुँहपर कपड़ा बांधें। कपड़ेके ऊपर पेठेकी फांकें रखकर ढक्कनसे बंद करके नीचे अग्नि जलाये जिसमें जलके वाष्पसे फांकें गल जायें। इसके बाद फांकोंको चाशनीमें डालकर उक्त विधिका अवलंबन करे। गाजरका मुरब्बा (मुरब्बाए गजर)—गाजरका मुरब्बा बनानेके लिये पहले गाजरको छीलकर और भीतरसे उसका कड़ा भाग (हड्डी) निकालकर फांकें (काशें) बनायें और पेठेकी तरह मुरब्बा प्रस्तुत करे। सेब, नासपाती और आमका मुरब्बा—आम, सेब, बिही, नासपाती इत्यादिका यदि मुरब्बा बनाना हो, तो उनको छीलकर यथोक्त विधानके अनुसार मुरब्बा

माजून-पात्र—माजूनको धातुके पात्रमें रखनेसे उसके विगडनेका भय है। इसलिये इसे सदा शीशा या चीनीके पात्रमें रखना चाहिये। माजूनको रखनेसे पूर्व पात्रको धोकर खूब अच्छी तरह सुखा लेना चाहिये, क्योंकि यदि जरा भी नमी रहेगी, तो उसके शीघ्र विगड जानेकी आशका है। माजूनको पात्रमें रखनेके बाद उस समय तक उसका मुँह बद न करें, जब तक वह पूर्णतया शीतल न हो जाय। पात्र इतना बडा लेवें कि चौथा या तीसरा हिस्सा खाली रहे।

अनोशदारु, अत्रीफला, जूवारिश, लऊक आदि माजून-सदृश कल्प बनाते समय इस प्रकरणमें कहे हुए समस्त नियमोका पालन करना चाहिए।

माजूनोके विभिन्न नाम—गुण-कर्मकी दृष्टिसे अथवा किसी कल्पके कल्पना-वैशिष्ट्यके कारण उसके विभिन्न नाम हैं। उदाहरणत मुफर्रेह्, दवाउल्मिस्क, याकूती इत्यादि। इन सबके सिद्धात, नियम और सूचनाएँ एक ही हैं। भेपजकल्पनाके विचारमे इनमें परस्पर कोई अतर और भेद नही हैं।

वक्तव्य—यह अतिप्राचीन यूनानी कल्प है। शैख दाऊद अताकीके मतसे यह एक ऐसा कल्प है, जिसके रहते अन्य कल्पोकी आवश्यकता नही रह जाती। इस एक ही कल्पमें हर प्रकारके गुण और लाभ वर्तमान हैं।

अनोशदारू या नोशदारू (आमलकी रसायन या धात्रीरसायन)की व्याख्या पृ० १९० पर देखें। माजून जातीय एक कल्प जिसमे प्रधान उपादान आमलकी (धात्री) होती है।

अनोशदारु कल्पना-विधि—खूब पके हुये हरे आँवले तौल लेवें। फिर उसे जलमें पकाकर और खूब अच्छी तरह मसलकर उसके वीज अलग करे। इसके बाद उसे झीने वस्त्रमें छाने, जिसमें ततु या रेशे अलग हो जायँ और आमलेका गूदा छनकर आ जाय। तब वीज (गुठली) और ततुको तौलकर आमलेके गूदेके वजनका निश्चय करें। फिर जितना यह आँवलेका गूदा हो उससे दुगुनी चीनी या मिश्री मिलाकर चाशनी करे। चाशनी तैयार हो जानेपर उसे गरम रहनेकी दशामें ही उसमें अन्य उपादानोका चूर्ण मिलायें। परतु यदि आमले शुष्क हो, तो उनकी गुठली निकालकर वजन करके धो डालें, जिसमे वह धूलिकण आदिसे शुद्ध हो जायें। इसके बाद उसे इतना गोक्षीर (गायका दूध)मे भिगोये कि आँवला डूब जाय। चार पहरके बाद पर्याप्त प्रमाणमें जल डालकर उबालें जिसमें आँवलेका कषायपन और दूधकी चिकनाई निकल जाय। फिर ताजे जलमें उबालकर उपर्युक्त विधानके अनुसार अनोशदारु बनायें।

वक्तव्य—किसीने 'नोशदारू' और 'अनोशदारू' सज्ञाको अरवीकृत और किसीने फारसी लिखा है और इनका अर्थ 'पाचन औषध' बतलाया है। कहते हैं कि समस्त नोशदारूमें आहार-पाचन होती हैं, इसलिये उक्त सज्ञासे अभिधानित की गई। किसी-किसीके मतसे इनका अर्थ 'ईश्वर प्रदत्त' है। कोई कहते हैं कि 'नोश' शब्दका व्यवहार हड, वहेडा, आँवला, लोहकिट्ट और मधुके अर्थमें होता है। इसीलिये ऐसे कल्पको जिसमें ये पाँचों द्रव्य हों पजनोश कहते हैं। चूँकि इस माजूनमें प्रधान एव उत्कृष्ट उपादान आमलकी या धात्री है, इसलिए इसको 'नोश' कहते हैं। आयुर्वेदमें ऐसे ही योगको धात्रीरसायन या आमलकी रसायन कहते हैं। प्राय यूनानी वैद्य नोशदारूको 'जुवारिश कदी' कहते हैं। इसका कारण कदाचित् यह हो कि कदीका आविष्कृत भारतीय योग (नुसखे हिंदी) प्रचलित है। अथवा इस कारण कि, उसके उक्त योग में कुछ परिवर्तन हुये हैं।

उपयोग, मात्रा आदि—उत्तम यह है कि इसे बनानेके चालीस दिन बाद सेवन करें। दो वर्ष तक इसकी शक्ति शेप रहती है। मात्रा—४॥ माशे से १३॥ माशे (४ ५ ग्राम से १३ ५ ग्राम) तक। इसे भोजनसे पूर्व या भोजनोत्तर जब चाहें सेवन करें। उष्ण प्रकृतिवालोको शतिल द्रव्योंके साथ देना चाहिए। आमाशयको बल प्रदान करनेके लिये परमोपयोगी भेपज है। यह मुखमें सुगध उत्पन्न करती, शरीरके वर्णको निखारती और साफ करती तथा दिलकी धडकन एव भयमें लाभकारी है।

जुवारिश (खाडव)—माजूनकी जातिका कल्प जो साधारणत आमाशयके रोगोके लिये प्रस्तुत किया जाता है (व्याख्या पृ० १९० पर देखें)। जुवारिशकी कल्पनामें भेपजकल्पना विपयक उन समस्त सिद्धातो एव सूचनाओका

ध्यान रखना चाहिये जिनका माजूनके प्रकरणमें उल्लेख किया गया है। जवारिशके द्रव्यो (उपादानो) का चूर्ण किंचित् दरदरा (खरदरा वा मोटा) रखा जाता है। परतु यह कोई अनिवार्य नियम (शर्त) नही है। इसमे औषध द्रव्योको मधु और शर्करा या मिश्रीकी चाशनीमें मिलनेके उपरात एक पात्रमें रख छोडते है।

वक्तव्य—आयुर्वेदमे 'खाडव' इस प्रकारके स्वादिष्ट एव पाचन कल्प है। खजाइनुल अदवियाके अनुसार हिंदीमें उसके लिये **चटनी** शब्दका व्यवहार होता है।

अ(इ)तरीफल (त्रिफला रसायन)—माजूनकी जातिका वह कल्प जिसमें त्रिफला (हड—हलैलाजर्द, वहेडा और आँवला) प्रधान उपादानके रूपमें प्रविष्ट होता है (व्याख्या पृ० १९० पर देखे)। अ(इ)तरीफल-कल्पनामें उन समस्त नियमो और सूचनाओका पालन करना चाहिए, जिनका निरूपण माजूनके प्रकरणमें किया गया है। इसकी कल्पनामें केवल यह अतर है कि हड, वहेडा और आँवला अर्थात् त्रिफलाको वारीक कूट छानकर वादामके तेल या गोघृतसे स्नेहाक्त (चर्व) करके चाशनी (किवाम)में मिलाते हैं। ऐसा करनेसे उसकी शक्ति चिरकाल तक वनी रहती है और किवाम नरम रहता है।

वक्तव्य—अ(इ)तरीफल सस्कृत त्रिफलासे फारसी 'अतरीपल' द्वारा अरवीकृत सज्ञा है। अरवी यूनानी वैद्योने आयुर्वेदसे पारस्य वैद्यो द्वारा प्राचीन समयमें ही इसका ग्रहण अपने वैद्यक ग्रथमें किया। मुतखिवुल्लुगात और वह्‌रुल् जवाहिर नामक अरवी कोशग्रथसे यही निष्पन्न होता है। राजी और शैखके ग्रथोमे भी इस कल्पका उल्लेख मिलता है।

लुवूव—वस्तुत माजूनकी ही जातिका कल्प है, जिसमें गिरियाँ (उदाहरणत वादामकी गिरी, कद्दूकी गिरी, अखरोटकी गिरी, खीरा-ककडीकी गिरी प्रभृति गिरियाँ—मिग्जियात) समाविष्ट हुआ करती है। इसी कारण इसका नाम लुवूव या माजून लुवूव है (लुवूब 'लुब्ब'का वहुवचन है। लुब्ब = गिरी या मग्ज)। लुवूव प्राय वाजीकरणके लिये उपयोग किये जाते हैं। इसकी कल्पनामें माजूनमें लिखित समस्त नियमो और सूचनाओका पालन करना चाहिये।

मुरव्वा (फलखड)—फलोको पकाकर या विना पकाये खाँड या मधु आदिकी चाशनी (किवाम)में रख छोडते है, यही मुरव्वा कहलाता है। अरवी मुरव्वा शब्दका अर्थ 'पालन किया हुआ (परवर्दा)' है। मुरव्वा वस्तुत परिपालित (परवर्दा) फल है, जिनका परिपोषण (तरवियत) किवाम (चाशनी)में होता है। **मुरव्वा कल्पना-विधि**—जिस फलका मुरव्वा वनाना हो, उसको छीलकर या वैसे ही जलमे इतना पकाये कि वह गलकर नरम हो जाय और जलाश सूख जाय। फिर चीनी का पाक वनाकर उसको पाकमें डाल दें। आगामी दिवस किवाम पतला हो जाया करता है। इसलिये मुरव्वा सहित किवामको पुन इतना पकायें कि चाशनी ठीक हो जाय। इसके वाद उतारकर रख दें। यदि तीसरे दिन किवाम पुन कुछ पतला हो जाय, तो फिर पकाकर ठीक कर लें। मुरव्वा डालनेके लिये फल खूब पके हुये और वडे लिये जायें। परतु आमका मुरव्वा पके आमोमे नही, अपितु कच्चे आमो (अविया)से वनाया जाता है। यदि फलोको छीलकर (जिनके छीलनेकी आवश्यकता न हो उनको वैसे ही) वाँसकी तीली या लोहेकी पतली छट (सीख)से गोदकर पकायें। इसके उपरांत उक्त विधिसे किवाममें डालें, तो उससे किवाम फैलकर अदर वहुत अच्छी तरह शोषित हो जाता है, और फलका कुस्वाद वहुत कम हो जाता है। **वेलगिरीका मुरव्वा**—इसका छिलका दूर करके और उसके गोल-गोल फाँक (काशे) काटकर यथोक्त विधिसे डालना चाहिये।

पेठा (कूष्माड)का मुरव्वा—यदि पेठेका मुरव्वा वनाना हो, तो उसको छीलकर उसके अदरसे वीजोको निकालकर चार-चार अगुलकी मोटी फाँकें काट लें और एक पात्रमें आधे तक जल भरकर उसके मुँहपर कपडा वाँधें। कपडेके ऊपर पेठेकी काशें रखकर ढक्कनसे वद करके नीचे अग्नि जलाये जिसमें जलके वाष्पसे फाँके गल जायें। इसके वाद फाँकोंको चाशनीमें डालकर उक्त विधिका अवलवन करे। **गाजरका मुरव्वा (मुरव्वाएँ गज़र)**—गाजरका मुरव्वा वनानेके लिये पहले गाजरको छीलकर और भीतरसे उसका कडा भाग (हड्डी) निकालकर फाँके (काशें) वनायें और पेठेकी तरह मुरव्वा प्रस्तुत करे। **सेव, नासपाती और आमका मुरव्वा**—आम, सेव, विही, नासपाती इत्यादिका यदि मुरव्वा वनाना हो, तो उनको छीलकर यथोक्त विधानके अनुसार मुरव्वा

डालें। हडका मुरब्बा (मुरब्बा हलला)—यदि शुष्क हडका मुरब्बा डाला जाय, तो उसको प्रथम कुछ दिन जलमें भिगो रखें। फिर उबालकर यथाविधि मुरब्बा कल्पना करें। यदि हड ताजे उपलब्ध हो, तो अन्य फलोंकी भाँति इसका मुरब्बा बनाया जाय। नारंगी और सतराका मुरब्बा—नारंगी और सतरा इत्यादिका मुरब्बा डालना हो, तो उनको विना छीले गोदकर यथाविधि जलमें पकायें और मुरब्बा कल्पना करें। आमलेका मुरब्बा—ताजे हरे आमलोंको सूइयोंकी कुच्ची (कोचना)से (जो इसी प्रयोजनके लिये बनाई जाती हैं और जिसमें पाँच-छ मोटी-मोटी सूइयाँ होती हैं) अच्छी तरह गोदें। इसके उपरात उन्हें दो-तीन घटे चूनाके पानी (चूर्णोदक)में भिगोये। फिर अग्नि पर पकाकर वायुमें फैलायें जिसमें बाहरका सपूर्ण जल शुष्क हो जाय। इसके उपरात यथाविधि चाशनीमें डालें और दूसरे एव तीसरे दिन फिर पकाकर चाशनीको गाढी कर ले।

चदनका मुरब्बा (मुरब्बा सदल)—यह चदन-काष्ठका मुरब्बा नही होता, जैसा कि इसके नामसे प्रकट रूपमें समझा जाता है, अपितु वास्तवमें यह पेठेका मुरब्बा है, जिसको चदनकी सुगधसे वास दिया जाता है।

गुलकद, गुलशकर और अगबीन—इन नामोंके कल्प वस्तुत मुरब्बा हैं, जिनमें फलोके स्थानमें "पुष्प" शर्करा और खाँड (शकर व कद)के किवाम (चाशनी)में (गुलकद व गुलशकर) या मधुके किवाममें (गुल अगबीन =जुलञ्जबीन) परिपालन (परवर्दा) किये जाते हैं। गुलकदकी व्याख्या पृ० १८९ पर देखें।

"गुल"का अर्थ यद्यपि गुलाब पुष्प है और प्रारभमें प्रथमत इसीसे गुलकद आदि कल्पना किये गये, तथापि अधुना कतिपय अन्यान्य पुष्पोसे भी ऐसे कल्प बनाये जाते हैं और उनको भी गुलकद ही कहा जाता है—उदाहरणत गुलकद सेवती आदि। गुलकद बनानेकी विधि—गुलाबके जिन पुष्पोका गुलकद बनाना हो, उनकी पखडियाँ लेकर शर्करा या खाँड अर्थात् बूरा या बारीक पिसी हुई मिश्री या शुद्ध मधुसे मलकर रख देते हैं। शर्करा आदि मधुर द्रव्य पुष्पोके समभागसे लेकर अढाई गुना तक मिलाना उत्तम और चौगुना तक विहित है। परतु उक्त अनुपातसे अधिक मीठा मिलानेसे यथानुपात शक्ति कम होती जाती है। आफताबी और आबी भेदसे गुलकद दो प्रकारका होता है। गुलकंद आफताबी (सूर्यपुटी पुष्पखड)—उस गुलकदको कहते हैं जो पुष्पों और मीठाको परस्पर मिलाकर और पात्रमें डालकर दो सप्ताह तक धूपमें रखकर कल्पना करते हैं। इस बीचमें दो-तीन बार साधारण रूपसे उसे मल देते हैं। इसमें मृदुकारिणी शक्ति (कुव्वत मुलय्यिन) अधिक होती है। गुलकद आबी (जलसिद्ध पुष्पखड)—उस गुलकदको कहते हैं जो पुष्पो और मीठेको एक साथ किसी ऐसे पात्रमें जिसका चतुर्थांश खाली रहे डालकर पात्रका मुँह बद करके तीन सप्ताह पर्यंत जलमें गले तक रखकर बनाते हैं। इस गुलकदमें शीतल (तबरीद) और स्निग्ध (तरतीब) गुण होता है। जो गुलकंद शर्करा—चीनी आदिके स्थानमें मधुसे बनाया जाता है, उसको गुलकद असली या जुलञ्जबीन (आयुर्वेदमें मधुकृत पुष्पखड या पुष्पमधु) कहते हैं। गुलकद असली (मधुकृत गुलकद)में विरेचनीय और कफनि सारणकी शक्ति अधिक होती है। गुलकद कल्पनाके लिये यदि ताजे पुष्प उपलब्ध न हो, तो सूखे फूलों को गुलाब पुष्पार्क या किसी अन्य उपयुक्त अर्क या जलमें कुछ देर तक भीगा रखनेके उपरात निकालकर और मीठा मिलाकर गुलकद कल्पना कर सकते हैं। गुलकद माहताबी (चद्रपुटी पुष्पखड)—गुलकदका एक भेद 'माहताबी (चद्रपुटी)' भी है। यह गुलचाँदनीसे बनाया जाता है। इसे सूर्यके स्थानमें चद्रमाकी चाँदनीमें रखा जाता है। अन्यान्य गुलकद—सामान्यत गुलकद सज्ञासे वही कल्प प्रसिद्ध है, जो गुलाबके फूलों (गुलसुर्ख)से बनाया जाता है। जो गुलकद अन्यान्य पुष्पोंसे कल्पना किये जाते हैं, वे उन पुष्पोंके नामसे अभिधानित किये जाते हैं, उदाहरणत गुलकद सेवती, गुलकद नस्तरन, गुलकद अमलतास इत्यादि। गुलकदका पात्र—गुलकदको अन्य पाकसिद्ध कल्पोंकी भाँति मिट्टीके रोगनी (स्नेहाक्त), या चीनी या काँचके पात्रमें रखना चाहिये। धातुके पात्रमें इसका रखना वर्जित है।

•

प्रकरण २३

हुबूब[1] (गुटिकाएँ–गोलियाँ)

लुब्दी—'कल्क' हिंदी भाषाका शब्द है। लुब्दी उस अर्ध-घन द्रव्यको कहते है, जो गूँधे हुये आटेकी तरह होता है और जिससे गुटिकाएँ (हुबूब) और चक्रिकाएँ (अक्रास) बनाई जाती हैं। लुब्दी कभी चूर्ण बनाये हुये औषधद्रव्यसे बनाई जाती है। उक्त अवस्थामें शुष्क चूर्णको आर्द्र एव विलग्न करनेके लिये कोई प्रवाही या अर्ध प्रवाही वस्तु मिलानी पडती है, और कभी आर्द्र द्रव्यको खरल आदिमें पीसकर बनाई जाती है, चाहे वह द्रव्य स्वय तर हो या कोई तर वस्तु उसके साथ मिलाई गई हो। उपादानका कूटना-पीसना[2] और लुब्दी बनाना—उक्त दोनों अवस्थाओं (आर्द्र या शुष्क चूर्ण रूप)मेंसे चाहे जो भी अवस्था हो, गुटिकाके उपादान अत्यत महीन होने चाहियें। यह उपादान जितने अधिक महीन होंगे, गोली उतना ही सुदर और सरलतापूर्वक बन सकेगी। गोलीके नुसखामेंसे जो द्रव्य अल्प प्रमाणमें और कडा हो जैसे—मुक्ता और अन्यान्य पाषाण, उनको अन्य द्रव्योंसे पहले बारीक खरल कर लेना चाहिये। इसके उपरात शेष द्रव्योंको अलग-अलग कूट-छानकर अच्छी तरह मिलायें और थोडी देर खरल करें, जिसमें एक दूसरेके घटक परस्पर भले प्रकार मिल जायँ। फिर जल या किसी पिच्छिल द्रव्यका लबाब, मिलाकर, जिसमें गोली बाँधना अभीष्ट हो, मिलाकर गूँधें और लुब्दी बनाकर गोलियाँ (गुटिकायें—हुबूब) बनायें। कभी कभी नुसखाके उपादान अलग-अलग कूटे छाने नही जाते। प्रत्युत खरलमें एक साथ पीसे जाते हैं। उसकी विधि यह है कि जो द्रव्य वजन (तौल)में सबसे कम होता है, पहले वही पीसा जाता है, इसके पश्चात् उसी खरलमे अन्य द्रव्य डालकर पीसा जाता है जिसका वजन पहलेसे अधिक होता है। इसी प्रकार आगे समझें। सखिया जैसे विष द्रव्योंके पीसनेके विषयमें जिनका प्रमाण बहुत ही अल्प है, कभी-कभी यह निर्देश किया जाता है कि प्रथम उनके साथ कोई कठिन द्रव्य (जैसे—वशलोचन)दुगुने प्रमाणमें मिलाकर पीसा जाय। इसके उपरात अन्य उपादान मिलाये जायँ और देर तक मिलाये जायँ, जिसमें कही ऐसा न हो कि सखिया जैसे विषैले द्रव्यका प्रमाण कुछ गोलियोंमें अधिक और कुछमें कम हो। तात्पर्य यह कि लुब्दी बनाते समय प्रबल कार्यकर (कवियुल् अमल) और उग्र वीर्य औषधद्रव्यके पीसने और परस्पर मिलानेमें (चाहे आर्द्र हों अथवा शुष्क) काफी अतिशयोक्तिसे काम लेना चाहिये। वरन् बहुत सभव है कि कुछ गोलियोंमें ऐसे वीर्यवान् एव प्रभावकारी द्रव्यका प्रमाण इतना अधिक हो कि उससे रोगीके शरीरमें विषाक्त लक्षण उत्पन्न हो जायँ, या उनका कर्म आवश्यकतासे अधिक प्रकाशित हो जायँ। यदि नुसखामें मस्तगी पडी हो, तो उसको यथोक्त विधिके अनुसार अलग बहुत हलके हाथसे खरलमें बारीक कर लें। इसके बाद अन्यान्य औषधद्रव्योंके साथ हलके हाथसे मिलायें। यदि बादामकी गिरी, कद्दूके बीजोंकी गिरी आदि जैसे स्नेह द्रव्य हों, तो उनको अलग बारीक पीसकर मिलाना चाहिये। यदि गोली (गुटिका)के उपादानोमें गूगल, रसवत, अहिफेन अथवा कोई अन्य इस प्रकारके न पिसनेवाले या कस्तूरी, केसर प्रभृति सुगधद्रव्य हो तो उनको जल या अर्क प्रभृतिमें भली भाँति घोटकर अन्य बारीक पिसे हुये औषधद्रव्य मिलाकर लुब्दी बनाकर गोलियाँ बनायें। यदि कपूर, सत अजवायन, सत पुदीना, लौंगका तेल प्रभृति जैसे द्रव्य नुसखाके उपादान हो, तो उनको भी अन्य औषधद्रव्योंके साथ बडी सावधानीपूर्वक देर तक पीसना और मिलाना चाहिये। यदि वटी-योग (नुस्खयेहबूब)में कुचला हो तो उसको शुद्ध करनेके बाद अभी जबकि वह नरम हो, उसे पीस लिया जाता है, क्योंकि यह अत्यत कडा द्रव्य है

---

१ यह 'हब्ब'का बहुव० है, जिसका अर्थ 'गोली' है।

२ औषधद्रव्योंके कूटने पीसनेके विषयमें आवश्यक सूचनाएँ पृ० २२७-२२८ पर देखें।

और उसका पिसना और कुटना दुस्तर होता है। जब वह शुष्क होता है, तब रेतीसे पहले उसका बारीक बुरादा कर लिया जाता है। उसके बाद उस बुरादाको बारीक खरल करके अन्य औषधद्रव्यके साथ मिलाया जाता है। यदि गोलीके योगमें ऐसे उपादान हो जो फौलाद और लोहेके ससर्गसे बिगड जाते हो, उदाहरणत पारा, दारचिकना, रसकपूर, हड, आँवला, गुलाब पुष्प अनारका छिलका और अन्य कषाय एव अम्ल उपादान, तो इन्हे न तो लोहेके पात्रमें कूटना-पीसना चाहिये और (गुलसुर्ख) न उनमें इनकी लुब्दी बनाना चाहिये और न लोहेके चमचा और छुरी आदिसे काम लेना चाहिये।

लुब्दीका उचित किवाम बनाना—जब औषधद्रव्य लेसरहित एव भुरभुरे होते है, जिनसे गोली बँधना दुस्तर होता है या बँधनेके अनतर शीघ्र टूटनेकी आशका होती है, तब लेस उत्पन्न करनेके लिये उनके साथ कोई लवाबदार या चाशनीदार (किवामदार) द्रव्य मिला दिया जाता है, जिससे वह सरलतापूर्वक लेसदार लुब्दीका रूप धारण कर लेता है। जो गोलियाँ उससे बनाई जाती है, वह देर तक टूटने नही पाती, उदाहरणत बबूलका गोद कतीरा, बिहदाना और इसबगोल इनका लवाब, मधु, मिश्री काशर्वल आदि। ऐसे द्रव्योको राबिता[1] या बद्रका[2] कहा जाता है।

प्राय नुसखो (योगो)में ऐसे लेसदार राबिताका उल्लेख पाया जाता है। जैसे, यह लिखा होता है कि लुआब इसबगोल, लुआब बिहदाना या गोदके लुआबमें गोलियाँ बनायें। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसे लवाबदार पदार्थोंको जलमें भिगोकर उनसे लवाब प्राप्त किया जाय। फिर उस लवाबमें औषधद्रव्योका शुष्क चूर्ण मिलाकर लुब्दी तैयारकी जाय, जिससे गोली सरलतापूर्वक बँध सके। कभी-कभी बहुत छोटी गोलियोको बडा करनेके लिये अन्य द्रव्य (उदाहरणत कतीरा, बबूलका गोद, श्वेतसार, वशलोचन, सत मुलेठी आदि) मिलाकर लुब्दीका आयतन बढा लिया जाता है। जब गोलीके योगमें शुष्क वानस्पतिक उपादान हो, तब उनकी लुब्दी बनानेके उपरात कुछ देर तक छोड देना चाहिये, जिसमें शुष्क औषधद्रव्य भीगकर कोमल एव मुलायम हो जायँ और लुब्दीमें लेस आ जाय।

यदि लुब्दी अधिक लेसदार और चिपचिपी हो, जिसमे गोलियाँ बाँधना दुस्तर हो, तो गोली बाँधते समय हाथ तथा उँगलियोमें बादामका तेल या घी प्रभृतिसे चिकना कर लिया करें या चूर्ण किया हुआ निशास्ता (श्वेतसार) चूर्ण की हुई खडी मिट्टी, दालचीनी आदि चूर्ण, मुलेठीके चूर्ण आदिकी सहायतासे सरलतापूर्वक गोलियाँ बाँधी जा सकती है।

यदि गोलियोकी लुब्दी अधिक कोमल एव मृदु हो और उससे गोलियाँ बनना कठिन हो, तो उसके द्रवाशको उत्ताप पहुँचाकर शुष्क कर सकते है। परतु यदि लुब्दी अधिक कडी हो और उसके अवयव बेहरोजाकी भाँति उत्ताप पर नरम होनेवाले हो, तो गरम खरलमें पीसनेसे उसके अवयव नरम हो जायँगे और गोलियाँ सहजमें बन जायँगी।

गोलीका सरक्षण—लेसदार उपादान घटित गोलियाँ बननेके उपरात आपसमे चिपक जाती हैं। इससे बचानेके लिये पूर्वोक्त द्रव्य (निशास्ता, खडिया आदि)का चूर्ण छिडककर गीली गोलियोकी बाह्य सतहको शुष्ककर लिया जाता है। जिन गोलियोमें नमक-शोरा इत्यादि पिघलनेवाले (जाज़िब रतूबत) उपादान हो या जिनमें कपूर, सत अजवायन, सत पुदीना जैसे सूक्ष्म एव उडनशील उपादान हो, तो कभी उन पर सोने-चाँदीका वर्क चढा दिया जाता है, कभी उन पर कोई निरापद स्नेह चढा दिया जाता है जो एक स्तर बनकर गोलियोको घेर लेता है। फिर उनको शीशोमे वायुसे सुरक्षित और भली भाँति डाट से बद करके रखा जाता है।

---

१ 'राबित' अरबी सज्ञाका अर्थ लगाव, सबध या मेलजोल है। राबिताका अर्थ मिलानेवाला या सयोजक है।

२ 'बदरिक़ा' बदरहा का अरबीकृत है। इसका साधारण अर्थ 'रक्षक' और 'पथप्रदर्शक' है।

राबित (राबितात)—यह ऊपर बताया जा चुका है, कि कभी-कभी गोली (गुटिका)के उपादानो के साथ कोई घन, अर्ध-घन या प्रवाही द्रव्य इसलिए मिलाया जाता है, कि उससे लुब्दीका किवाम (भौतिक स्थिति) लेसदार और गोली बनाने योग्य हो जाय। इन द्रव्योको 'राबिता' कहा जाता है।

उक्त प्रयोजनके लिए अधोलिखित द्रव्य राबिताकी भाँति उपयोग किये जाते हैं —(१) बबूलका गोद (समग अरबी)—बबूलका गोद कभी लबाब (लुआब)के रूपमें मिलाया जाता है और कभी चूर्णके रूपमें। किंतु इसमें एक दोष यह है कि जब गोलियां शुष्क हो जाती हैं, तब वह कडी हो जाती है। इसलिये उनके घुलने और पाचन होनेमें विलब होता है। पर यदि बबूलके गोंदका लबाब, मधु और अगूरका शर्बत मिलाकर एक यौगिक लआबदार शर्बत बना लिया जाय और इसे राबिताकी भाँति काममें लाया जाय, तो इससे उक्त दोष दूर हो जाता है। (२) कतीरा—कतीरा भी कभी-कभी लबाबके रूपमें नुसखाके उपादानोंके साथ मिलाया जाता है और कभी चूर्ण रूपमें। इनके अतिरिक्त कभी-कभी कतीरा-घटित योग इस प्रयोजनके लिए काममें लिये जाते हैं, जैसे—कतीरेका चूर्ण १ तोला, मधु ३ तोला, अगूरका शर्बत ७ तोला, जल १ तोला। (३) गावजबान, इसबगोल, बिहदाना—बबूलका गोंद और कतीराकी भाँति कभी-कभी वर्ग गावजबान, इसबगोल और बिहदाना आदि भी राबिताकी भाँति उपयोग किये जाते हैं। इस प्रयोजनके लिए अधिकतया इनका लबाब मिलाया जाता है। (४) निशास्ता और आटा—निशास्ता, गेहूँ और जौका आटा, रोटीका गूदा, यवमड (आश जौ) इत्यादि भी कभी-कभी गोली बनानेके लिए राबिताकी भाँति उपयोग किये जाते है। (५) एरडतैल (रोगन बेद अजीर), मोम और साबुन—कभी-कभी ये द्रव्य भी राबिताकी भाँति उपयोग किये जाते हैं। अस्तु, कपूरकी गोलियाँ (कर्पूर वटिकाएँ) बनानेके लिए एरडतैल मिलाया जाता है जिसके साथ कभी साबुन भी सम्मिलित किया जाता है और कभी बिना उसके। इसी प्रकार कपूर और अन्य सूक्ष्म तैलकी गोलियोके लिए कभी मोमसे राबिताका काम लिया जाता है। परतु उसमें एक झझट यह है कि ऐसी गोलियाँ बहुत देरमें पचती हैं। चूर्ण किये हुए साबुनसे जो गोलियाँ बनाई जाती हैं, वह न अत्यधिक कडी होती हैं और न अत्यधिक कोमल। इसलिये उक्त प्रयोजनके लिए यह एक उत्तम पदार्थ हैं। परतु जिन गोलियोंमें अम्ल एव कषाय उपादान हों, उनमें इस प्रयोजनके लिए साबुन न मिलाना चाहिये। (६) गुलकद, मुलेठी, खतमी और एलुआ क्वाथ—इन द्रव्योको भी कभी उक्त प्रयोजनार्थ काममें लिया जाता है। मुलेठीका चूर्ण और खतमीका चूर्ण यह उभय द्रव्य इस प्रकारके हैं कि जब ये लुब्दीमें सम्मिलित किये जाते हैं, तब ये द्रवाशको शोषण करके उनमें एक समुचित (निश्चित) लेस उत्पन्न कर देते हैं। एलुआ क्वाथ (जोशाँदा सिब्र)—एलुआका क्वाथ कतिपय रालदार गोंदोकी गोलियाँ बनानेमें काम आता है। गुलकद—इसका उपयोग उक्त प्रयोजनके लिए अब बहुत ही अल्प होता है, क्योंकि इससे गोलीका आयतन बढ़ जाता है। (७) मधु, शीरा, अगूरका शर्बत आदि—जो गोलियाँ इन द्रव्योंसे बनाई जाती हैं, वे शुष्क होनेपर अधिक कडी नही होती। इसलिये उक्त प्रयोजनके लिए ये उत्कृष्ट द्रव्य हैं। शीरखिश्त भी मानो एक प्रकारकी शर्करा है, इसलिये इसको भी उसी कोटिमें प्रविष्ट होना चाहिये। (८) जल, सुरासार (रूह शराब) इत्यादि—गुटिका कल्पनाके लिए प्राय लुब्दियोमें जल मिलाना पडता है। इसके मिलानेमें बडी सावधानीकी जरूरत है, जिसमें लुब्दीका किवाम आवश्यकतासे अधिक पतला न हो जाय। जिन द्रव्योंमें चूर्ण किया हुआ बबूलका गोद, चूर्ण किया हुआ कतीरा, साबुनका चूर्ण या इसी प्रकारका अन्य शुष्क राबिता प्रविष्ट किया जाता है, उनमें जल मिलाना अनिवार्य है। कभी-कभी रालदार भुरभुरे द्रव्योकी गोली बनानेके लिये मद्य एव मद्यसार (अलकुहोल) मिलाते हैं, जिनसे ये रालदार द्रव्य मिलकर नरम और लेसदार बन जाते हैं तथा उनका गोली बनाना सरल हो जाता है।

गोली बाँधना—प्रयोजनानुसार गुटिकाएँ छोटी और बडी, विभिन्न आकार-प्रकारकी बनाई जाती हैं। परतु इनकी विशेषता यह है कि ये खूब गोल, चिकनी एव समतल हो और आयतनके विचारसे सब एक बराबर हो। औषधनिर्माताके लिये यह लज्जाका स्थान है कि उसकी बनाई हुई गोलियाँ कोई छोटी हों और कोई बडी, कोई

चिकनी और कोई खुरदरी हो, कोई गोल हो और कोई वेडौल। गोलियाँ तीन प्रकारसे वनाई जाती है—हाथसे गोली वनाना—सवसे सरल विधि यह है कि इसमें केवल नैसर्गिक उपकरण (हाथ और उँगलियों)से काम लिया जाय। इस पद्धतिमें हाथ और उँगलियोकी सहायतासे लुब्दी (लुगदी)की वत्ती वनाकर उससे गोलियाँ वनाते जाते है। यदि गोलियाँ छोटी वनानी हो, तो वत्तियाँ वारीक वनाई जाती है। यदि गोलियाँ वडी वनानी हों तो प्रयोजनानुसार वत्तियाँ मोटी रखी जाती है। इस वत्तीसे गोलीके प्रमाणके वरावर टुकडे काट लेते और उँगलीसे घुमा-घुमाकर गोली वना लेते हैं। कभी हथेलीकी सहायतासे भी गोलियाँ गोल की जाती है। छुरी और पटरी—दूसरी विधिमें एक छुरी और चिकनी पटरी उपयोगकी जाती है। इस पटरीको लौह् मुखत्तत (रेखाङ्कित पट्टिका) इस कारण कहते हैं कि इस पर एक ओर मापके लिये आडी और खडी रेखायें (खुतूत) अकित होती है। यह पटरी सामान्यतया चीनीकी हुआ करती है। इस पटरी (लौह-पट्टिका) पर लुब्दीका एक निश्चित प्रमाण रखा जाता है जिससे गोलीके प्रमाणके अनुसार छुरीकी सहायतासे निश्चित मोटाईकी वत्ती वना ली जाती है और इस वत्तीकी लवाई पटरीको आडी रेखाके वरावर रखी जाती है। इस प्रकार इस आडी रेखाके समानातर उक्त वत्तीको रखकर छुरीकी धारसे उसके वरावर टुकडे काट लिये जाते है। इन टुकडोके वरावर काटनेमें वह छोटी-छोटी खडी रेखायें पथ-प्रदर्शन करती है जो आडी वडी रेखाको वरावरके कतिपय भागोमें विभक्त कर देती है। इन समविभक्त भागोको उँगलियोकी सहायतासे या किसी और रीतिसे गोलीके रूपमें गोलकर लिया जाता है। यह विधि पूर्वोक्त प्रथम विधिसे श्रेष्ठ इस कारण है कि इसमें गोलियाँ छोटी-वडी नही होती। आजकल गुटिका निर्मापक यत्र (आलये तह्वीव या मुहव्विव)भी वने हैं, जिनसे एक समान आकार और प्रमाणकी गोलियाँ वनाई जा सकती हैं। इस तीसरी विधिमे गोलियाँ वनानेके लिये एक यत्र उपयोग किया जाता है जिसको आलये तह्वीव[1] (मुहब्विव) कहते हैं। इसके ऊर्ध्व और अध ऐसे दो भाग होते हैं—(१) ऊर्ध्वभाग 'दस्ता' या 'मुठिया' कहलाता है, और (२) अधो भागमें वहुत-सी लवी-लवी नालियाँ वनी होती है। उन नालियोके वीचमें उभरे हुये तीक्ष्ण किनारे होते है। इन नालियोकी गहराई और चौडाई छोटी वडी गोलियोंके प्रमाण और आयतनके अनुसार न्यूनाधिक होती है। यह असभव है कि एक ही उपकरणसे प्रत्येक प्रमाणकी गोलियाँ वनाई जा सकें। अघोभागमें गोलियोकी सख्या निर्धारित करनेके लिये रेखायें और चिह्न भी होते हैं। इस उपकरणमें यह खूवी है कि उन नालियोकी सख्याके अनुकूल एक समयमें वहुसख्यक सम प्रमाणकी गोलियाँ वन जाती हैं। इस उपकरणके द्वारा गोली वनानेकी रीति यह है—उपयुक्त किवाम (स्थिति)की लुब्दी वनाकर मुठियाँके पृष्ठसे एक गोल एव लवी सी वत्ती वना ली जाती है जो किसी तरफसे मोटी-पतली नही होती। वत्ती वनाते समय किंचित् वारीक पिसी हुई खडियाँ या निशास्ता छिडक दिया जाता है जिसमें उसकी चिपक जाती रहे। जितनी गोलियाँ वनानी हो, उस वत्तीकी लवाई उन चिह्नोंके अनुसार होनी चाहिये जो सख्या-निर्धारणके लिये उस पर वने हुये होते हैं। फिर उस वत्तीको सावधानीके साथ उठाकर उस उपकरणकी नालीदार पृष्ठ पर रख दें। इसके उपरात ऊपरका भाग (ऊर्ध्व भाग) अर्थात् दस्ता उस पर रख कर उसे आगे-पीछे दो-चार वार चलायें और चलाते समय दवाव वनाये रखें। उक्त क्रियासे एक समयमें वहुत सी समाकार गुटिकाएँ वन जायेंगी। इससे जो गुटिकाएँ प्रस्तुत होती हैं, कभी-कभी वे सम्यक् गोल नही होती और उनको हाथ या अन्य उपकरणसे गोल वना दिया जाता है।

गोल करनेकी विधि—गोलियोको गोल करनेकी विधि यह है कि पटरीके समतल एव मसृण (चिकने) धरातल पर उन गोलियोको रखकर और किंचित् चूर्णकी हुई खडिया या निशास्तेका चूर्ण छिडक कर एक डिवियाकी आकृतिके उपकरणसे जिसका अध पृष्ठ चिकना और किंचित् नतोदर होता है, उनको घुमाते हैं।

इस डिवियाके चक्कर तथा चक्राकार गतिसे विरूप एव विपम गुटिकाएँ गोल हो जाती हैं।

---

१ 'आलये तह्वीव' (अ०) = गोली बाँधनेका यत्र, 'मुहब्विव = गोली वनानेवाला'। सस्कृतमें इसे 'गुटिका निर्मापक यन्त्र' कहते है।

पत्रावगुण्ठन (वरक चढाना)—कभी-कभी गुटिकाओ पर सोने या चाँदीके पत्र (वरक—तवक) चढाये जाते हैं, जिनके अनेक उद्देश्य हैं—(१) इन पत्रो (वरको, औराक)से कुस्वादु गोलियोका कुस्वाद (बुरा स्वाद) छिप जाता है। अस्तु, हुब्ब इयारिजके सेवनकालमें यह निर्देश किया जाता है, कि उन पर चाँदीका पत्र (वरक) चढा लिया जाय, जिसमें उक्त गोलीमें पडे हुये एलुयेकी कडुआहटसे तालू और जिह्वा बची रहें और उनका उपयोग सभव हो। (२) कुछ गुटिकाएँ अपने विशिष्ट उपादानोंके कारण वायुमडलसे आर्द्रताको शोषित करके आर्द्र (नम) हो जाया करती हैं। उन गोलियो (गुटिकाओं) पर जब पत्र (वर्क) चढा दिया जाता है, तब वह बहुत हद तक आर्द्रतासे सुरक्षित हो जाती हैं। (३) वर्क चढानेसे गोलियाँ सुदर एव प्रियदर्शन हो जाती है, जिससे उनके सेवनमें प्रकृतिकी रुचि वढ जाती है। अस्तु हुव्व जवाहिर (रत्नवटिका) जैसी मूल्यवान गुटिकाये इसी प्रयोजनसे पत्राव-गुण्ठित (मुत्तव्वक)की जाती है।

वरक चटाने (पत्रावगुठन)की रीति—गोलियो पर वरक चढानेकी विधि यह है, कि किसी चिकनी एव समतल पृष्ठके सूखे पात्रमें वर्क (पत्र) फैलाकर उस पर किसी कदर आर्द्र (न विल्कुल शुष्क और न बहुत अधिक गीली) गोलियाँ डाल दी जायें। फिर उक्त पात्रको दो-एक मिनट तक गोलाईमें खूब घुमाया जाय। उक्त पात्रका भीतरी पृष्ठ मसृण और चिकना होना चाहिए। उक्त पात्रको गोल होना चाहिये जिसमे चक्रमणकी गति उनमें सरलतया उत्पन्न की जा सके। यह गोल पात्र शीशा, चीनी, धातु या लकडीका हो सकता है, जिसपर ऊपरसे जम-कर बैठजानेवाला ढकना भी हो। गुटिकायें यदि शुष्क हो, तो उनको आर्द्र (गीला) करनेके लिये प्रायश बवूलके गोंदका लवाव उपयोग किया जाता है। लवावके दो तीन विंदु मध्यम श्रेणीकी दस-बारह गोलियोंको आर्द्र (नम) करनेके लिये सामान्यत पर्याप्त हुआ करते है। इस वातकी सावधानी अनिवार्य है, कि गोलियोमें आर्द्रता और चेंप (चिपचिपाहट) अधिक न हो, वरन् वरक भी अधिक व्यय होगे और स्वच्छता एव सुदरतापूर्वक उन पर वरक भी न चटेंगे। चाँदी और सोनेके वरक (पत्र) छोटे-वडे हुआ करते हैं, और गोलियाँ भी सदा एक आयतन और प्रमाणकी नही होती। अतएव अनुमान स्थिर करनेमें कठिनाई होती है। पर यदि वरक वडे हो और गोलियाँ मध्यम श्रेणीकी हो, तो एक वरक दस-वारह गोलियोंके लिये पर्याप्त हो जाया करता है। किंतु सामान्यत इस पात्रमें वरक उक्त अदाजसे अधिक डाल दिये जाते हैं जिससे गोलियो पर वरक चढनेके उपरात कुछ छोटे-छोटे टुकडे शेष रह जाते है। उनको फूक मारकर उडा दिया जाता है। कभी कभी सपूर्ण वरकोंके स्थानमें वरकका चूरा उपयोग किया जाता है, जो बाजारमें सस्ता मिलता है।

कभी चीनी या धातुके पात्रमें वरक फैलाकर और उन पर गोलियाँ डालकर उक्त पात्रको विना धूयेंके दीपक (स्पिरिट लप) पर गरम करके चक्कर देते हैं। इससे गोलियों पर अच्छी तरह वरक चढ जाता है।

वक्तव्य—कभी-कभी गोलियोमें ऐसे उपादान होते हैं, जिनसे चाँदीका वरक कुछ कालोपरात काला पड जाता है, उदाहरणत गधक, हीग इत्यादि। इसलिये वरक चढानेमें यह रहस्य दृष्टि-विदु (लक्ष्य)में रहे। इसी प्रकार कभी-कभी गोलीमें ऐसे उपादान होते हैं जिनसे चाँदीका वरक दृष्टिसे ओझल हो जाता है। पारा और चाँदीके बीच मिलनकी एक विशेष युयुत्सा पाई जाती है, जिससे दोनो मिलकर मलगमा[1] बन जाते हैं और चाँदीके वरकका चमकीला पृष्ठ अदृश्य हो जाता है।

शर्करावगुण्ठन (शकर चढाना)—यदि गोलियाँ कुस्वादु हो, तो उनका स्वाद छिपाने के लिये कभी उन पर शर्करा (शकर सफेद)का आवरण चढा दिया जाता है। उसकी सरल विधि यह है—ताँवा, पीतल या किसी

---

१ चाँदी और पाराको परस्पर मिलाया जाय, तो एक अर्ध-घन नरमसी चीज बन जाती है। यह दोनोंका मलगमा (अर्वा) है। आयुर्वेदीय रसतत्रमें इसे द्वन्द्वान (द्वन्द्व-मेलापन) कहते है—"द्रव्ययोर्मर्दनाद् ध्मानाद्द्वन्द्वान परिकीर्तितम्।"

अन्य धातुकी कलईकी हुई रकेबी या उथले पेंदेके प्याला लें जिसका धरातल समतल हो। उस धरातलको चीनीके सादा शर्वतसे आर्द्र कर दें। इसके बाद उस पात्रमें सुखाई हुई गोलियाँ डाल दी जायें और पात्रको घुमाया जाय, जिसमें शर्वतका स्तर गोलियो पर चढ जाय। इस बीचमें पात्रको किसी कदर गरम करते रहें और चूर्ण की हुई शर्करा (जो बहुत बारीक पिसी हुई हो) उस पर छिड़कते रहें। इस क्रियासे गोलियो पर एक श्वेत रगका कठिन आवरण चढ जायगा। यदि आवरण यथेच्छ पर्याप्त मोटा न हो, तो दोबारा यही क्रिया की जा सकती है। तामचीन के बडे प्याले और रकेबीमें भी उक्त क्रिया सपन्न हो सकती है।

सैकल[1] करना (तिलाली[2])—अर्थात् सैकल करके गोलियोको मोतीकी तरह चमका देना। तिलाली मोतीकी तरह चमकदार बना देना। उक्त प्रयोजनके लिये यह तीन कार्य करने पडते है—

(१) सूखी गोलियोंके बाहरी धरातलको किसी गोल पात्रमें शर्वती लुआबसे नम करना। (२) बहुत उत्तम और महीन पिसी हुई खडिया उस पर छिड़कना। (३) उस गोल पात्रको घुमाना और चक्कर देना।

शर्वती लुआब—जो इस उद्देश्यके लिए काममें लाया जाता है, उसके उपादानोका अनुपात यह है—बबूलके गोदका लबाब ४ माशा, सादा शर्वत ४ माशा—इसमें इतना जल मिलाया जाय कि योगसमुदाय तीन तोला हो जाय। अथवा सादा शर्वत २ माशा, कतीरा २ रत्ती, जल इतना जितनेमें योगसमुदाय ३ तोले हो जाय।

गोल पात्रमें सम्यक् शुष्ककी हुई गुटिकाएँ डालकर उपर्युक्त शर्वती लुआबके कुछ बिंदु डाले जाते है। फिर उस पात्रको घुमाया जाता है जिससे गोलियोका बाहरी धरातल और पात्रका भीतरी धरातल नम (आर्द्र) हो जाता है। इसके बाद जरा-जरा सी खडिया छिड़कते जाते और पात्रको घुमाते जाते हैं। इससे समस्त गोलियों पर एक समान स्तर चढता जाता है। फिर उन गोलियोको उस पात्रसे निकालकर दूसरे शुद्ध पात्रमें डालकर तेजीसे चक्कर देते है। इससे उनके बाहरी पृष्ठ पर चमक उत्पन्न हो जाती है। इसको जितना अधिक देर तक और जितना शीघ्रतापूर्वक घुमाया जायेगा, उतना ही उनमें चमक अधिक उत्पन्न होगी।

कभी-कभी दूसरे पात्रके बाद तीसरे पात्रमें उक्त क्रिया की जाती है जिससे उनमे अधिक चमक पैदा हो जाती है। तीसरे पात्रके भीतरी धरातलमें सफेद मोमका एक बारीक-सा स्तर होता है और उस पात्रको प्रथम किसी कदर गरम कर लिया जाता है।

रोगन करना—कभी-कभी गोलियो पर रोगन चढाया जाता है। जिससे वह चमकदार बन जाती है। इस प्रयोजन के लिए प्राय सद्रूस (चद्रस)का रोगन तैयार करके उपयोग किया जाता है। इसके चढानेकी रीति यह है कि चीनी, तामचीनी या शीशाके पात्रमें गोलियाँ डालकर रोगनकी कुछ बूँदें उसमें गिरादें और अच्छी तरह घुमाकर शीघ्रतापूर्वक (अविलब) समस्त गोलियोको किसी फैले हुए धरातल, जैसे किश्ती या रकेबी पर पलट दें। वायु लगनेसे गोलियाँ शुष्क एव चमकदार (रोगनी) हो जायेंगी।

सरेशावगुठन (गिलाफ हुलामी)—कभी-कभी गोलियो पर सरेश (गराऽ—हुलाम) चढा दिया जाता है। इसकी विधि यह है—भक्षणीय सरेश (हुलाम माकूल—बाजारू गदा सरेश नही) एक तोला लेकर चार तोला जलमें गरम करके उसका विलयन (घोल) बना लेवे, और अभी जबकि वह गरम हो उसे छान लें और शीतल होने दें। यदि उसमें झाग या बुलबुले हो तो उसे पुन गरम करें। यहाँ तक कि वायुके बुलबुले लुप्तप्राय हो जायें। प्रयोजनानुसार विलयनको गरम करें और गोलीको सूई की नोक पर चढाकर और सरेश (हुलाम)के उष्ण घोलमे डुबाकर निकाल लेवें और वायुमें उसे कुछ सेकड तक घुमाये। इसी प्रकार प्रत्येक गोलीके लिये एक सूई निश्चित कर देवें। फिर उन सूइयोको जिनके सिरे पर गोली फँसी हुई है दूसरे ओरसे किसी नरम चीजमें गाडकर छोड दें,

---

१ चमकदार बनाना।

२ तिला = सोना।

जिसमे सरेशका स्तर सूख जाय। सूखने पर गोलियोको सूईसे अलग कर ले। सूईकी नोकका छिद्र अलग करने पर स्वयमेव वद हो जाया करता है।

शृगावगुठन (ग़िलाफ कर्नी)—कभी-कभी इन गोलियो पर शृग (कर्न)को पाचक उपादानोके द्वारा विलीन एव परिपाचित करके उससे एक घोल प्रस्तुत करते है। इसके वाद उक्त शृग-द्रव्यके घोलसे गोलियो पर आवरण चढाते हैं। इस प्रकारकी कोषावृत्त गोलियाँ आमाशयमें नही घुलती, प्रत्युत अन्त्रमें पहुँचकर विलीन होती है, जहाँ उनका विलीन करना अभीष्ट होता है।

स्तर और आवरणो (गिलाफो)का आमाशयमे पाचन—जव इस प्रकारकी स्तर या आवरणकी हुई (अवगुठित) गोलियाँ आमाशयमें पहुँचती है, तव शर्करा, रोगन (स्नेह), सरेश इत्यादि आमाशयमें विलीन हो जाते है, जिससे उनके उपादान मुक्त होकर अपना कर्म प्रारभ कर देते है। सोना और चादीके पत्र (वरक) यद्यपि आमाशय और अन्त्रमें परिपाचित नही होते और वरकके रचित (मुतफर्रिक) चमकीले उपादान मलके साथ उत्सर्गित हुआ करते है, परतु यह गोलियोंके धरातल से छूटकर अलग हो जाते है। इसलिये गोलीके कर्ममें कोई वाघा उपस्थित नही होती। (कुल्लियात अदविया)।

गोलियोका उपयोग आदि—यह भी औषध सेवनकी एक उत्तम रीति है। कुस्वादु एव दुर्गधयुक्त औषधियाँ इसी रीतिसे सरलतापूर्वक निगल ली जाती है। मदाग्नि और आमाशयके रोगोमें प्रयुक्त गुटिकाओंके उपादान वहुत वारीक नही होने चाहिये और गोली वडी वाँधी जाय, जिससे वह आमाशयमें कुछ काल ठहरे। शेष गुटिकाओंके उपादान अत्यत महीन होने चाहिए। गोलियाँ छोटी-छोटी वाँधी जायें। जिसमें वे शीघ्र परिवर्तित हो जायें। मस्तिष्कके शोधनके लिये तथा नेत्र एव श्रवणके लिये प्रयुक्त गुटिका या किसी और प्रकारका भेषज रात्रिमें सोते समय लेना चाहिये, जिसमें शाति एव निद्राके कारण आमाशयमें औषध खूव ठहरे और मस्तिष्कमे दोष भली भाँति आकृष्ट हो ऐसा यूनानी वैद्योंका मत है। तिक्त गुटिकाओको शहद या शर्वत इत्यादिके साथ सेवन कराये। विरेचनीय गुटिकाओ की शक्ति दो वर्ष तक शेष रहती है। इसके उपरात ये निर्वल हो जाती है। वीर्यवान् और प्रभावकारी द्रव्य घटित वाजीकरण एव वल्य गुटिकाओंकी शक्ति वर्ष भर शेष रहती है। अहिफेन घटित गुटिकाओकी शक्ति दो वर्ष तक शेष रहती है। अनुकृष्ट एव स्वल्प-वीर्य-द्रव्य घटित गुटिकाओकी शक्ति एक मासके उपरात निर्वल हो जाती है।

कुर्स (चक्रिका-टिकिया)—कुर्स अरवीमें 'टिकिया'को कहते है। इनका वहुवचन 'अक्रास' है। वहुत सी गोलियाँ अधुना टिकियाके रूपमें चपटी वनायी जाती है। इसका प्रचलन दिनो दिन उन्नति पर है। इसका कारण यह है कि यन्त्रोंके द्वारा गुटिका (गोली)की अपेक्षया टिकिया (कुर्स) वनाना सहज है।

कुर्सकी व्याख्या इसी खडमें गतपृष्ठो पर देखें।

प्राचीन समयमें टिकिया हाथसे वनाई जाती थी। वर्तमान समयमें टिकिया वनानेके यत्र (टेव्लेट मशीन) भी मिलते हैं। यत्र विक्रेता अपने यत्रके साथ टेव्लेट निर्माणविधिकी पुस्तक भी देते है। उसको देखकर उस विधिसे टिकिया वनानी चाहिए।

टिकिया वनानेवाले यन्त्रमें छोटी-वडी टिकियोंके लिए विभिन्न प्रकारके साँचे होते हैं जिनमें औषधोको दवाया जाता है। दवावकी अधिकतासे चूर्ण किया हुआ औषधद्रव्य टिकियाका रूप ग्रहण कर लेता है। टिकिया वनानेके लिये गूँधे हुए आटेकी तरह नरम और आर्द्र लुब्दी तैयार नही की जाती, प्रत्युत चूर्ण किये हुए द्रव्यको किसी प्रकार आर्द्र (नम)कर लिया जाता है, जो देखनेमें शुष्क ज्ञात होता है। यदि वह आवश्यकतासे अधिक नरम और तर हो, तो औषध द्रव्य साँचेमें चिपक जाया करे और उसका छूटना कठिन हो। अधिक वारीक चूर्णसे इस यन्त्रमें टिकियाँ नहीं वन सकती। इसलिये औषधद्रव्यके वारीक चूर्णको गोद प्रभृतिका कोई दरदरा चूर्ण मिलाकर दरदरा कर लिया जाता है। यदि हाथसे टिकिया वनाई जायें, तो उस समय गोलीकी भाँति नरम और तर लुब्दी वनानी पडेगी और

उन समस्त नियमो और सूचनाओंका पालन करना पड़ेगा, जो गुटिकाके प्रकरणमें ऊपर बताई गई हैं। टिकिया गोल बनाई जाती है और कभी चौकोर, तिकोना या अंडाकार भी बनाई जाती है ।

वक्तव्य—चक्रिकामें औषधद्रव्योंकी शक्ति सुरक्षित रहती है। विरेचनीय चक्रिका (कुर्स मुसहिला)की शक्ति गुटिकाओंके समीपतर होती है। इसकी मर्यादा माजून और चूर्णके मध्य है। अहिफेन एवं उच्चश्रेणी या अचिंत्यवीर्य औषधघटित चक्रिकाकी शक्ति चार वर्ष तक शेष रहती है। चूर्णकी अपेक्षया चक्रिकामें औषधीय वीर्यकी अधिक रक्षा होती है।

•

प्रकरण २४

लुआब और शीरा कल्पना

(पिच्छा और क्षीरा)

कतिपय योगो (नुसखो)में केवल लवाब होते है, कुछमें केवल शीरे (शीराजात) और कुछमें उभय। चाहे योग (नुसखा)में लवाब (लुआबात) हो या शीरे (शीराजात), उसमें जल या किसी अर्कका उल्लेख अवश्य होता है, जिसमें औषधद्रव्योंका लवाब या शीरा निकाला जाता है। यदि नुसखामें केवल लवाब (लुआबात) हो, तो इसमें कोई हर्ज नही हैं कि औषधद्रव्योंको सारे अर्कमें (१२ तोले या १५ तोले में) भिगो दे और थोडी देरके बाद लकडीके कलम इत्यादि से हिलाकर लवावको छान लें। यदि नुसखामें केवल शीरे (शीराजात) हो, तो औषधद्रव्योको पीसनेके लिये थोडा-सा वही अर्क, जो नुसखे (योग)का उपादान है, उपयोग करना चाहिये। इसके बाद समस्त अर्क मिलाकर वारीक कपडेमें छान लेना चाहिये। पर यदि नुसखामें लवाव और शीरा उभय द्रव्य हो, तो थोडेसे अर्कमें लवाववाले (पिच्छिल) द्रव्यको भिगो दे और थोडे अर्कमें औषधद्रव्योको पीसकर शीरा प्राप्त कर ले। इसके बाद लवाव और शीरा दोनोको मिलाकर शर्वत आदि (जो योगका उपादान हो) हल कर दें। विहदाना, रेशा खत्मी (खत्मीकी जड), वर्ग गावजवान (गोजिह्वा पत्र), इसवगोल प्रभृतिका लवाव इस प्रकार प्राप्त किया जाता है कि इन द्रव्योको जल या अर्कमें भिगो दिया जाता है, और इनके उपरांत मलकर या कलम आदिसे हिलाकर छान लिया जाता है। पन्द्रह-बीस मिनटसे आध घटे तकके कालमें इन द्रव्योंका लवाव निकल आता है। शीतल जल और शरद् ऋतुकी अपेक्षया उष्ण जल एव ग्रीष्म ऋतुमें लवाव शीघ्र निकलता है। शीरोंके औषधद्रव्य अधिकतया पत्थरकी शिला पर पीसे जाते हैं। किंतु इस वातकी सावधानी रखना अनिवार्य है, कि जिस सिल वाटसे घरोमें मसाला (हलदी, मिर्च, प्याज, लहसुन इत्यादि) पीसा जाता है, उससे औषधद्रव्य कदापि न पीसे जायें। कभी-कभी मसालेके सिल-वट्टाको देखनेमें भलीभांति (ठीकरा तक रगडकर) धो लिया जाता है। फिर भी औषधमें मसालेकी गध आ जाती है।

•

हलीब और मजीज

(क्षीरा और मिश्रण)

हलीव—एक औपधद्रव्य जब अन्य औपधद्रव्य या किसी द्रवसे मिलकर क्षीरजैसा (शीरा) दिखलाई दे, तब उसे हलीब (शीरा)[1] कहा जाता है। गाढे तेलोसे हलीव कल्पना (क्षीर कल्पना) की विधि यह है, कि तेलको लवाबदार वस्तुके साथ खरलमें पीसा जाय। परतु पतले तेलो (अदहान लतीफा)से हलीव कल्पनाकी विधि यह है कि पतले तेल (लतीफ रोगन)को लवावके साथ किसी शीशेमें डालकर उसको हिलाया जाय। मिश्रण (मजीज) और हलीव (क्षीर) कल्पनामें यथासभव शुद्ध एव स्वच्छ जल अर्थात् परिस्रुत जल उपयोग किया जाय। वरन् अन्य जलोंसे कतिपय औषधद्रव्य न्यूनाधिक विगड जाते हैं, जिसमें कल्प (मुरक्कव)का वर्ण परिवर्तित हो जाता है। मजीज और हलीव कल्पनामें यदि ववूलके गोदका लवाव, कतीराका लवाव इत्यादिकी आवश्यकता पडे तो, सदा ताजा प्रस्तुत करना चाहिए। देरके रखे हुए लवाब प्राय विगड जाते हैं। हाँ, शरद् ऋतुमें कई दिन तक विकृत नही होते, विशेपत यदि इनको स्वच्छ शीशोमें मुँह तक भरकर रखा जाय और अच्छी तरह डाट लगा दी जाय। यदि मजीज (मिश्रण)में कोई विपैला औषधद्रव्य हो, तो उसे घोंटकर अतमें मिलाना चाहिए। मजीज बनाते समय जल या अर्क आदि इस क्रमसे डालना चाहिए कि नपुआ (पैमाना)में यदि कोई द्रव्य (जैसे शर्वत आदि) लगा हो, तो जल या अर्कसे यह घुल जाय और नुसखामे प्रविष्ट हो जाय।

---

१ 'शीरा' सज्ञाका व्यवहार निम्न अर्थोमें होता है —(१) जलमें पिसा हुआ वह औषधद्रव्य जो न्यूनाधिक सफेद हो, (२) वह सफेद मिश्रण (मज़ीज) जिसमें जलके अदर रालदार या स्नेहमय (रोगनी) द्रव्य निलबित होते हैं, और (३) शर्करा इत्यादिका किवाम। यह दूसरा अर्थ ही यहाँ विवक्षित है।

प्रकरण २६

मर्हम (मलहर)

मर्हमोमें प्राय अधोलिखित द्रव्य आधार (प्रधानोपादान) की भाँति उपयोग किये जाते हैं। मोम, घी, तिलतेल, गुल रोगन (रोगन गुल), सरसोंका तेल, जैतूनका तेल, बादामका तेल, चर्बी आदि। प्राय मर्हमोमें औषधद्रव्योंके साथ मोम और कोई तेल हुआ करता है। उक्त अवस्थामें प्रथम मोम और तेलको गरम करके पिघलाये। जब वह पिघल जाय तब अग्नि परसे उतारे और गोंदकी चीजें योजित करें। फिर अन्य मिले हुए द्रव्य उसमें मिलायें और शीतल होने तक हल किये जायें। मोमके स्थानमें साफ की हुई चर्बी भी तैयार करते हैं। परतु उसमें यह दोष है कि उसमे सड जाने की संभावना रहती है। इसलिए लोबानके साथ मिलाकर पकाकर छान लेते हैं।[1] यदि किसी मर्हममें उशक, गूगल, साबुन और गधाविरोजा-जैसा पिघलनेवाला कोई द्रव्य हो, तो उसको भी मोम और स्नेहके अदर गरम करके पिघलायें। कोई-कोई औषधद्रव्य प्रथम किसी विलायक (जैसे जल तेल)में हल कर लिए जाते हैं। इसके उपरांत आधारद्रव्यमें मिलाये जाते हैं। कोई-कोई औषधद्रव्य शीतल आधारमें (गरम किए बिना) मिलाए जाते हैं और उनको अच्छी तरह घोट दिया जाता है। यदि किसी मर्हममें अडेकी सफेदी या जर्दी या अहिफेन जैसी न पिसनेवाली वस्तु हो, तो तेल और मोमको पिघलानेके उपरात अग्निसे नीचे उतारकर और औषधद्रव्य सम्मिलित करके खूब हल करे। विशेषकर अहिफेनमें अधिक घोटने और हल करनेकी आवश्यकता है। कभी अडेकी जर्दीको उबालकर मरहममें मिलाते है। यदि किसी मर्हममें किसी ओषधिका रस या लबाब हो, तो मोम या तेलमें उस पानी या रसको इतना पकायें कि वह शीतल होने पर मरहम जैसा नरम और मुलायम रह सके, ऐसा न हो कि वह अधिक जल जाय और मरहम बिलकुल कडा हो जाय। मर्हमके औषधद्रव्योको चाहे वे शुष्क हों अथवा आर्द्र, खूब अच्छी तरह पीसना और तरल करना चाहिए। शुष्क औषधद्रव्योको पहले भी सुरमाकी भाँति कर लें और तेलमें मिलानेके उपरात भी खूब घोटें। यदि मर्हमके नुसखामें अन्य औषधद्रव्योंके साथ कपूर जैसी उडनेवाली वस्तु हो, तो उसको अन्य समस्त औषधद्रव्योंके बाद अतमें मिलाना चाहिए। मर्हम कल्पनामें यथासंभव धातुका कोई पात्र और लोहे आदिकी छुरी उपयोग न करनी चाहिए। रोगियोको उपयोगके लिए सादे और मामूली कागज या मिट्टी या धातुकी डिबियामें मरहम न देना चाहिए, अपितु रोगनी (स्नेहाक्त) कागज, चीनी या शीशाकी डिबियामें रखनेसे या रोगनी कागजसे ढाँक कर देना चाहिए। यदि इसमें कोई लबाब न पडा हो, तो अन्य औषधद्रव्योंसे मोम अधिक प्रमाणमें मिलाना चाहिए। यदि लबाब भी हो तो मोम उचित प्रमाणमें सम्मिलित करें। तेल (स्नेह) मोमसे दुगुना होना चाहिए। किसी-किसीके मतमें मोमका प्रमाण औषधद्रव्यसे चौथाई कम और आधेसे अधिक नहीं होना चाहिए। प्रत्युत औषधद्रव्य छ भाग, स्नेह ५ भाग और मोम चौथाई भाग होना चाहिए। मर्हमोकी शक्ति अधिक दिनो तक ठीक रहती है। निर्यास घटित मरहमोकी शक्ति बीस वर्ष तक स्थिर रहती है, विशेषकर वह मरहम बहुत टिकाऊ होता है, जिसमें जैतूनका तेल पडा होता है। चर्बी शीघ्र विकृत हो जानेके कारण इसमें बने मरहम उतने टिकाऊ नही होते।

वक्तव्य—यूनानी वैद्यकमें मरहमकी कल्पना बहुत प्राचीन है। योगरत्नाकर आदि आयुर्वेदके ग्रंथोमें इससे मलहर यह संस्कृत शब्द बनाया गया है। क्योंकि व्रणदुष्टिके शोधनके लिये यह व्रणों पर लगाया जाता है, इसलिए उक्त संज्ञा अन्वर्थक है।

---

१ सम्प्रति वेसेलीन (Vaseline) नामक एक ऐसा द्रव्य ज्ञात हुआ है, जो एक तो कभी सड़ता नहीं और दूसरे अत्यत मृदु एव स्वादरहित और गन्धोसरहित होता है। मोम आदिके स्थानमें इसका उपयोग भी उपादेय सिद्ध हो सकता है।

प्रकरण २७

औषधद्रव्योंका शोधन (तद्बीर)

औषधद्रव्यमें कोई ऐसा परिवर्तन (सस्कार) करना जिससे उसके किसी प्रधान दोषका परिहार हो जाय और उसमे कोई गुण उत्पन्न हो जाय तद्बीर व इस्लाह[1] कहलाता है, और ऐसा शोधित द्रव्य मुदब्बिर (शुद्ध, शोधित) कहलाता है। भेषज-कल्पनामें बहुश औषधद्रव्य शुद्ध (मुदब्बिर) करके सम्मिलित किये जाते हैं। अत यहाँ पर उन विविधि द्रव्योके शोधन (मुदब्बर) करनेकी विधियाँ लिखी जाती हैं —अजवायन मुदब्बिर (शुद्ध यमानी)—अजवायनको तीन दिन-रात इतने सिरकामें तर रखें कि वह अजवायनके धरातल (सतह)से चार अगुल ऊपर रहे। इसके बाद इसे सिरकासे बाहर निकालकर सुखा ले। जीराको भी इसी प्रकार शुद्ध करते हैं। मतातरसे इसे सिरकामें तर करके भून लेना चाहिए—अफ्यून मुदब्बिर (शुद्ध अहिफेन)—अफीमको गुलाब पुष्पार्कमें भिगोकर छाने। फिर वहाँ इतना पकायें कि (उसका किवाम) गोली बाँधने योग्य हो जाय। अञ्जरूत मुदब्बिर (शुद्ध अञ्जरूत)—अञ्जरूतको गदही या गायके दूधमें गूँधकर झाऊकी लकडी पर लगायें और कबाबकी तरह भूनें। कभी कभी पूर्ण शुद्धिके लिए दोबारा इसी प्रकार भूनते हैं। अमलतास मुदब्बिर (शोधित अमलतास)—इसकी दुर्गंध निवारणके लिए इसे इस प्रकार शुद्ध करते हैं—अमलतासके गूदेको गुलाब पुष्पार्क या केवडेके अर्कमें भिगो देते है। जब फूल जाता है, तब मलकर मोटे कपडेमें छान लेते हैं। फिर उस छने हुए द्रव्यको किसी पात्रमें फैलाकर सुखा लेते हैं। एलुआ मुदब्बिर (शोधित एलुआ)—एलुआको सेव, बिही, गाजर, नासपाती अथवा शलजम आदिके भीतर रखकर और कपडा लपेटकर आटेसे बद करें और इतने समय तक अग्निमें रखें कि गरमी एलुये तक पहुँच जाय और आटा लाल हो जाय। फिर इसे निकालकर शुष्क करके उपयोग करें। बेहरोज़ा मुदब्बिर (शोधित गधाविरोजा)—हाँडीमें जल भरकर अग्नि पर रखें और उसके मुँह पर कपडा बाँध कर कपडे पर बेहरोजा रख छोडे, जब गर्मीसे बेहरोजा पिघलकर जलमें चला जाय, तब कपडा हटाकर बेहरोज़ा निकाल लें। इसी प्रकार पाँच-सात बार करें। भिलावाँ मुदब्बिर (शुद्ध भल्लातकी)—चौड़े मुँहकी सडँसी (सदशिका)को गरम करके भिलावोको उसमें दबायें जिसमें भिलावोसे लेसदार और काला प्रगाढ द्रव (अस्ले बिलादुर) निसरित हो जाय। परतु इस बातकी सावधानी रखें कि उसका तेल और धूआँ शरीरको न लगने पाये, वरन् हानि पहुँचने एव उसके शोथयुक्त हो जानेकी आशका रहती है। फिर भिलावेको छीलकर (या बिना छिले) घी, नारियलके तेल या अखरोटके तेलमें मिलाकर उपयोग करें। भिलावेका शहद (भल्लातकी रस) निकालते समय हाथको अखरोटके तेल (या घी)से चिकना कर लें, जिसमें वे क्षतयुक्त न हो। भग मुदब्बिर (शुद्ध भग)—भाँगको अजवायनके रसमें तर करके सुखा लें। फिर गोघृत लगाकर मिट्टीके कोरे पात्रमें डालकर अग्नि पर भूनें। परतु यह ध्यान रखें कि वह जल न जाय, केवल खिल जाय। पोस्त बैज़ा मुदब्बिर (शुद्ध अण्डत्वक्)—अडेके छिलकेको नमक और राखके पानीसे खूब धोयें। फिर उसके भीतरकी महीन झिल्ली दूर करके उसे (अण्डत्वक्) सुखा लें। अडेके धोए हुए छिलकेको बगदादी और इब्नबेतार आदिके अनुसार अरबीमें 'खुर्म' या 'खुर्रम' कहते हैं।

---

१ आयुर्वेदमें इसे शोधन कहते हैं। लिखा है—

लोहधातुरसादीनामुदितैरौषधै सह।
स्वेदन मर्दन चैव तैलादौ ढालन तथा॥
दोपापनुत्तये वैद्यै क्रियते शोधन हि तत्।

तुर्बुद मुदब्बिर (शुद्ध त्रिवृत्)—निशोथ (तुर्बुद)को छील दिया जाय (खराशीदा = मुकश्शर) और उसके बीचकी कडी लकडी निकाल ली जाय (मुजव्वफ) और फिर उसे बादामके तेलमें स्नेहाक्त (चर्ब) कर लिया जाय। कभी-कभी इस प्रकार शुद्ध किये हुये निशोथको नुसखामे तुर्बुद मुजव्वफ खराशीदा (छिला हुआ और बीचकी कडी लकडी निकाला हुआ निशोथ) लिखा जाता है। जगार मुदब्बिर (शोधित जगार)—एक भाग जगारको पाँच भाग तेज परिस्रुत सिर्कामें भिगो दें, और पडा रहने दे। सिरका हरा हो जायगा। उसे (सिरका) बरतनमें निकाल लें। यदि चाहें तो दूसरी बार जगारके तलछटसे पाँच गुना सिरका मिलाकर और रख दें। जब हरा हो जाय, तब सिरके को निकालकर अगलेमे मिलाकर रख दे—तलस्थित छोड दें। जब सिरका शुष्क हो जाय तब पीसकर काममें लेवें। जमालगोटा मुदब्बिर (शुद्ध जयपाल)—जमालगोटाको पोटलीमें बाँधकर एक पात्रमें डाल दें, जिसमें कभी गायका गोबर घोल दिया गया हो, और पकायें। फिर उसे धोकर उसके दो दलोंके मध्यका पित्ता[1] निकाल कर उपयोगमें लेवे। कभी गोबरके स्थानमें दुग्धमें उबालते हैं, और उक्त विधिसे पित्ता निकालकर काममें लेते हैं। कभी गोबरमें उबालनेके पश्चात् दहीमें भी उबालते हैं और फिर पित्ता निकालकर उपयोगमें लाते हैं। चाकसू मुदब्बिर (शुद्ध चाकसू)—चाकसूको पोटलीमें बाँधकर सौंफ या नीमकी पत्तीके रसमे पकाकर छील डाले। फिर सुखाकर उपयोगमें लेवें। खूब्रकलाँ मुदब्बिर(शुद्ध खाकसी)—लबे कद्दू (लौआ)के भीतर रखकर ऊपरसे गिल हिकमत (कपडमिट्टी) कर दें। इसके उपरात इसे भूभलमे एक रात रखें। फिर निकालकर खाकसी को सुखालें और काममें लेवें। रेवदचीनी मुदब्बिर (शुद्ध रेवदचीनी)—रेवतचीनीको जलमें उबालकर जलको फेंक दें और रेवत-चीनीको सुखाकर काममें लेवे। जीरा मुदब्बिर (शुद्ध जीरक)—जीरक-शोधनकी रीति अजवायनके समान है। शोरा मुदब्बिर (शुद्ध शोरक)—शोरेको बारीक पीसकर जलमें घोले, फिर जलको नियारकर अग्नि पर सुखायें। जब जल शुष्क हो जाय तब फिर उसी प्रकार करें। शुद्ध हो जायगा। शूकरान मुदब्बिर (शुद्ध शूकरान)—इसे तीन रात दिन दूधमें भिगोयें और हर रोज ताजा दूध डाले। इसके बाद शूकरानको सुखाकर बादामके तेल, कद्दूके बीजोके तेल या पिस्ताके तेलमें एक सप्ताह तक तर रखें। इसके बाद काममें लेवे। सुरमा मुदब्बिर (शुद्धाञ्जन)—अञ्जनके शोधनकी विधि यह है—सुरमा (अजन)को बकरोकी चर्बीमें पीसकर अग्नि पर रखे। जब धुआँ और गध आना बद हो जाय और चर्बी सम्यक् जल जाय तब बर्फके पानीमें बुझायें, पुन उपयोगमें लेवें। दूसरी विधि यह है—सुरमाको तपा-तपाकर त्रिफलाके पानीमें कमसे कम सात बार बुझायें। कोई कोई इसे गुलाबके अर्कमें बुझाकर शुद्ध करते हैं। अथवा प्रात कालसे सायकाल तक समस्त दिन त्रिफलाके पानीमें डालकर उबालनेके बाद सुखाकर काममें लेते है। सकमूनिया मुदब्बिर (शुद्ध सकमूनिया)—सेब, बिही, गाजर, नाशपाती या शलगमके भीतर खारेम्ला (गड्ढा) बनाकर उस अवकाशके भीतर सकमूनियाको भर देवे, परतु कुछ अवकाश खाली रखें। उस शेष अवकाशको सफेद तिलोसे भरकर उसी सेब या बिही इत्यादिके टुकडेसे मुँह बद करके ऊपर आटेका आवरण चढ़ा देवें। फिर इसे मध्यम श्रेणीकी गरमीके तनूर (भट्टी)में रखें। जब आटा ऊपरसे लाल हो जाय, तब सकमूनियाको निकालकर काममें लेवें। तदिबया (भुलभुलाने) अर्थात् पुटपाकके उक्त सस्कारके कारण सकमूनियाके साथ 'मुशव्वा' भी लिखते हैं। मश्वी या (मुशव्वा = भुलभुलाया हुआ, भूना हुआ, पुटपाक किया हुआ) सखिया मुदब्बिर (शुद्ध मल्ल)—इसके शोधनकी प्रथम विधि यह है—अपामार्ग (चिचिडी)की राखके टपकाये हुये (मुकत्तर) पानीमें सखिया पीसकर और किसी पात्रमें डाल दे, और इतना पकायें जिसमें वह शुष्क[2] हो जाय। दूसरी विधि यह है—सखिया-को नीबूके रसमें खरल करें। जब रस शोषित हो जाय तब दूसरा रस डालकर खरल करें। इसी प्रकार ग्यारह बार

---

१ प्राय बीजों और गिरियों (मग्जियात)के बीजोंके मध्य दो दालोंके बीचमें बारीक सी पत्ती हुआ करती है। उसीको इस अवसर पर पित्ता (जहरा) कहा गया है। जब बीज बोये जाते हैं, तब प्रारम्भिक पत्तियाँ इसी पित्ताकी वृद्धि और विकाससे निकलती हैं।

२ यदि मल्लकी द्रुति स्वीकार हो तो उसी चूर्णको चीनीकी रकाबीमें रखकर रकाबीको ओसमें बिछा रखें। प्रात काल सूर्योदयसे पूर्व देखें। जितना द्रव बना हुआ हो, उसे शीशीमें रख लें। फिर आगामी दिवस

करें। सगवसरी मुदब्बिर (शुद्ध खर्पर)—इसके शोधनकी विधि यह है—इसे अग्निमें गरम करके गुलावपुष्पार्क, या दधिमस्तु (दहीका पानी) या नीबूके रसमें सात वार बुझायें, इसके वाद उपयोग करे। गारीकून मुदब्बिर (शुद्ध गारीकून)—इसके शोधनकी विधि यह है कि—इसे वालोकी चलनी या मलमलमें इतना छानें कि इसके कडे रेशे या ततु दूर हो जायें। यही कडे ततु हानिकर होते हैं। इसी कारण नुसखों (योगो)में गारीकूनके साथ 'मुगरबल' (चलनीमें चाला हुआ) लिखा जाता है। इसे कदापि कूटना न चाहिए। ऐसा न हो कि वह विषाक्त घटक साथमें कुट जायें। कसीस मुदब्बिर (शुद्ध कसीस)—एक तोला कसीसको भाँगरेके रसमें डालकर पकायें और तिल-तेलमें शीतल कर उत्तापमें सुखा लेवें।

वक्तव्य—गारीकूनकी शुद्धिके सबधमे 'अवुसहल मसीही' के 'मेअत मसोही' नामक सुप्रसिद्ध अरवी ग्रथकी पचीसवी किताबमें लिखा है—"गारीकूनके शोधनकी रीति यह है, कि पीसनेमें क्वथित मद्य (शराव मत्वूख) उस पर टपकाते जायें।"

कुचला मुदब्बिर (शुद्ध कुपीलु)—इसके शोधनको विधि यह है—इसे जलमें एक सप्ताह तक भिगो रखें और प्रतिदिन जल वदल दिया करे, अर्थात् दूसरे दिनका पानी फेंककर ताजा पानी डाल दिया करे। आठवे दिन कुचलाको जलसे निकालकर गूँधे हुये आटेमें रखकर सप्ताहपर्यत रख छोडें। फिर आठवे दिन आटेसे निकालकर एक छटाँक जलसे धोये और छीलकर तौलें। यदि वह सोलगुने है तो एक सेर गोदुग्धमें दोलायत्रकी विधिसे उबालना अधिक प्रशस्त है। इसे उबालनेकी विधि यह है कि पहले कुचलेको तागेमें पिरो लें और इसकी लडीको दूधमें इस प्रकार लटकायें कि वह पेदेमें न लगे। जब दूध गाढा हो जाय, तब कुचलोको उष्ण जलसे धोकर सुखाये। इसके वाद रेतीसे बुरादा करके काममें लेवें। कोई-कोई जलमें भिगोकर छीलते हैं, और सुखाकर सोहनसे (रेतीसे) बुरादा करते हैं। फिर उसे पोटलीमें वाँधकर दूधमें उवालते है और उसी समय वारीक कूटकर और छायामें सुखाकर उपयोग करते हैं। कोई-कोई कुचलेको घीमें भृष्ट करके पीस लेते हैं। यह विधि बहुत सरल है और इसमें यह भी गुण है कि इससे कुचला पिसने योग्य हो जाता है। परतु ध्यान रखे कि कही कुचला जल न जाय। कुपीलु शोधनकी एक अन्य सर्वोत्तम विधि—जितना चाहें कुचला लेकर एक पात्रमें कुचला डाल दे और उसके ऊपर घीकुआरका गूदा इतना डाले जिसमें वह पूर्णतया ढँक जाय। बस इसी प्रकार दस-पद्रह दिन तक पडा रहने दें। जब वह पानी होकर कुचलोमें शोषित हो जाय, तब उन्हें छीलकर और पित्ता (दोनो दालोके भीतरकी पत्ती) निकालकर उतना ही आदीके रसमें भिगोये और पक्ष भर रखा रहने दें। इसके उपरात वारीक खरल करके काममें लेवें। अन्यान्य शोधनकी विधियोमे इस प्रकारकी शुद्धिमें यह विशेषता है, कि कुचला सरलतापूर्वक खरलमें सुरमाकी भाँति वारीक पिस जाता है और इसके समस्त घटक शरीरमें शोषित होकर सम्यक् प्रभाव प्रदर्शित करते हैं। इसे सभी कल्पनाओ और योगोमें निरपवाद डाल सकते है। गधक मुदब्बिर (गधक शुद्ध)—एक हाँडीमें इतना दूध डाले, जिसमें वह आधे हाँडी तक रहे। फिर उसके मुँह पर महीन कपडा जैसे मलमल फैलाकर वाँध दे। गधकको अधकुटा कर उस कपडे पर विछा देवे और उस पर कोई वडा वरतन गधकको न लगे इस प्रकार रखकर उस पर अग्नि प्रज्वलित करें, जिसमें उसकी गरमीसे गधक पिघलकर कपडेसे छनकर दूधमें आ जाय। ऊपरके पात्रको इस प्रकार रखें कि वह गधकसे न लगे, प्रत्युत उससे ऊँचा रहे। जब समस्त गधक पिघलकर दूधमे आ जाय, तब निकालकर वादमें गधकको निकाल गरम जलसे धोकर उपयोगमें लेवें। गोखरू मुदब्बिर (शुद्ध गोक्षुर)—इसके शोधनकी विधि यह है कि गोखरूको गाय या भैंसके दूधमें भिगोयें। आगामी दिन पहला दूध फेककर ताजा दूध डाल दें। इसी प्रकार तीन दिन तक करे। इसके उपरात सुखाकर काममें लेवें। यह शुक्रमेहमें और वाजीकरणके लिये अनुपम है।

इसी प्रकार करें, यहाँ तक कि सब द्रव निकल आये। यह द्रव तिलाके रूपमें तेल और मोमियाईके साथ मिलाकर उपयोग किया जाता है, जिससे किसी प्रकार प्रदाह एव दाने उत्पन्न हो जाते हैं। उक्त द्रवको कभी-कभी तेलके नामसे स्मरण किया जाता है, जो यथार्थ नहीं है।

लोहचून (खब्सुल्हदीद) मुदब्बिर (शुद्ध मडूर)—इसके शोधनकी विधि यह है, कि इसे मिट्टीके बरतनमें खूब गरम करें, यहाँ तक कि लाल हो जाय। फिर इसे तिल तेलमें बुझाये। इसी प्रकार फिर गरम करके अंगूरी सिरकामें, फिर गोमूत्रमें और फिर दहीके पानीमें बुझाये। इसके बाद धोकर और खरल करके उपयोगमें लेवें। खरल इतना किया जाय कि वह पानी पर तैरने लगे, और शीघ्र तलस्थित न हो। दूसरी विधि—मडूरको चौदह दिन तक अंगूरी सिरकामें भिगो रखे। फिर सुखाकर बादामके तेलमें भूनें। इसके बाद खरल करके उपयोगमें लेवे। उत्तम खरल करनेकी पहचान यह है कि वह जल पर तैरने लगे और शीघ्र तलस्थित न हो। माजरियून मुदब्बिर (शुद्ध माजरियून)—तीन दिन रात सिरकामें भिगोकर सुखा लेवें फिर बादामके तेलमें स्नेहाक्त करके काममें लेवें। यदि प्रतिदिन सिरका ताजा डाला करे, और पहलेवालेको फेंक दिया करें तो उत्तम हो। माजू मुदब्बिर या बिर्याँ—माजूको तिल-तेलमें इतना भूना जाय कि वह खिल जाय। इसके अतिरिक्त माजूको भाडके बालूमें भी भूना जाता है। मीठा तेलिया मुदब्बिर (शुद्ध वत्सनाभ)—मीठा तेलिया (सींगिया, वत्सनाभ)को १ तोला पीसकर पोटलीमें बाँधें और बारह सेर भैंस या गायके दूधमें दोलायन्त्रसे इतना पकायें कि दूध आधा शेष रह जाय। फिर दोबारा और तिबारा इसी प्रकार करे। पर प्राय लोग केवल एक बार पकाना पर्याप्त समझते हैं। कोई-कोई जमाल-गोटेकी भाँति गोबरमें उबालते हैं जिसमें कुछ व्यय नही है। सूचना—उबालनेके उपरात बचे हुये दूधको यदि जमाकर घी निकाल लेवे, तो वह वाजीकर तिला (शिश्न लेप)में काम आ सकता है। हलैला मुदब्बिर या बिर्याँ (शुद्ध या भृष्ट हरीतकी)—हडकी (हलैल)के शोधित या भृष्ट करनेकी विधि यह है कि उसे घी या बादामके तेलमें इतना भूनें कि वह खूब काली और चमकदार हो जाय। इस प्रकार भूननेकी क्रियाको तलना (तक़्लिया) कहते हैं।

वक्तव्य—यहाँ खनिज द्रव्यो अर्थात् धातूपधातु, रत्नोपरत्न और पाषाण इत्यादि तथा बहुश अन्यान्य वानस्पतिक एव प्राणिज द्रव्योंके शोधनकी विधि विस्तारभयसे नही लिखी गई है। उन्हे मेरे लिखे 'यूनानी रसायन विज्ञान' नामक ग्रथमें अवलोकन करें।

प्रकरण २८

कुछ औषधियोंकी निर्माण-विधि

यहाँ पर कुछ ऐसे भेषजोंकी निर्माण-विधि लिखी जाती है, जो बाजारमें सामान्य रूपसे बने-बनाये मिलते हैं। औषधनिर्माताको साधारण औषधालयोंमें इनके निर्माणकी झंझट नहीं करनी पड़ती। परंतु किसी औषधनिर्माताका मस्तिष्क इनके ज्ञानसे शून्य न रहना चाहिए।

दारचिकना—मखिया सफेद १ भाग, पारा १ भाग, कसीस आधा भाग—इनको मिलाकर खरल करें। फिर इसे लोहेके पात्रमें बंद करके रसकपूरकी रीतिसे अग्नि लगा देवें। शीतल होने पर निकालकर काममें लेवें।

रसकपूर कल्पना—पारा, गिल अरमनी (या गेरू), फिटकिरी, सेंधानमक (नमक संग) प्रत्येक ३ तोला। सबको जलके साथ खरल करके टिकिया बनाकर सुखाये। फिर मिट्टीके चिकनी (लुआबदार रकाबीमें (जिसमें नमक *की तह दी हुई रखी हो) रखकर ऊपरसे दूसरी रकाबी जो मिट्टी और धतूरके रससे बनाई गई हो,* ढांककर कपडौटी (गिल हिकमत) करे। फिर उसे बहुतसे जंगली उपलोंमें रखकर तीन दिन अग्नि दे। इसके उपरांत निकालकर देखे। जो अंश रकाबियोंके किनारोंमें लगे हों वही रसकपूर है।

अन्य विधि—रसकपूर बनानेकी दूसरी विधि यह बताई गई है —पारा ५ तोला १० माशा, फिटकिरी ६। तोला, दोनों को खूब खरल करके आतशी शीशी में भरकर शीशी का मुँह बंद करके और गेरू, नमक, राख, धानकी भूसी और रूई सबको कूटकर शीशी पर गिलहिकमत (कपडौटी) करके शुष्क करे और जंगली उपलोंकी आँचमें पकाये। शीतल होने पर शीशीसे निकालकर नीबूके रसके साथ खरल करे। फिर यथाविधि आतशी शीशीमें भरकर उसका मुँह बंद कर देवे और यथानियम कपडौटी (गिल हिकमत) करके बालूजतर (वालुका यंत्र)में इस प्रकार रखें कि कुछ शीशी बालूमें मग्न हो जाय। जब बालूका वर्ण लाल हो जाय, तब शीतल करके शीशीका द्रव्य निकालकर अन्य शीशीमें रखे।

जंगार बनाना—तेज सिरका सेर भर, नौशादर १० तोला, ताँबेका बुरादा पावभर, गंधकका तेजाब ३ तोला, सबको परस्पर मिलाकर ताँबेके बरतनमें बंद करके भूमिमें दबा देवे। छ: मासके उपरांत निकाल लें। संपूर्ण बुरादा और नौशादर जंगार बन जायगा।

अन्य विधि—ताँबेके पतरे सेर भर, नौसादर आध पाव, तेज सिरका २॥ सेर, खट्टा दही पावभर, सबको परस्पर खूब मिलाकर ताँबे या मिट्टीके पात्रमें भरकर उसका मुँह बंद करके भूमिमें गाड दें। चालीस दिनके बाद देखें। यदि जंगार तैयार हो गया तो उत्तम, वरन् फिर दोबारा गाड देवें। तैयार होने पर निकालकर काममें लेवे।

सफेदा काशगरी बनाना—कलई (वंग) या जस्तेके पत्तर लेकर उन्हें एक पात्र में रखें। उसमें ऊपरसे अंगूरी सिरका भर देवें, जिसमें पत्तर उसमें डूब जायें। फिर उसका मुँह भलीभाँति बंद करके आँच देवें। पत्तर श्वेत हो जायेंगे। यदि कुछ कसर रह जाय, तो उनको पुन: दोबारा आँच दें।

अन्य विधि—लकडीके पीपोंमें तेजाब और तीक्ष्ण सुरा डालकर ऊपर सीसाके बारीक पतरे रखे और चमडेके पुराने टुकडे ढाँककर ऊपर लीद और मिट्टी डालकर छिपा दें। तीन मासके उपरांत खोलें। सीसाके जितने टुकडे श्वेत हो गये हों उनको पृथक् निकाल लेवें। यही श्वेत भस्म 'सफेदा' है।

सेंदूर बनाना—कलई (वंग) और सीसा दोनोंको कडाहीमें डालकर चूल्हे पर रखें। उसके नीचे अग्नि जलाये और ऊपर भी कोयला रखें। ऊपर से नमक छिडकें और उसे हिलाते रहें। यदि बाँसका कोयला हो, तो सर्वोत्तम है। जब किसी प्रकार लाल हो जाय, तब अन्य पात्रमें डालकर ऊपर-नीचे चतुर्दिक् अग्नि दें। जितनी आँच होगी, लालिमा भी अधिक आयेगी। इसके बाद काममें लेवें।

अन्य विधि—सीसाको अग्नि पर लगाकर उसमें नीमकी लकडी चलायें, जिससे सीसा रखा हो जायगा। इस राखको खट्टे दहीके पानीमें तर करके अग्नि पर रखें जिससे वह पीत वर्ण हो जायगी। इसके बाद बदताव की भट्टीमें जो डबलरोटी पकानेवालेके तनूरकी तरह हो, खूब तीव्र अग्नि जलायें। उसमें वह पीत वर्ण सीसा लोहेके बरतनमें डालकर रख दे और किमी लोहेकी सीखसे हिलाते जायें। थोडे समयमें अग्निके तावसे सीसाका रग लाल हो जायगा।

शिंगरफसे पारा निकालना—शिंगरफको एक दिन नीबूके रसमें खरल करके बारीक-बारीक टिकिया बना लें। फिर उनको अलग-अलग एक हाँडीमें रखकर उस पर दूसरी हांडी औंधा दें और दोनोका मुँह बराबर करके मिलायें। फिर उस पर दृढ कपडमिट्टी (गिल हिकमतें) कर दें। इसके बाद चूल्हे पर रखकर नीचे खूब तीव्र अग्नि जलायें। ऊपरकी हाँडी पर कपडेको कई तह करके जलसे भिगोकर रख दें। जब वह शुष्क हो जाय, तब पुन तर कर दिया करें, ताकि जो पारा उडकर ऊपर पहुँचे वह शीतके कारण जमकर लगा रहे। परतु ऊपरवाली हाँडीका आतरिक भाग खुरदरा होना चाहिये ताकि जो पारा जमें वह गिरने न पाये। लगभग तीन घटेमें पारा उड-कर ऊपर जा लगेगा। शीतल होनेपर धीरेसे चूल्हे परसे उतारकर दोनो हाँडियोको अलग करके ऊपरकी हाँडीसे पारा इकट्ठा कर लें और कपडेसे छानकर रखें। यदि शिंगरफमें कुछ पारा रह जाय, तो दोबारा उक्त क्रिया कर सकते हैं। इस विधिसे निकाला हुआ पारा शुद्ध (मुसफ्फा) होता है। इसके पुन शोधनकी आवश्यकता नही है।

अन्य विधि—शिंगरफको दो पहर नीबूके रसमें और दो पहर नीमके पत्र-स्वरसमें खरल करके टिकिया बना ले। शिंगरफसे तौल (वजन)में दूनी कपडेकी धज्जियाँ उस पर लपेटें। फिर एक चौडे बरतनमें रखकर अग्नि लगा देवें। उसके ऊपर एक मटका औंधाकर तीन ईंटो पर रखें। सपूर्ण पारा मटकेमें ऊपर जा लगेगा या नीचेके पात्रमें सगृहीत होगा। पानीसे धोकर पारा अलग कर लें।

पनीरमाया प्राप्त करना

पनीरमाया (इन्फेहा) पशुओके उस घनीभूत क्षीरको कहते हैं, जो शिशु, प्रसवोपरात (बच्चा पैदा होते ही) पीता है। पशुओंका पनीरमाया नर शिशु (नरीना बच्चा)से प्रसवोपरात घास इत्यादि खानेसे पूर्व प्राप्त किया जाता है। उत्कृष्टतम पनीरमाया वही होता है जो प्रसवके दिन ही लिया जाता है। उसकी विधि यह है—शिशुको उसकी माताका सपूर्ण स्तन्यपान कराकर आध घडीके पश्चात् वध करके उसका आमाशय एव समस्त अत्र सुरक्षित रूपमें लेकर छायामें शुष्क करें। आमाशय और अत्रके आशयोमें जो क्षीर शुष्क एव घनीभूत हो जाता है, वह 'पनीर-माया' कहलाता है। यद्यपि यूनानी वैद्यकीय ग्रथोंमें सामान्यतया पनीरमाया शुतुर ऐराबी लिखा जाता है, परतु इसकी जगह भेडके बच्चोंका पनीरमाया प्राप्त किया जाय, तो यह भी लगभग वही गुणधर्म रखता है।

प्रकरण २९

रोगीके लिए कतिपय पथ्य-आहारद्रव्य आदिकी कल्पना

दालका पानी (यूष)—मूंग आदिकी घुली हुई दाल एक छटाँक तीन पाव जलमें डालकर और यथास्वाद नमक मिलाकर इतना पकायें कि दाल भली-भाँति गल जाय और जल अढाई तीन छटाँक शेष रहे। इसके उपरांत अग्निसे उतारकर शीतल करके पानी छानकर सेवन करें। कभी-कभी नमकके अतिरिक्त किंचित् जीरा और काली-मिर्च आदि भी डाल देते हैं।

दलिया—उत्तम गेहूँ लेकर भाडमें भुनवायें। इसके बाद चक्कीमें दरदरा चूर्णकी भाँति पिसवाकर (दलिया बनाकर) रख छोडे। आवश्यकता होने पर थोडा दलिया लेकर किंचित् घीमें भूनें और दूध या पानीको उबालकर उसमें थोडा-थोडा मिलाते और चमचासे हिलाते जायें। इसके बाद थोडी चीनी या मिश्री मिलाकर रोगीको खिलायें।

सागूदाना—आध सेर जल या दूध कलईकी हुई देगचीमें डालकर अग्नि पर पकायें। जब उसमें उफान आने लगे, तब आध छटाँक सागूदाना लेकर थोडा-थोडा डालते और चमचासे हिलाते रहें। किंचित् पतला ही रहे तब उतारकर थोडी मिश्री या चीनी मिलाकर रोगीको खिलाये।

शोरवा—मासमें मामूली मसाला और लवण मिलाकर पकाये। जब मास गल जाय, तब घी और दही डालकर या बिना दहीके भूनें। इसके बाद जल डालकर पकायें और थोडी देरके बाद अग्निसे उतारकर और केवल शोरवा लेकर काममें लायें। (स०) सौराव (सु० सूत्रस्थान)।

फालूदा—निशास्ता एक तोला। गोदुग्ध १ पाव, चीनी आध सेर और गुलाब पुष्पार्क १ तोला। पहले निशास्ता (गेहूँका सत)को दूधमें पकाये। जब दूध खूब गाढा हो जाय, तब एक ठढे जलसे भरे बरतन पर लोहे या पीतलकी चलनी रखकर इसमें डालें और हाथकी हथेलीसे मलें जिसमें फालूदा चावल-चावल होकर चलनीके छिद्रोंसे नीचे गिरता जाय। बरतनसे उष्ण जल निकालकर अन्य शीतल जल भी डालते रहें। यहाँ तक कि सपूर्ण फालूदा तैयार हो जाय। फिर चीनीकी चाशनी (किवाम) बना कर रखें। थोडी चाशनी एक प्यालामें डालकर उसमें फालूदा, थोडा-दूध या मलाई और गुलाबपुष्पार्क मिलाकर खिलायें। यदि चाहें तो थोडीसी बर्फ भी डाल सकते हैं।

फीरीनी—आध छटाँक उत्तम और सुगधित चावल धोकर थोडी देर भिगो रखें। फिर पत्थरकी कूँडी (छोटीसी ओखली जिसमें डडेसे द्रव्य कूटे-पीसे जाते हैं)में या शिल पर खूब महीन पीसकर और थोडा जल मिलाकर एक बारीक कपडेमें छान लें। फिर उसे एक सेर गोदुग्धमें मिलाकर अग्नि पर लगभग एक घटे तक उबाले और चमचासे हिलाते जायें। इसके बाद थोडी मिश्री या चीनी मिलाकर और शीतल होने पर रोगीको दें।

जब दूधमें सपूर्ण चावल (बिना पीसे) पकाये जाते हैं, तब उसे खीर कहते हैं।

माउल् जुबन—थोडे दिनकी गाभिन (काली, लाल या चितकबरी) बकरी लेकर उसको शीतल एव स्निग्ध चारा (उदाहरणत पालक, कुलफा, लोबिया, सोआ इत्यादिका शीतल-स्निग्ध शाक और जौका दाना) खिलायें और धूप एव गर्मी आदिसे बचायें। उसे बिल्कुल भूखा-प्यासा (निराहार) न रखें। बच्चा पैदा होने के उपरांत चालीस दिन तक उसका दूध इस काममें न लें। इसके बाद जितना दूध उचित हो, लेकर कलई की हुई देगची या मिट्टीकी हाँडीमें पकाये। जब भलीभाँति उबाल आ जाय, तब सिरका, नीबू या किसी और अम्ल द्रव्यका छीटा दें जिसमें दूध फटकर द्रवाश (माइय्यत) पनीर या छेना (जुब्नियत)से पृथक् हो जाय। फिर शीतल करके गज्जी (सगीन)के

कपडेमें छानकर स्वच्छ पानी ग्रहण कर लेवे, इसी साफ पानीका नाम माउल्‌जुबन (माऽ = पानी, जुब्न = जुबुन छेना या पनीर = छेना या पनीरका पानी) है।

माउल्‌जुबन प्रत्येक पशुके दूधको फाडकर बनाया जा सकता है, बकरीके दूधका कोई वैशिष्ट्य (तख्सीस) नही, परतु वैद्यकीय प्रयोजनके लिये बहुधा बकरी ही के दूधसे माउल्‌जुबन कल्पना किया जाता है। इसके सिवाय दहीका तोड[1] (दधिमस्तु) और पनीरका निचुडा हुआ पानी उभय माउल्‌जुबन कहे जा सकते है और गुण-कर्ममें इसके समीप हैं। परतु उपर्युक्त विधिमे कल्पना किया हुआ माउल्‌जुबन इन दोनोकी अपेक्षया अतीव सूक्ष्म (लतीफ) एव प्रभावपूर्ण होता है। अस्तु, यूनानी वैद्योको माउल्‌जुबन सज्ञामे बहुधा उक्त कल्प ही विवक्षित होता है।

वक्तव्य—दूधके ये तीन उपादान हैं—(१) जलाश, (२) स्नेहाश और (३) सिट्टी (सुफल)। इनमें से जलाशमें केवल औषधीय वीर्य होता है और सिट्टीमें पोषण वीर्य और स्नेहमे पोषण एव औषधीय उभय वीर्य होते हैं। सुतरा दूधसे जब ये तीनो उपादान पृथक् (विश्लिष्ट) करके उपयोग किए जाते हैं, तब उनके उपयोगसे भिन्न-भिन्न गुण अनुभवमें आते हैं। पनीर जो दूधकी सिट्टी है अधिकतया पोषणके लिए आहारकी भाँति उपयोगमें आता है और आहारद्रव्योमें गिना जाता है। मलाई या मक्खन या घी जो दूधके स्नेहाश है, अधिकतया बहिराभ्यतरिक औपधाहारमें प्रयुक्त होते हैं। दहीका पानी या तोड (दधिमस्तु) या पनीरसे निचोडा हुआ पानी अर्थात् माउल्‌जुबन जो दूधका जलाश है, अधिकतया औषधमें प्रयुक्त है। यह कई पैत्तिक एव सौदावी रोगोमें परम उपादेय है। आमाशय एव अत्रकी रूक्षता या सौदावी विकारोंके निवारणके लिए अथवा इनको आमाशयात्रसे फिसलाने (इज़लाक)के लिए अथवा कृशता-निवारण और शरीर-परिबृहणके लिए इन तीनो उपादानोका उपयोग करते हैं।

माउश्शईर (यवमड)—छिलके उतारे हुए कश्काब जौ को पकाकर प्राप्त किया हुआ पानी (काढा)। माउश्शईर कल्पना विधि—उत्तम पुष्ट जौ लेकर जलमें इतना भिगोयें जिसमे वे फूल जायें। इसके बाद जलसे निकालकर ओखलीमें कूटकर इतना छडे (छडना = छिलका उतारना, छाँटना, निष्तुषीकरण) कि उसका समस्त छिलका उतर जाय। यह निष्तुषीकृत (मुकश्शर) जौ १ छटाँक लेकर, जलसे अच्छी तरह धोकर सवासेर जलमें इतना पकायें कि जल गाढा और ललाई लिए (सुर्खीमायल) हो जाय और जौ फूलकर फटने लगें। इसके बाद पानी छानकर शीतल करके मिश्री या शर्बत मिलाकर रोगीको पिलाये। कोई-कोई जौको प्रथम बार दो-तीन उबाल देकर पानी फेंक देते है। फिर दूसरा पानी डालकर यथाविधि पकाते है। यदि अतमें जौको घोटकर गाढा पानी लें तो उसको कश्कुश्शईर कहते है।

कोई-कोई जौको प्रथम बार दो-तीन उबाल देकर पानी फेंक देते हैं। फिर दूसरा पानी डालकर यथाविधि पकाते हैं।

माउश्शईर मुलह्‌हम (माससिद्ध यवमड)—कभी-कभी पोषण एव बलवर्धनके लिए यवमडमें मास प्रविष्ट करते हैं। उस समय यह माउश्शईर मुलह्‌हम (मुलह्‌हम = मासयुक्त) कहलाता है।

माउश्शईर मुलह्‌हमकी यह दो विधियाँ हैं·

(१) मासको भृष्ट पदार्थ (कौरमा)के समान उपयुक्त मसालेके साथ पकायें, परतु घी न डालें। यदि घी डालें तो अत्यल्प, केवल भूनने एव सुगधित करनेके लिए डालें। इसके बाद उत्तम रीति से छडकर धोये हुए (या छडने-छाँटनेके पश्चात् प्रथम बार दो-तीन उबाल दिए हुए) १ छटाँक जौ मिलायें और दूसरा ताजा जल शोरबाके समान डालकर पकायें। जब जौ भलीभाँति गल जायें, तब छानकर रोगीको पिलायें।

(२) छाँटे या छडे हुए और धोये हुए जौ में मासरस (आब यख़नी) मिलाकर इतना पकायें कि वह गाढा हो जाय। फिर छानकर काममें लेवें।

---

1 इसको सस्कृतमें 'भड' या 'दधिमस्तु' और अँगरेजीमें 'ह्वे—Whey' कहते हैं। 'छाना' वा 'छेना'को सस्कृतमें किलाट (तक्र वा दधिकूर्चिका) और अँगरेजीमें केसीन (Casein) या 'चीज़ (Cheese)' कहते हैं।

माउश्शईर मुहम्मस (वाट्यमड)—जब जौ को भूनकर यवमड (माउश्शईर) कल्पना किया जाता है, तब यह 'माउश्शईर मुहम्मस' कहलाता है। (मुहम्मस = भृष्ट, भूना हुआ)।

प्रवाहिका (पेचिश) और अतिसारके रोगियोके लिए इसकी कल्पनाकी जाती है। उक्त कल्पनामें जौको छडने (छाँटने)के उपरात भृष्ट किया जाता है।

यदि माउश्शईरमें अधिक सग्राही शक्ति उत्पन्न करनेकी आवश्यकता होती है, तो कभी थोडा पोस्तेकी डोडी-को पोटलीमें बाँधकर माउश्शईरके साथ पकाते है।

माउल् असल (मधुशार्कर)—(माउल् अस्ल = धात्वर्थ मधुजल, शहद का पानी)। एक भाग मधुको चार भाग जलमे मिलाकर इतना पकायें कि तृतीयाश (जल) जल जाय। इसके उपरात अग्निसे उतारकर काममें लेवें। यही 'माउल्असल' है।

यदि जलके स्थान में उपयुक्त अर्क में पकाकर माउल्असल बनायें, तो अत्युत्तम हो। जब जलके स्थानमें गुलाबपुष्पार्क (गुलाब)मे मधु पकाकर माउल्असल प्रस्तुत किया जाता है, तब उसको जुल्लाब[1] (जुल = गुल = पुष्प, आब = जल) कहा जाता है। शर्बत से इसकी चाशनी बहुत पतली होती हैं। इसे इतने प्रमाणमें बनावें जिसमें अधिक काल तक न रखना पडे।

माउल्लह्म (मासार्क)—माउल्लह्मका धात्वर्थ (माऽ = पानी, लह्म = मास) 'मासका पानी' या अरक है। माउल्लह्म कभी मासके सादा शोरबा अर्थात् यखनी (मासरस)को कहते हैं, और उस अर्कको कहते हैं जो केवल मास से या मास एव अन्यान्य औषधद्रव्योसे अर्क परिस्रावणकी रीतिमे करअ अबीक, नल भबका इत्यादिके द्वारा परिस्रुत किया जाता है।

गत पृष्ठोमे इस बातका विस्तारपूर्वक निरूपण किया गया है कि इस प्रकार परिस्रुत किया हुआ अर्क वैद्यकीय दृष्टिसे कितना निष्प्रयोजनीय होता है। इसलिए यहाँ पर भी माउल्लह्म परिस्रुत करनेसे सबधित नियमों और सूचनाओको स्थान नही दिया गया। प्रसन्नताका विषय है, कि आयुर्वेदके कर्त्ताओने उक्त कल्पनाको अपने ग्रथोंमें स्थान न देकर (आयुर्वेदमें केवल मासरसकी कल्पना का उल्लेख मिलता है।) बुद्धिमत्ता ही प्रदर्शितकी है।

यखनी (मासरस)—माउल्लह्म अर्थात् मासरस (आब गोश्त)को कहते हैं जो मास पकाकर प्राप्त किया जाता (पक्वमासरस) है। इसकी यह दो रीतियाँ है—

(१) मासके साथ इलायची, धनिया धोरे प्याजकी पोटली और स्वादके अनुसार लवण डालकर पकाये। जब मास गल जाय, तब पानीको घीसे बघार लें और रोगीको दें। (२) मासमें लवण मिलाकर एक लुकदार (रोगनी) मर्तबानमें रखें। मर्तबानके मुँह पर ढक्कन रखकर आटेसे उसका मुँह बद कर दें। इसके बाद एक बडी देगचीमें जल भरकर उबालना प्रारभ करें। जब जल उबलने लगे, तब उस मर्तबानको देगचीमें रखकर दो-तीन घटे तक उबालते रहें। इसके बाद मर्तबानको निकालकर और उसका मुँह खोलकर मासको अलग कर दे और यखनी अलग निकालकर काममें लेवे।

●

---

[1] मधुके स्थानमें शर्करा अर्थात् चीनी (शकर) या मिश्री १ भाग और गुलाब पुष्पार्क ३ भाग मिलाकर इतना पकायें कि आधा रह जाय। उबलते समय झाग उतारते जायें। परिभाषामें इसे भी 'जुल्लाब' कहते हैं। इससे खुलकर मलोत्सर्ग होता है। सभवत इसीलिए इसका प्रयोग विरेचन (मुसहिल)के अर्थमें भी होता है। सुतरां जुल्लाब सज्ञासे जनसाधारणमें बहुधा यही अर्थ समझा जाता है।

यदि गुलाब पुष्पार्कके स्थानमें ३ भाग जल और १ भाग शर्करा (चीनी) मिलाकर अग्नि पर चढ़ाकर इतना पकायें कि जुल्लाबकी चाशनी आ जाय और पकते समय झाग उतारते जायें, तो परिभाषामें इसे 'माउस्सुक्कर' कहते हैं। यह माउल्अस्लका प्रतिनिधि है। यदि इसमें मधुरताकी तेजी दूर करनेके लिए काफी गुलाबपुष्पार्क मिला लें, तो उसे भी 'जुल्लाब' कहेंगे।

संग चकमाक या संगखारा (काला या लाल) आदि। सुर्मा इत्यादिके समान बहुश द्रव्योंको बहुत बारीक पीसनेके लिए चिकना वा मसृण (साफ बेददानोका) सिलवट्टा भी होता है।

कूँडी-सोटा—केवल पत्थर या मिट्टीका बना हुआ सीधी वा खडी दीवारका एक छोटे प्यालेके आकारका उपकरण है जिसमें किसी लकडीके मोटे सोंटेसे गीला औषधद्रव्य (कल्प) पिस सकता है अथवा कडा एव शुष्क औषधद्रव्य तोडकर बारीक करके और घोटकर सुरमासा कर लिया जाता है, परतु इसमें अधिकतया गीले द्रव्य पीसे जाते हैं। यह किसी अशमें खरल और सिल दोनोका काम दे सकती है। इसका दस्ता अर्थात् सोंटा (डडा) सदैव लकडीका (किसी-किसीके अनुसार पत्थरका—पत्थरकी कूँडीके लिए पत्थरका बट्टा भी) होता है, जिसे नीचेसे चौडा और ऊपरसे सँकरा और मजबूत बनवाना चाहिए। कोई-कोई इसके मुँहपर पत्थरका या लोहे इत्यादिका एक छोटा सा दस्ता जड लेते हैं। परतु इससे उक्त उपकरणका मूल प्रयोजन नष्ट हो जाता है। क्योकि यदि यह पत्थर समाक इत्यादिके समान बहुत कडा न हो, तो वह घिसेगा और लोहे इत्यादिसे किसी-किसी औषधद्रव्यके विकृत हो जाने और प्रभावमें अतर हो जानेका भय है। इसलिए सबसे उपादेय लकडीका सोटा है। इनमें भी कई कारणोंसे नीमकी लकडी अपेक्षाकृत अधिक उत्तम समझी गयी है। सिंधमें शिकारपुर और हालामें (हैंदराबादके पास) मिट्टीकी अच्छी कूँडी बनती है।

हावन-दस्ता[1] (इमामदस्ता)—यह उपकरण अधिकतया तो लोहेका होता है, पर कतिपय विशेष औषध-द्रव्योके लिए संगखाराका भी बनाया जाता है। इससे प्राय तो शुष्क एव कडे द्रव्य जौ-कुट (जौ-कोब) या बारीक किये जाते हैं और कभी आर्द्र, कडे या नरम द्रव्य रस (अरक) आदि निचोड लेनेके लिए कुचले जाते हैं। सिलके विपरीत इसमें यह लाभ है कि द्रव्य उडकर एव गिरकर इसमें बहुत कम नष्ट होते हैं। सामान्यतया समस्त औषध-द्रव्योंके लिए पत्थरका हावनदस्ता उत्तम है। किंतु इसके टूटने और फूटनेके भयसे अधिकतया लोहे और पीतलका उपयोग किया जाता है। अस्तु, लोहे और पीतलके छोटे-मोटे इमामदस्ते बाजारमें तैयार मिलते हैं। फौलादका इमामदस्ता बनवाना उत्तम है। दस्ता एक बाजू (बगल)से गोल और दूसरी बाजू (बगल)से चपटा बनवाना चाहिए। जडे आदि तोडनेके लिए चपटी बाजू (बगल)से और कूटनेके लिए गोलबाजूसे काम लेना चाहिए।

ओखलीमूसल (मुषलोदूखल)—यह भी इमामदस्तेकी तरहका एक प्राचीन उपकरण है जिसमें अधिकतया अन्न इत्यादि छडने (छाँटने), भूसी दूर करने (मुकश्शर) या कुचलने आदिका काम लिया जाता है। औषधकल्पनामें भी इससे उक्त तीनों काम लिये जा सकते हैं। कोई औषधद्रव्य या अन्न उसमें बारीक नही पिस सकता। क्योंकि यह उपकरण केवल लकडीका होता है और नाम मात्रको एक लोहेका कडा (घेरा) इसके मूसल अर्थात् दस्तामें लगाया जाता है।

खरल (खल्व और मर्दक)—औषधकल्पनाके लिए अधिकतया न घिसनेवाले मजबूत पत्थरका खरल (खल-वट्टा) काममें लिया जाता है। इसके अतिरिक्त लोहेका और काच इत्यादिका खरल भी उपयोगमें लिया जाता है। आकारके विचारसे खरल दो प्रकारका बनता है—(१) नावके आकारका (नौकाकार—किश्तीनुमा) और (२) गोल। विशेष विवरण "औषधद्रव्योका खरल करना" शीर्षकके अतर्भूत देखें। खरलमें यद्यपि कठिन या मृदु और शुष्क या आर्द्र औषधद्रव्य इमामदस्तेके समान कुट और कुचल भी सकते है तथापि अधिकतर शुष्क या आर्द्र द्रव्य अर्थात् बारीक पीसे जाते और घोटे (हल किये) जाते हैं। इससे अनेकानेक कार्य सपन्न होते हैं।

फूलकी थाली—ऐसे देखनेसे यद्यपि यह एक अनावश्यक वस्तु प्रतीत होती होगी, तथापि विशेषकर भारत-वर्षमें प्राय वैद्यकीय और कतिपय यूनानी प्रयोगोंमें इसका होना अनिवार्य है। क्योंकि कुछ प्रयोजनके लिए प्राय

---

१. यह फारसी भाषाका शब्द है जिसका अर्थ (हावन = ओखली, दस्ता = मूसल) ओखली और मूसल (सस्कृतमें 'मुषलोदूखल') है। ह० 'ओखली मूसल'। इमामदस्ता 'हावनदस्ता'का हिंदी अपभ्रश है।

प्रकरण ३१

भेषजकल्पनाविषयक कतिपय प्रक्रियाएँ (सरकार) और परिभाषाएँ

जतर—जतर शुद्ध 'यन्त्र' (मस्कृत) है। जतर इसी का अपभ्रश है। आयुर्वेदकी परिभाषामें यन उपकरण (आला, औजार) को कहते हैं। यहाँ उन प्रधान यन्त्रो (आलात)का उल्लेख किया जाता है जो भेपजकल्पनामें प्रयुक्त होते हैं। उनमेंसे गर्भजतर (गर्भयन्त्र), नाडीजतर (नाडीयन्त्र वा नालिकायन्त्र), पातालजतर (पातालयन्त्र) इत्यादि जैसे कतिपय यन्त्रोंका उल्लेख 'तक्ष्रीक' और 'तस्ईद' के प्रकरणमें आ चुका है। शेष प्रक्रियाओं और परिभाषाओं आदिका उल्लेख यहाँ किया जाता है, जिसमें कोई औषधनिर्मापक (दवासाज) इनसे अपरिचित न रहे और समय-समयपर अपने कामोमें इनसे सहायता प्राप्त कर सके।

बालूजन्तर[1] (हम्माम रमली)—वालूजतर (वालुकायन्त्र)की विधि यह है—आतशीशीशी (अग्निसह काचकूपिका)में औषधद्रव्य डाल दिया जाता है और आतशीशीशीको दो-तीन कपडौटी करके सुखा लिया जाता है, जिसमें शीशी उत्तापसे टूट न जाय। पुन यदि शीशीका मुँह वद करनेको लिखा हो तो उसे वद कर दें वरन् खुला छोड देना चाहिए। फिर उस शीशीको एक ऐसे खुले मुँहकी हाँडो (या नाद)में रख दिया जाय जिसके पेंदेमें वारीक-वारीक कई छेद हो, या एक वडा छिद्र हो। उसपर कोई ठीकरा (या सफेद अभ्रकका टुकडा) इस अदाजसे रखा जाय कि छिद्र थोडा खुला रहे, जिसमें भीतर गर्मी पहुँच सके और जो वालू भरा जाय वह न गिरे। फिर उस शीशीके इर्द-गिर्द वालू डाल दिया जाय। वालूसे हाँडीका पेट पूर्णरूपसे भर देना चाहिए। कभी ऐसा भी किया जाता है कि शीशीके नीचे भी थोडा-सा वालू विछा देते हैं। फिर उसके ऊपर शीशी रखकर वालू भर देते हैं।
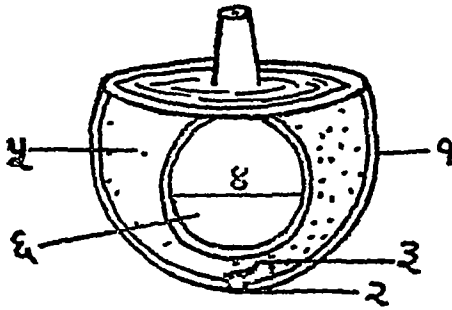
चित्र ११

विवरण—१ कपरौटी की हुई नाँद, २ पेंदेका छिद्र, ३ पेंदेके छिद्र पर रखा हुआ अभ्रकका टुकडा, ४ कपरौटी की हुई आतशीशीशी, ५ रेत अर्थात् वालू, ६ कूपीपक्व रसका यौगिक।

अब यदि शीशीका मुँह खुला रखना आवश्यक हो, तो उसी प्रकार छोड दिया जाय, वरन् हाँडीके ऊपर दूसरी हाँडी इस प्रकार औंधा दें कि शीशी वीचमें आ जाय फिर दोनो हाँडियोंके मुँहके किनारे वद कर दें। इसके वाद जितनी देर आँच देनेको लिखा हुआ हो, उतनी देर अग्नि पर रखें।

जो औषधद्रव्य शीशीमें डाले जायँ, वह यदि आर्द्र हो या किसी वनस्पतिके स्वरससे खरल किये गये हों, तो अग्नि देनेसे पूर्व इनको सुखा लेना चाहिए। यदि विना सुखाये उसे शीशीके भीतर डाल दिया गया और फिर शीशीका मुँह वद कर दिया गया, तो उससे वाष्पोंके वेगके कारण शीशीके फट जानेकी आशका है। उक्त अवस्थामें यदि शीशीका मुँह बद करना हो, तो उसे पहले ही वद न करे, प्रत्युत शीशीके मुँहमें थोडोसी रूई लगाएँ। जव वाष्पसे रूई भीग जाय तव उसको निकालकर दूसरी ताजी रूई रख दें और उस समय तक यही क्रम जारी रखें, जव तक

---

१ बालूजतर सस्कृत वालुकायन्त्र शब्दका अपभ्रश है। वालुकायन्त्रका विधान आयुर्वेदमें इस प्रकार है—भाण्डे वितस्तिगम्भीरे मध्ये निहित कूपिके। कूपिका कण्ठपर्यंत वालुकाभिश्च पूरिते ॥ भेषज कूपिका सस्थ वह्निना यत्र पच्यते। वालुकायन्त्रमेतद्धि रसज्ञै परिकीर्तितम् ॥

रूईका तर होना बंद न हो जाय, जो औषधके सूखनेकी पहिचान है। इसके उपरांत शीशीका मुँह बंद करके ऊपर बालू डालकर अग्नि दें।

मूधरजतर (भूधरयंत्र)—दो सकोरों (कूजों) या प्यालोंमें औषध बंद करके भूमिके भीतर बालूके ठीक मध्यमें इस प्रकार रखे जिसमें चारों ओर और नीचे-ऊपर बालू हो। उसके ऊपर रखकर अग्नि जलायें। यह मूधरजतर[1] कहलाता है। इस विधिसे कुछ द्रव्य जलाये जाते और भस्म किये जाते हैं।

तीजू जतर[2] (?)—यह करल अवीककी हिंदी संज्ञा है (कुल्लियात अद्‌विया)।

डमरू जतर (डमरूयंत्र[3])—एक हांडीके भीतर औषध रखकर दूसरी हांडीका मुँह उससे मिलाकर चूल्हे पर इस प्रकार रखें कि औषधवाली हांडी नीचे रहे (इस विधिसे सत्व उड़ाया जाता है) या खाली हांडीको औषधवाली हांडीकी बगलमें इस प्रकार रखें कि दोनो हांडी बराबर रहें। इस विधिसे तेल (रोगन) निकाला जाता है। डमरूयंत्र सामान्यतया रसकपूर, सगिया, दारचिकना इत्यादि जैसे औषधद्रव्योंका सत्व (जौहर) उड़ानेके लिए बनाया जाता है।
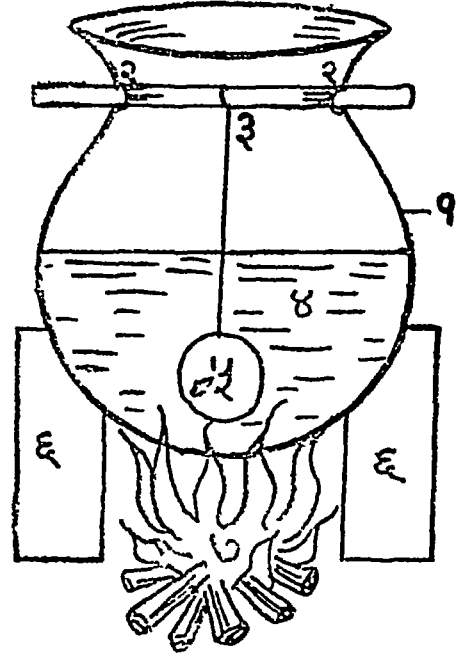
चित्र १२

विवरण—१ कपरौटी की हुई हाँडी, २ हाँडीके दोनों छोरों पर बनाये हुए छिद्र, ३ छिद्रोंमें फसाया हुआ काष्ठदंड। ४ आधी हाँडी तक भरी हुई काँजी, दूध या प्रवाही द्रव्य, ५ प्रवाहीमें डूबी रहनेवाली द्रव्यकी पोटली, ६ चूल्हा, ७ अग्नि।

डोलजतर[4] (हम्माम तज्‌लीको)—इसको कभी डोलाजतर भी कहते हैं। इसकी विधि यह है—एक हांडीमें दूध या वह प्रवाही द्रव्य आधे तक भर देना चाहिए जिसके भीतर किसी अन्य औषधद्रव्यको पकाना है। फिर जिस द्रव्यको पकाना है उसे पोटलीमें बांधकर किसी ऐसी लकड़ीमें बांध दिया जाता है जो हांडीके मुँहके बराबर आ जाती है। पोटली इस प्रकार लटकती रहती है कि वह हांडीके द्रव पदार्थके बीच रहती, पेंदेतक नहीं पहुँचती

---

१ संस्कृतमें इसे 'भूधरयंत्र' कहते हैं। आयुर्वेदमें लिखा है—

"वालुका गूढ सर्वाङ्गां मध्येमूषां रसान्विताम्। दीप्तोपलैः संवृणुयाद्यन्त्रं तद्भूधराह्वयम्॥"

२ संभवत यह तिर्यक्‌पातनयंत्र शब्दका अपभ्रंश है जिसको मिफ्‌ताहुल्‌खजाइनके लेखकने तिर्यक्‌पावनजतर लिखा है। आयुर्वेदमें लिखा है—

"तन्नालं निक्षिपेदन्यघटकुक्ष्यन्तरे खलु। इतरस्मिन् घटे तोयं प्रक्षिपेत् स्वादुशीतलम्॥
अधस्ताद्रसकुम्भस्य ज्वालयेत्तीव्रपावकम्। तिर्यक्पातनमेतद्धि रसज्ञैरभिधीयते॥"

३ इस यंत्रमें दो हाँडियोंको मिलाकर सधिलेप कर देने पर वह डमरू जैसा दिखता है। इसलिए इसे डमरूयंत्र कहते हैं। आयुर्वेदीय रसतंत्रमें इसे विद्याधरयंत्र भी कहते हैं। लिखा है—

"यन्त्रं विद्याधरं ज्ञेयं पात्रद्वितयसंपुटात्। क्षिपेद्रसं घटे दीर्घे नताधोनालसंयुते॥"

४ यह संस्कृत दोलायंत्र शब्दका अपभ्रंश है। दोलायंत्रका विधान आयुर्वेदीय रसतंत्रमें इस प्रकार लिखा है—

"द्रवद्रव्येण भाण्डस्य पूरितार्धोदरस्य च। मुखस्योभयतो द्वारद्वयं कृत्वा प्रयत्नतः॥
तयोस्तु निक्षिपेद्दण्डं तन्मध्ये रसपोटलीम्। बद्ध्वा तु स्वेदयेदेतद्दोलायन्त्रमिति स्मृतम्॥"

है। अब हाँडीके ऊपर एक बडा ठीकरा रख दिया जाता है। यदि वायु बद रखना हो तो कपडौटी कर दें। इसके बाद हाँडीको चूल्हे पर रखा जाता है और जितनी देरतक पकानेको लिखा है उतनी देर तक पकाया जाता है।

यदि पारेको पकाना होता है, तो वह पोटली बांधनेसे नही ठहरता, अपितु अपने गुरुत्व और प्रवाही स्वभावके कारण नीचे वह जाता है। इसलिए उसके नीचे भोजपत्र रखना चाहिए, जिसमें पारा न बह सके।

वक्तव्य—यदि औषधद्रव्यकी पोटली प्रवाही द्रव्यमें डूबी रहे, तो वह 'डोलजतर गर्की' कहलाता है। परतु यदि औषधद्रव्य प्रवाही द्रव्यसे ऊपर रखा जाय और केवल वाष्पोमें रखना अभीष्ट हो, तो उसे केवल 'डोल-जतर' कहते है। खजाइनुल् अदवियामें इसके अन्य पर्याय डोलकाजतर और दोलकजतर लिखे हैं। यह सब सस्कृत 'दोलायत्र'के ही अपभ्रश हैं।

कञ्ची जतर (कञ्चीयत्र)—काचकी आतशीशीशीको कहते है जिसे कपडौटीके द्वारा मजबूत बनाकर बालूजतर (वालुकायत्र) और पतालजतर (पातालयत्र)के काममें लेते हैं। इसीको कवची जतर[1] भी कहते हैं।

कच्छप जतर (कच्छपयत्र)—मिट्टीका एक दृढ प्याला लेकर उसमें लवण भरकर मध्यमें औषधका सपुट रखें। प्यालेके ऊपर एक टीनका टुकडा रखकर उसके ऊपर अग्नि जलाये। यह 'कच्छप जतर'[2] या 'कछुवा जतर' कहलाता है। गधकको आँच देनेके लिए इस विधिका अवलबन किया जाता है।

लोकजतर[3] (नलिकायत्र ?)—करअ अबीकका हिंदी नाम है। (कुल्लियात अद्विया)।

●

---

१ यह कञ्चीयत्र (सस्कृत)का अपभ्रश है। कवचीयत्रका विधान आयुर्वेदीय रसतत्रमें लिखा है।

२ यह सस्कृत 'कच्छपयत्र' शब्दका अपभ्रश है। आयुर्वेदीय रसतत्रमें इसका विधान इस प्रकार लिखा है—"जलपूर्णं दृढ पात्र सुविशाल समाहरेत्। तन्मध्ये खर्पर दद्यात् सुविस्तीर्णं नव दृढम्॥ तन्मध्ये पारद दद्यादूर्ध्वाधोगधकावृतम्। उपरिष्टादधो वक्रा दत्वा लोह कटोरिकाम्॥ सम्यक् सधि विमुद्र्याथ दद्यादुपरि वैपुटम्।"

३ लोकजतर सभवत नलिकायत्रका ही अपभ्रश है। नलिकायत्र और करअ अबीक (यूनानी यत्र)में बहुत समानता है। अस्तु, दोनोंका एक दूसरेके स्थानमें उपयोग हो सकता है। अत कुल्लियात अदवियाके लेखकका लोकजतरको करअ अबीकका हिंदी नाम लिखना उचित ही है। नलिकायत्रको आयुर्वेदीय रस-तत्रमें तिर्यक्पातनयत्र भी कहते हैं। अस्तु, उक्त मतसे यहाँ तिर्यक्पातनयत्रका लक्षण लिख देना उचित प्रतीत होता है। वह इस प्रकार है—"क्षिपेद्रस घटे दीर्घे तताधो नाल सयुते। तन्नाल निक्षिपेदन्यघट कुक्ष्यन्तरे खलु॥ इतरस्मिन् घटे तोय प्रक्षिपेत् स्वादुशीतलम्। अधस्ताद्रसकुम्भ-स्य ज्वालयेत्तीव्रपावकम्॥ तिर्यक्पातनमेतद्धि रसज्ञैरभिधीयते।" इस विवरणसे यह ज्ञात होगा कि अर्क निकालनेका करअ अबीक (यूनानी यत्र), नल-भवका और नलिकायत्र (तक्ष्रीक लौलब्वी) तथा द्रावकाम्ल बनानेका दूसरा यत्र ये सब उपर्युक्त तिर्यक्पातनयत्रसे बहुत सादृश्य रखते हैं। अस्तु, इनमेंसे प्रत्येकका एक दूसरेके स्थानमें उपयोग किया जा सकता है।

●

सहायक भेषज-कल्पना विज्ञानीय अध्याय ५

(सैदलिय जुज्इय्य)

औषधविक्रेता (अत्तार)[1]के कर्त्तव्य

गौण वा सहायक भेषज-कल्पना (सैदेलिय जुज्इय्य)में उन कर्त्तव्योंका उल्लेख किया जाता है जो औषधविक्रेता (अत्तार)को औषधवितरणकालमें पालन करने पडते हैं। इस प्रकरणमें जो सिद्धात और नियम वर्णन किये जाते हैं, उनमेंसे कतिपय ऐसे व्यामिश्र एव व्यापक हैं जो वृहत् वा प्रधान भेषजकल्पना (सैदेलिए कुल्लिया)में भी उपादेय सिद्ध होते हैं।

औषधालयका सुसज्जित करना (सजाना)—औषधालय छोटा हो या बडा (विस्तीर्ण) उसे ऐसे ढगसे सुसज्जित करना चाहिए कि उसे अवलोकनकर प्रत्येक दर्शकका हृदय प्रफुल्लित हो उठे। रोगकालमें रोगीकी सवेदनाएँ बहुत ही कोमल होती हैं। यदि औषधालयकी बाहरी सज-धज, तडक-भडक और भव्यता आकर्षक एव हृदयग्राही नही है, तो चाहे ससृष्ट वा असंसृष्ट (स्वतन्त्र) सिद्धौषधियाँ उच्चकोटिकी ही क्यो न हो और भेषजकल्पनाके समस्त नियमोपनियम उनकी तैयारीमें क्यों न काममें लाए गए हों, औषधालयका वाह्य दृश्य अवलोकन कर रोगीके आत्म-विश्वास तथा आत्मतुष्टिकी भावना दूर हो जायगी और यह सिद्ध है कि औषधके प्रभाव करने और प्रभाव न करने-में रोगीके विचार एव मनोभावनाओंका काफी हाथ रहता है। तात्पर्य यह कि इस बाहरी त्रुटिसे यदि औषधालयको व्यापारिक लाभमें हानि पहुँचनेका भय है, तो इसके साथ ही चिकित्साके मूल उद्देश्य वा प्रयोजन—आरोग्यमें आघात पहुँचनेकी भी आशका है। इसके विपरीत यदि औषधालय सुव्यवस्थितरूपेण सुसज्ज है और उसकी व्यवस्था (प्रबध) और शृगार चित्ताकर्षक दृश्य उपस्थित कर रहा है, तो यह स्पष्ट है कि रोगीका विश्वास उसके चिकित्सा-व्यापारकी उन्नतिमें और उसके विचार औषधके प्रभावमें कितनी प्रवल सहायता प्रदान करेंगे।

स्वच्छता और पवित्रता—वाह्य सज-धज, शृगार और भव्यताके साथ औषधालयमें स्वच्छता एव पवि-त्रताकी भी परम अनिवार्यता होती है। औषधालयके समस्त उपकरण और साधन-सामग्री हर समय स्वच्छ एव निर्मल रखे जायँ। औषध-वितरणके समय प्राय द्रव्य मलिन हो जाया करते हैं। चीनी एव मधुघटित कल्पो पर (जो हमारे औषधालयोंमें बहुलता एव प्रचुरताके साथ हुआ करते हैं) मक्खियाँ और च्यूँटे एव च्यूँटियाँ उन्मत्त वा लोलुप होकर बैठ सकती हैं। इसलिये ऐसी मलिन और लिथडी हुई वस्तुओंकी शुद्धिमें तनिक भी विलव न किया करें, उन्हें तुरत स्वच्छ एव शुद्ध कर दिया करें। औषधालयकी सीमाओंके भीतर मक्खियोंका होना एक लज्जाजनक दोष है जिसको किसी प्रकार सहन नही किया जा सकता। इसके प्रतिकारके लिए प्रत्येक सभव उपाय काममें लाना चाहिए।

यह इतना नाजुक काम है कि औषधालयकी आतरिक सीमाओंके अतिरिक्त उसकी बाहरी सीमाओं एव उसके समीपवर्ती स्थानोंमें भी स्वच्छता एव पवित्रताकी आवश्यकता है। उसके चारों ओर और समीपकी मलिनता कभी-कभी औषधालयको स्वच्छ एव निर्मल नही रहने देती। उदाहरणत इर्द-गिर्दकी मक्खियाँ आकर व्यग्र एव तग किया करती हैं। इसलिए औषधालयका स्थान निर्णय करनेमें यथासभव उसके आस-पासके स्थानो पर भी एक दृष्टि डाल देनी चाहिए।

औषधालयमे प्रकाश और वायु—स्वस्थवृत्तके सिद्धातके अनुसार औषधालय काफी हवादार और प्रकाश-मय होना चाहिए। स्वच्छता एव शुद्धिमें प्रकाश एव वायु पर्याप्त सहायता पहुँचाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रकाशकी

---

१ आयुर्वेदमें इसे उपवैद्य और पाश्चात्य वैद्यकमें कम्पाउण्डर (Compounder) कहते हैं।

उपादेयता और अनिवार्यता इस विचारसे भी अधिक है कि प्रत्येक वस्तु स्पष्ट दिखाई दे सके और नाप-तौलमें प्रकाश-की कमीसे कोई त्रुटि उपस्थित न होने पाये। वरन् यह संभव है कि नाप तौलकी कतिपय त्रुटियाँ भयानक रूप धारण कर ले।

औषधालयमे आतुरोकी सुव्यवस्था—औषधालयके साथ औषधके ग्राहकों तथा प्रतीक्षा करनेवालोंके सुख एव सुविधासे बैठनेका अवश्य प्रबंध होना चाहिए। इन ग्राहकोमे बहुत दुर्बल एव शक्तिहीन भी होते है जो क्लेशकी दशामें देर तक खडे नही रह सकते। यद्यपि कभी-कभी ऐसे कारण उत्पन्न हो जाते है कि औषधके ग्राहकोंको औषध-प्राप्तिके हेतु प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

औषधालयमे औषधोकी व्यवस्था—औषधालयमें औषधियाँ (कल्पादि) किस प्रबंध वा नियमसे रखी जायँ यह एक परम महान एव जटिल प्रश्न है। विभिन्न अनुभवी लोग अपनी सुविधाके अनुसार विभिन्न नियम और प्रबंध स्थिर करते है। यहाँ पर कुछ सैद्धातिक विषय जो औषधियोकी व्यवस्थामें सहायता दे सकते हैं, लिखे जाते हैं।

औषधियोकी व्यवस्थामें यदि निम्नलिखित विशेष गुणों-लक्षणोका विचार किया जाय, तो संभवत एक श्रेयष्कर व्यवस्था स्थिर हो सकती है।

औषधका स्वरूप और आकृति—औषधके स्वरूपका विचार करनेसे यह अभिप्रेत है कि असंसृष्ट और संसृष्ट औषधको प्रथम इस विचारसे कतिपय श्रेणियोमे विभक्त कर दें कि, उदाहरणत वह प्रवाही है या घन, उनके उपादान कपूरकी भाँति वाष्प बनकर उडनेवाले हैं या पाषाणो (हजरियात) की तरह अचल और स्थिर रहनेवाले, कौन-सा औषध कैसे पात्रमे रखने योग्य है, उसके सरक्षणके लिए क्या-क्या उपाय अवलबन करने योग्य है। इस श्रेणी-विभाजनसे अनेक द्रव्य कुछ थोडे समूहो (वर्गो)में विभाजित हो जायँगे। उस समय उनकी व्यवस्था स्थिर करना सरल हो जायगा। उदाहरणत अर्क, शर्बत, मुरब्बा, माजून, गोली (गुटिका), चूर्ण, लवण, शुष्क वनस्पति इत्यादि।

अरकियात (अरके)—समस्त अर्कोको श्वेत वर्णके समान रूपके शीशोमे एक जगह क्रमसे (श्रेणीबद्ध) लगाकर रखा जाय और मजबूत डाट लगाकर उनको बद कर दिया जाय। इन शीशोपर आवरणकी तरह यदि सफेद बारीक कागज लगा दिया जाय (विशेषकर उन शीशोपर जो भडार या सग्रहके रूपमें रखे हो), जिनसे निर्देश-पत्र (चिट)के आवृत आतरिक अक्षर पढे जा सके तो उत्तम है।

इन अर्कोको अकारादि क्रमसे रखा जाय अथवा इनको पुन छोटे-छोटे गणोंमें विभक्त करके "श्रेणीबद्ध" रखा जाय। उदाहरणत गुलाबपुष्पार्क (अर्क गुलाब), केतकार्क (अर्क केवडा), वेतसार्क (अर्क वेदमुश्क) जैसे जितने सुगधित अर्क हैं। उनको एक स्थानमें रखा जाय और अर्क बादियान (सौंफका अर्क), अर्क पुदीना, अर्क इलायची, अर्क दारचीनी जैसे अर्कोको एक स्थानमें।

शर्बत (शार्कर)—शर्बतको भी अर्कोकी भाँति श्वेत एव उज्ज्वल शीशोमें एकत्र रखा जाय और इसमें भी आकारादि क्रमकी व्यवस्था स्थिर की जाय अथवा विभाजनकी सुविधाका विचार करके जिस प्रकारके शर्बत एक दूसरेके अधिक समान हो उनको छोटी कक्षाओमें विभाजित कर दिया जाय। उदाहरणत शर्बत मुलय्यिन, शर्बत दीनार, शर्बत वर्द, शर्बत सनाय और अन्यान्य मुलय्यिन शर्बत (मृदु-सारक शार्कर) एक-दूसरेके समीप हो, शर्बत तमरेहिंदी (इमलीका शर्बत), शर्बत आलूबोखारा (आलूबोखारेका शर्बत) और नीबू (नीबूका शर्बत) परस्पर सलग्न, शर्बत सेब और शर्बत बिही एक जगह, सिकजबीन के समस्त भेद एक जगह, मीठे और खट्टे अनारका शर्बत (शर्बत अनारेशीरी और तुर्श) एक स्थानमें इत्यादि।

शर्बतके शीशोंपर भी अर्ककी भाँति कागज वा आवरण होना चाहिए।

मुरब्बाजात (मुरब्बे)—मुरब्बोको बडे मुँहके समरूप मर्तबानोमें पक्तिबद्ध रखना चाहिए, चाहे वे शीशेके हो अथवा चीनीमेलके, परतु शीशेके मर्तबानोमें शीघ्र टूट जाने जैसा दोष पाया जाता है, इसलिए चीनीमेलके

मर्तबानोंको श्रेष्ठतर स्वीकार किया जाता है। इनकी व्यवस्थासे भी उपर्युक्त दोनो बातोमें एकको ग्रहण करना चाहिए।

माजूनात (माजूनें)—माजूनोंकी बहुत-सी छोटी-छोटी कक्षाएँ हैं, उदाहरणत अतरीफल, दवाउल्मिस्क, मुफ़र्रेहात, याकूतियात इत्यादि। अस्तु, माजूनोंको प्रथम उक्त कक्षाओंमें विभक्त कर दिया जाय और प्रत्येक कक्षाको एकत्र रखा जाय। माजूनके समस्त भेदोको मुरब्बोकी भाँति शीशेके समरूप बोइयामो या बडे मुँहके मर्तबानोंमें पक्तिबद्ध सुदरतापूर्वक रखना चाहिए और उनकी व्यवस्थामें अकारादि क्रमका विचार किया जाय अथवा पारस्परिक गुण-कर्मोके सादृश्य-सबधका।

खमीराजात (खमीरे) व लऊकात (अवलेह)—यह भी माजूनोंके नियमके अनुसार बोइयामों और मर्तबानोमें उन्हीं नियमोकी पाबदीके साथ रखा जाय।

हुबूब (गुटिकायें), अक्रास (चक्रिकायें), सफ़ूफ़ात (चूर्ण) और कुश्ताजात (भस्मे) आदिको भी श्रेणीबद्ध अलग-अलग बोइयामो और मर्तबानोंमें रखना उत्तम है। परतु उस समय जबकि इनका प्रमाण अधिक हो, वरन् प्रमाणके अनुसार छोटी शीशियोंमें। इनकी व्यवस्थामें भी अकारादि क्रम स्थिर किया जाय अथवा गुण-कर्मोका सबध ढूँढा जाय। पर यथासभव प्रयत्न यह होना चाहिए कि एक पक्तिमें विभिन्न आयतन और विभिन्न आकृतिके पात्र न रखे जायें। प्रत्युत इन विविध आयतन और आकृतिके पात्रोंमेसे जितने एक रूप और समान आयतनके हों, उनको व्यवस्थापूर्वक एक स्थानमें रखा जाय।

मुफ्रद अद्विया (असंसृष्ट वा स्वतत्र ओषधि)—असंसृष्ट औषधद्रव्योमेंसे बहुश शुष्क ओषधियाँ काष्ठ या धातुके डब्बोमें रखी जाती हैं अथवा "औषधविक्रयशाला (अत्तारखाना) की अलमारी" के खानोंमें, जिसका वर्णन निश्चित रूपसे आगे किया गया है।

परतु हीराकसीस, तूतिया, फिटकिरी जैसे द्रव्योको धातुके पात्रोमें कदापि न रखना चाहिए। इनके लिए शीशे और चीनीके मुखबद पात्र होने चाहिए।

उडनेवाले द्रव्य—कपूर, सत पुदीना, सत अजवायन जैसे वाष्प रूपमें उडजानेवाले द्रव्योको शीशियोंमें भलीभाँति बद करके रखना चाहिए।

कहते हैं कि यदि कपूरके साथ कालीमिर्चके दाने या कुछ लौंगें डाल दी जायें तो कपूर उडनेसे बच जाता है। परतु अनुभवसे यह बात सत्य सिद्ध नही होती। फिर भी इससे आगे अनुभव करनेका द्वार खुला है। कदाचित् इससे उक्त रहस्यका उद्‌घाटन हो जाय।

विष-द्रव्य—अहिफेन, धतूर, मीठा तेलिया (वच्छनाग), कुचला, हडताल, शिंगरफ, सखिया जैसे विषऔषध-द्रव्यको अलग उपयुक्त शीशोंमें बद करके और सब पर नामका निशान (निर्देश पत्र) लगाकर किसी सदूक या आलमारीमें ताला लगाकर बद रखना चाहिए और उसकी कुंजी किसी अधिकारी व्यक्तिके हाथमें रखनी चाहिए।

मूल्यवान् औषधद्रव्य—अबर, कस्तूरी, केसर, चाँदीके वर्क, सोनेके वर्क, जैसे बहुमूल्य औषधद्रव्योको और मोती, माणिक, पन्ना-जैसे रत्नोको भी विषद्रव्योकी भाँति अलग ताला बद करके रखना चाहिए। विष-द्रव्योंमें यदि प्राणनाशका भय है तो बहुमूल्य द्रव्योमें चोरी एव धननाशका।

नियम—किसी एक डब्बेमें कई असंसृष्ट औषधद्रव्योकी पुडिया बाँधकर रखना ठीक नही। कभी-कभी पुडिया खुलकर एक द्रव्य दूसरेके साथ मिल जाता है तथा उक्त अवस्थामें भ्रम एव भूलसे किसी एकके स्थानमें दूसरेका वितरण हो जाना सभव है।

किसी पात्रका कोई औषधद्रव्य विकृत हो जाय अर्थात् कीडा लग जाय या गल-सड जाय तो उस औषध-द्रव्यको तुरत उस पात्रसे अलग करके पात्रको साफ कर डालें। इसके उपरात उस पात्रमें अन्य द्रव्य रखें।

औषधद्रव्योके नामका चिह्न (चिट, निर्देशपत्र)—संसृष्ट वा असंसृष्ट, प्रवाही वा घन, अल्पप्रमाण या बहुप्रमाण, प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध किसी भी सिद्ध भेषजको उनके पात्रमें बिना नामके कदापि न रखा जाय। यह नाम

साफ और मोटे अक्षरोमें लिखे हुए हो। घसीट एव शीघ्रलेखनकी शैली इसके लिए उचित नही है। उग्र वीर्य एव विषद्रव्योके विषयमें इस बातका ध्यान विशेष रूपसे एव अत्यधिक रखना चाहिए। यदि छपे हुए सुदर निर्देशपत्र (चिटें) उपयोग किये जायें, जो कभी-कभी बाजारसे प्राप्त हो जाते हैं या स्वय छपवा लिए जायें जैसा कि प्राय औषधालयोके प्रबधक किया करते हैं, तो अत्युत्तम है।

यदि हाथसे ये नाम लिखे जायें, तो कच्ची स्याही कदापि प्रयोग न किये जायें जिसमें औषधियोंके नाम सरलतापूर्वक मिट जायें।

जब किसी डब्बे, शीशे या मर्तबान इत्यादिसे औषध खाली हो जाय और उसमें उसके अतिरिक्त कोई अन्य औषध डालनेकी आवश्यकता प्रतीत हो, तो प्रथम उक्त औषधके नामकी चिट अलग कर दे और जो औषध डालना चाहें उसके नामकी चिट (निर्देशपत्र) लगा देवें। परतु अन्य औषधि डालनेसे पूर्व पात्रको भलीभाँति धोकर सुखा लें।

औषध-विक्रयशाला (अत्तारखाना)की अलमारी—"अत्तारखानाकी अलमारी"से वह विशेष अलमारी अभिप्रेत है जिसमें साधारण शुष्क औषधद्रव्य बडे प्रमाणमें रखे जाते हैं। इस अलमारीमें बहुत-सी दराजें होती हैं। प्रत्येक दराज चार-पाँच खानोमें विभक्त होता है। उनमें औषधद्रव्य भर दिये जाते हैं। ये खाने प्रयोजनके अनुसार दो-तीन गिरह घनफुट होते है, परतु जिन औषधालयोमें औषधवितरण बडे प्रमाणमें होता है, वह इससे बडे खानें भी रखते है। एक अलमारीमें ये खाने सैंकडोकी सख्यामें होते हैं। अत्तार (औषधविक्रेता)का हाथ सरलतापूर्वक बहुतसे औषधद्रव्योंतक पहुँच जाता है। अलमारीकी ऊँचाई लगभग डेढ़ गज रखी जाती है और चौडाई लगभग अढाई-तीन गज और गहराई दराजके खानोके अनुसार दस-बारह गिरह।

इस अलमारीका उपरिस्तल मेजका काम देता है जिसका सहायक भेषजकल्पना (जुरबी दवासाजी)में अत्तारके सामने होना परमावश्यक है।

अलमारीमे औषधोकी व्यवस्था—इस अलमारीके खानोमें इस क्रमसे औषधियाँ भरी जाती हैं कि एक नुसखाके बाँधनेमें बहुतसे खानोको खोलना न पडे अर्थात् एक दराजके अनेक खानोमें अधिकतया वह औषधद्रव्य भरे जाते हैं जो नुसखोमें प्राय एक साथ लिखे जाते है। जैसे—बिहदाना, उन्नाव, सपिस्ताँ (लिसोढा) एक दराजके तीन खानोमें रखे जाते हैं। इसी प्रकार गुलबनफ़शा, मवेज़ मुनक्का, बादियान (सौंफ), गावज़बान, बेखकासनी अर्थात् कासनीकी जड (जो उदर विकारमें प्रयुक्त नुसखाके उपादान हैं) एक दराजके खानोमें रखे जाते हैं अथवा यथासभव इनको परस्पर समीप रखनेका प्रयत्न किया जाता है। इसी प्रकार अन्य औषधद्रव्योको अनुमित करें।

इस व्यवस्था-क्रममें यह भी ध्यान रखा जाता है कि जो औषधद्रव्य बहुप्रयुक्त हैं वह अलमारीके मध्यस्थित कोठरियोमें रखे जायें, जो अत्तार (औषधविक्रेता) की पहुँचके समीप होती हैं। जो औषधद्रव्य अपेक्षाकृत स्वल्प-प्रयुक्त है और जो नुसखोमें कम लिखे जाते हैं, वह उसी अनुपातसे किनारेकी कोठरियोमें रखे जायें।

औषधालयके उपकरण—औषधालयमें सामान्यतया जो उपकरण और सामग्री काममें आती है, उन्हें हर समय स्वच्छ एव शुद्ध रखना चाहिए, जिसमें आवश्यकता पडने पर देरी न हो। कभी-कभी तात्कालिक भेषजकल्पना-की आवश्यकता आ पडा करती है। यदि उस समय सामग्रीको साफ करनेमें देर लग गयी तो रोगीको यथासमय औषध न मिल सकेगा। इसलिए यह सामान जिस समय मैले हों, उसी समय उन्हें अविलब साफ करके व्यवस्था-पूर्वक अपने स्थान पर रख दिया जाय।

तराजू और बाट (तुला और मान)—तुला (तराजू)के विषयमें यहाँ यह बात विशेष रूपसे स्मरण रखें कि उसके दोनो पलडोंका वजन (तौल) न्यूनाधिक न हो, दोनों समतोल होने चाहिए। बहुमूल्य द्रव्य जैसे कस्तूरी, अबर इत्यादि और विष-द्रव्य जैसे सखिया, अहिफेन इत्यादि तौलनेकें लिए वह छोटा नाजुक तुला काममें लेवें, जिसको "काँटा" कहते हैं जो सोना-चाँदी तोलनेके काम आता है।

तराजूके बाट भी स्वच्छ निर्मल और प्रामाणिक एव विश्वसनीय रखने चाहिए। इस बातकी सावधानी रखें

कि बाटों से किसी ऐसी वस्तुका स्पर्श न होने पाये जिससे उनका वजन बढ जाय। छोटे तराजू अर्थात् "कॉटे"के लिए रत्ती, माशा और तोलाके छोटे प्रामाणिक एव विश्वसनीय बाट रखने चाहिएँ।

औषध तौलनेके लिए वह तराजू उत्कृष्टतर होते हैं जिनका एक पल्टा शीशेका हो। वह तराजूके साथ इस प्रकार सलग्न हो कि आवश्यकता के समय उससे पृथक् न किया जा सके।

औषधोंके नापने-तौलनेके आवश्यक नियमोंका वर्णन प्राय आनेवाला है।

सिद्धौषध रखनेके पात्र—शीशे और शीशियाँ पक्की एव शुद्ध रहनी चाहिएँ। उनमें प्रथमत औषध डालनेसे पूर्व उन्हें भलीभाँति स्वच्छ कर लेना चाहिए। यदि शीशे या शीशियोंमें कुछ आर्द्रता (नमी) हो तो उसको सर्वथा शुष्क कर देना चाहिए। इसके उपरात उसमें औषध डालना चाहिए, वरन् औषधके खराब होनेकी आशका है।

पर यदि उनके भीतर कोई प्रवाही औषध डालना हो और उसे अधिक काल तक रखना नही है, प्रत्युत रोगी उसे स्वकीय प्रयोगके लिए ले जा रहा है, अस्तु, वह शीघ्र ही व्यय होनेवाला है, तो उस समय शीशी या शीशाका शुष्क करना अनिवार्य नही है।

प्रत्येक शीशा या शीशी पर मोटे अक्षरोंमें औषध का नाम लिखा होना चाहिए। जिन शीशियोंमें विष-घटित कल्प हों, उन पर भेषज (कल्प)का नाम लिखनेके अतिरिक्त विभेदसूचक चिह्नकी भाँति रगीन कागजकी एक और चिट लगा दें, जिस पर जह्र (विष) शब्द लिखा हो तो उत्तम है, जिसमें कागजकी रगीनी सूचनाका काम दे सके।

बोइयाम और मर्तबान काँच या चीनीके होने चाहिएँ। अथवा यदि मिट्टीके मर्तबान इत्यादि हों तो पके हुए और उत्तम रोगन (लुक) किये हुए हों और सबके मुँह पर उत्तम ढक्कने हों। मर्तबानों पर शीशों और शीशियों-की तरह कल्पों (औषधों)के नाम स्वच्छ सुलेखाक्षरोंमें लिखे हुए हों। मिट्टीके रोगनी (लुक किये) हुए मर्तबानोके विषयमें विशेष रूपसे यह ध्यान रखें कि उनके भीतर सम्यक् रोगन (लुक) किया गया हो और खूब पकाए गए हों।

डाटें प्राय काग एव काँचकी होती है। किंतु प्राय दवाओंमें काँचकी डाटें उत्कृष्टतर हुआ करती है। डाटें ऐसी ठीक और उपयुक्त होनी चाहिएँ, जो शीशा और शीशियोंके मुँह पर जमकर बैठ जायँ।

यदि डाटें काग या लकडी इत्यादिकी हों, तो वह पुरानी, सडी-गली और मलिन न हो। यह अधिक मूल्यकी वस्तु नही है। इसलिए स्वच्छ निर्मल डाटोंके उपयोगमें कजूसी न की जाय। यह दुर्भाग्यकी बात है कि कोई-कोई बेपरवाह अत्तार प्रयोगमें लाई हुई पुरानी कागोंका उपयोग करते हैं। यह स्वभाव-दोष उस दशामें और भी अधिका-धिक हो जाता है क्योकि विभिन्न जातीय औषधो (विविध प्रकारके कल्पों) में इनका उपयोग किया जाय। उदाहरणत सिकजबीन के शीशाकी काग अर्क बेदमुश्क, अर्क गुलाब या अर्क केवडा इत्यादिके शीशे पर चढ़ा दी जाय।

यदि काग इत्यादिकी डाट किसी शीशे या शीशीके मुँहमे बडी हो, तो दाँतों से दबाकर छोटा करना बिल्कुल अविहित कर्म है, जिसकी आज्ञा वैद्यकीय दृष्टिसे कभी नहीं दी जा सकती। स्वाभाविक घृणा वा असहिष्णुता और धार्मिक छूआ-छूतके अतिरिक्त मुख और दत सदा नाना भाँतिके दूषित मलोंसे आप्लुत हुआ करते है।

चीनीके मर्तबानोंके ढक्कने कभी-कभी ढीले-ढाले और छोटे से होते हैं जो मर्तबानके ऊपरी किनाराके भीतर दबे रहते हैं। इससे धूलि-कणादिकी सम्यक् रक्षा नही होती। ये सिद्धातत अतीव दोषावह हैं। ऐसे मर्तबानोका उपयोग उचित नही है। पर यदि किसी कारणसे विवश होकर इनका उपयोग करना ही पडे तो उनके ऊपर एक अन्य ढक्कन भी होना चाहिए जो धूलकणादि को भीतर जानेसे रोके।

मर्तबानोंकी पेचदार डाटें प्राय जमकर बैठ जाया करती है और बडी परेशानीका कारण हुआ करती है। इसलिए उनसे यथासभव बचना चाहिए।

डाट खोलना—डाट शीशाकी हो, चाहे कागकी, खोलते समय इनको बलपूर्वक एकदम ऊपरकी ओर खींचना न चाहिए, क्योकि खीचनेसे कभी-कभी डाट टूट जाती है। पुन यदि डाट शीशेकी है तो शेष भाग शीशेके मुँहमें इस प्रकार फँसकर रह जाता है कि शीशेकी गर्दन तोडनेके सिवाय अन्य कोई उपाय नही। यदि डाट काग

इत्यादिकी है तो अवशिष्ट भाग शीशेके भीतर गिर जाता है। इससे कभी-कभी औषधियाँ बिगड जाती हैं। अस्तु, डाटको एक अदाजके साथ घुमाकर बाहरकी ओर खीचना चाहिए।

डाट का फँस जाना—कागकी ऐसी डाटोको जो शीशो और शीशियोमें अधिक फँसी हुई हो और उनके सिरेसे उनका इतना भाग बाहर निकला हुआ न हो, जो उँगलियोकी पकडमें आ सके तो उनको पेचकशमे फँसाकर निकालना चाहिए। इस प्रयोजनके लिए औषधालयमें छोटे-बडे कई पेचकश रखने चाहिएँ, जिसमें विभिन्न प्रमाणकी डाटे निकालनेमें काम आ सकें।

पर यदि शीशाकी डाट किसी शीशामें फँस गयी हो, तो उसका निकालना एक चतुर गुणीका काम है। ऐसी फँसी हुई डाटोके निकालनेका उपाय यह है कि ऐसे शीशेको फँसी हुई डाटोंके समीप इस प्रकार उत्ताप पहुँचाएँ कि शीशा उत्तापके कारण टूट न जाय। इससे प्राय डाट ढीली पड जाती है। परतु इस प्रयोजनके लिए उष्ण जलमें शीशाके मुँहको औंधाकर डाल देना बडी भूल है, क्योंकि इससे कभी-कभी शीशा टूट जाता है और औषध न्यूनाधिक नष्ट हो जाता है। इसलिए उत्तम यह है कि उष्ण जलमें कपडा भिगोकर उसे निचोड लिया जाय और गरम होनेकी दशामें शीशेके सिरे पर इतना लपेट दिया जाय कि वह कपडेकी गर्मीसे गर्म हो जाय। फिर गरम होनेकी दशामें क्रमसे डाट घुमानेका प्रयत्न किया जाय। इस उपायसे डाट खोलनेमें प्राय- सफलता हो जाया करती है। सुतरा कभी-कभी शीशाको धूपमें रख देना काफी हो जाता है।

शर्वत और सिकजबीनके उन शीशोंके मुँह पर जो अत्तारके सम्मुख रखे होते हैं और जिनसे थोडा-थोडा शर्वत बारबार निकालना पडता है, डाटोके अतिरिक्त एक अन्य टोप (खोल) भी ढक्कन या आवरणकी भाँति होना चाहिए जो उन शीशोंके मुँहको गर्दन तक छिपा ले, जिसमें किनारे पर डाटके समीप यदि कुछ शीरा लगा हुआ रहे (जो प्राय कुछ-न-कुछ अवश्य लगा रहा करता है) तो मक्खियाँ तग न करें।

डब्बे—शुष्क औषधि रखनेके लिए काठके ढक्कनदार डब्बे होने चाहिएँ और उन पर औषधके नाम मोटे अक्षरोंमें लिखे हुए हों।

धातुके डब्बे भी कभी-कभी जडी-बूटियोके लिए उपयोग किये जाते हैं, परतु यह अधिक उत्तम नही हैं।

पैमाने (नाप, नपुए)—शर्वत, अर्क और अन्यान्य द्रव नापनेके लिए उत्तम है कि कांचके नपुए (पैमाने) हों, जिन पर माशो, तोलोंके चिह्न बने हुए हो।

बिंदुवाली शीशी (मिक्तार)—अल्पप्रमाणके प्रवाही द्रव्य देनेमें प्राय बिंदु गिनने पडते हैं। इसलिए 'अत्तारखाना'में "बिंदुवाली शीशी" (मिक्तार) भी होनी चाहिए, जिससे समयके एक विशेष अतरसे प्रवाही द्रव्य बूँद-बूँद होकर गिरता है, चाहे शीशीके मुँहको अधिक औंधा कर दिया जाय या कम। इस प्रकारकी शीशीकी डाट विशेष प्रकारकी होती है जिसमें द्रव्यको बहनेके लिए एक बारीक नाली या छिद्र होता है जो एक नोकदार उभार पर समाप्त होता है जिसे नीचेकी ओर झुकाकर रखा जाता है। इस उभारपर थोडा द्रव ठहर-ठहरकर पहुँचता और बूँद-बूँद बनकर हलके-हलके गिरता है।

कभी बिंदु गिरानेके लिए शीशाके मुँहमें काँचकी झुकी हुई डडी (जिसकी वक्रता वा झुकाव समकोण बनाता है) लगा दी जाती है और शीशाकी गर्दनको धीरेसे झुकाया जाता है, जिससे प्रवाही उस डडीसे लगकर और बूँद-बूँद बनकर गिरता है। यह कार्य अपेक्षाकृत चतुराईका है। इसमें हाथको सँभालना पडता है जिसमें एक साथ अधिक बूँदें न गिर पडें जिनका गिनना कठिन हो जाय।

चमचे (चम्मच)—माजून, खमीरा, अतरीफल, लऊक (अवलेह) आदि जैसे अर्धप्रवाही द्रव्योंके निकालनेके लिए औषधालयमें अनेक चमचे होने चाहिएँ, जिसमें विभिन्न जातिके एक-एक वर्गके लिए एक-एक चमचा अलग रहे, उदाहरणत दवाउल्‌मिस्क, मुफ़र्रेहात और याक़ूतियात (याक़ूतियों)के लिए एक, खमीरोंके लिए एक, जुवारिशो (खांडव)के लिए एक।

यदि एक ही चमचासे अनेक प्रकारके कल्पोंके निकालनेका कुअवसर प्राप्त हो, तो एक कल्पके चमचाको अन्य कल्पमें डालनेसे पूर्व उसे भली प्रकार धोकर सुखा लिया जाय।

चमचे यदि चीनीके हों तो श्रेष्ठतर हैं। पर क्योंकि वे मजबूत नही होते। इसलिए यदि विवश होकर धातुके चमचे उपयोग किये जायँ, तो उनको परम शुद्ध रखना चाहिए और उन पर कलई करा लेनी चाहिए जिसमें उस पर शीघ्र जग न लगने पाये। विशेषत पीतल और ताँबेके चमचोंको विना कलई कदापि उपयोग न करें।

चमचोंके दस्ते लबे होने चाहिएँ, जिसमें कल्प निकालते समय हाथ आप्लुत न हो। कल्प निकालनेके उपरात तुरत चमचोंको धोकर शुद्ध कर लेना चाहिए, कल्पसे लिथडे हुए कदापि न छोडे जायें। इन चमचोंको यथासभव सुरक्षित स्थानमें रखा करें और पुन कल्प निकालनेसे पूर्व कपडेसे धूलि-कणादिको स्वच्छ कर लिया करें।

मुरब्बा निकालनेके लिए काँटेंदार चमचे उपयोग करने चाहिए।

दिल्लीके बडे-बडे औषधालयोंमें सामान्य रीति यह है कि इस प्रयोजनके लिए चमचोके स्थानमें वह लोहेकी सलाखें (लोहेकी पतली छड) उपयोग करते हैं जिनके दोनो सिरोको पीटकर किंचित् चपटा कर लिया जाता है। ऐसे सस्ते चमचे औषधालयमें अनेक होते हैं।

शीशे और चीनीके पात्रोका धोना—यदि बोइयाम, मर्तबान या शीशामें कोई ऐसा कल्प लगा हुआ हो, जो सामान्य रीतिसे न धोया जा सके तो उनको उष्ण जलमें सज्जी मिलाकर भिगो रखें और थोडी देरके बाद धोयें। इसी प्रकार इनको साबुन और उष्ण जलसे भी शुद्ध कर सकते हैं।

बोइयामों और शीशोंको शुद्ध करनेके लिए छोटे-बडे विशेष प्रकारके बुरुश भी होते हैं, जिनसे अवश्य काम लेना चाहिए, चाहे साबुनका पानी उपयोग किया जाय या सज्जी इत्यादि। यदि कोई शीशा केवल उष्ण जल और बुरुशसे स्वच्छ किया जाय, तो इसके उपरात साबुन इत्यादिसे सतर्कताके विचारसे पुन धो लेना उत्तम है। शीशो-को धोनेके उपरांत शुष्क करनेके लिए औंधाकर रख देना चाहिए।

चिकटे हुए तेलके शीशे किंचित् कठिनतापूर्वक और देरमें स्वच्छ हुआ करते हैं। उनको साबुनके पानी या सज्जीके पानीमें देर तक भिगोना पडता है। इसके विपरीत शर्बत, सिकजबीन और पाकसिद्ध कल्पो के पात्र बहुत शीघ्र स्वच्छ हो जाते हैं जिनके लिए साबुन और सज्जीकी कोई आवश्यकता नही है। ये द्रव्य अकेले पानीमें घुल जाया करते हैं।

नुसखा बाँधना (दवा देना)—"नुसखा बाँधने"से यह अभिप्रेत है कि वैद्यके नुसखा और उसकी लिखी हुई व्यवस्थाके अनुसार अत्तार औषध प्रस्तुत करके नुसखाके मालिकके सुपुर्द करे।

यद्यपि यह एक छोटी सी परिभाषा है, फिर भी यह एक साधारण कार्य नही है जिसे एक वाक्यमें बता दिया जाय, प्रत्युत यह एक बडा जटिल कार्य है जिसके अधीन अत्तारके बहुश अन्यान्य कर्त्तव्योंका अतर्भाव होता है। इन्ही कर्त्तव्योंको अनेक भागोंमें विभाजित करके वर्णन करनेका प्रयास किया जाता है।

(१) नुसखा बाँधनेसे पूर्व अत्तारका यह कर्त्तव्य है कि वह एक बार सपूर्ण नुसखा (व्यवस्थापत्र)को आद्योपात पढ़ डाले।

(२) यदि नुसखाके उपादानोंमेंसे कोई द्रव्य अपने औषधालयमें वर्तमान न हो, तो उसके विषयमें अपना कोई अभिमत प्रगट न करे, न उस उपादानके विना नुसखा बाँधे और न अपने मतसे उक्त द्रव्यके बदले कोई अन्य द्रव्य (प्रतिनिधि रूप से) डाले। यह दोनों बातें नियमके अनुसार अपराध और उत्तरदायित्वपूर्ण हैं। प्रत्युत ऐसे समय अत्तारका यह कर्त्तव्य है कि वह चिकित्सकसे, जिसने नुसखा लिखा है, विचार-विनिमय करे और उससे जो आदेश प्राप्त हो, उसके अनुसार अपने कर्त्तव्यका पालन करे। ऐसा करनेसे अत्तारका उत्तरदायित्त्व समाप्त हो जाता है और उसके स्थानमें समस्त उत्तरदायित्त्व चिकित्सक पर लागू हो जाता है।

यदि नुसखामें किसी द्रव्यका नाम सदिग्ध हो और वह स्पष्ट पढा न जा सके, तो सदेह की अवस्थामें केवल अटकलसे काम न लेना चाहिए। प्रत्युत हकीमसे उक्त संदेहको निवारण कर लेना चाहिए।

(३) यदि किसी नुसखामें द्रव्यके मान (वजन)के संबंधमें कोई संदेह हो, जैसे किसी उग्रवीर्य और विष-द्रव्य की मात्रा उसकी साधारण सेवनीय मात्रासे अत्यधिक लिखी हो जैसा कि कभी-कभी "माशा"के स्थानमें प्रमादवश "तोला" लिखा जाता है, जिससे हानि एवं विष-प्रभावकी आशंका हो, तो उसके विषयमें नुसखाके लेखक हकीमको अवश्य सूचित कर देना चाहिए। इसके बिना संदेहकी दशामें कदापि नुसखा न बांधना चाहिए।

इसी प्रकार यदि किसी नुसखामें सिद्धांतके विपरीत दो विरुद्ध (मुखालिफ) औषधद्रव्य लिखे हों या और कोई नियम-विरोधी बातें हों, तो भी हकीमसे परामर्श करना आवश्यक है। ऐसा न हो कि यह भूल केवल हकीमके प्रमादसे अज्ञातरूपेण उपस्थित हो गई हो जो प्रत्येक मानवसे होनी उचित है।

(४) नुसखा पढनेके उपरांत आदेशानुसार समस्त औषधद्रव्योंको वजन करके और नाप-तौलकर दिए जायँ। अटकल और अनुमानसे देनेमें कभी-कभी भयानक भूल हो सकती है।

परंतु दिल्ली जैसी बडी जगह और प्रख्यात वैद्यकीय केंद्रमें यह एक सामान्य नियम है कि क्वाथ एवं फाण्ट इत्यादिके प्रायः उपादानोंको (जो अत्यधिक उग्र वीर्य एवं भयानक नहीं है) अत्तार केवल अपने हाथ और दृष्टिके अंदाजसे दिया करते हैं, उनके नापने-तौलनेकी झंझट पसंद नहीं करते। परन्तु उग्र-वीर्य और बहुमूल्य द्रव्योंमें पाबंदी के साथ नाप-तौलका कष्ट सहन करते हैं। (कुल्लियात अद्‌विया)

(५) औषधद्रव्यके गुण-कर्म—अत्तारका यह कर्तव्य है कि वह नुसखामें औषधद्रव्योंके नामोंके साथ लिखी हुई परिभाषाओं और प्रतिबंधोंको समझे। उदाहरणतः

मुनक्का—जिसका अर्थ "शुद्ध किया हुआ" है। इसका यह अभिप्राय है कि औषधद्रव्यकी गुठली निकाल डाली जाय। यह विशेषण अधिकतया आमला और मवेज[1]के साथ लिखा जाता है।

मुकश्शरका अर्थ "छीला हुआ" है। इस क्रिया विशेषणका प्रयोग मुलेठी (अस्लुस्सूस) आदिके साथ किया जाता है। इसका यह अभिप्राय है कि मुलेठीके बाहरी मैले छिलकेको चाकूसे छील दें, जिससे असली पीली लकडी निकल आये।

मुकर्रज़का अर्थ "कैंचीसे कतरा हुआ" है। यह क्रिया-विशेषण अधिकतया अबरेशमके साथ आता है जिसका यह अभिप्राय है कि अबरेशमके कोयाको कैंचीसे कतर कर उसके भीतरका कीडा फेंक दें जो उसमें मृत अवस्थामें सूखा हुआ पाया जाता है।

बसुर्रा-बस्ताका अर्थ "पोट्टलीबद्ध—पोटली बांधकर" है। यह क्रिया-विशेषण प्रायः अफ्तीमून और तुख्म कुशूसके साथ लिखा जाता है जिससे यह अभिप्रेत है कि क्वाथ या फाण्टमें उक्त औषधद्रव्य अन्यान्य औषधद्रव्योंसे पृथक् बारीक कपडेकी पोटलीमें बांधकर डाले जायँ। उस अवस्थामें अत्तारका यह कर्तव्य है कि ऐसे द्रव्यको नुसखा-के अन्य उपादानोंके साथ न मिलाये। प्रत्युत उसे अलग पुडियामें बांधकर अन्य औषधद्रव्योंके साथ रख दे और नुसखा लेनेवालेको समझा दे कि इस पुडियाके औषधद्रव्यको मलमलके एक टुकडेमें बांधकर क्वाथ या फाण्टमें डाले।

पाशीदाका अर्थ "छिडक कर" है। यह क्रिया-विशेषण प्रायः खाकसी, इसबगोल, तुख्म रैहाँ, तुख्म कनोचा इत्यादिके साथ लिखा जाता है, जिसका अभिप्राय यह है कि फाण्ट और क्वाथ इत्यादि जब हर प्रकार प्रस्तुत हो जाय, तब द्रवकी सतह पर खाकसी या अन्य वस्तु छिडक दी जाती है और उसी दशामें जबकि वह द्रव्य धरातल पर तैर रहा है, द्रव पिला दिया जाता है। ऐसे औषधद्रव्यको अलग पुडियामें बांधकर देना चाहिए और रोगी या नुसखावाहकको उसकी सेवन-विधि समझा देनी चाहिए।

---

१ परन्तु हमारे प्रायः अत्तार केवल अपने आलस्य एवं असावधानीसे नुसखामें समूचा मुनक्का डाल दिया करते हैं और बीज निकालनेका कष्ट या झंझट न स्वयं पसंद करते हैं और न रोगीको उसका आदेश कर देते हैं।

मुगरवलका अर्थ "चलनीमें चाला हुआ" है। इस क्रिया-विशेपणका प्रयोग प्राय गारीकूनके साथ किया जाता है जिससे यह अभिप्रेत है कि गारीकून (खुमी विशेप)को वालोकी चलनीमें डालकर चाल दिया जाय। जो वारीक अश चलनीसे छनकर निकल जायें। उन्हें उपयोग किया जाय और जो कडे अश चलनीसे छन न सकें उन्हें छोड दिया जाय।

नीमकोफ्ता (अधकुचला, अधकुटा)—क्वाथ एव फाट इत्यादिके वहुतसे नुसखोमें औपधद्रव्योके साथ विशेपण रूपसे यह शब्द आता है, जैसे—अस्लुस्सूस मुकश्शर नीमकोफ्ता, वेख कासनी नीमकोफ्ता, वेख वादियान नीमकोफ़्ता इत्यादि। इससे यह अभिप्रेत है कि इन औपधद्रव्योंको हावनदस्तामें इतना कूटें कि उसके घटक वहुत अधिक वारीक न हो जायें। जिन औपधद्रव्योंके साथ नुसखामें यह शब्द लिखा हो, अत्तारका यह कर्त्तव्य है कि उसे नुसखामें इसी प्रकार अधकुट (नीमकोव) करके डाले, सुविधाके विचारसे उन्हें यूँ ही दे देना भूल है। ऐसी दशामें उसके घटक सम्यक् द्रवमें प्राप्त नही होते।

मुजव्वफ खराशीदा—यह दोनो शब्द युगपत् साधारणत निशोथ (तुर्वुद—त्रिवृत्)के साथ क्रिया-विशेपण रूपसे लिखे जाते हैं जिससे यह अभिप्रेत होता है कि निशोथको मुलेठीकी भाँति ऊपरसे छील डाला जाय, जिसमें उसकी वाहरी मैली त्वचा दूर हो जाय। इस क्रिया (सस्कार)से निशोथ खराशीदा (छीला हुआ) हो गया। निशोथके मध्यमें एक कडी लकडी (अस्थि) होती है जिसे निकाल डालना और वाहरी त्वचाको काममें लाना चाहिए। इस सस्कारसे तुर्वुद मुजव्वफ (जोफदार, नालीदार) हो गया।

मुदब्बिर, विरयाँ, मुह्‌रक, मुसफ्फा इत्यादि—इसी प्रकार नुसखामें जिन औपधद्रव्योके साथ मुदब्बिर (शोधित), मुहम्मस (विरयाँ—भृष्ट), मुह्‌रक (सोखता, मसीकृत), मश्वी या मुशव्वा (भुलभुलाया हुआ, पुटपाककृत) इत्यादि लिखा हुआ हो, उन औपधद्रव्योको उन्ही विशेपणोंसे सबोधित किया जाय।

यदि रोगी प्रभृति भेपजकल्पनाके उक्त कर्तव्य अपने उत्तरदायित्वमें लें, तो उन्हें अच्छी तरह सचेत कर दिया जाय और कल्पना विपयक सस्कारकी आवश्यक वातें समझा दी जायें।

मुसल्लम्—यह शब्द अधिकतया इसवगोलके साथ लिखा जाता है जिससे यह अभिप्रेत है कि इसवगोलको सौंफ, मुलेठी, कासनीके वीज आदिकी भाँति कूटा न जाय, इसका वीर्य भाग मुवस्सिर जुज़ (जौहर लुआवी) जिससे वैद्यकीय प्रयोजन आवद्ध है, इसके वहिर त्वक्‌में है जो समूचा (मुसल्लम) रहनेकी दशामें भी सम्यक् रूपसे प्राप्त हो जाता है।

(६) आर्द्र वा गीले और अर्धघन औपध (कल्प)का विवरण—माजून, लऊक (अवलेह), खमीरा और इसी प्रकारके अन्यान्य अर्धघन एव गीले (आर्द्र) कल्पोको सफाईके साथ वजन करने (तौलने)के अनन्तर चीनी या शीशेके चौडे मुँहके ढकनेदार पात्रोमें (जो प्रयोजनानुसार छोटे या वडे हों) रखकर देना चाहिए, परतु एक-दो मात्रा माजून इत्यादिके लिए दिल्लीमें मिट्टीकी छोटी-छोटी कोरी प्यालियोंका सामान्य प्रचलन है। एक प्यालीमें कल्प (औपध) डालकर और दूसरी प्यालीसे ढँककर कागज से मढ़ देते हैं। मिट्टीके इन पात्रोमें यह दोप है कि कल्पकी आर्द्रता उनमें शोपित हो जाती है। परतु यदि ये रोगन किए गए हो, तो उक्त दोप कम हो जाता है। सुतरा दवाउल्‌मिस्क, खमीरा मरवारीद, याकूती और मुफ़र्रेह जैसे वहुमूल्य एव सुगधित कल्पोको हमारे अत्तार कलईकी हुई, शुद्ध एव स्वच्छ ढक्कनदार डिवियोंमें रखकर दिया करते हैं। यदि वह एक-दो मात्रासे अधिक न हो।

यह प्रथम वतलाया जा चुका है कि जिन कल्पनाओंमें सिरका, खट्टा अनार, इमली, आलूवुखारा, हड, आँवला-जैसे अम्ल और कपाय-द्रव्य (मुरक्कवात) सम्मिलित हो, उनको धातुके पात्रोमें रखना सिद्धातके विरुद्ध है। विशेपकर जवकि ऐसी दवाएँ धातुके पात्रोंमें देर तक रखी रहें (कुल्लियात अदविया)।

(७) शर्वत और अर्क—यदि किसी नुसखामें केवल शर्वत और अर्क या सिकजवीन और अर्क हो और दोनोंको मिलाकर पीना हो, तो उनको एक साथ कर देनेमें कोई हानि नही है। एक ही पात्रमें दोनों डाल दिए जायँ और अच्छी तरह मिला दिया जाय।

पर यदि क्वाथ या फाटका नुसखा हो जिनमें शर्वत अतमें घोला जाता है और औषधद्रव्य अर्कमें भिगोये जाते हैं, तो अर्क और शर्वतको अलग-अलग पात्रमें डालकर देना चाहिए।

शर्वत और अर्कके लिए भी शीशे और चीनीके पात्र या मिट्टीके रोगन किए हुए पात्र उत्कृष्टतर होते हैं। परन्तु दिल्लीमें मिट्टीके कोरे कूजो (सकोरों) और कूजियो (सकोरियों)का प्रचलन है, जो छोटे-बडे होते हैं। यह कोरे होनेके कारण यद्यपि पवित्र (शुद्ध) होते हैं, किंतु अर्क और शर्वतका एक हिस्सा इनमें शोषित हो जाता है। उक्त अवस्थामें अत्तारका यह कर्त्तव्य है कि वह इन प्रवाही द्रव्योंके प्रमाणमें शोषित होनेका अश रखकर (उतना अधिक मिलाकर जितना शोषित होनेकी आशा हो) उन्हें किसी कदर बढ़ा दें, जिसमें उदाहरणत बारह तोले अर्क कुछ कालोपरात शुष्क पात्रमें शोषित होकर आठ तोले रह जाय, पर चाहे किसी प्रकारके पात्रमें यह कल्प (औषध) डालकर दिए जायँ, प्रत्येक अवस्थामें उनको डाट या कागजसे ढाँक देना चाहिए।

(८) यदि अत्तारको किसी चूर्ण, माजून, गुटिका इत्यादिका नुसखा बाँधना पडा, जिसमें कई औषधद्रव्य कूटने-पीसनेके हो और उस योगको रोगी या परिचारक स्वय गृह पर अपने प्रबधसे तैयार करना चाहे, तो अत्तारका यह कर्त्तव्य है कि उक्त योगके समस्त उपादानको अलग-अलग पुडियोंमें बाँधकर या उपयुक्त पात्रोंमें रखकर सब पर नाम लिख दें। फिर सब औषधद्रव्योंको एक बडे कागजमें बाँधकर औषध लेनेवालेके सुपुर्द करे। समस्त औषधद्रव्योंको इस विचारसे एकत्र कर देना कि वे सब एक ही योगके उपादान हैं, एक सिद्धातमूलक त्रुटि है। ऐसा करनेसे भेषजकल्पनाके समय बीसो जटिलताएँ निकल आती हैं। उदाहरणत यह बताया जा चुका है कि विभिन्न औषध-द्रव्योंके कूटनेमें उनको अलग-अलग समुदायों एव वर्गोंमें विभक्त करना पडता है। यह तो एक उदाहरण है। इसी प्रकार अनेक सस्कार हैं जो विभिन्न औषधद्रव्यों पर अलग-अलग करने पडते हैं।

पुन ऐसे योगके नुसखेमें कोई उपादान आर्द्र (गीला), विषैला या मूल्यवान् हो, तो उक्त उपादानको विशेष रूपसे पृथक् देना चाहिए और विषैला एव बहुमूल्य औषधद्रव्य रोगीको भलीभाँति जताकर सुपुर्द करना चाहिए। ऐसा न हो कि विषैले उपादानके कारण कोई भयकर त्रुटि हो जाय, या बहुमूल्य औषधद्रव्य किसी प्रकार खो जाय।

परतु जिन योगोंके औषधद्रव्य एक साथ भिगोने या उबालने हैं, जैसे—क्वाथ, फाण्ट, शर्वत, लऊक (अवलेह), खमीरा इत्यादिका नुसखा। उक्त योगोंके उन उपादानोंको एक साथ देनेमें कोई हानि नही है। पर इसके विपरीत यदि नुसखा लेनेवालेने कोई विशेष हिदायत न की हो, तब। वरन् वैद्य या नुसखा लेनेवालेके आदेशानुसार कार्य करना और समस्त औषधद्रव्य पृथक्-पृथक् बाँधकर देने चाहिए।

(९) नुसखेका पुनरावलोकन—लिखित आदेशके अनुसार जब अत्तार औषध बना चुके या नुसखेके समस्त उपादान निकाल चुके, तब उसे (योगवाहक)के सुपुर्द करनेसे पूर्व, एक बार नुसखेका ध्यानपूर्वक पुनरावलोकन करे और आद्योपात पढ डाले, जिसमें यदि कोई भूल हो गई हो, तो उसका निराकरण हो सके।

जब किसी नुसखेके कई उपादान हो और वह एक भिगोने या पकानेके हो, तो उनके उपादानोको एक बडे कागज पर अलग-अलग रखते चले जायँ और जब समस्त उपादान निकल आयें तब उनको एकत्र करके बाँधनेसे पूर्व, नुसखेको दोबारा पढकर समस्त उपादानोंकी गणना करें। फिर उक्त गणना (सख्या) से कागज पर रखे हुए औषधद्रव्योकी तुलना करे। यदि भूल चूकसे कोई उपादान रह गया हो, जैसा कि कभी हो जाया करता है, तब पुनरावलोकन करने पर उसकी पूर्ति हो जाती है।

इसी प्रकार यदि वह नुसखा किसी ऐसे योग (मुरक्कब)का हो, जिसके उपादान पृथक्-पृथक् बाँधकर दिये जाते हैं तो जब समस्त औषधद्रव्य पुडियोंमें बाँधे जा चुके, उस समय एकत्र बाँधकर सुपुर्द करनेसे पूर्व नुसखेके उपादानोकी ध्यानपूर्वक गणना करें। इसके उपरात उन पुडियोको गिनकर तुलना करें। इस प्रकार प्राय त्रुटियाँ दूर हो जाया करती हैं और कोई उपादान छूटने नही पाता।

(१०) सेवन-विधि समझाना—अतिम बार नुसखा पढ लेने और पूर्ण रूपसे अपना सतोष करनेके उपरात अब अत्तारका अतिम कर्त्तव्य तथा अनिवार्य प्रधान कर्त्तव्य यह है कि वह औषध सुपुर्द करते समय रोगी या अन्य

नुसखा लेनेवालेको खूब विस्तार एव शातिपूर्वक सुबोध स्पष्ट शब्दोंमें औषधकी सेवन-विधि समझाये और भलीभांति बुद्धिमें बैठा दे। रुग्णावस्थामें प्रधानतया लोगोका मस्तिष्क क्षुब्ध एव अस्थिर रहा करता है, चाहे स्वय रोगी हो अथवा दु खका सगी परिचायक। इस परेशानी तथा उलझनमें नानाप्रकारकी उपहासजनक और कभी-कभी साघातिक त्रुटियाँ हो जाती है।

जब ओषधियाँ बहिराभ्यतरिक प्रयोग की हो, तो उस समय नुसखा लेनेवालेको औषधियाँ पृथक्-पृथक् देनी चाहिए और पूर्ण रूपसे सचेत एव सतर्क कर देना चाहिए, विशेषकर यदि वाह्य प्रयोगकी औषधिमें कोई विषैला या उग्र वीर्य उपादन हो। इस प्रकारके विषैले ओषधद्रव्य पर यदि विभेद-सूचन के लिए लाल रगका कागज लपेट दिया जाय, तो श्रेष्ठतर है।

(११) दो नुसखोका एक साथ बांधना—यह सिद्धातत अनुचित है कि एक समयमें दो नुसखे एक साथ बनाये जायें।

(१२) नुसखेका सामने रखना—नुसखा बनाते या बांधते समय नुसखाको सामने इस ढगसे रखना चाहिए, कि दवा बनाते समय सहज ही उसकी दृष्टि उस पर पड सके और आर्द्र एव द्रव पदार्थसे न लिथडने पाये।

औषधद्रव्योकी नाप-तौल

ओपधालयकी तराजू (तुला)के विषयमें कुछ आवश्यक बातें इससे पूर्व "ओपधालयके उपकरण" नामक प्रकरणमें लिखी जा चुकी हैं। यहाँ पर प्रसगानुसार तौलनेके कुछ नियम भी लिखे जाते हैं —

(१) शुष्क ओपधद्रव्य (घन पदार्थ) साधारणत तराजूके द्वारा तौले जाते है, और द्रव पदार्थ प्राय नपुआ (पैमाने)के द्वारा नापे जाते, कभी तौले जाते और कभी बिंदुके रूपमें टपकाये जाते हैं, और उन बिंदुओको गिन लिया जाता है।

(२) चिपकसे बचना—अर्ध-घन, लेसदार और चिपकनेवाले कल्प उदाहरणत माजून, अतरीफल, लऊक, मरहम इत्यादि तराजूके पल्लेसे चिपक जाते हैं। इसलिए इन्हें उसी पात्रमें डालकर तोलना चाहिए, जिसमें रखकर नुसखा लेनेवालेके सुपुर्द करना चाहें। पहले उस पात्रका घडा कर लेना चाहिए। कभी ऐसे कल्पोंको कागज पर रखकर तौला जाता है, और उतना ही बडा कागजका दूसरा टुकडा दूसरे पल्लेमें बाटके साथ डाल दिया जाता है, जिसमें कल्प (सिद्ध भेपज)के वजनमें कोई कमी न आये। तौलनेके उपरात औपधको कभी उसी कागजके साथ दूसरे पात्रमें रखकर दे दिया जाता है, और कभी छुरीके द्वारा उस कागजसे ओषधि खुरच ली जाती है और दूसरे पात्रमें डाली जाती है।

(३) शर्बत, अर्क और इसी प्रकारके अन्य द्रवसिद्ध ओपधियाँ जब शीशी और शीशेसे निकालना चाहें, तो उस समय उन पात्रोंकी पकड इस प्रकार होनी चाहिये, कि उसके नाम व निशानकी चिट (निर्देशपत्र) ऊपरकी ओर हो। यदि उसके विपरीत करेंगे और चिह्नको नीचेकी ओर रखेंगे, तो द्रव कल्पके बिंदु जो प्राय पात्रके सिरे पर लगे रह जाते हैं, नीचे बहकर नाम व निशानको खराब कर देंगे।

(४) द्रव कल्पोंके निकालनेके उपरात कल्प (सिद्ध भेपज)का जो बिंदु शीशे या शीशीके मुँहपर लगा रह जाता है और वह गिरने नही पाता, उसे उसी शीशेकी डाटके निचले कल्प-प्लुत भाग पर लेकर डाटको इस प्रकार शीशे पर लगा देना चाहिए कि कल्पकी यह बूंद शीशेके अदर चली जाय।

परतु यदि भूलसे शर्बत आदि शीशेके मुँह, सिरे और गर्दन पर लग जायें, तो उसको गीले कपडेकी साफी इत्यादिसे पोंछकर तुरत साफ कर देना चाहिए।

माजून इत्यादिमें मिठासका वजन—"हमवजन" इत्यादिसे क्या अभिप्रेत है? चूर्ण एव माजून प्रभृतिके नुसखोंमें यदि मिश्री, खांड, मधु और तरजबीन (यवासशर्करा) इत्यादि हमवजन लिखा हो, तो उससे यह अभिप्रेत

भेषज-कल्पनाविषयक परिभाषाविज्ञानीय अध्याय ६

भेषज कल्पनाविषयक कतिपय आवश्यक परिभाषाएँ

अक्द—[अ०] पारदके साथ कोई अन्य धातु मिलाकर गोली बनाने या वैसे ही किसी धातुके साथ मिलाकर खरल करनेको (मल्गमा) कहते हैं। आयुर्वेदकी परिभाषामें इसे द्वन्द्वान[1] (द्वद्व—मेलापन) कहते हैं।

अजसाद—[अ० 'जसद'का बहुव०] दे० 'जसद'।

अनुपान—[स०] बदरका। दे० 'बदरका'।

अफ्शुर्दा—[फ़ा० अफ़शुर्दन = निचोडना] उसारा। स्वरस। दे० 'उसारा'।

अबरक महलूब—दे० 'धन्नाब'।

अरगजा—[ ] ग़ालिया।

अरवाह—[अ० 'रूह' का बहुव०] दे० 'रूह'।

अरिष्ट—[स०] 'नबीज़' दे०।

असीर—[अ०] 'उसारा' दे०।

आब कद्दू—[फ़ा० आब + कद्दू] कद्दू [लौकी)को कपडमिट्टी (गिलहिकमत) करके भाडमें रखे। जब मिट्टी लाल हो जाय, लेकिन जल न जाय, तब निकाल ले। शीतल होने पर मिट्टीको अलग करके कद्दूका रस निचोड लें।

आब कामा—[फा०] काँजी। दे० "काँजी"।

आब खियार—[फा०] खीरेका पानी (स्वरस)। इसके निकालनेकी विधि आबकद्दूके समान है।

आब खियारज़ा—[फा०] ककडीका पानी (स्वरस)। विधि आब कद्दूवत्।

आब गोश्त—[फ़ा० आब = जल + गोश्त = मास] यखनी।

आब त्रिफला—[फ़ा० आब + स० त्रिफल] त्रिफलाका पानी। त्रिफला अर्थात् हड, बहेडा और आमला, प्रत्येकके (फलका छिलका) समभाग लेकर अधकुट करके चौगुनेसे छ गुने जलमें भिगो रखें। कुछ घटेके पश्चात् छान ले। यही "आबे त्रिफला" अर्थात् त्रिफला जल है।

आशेजौ—[ ] यवमड। माउश्शईर। दे० "माउश्शईर"।

आसव—[स०] दरबहरा। एक प्रकारका अपरिस्रुत मद्य, जिसका विस्तृत वर्णन 'शराब'के प्रकरणमें किया गया है।

आमला मुनक्का—[स० आमलक, आमला + अ० मुनक्का = गुठली निकाला हुआ, साफ किया हुआ] गुठली निकाला हुआ आमला।

उपधात—[स० उपधातु] आयुर्वेदकी परिभाषामें गधक, पारद, हडताल, सखिया, शिगरफ, रसकपूर और दारचिकना को कहते हैं। रसायनी (अहले अकसीर) इनको जवीउल् अरवाह् या केवल रूह् कहते हैं।

उबटन—[हिं०] फारसीमें 'ग़ाजा' कहते हैं। वह कल्प (मुरक्कब) जो शरीर पर वर्णप्रसादन (रग साफ करने)के लिए मर्दन किया जाता है।

---

1 द्रव्ययोर्मर्दनाद् ध्मानाद्द्वन्द्वान परिकीर्तितम्।

ऊर्ध्व नलीका जतर—[स० ऊर्ध्वनलिका यत्र[1]] आयुर्वेदकी परिभाषामें भभकाको कहते हैं। दे० "अर्क"।

ऐरनय उपले—[स० ऐरण्य + हिं० उपले] जगली उपले जो हाथसे नही थोपे जाते, परतु वनमें पशु जो गोवर करते हैं, वह पडे-पडे स्वय सूख जाते हैं।

कजली[1]—[स० कज्जली] शोधित पारद और गधकको मिलाकर एक साथ इतना खरल किया जाता है, कि काजलकी तरह एक श्यामवर्णका चूर्ण वन जाता है। इसीको 'कजली' कहते हैं। इसके उत्तम होनेका लक्षण यह है कि खरलमें न चिमटे, प्रत्युत खरल करते समय उससे पृथक् रहे और लोढे (दस्ता)के नीचे शब्द न हो, यदि इसको अग्नि पर डालें, तो साफ जल जाय, चिड-चिड न करे। जव तक उक्त लक्षण न उत्पन्न हो। उस समय तक वरावर खरल करते रहें।

करसी, करसियाँ—[हिं०] उपलोके छोटे-छोटे टुकडे कर लिए जाते है। यही टुकडे करसी या करसियाँ कहलाते हैं।

काकिलतैन—[अ० 'काकिला' का द्विवचन] इससे दोनो काकिला अर्थात् इलायची सफेद (क्षुद्रैला) और इलायची सुर्ख (वृहदेला) अभिप्रेत होती हैं।

कैरुती—[अ० मोमरोगन] मोम और रोगन (तेल)को कहते हैं, जो परस्पर पकाकर उपयोग किये जाते हैं।

खिज़ाब—[ ] वालोके रँगनेके लिए वनाया हुआ।

घाट—[ ] जौको जलमें भिगोनेके पश्चात् ओखलीमें कूटकर छाँट (छड) लेते हैं, जिससे उसका छिलका अलग हो जाता है। ऐसे निष्तुपीकृत (मुकश्शर) जौको घाट कहते हैं।

चतुर्जात[2], चतुर्जातक—[स० चातुर्जातम्] आयुर्वेदमें तज, तेजपात, इलायची और नागकेसर इन चारो ओषधियोका समाहार।

चतुर्बीज[3]—[स० चतुर्बीजम्] आयुर्वेदमें मिले हुए मेथी, हालिम (चसूर), कलौंजी (मँगरैला) और अजवायन इनको चतुर्बीज (चारवीज—वुजूर अरबआ या चार तुख्म) कहते हैं। परतु यूनानी वैद्यकमें "चार तुख्म" जिसका शब्दार्थ चतुर्बीज है, तुख्म कनौचा, तुख्म रैहाँ, तुख्म वारतग और तुख्म इसवगोल इन चतुर्बीजोके समाहारको कहते हैं।

चर्ख खाना—उत्तापसे किसी धातुका द्रवित (पिघल) होकर कुल्हिया (वूता) इत्यादि में चक्कर खा जाना।

चर्ख देना—[ ] किसी धातुको इतनी आँचदेना जिसमें वह धातु उत्तापसे पिघल जाय (द्रवित हो जाय)।

चह्लवद—[ ] पारद को यशद, रग (कलई), रौप्य इत्यादि जैसी किसी अन्य धातुके साथ मेलापन (मुनअकद करने, मलम्मा वनाने)को कहते है। जिस धातुके साथ पारदका मेलापन (मुनअकद) किया जाता है, उस धातुको पिघलाकर पारदको उसमें मिलाकर खरलन कर देते हैं। चहलवदको 'अक्द करना', 'गिरह करना' भी कहते हैं।

---

१ धातुभिर्गन्धकाद्यैश्च निर्द्रवैर्मर्दितोरस ।
सुश्लक्ष्ण कज्जलाभोऽसौ कज्जलीत्यभिधीयते ॥५॥
(रसरत्नसमुच्चय अ० ८)

२ चातुर्जात समाख्यात त्वगेलापत्रकेशरै ।

३ मेथिका चन्द्रशूरश्च कालाजाजी यवानिका ।
एतच्चतुष्टय युक्त चतुर्बीजमिति स्मृतम् ॥

चहार तुख्म—[फा०] चतुर्बीज । दे० "चारतुख्म" ।

चारतुख्म—[फा०] चतुर्बीज । तुख्म कनौचा, तुख्म रैहाँ, तुख्म वारतग और तुख्म अस्पगोल—इन चतुर्बीजोंके समाहारको यूनानी वैद्यकमे "चारतुख्म" कहते हैं । परतु आयुर्वेदोक्त चतुर्बीज (चारतुख्म) इससे भिन्न है । दे० "चतुर्बीज" ।

चारमग्ज़—[फा०] मग्ज़ तुख्म खरबूजा (खरबूजाके बीजकी गिरी), मग्ज़ तुख्म ककडी (ककडीके बीजकी गिरी) और मग्ज़ तुख्म कद्दू (कद्दूके बीजकी गिरी) इन चतुर्गिरियोंके समाहारको यूनानी वैद्यकमें "चार मग्ज़" कहते हैं ।

चुटकी—[हिं०] वह चूर्ण जो बालकों के लिए बनाया जाता है । यह चूर्ण बालकोको अल्प प्रमाणमें चुटकियोंसे दिया जाता है । इसलिए इसका नाम चुटकी प्रसिद्ध हो गया ।

चूरन—[स० चूर्ण] यद्यपि यह सफूफ़का पर्याय है, परतु चूरन सामान्यतया उस सफूफ (चूर्ण)को कहा करते हैं, जो आमाशयकी निर्बलता और पाचनकी निर्बलता (जोफे मेदा और जोफे हाज़मा)के लिए बनाया जाता है । इसमें साधारणतया अम्ल, चरपरे (हिर्रीफ) और लवण उपादान होते हैं ।

ज़विल् अजसाद—[अ०] उन खनिज धातुओंको कहते हैं, जो अग्नि पर द्रावित होते (पिघलते) और पीटकर बढाने से बढ सकते हैं, जैसे—सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, लोह, रग, यशद, नाग । इन्हींको 'जसद' और 'धात' भी कहते हैं ।

ज़विल् अर्वाह—[अ०] उन खनिज द्रव्योंको कहते हैं, जो अग्नि पर रखनेसे वाष्प बनकर उडने लगते हैं, जैसे—गधक, पारद, हडताल, शिगरफ, मल्ल, रसकपूर, दारचिकना । इसके विपरीत 'ज़विल् अजसाद' है । इन्हींको रूह और उपधात कहते हैं ।

ज़बीउन्नुफूस—[अ०] रसायनी लोगो (अहले अक्सीर)के अनुसार वह द्रव्य, जिनके द्वारा ज़विल् अरवाह और ज़विल् अजसादमें स्रवण (इर्तवात) उत्पन्न किया जाता है, जैसे—नौशादर, शोरा और फिटकिरी ।

जसद—[अ०] रसायनियों (कीमियावालों)की परिभाषामें उन खनिज द्रव्यों (मआदिन)को कहते हैं जिनके घटक अग्नि पर रखनेसे नही उडते, जैसे—रौप्य, सुवर्ण इत्यादि । इसका उलटा रूह है । दे० 'रूह' ।

तिरकुटा—[स० त्रिकटु] इसका शब्दार्थ "तीन चरपरे द्रव्य (हिर्रीफ़ात सलासा)" है । आयुर्वेदमें सोंठ, काली मिर्च और पिप्पली इन तीनोंके समाहारको त्रिकटु (वा त्र्यूपणम्, कटुत्रिक, त्रिकटुक, व्योष) कहते हैं । तिरकुटा (त्रिकुटा) इसीका अपभ्रश है। "पिप्पली शृङ्गवेर च मरिच त्र्यूपण विदु । × त्रिकटुक कथित × × ॥"

तिरफला—[स० त्रिफला] इसका शब्दार्थ "तीनफल" (अस्मार सलासा) है । आयुर्वेदमें मिले हुए हरड, बहेडा और आँवला, इन तीन फलोंके समाहारको त्रिफला (या वरा) कहते हैं । यथा—"पथ्याविभीतधात्रीणा फलै स्यात्त्रिफला वरा।" 'तिरफला' त्रिफलाका ही अपभ्रश है । त्रिफला सज्ञासे ही अरबी-यूनानी वैद्योंने 'अत्रीफल' या 'इत्रीफल' बनाया है । यूनानी वैद्यकमें "अत्रीफल" ऐसे कल्पको कहते हैं, जिसमें त्रिफला प्रधान उपादान रूपसे पडती है ।

तुर्बुद अकबराबादी मुजव्वफ खराशीदा—अकबराबाद अर्थात् आगरासे उत्तम तुर्बुद (त्रिवृत्, निशोथ) मिला करता होगा । इसलिये उसके (तुर्बुद)के साथ विशेषणकी भाँति अकबराबादी (अकबराबादसे प्राप्त) सज्ञा व्यवहृत होती है । मुजव्वफ खराशीदा की व्याख्या गत पृष्ठोंमें दी गई है ।

तोदरियैन—[अ० तोदरीका द्विवचन] इससे तोदरीद्वय अर्थात् तोदरी सुर्ख और तोदरी ज़र्द (लाल और पीली तोदरी) अभिप्रेत है ।

दशमूल—[स० दश + मूल] (दस जडें, उसूल अशरा) आयुर्वेदमें क्षुद्रपञ्चमूल (पचमूल खुर्द) और बृहत्पञ्चमूल (पचमूल कलाँ)की दशो जडोको कहते हैं। दे० "पञ्चमूल खुर्द व कलाँ" ।

धन्नाब—[स० धान्याभ्र] अवरक (अभ्रक)के साथ इस शब्दका व्यवहार आता है। यूनानी ग्रथोके अनुसार यह धान और आव (पानी)का यौगिक है, जो ठीक नही। वस्तुत यह धान्य और अभ्रकका यौगिक है। अवरकके धन्नाव करनेकी विधि यह है—

अवरकको धान या कौडियोके साथ मजबूत कपडेकी थैलीमें वद करके जलके भीतर दोनों हाथोंसे खूब रगडे। इससे अभ्रक कण-कण होकर और कपडेसे छनकर पानीमें चला जायगा। जब अभ्रक तलस्थित हो जाय, तव पानी निथारकर अभ्रकको काममें लेवें। इसीको अव्रक मह्‌लूव भी कहते हैं।

धात—[स० धातु] यूनानी ग्रथोके अनुसार सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, लोह, रग, यशद, नाग इन सप्त खनिज द्रव्योंको आयुर्वेदकी परिभाषामें धात (धातु) कहते हैं। अरवीयूनानी वैद्य इसको 'फिलिज्जात' कहते हैं। रसायनी लोगो (अहले अक्सीर)ने इसका नाम 'जवीयुल् अजसाद' रखा है।

नीमकोब, नीमकोफ्ता—[फा० नीम = अर्ध + कोफ्ता या कोव = कुट्टित]से अभिप्रेत यह है, कि औषधद्रव्यको अधिक वारीक न करें, प्रत्युत मामूली तौरपर उसे कूट लें और मोटा चूर्ण वना लेवें। आयुर्वेदकी परिभाषामें 'यवकुट'का भी यही अर्थ लिया जाता है।

नुग्दा—[ ] किसी शुष्क या आर्द्र वूटी अथवा अन्य औशधद्रव्यको पानीमें तर करके घोटकर गुल्ला (गोला) या टिकिया-सी वना लेते है, यही नुग्दा, नुग्दा या लुगदी कहलाता है।

जो द्रव्य नुग्दाके भीतर रखा जाय, यदि वह अल्पप्रमाण हो, तो नुग्दाको गुल्ला (गोल)-सा वनाकर उसमें छिद्र करके औषधद्रव्यको छिद्रमें डालकर चारो ओरसे चौरस कर दें। यदि औषधद्रव्य अधिक है तो नुगदा (लुगदी)की दो चौडी टिकियाँ वनाकर उनके मध्य औषधद्रव्य रखकर और किनारोंको अच्छी तरह मिलाकर चौरस कर दें।

पञ्चमूल कलाँ[1][स० पञ्चमूल + फा० कलाँ = वृहत् (पाँच वडे वृक्षोकी जडें, 'उसूल खमसा कवीरा') मिले हुए अरणी, पाटला, गभारी, सोनापाठा (अरलू ?) और वेल इन वृक्षोके मूलको आयुर्वेदमें 'वृहत्पञ्चमूल' कहते हैं।

पञ्चमूल खुर्द[2]—[स० पञ्चमूल + फा० खुर्द = लघु] (पाँच क्षुद्र वृक्षोकी जडें, 'उसूल खमसा सगीरा') मिले हुए शालपर्णी (सालवन), पृश्निपर्णी, (पृष्टपर्णी, पिठवन), कटाई खुर्द (छोटी कटेरी, कडियारी खुर्द), कटाई कलाँ (जगली वैंगन, वनभटा) और गोखरू इन पाँचोंके मूलको आयुर्वेदमें 'लघुपञ्चमूल' अर्थात् पञ्चमूल खुर्द कहते हैं।

पञ्च लौन—[स० पञ्चलवण = पाँच नमक (इम्लाह खमसा)। मिले हुए लाहौरी नमक (सेंधानमक), नमक स्याह (काला नमक), नमक साँभर, नमक सोचर (सौवर्चल लवण) और नमक वरियारी इन पाँचों लवणोंके समाहारको आयुर्वेदमें पञ्चलवण[3] कहते हैं, जिसका अपभ्रश यह पञ्चलौन है।

पञ्चक्षार—[स० पञ्चक्षार = पाँच खार (कलियात खमसा)] दे० "पाँच खार"।

पञ्चाङ्ग—[स० पञ्चाङ्ग = (पाँच अज्जाऽ, अज्जाऽ खमसा)] किसी वनस्पतिके पत्र, पुष्प, फल, मूल और त्वक् (छाल) इन पाँचो अगोको पञ्चाङ्ग कहते है।

---

१ शालिपर्णी पृश्निपर्णी वृहती कण्टकारिका।
तथा गोक्षुरकश्चेति लघ्वद पञ्चमूलकम्॥ (रा०नि० मिश्रकादि वर्ग १२)

२ विल्वोऽग्निमन्थ स्योनाक काश्मर्य पाटला तथा।
ज्ञेय महापञ्चमूल ॥१२॥ (ध० नि० वर्ग १२)

३ सिन्धु सौवर्चल चैव विड सामुद्रक गडम्।
(एक-द्वि-त्रि-चतु.)—पञ्चलवणानि क्रमाद्विदु ॥

माउल्हयात[1]—[अ० माऽ = जल + अल् + हयात = जीवन] रसायनियो (कीमियावालो)की परिभाषामें उस द्रव्यको कहते हैं, जिसके द्वारा किसी धातुकी भस्म (मृत धातु) जीवित की जाती है, अर्थात् उससे भस्म (कुश्ता) पुन मूल धातुके रूपमें परिणत हो जाता है। जैसे—चाँदीकी भस्म जीवित होनेका अर्थ यह है कि भस्म अपना विशेष खाकी शकल छोडकर चमकीली चाँदीके रूपमें परिणत हो जाता है।

माउल्हयातके यह दो प्रयोग वतलाये जाते हैं—(१) गुग्गुलु, राई, छोटी मछलियाँ, भेडकी ऊन, गुड (कद स्याह) प्रत्येक एक भाग, मधु दो भाग, समस्त द्रव्योको वारीक करके मधुमें मिलायें। पुन उक्त समुदायमें धातुकी भस्म मिलाकर गोलियाँ वनायें और मूपा (वूता)में वद करके चर्ख दें। मूल धातु अपने धात्वीय (फिलिज्जी) गुणोंके साथ पुनर्भव (जीवित) हो जायगी। (२) मधु, घी, टकण समभाग लेकर जिस भस्मको पुनर्भव (जीवित) करना हो, उसके साथ मिलाकर चर्ख[2] दें। माउल्हयातका यह दूसरा नुसखा अधिक प्रसिद्ध है।

मुकत्तर—[अ०] परिस्नुत (मुकत्तर) किया हुआ द्रव। आवे मुक़त्तर। अर्ककी भाँति खीचा हुआ पानी।

मुकर्रज़—[अ०] कैंची (मिक़राज)से कतरा हुआ पदार्थ।

मुक्ला—[अ०] तली हुई वस्तु। तैल (रोगन)में भूनी हुई वस्तु।

मुकश्शर—[अ०] छीला हुआ। अस्लुस्सूस मुकश्शर (छीली हुई मुलेठी)।

मुकल्लस (मुकल्लसात)—[अ०] चूना वा क्षार वनाई हुई वस्तु। कुश्ता। मकतूल। भस्म। मृत। क्षार।

मुजव्वफ—[अ०] जोफदार। नालीदार। खोलदार,। तुर्बुद मुजव्वफ = वह तुर्बुद (त्रिवृत्, निसोथ) जिसके वीचमेंसे कडी लकडी निकाल दी जाय, जिससे निसोथ नालीदार हो जाय।

मुदव्बिर—[अ० तदवीर] शुद्ध (इसलाह)की हुई। शोधित, वस्तु जिससे उसका कोई दोष दूर हो गया हो।

मुरव्वक—[अ०] साफ निथरा हुआ पानी। दे० "वरवीक।"

मुशव्वा—[अ०] भुलभुलाई हुई, जैसे—कद्दूए मुशव्वी। पुटपाककी हुई वस्तु।

मुसफ्फा—[अ०] साफ की हुई वस्तु। छानी हुई चीज।

मुनक्का—[अ० = साफ किया हुआ (तन्क़ीह)] जैसे आमला मुनक्कासे यह अभिप्रेत है कि उसकी गुठली निकालकर फेंक दी जाय। इसी प्रकार मवीज़ मुनक्कासे यह अभिप्रेत है कि मवीज़की गुठली निकाल दी जाय और शेष भागको योगमें मिलाया जाय।

वक्तव्य—मवीज़को हम लोग मुनक्का कहा करते हैं। मुनक्का वास्तवमें उसका विशेषण है, जो हम लोगों की वोल-चालमें मवीज़के स्थानमें प्रचलित हो गया है।

मूसलियैन—[अ० मूसलीका द्विवचन] इससे दोनो मूसली ('मूसली सफेद' और 'मूसली स्याह') अभिप्रेत हैं।

रस—[स०] हरी वूटीका पानी (स्वरस) जो मलकर या कूटकर निचोड लिया जाता है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेदीय रसतत्रकी परिभाषामें 'रस' पारदको भी लिखा गया है, और हर एक ऐसे योगौषधको भी 'रस' कहते हैं, जिसमें पारा डाला जाय।

---

१ आयुर्वेदीय रसतत्र की परिभाषामें इसे मित्रपचक (द्रावणपचक) और इसके (द्रावणवर्ग) साथ मिलाकर फिर सजीवन करनेकी (धातुको असली रूपमें लानेकी) क्रियाको उत्थापन कहते हैं। यथा—

"मृतस्य पुनरुद्भूति सप्रोक्तोत्थापनाख्यया।"
"गुञ्जाटङ्कणमध्वाज्यगुडा द्रावणपचकम्।"
गुडगुञ्जासुखस्पर्शमध्वाज्यै सह योजितम्।
नायाति प्रकृति ध्मानादपुनर्भवमुच्यते॥

२. चर्ख देना—किसी धातुको इतना उत्ताप पहुँचाना, कि वह उक्त उत्ताप पर पिघल जाय।

परिशिष्ट

आशिरःपाद रोगानुसारिणी द्रव्य-कल्प-योग सूची

मस्तिष्क (शिरः) एव वातव्याधियां (अमराज दिमाग व असबिया)

सुदाम (दर्देसर)

(शिर शूल)

सरदर्दमें निम्नलिखित प्रकारकी औषधियां काममें ली जाती हैं —

वेदनास्थापन, उष्णताहृर, उष्णताजनक, मस्तिष्कबलदायक (मेध्य), विरेचन और मृदुविरेचन।

अस्तु, वेदनास्थापन बहुधा हर प्रकारके शिर शूलमें, उष्णताहृर उष्णशिर शूलमें, उष्णताजनक शीतल शिर शूलमें और मस्तिष्कबलवर्धन मस्तिष्ककी दुर्बलतासे होनेवाले शिर शूलमें प्रयुक्त की जाती हैं, तथा विरेचन एव मृदुविरेचन उस शिर शूलमें प्रयुक्त की जाती हैं, जिसके साथ मलावरोध (कब्ज) और शरीरगत दोषसचय हो।

वेदनास्थापन—अफीम, अजवायन खुरासानी, कपूर, पोस्तेका दाना, पोस्तकी डोंडी, काहूके बीज आदि।

उष्णताहृर—बिहदाना, उन्नाव, लिटोरा, कद्दूके बीजकी गिरी, खीरा-ककडीके बीजोंकी गिरी, कुलफ़ाके बीज, काहूके बीज, धनिया, चदन, खस, आलूबोखारा, शर्बत बनफ्शा, शर्बतनीलूफर।

उष्णताजनक—गरम चाय, गरमदूध, टकोर या सेकके लिये गेहूँकी भूसी, खानेका नमक आदि।

विरेचन और मृदुविरेचन—हुब्बअयारिज, हुब्बशबयार, हुब्बबनफ्शा, हडका मुरब्बा, बादामका तेल, अतरीफल कश्नीजी, अतरीफल उस्तोखुदूस, अतरीफल जमानी, गुलकद शीरखिश्त, तुरजबीन, खमीरा बनफ्शा।

मस्तिष्क-बलवर्धक (मेध्य)—खमीरा गावजबान, खमीरा अबरेशम, बादामका मग्ज, आमला, गावजबान, जदवार, अर्कबेदमुश्क, अर्कबेदसादा और अर्ककेवडा।

जोफ दिमाग (मस्तिष्क दौर्बल्य)

मस्तिष्ककी दुर्बलतामें मस्तिष्कबलदायक (मेध्य), दीपन, स्वप्नजनन और स्निग्धताजनक औषधियां प्रयुक्त की जाती हैं।

इनमेंसे मस्तिष्कबलदायिनी औषधियां तो मस्तिष्कदौर्बल्यकी लगभग प्रत्येक दशामें, और पाचन एव दीपन औषधियां उस समय प्रयुक्त की जाती हैं जब मस्तिष्ककी दुर्बलताके साथ अग्निमान्द्य एव पचनविकार भी हो। इसी प्रकार स्वप्नजनन और स्निग्धतासपादक औषधियां उस समय प्रयुक्त की जाती हैं, जब मस्तिष्कदौर्बल्यके साथ मस्तिष्क में रूक्षता एवं अनिद्राविकार हो।

मस्तिष्कबलदायक (मुकव्वियात दिमाग़)—खमीरा गावजबान, खमीरा अबरेशम, खमीरा मरवारीद, अतरीफल उस्तोखुदूदूस, आमलेका मुरब्बा, हुब्ब जदवार, कुचिला, मोती, जहरमोहरा, बादामकी गिरी, चिलगोजेका मग्ज, अखरोटके मग्ज, भिलावाँ, ब्राह्मी, कस्तूरी, अबर, केसर, गावजबान, हडके विविध भेद (हलैलाजात), खस, सुवर्ण, चाँदी, बालछड, मोथा, लौंग, नरकचूर, सूखा धनिया, अफसतीन, बाबूना, सोठ, बिही, नेपाली धनिया, तेजपात, तालीसपत्ता, गुलाबके फूल, अगर, कूट, बिजौरेका छिलका, गाजर, चोबचीनी आदि।

दीपन—सौंफ, अर्कसौंफ़, धनिया, तुख्म कुसूस, छोटी इलायची और अन्य अतरीफल, जुवारिश और पाचन योगौषधियां।

स्वप्नजनन एव स्निग्धतासपादक—पोस्तेका दाना, काहूके बीज, गाय तथा बकरीका दूध, खीरा-ककडीके बीजका मग्ज, खरबूजाके बीजका मग्ज, तरबूजके बीजका मग्ज, बबूलका गोद, गेहूँका सत (निशास्ता), गायका घी, बादाम का तेल, काहूका तेल, कद्दूका तेल, पोस्तेका तेल आदि ।

बेख्वाबी या सहर (अनिद्रा या जागर्ति)—अनिद्रा वा जागरणकी दशामें स्वप्नजनन, स्निग्ध, मस्तिष्क बलवर्धन औषधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं ।

इनमें स्वप्नजनन और स्निग्ध औषधियाँ तो रोगके दौरानमें, और मस्तिष्कबलवर्धन औषधियाँ रोग दूर हो जानेके पश्चात् प्रयुक्त की जाती हैं ।

स्वप्नजनन—अफीम, कपूर, खुरासानी अजवायन के बीज, भाँग, पोस्तेका दाना, काहूका तेल, पोस्तेका तेल (बाह्यत) और पोस्तेका दाना, पोस्तेकी डोडी, काहूके बीज, खमीरा खशखाश (आभ्यतर रूपसे) और कभी छोटी चदन (धवलबरुआ), अफीम और अफीमके योग, जैसे—हुब्बजदवार, बरशाशा आदि ।

स्निग्ध (मुरत्तिबात)—गाय और बकरीका दूध, तरबूजके बीजकी गिरी, खीरा ककडीके बीजकी गिरी, खरबूजाके बीजकी गिरी, गेहूँका सत (निशास्ता), बबूलका गोंद, अर्क माउल्जुब्न, अर्कशीर मुरक्कब, अर्क गुलाब, बादामका तेल, कद्दूका तेल, गुलरोगन, जैतून का तेल (आभ्यतर रूपेण), नीलोफरके बीज (बेरा), कुलफाके बीज, पोस्तेका दाना, सफेद चदन, हरे धनियाका स्वरस, रोगन लुबूब सबआ (सप्तगिरीतैल), कद्दूका तेल, पोस्तेका तेल, गुलरोगन, बादामका तेल और जैतूनका तेल (बाह्यत) ।

मस्तिष्कबलवर्धन—खमीरा अबरेशम, शीरा उन्नाबवाला, खमीरा गावजवान और बादामका मग्ज आदि ।

सरसाम (सन्निपात भेद)

सरसाममें उष्णताहर, स्निग्ध, दोषपाचन, विरेचन, दोषविल्यन (मुमीलात), उष्णताजनन, दोषविलयन और मस्तिष्कबलवर्धन औषधियाँ सेवन कराई जाती है ।

अस्तु, सरसाम हार्र (उष्ण, पित्तज)में विरेचनीय, उष्णताहर, स्निग्ध, मन प्रसादकर और मस्तिष्कबलवर्धन तथा सरसाम बारिद (शीतल सन्निपात)में दोषपाचन एव दोषविरेचन, उष्णताजनन, दोषविलयन और मस्तिष्क-बलवर्धन औषधियाँ सेवन की जाती हैं । परतु उष्ण सरसाममें रोगनिवृत्तिके उपरात और शीतल सरसाममें विरेचनके मध्यावकाशमें और विरेचनोपरात इनका उपयोग किया जाता है ।

सरसाम हार्र (उष्ण या पित्तज सरसाम सन्निपात विशेष)

उष्णताहर एव स्निग्ध औषधियाँ—लुआब बिहीदाना, शीरा उन्नाब, शीरा तुख्मकाहू, कद्दूके बीजके मग्जका शीरा, कासनीके बीजका शीरा या आलूबोखारेका जुलाल (नियरा हुआ पानी), इमलीका जुलाल, स्याह कुलफाके बीजका शीरा, खीरा-ककडीके बीजके मग्जका शीरा, तरबूजके बीजके मग्जका शीरा, शरबत बनफ्शा, शर्बत नीलूफर (आभ्यन्तररूपसे), हरे धनियेका स्वरस, सिरका, बर्फ, शीतल जल, खीराका तराशा, कद्दूका तराशा (लख्लखा, शुमूम और बाह्यप्रयोगकेलिये), स्त्रीका दूध, कद्दूका तेल, बादामका तेल (पतले लेप अर्थात् तिला एव तद्हीन अर्थात् तैलाभ्यगके रूपमें) ।

मन प्रसादकर (मुफर्रेहात)—अर्क गावजवान, अर्क गुलाब, अर्क केवडा और अर्क बेदमुश्क (आभ्यन्तरिक रूपसे), चदन, चदनका इत्र, खस, खसका इत्र, अर्क गुलाब, अर्क केवडा, गुलाबके ताजे फूल, नीलूफरके ताजेफूल (आघ्राण एव शुमूम आदिकी भाँति) ।

स्वापजनन एव स्वप्नजनन (निद्रल) औषधियाँ—कपूर, काहूका तेल, पोस्तेका तेल (बाह्यरूपसे) ।

विरेचन—सनाय, अमलतासकी गुद्दी (मग्ज), शीरखिश्त, तुरजबीन (यवासशर्करा), गुलकद, इमली, शर्बत दीनार, शर्बतवर्द मुकर्रर (विरेचनकी भाँति) और वस्ति, वस्तिकी लिटोरा, गुलाबका फूल, खानेका नमक, रेंडीका तेल आदि ।

मस्तिष्क-बलवर्धन (मेघ्य)—(रोगनिवृत्तिके पश्चात्) खमीरा गाजजबान सादा, खमीरा गावजवान जवाहिरवाला, खमीरा अबरेशम, शीरा उन्नाववाला, मुफर्रेह् बारिद आदि ।

दोषविलोमकर (मुमीलात)—दोपविलोमकरणके लिये पादस्नान (पाशोया) करते हैं और पाशोयामें कभी कुछ औषधियाँ उबालते हैं ।

गुलबनफ्शा, गुलनीलूफर, गुलखतमी, गेहूँकी भूसी, खानेका नमक, सनाय मक्की के पत्ते आदि ।

सरसाम बारिद (लीसरगुस)

दोषपाचन (मुन्जिजात)—सौंफ, सौंफकी जड, कासनीकी जड, विल्लीलोटनके पत्र, उस्तोखुद्दूस, गावजवानपत्र, गुलबनफ्शा, तुख्मखतमी, खीरा-ककडीके बीज, गुठली निकाला हुआ मुनक्का, कैंचीसे कतरा हुआ अबरेशम, मुलेठी, हसराज, करफ्सकी जड, इजखिरकी जड ।

विरेचन और मृदुविरेचन—खमीरा बनफ्शा, सनाय मक्कीके पत्ते, अमलतासकी गुद्दी, इमली, तुरजबीन (यवासशर्करा), (शकर सुर्ख), शीरखिश्त, मीठे बादामका मग्ज, बादामका तेल, जलापा, हब्बअयारिज, हब्बशवयार, हब्बबनफ्शा (विरेचनकी भाँति) और उपर्युक्त वस्तियाँ ।

रक्तवर्धन एव मस्तिष्कबलवर्धन—प्रवाल भस्म, लोह भस्म, मण्डूर भस्म, खमीरा अबरेशम, खमीरामरवारीद, दवाउल्मिष्क मोतदिल, बादामका मग्ज ।

उष्णताजनक एव दोषविलयन—सेंक (तकमीद)के लिये मूँगके आटेकी टिकिया, उदर विदारित कबूतर, उदरविदारित मुर्गा ।

निस्सियाँ (विस्मृति, भूल)—विस्मृति रोगमें साधारणतया मस्तिष्कदौर्बल्यकी औषधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं । पर कभी-कभी इस रोगमें आमाशयकी क्रिया भी विकृत हो जाती है । अतएव उनके साथ दीपन औषधियाँ भी सेवन की जाती हैं ।

जुनून और मालिनखोलिया (उन्माद और मद)—जुनून (उन्माद) और मालिनखोलिया (मद)का चिकित्सासूत्र लगभग एक ही है । इन उभय व्याधियोंमें मस्तिष्क एव वातनाडीशामक, सतापहर एव स्निग्धतासपादक, मन प्रसादक एव बल्य, दोपपाचन, विरेचन, वातानुलोमन और दीपन औषधियाँ सेवन करायी जाती हैं ।

इनमेंसे मस्तिष्क एव वातनाडीशामक उष्णताहर एव स्निग्धतासपादक, मन प्रसादकर, दोपपाचन एव विरेचन और दीपन औषधियाँ प्राय प्रत्येक प्रकारके मालिनखोलिया और जुनून (उन्माद)में सेवन करायी जाती हैं, तथा मस्तिष्क-बलवर्धन शुद्धिके उपरात और वातानुलोमन मालिनखोलिया मराकीमें प्रयुक्त की जाती हैं ।

मस्तिष्क एव वातनाडीशामक—छोटी चदर (दवाउश्शिफा–धवलबरुआ), अफीम एव पोस्तेकी ढोढीके योग, जैसे—बरशाशा तथा हब्ब जदवार प्रभृति, काहूके बीज, पोस्तेके दाने (आभ्यतर रूपेण), काहूके बीज, पोस्ताके दाने, काहूका तेल, पोस्तेका तेल (बाह्य रूपेण) ।

उष्णताहर एव स्निग्ध—जरिष्क, आलूबोखारा, धनिया, कुलफाके बीज, उन्नाब, इमली, शर्बत नीलूफर, अर्क गावजवान, बकरीका दूध, शर्बत, उन्नाब (आभ्यतरिक रूपेण), बकरीका दूध, रोगन लुबूब सबआ, मीठे कद्दूके बीजके मग्जका तेल (बाह्य रूपेण) ।

बल्य और मन प्रसादकर—सफेद चदन, आमला, मोती, धोया हुआ राजावर्त (लाजवर्द मग्सूल), बादामका मग्ज, अर्क केवडा, अर्क बेदमुश्क, अर्क गुलाब, अर्क माउल्जुब्न, दवाउल्मिष्क मोतदिल, मुफर्रेह् बारिद, मुफर्रेह् शैखुर्रईस, मुफर्रेह् सूसवरी, खमीरा मरवारीद, खमीरा अबरेशम, खमीरा गावजवान, शर्बत गुड्हल, शर्बत सेब, शर्बत अनार शीरी, अर्क अबर ।

दोषसशमन (मुअद्दिलात) और दोषपाचन—अफ्तीमून विलायती, बस्फाइज फुस्तुकी, गावजवानके पत्र, कैंचीसे कतरा हुआ अबरेशम, गुलबनफ्शा, मकोय, खतमी बीज, शाहतरा (पित्तपापडा), चिरायता, सरफोका, मुडी, उन्नाब, कालीहड, लालचदन, उशबा मगरबी, गुलनीलूफर, उस्तोखुद्दूस, बादरजबूया (बिल्लीलोटन) ।

विरेचन तथा मृदुविरेचन—सनाय मक्की, इमलीका मग्ज, अमलतासका मग्ज, मीठे बादामके मग्जका शीरा, बादामका तेल, काली हड, पीली हड, तुरजबीन (यास शर्करा), शीरखिश्त, मत्बूया हफ्तरोजा, अतरीफल शाहतरा, गुलकंद।

वातानुलोमन—अनीसून, सौंफ, कुसूसके बीज, अफ्तीमून, सतार, मस्तगी, छोटी इलायचीका दाना, ऊदगर्की (अगर) धनिया।

सरअ (मृगी)

मृगीमें विकासी, छिक्काजनक, दोषपाचन एवं दोषसशमन, विरेचन और मस्तिष्क-वातनाडी बलवर्धन औषधियाँ सेवन करायी जाती हैं। इनमेंसे विकासी एवं छिक्काजनन आवेगके समय, कफपाचन एवं कफविरेचन अवकाशकालमें और मस्तिष्कबलवर्धन विरेचनसे छुट्टी पानेके उपरांत उपयोग करायी जाती हैं।

विकासी (दाफेआत तशन्नुज)—ऊदसलीब, जदवार, जुदवेस्तर, दवाउलमिस्क अर्थात् छोटीचंदन या धवलबरुआ (आभ्यंतर रूपेण)। कुठतैल, बाबूनेका तेल, गुलरोगन, रोगनसुर्ख (पतलालेप अर्थात् तिलारूपेण)।

छिक्काजनन—जुदवेदस्तर, मुदारके पत्ते, पलानपापटा, कड़ुई तोरईके बीज, तितलौकीके बीज, अर्क प्याज (नस्यरूपमें), मुरमक्की (घोल), काली मिर्च, इन्द्रायनके बीज (शुमूम या आघ्राण रूपसे)।

दोषपाचन-प्रशमन—गुलबनफ्शा, उस्तोखुद्दूस, गुठली निकाला हुआ मुनक्का, अजीरजर्द, बादरंजबूया (बिल्लीलोटन), जूफाए-खुश्क, अफ्तीमून, अनीसून, गावजबान, सौंफ, सौंफकी जड़, करफसकी की जड़, इजखिरमूल, हंसराज, मुलेठी, कासनीमूल, फरजमुश्कके बीज, कासनीके बीज, मीठा सूरजान, उदसलीब, शाहतरा, चिरायता, गुलाबके फूल, मकोय खुश्क, बस्फाइज।

विरेचन तथा मृदुविरेचन—सनाय मक्की, सफेद निसोथ, अमलतासका मग्ज, यवासशर्करा, शकरसुर्ख, गुलकंद, खमीरा बनफ्शा, हड, बादामका तेल, हब्बइयारज, हब्बबनफ्शा, हब्बशबयार।

अन्त्र और आमाशय बलवर्धन (दीपन)—अनीसून, सौंफ, काली हड, पीली हड, काबुली हड आदि।

मस्तिष्क तथा वातनाडी बलदायक—मुफर्रेह् मोतदिल, खमीरा गावजबान, जदवार।

वक्तव्य—(१) ऊदसलीबको इस रोगमें विशेषरूपसे बहुत गुणकारी समझा जाता है, किंतु इसकी कार्य-कारण मीमांसा पूर्णतया ज्ञात नहीं हो सकी। संभव है कि उक्त औषधि प्रभावत इस रोगमें गुणकारी हो जैसा कि मुल्ला नफीसने लिखा है, अथवा विकासी होनेके कारण।

(२) यदि उदरकृमि इस रोगके हेतुभूत हों तो कमीला, सरख्स प्रभृति कृमिघ्न औषधियाँ उपयोग की जाती हैं।

सकता (सन्यास)

सक्तामें उष्णताजनन, दोषप्रशमन, विरेचन, वमन, छिक्काजनन और मस्तिष्कबलवर्धन औषधिद्रव्य प्रयुक्त होते हैं। इनमेंसे उष्णताजनन, दोषसशमन, वस्तियाँ और छिक्काजनन रोगकालमें प्रयुक्त किये जाते हैं। चैतन्य प्राप्त करानेके उपरांत यथाविधि दोषपाचन औषधि पिलाकर विरेचन देते हैं और दोषसे शुद्ध होनेके उपरांत बल्य औषधि सेवन कराते हैं।

दोषपाचन एवं उष्णताजनन—सौंफ, अनीसून, स्याहजीरा, जरावंद तवील, जुदवेदस्तर, सोंठ, सौंफकी जड, करफसकी जड, इजखिरकी जड, कबरकी जड, मुलेठी, हंसराज, उस्तोखुद्दूस, बीज निकाला हुआ मुनक्का, अजीर जर्द, माउल्अस्ल (मधुजल), शहद (आभ्यंतर रूपेण)।

उष्णताजनन (बाह्य)—लौंग, जायफल, जावित्री, बजतुर्की (बच), जुदवेदस्तर, छोटी इलायची, कालीमिर्च, फरफ्यून, कुदुस, सोंठ, कलौंजी, अकरकरा आदि (तापस्वेद) एवं लेपके रूपमें।

विरेचन—सनाय मक्की, सफेद निशोथ, अमलतासका मग्ज, तुरंजबीन (यासशर्करा) जावशीर, रेवदचीनी, हब्बइयारज।

बस्ति (हुकना)—वस्तिकी कतिपय औषधियाँ–सूरजान, गारीकून, बस्फाइज, चुकदरकी पत्तियाँ, रेंडीके बीज, कतूरियून दकीक, सनाय मक्की, सोआकी पत्तियाँ, ककड़ीकी गिरी, उन्नाव, लिटोरा, मीठे बादामका तेल, रेंडीका तेल आदि।

बल्य—प्रवाल भस्म, खमीरा अबरेशम, खमीरा गावजबान, दवाउल्मिस्क मोतदिल।

छिक्काजनन—बर्ग तिब्बत, जुदवेदस्तर, कस्तूरी, कायफल, कुदुश, कालीमिर्च, खर्बक, कलोंजी।

अंगघात, पक्षघात, अर्दित (लकवा)

अगघात (इस्तरखा) और पक्षवध (फालिज)में कफ तारल्यजनन एव पाचन, कफविरेचन और वातनाडी बलवर्धन औषधियाँ दी जाती हैं। अस्तु, प्रारभमें केवल कफतारल्यजनन तदुपरात कफपाचन, तदुपरात कफविरेचन और इसके उपरात वातनाडीबलवर्धन औषधियाँ (बाह्य एव आभ्यतर रूपेण) प्रयुक्त की जाती हैं। परतु बाह्य बल्य औषधियोके लिये यह वचन नही है, कि वह विरेचनोपरात ही प्रयुक्त की जायें। अपितु विरेचन औषधियोंके सेवन-कालमें भी बाह्य प्रयोगकी औषधियाँ लगायी जा सकती हैं। किंतु प्रारभमें प्रत्येक प्रकारकी चेष्टा वर्जित है।

दोषतारल्यजनन एव पाचन—सौफ, सौंफकी जड, करफ्सकी जड, कासनीकी जड, इजखिरकी जड, कबरकी जड, मुलेठी, हसराज, उस्तोखुद्दूस, बिल्लीलोटन, बीज निकाला हुआ मुनक्का, अजीर जर्द, खतमी बीज, खुब्बाजी बीज, गावजबान, गुलगावजबान, सूखा मकोय, उन्नाव, लिटोरा, गुलबनफ्शा, कासनीकी जड, शुद्ध मधु, माउल्-अस्ल (मधुजल)।

मृदुविरेचन और कफविरेचन—सनाय मक्की, सफेद निशोथ, अमलतासका मग्ज, शीरखिश्त, तुरजबीन, खमीरा बनफ्शा, गुलकद (शकर सुर्ख), हब्ब इयारज तथा इतर कफविरेचन औषधियाँ।

बल्य (अर्थात् मस्तिष्क तथा वातनाडी बलवर्धन और दीपन औषधियाँ)—मण्डूर भस्म, गोदन्ती भस्म, हब्बइज़ाराकी, माजून इजाराकी, माजून सीर, माजून जोगराज गूगल, माजून तल्ख, तिरियाक फारूक, माजून फलासफा, खमीरा गावजबान, खमीरा अबरेशम, दवाउल्मिस्क हार्र, जुवारिश मस्तगी, कुचिला, जुदबेदस्तर, जदवार, ऊदसलीब, पीपलामूल, बीश (बच्छनाग), सखियाँ, भिलावाँ, अकरकरा, हीग (आभ्यतरिक रूपेण), कुष्ठतैल, कुचिला तैल, लहसुन तैल (रोगनसीर), रोगन कलाँ, रोगनसुर्ख, अकरकरा, हीग, जुदबेस्तर, बीश (बच्छनाग) आदि (बाह्य रूपेण)।

आक्षेप, उद्वेष्टन, अपतानक

इन रोगोमें दोषपाचन और दोषसशमन, विरेचन, विकासी, मस्तिष्क-वातनाडी-बलवर्धन औषधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं।

दोषसशमन-पाचन-विरेचन—दे० 'अगघात एव पक्षघात'।

विकासी (दाफेआत तशन्नुज)—कपूर, कुष्ठतैल, मस्तगी तैल, बाबूनेका तैल, गुलरोगन (कोष्ण अभ्यग-रूपसे), जदवार, ऊदसलीब, अकरकरा, भाँग, चरस और इनके योग, जैसे–माजून फलकसैर।

बल्य (मस्तिष्क-वातनाडी बलवर्धन)—प्रवाल भस्म, लोह भस्म, खमीरा गावजबान, खमीरा अबरेशम, दवाउल्मिस्क मोतदिल।

कोथप्रशमन—यदि आक्षेप एव अपतानकके साथ कोई क्षत हो तो कोथप्रशमन औषधि, जैसे—नीमका पानी, मरहम नीम, मरहम काफूर आदि सेवन कराते हैं। कभी-कभी आक्षेप रूक्षताके कारण हुआ करते हैं। उक्त अवस्थामें माउल्जुब्न (छेनेका पानी) और बकरीका दूध जैसी स्नेहन औषधियाँ सेवन कराते हैं। परतु यह बहुत कम होता है।

प्रतिश्याय (जुकाम) और प्रसेक (नजला)

प्रसेक और प्रतिश्यायके दो आवश्यक एवं बड़े भेद होते हैं, यथा—उष्ण एवं शीत (नजला हार्र और नजला बारिद) और दोनोंकी चिकित्सा भिन्न-भिन्न है। अतएव इनमेंसे प्रत्येक भेदकी ओषधियाँ भिन्न-भिन्न शीर्षकोंमें लिखी गयी हैं।

उष्ण प्रसेक (नजला हार्र)—शामक (मुसक्किनात)—बिहीदाना, उन्नाब, लिसोरा, गुलबनफ्शा, गुलनीलूफर, कद्दूके बीज, पोस्ताके दाने, पोस्तेकी डोंडी, अफीम, बबूलका गोंद, कतीरा, धनियाँ, खतमीके बीज, खुब्बाजीके बीज, शर्बत बनफ्शा, लऊक सपिस्ताँ, लऊक मोनदिल, लऊकनजली आब तरबूजवाला।

कफावरोधक (हाबिसात बलगम)—अफीम, पोस्तेकी डोंडी, खमीरा खशखाश, शर्बत खशखाश, अजवायन खुरासानी, कपूर, चंदन, बरगाशा, हब्ब जदवार।

शोनसग्राही (क़ाबिजात)—गुलनार, समूचा मसूर (अदस मुसल्लम), झाऊका फल, तूतकी पत्तियाँ फिटकिरी, झड़बेरीकी छाल, कचनालकी छाल (गण्डूषकी भाँति)।

स्नेहन (मुरत्तिबात)—मीठे बादामके मग्जका शीरा, मीठे कद्दूके बीजके मग्जका शीरा, काहूके बीजके मग्जका शीरा, तरबूजके बीजके मग्जका शीरा, कद्दूका तेल, नीलूफरका तेल, काहूका तेल, पोस्तेका तेल।

कफोत्सारि—मुलेठी, सतमुलेठी, बबूलका गोंद, कतीरा, गावजबान, गुलगावजबान, खमीरा गावजबान, बनफ्शा, शर्बत बनफ्शा, शहद, मिश्री।

विरेचन और मृदुविरेचन—गुलबनफ्शा, बीज निकाला हुआ मुनक्का, अंजीर, हड़, अतरीफल मुलय्यन, अतरीफल जमानी, अतरीफल कश्नीजी, हब्ब ह्यारज, हब्ब बनफ्शा, खमीरा बनफ्शा तथा अन्य विरेचन ओषधियाँ जो नजला बारिदके प्रकरणमें लिखी गयी हैं।

मस्तिष्क-वातनाडीबलवर्धन—खमीरा गावजबान, बादामका मग्ज, कद्दूके बीजका मग्ज, तरबूजके बीजका मग्ज, काहूके बीज, पोस्ताके दाने।

विशेष—(१) श्लेष्मसान्द्रकर निम्नलिखित ओषधद्रव्य पतले कफको गाढ़ा करते हैं—

बिहीदाना, उन्नाब, लिसोरा, काहूके बीज, पोस्ताके दाने, कद्दूके बीज, तरबूजके बीज, कतीरा, बबूलका गोंद, खतमी बीज, खुब्बाजीके बीज, शर्बत खशखाश, खमीरा खशखाश, लऊक सपिस्ताँ। (२) वल्य ओषधियोंका उपयोग संशोधन (तनकीह)से पूर्व और नजलाकी प्रबलताके समय उचित नहीं है।

शीतप्रसेक (नजला बारिद)

कफोत्सारि—गावजबान, गुलगावजबान, छिली हुई मुलेठी, तीसी, गेहूँकी भूसी, रेशमका कोआ, उस्तोखुद्दूस, गुलबनफ्शा, खतमीके बीज, खुब्बाजीके बीज, उन्नाब, सौंफके बीज, हंसराज, रेवदचीनी, मिश्री, मधु, गरम पानी, लऊक खियारशंबर, लऊक सपिस्ताँ, लऊक मोतदिल।

धूपनौषधियाँ—कागज, मिश्री, ऊद (अगर), अंबर आदि।

उष्ण स्वेद (इन्किबाब-बफारा)की ओषधियाँ—बाबूना, नाखूना (इकलीलुलमलिक), खतमीके [illegible] खुब्बाजीके बीज।

विरेचन एवं मृदुविरेचन—बीज निकाला हुआ मुनक्का, अंजीर जर्द, रेवदचीनी, सनाय, सुर्ख, तुरंजबीन, हर्रे (हलैलाजात), खमीरा बनफ्शा, हब्ब ह्यारज, हब्बबनफ्शा, अतरीफलके [illegible]।

मस्तिष्क-वातनाडीबलवर्धन—खमीरा गावजबान सादा, खमीरा गावजबान [illegible] मीठे बादामका मग्ज, कुश्ता मर्जान सदा (सादा प्रवाल भस्म), कुश्ता [illegible] माजून [illegible] माजून इजाराकी, हब्ब जदवार, [illegible] म्म्मलफ़ार (संखियाका जौहर),

दीपन—सौंफ, लोह भस्म, मडूर [illegible]

छिक्काजनन—वर्ग तिब्वत (कश्मीरी पत्ता), तमाकू, नकछिकनी आदि ।

उष्णताजनन-स्वेदकी औषधियाँ—वाजरा, गेहूँकी भूसी, खानेका नमक ।

विशेप—श्लेष्मतारल्यजनन (मुरक्किकात बलगम)—अधोलिखित औषधियाँ गाढ़े कफको पतला करती हैं—छिलका उतारी हुई मुलेठी, गावजवान, गुलगावजवान, अलसी, गेहूँकी भूसी, अवरेशम, रेवदचीनी, उस्तोखुदूद्स, हसराज, मिश्री, मधु ।

फावूस

अन्त्रामाशयवलवर्धन (दीपन)—सौफ, धनियाँ, पुदीना, अजवायन, कुसूसके वीज, जुवारिश जालीनूस, माजून नानखाह आदि ।

श्लेष्मसशमन-पाचन—(शोधनके लिए) जिनकी सूची प्रथम दी जा चुकी है ।

मस्तिष्क-वातनाडीबलवर्धन—(मस्तिष्क-दौर्वल्यमें जो प्राय साथ होता है) जिनकी सूची गत पृष्ठोंमें दी जा चुकी हैं ।

कृमिघ्न—जव यह रोग अन्त्रकृमिविकारके कारण होता है, जैसे—कमीला, सरख्स इत्यादि ।

स्वाप या ख़दर (सुन्नवहरी)

शोधनार्थ आवश्यकतानुसार दोषपाचन एव विरेचन औषधियोंकी अपेक्षा होती है, जिनकी तालिकाएँ मस्तिष्क रोगोमें कई स्थानोमें दी जा चुकी हैं । इसके उपरात वाह्य एव आभ्यतररूपसे सशमन, रक्तप्रसादन, वातनाडी-उत्तेजक एव बलवर्धन, दीपन और त्वक्सक्षोभक औषधियाँ सेवन कराई जाती हैं ।

सशमन और रक्तप्रसादन—हिरनखुरी, अफसतीन, रसवत, चाकसू, नरकचूर, दरूनज अकरवी, मस्तगी, फरजमुश्ककी पत्तियाँ, अवरेशम खाम, वादरजवूयाके वीज, गावजवान, मीठा सूरजान, निगदवावरी, छिलका उतारी हुई मुलेठी, हसराज, उस्तोखुद्दूस, जौहर मुनक्का, पारदके योग, सखिया और उसके योग ।

वातनाडीवलवर्धन—जदवार, ऊदसलीव, वहमन सुर्ख, वहमन सफेद, उस्तोखुद्दूस प्रभृति ।

दीपन—सौंफ, दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने, तज, वालछड, जुवारिश जरऊनी, जुवारिश जजवील, कुन्दुरी आदि ।

संक्षोभक (लाज़ेआत) और बाह्य उत्तेजक—जो शोणितोत्क्लेशक, दोषापकर्षक (जाज़िव) और विलयन (मुहल्लिल) हैं, जैसे—काली मिर्च, अकरकरा, लौग, फरफियून, कलौंजी, सोठ, जायफर, राई, मवीज़ज प्रभृति ।

अनिद्रा, जागरण (सहर-बेदारी)

सशमन और स्वप्नजनन (निद्रल)—काहूके वीज, कुलफाके वीज, पोस्ताके दाने, पोस्तेकी डोडी, अफीम, छोटी चदन (धवलवरुआ), नीलूफरके वीज (वेरा), चदन, कपूर, हरे धनियेका स्वरस, पोस्तेका तेल, रोगन लुबूव सवआ, हरीरा खशखाश, शर्बत खशखाश, खमीरा खशखाश, हब्ब जदवार, वरशाशा ।

स्नेहन (मरत्तेबात) और जीवन (मुगज्जी)—मीठे वादामका मग्ज, मीठे कद्दूके बीजका मग्ज एव तेल, हरीरा मग्ज वादाम, वादामका तेल, दूध, घी, मक्खन ।

नेत्र-रोग (अम्राज़ चश्म)

दृष्टिदौर्वल्य (ज़ोफे बस्र)—दृष्टिदौर्वल्यमें मस्तिष्कवलवर्धन, दृष्टिवर्धन (चक्षुष्य) मस्तिष्क-स्नेहन और शोधनके लिए विरेचन एव मृदुविरेचन और पाचनसुधारके लिए अन्नामाशयवलवर्धन (दीपन) औषधियाँ सेवन करायी जाती हैं ।

यहाँ केवल चक्षुष्य ओपधियोकी तालिका दी जा रही है, शेप भेदोकी ओपधियोकी तालिकाएँ मस्तिष्क-रोगोमे दी जा चुकी है।

इस दशामें मस्तिष्ककी शुद्धिके लिए त्रिफला (हड, बहेडा, आमला) और अतरीफलके योग श्रेष्ठतर हैं, जो अनेक रूपोंमें प्रयुक्त किये जाते है। सौंफ के समस्त अग-प्रत्यगोका दृष्टिदौर्बल्यमें (वाह्याभ्यतर रूपसे) उपयोग होता है।

चक्षुष्य (मुकव्वियात बसर)

वाह्य—जो सुरमा आदिकी भाँति आँखमे लगाई जाती है। यह एक प्रकारकी लेखनौपधियाँ है, जो नेत्रकी झिल्लियों आदिमें न्यूनाधिक क्षोभ उत्पन्न करके स्थानीय पोपणकी क्रियाको तीव्र कर देती हैं, जिससे विद्यमान मल उत्सर्गित हो जाते है, तथा नाडीगत शैथिल्य दूर हो जाता है। कतिपय ओपधियोकी शोधन एव लेखनकी गति यद्यपि बहुत ही मद और प्रकटतया नगण्य मालूम होती है, परतु अबाध एव निरतरके सेवनमे उसका प्रमाण पर्याप्त हो जाता है।

आभ्यतरीय—उपयोगमे चक्षुष्यरूप सेवा-सपादन करनेवाली ओपधियाँ कई प्रकारसे अपना कार्य करती हैं—

(१) मस्तिष्क एव वातनाडियोको बलप्रदान करके।

(२) पोषणका सुधार एव मलभूत घटकोका निर्हरण करके।

(३) सशमन (मुअद्दिलात) और रक्तप्रसादन (मुसफ्फियात)की भाँति अज्ञातरूपसे आतरिक परिवतन करके।

वाह्य उपयोगकी ओपधियाँ जिनका चक्षुष्य ओपधोमें न्यूनाधिक उपयोग होता है —

कच्चे अंगूरका रस, हरे सौंफका स्वरस, आमला, अकाकिया, अकलीमियाए तिला व फिज्जा (सुवर्ण एव रजतमल), अजरूत, एलुआ, सौंफ, वालछड, घीकुआरकी पत्ती, नीमकी पत्ती, बहेडा, वसलोचन, भँगरा, प्रवालकी जड, भुनी हुई फिटकिरी, जलाया हुआ तविका मैल, तूतिया किरमानी, तेजपात, जस्ता (जस्तमुहरक-कुश्ता, धोहुना-शिगुफ्ता), चाकसू, चौलाई, छडीला, दारुहलदी, छोटी इलायचीका दाना, दम्मुलअखवैन, दहनाफिरग, रूमामस्ती, गुलाबका जीरा (जरेवर्द), केसर, जमुर्रद, सोठ, जलाया हुआ समुद्री केकडा, सुरमा, सफेद (रसास), सफेदा काशगरी, समुदर झाग, दाग, सगयमरी (नपरिया ?), सोनामक्खी, शादनज मग्सूल (धोया हुआ), चमेलीकी कच्ची कली (शिगूफए याम्मीन खाम), सियाफ मामीसा, जलाई हुई सीप (सदफ), उसारए मामीसा, अकीक सुर्ख, कालीमिर्च, सफेद मिर्च, पीपल, फीरोजा, कपूर, भीमसेनी कपूर, कहरुवाए शमई, अर्कगुलाब, लाजवर्द मग्सूल, लाल, माजू, मामीरान चीनी, प्रवाल, मोती, मुर मक्की (बोल), कस्तूरी, मोठ, मिश्री, निशास्ता, नमक हिंदी, नमक इदरानी, नौसादर, नीलाथोथा, हलदी, हड, याकूत।

आशोब चश्म (नेत्राभिष्यद)

नेत्राभिष्यदमें सतापहर, वेदनाहर, दोपविलोमकर (रादेआत), दोपविलयन, मृदुकर (मुमल्लिसात), कोथप्रतिबधक, रक्तप्रसादन, मस्तिष्क शुद्धिकर (विरेचन एव मृदुविरेचन) ओपधि सेवन कराई जाती है। इनमेंसे उष्णताहर ओपधियाँ उस समय प्रयुक्त की जाती हैं, जबकि उष्णताके कारण नेत्राभिष्यद हुआ हो या उष्णताके लक्षण विद्यमान हों, तथा वेदनाहर उस समय जबकि तीव्र दाह, शोथ एव पीडा हो। इन ओपधियोंसे कुछ लाभ न होने पर अतत दोपपाचनके रूपमें रक्तप्रसादन ओपधियाँ उपयोग कराके, (मुनक्कियात)के द्वारा विरेचन देते हैं और लगभग प्रत्येक दशामें प्रारभमें दोपविलोमकर ओपधियाँ लगाकर वादमें दोपविलयन ओपधियाँ सेवन करते हैं तथा रोगके आवेगकालमें आदि और अत-अतरूप प्रतिबधके बिना सक्षोम एव कोथप्रशमनके अभिप्रायसे मृदुकर एव कोथ-प्रतिबधक ओपधियोंका वाह्यत उपयोग करते हैं।

उष्णताहर—बिहदाना, उन्नाव, मीठे कद्दूके बीजोका मग्ज, तरबूजके बीजका मग्ज, छिले हुए काहूके बीज, कुलफाके बीज, आमला, नीलूफरके फूल, शर्बत नीलूफर (आभ्यतर रूपसे), अर्क गुलाब, बकरीका दूध (वाह्यरूपमे)।

वेदनास्थापन—अफीम, पोस्तेकी डोडी, कपूर, लोध पठानी, अजवायन खुरासानी, हरे मकोयका रस (बाह्य रूपसे)। ताप स्वेद (तक्मीद या सेक)के द्वारा उत्ताप पहुँचाना भी वेदनाहर है।

सग्राही एव दोषविलोमकर—रसवत, गिलभरमनी, लालचदन, अकाकिया, मामीसा, हड, वहेडा, आमला, कत्था, फिटकिरी (बाह्य रूपसे)।

दोषविलयन (मुहल्लिलात)—पाह, अजरूत, हलदी, मेथी, केसर, अलसी प्रभृति (बाह्य रूपसे)।

मार्दवकर (मुमल्लिसात)—अडेकी सफेदी, मेथीका लुआव (पिच्छा), अलसीका लुआव, मरहम सादा, शियाफे अब्यज प्रभृति (बाह्य रूपसे)।

कोथप्रशमन—कपूर, हलदी, नीमके पत्र आदि।

रक्तप्रसादन—उन्नाव, शाहतरा (पित्तपापडा)।

मस्तिष्क शुद्धिकर (विरेचन और मृदुविरेचन)—हब्ब इयारज, हब्ब बनफशा, हब्बहलैला, अतरीफल उस्तोखुद्दूस, अतरीफल कश्नीजी, अतरीफल मुलय्यन, अतरीफल जमानी, पीली हडका छिलका, काली हडका छिलका, वहेडा, हडका मुरब्बा, गुलावका फूल, गुलकद, खमीरा बनफशा और अन्य विरेचनीय औषधियाँ।

नुजूलुल्माऽ (मोतियाबिंद, लिङ्गनाश)

मस्तिष्कबलवर्धन (मेध्य)—मस्तिष्क एव वातनाडियोकी दुर्वलतामें।

मस्तिष्कशुद्धिकर (विरेचन एव मृदुविरेचन)—शरीरमें दोपसचय होने पर जब उनके शोधनकी अपेक्षा हो, उस समय अतरीफलके योग और एलुआघटित योग विशेषरूपसे प्रयुक्त होते हैं।

पाचन और सशमन ओषधियाँ—पाचन-सुधार और दोपसशमनार्थ।

लेखन और अश्रुस्रावकर (मुद्मेआत) औषधियाँ

बाह्य रूपसे—त्रिफलाजल, कोहल साबुन, केसर, फिटकिरी, समुदरझाग, नौशादर, नीलाथोथा, जगार, नीलके बीज, हलदी, जस्त मोहरिक (जलाया हुआ जस्ता), पारा, वकरेका पित्ता, अन्यान्य प्राणियोका पित्ता, सोनामक्खी, रूपामक्खी, कालीमिर्च, सफेदमिर्च, पीपल, चीनी ममीरा तथा दृष्टिदौर्बल्यके प्रकरणके चाक्षुष्य शीर्षकमें उल्लिखित अन्यान्य औषधियाँ। इनमेंसे प्राय ओषधियाँ लेखनीय एव आँसू बहानेवाली (मुद्मेअ) हैं।

इन ओषधियो एव उपायोसे प्रारम्भिक मोतियाबिंदके नष्ट होने या कुछ दिनों तक रुके रहनेकी आशा होती है, परतु उसके विकसित होनेके उपरात औषधियोंसे न यह रुकता है और न नष्ट होता है।

नेत्रशुक्ल (बयाज चश्म—फूली)

प्रथमत नेत्राभिष्यदके सिद्धातानुसार वेदनास्थापन एव मार्दवकर (मुमल्लिसात) आदिसे जिनकी तालिकाएँ प्रथम दी जा चुकी हैं, क्षोम, प्रकोप एव स्थानीय उष्णता घटाएँ। जब लेखन एव क्षोम पहुँचानेमें कोई भय न हो तब नुजूलुल्माऽमें उल्लिखित लेखन एव आँसू बहानेवाली (मुद्मेआत) ओषधियाँ प्रयोग करें।

यदि शरीरगत दोप शोधनकी अपेक्षा रखते हो, तो अतरीफल और एलुआके योग सेवन कराएँ।

जुफ्रा (शुक्लार्म—नाखूना)

इसका चिकित्सासूत्र एव ओपधियाँ नेत्रशुक्ल (बयाज चश्म)के समान हैं।

सबल (नेत्रजालक) और रोहे (पोथकी)—जब नेत्र लाल होते हैं, और वेदना एव शोथ होता है तब नेत्राभिष्यदके सिद्धातानुसार सतापहर, सग्राही एव दोपविलोमकर ओपधियोंसे चिकित्सा की जाती है। तदुपरात सग्राही एव दाहक (कावियात) ओपधियाँ दी जाती है।

चिकित्साकालमें दोपशुद्धिके लिए उपयुक्त विरेचन एव मृदुविरेचन ओपधियोका सेवन चालू रखा जाता है।

कर्णरोग (अम्राज गोश)

कर्णशूल (दर्द गोश)

सतापहर (शीतजनन)—देहोष्माको कम करनेके लिए, जिसकी तालिका शिर रोगो एव नेत्ररोगोमें दी गई है।

वेदनास्थापन—हरे मुसदर्शनकी पत्तीका रस, हरे मकोयका रस, तितलौकीका रस, हरी मूलीका रस, हरे कुल्फाकी पत्तीका रस, भांगकी पत्ती, अफीम, पोस्तेकी डोडी, खैसूम, बिरजासफ, बाबूनेके फूल, सूखा मकोय, मूलीका तेल, बादामका तेल, गुलरोगन, कडुए बादामका तेल, शियाफ अव्यज।

कृमिघ्न और कोथप्रतिबधक—नीमका तेल, नीमकी पत्तीका स्वरस, नीमकी सूखी पत्ती, अफसतीन, शफतालूकी पत्तीका रस, कपूर, मुर मक्की (बोल गुदुर, व्रए अरमनी, सिरका (पूय एव कृमिकी विद्यमानतामें)।

विरेचन और मृदुविरेचन—शरीरशुद्धि एव दोपविलोमकरणके लिए जिनकी सूची कई बार दी जा चुकी है।

कर्णगूथमार्दवकर (मुलय्यनात चिर्क)—कानकी मैलको नरम करनेवाली ओपधियाँ, जैसे—शहद और उपर्युक्त तेल एव प्रवाही द्रव्य।

सग्राही और उपशोषण (मुजफ्फिफात)—कर्णगत व्रण एव कर्णस्राव के समय, जैसे—अजरूत, गूदासहित अनारका रस, सिरका, लाल चदन, सफेद चदन, गेरू, महावर (लाखका रग) आदि।

तनीन व दवी (प्रणाद, कर्णनाद)

विरेचन और मृदुविरेचन—अन्न और आमाशयकी शुद्धिके हेतु, जैसे—गुलकद एव अतरीफलके योग प्रभृति।

पाचन-पचनविकार में, जैसे—सौंफ, धनियाँ, अनीसून, इलायची, जीरा, पुदीना, जुवारिश कमूनी, हब्ब पपीता आदि।

स्वापजनन और वातनाडीशामक—बढी हुई स्पर्शशक्ति (जिकावत हिस्सी)मे, जैसे अफीमके योग, छोटी चदड (सर्पगधा) आदि (आभ्यतर रूपसे)।

बल्य—दौर्बल्य एव शक्तिहीनताकी दशामें, जैसे–अडा, दूध, मक्खन, मुर्गीका बच्चा, यख्नी, लोह भस्म आदि।

सैलानुल्उज्न (कर्णस्राव—कान बहना)

विरेचन और मृदुविरेचन—शरीर एव मस्तिष्कशोधनार्थ तथा दोपविलोमकरणके लिए।

सग्राही एव रूक्षण (मुजफ्फिफात)—(स्थानिकरूपेण बाह्यत) जैसे—अजरूत, रतनजोत, दम्मुल्अख्वैन, सफेदा कलई, फिटकिरी, सतीस, माजू, जलाया हुआ कागज, जलाई हुई कौडी, अनारका छिलका।

कोथप्रतिबधक (स्थानिक रूपसे), जैसे—नीमकी सूखी पत्ती, नीमका तेल, सुहागा, केसर, नीमकी पत्ती-का रस, एलुआ, मुर मक्की (बोल), तारपीनका तेल (रोगन सनोवर), कतरान, प्राणियोके पित्त।

लेखन और धोनेवाली ओपधियाँ (गस्सालात)—मल तथा पूयको धोने एव साफ करनेके लिए, जैसे—(शहद महलूल), नीमकी पत्तीका रस, सिरका और मद्य प्रभृति।

कर्णप्रसेक (नजलए गोश)

(इन्सिबाब नजला)से कानमें विभिन्न प्रकारके विकार उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे—कर्णशूल, (सिक्ल समाअत), कर्णशोथ, प्रणाद व कर्णनाद (तनीन व दवी), (सगानिग्र)का अवरुद्ध हो जाना आदि।

सिद्धातानुसार प्रसेक (नजला)की चिकित्सा करें, अतरीफल एव इयारजके योग खिलायें, पिच्छिल शामक (मुसक्किनात लुआबिया) और सग्राही एव सशमन गण्डूपका प्रयोग करायें।

प्रतिश्याय और प्रसेकके प्रकरणमें हर प्रकारकी ओपधियाँ विस्तारसे लिखी गयी हैं।

रुआफ़ (नासागत रक्तपित्त-नकसीर)

नकसीरमें उष्णताहर, रक्तस्तभक और स्नेहन (मुरत्तिवात) ओषधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

रक्तस्तभक और उष्णताहर ओषधियोका बाह्य उपयोग रोगाक्रमणके समय तथा इन दोनोका आभ्यतर उपयोग रोगावकाशकालमें किया जाता है। और स्नेहन ओषधियाँ उस समय प्रयोग की जाती हैं, जब वाहिनियोकी रूक्षताके कारण नकसीर फूटा करती है।

उष्णताहर—बिहीदाना, उन्नाव, मीठे कद्दूके बीजकी गिरी, तरबूजके बीजकी गिरी, काहूके छिले हुए बीज, शर्बत केवडा, शर्बत नीलूफ़र, शर्बत उन्नाव, शर्बत अनार, अर्क बेदमुश्क, अर्क बेदसादा, अर्क कासनी, अर्क गुलाब, शीतलजल प्रभृति (आभ्यतर रूपसे)।

चदन, मुलतानी मिट्टी, धनिया, अर्क गुलाब, शीतल जल, स्त्रीस्तन्य आदि (बाह्य रूपसे)।

रक्तस्तभन—गेरू, सगजराहत, दम्मुल्अख्वैन, गिल अरमनी, अकाकिया, कहरुबा शमई (तृणकात), जलाया हुआ प्रवालमूल, जलायी हुई प्रवालशाखा, मोतीकी सीप, गुलखैरु, शर्बत अजबार आदि (आभ्यतर रूपसे)।

कपूर, माजू, जलाया हुआ कागज, फिटकिरी, कुंदुर, दमुल्अख्वैन, गिल अरमनी, अकाकिया, सगजराहत, चक्कीका झाडन, गिल मुलतानी, गेरू, मकडीका जाला, गदहेकी लीदका पानी, वर्फका ठढा पानी आदि (बाह्य रूपसे)।

स्नेहन (मुरत्तिवात)—कद्दूका तेल, काहूका तेल, बादामका तेल, रोगन लबूब सब्आ (बाह्य रूपसे), पतले लेप (तिला) और नस्य (सऊतकी भाँति)।

यहाँ प्रत्येक शीर्षकके अधीन कुछ ओषधियाँ उदाहरणस्वरूप लिखी गयी हैं, क्योकि अधिक विस्तार इससे पूर्व दिया जा चुका है।

कुलाअ (मुखपाक—मुँह आना)

इसमें सतापहर, दोषपाचन, रक्तप्रसादन, विरेचन, व्रणोपशोषण (मुजफ्फ़िफ़ात कुरुह) और कोथप्रतिबधक ओषधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

उष्णताहर—(आभ्यतर रूपसे) जो नकसीर आदिमें लिखी गयी है।

दोषपाचन और रक्तप्रसादन—शाहतरा (पित्तपापडा), चिरायता, सरफोंका, मुडी, उन्नाव, काली हड, उशवा मगरबी, गावजबान, हसराज आदि।

विरेचन—अफतीमून विलायती, बस्फाइज फुस्तुकी, सभी प्रकारकी हड़ें, सनाय मक्की, अमलतासका मगज, तुरजबीन, अतरीफल शाहतरा, अतरीफल उस्तोखुद्दूस और गुलकद।

सग्राही और रूक्षण (मुजफ्फिफात)—जलाया हुआ गावजबान, जलाया हुआ नीला तागा, गिल अरमनी, भुनी हुई फिटकिरी, जलाया हुआ सूखा धनिया, सगजराहत, वशलोचन, सफेद कत्था, हरा माजू, अनारका छिलका, तूतकी पत्ती, दम्मुल्अख्वैन, सुमाक, गुलाबका जीरा (जरेवर्द), पीली हड, गुलनार, बबूलकी छाल, भुना हुआ तूतिया आदि।

वेदनास्थापन—पोस्तेकी डोडी (कोकसार), सूखा मकोय, कपूर।

कोथप्रतिबधक—कपूर, मेंहदीकी पत्ती, छोटी इलायचीका दाना, कबाबचीनी, हलदी, लाहौरी नमक, नौशादर, सिरका आदि।

पाचन—जैसे, जुवारिश जालीनूस, जुवारिश मस्तगी, सौंफ, पुदीना, इलायची, कुसूसके बीज, धनिया आदि।

वज्उल् अस्नान (दंतशूल)

दतशूलमें वेदनास्थापन, सग्राही, लालाप्रसेकजनन, उष्णताहृर, कोथप्रशमन और विरेचन एव मृदुविरेचन ओपधियोका उपयोग मसूढोमें पीव पडनेके कारण होनेवाले दर्दमें होता है।

वेदनास्थापन—अफीम, पोस्तेकी डोडी (कोकनार), कपूर, तमाकू, अकरकरा, लौंग, लौंगका तेल, कालीजीरी, हरमल (इस्पद), (वाह्य रूपसे), गरम पानीकी कुल्ली।

सग्राही—जैसे—कत्था, फिटकिरी, नीलाथोथा, ववूलकी छाल, सिरका, सिरसकी छाल, माजू, वायविडग।

लालाप्रसेकजनन—उदाहरणत कालीमिर्च, सफेदमिर्च, राई, अकरकरा, सोठ, तमाकू, कवावचीनी आदि।

उष्णताहृर—जो मस्तिष्करोगी और नकसीर आदिमें उल्लिखित है।

कोथप्रतिवधक—फिटकिरी, नीलाथोथा, कपूर, नौसादर, खानेका नमक, लाहौरी नमक, कमीला, तमाकू आदि (वाह्य रूपसे)।

विरेचन और मृदुविरेचन—आवश्यकता होनेपर दोपविलोमकरण (इमाला) और शोधनार्थ।

तहर्रुक दंदां (दांत हिलना)

इसमें सग्राही एव लालाप्रसेकजनन ओपधियां गण्डूल और मजनकी भांति काममें ली जाती हैं, जिनमेंसे कुछका यहां उदाहरणस्वरूप वर्णन किया जाता है।

सग्राही और रक्तस्तम्भन—ववूलकी छाल, फिटकिरी, गुलनार, सुमाक, अनारका छिलका, लोहेका बुरादा, जलाया हुआ छालिया, जलाया हुआ वादामका छिलका, जलायी हुई ववूलकी फली, हरा माजू, सफेद कत्था, सगजराहत, हराकसीस, सोनामक्खी, पाह गुजराती, मस्तगी, दम्मुल्अख्वैन, जलाया हुआ हाथीदांत, नीलाथोथा, कुदुर आदि।

लालाप्रसेकजनन—अकरकरा, नागरमोथा, हलदी, कालीमिर्च, सोठ, लौंग, तमाकू आदि।

वरम लिस्सा (मसूढोकी सूजन)

इसमें सग्राही, लालाप्रसेकजनन, कोथप्रतिवधक, वेदनास्थापन ओपधियां वाह्य रूपसे प्रयोग की जाती हैं और दोपविलोमकरण (इमाला)के लिए कोई हलका विरेचन दिया जाता है। इन ओपधियों की सूची गत प्रकरणमें देखें।

नवासीर या तकय्युह लिस्सा

इसकी चिकित्सासे नासूरकी तरह वडी कठिनाई होती है। इन नासूरो (नाडीव्रणो)के मुख वहुत ही छोटे और वारीक होते हैं। इसलिए ओपधियों का यथेष्ट प्रभाव भीतर नही हो पाता। फिर भी इस रोगमें निम्नलिखित प्रकारकी ओपधियां प्रयोग की जाती हैं

संग्राही—फिटकिरी, हरा तूतिया, हरा माजू, सुमाक, गुलनार, अनारका छिलका, सिरका, पापडी कत्था, सरोका फल, मस्तगी, हीराकसीस, गिल मुलतानी आदि।

कोथप्रतिवधक—खानेका नमक, माजू, अजवायनका सत, पुदीनेका सत, हरा तूतिया, जीरा, लौंग, कपूर, छोटी और वडी इलायचीका दाना आदि।

लाल प्रसेकजनन—अकरकरा, कवावचीनी, कालीमिर्च, छोटी और वडी इलायचीका दाना तथा अन्य ओपधियां।

क्षार एव दाहक ओपधियां—तूतिया, खानेका नमक, हीराकसीस आदि।

वेदनास्थापन—लौंग, अकरकरा आदि।

उपर्युक्त ओपधियां दतमञ्जनकी भांति प्रयुक्त की जाती हैं। स्थानिक उपचारके साथ पाचनसुधार एव शुद्धिके लिए पाचन, दीपन, मृदुविरेचन, विरेचन ओपधियां यथोचित रीतिसे प्रयुक्त की जाती हैं।

हल्क व हञ्जरा (कठ और स्वरयत्र)के रोग

खुनाक व खानिका (कंठशोथ)

वेदनास्थापन और उष्णताहर (शीतजनन) ओषधियाँ सशमनार्थ, जैसे—इसवगोलका लुआव, उन्नावका शीरा, विहदानेका लुआव, काहूके बीजका शीरा, तूतकी पत्ती, शर्बत तूतस्याह।

सग्राही और सशमन औषधियाँ—प्रारभमें गडूपकी भाँति, जैसे—अमरूदकी हरी पत्ती, तूतकी पत्ती, सिरका, अर्क गुलाव, मसूर, हरा अखरोट, आमला, सफेद कत्था, पोस्तेकी डोडी, दहीका पानी (आवेदोग)।

कभी-कभी सग्राही ओषधियोंके साथ श्वयथुविलयन, मार्दवकर (मुरखी), श्वयथुमार्दवकर ओषधियाँ भी योजित कर दी जाती हैं, जैसे—अमलतास और छिली हुई मुलेठी, किंतु शोथके वर्धमान एव उत्कर्प अवस्थामें उपयुक्त हैं।

प्रलेप औषधियाँ (जिमादात)

प्रारभमें (रवादेअ) प्रयोग करे और शोथके वर्धमान (तजय्युद) कालमें (रादेअ), श्वयथुविलयन और (मुरखी) दोनों लगाये तथा (इतिहा)में बाहरकी ओर दोष आकृष्ट या शोषित करनेवाले (मुहम्मिरात) प्रलेप कठके बाहर लगायें।

(रवादेअ) प्रलेपकी भाँति हरी कासनीकी पत्तीका स्वरस, हरी मकोयकी पत्तीका स्वरस, हरे धनियाका रस, सूखी मकोय, रसवत, काई, लालचदन, पोस्तेकी डोडी, सीसा आदि।

श्वयथुविलयन और शोणितोत्क्लेशक (मुहम्मिरात) ओषधियाँ

प्रलेपकी भाँति जिफ्त, राई, नतरून, जदवार, अमलतासका मग्ज, सूखा मकोय, जौका आटा, वावूनेका फूल, नाखूना (इकलीलुल्मलिक), एलुआ, वालछड, जदवार, मस्तगी, ऊदखाम, रेवदचीनी, मरहम दाखिलयून आदि।

मेढक या मुर्गीके बच्चे (चूजा)का उदर फाडकर गरम-गरम कठके बाहर बाँधना भी शोथविलयन है।

तूतस्याह और तूतकी पत्ती सग्राही एव शीतजनन होनेके अतिरिक्त खुनाक और कठरोगोंके लिए एक विशिष्ट या रामवाण ओषधि है।

विरेचन और मृदुविरेचन—दोषविलोमकरण (इमाला)के अभिप्राय से, जैसे—अमलतास, शीरखिश्त, फलक्वाथ (जोशाँदए फवाका), आलूबोखारा, इमली।

वस्तियाँ भी दोषविलोमकरण (इमाला)के उद्देश्यसे प्रयोग की जाती हैं जो, इस दशामें मुखसे सेवनीय विरेचन ओषधियोंकी अपेक्षया श्रेष्ठतर हैं।

बल्य—प्रवल दुर्वलता एव शक्तिहीनताकी दशा में, जैसे—खमीरा मरवारीद, दवाउल्मिस्क, कपूरघटित योग आदि।

जुबहा, वरम लौजतैन (रोहिणी, उपजिह्विका)

समस्त वाह्याभ्यतर नियम, सिद्धात एव उपाय वही हैं, जिनका वर्णन ऊपर किया गया है।

वरम हञ्जरा (स्वरयत्रशोथ)

उष्णताजनन—उष्ण वाष्प कठ तक पहुँचाना और वाहरसे सेक करना।

सग्राही—रोगातमें पतले लेपके रूपमे, जैसे—फिटकिरीका पानी आदि।

आभ्यातर रूप से, जैसे—तूतकी पत्ती, शर्वत तूतस्याह आदि।

पिच्छिल लुआव आभ्यतर रूप से पिलाना (मुमल्लिसात), जैसे—विहीदाना, उन्नाव, लिटोरा, गुलबनफ्शा, खतमी वीज, गावजवान आदि।

स्वापजनन सशमन ओषधियाँ—अफीम और पोस्ते (खश्खाश)के योग प्रभृति खाँसीके प्रकोपकी दशामें।

वमन द्रव्य—प्रसेकीय स्वरयन्त्र शोथकी दशामे वमनद्रव्य प्राय गुणदायक सिद्ध होते हैं। इसमें गडूष (गरगरा)से कुछ भी लाभ नही होता। किंतु कोई-कोई गुलनार और पोस्तेकी डोडीका गडूष कराते है, जिसमें सग्राही एव शमनद्रव्य समाविष्ट हैं।

वरम हन्जरा मुज्मिन (चिरज स्वरयन्त्रशोथ)—इसमें पोस्ते और अफीमके योगोंका उपयोग सर्वथा ननुपयोगी है।

मार्दवकर (मुमल्लिसात) एव कफोत्सारि (मुनफ्फिसात वल्गम)—गुलवनफ्शा, गावजवान, छिली हुई मुलेठी, अलसी, हसराज, अजीर जर्द, सतमुलेठी, कतीरा, ववूलका गोद और सोसनकी जई।

इस रोगके फाट एव काढ़ेमें शर्वत तूतको अपेक्षाकृत श्रेष्ठता दी जाती है। जिसको कठ एव स्वरयन्त्र के साथ वैशिष्ट्य प्राप्त है।

उदरमार्दवकर—कब्जनिवारणके लिए।

फुफ्फुसके रोग

दमा—जीकुन्नफ्स (श्वास-कृच्छ्र्-श्वास) दमा में आक्षेपहर (विकासी), वातनाडीशामक, कफोत्सारि, मार्दवकर (मुमल्लिसात) और वमनद्रव्य प्रयोग किये जाते हैं।

विकासी (स्रोतोद्घाटक)—हलदी, रेवदचीनी, लोवान, पीपलामूल, वनपलाण्डु (काँदा), कसीस, कस्तूरी, हाऊवेर, उशक, हीग, तमाकू, कपूर आदि।

उक्त सूचीमें बहुत-सी ऐसी ओषधियाँ भी है, जो वातनाडियोकी सवेदनाको कम करके शमनकी क्रिया करती हैं, जैसे—अफीम, पोस्तेकी डोडी, अजवायन खुरासानी, भाँग आदि। परतु दमामें ऐसे द्रव्योका उपयोग प्रशसनीय या उत्तम नही है।

कफोत्सारि (श्लेष्म नि सारक) द्रव्योंकी विस्तीर्ण सूचीमें से कुछ बहुप्रयुक्त द्रव्य यहाँ लिखे जाते हैं —

अल्सी, छिली हुई मुलेठी, अडूसेकी पत्ती, जूफाए खुश्क, गावजवान, गुलगावजवान, अवरेशम खाम, उस्तोखुद्दूस, खानेका नमक, नौसादर, सुहागा, जवाखार, काकडासीगी, देशी अजवायन, अजीर, ईरसा, हसराज, फितरासालियून, गेहूँकी भूसी, उन्नाव, लिटोरा, मदारकी जडकी छाल, मदारका फूल, पोहकरमूल, शिलारस, गधक, विहरोजा, कुचिला, पपीता, अभ्रकभस्म, गोदती भस्म, शहद, शर्वत एजाज, लऊक हव्व सनोवर, लऊक नजली आवतरवूजवाला, लऊक सपिस्ताँ, लऊक मोतदिल आदि।

कभी-कभी शिगरफ (हिङ्गुल) और सखिया इस रोगमें बहुत गुणकारी सिद्ध होते हैं।

मार्दवकर (मुमल्लिसात)—विहीदाना, उन्नाव, अलसी, मेथी, लिटोरा, खतमी, गावजवान, ववूलका गोंद, कतीरा, सतमुलेठी, शर्वत वनफ्शा।

वल्य ओषधियाँ—सुवर्ण भस्म, लोह भस्म, खमीरा मरवारीद, खमीरा अवरेशम, खमीरा गावजवान, यशव, याकूत आदि।

आहारीय स्नेहन-द्रव्य (स्निग्ध आहारद्रव्य)—स्त्री दुग्ध, गदहीका दूध, वकरीका दूध, गायका दूध, खीरा-ककडीके वीजोंका मग्ज, तरवूजके वीजका मग्ज, पेठाके वीजका मग्ज, खरवूजेके वीजका मग्ज आदि।

वक्तव्य—कभी-कभी उर क्षत रोगीकी पाचन-शक्ति विकृत हो जाती है। उक्त अवस्थामें इन द्रव्योंके अतिरिक्त दीपन ओषधियोंका भी उपयोग करते हैं।

जातुर्रिया व जातुल्जव (फुफ्फुसशोथ एव पार्श्वशूल)

इन दोनो रोगोमें शीतजनन, स्नेहन व मार्दवकर (मुमल्लिसात), श्लेष्म नि सारक, वेदनास्थापन, दोष विलयन एव दोष शोषणकर्ता (जाज़िब मवाद) और विरेचन एव मृदुविरेचन, पाचन और स्वेदन द्रव्य प्रयोग किये जाते हैं।

शीतल एवं मार्दवकर (मुमल्लिसात) द्रव्य—बिहीदाना, उन्नाव, लिटोरा, खतमी बीज, खुब्बाजी बीज, कतीरा आदि।

श्लेष्मनिस्सारक—गावजवान, गुलगावजवान, लोवान, सतमुलेठी, बबूलका गोंद, कतीरा, गुलबनफ्शा, मुलेठी, बिरजासफ, हंसराज, पीपलवृक्षकी पत्तीकी राख, मधु आदि।

वेदनास्थापन—कपूर, केसर, मकोय, कैरूती आदि (बाह्यरूपसे)।

दोषलयन और दोषाकर्षणकर्त्ता (जाजिबात)—कपूर, तारपीनका तेल (रोगन सनोवर), साबुन, नौशादर, एलुआ, केसर, मोम, कालीमिर्च, मोमरोगन, शावरम्भ्रग, कैरूती आर्द करस्ना (बाह्यरूपसे)।

पाचन—सौंफ, जीरा आदि।

स्वेदन—(ज्वरको ध्यानमें रखकर)—खाकसी आदि।

डब्वए अत्फाल (पसली चलान)

इसकी औषधियाँ और चिकित्साके सिद्धांत जातुर्रिया (फुफ्फुसशोथ)के समान हैं, परन्तु इसमें कभी वमन कराना बहुत गुणकारी सिद्ध होता है।

वमन द्रव्य—(१) "हब्बडब्बए अत्फाल", भुना हुआ हरा तूतिया और अधभुना सुहागा दोनो गोलीके रूपमें। (२) "हब्बउसारा"से भी प्रायश बालकोंको वमन हो जाता है, जिसके उपादान यह हैं—उसारारेवद, एलुआ और मस्तगी। (३) एलुएको माताके दूधमें घोलकर चटानेसे प्राय वमन हो जाया करता है।

मृदुविरेचन—बालकोंके कोष्ठमार्दवकरणके लिए रेंडीका तेल या मीठे बादामका तेल दूध या शहदमें मिलाकर चटाना सरल होता है।

नपसुद्दम (रक्तष्ठीवन, मुखसे रक्त आना)

रक्तसांग्राहिक और वातनाड़ीशामक—गेरू, सगजराहत, दम्मुल्अख्वैन, सीप, मोती, मसीकृत केकडा, बरगदकी दाढी (बरोंह), हब्बुल्आस, अक्षवारमूल, कपूर, बबूलका गोंद, गूगल, पोस्तेकी डोडी (कोकनार), काहूके बीज, पोस्तेका दाना, खमीरा खश्खाश, शर्बत खश्खाश, शर्बत अनार, रुब्ब बिहशीरी, रुब्बसेब शीरी आदि।

कभी शीतके उपयोगसे भी रक्तका स्राव बंद किया जाता है, अर्थात् बर्फ खिलाई जाती है और बाहरसे भी उर आदिमें शीत पहुँचाया जाता है।

पिच्छिल शामक (मुसक्किनात लुआबिया) एवं शीतजनन—बिहीदानाका लुआब, शीरा तुख्म खुर्फा स्याह, कतीरा, इसबगोल, रीहांके बीज, खतमीके बीज, खुब्बाजीके बीज, खतमी मूल (रेशा खतमी), मीठे अनारका रस।

श्लेष्मा नि सारक—कभी रक्तस्तम्भन द्रव्योंके साथ कुछ कफोत्सारि द्रव्य भी सम्मिलित कर दिये जाते हैं, जिसमें वायुप्रणालियोंमें निकलकर सञ्चित हुआ रक्त सरलतासे निकल जाय, जैसे—सतमुलेठी, शकरतीगाल आदि।

विरेचन और मृदुविरेचन—दोषाकर्षण (इमाला)के उद्देश्यसे सब औषधियोंका सेवन चालू रखा जाता है जो रक्तस्तम्भनमें साहाय्यभूत होता है।

यदि दांत और मसूढे आदिसे रक्त निकल रहा है, तो गण्डूषके रूपमें सग्राही द्रव्य प्रयोग किये जाते हैं, जिसकी औषधियाँ गत प्रकरणोमें लिखी जा चुकी हैं।

वमनद्रव्य—हीराकसीस, नीलाथोथा, उसारए रेवद, तमाकू, मूलीके बीज, छिली हुई मुलेठी, मदारकी जडकी छाल, अलसी, राई आदि।

सुआल (कास-खांसी)

स्वापजनन शामक (मुसक्किनात मुखद्दिरा)—अफीम, पोस्तेकी डोडी (कोकनार), खुरासानी अजवायन, भांग, काहूके बीज तथा अफीम और पोस्तेके योग।

कफोत्सारि (श्लेष्मानिस्सारक)—बबूलका गोंद, सतमुलेठी, कतीरा, शकरतीगाल, गंधक, गुलबनफ्शा, शर्बत बनफ्शा, खमीरा अबरेशम, खमीरा गावजबान आदि।

अम्राज क़ल्ब (हृद्रोग)

ग़शी (मूर्च्छा)

मुनइशात (आवेगकालमे) शीतलजलका बाह्य उपयोग, जैसे—चेहरा और छाती, उसके छींटे मारना, तीव्र सिरका सुंघाना, नौशादर और चूनाके योग (अमोनिया)के वाष्प पहुँचाना, लालमिर्च पीसकर नाकमें प्रधमन करना आदि।

हृदयोत्तेजक एव हृद्य द्रव्य—कस्तूरी, अबर, केसर, जदवार, ज़हरमोहरा, चदन, कपूर, सूखा धनियाँ, लौंग, इलायची, अबरेशम, गुलाबके फूल, गुडहलके फूल आदि जवाहिरमोहरा, मुफर्रेह बारिद, दवाउल्मिस्कके विभिन्न भेद, हरे धनियेका रस, सेबका रस, अगूरका रस, अनारका रस, सतरेका रस, अर्क बेदमुश्क, अर्क गुलाब, अर्क केवडा, मद्य, चाय, खमीरए मरवारीद, खमीरए गावजबान अबरी, खमीरा सदल, खमीरए अबरेशम (आवेगके पूर्वापर कालमे)।

वातनाडीबलवर्धन—(वातिक दौर्बल्यकी दशामें) जैसे—कुचिलाके योग (माजून लना, हब्ब इजाराकी, माजून इजाराकी)।

(१) कभी-कभी सुवर्ण और लोहके योग, जैसे—विद्रुत्त लोह (फौलाद सय्याल) और सुवर्ण भस्म भी बल-प्राप्तिके लिए प्रयुक्त की जाती है। (२) मूर्च्छाके हेतुके विचारसे अन्य औषधियाँ भी प्रयुक्त की जाती हैं।

ज़ोफ कल्ब (हृदयदौर्बल्य)

हृदयोत्तेजक और हृद्य औषधियाँ—जिनकी सूची गशीके प्रकरणमें दी जा चुकी है।

मृदुविरेचन और पाचनद्रव्य—पाचनके सुधार एव अन्नकी शुद्धिके लिए पाचन औषधियाँ जिनमें सुगंधित उपादान (सुगध द्रव्य-अद्विया इत्रिया) प्रविष्ट हो, जैसे—दवाउल्मिस्क एव जुवारिश जालीनूस और मृदुविरेचन औषधियाँ, जैसे—गुलकद, शर्बतवर्द और अतरीफल, प्रयुक्त की जाती हैं।

(१) हृदयरोगमें कोष्ठमृदुकरणके लिए गुलकद और शर्बतवर्द श्रेष्ठ औषध है, क्योंकि इनके भीतर गुलाबके फूल हैं जो उदरमार्दवकर (सर) होनेके अतिरिक्त सौमनस्यजनन भी हैं। (२) हृदयदौर्बल्यके मूल हेतुके विचारसे अन्य औषध दिये जाते हैं।

खफकान (इख्तिलाज क़ल्ब), हृत्स्पंदन तथा हृत्स्फुरण

इन रोगोंमें न्यूनाधिक वही औषधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं जिनका उल्लेख गशीके प्रकरणमें किया गया है।

वजउल्क़ल्ब (हृच्छूल), जुबहासदरिया

हृदयोत्तेजक—(हृदयकी वाहिनियोंके अवरोधका उद्घाटन करनेवाले द्रव्य), जैसे—कपूर, कस्तूरी, लौंग, खमीरा गावजबान अबरी, अर्क अबर, जवाहिरमोहरा, दवाउल्मिस्क आदि (आभ्यतर रूपसे)।

वेदनास्थापनार्थ आवेगके समय इस रोगमें हृदयागत वाहिनियोंको फैला देनेवाली औषधियाँ (मुफत्तेहात उरूक) प्रभावकारी सिद्ध होती हैं।

लखलखा (आघ्राण औषध)—अर्क केवडा, अर्कबेदमुश्क, अर्कगुलाब, हरे धनियेका रस, कपूर, सिरका, चदन प्रभृति।

अभ्यङ्गौषध (मालिश)—इत्र हिना, इत्र गुलाब, इत्र केवडा, कस्तूरी, अबर बाह्यत पतले लेप (तिला) की भाँति।

तापस्वेद (तकमीद-सेक)—हल्दी, सुहागा पीसकर और घीकुआरकी पत्ती पर छिड़ककर गरम करके सीनेको सेंकना।

मृदुविरेचन औषधियाँ—गशीके प्रकरणमें लिखी गयी हैं।

पाचन औषधियाँ—आवेगोपरात अवकाशकाल (अय्याम फतरा)में जिनकी एक सूची सक्षिप्त गशीके प्रकरणमें दी गयी है।

अम्राज़े सदी (स्तनरोग)

क़िल्लतुल् लबन (क्षीराल्पता, अल्पक्षीरता)

स्तन्यजनन (मुवल्लिदाते लबन), जैसे—जीरा, सतावर, तोदरी, दूध आदि। अधिक विस्तार हेतु गत गुणकर्मानुसारिणी सूची देखे।

कसरते लबन (दुग्धस्रावाधिक्य)

स्तन्यनाशन (मुकल्लिलात लबन) औषधियाँ—जैसे—काहूके बीज, सुदावके बीज, सँभालूके बीज आदि। शेष द्रव्योंके नाम गत द्रव्यगुणकर्मानुसारिणी सूचीमें देखें।

वरम सदी (स्तनशोथ)

अवसादक और स्वापजनन औषधियाँ, जैसे—पोस्तेकी डोंडी, कपूर, तारपीनका तेल (रोगन देवदार), गुलरोग़न आदि (बाह्यरूपसे)।

शीतजनन औषधियाँ, जैसे—हरी कासनीका रस, हरे मकोयका रस, सिरका, अर्कगुलाब आदि (बाह्यरूपसे)।

दोषविलयन (मुहल्लिलात)—जब शोथ वृद्धि एव पाकको प्राप्त होने लगे और स्वापजनन एव शीतजनन औषधियोंसे इसकी वृद्धि नही रुके। औषधियोंके नाम द्रव्यगुणकर्मानुसारिणी सूचीके मुहल्लिलात शीर्षकमें देखें।

शीतजनन औषधियाँ (आभ्यतररूपसे) (प्रकृति सुधार एव उष्णताशमनार्थ), जैसे—बिहीदानेका लुआब, उन्नावका शीरा, मीठेकद्दूके बीजोंके मग्जका शीरा, शर्बत नीलूफर आदि।

मृदुविरेचन—अन्त्रशुद्धि और दोषाकर्षण (इमाला मवाद्)के लिए, जैसे—गुलकद, शर्बत वर्द मुकर्रर आदि।

अमराजे मेदा (आमाशयके रोग)

दर्दे मेदा (आमाशय या उदरशूल)

इसमें वातानुलोमन, पाचन, विरेचन, मृदुविरेचन और वमनद्रव्य प्रयुक्त किये जाते हैं।

वातानुलोमन और पाचन औषधियाँ—सौंफ, अनीसून, जीरा, काला नमक, खानेका नमक, अजवायनका सत, पुदीना, हीग, सतपुदीना, देशी अजवायन, कपूर, जुवारिश कमूनी, जुवारिश जालीनूस, जुवारिश बस्बासा, जुवारिश जजबील, नमक सुलेमानी, नमक शैखुर्रईस, हब्बकबिद नौशादरी, हब्ब पपीता, अर्कसौंफ आदि।

विरेचन और मृदुविरेचन—अन्त्र और आमाशयकी शुद्धिके लिये, जैसे—सनाय, गुलकद, अतरीफल मुलय्यन, हब्बतकार आदि।

वमन औषधियाँ (मुकइय्यात)—आमाशय शुद्धिके लिए, जैसे—गरम पानी और नमक (अन्य वमन-द्रव्योंके नाम मुक़इय्यातकी सूचीमें देखें)।

सूए हज़म और जोफे मेदा (पाचनविकार और अग्निमाद्य)।

इसमें दीपन और पाचन, वमन, मृदुविरेचन, विरेचन, सग्राही और वेदनास्थापन औषधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं।

दीपन और पाचन औषधियाँ—उस समय प्रयुक्त की जाती है, जबकि वृद्धावस्था, रोगका मुकाबिला या किसी और कारणवश आमाशय अपना कार्य पूर्णतया संपादन नही कर सकता।

वमन औषधियोकी अपेक्षा उस समय होती है, जबकि आमाशय दूषित आहार एव दुष्ट दोषोंसे परिपूर्ण होता है।

विरेचन और मृदुविरेचन—औषधियोसे कब्ज निवारण और दोषो की शुद्धि अभीष्ट होती है, जिससे प्रत्यक्षतया अन्त्र और परम्परया सम्पूर्ण शरीरकी शुद्धि होती है, जिससे आमाशयकी क्रिया तीव्र हो जाती है।

सग्राही—औषधियाँ उस समय प्रयुक्त की जाती हैं, जबकि मदाग्नि (पाचनदौर्बल्य)के साथ नरम अजाबतें हो रही हो और दस्त हो रहे हो।

वेदनास्थापन—इन औषधियोकी अपेक्षा वेदनाकी उपस्थितिमे होती है, जिनकी सूची ऊपर दी गई है।

दस्तोको रोकनेके लिए या वेदनाशमनके लिए यथासभव ऐसी औषधियोंका चयन करना चाहिए जो औपचारिक आवश्यकताओके विचारसे एकसे अधिक गुणयुक्त हो, जैसे वह सग्राही (काबिज) होनेके साथ या वेदनाशमन होनेके साथ दीपन और पाचन भी हो।

दीपन और पाचन औषधियाँ—इनकी विस्तृत सूचीमेसे यहाँ कतिपय चुनी हुई और बहुप्रयुक्त औषधियोके नाम लिखे जाते हैं—

असंसृष्ट (मुफरदात)—देशी अजवायन, पुदीना, सौंफ, छोटी और बडी इलायची, अनीसून, कुसूसके बीज सूखा धनिया, जीरा, सोठ, सभी प्रकारकी हडें, बहेडा, सिरका, कागजी नीबूका रस, खट्टे अनारका रस, इमलीके ऊपरका निथरा हुआ पानी (जुलाल), सुहागा, नौशादर, कालानमक और अन्य नमके, कुचला, पपीता, कपूर, अजवायनका सत, पुदीनेका सत, इलायचीका सत, सतबादियान (सौंफ का सत), हीग आदि।

संसृष्ट औषध-योग (मुरक्कबात)—जुवारिश कमूनी, जुवारिश जालीनूस, जुवारिश मस्तगी, जुवारिश शहरयारां, जुवारिश बसबासा, जुवारिश अनारैन, जुवारिशऊद, जुवारिश जन्जबील, जुवारिश आमला आदि।

हब्बपचलोना, हब्बसुमाक, हब्बहिल्तीत, हब्बकबिद नौशादरी, हब्बपपीता, हब्बकिबरीत (गधकवटी), हब्बइजाराकी (कुपीलुवटी)—माजून नान्खाह, माजून सगदाना, माजून लना, माजून इजाराकी, अर्कअजवायन, अर्कपुदीना, अर्क बादियान (सौंफ), अर्क इलायची, फौलाद भस्म, मडूर भस्म—शर्बतफौलाद और फौलादके अन्य योग, सिकजबीन (मधुशुक्त), सफूफ नानाख्, सफूफ चुटकी, नमकसुलेमानी, नमक शैखुर्रईस—सब्वियाके योग आदि।

वमन-द्रव्य, जैसे—गरम पानी और नमक आदि।

विरेचन और मृदुविरेचन औषधियाँ—गुलकद, शर्बतवर्द, कुर्समुलय्यन, हब्बतकार, अतरीफलके योग, हडका मुरब्बा, सभी प्रकारकी हडे, बहेडा आदि। (विरेचन औषधियोंके विस्तारके लिए गत सूचियाँ देखें)।

सग्राही औषधियाँ—जरिश्क, सुमाक, आमला, फौलाद (लोह), जहरमोहरा, वशलोचन, सफेदचदन, कहरुबाए शमई, मोतीकी सीप, कपूर, पोस्तेकी डोडी (कोकनार), अफीम, इलायचीका दाना, सौंफ, धनियाँ, पुदीना, हब्बुल्आस, बारतग बीज, मस्तगी, अनारदाना, सिरका, सिकजबीन, नमक मृगाग, खट्टे अनारका रस, नीबूका रस, इमलीका रस, रुब्ब विही शीरीं, रुब्ब सेब आदि।

वेदनास्थापन—(बाह्यत) उष्म स्वेद (तक्मीद)। (आभ्यन्तरत.) कपूर, अजवायन, पुदीना, सौंफ, छोटी और बडी इलायची, अनीसून, सूखा धनिया, इनके योग एव सत।

वक्तव्य—(१)—उदरस्फीति (अफारा) और वायुकी उपस्थितिमें वातानुलोमन औषधियाँ (कासिरात रियाह) प्रयोग की जाती हैं, जो उपरिलिखित पाचन-औषधियोकी सूचीमें प्रचुरतासे विद्यमान हैं।

(२) उपर्युक्त सूचीमें बहुत-सी कोथ, प्रतिबंधक औषधियाँ भी हैं। विशेषकर वे औषधियाँ जो सुरभिपूर्ण हैं, जैसे—पुदीना, सतपुदीना, अजवायन, सतअजवायन, इलायची, सतइलायची, जीरा, सौंफ, लौंग, दालचीनी, जायफल, जावित्री, हीग और इनके योग—इस प्रकारकी कोथप्रशयन औषधियाँ प्राय वातानुलोमन भी हैं।

तुख्मा (अजीर्ण)

जब मंदाग्नि और पाचन विकारके कारण विरेक और वमन होने लगते हैं, तब उसे तुख्मा (अजीर्ण) कहा जाता है। इसकी चिकित्साका सिद्धान्त अग्निमांद्य (ज़ोफ़ेहज़्म)की चिकित्साके समान है।

नफ़ख़ व रियाह् शिकम (आध्मान एवं उदरस्थ वायु)

अग्निमांद्यके सिद्धान्तानुसार वातानुलोमन, पाचन, दीपन, वमन और विरेचन तथा मृदुविरेचन औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं। इन रोगोंमें प्रयुक्त औषधियोंके नाम ज़ोफ़े हज़्म (मंदाग्नि) और दर्दमेदा (आमाशयशूल)के प्रकरणमें लिखे जा चुके हैं।

इस रोगमें प्रशमन और स्वापजनन औषधियाँ, जैसे—पोस्तेकी डोडी, अफीम और इनके योगोंके प्रयोगकी, जिनसे आमाशय और आँतोंकी प्रतिसरण गति मन्द हो जाती है, आज्ञा नहीं है।

उष्णताजनन—वातानुलोमनके लिए आभ्यंतरीय उपचारके अतिरिक्त बाहरसे उष्ण एवं शुष्क स्वेद (तक्मीद, टकोर) करना भी सहायक सिद्ध होता है, जिसमें कभी-कभी औषधियोंसे भी सहायता ली जाती है, जैसे—सोंठ, मालकंगनी, गेहूँकी भूसी, खानेका नमक, बाजरा, रेत इत्यादि।

ग़सयान (मतली), तहव्वुअ (उबकाई), क़ै (वमन)

मिचली, उबकाई और वमनमें वमन, विरेचन और मृदुविरेचन, पाचन, शीतजनन, शोणितोत्क्लेशक (दोष-विलोमकरण-इमालाके लिए) औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

वमन औषधियाँ आमाशयकी शुद्धिके लिए प्रयोगकी जाती हैं, जिसमें आमाशयमें जो दूषित पदार्थ, दोष (अख्लात), द्रव और आहारके रूपमें विद्यमान हों (जो वमन आदिकी प्रवृत्तिके हेतुभूत हैं) वह बाहर निकल जायँ।

इसी प्रकार से विरेचन और मृदुविरेचन औषधियाँ इस हेतु प्रयोग की जाती हैं, जिसमें ऐसे दुष्टभूत आहार आदिका जो भाग आँतोंमें पहुँच गया है वह रेचन द्वारा निकल जाय।

इस शुद्धिके उपरांत प्रशमन, दीपन और पाचन औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं जिसमें आमाशयकी प्रतिसरण गति शांत हो जाय और जो कुछ अपाचित अंश विद्यमान हो वह पच जाय। पाचन औषधियोंमें अम्ल और सुगंधित औषधियोंको अपेक्षाकृत श्रेष्ठतर समझा जाता है। इन सबकी सूचियाँ पहले दी जा चुकी हैं।

शोणितोत्क्लेशक (मुहम्मिरात)—बाह्यतः दोषविलोमकरणार्थ (इमालाके प्रयोजनसे) प्रयोगकी जाती हैं, जिसमें बाहरी प्रवाहके कारण आमाशयगत वमनकी प्रवृत्ति बंद हो जाय, जैसे—राई का लेप आदि।

शीतजनन—बर्फ़ खिलाना और आमाशयके ऊपर बाहरसे बर्फ़ लगाना।

क़ैउद्दम (रक्तवमन)

रक्तवमनमें वमनकी सामान्य चिकित्साके साथ रक्तवमन और प्रशमन औषधियाँ भी योजित की जाती हैं, जिसमें रक्तवाहिनियोंसे रक्तका स्राव बंद हो जाय। रक्तवमनमें सरण और अतिसरण (तलय्यन और इसहाल)के लिए मुख द्वारा सेवनीय औषधियोंकी अपेक्षया वस्ति श्रेष्ठतर है।

रक्तस्राहिक—गेरू, संगजराहत, दम्मुल्अख़्वैन (ख़ून-ख़राबा), प्रवालमूल, कहरुबाए शमई, शर्बत खश्खाश, कपूर, कपूरका प्रवाही द्रव (काफ़ूर सय्याल)

शीतजनन—(आभ्यन्तररूपसे) बिहीदानाका लुबाब, शीरा तुख़्म ख़ुर्फ़ा, शीरा हब्बुल्आस, हरे बारतंगका रस आदि।

(बाह्यरूपसे) आमाशयके स्थान पर बर्फ़से शीत पहुँचाना। शेष रक्तस्तम्भन, शीतजनन और प्रशमन औषधियाँ नफ़्सुद्दमके प्रकरणमें देखें।

हैजा (विसूचिका)

हैजेमें विरेचन, मृदुविरेचन, वमन, सतापहर, कोथप्रतिबधक, विषघ्न और दीपन एव पाचन औषधियाँ, अतमें वमन बद करनेके लिए छर्दिनिग्रहण, दस्त बद करनेके लिए अतिसारघ्न और दुर्बलता निवारणके लिए बल्य औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं। वमन और विरेचन औषधियाँ अन्न और आमाशयकी शुद्धिके लिए प्रयुक्त की जाती हैं।

विरेचन और मृदुविरेचन औषधियाँ—जुवारिश कमूनी मुसहिल, जुवारिश सफरजली मुसहिल, गुलकद, जुवारिश शहरयाराँ, शर्बत दीनार, सनाय, इमली, तुरजबीन (यवासशर्करा), शीरखिश्त, शर्बत वर्दमुकर्रर, सफेद निसोथ, सकमूनिया, रेवदचीनी, रेडीका तेल आदि।

वमन औषधियाँ—मूलीके बीज, खानेका नमक, सिकजबीन, गरम पानी आदि।

कोथप्रतिबधक और विषघ्न औषधियाँ—कपूर, इलायचीका सत, पुदीनाका सत, अजवायनका सत, चूनेका पानी, जदवार, पपीता (Ignatia amara), दरियाई नारियल, जहरमोहरा खताई प्रभृति। पाचन औषधियोंकी सूचीमें भी कतिपय औषधियाँ कोथप्रशमन एव विषघ्न हैं।

सतापहर—इमली, आलूबोखारा, जरिष्क, कुलफाके बीज, धनिया, चदन, अर्क केवडा, अर्क बेदमुश्क, अर्क गुलाब, शर्बत अनार, शर्बत लीमू, बर्फ आदि।

दीपन और पाचन औषधियाँ—(इनमें से प्राय औषध बिज्जात या बिल्अर्जके हेतुको निवारण करके छर्दिनिग्रहण और अतिसारघ्न भी हैं)। सौंफ, अनीसून, स्याहजीरा, पुदीना, इलायची, बिजौरेका छिलका, नीबूके बीज, पपीता (Ignatia amara), ऊद खाम, मदारका फूल, लालमिर्चके बीज, सुमाक, पिस्तेका बाहरी छिलका (पोस्ते बेरूँ पिस्ता), देशी अजवायन, मस्तगी, अनारदाना, चिरायता, जदवार, दरियाई नारियल, जुवारिश अनारैन, जुवारिश मस्तगी, जुवारिश कमूनी, जुवारिश ऊद, जुवारिश आमला, जुवारिशशाही, जुवारिश जालीनूस, नोशदारू, दवाउल्मिस्क मोतदिल, हब्ब पपीता, हब्बगुलमदार, अर्क इलायची, अर्क पुदीना, अर्क बादियान (सौफ), सिकजबीन, शर्बत अनार आदि।

अतिसारघ्न (हाबिसात) इसहाल—जैसे कपूर, पुदीना, अजवायन, धनिया, छोटी इलायचीका दाना आदि और सबसे अतमें अफीम और इसके योग।

दीपन और पाचन औषधियोंकी सूचीमें बहुत सी औषधियाँ अतिसारघ्न भी हैं, जिनमेंसे कुछके नाम उदाहरणस्वरूप लिये गये हैं।

पानी—हैजामें वाहिनी या स्रोतगत द्रवाश कम हो जाता है। प्रतिकार हेतु पानी और पानीवाली वस्तुएँ, जैसे—विभिन्न प्रकारके अर्कके योग और प्रवाही-औषधियाँ हर प्रकारसे प्रचुरतासे पहुँचाई जाती हैं।

हृद्य एव सौमनस्यजनन औषधियाँ—दौर्बल्य एव मूर्च्छाके समय, जैसे—दवाउल्मिस्क, तिरियाक फारूक, कपूर और अन्य अर्क एव सौमनस्यजनन योग (मुफर्रेहात) आदि।

छर्दिनिग्रहण (मानेआत कै)—(आभ्यतर रूपसे) ठढा पानी और शीतल पेय आदिका पिलाना। इस प्रकारकी बहुत-सी औषधियाँ उपरिलिखित सूचीमें उल्लिखित हैं। (बाह्य रूपसे) बर्फका स्थानीय उपयोग, अर्क-गुलाब और सिरकाका बाह्य उपयोग-ताप स्वेद (गरम सेक) आदि।

फुवाक (हिक्का-हिचकी)

छिक्काजनन—हुलास और नसवार (नस्य) या कोई अन्य छिक्काजनन औषधि सुँघाकर छीक लानेसे कभी-कभी सामान्य दशाओमें हिचकी बद हो जाया करती है।

शीतजनन—ठढा पानी या कोई ठढी धातु पिलानेसे कभी-कभी सामान्य हिचकी दूर हो जाया करती है।

उष्णताजनन—(आभ्यंतररूपसे) गरम पानी, गरम चाय या गरम दूध घूँट-घूँट पिलानेसे कभी-कभी हिचकी दूर हो जाया करती है। ये तीनो उपक्रम साधारण हिचकीके लिए अन्य बहानों (हीलों)की भाँति कतिपय

बहाने (हील) हैं, स्थिर एवं टिकाऊ हिचकीके उपाय या चिकित्सा नही है। टिकाऊ हिचकीमें अधोलिखित प्रकारकी औषधियाँ और उपाय काममें लिए जाते हैं।

वमन औषधियाँ—आमाशयगत क्षोभ एव चिनग (लज्अ)की दशामें तथा कुपचन एव आहारदुष्टिके समय आमाशयको पित्त या अन्य दुष्टभूत दोषसे शुद्ध करनेके लिए, जैसे—गरम पानी, नमक, सिकजबीन आदि।

पिच्छिल सशमन औषधियाँ (मुसक्किनात लुआबिया)—बिहीदानेका लबाब, अडेकी सफेदी, इसरगोलका लबाब, गावजबान, गुलगावजबान।

आमाशय सशामक (मुसक्किनात मेदा) और विकासी (दाफेआत तशन्नुज)—जैसे देशी अजवायनका काढा, कपूर सूखा पुदीना, जदवार आदि।

पाचन और वातानुलोमन—उदरस्थवायु एव आध्मानकी दशामें, जैसे—सोठ, सौफ, स्याहजीरा, करफ्सके बीज, जरावद, मस्तगी, कालीमिर्च, जुवारिश जालीनूस, जुवारिश कमूनी, दबाउल्मिस्क।

दोषपाचन (मुञ्जिजात)—जैसे, मुलेठी, उन्नाव, गावजवान, गुलगावजवान आदि।

तापस्वेद—(आमाशयके ऊपर गरम सेक) शिथिलता (इरखाऽ) और आक्षेप निवारणके लिए।

विरेचन और मृदुविरेचन—आवश्यकता पडने पर सरण और अतिसरणके उद्देश्यसे।

पाचन और वातानुलोमन ओषधियोंके अतर्गत कुछ ओषधियाँ कफपाचन और कफसशमन आदि भी हैं तथा कुछ आमाशय सशामक भी।

वरम मेदा (आमाशयशोथ)—वरम या शोथके यह दो भेद हैं—

(१) वरमहाद्द (उग्रशोथ) जो रोगका बहुत ही तीव्र एव साघातिक रूप है। इसमें आमाशयके स्थान पर तीव्र पीडा एव सूजन होती है तथा वमन होता है जिसमें रक्त और कफ निकला करता है। यह प्राय क्षोभकारक विषौषधियोंके प्रयोगसे प्रकट हुआ करता है।

(२) वरम मुज्मिन (चिरकारी शोथ) जिसमें समस्त लक्षण साधारण होते हैं। आमाशयके स्थानपर दबानेसे पीडा होती है और प्राय मिचलीकी शिकायत रहती है। कभी वमन भी हो जाया करता है। दोनोंकी चिकित्साविधि परस्पर कुछ भिन्न है।

वरम हाद्द या इल्तिहाब

(तीव्र शोथ)

प्रारभमें उपवास करने और भोजनमें असीम लाघवके अतिरिक्त पीडा एव शोथनिवारणके लिए वेदना-स्थापन और शीतजनन औषधियाँ उपयोग की जाती हैं, जैसे—वर्फका उपयोग, बिहीदानेका लबाब, उन्नावका शीरा, पोस्तेकी डोंडीका शीरा, अफीमके योग (स्वल्प मात्रामें), हरी मकोयका फाडा हुआ पानी, हरी कासनीका फाडा हुआ पानी, शर्बत वर्द (गुलाब)।

वेदनाशमनार्थ—कभी उष्ण लेप, तापस्वेद (गरमसेक) एव गरम परिषेक (नुतूलात) किया जाता है और आमाशयके स्थान पर जोंक लगाई जाती है।

तृट्प्रशमन—तृष्णानिग्रहके लिए वर्फ, ठढा पानी और ठढे अर्क एव शर्बत पिलाये जाते हैं, जैसे—ताजा नीबूका शर्बत, इमलीका जुलाल, आलूबोखाराका जुलाल, अर्क बेदमुश्क, अर्क केवडा, अर्क गुलाव आदि।

वमिहर—उपर्युक्त ओषधियो तथा उपायों से वमन भी बद हो जाया करता है।

अन्नमार्दवकरण (तलय्यन अमूआ)के लिए उक्त दशामें यद्यपि लवणविरेचन भी दिये जा सकते हैं तथापि मुखद्वारा सेवनीय विरेचनकी अपेक्षा वस्ति ही श्रेष्ठतर है।

वमन औषधियाँ—प्रसेक (नजला)की दशामें जबकि आमाशयके भीतर प्रसेकीय द्रव सचित होता है, प्राय

वमन औषधियों द्वारा उसका प्रतिकार किया जाता है। किंतु उसी अवस्थामें जबकि इस बातका पूर्ण विश्वास हो कि अपाचित आहार ही क्षोभ एव सक्षोभ (लज्अ)का हेतुभूत है।

आमाशय प्रक्षालन—प्रारभमें आमाशयको धोने या आमाशयकी शुद्धिके लिए भी वमन करते है।

वरम मुज्मिन (चिरज शोथ)

चिरकारी आमाशयशोथमें निदानपरिवर्जन और पथ्यपालनके उपरात अधोलिखित प्रकारकी ओपधियां सेवन की जाती हैं —

आमाशयसशामक (मुसक्किनात मेदा)—ओपधियां जो शोथके विलीन करनेमें सहायक होती हैं। इसीलिए इनको श्वययुविलयन (मुहल्लिलात) भी कहते हैं, जैसे—सौंफ, करफ्सके बीज, अनीसून, पुदीना, सोआके बीज, अजवायन, कासनीकी जड, सौंफकी जड, वालछड, जडोका पानी (माउल्उसूल), नुसूखा खललशिकम, अफसतीन, शाहतरा (पित्तपापडा), चिरायता, सूखा मकोय, हरी कासनीके रसका फाडा हुआ पानी, हरे मकोयके रसका फाडा हुआ पानी, विहीदाना, उन्नाव, जरिष्क, अनारका रस, खट्टे अगूरका रस, आलूबोखारा, वशलोचन, कुर्सतवाशीर।

प्रलेपौपधियाँ (जिमादात)—आमाशयके सशमनार्थ और आमाशयकी सूजन उतारनेके लिए, जैसे—अलसी मेथी, अमलतासका मग्ज, बावूलेका फूल, वालछड, इजखिर, इक्लीलुल्मलिक (नाखूना), सिलारस (मीअ), गूगल, सोआके बीज, सूखा मकोय, मकोयका रस, कासनीका रस, जौ का आटा आदि।

वेदनाप्रशमन—तीव्र वेदनाके शमनार्थ स्थानीय रूपसे गरम सेक करें या बाह्य रूपसे दहनकर्म करें, राईका लेप लगायें या आभ्यतर रूपसे पोस्तेकी डोडी, अफीम और उनके योगोंका उपयोग करें।

छर्दिनिग्रहण—वमन वद करनेके लिये वही औपधियाँ यथेष्ट होती हैं, जिनका मुसक्किनात मेदाके प्रकरणमें नामोल्लेख किया गया है।

वातनुलोमन—वायु और आध्मानके लिये सौंफ, करफ्स, अनीसून, पुदीना, सोआके बीज, अजवायन आदि।

हलके विरेचन और मृदुविरेचन—कब्ज निवारण, दोपविलोमकरण (इमाला) और अन्त्रशुद्धिके हेतु, जैसे—खमीरा बनफ्शा अमलतास, मीठे वादामका तेल, रेंडीका तेल, रेवदचीनी, सनाय, शीरखिश्त, तुरजबीन, हब्बइयारज, शर्बत वर्द (गुलाव), गुलकद, माउल्उसूल जडोका पानी आदि।

कभी दोपपाचन औपधिका (मुञ्जिज) पिलाकर यथाविधि कतिपय विरेचन भी देते है। अस्तु, मुञ्जिजके कतिपय उपादान उदाहरणस्वरूप लिखे जाते है—गुलबनफ्शा, बीज निकाली हुई दाख, मकोय, कासनीकी जड, सौंफ, गावजवान, सूखा मकोय, हरे मकोयके रसका फाडा हुआ पानी, शर्बत वजूरी इत्यादि। पर यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो मुञ्जिजका उक्त योग वस्तुत उन औपधियोंके योगसे बना है, जिनका नामोल्लेख उपर्युक्त शीर्षकोंमें किया जा चुका है।

सामान्यकायिक वल्य (मुकव्वियात आम्मा)—प्रवल दौर्वल्यकी अवस्थामें, जैसे-दवाउल्मिष्क, खमीरा मरवारीद, खमीरा गावजवान आदि।

वरम अजलात शिकम (उदरपेशीशोथ)—इनकी औपधियाँ और चिकित्साके सिद्धात वरममेदा (आमाशय शोथ)के समान हैं।

कुरहृ मेदा (आमाशय व्रण)—आमाशय व्रणकी चिकित्सा बहुत करके वरम हार (तीव्र शोथ)की चिकित्सा विधिके अनुसार की जाती है।

इनकी चिकित्सा चार भागोंमें बाँटी जा सकती है —(१) वलके सधारणके लिए स्वास्थ्य रक्षाके नियमोंका पालन, (२) यथासभव आमाशयको हर प्रकारकी चेष्टा एव क्रियासे बचाये रखना, (३) व्रणरोपणमें सहायता करना और (४) रक्तप्रसादन।

आमाशयावसादक—जैसे-विहीदानाका लबाव, कुलफाके बीजका शीरा, काहूके बीजका शीरा, बारतगके बीज, चूनेका पानी, कपूर, अजवायन और पुदीनेका सत, पोस्तेकी डोडी, अफीम और अफीमके योग, हरी कासनीके रसका फाड़ा हुआ पानी, हरे सोआकी पत्तीका रस, हरे मकोयके रसका फाड़ा हुआ पानी, जौका पानी (आशेजौ) आदि।

सग्राही और रूक्षण औषधियाँ—कुदुर, खूनखरावा, गिल अरमनी, गुलनार, जहरमोहरा, वशलोचन, मरकशीशा, हब्बुल्आस, अजवारकी जड, गुलावका फूल, शर्वत वर्द (गुलाव), गुलकद, कुर्स गुलनार प्रभृति।

लेखन औषधियाँ (जालियात)—जब वमनमें पीव निकलने लगे, तब उसकी शुद्धिके हेतु मधुजल (माउल्अस्ल) पिलाया जाता है।

मृदुविरेचन (सर)—कब्ज न होने देवें। उसे सर औषधियोसे बराबर दूर करते रहें। इस हेतु इसबगोल, शर्वत वर्द (गुलाव) मुकर्रर, गुलकद, रेवदचीनी अधिक उपयुक्त हैं।

वेदनाप्रशमन—तीव्र पीडाके शमनार्थ पोस्ते और अफीमके योगोका आभ्यतरीय उपयोग या बाह्यत गरम सेक, प्रलेप और परिपेक (नतूल) आदि।

शोथ (सोजिश) एव तृषाकी शातिके लिये वर्फ, शीतल पेय, जैसे—अर्क केवडा, अर्क वेदमुश्क, अर्क गुलाब, अनारका रस, शर्वत अनार आदि।

क्षुधा (भूख)की कमी

निदानपरिवर्जन, पथ्य और स्वास्थ्यरक्षाके नियमोंके पालनके उपरात दीपन और पाचन औषधियोंका उपयोग करे, जिनकी सूची गत प्रकरणमें दी जा चुकी है।

जरब व खिल्फा (दस्तोका रोग-अतिसार)

इसकी चिकित्सा हेतुके अनुसार की जाती है। अस्तु, उन मूल व्याधियोंकी औषधियोका यहाँ विस्तारपूर्वक उल्लेख एव व्यर्थका विस्तारीकरण है। उदाहरणस्वरूप इसहाल नजलीमें नजलाकी चिकित्सा, पेचिशमें पेचिशकी चिकित्सा, यकृत्‌के विकारमें यकृत्‌का सुधार आदि।

अस्तु, यहाँ केवल कतिपय उन साधारण और बहुप्रयुक्त औषधियोंका नामोल्लेख किया जाता है, जिनका उपयोग अतिसारके रोगमें किया जाता है। उदाहरणस्वरूप सौंफ, अनीसून, छोटी और बडी इलायचीके दाने, पुदीना, देशी अजवायन, कपूर, पिस्ताका बाहरी छिलका (पोस्ते वेरूँपिस्ता), हब्बुल्आस, अजवारकी जड, वेलगिरी, जरिश्क, तुख्म खुर्फास्याह, बारतगके बीज, जहरमोहरा, वशलोचन, तृणकात (कहरुबाए शमई), नमक मृगाग, जुवारिश मस्तगी, जुवारिश शाही, जुवारिश अनारैन, जुवारिश आमला, माजून सगदानामुर्ग, माजून मुक्ल, शर्वत हब्बुल्आस, शर्वत गोरह, शर्वत अनार तुर्श, शर्वत खश्खाश, हब्बरसवत, खमीरा मरवारीद, प्रवाल भस्म, मण्डूर भस्म, फौलाद भस्म, मालतीवसत, तूतिया-ए-कवीर, अनारका रस, सेवका रस, खट्टे अगूरका रस, कागजी नीबूका रस इत्यादि।

प्रबल स्तम्भी औषधियोंसे अतिसारको सहसा वद कर देना उचित नही है। इस रोगमें अन्न और आमाशयके भीतर प्राय अपाचित एव दूपित आहार तथा अन्यान्य दुष्टिभूत दोप एव पदार्थ, जैसे–पित्त, कफ आदि, विद्यमान होते हैं। अतएव प्रथमत उनको विरेचन द्वारा निकाल दिया जाय या प्रकृतिको उसे विरेक् द्वारा आद्योपात शुद्ध कर देनेका अवसर दिया जाय। परतु उक्त अवस्थामें ऐसी औषधियाँ, जो पाचनमें भी सहायता करती हैं, दी जा सकती हैं, जैसे–सौंफ, इलायची, अनीसून, पुदीना आदि। इस प्रकारके द्रव्य शीतसग्राही (काबिज) नही हैं, अपितु पाचन और अन्त्रामाशयावसादक हैं।

अम्राज़ जिगर (यकृत्‌के रोग)

ज़ोफ जिगर (यकृद्दौर्बल्य)—यकृत्‌की क्रियाएँ अत्यत जटिल होनेसे बहुधा औषधद्रव्योका कार्यकारण भाव अर्थात् वह कैसे यकृत्‌के ऊपर कार्य करते हैं और क्या करते हैं, यह बतलाना भी कठिन है। कतिपय औषध-

द्रव्योका उपयोग कतिपय दशाओमें किया जाता है और अनुभव साक्षी है, कि वह उन दशाओमें गुणकारक सिद्ध होते हैं। यकृद्‌बलवर्धन ओषधियो (मुकव्वियात जिगर)के प्रसगमें इस प्रकारकी लाभकारी ओषधियाँ भी अतर्भूत हैं।

सशमन और दोषपाचन ओषधियाँ—गुलगाफिस, कासनीके बीज, कुसूसके बीज, सौंफ, कासनीकी जड, गावजवान, मकोय, बिरजासफ, इजखिरमूल, अफसतीन, शुकाई, बादावर्द (आभ्यतर रूपसे)।

विरेचन और मृदुविरेचन ओषधियोकी सूची वरम जिगरमें देखें।

उष्णताहर—(प्रकृतिसुधार हेतु) जरिश्क, आलूबोखारा, इमली, शर्बत लीमूँ, शर्बत हुम्माज, शर्बत अनार आदि।

मूत्रजनन ओषधियाँ (मुदिर्रात)—इसकी सूची वरमजिगरमें देखें।

यकृद्‌बलवर्धन ओषधियाँ—हरी कासनीकी पत्तीके रसका फाड़ा हुआ पानी, हरी मकोयकी पत्तीके रसका फाड़ा हुआ पानी, कासनीके बीज, जरिश्क, चूकाके बीज (तुख्म हुम्माज), गुलाबपुष्प,—रेवदचीनी, बालछड, दालचीनी, कुष्ठ, कुसूसके बीज, लुक (लाक्षा) मग्सूल, केसर, मस्तगी, बिरजासफ, असारून (तगर), गाफिसका फूल, एलुआ, नौशादर, सुहागा, लौंग, कालीमिर्च, अफसतीन, पुदीना, जरावद, सगदानमुर्ग, बादरजबूया, दवाउल्कुर्कुम, दवाउल्लुक, दवाउल्मिस्क, माजून दबीदुल्वर्द।

दीपन ओषधियाँ—सौंफ, बालछड, दालचीनी, कुष्ठ, कालीमिर्च, पुदीना, जुवारिश जालीनूस, जुवारिश मस्तगी, शर्बत फौलाद, कुश्ता फौलाद, कुश्ता खुब्सुल्हदीद (मण्डूरभस्म), अर्क फौलाद, हब्बकबिदनौशादरी।

वरमे जिगर (यकृच्छोथ)

इसमें निम्नलिखित प्रकारकी ओषधियाँ प्रयोग की जाती हैं —

विरेचन और मृदुविरेचन—रेवदचीनी, सनायमक्की, अमलतासका मग्ज, तुरजबीन (यवासशर्करा), शीरखिश्त, इमली, सफेद निसोथ, शर्बत दीनार, एलुआ, बीज निकाला हुआ मुनक्का, इसबगोल, गुलाबका फूल, गुलकद, शर्बत वर्द (गुलाब)मुकर्रर, गुलबनफ्शा, खमीरा, बनफ्शा।

मूत्रजनन ओषधियाँ (मुदिर्रात)—कासनीके बीज, खीरा-ककडीके बीज, खरबूजाके बीज, गोखरू, हसराज, रेवदचीनी, गुलगाफिस, कड (तुख्म कुर्तुम), कुसूस, हरी कासनीके रसका फाडा हुआ पानी, शर्बत बुजूरी, ऊँटनीका दूध आदि।

उष्णताहर—जरिश्क, आलूबोखारा, इमली, अनारदाना, कासनीके बीज, कुर्संजरिश्क, शर्बत अनार (आभ्यतररूपसे)।

सिरका, लालचदन, कासनीके बीज, गुलाबका फूल, जौका आटा, गिलअरमनी रसवत, हरी मकोयका रस (बाह्यरूपसे)।

दोषसशमन और पाचन ओषधियोकी सूची ऊपर "जोफेजिगर"में देखें।

यकृद्‌बलवर्धन—ओषधियोंकी सूची ऊपर दी गई है।

पाचन और दीपन ओषधियो की सूची "जोफेजिगर"में देखे।

प्रमाथि या स्रोतोद्‌घाटक और दोषविलयन—(आभ्यतर रूपसे) हरी कासनीकी पत्तीका रसका फाडा हुआ पानी, हरी मकोयकी पत्तीके रसका फाडा हुआ पानी, हरी मूलीकी पत्तीका रस, ऊँटनीका दूध, देशी अजवायन, इजखिरमूल, शुकाई, बादआवर्द, कबरमूल, सौंफकी जड, बिरजासफ, अफसतीन, दालचीनी, अनीसून, सौंफ, जूफाए खुश्क, मजीठ, गुलगाफिस, कुसूसके बीज, करफसके बीज, करफ्सकी जडकी छाल, बालछड, असारून आदि।

(बाह्य-प्रलेपरूपेण) अमलतासका मग्ज, गुलबाबूना, तुख्म खतमी, अफसतीन, हाशा, मुर मक्की (बोल), बिरजासफ, नागरमोथा, बालछड, इकलीलुल्मलिक (नाखूना), मकोय, जदवार, गूगल, रूमीमस्तगी, एलुआ पीला, चिरायता, केसर, हब्बुलसाँ, ऊदबलसाँ, कुष्ठ, तज, सोसनकी जड, मेथी बीज, अलसी बीज, शिलारस, सफेद मोम,

जैतूनका तेल, तारपीनका तेल, रोगन नारेदीन, मुर्गीके अडेकी जर्दीका तेल (रोगन वैजामुर्ग), वैलकी पिंडलीकी मज्जा (मग्जसाकगाव), वत्तखकी चर्वी, गुलरोगन ।

सामान्यकायिक वल्य ओषधियाँ—वलवर्धनकी दृष्टिसे, जैसे—दवाउल्मिस्क, नोशदारू लूलुई इत्यादि ।

सूउल्क़िन्या या फक़रुद्दम (पाडु—रक्ताल्पता)

इससे रक्तकी कमी विवक्षित है। इसमें शरीरकी त्वचा और श्लेष्मलकलाका रग फीका (विवर्ण) हो जाता है।

हेतु—के विचारसे इस रोगके यह दो भेद होते हैं —

(१) अव्वली या मर्जी जिसके हेतु व्यक्त नही होते ।

(२) सानवी या अरजी जिसके हेतु प्रत्यक्ष होते हैं ।

फकर अव्वली या मरज़ीके यह दो श्रेष्ठतम उदाहरण हैं, जिनको मरज़ अख़्जर और फकर खबीस कहते हैं। इनमें प्रथम वालिकाओको वयस्क कालमें होता है और द्वितीय अर्थात् फकर खबीसमें उभयलिंग, पु० व स्त्री० अतर्भूत हैं। इन उभय रोगोके हेतु यद्यपि प्रगट नही होते, तथापि इस अनुमानको कि इसका मूलभूत हेतु किसी गुप्त कोथ या विपसे आवद्ध होता है, अधिक वल प्राप्त है ।

फक़र सानोईके हेतु अनेकानेक हैं, जैसे—(१) हर प्रकारका रक्तस्राव, (२) रुधिरके रक्ताश एव रक्त-कणोका नाश, जैसाकि ऋतुज्वरसे होता है, (३) निश्चितकालतक पूय या किसी द्रवका वहना, (४) पचनविकार, उपवास और भोजनकी कमी, (५) आहारके अभिशोपणकी कमी, जिसके अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे—यकृत् एव आमाशयगत कर्कटार्वुद (कैंसर) आदि, आन्त्रिकज्वर, फुप्फुसशोथ, आमवातज्वर, उर क्षत, यकृत्-प्लीहा-वृक्कके रोग, अस्थि और अस्थिमज्जाके रोग, हृदयके रोग, (६) फिरग और सीसविपमयता और (७) अत्रकृमि आदि।

चिकित्साविधि—उपर्युक्त विवरणसे प्रकट है कि इस रोगके हेतु अगणित है। अस्तु, सामान्य चिकित्सा-विधिके अनुसार यद्यपि यथासभव मूलहेतु के निवारणका यत्न करना चाहिए, तथापि ओपधियोंका निर्धारण सभव नही कहा जा सकता। स्वास्थ्यरक्षा (स्वस्थवृत्त)के नियमोका पालन, पाचनसुधार और श्रेष्ठतम आहारके अतिरिक्त शोणितस्थापनार्थ रक्तानुकारि (मुकव्वियात ख़ून)मेंसे फौलाद, सखिया और कुचिला इनके योगोका पुष्कल उपयोग किया जाता है।

फौलादके योगोमें कुश्ता फौलाद, कुश्ता खुब्सुलहदीद (मण्डूर भस्म), फौलाद सय्याल, अर्क लोहासव आदि अतर्भूत हैं। हृदयवलवर्धनार्थ दवाउल्मिस्क और मुश्क (कस्तूरी)के योग तथा खमीरा गावजवान अवरी आदि दिये जाते हैं।

यकृत्के रोग वहुतायतसे हुआ करते हैं तथा उनके परिणामस्वरूप (द्वितीयकके रूपमें) रक्ताल्पता हो जाती है। अतएव ऐसे पाण्डुकी चिकित्सामें वरम जिगर (यकृच्छोथ)की चिकित्सा की जाती है। इसी भेदकी दशामें कसौंदीकी पत्ती, कालीमिर्च, कुसूसके वीज आदि प्रयुक्त हैं।

पाचन सुधारके विचारसे सौंफ, अजवायन (जैसे अठपहरी अजवायन) और जुवारिश जालीनूसका पुष्कल उपयोग होता है।

सावधानी—फौलादके योगोके सेवनसे कब्ज उत्पन्न हो जाया करता है। अतएव उसके साथ कोई सारक ओपधि (जैसे एलुआ, रेंडीका तेल, गधक, सनाय) योजित कर देनी चाहिए या दूसरे समय सरण (तलय्यन) कर देना चाहिए।

इस्तिस्काऽ (शोफ—ड्रॉप्सी)

इस रोगके अनेक भेद है और यद्यपि इनकी चिकित्साविधि एव ओपधद्रव्यकी कार्यविधिमें न्यूनाधिक अतर या भेद है। फिर भी इस्तिस्काऽल्हमी (सर्वांग शोफ) और ज़िक़्की (जलोदर)की चिकित्साविधि तथा इनकी ओपधियां लगभग एक समान हैं। अतएव यहाँ इन उभय व्याधियोका विवरण एक साथ किया जाता है।

(१) इस्तिस्काऽलह़्मी व जिक्की
(सर्वांगशोफ और जलोदर)

इन उभय प्रकारके शोफो (इस्तिस्काऽ)में अधोलिखित प्रकारकी ओषधियाँ प्रयोग की जाती हैं —

मूत्रजनन (मुदिर्रात बौल)—ऊँटनीका दूध, सौंफ, अनीसून, करफ्सके बीज, कलौंजी, कड (तुख्मकुर्तुम), विरजासफ, गूगल, कुसूस बीज, असारून, देसी अजवायन, इजखिर, वालछड, वच, अजुदान (हिंगुबीज), पुदीना, हूलियून, काकनज, खीरा-ककडीके बीज, कासनी मूल, सौंफकी जड, हंसराज, मुलेठी, रेवदचीनी, शर्वत बुजूरी, कुर्समाजरियून, शर्वत दीनार।

स्वेदन (मुअर्रिकात)—वूरए अरमनी, गुलगाफिस, कलमी शोरा, माजरियून, चोवचीनी, करफ्सबीज, अजीर, सूरजान, उशवा मगरवी, कपूर, दालचीनी, चिरायता, गरमपानी, उष्णस्नान और वाह्य उष्माका उपयोग।

रूक्षण या उपशोषण—(वाह्यरूपसे) जावरस, जवाखार, मेथीका आटा, कबूतरकी बीट (पजाल), गोवर, गधक, हलदी, गरम रेत, राख, खारे पानीकी नदी या खनिज स्रोतोंके पानीसे स्नान करना आदि।

विरेचन और मृदुविरेचन—अजीर, बीज निकाली हुई दाख (मुनक्का), गुलकद, अमलतास का मग्ज, सनायमक्की, सकोतरी एलुआ, निसोथ, सकमूनिया, रेवदचीनी, शर्वतदीनार, खमीरा वनपशा तथा वहुश अन्य विरेचन एव मृदुविरेचन ओषधियाँ "वरमजिगर"के प्रकरणमें उल्लिखित हैं।

प्रमाथि या स्रोतोद्घाटक—जूफाए खुश्क, करफ्सके बीज, रेवदचीनी और प्राय मूत्रल एव स्वेदन औषधियाँ।

पाचन—सौंफ, जीरा, तज, मस्तगी, पीपल, दालचीनी, कालीमिर्च, सोठ, कलौंजी, जुवारिश कमूनी, जुवारिश जालीनूस।

दोषविलयन (मुहल्लिलात)—वही ओषधियाँ जो मूत्रजनन, स्वेदन, विरेचन आदि शीर्षकोंमें उल्लिखित हैं।

दोषपाचन और सशमन ओषधियाँ—गूगल, कसौंदीकी पत्ती, लाख, जरावद, गारीकून आदि। उँटनीके दूधके सिवाय वही औषधियाँ जो 'मूत्रजनन' शीर्षकमें लिखी गयी हैं।

शोणितस्थापन—पाडु (सूउल्किन्या)की दशामें, चाहे यह शोफका मूलहेतु हो या उसके साथ सम्मिलित हो, जैसे—फौलाद (लोह) और सखियाके योग आदि।

उष्णताहर ओषधियाँ—उस समय प्रयुक्त की जाती हैं जबकि शोफके साथ ज्वर एव ऊष्मावृद्धि (अज्दियादहरारत)के लक्षण पाये जाते हैं, जैसे—अरिष्क, उन्नाब, खतमीबीज, हरी कासनीके रसको फाडकर प्राप्त किया हुआ पानी, हरी मकोयके रसको फाडकर प्राप्त किया हुआ पानी, सिकजीन बुजूरी, शर्वत बुजूरी, वारिद और समस्त शीतल मूत्रजनन औषधियाँ।

सग्राही—जब इस रोगमें विरेक् होने लग जाते है, जैसे—मोती, प्रवालमूल, कहरुवा, जहरमोहरा, वसलोचन, अनारदाना, हब्बुल्आस, आमला, भुने कुलफाके बीज, वारतग, वारतगका रस आदि।

सावधानी—यदि शोफ (इस्तिस्काऽ) हृदयके कारणसे हुआ हो, जिसका प्रधान लक्षण यह है कि शोफ एव भुरभुराहट प्रथम पैरो पर प्रकट होती है तो उस दशामें मूलव्याधि (हृद्रोग)की चिकित्सा की जाती है तथा उसकी औषधियाँ दी जाती हैं। इसी प्रकार जब शोफके साथ हृदयदौर्वल्य होता है तब हृद्य ओषधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

जब शोफ यकृत्के विकारके कारण होता है तब उसका लक्षण यह है कि शोफ एव स्फीति प्रथम उदरके ऊपर प्रकट होती है। उक्त अवस्थामें यकृत्के रोगकी चिकित्सा की जाती है तथा यकृत्वलवर्धन औषधियाँ प्रभृति दी जाती हैं।

जब यह व्याधि वृक्ककी विकृतिके कारण होता है तब शोफ एव स्फीति प्रथम पपोटो और चेहरे पर प्रकट होती है। उक्त दशामें वृक्करोगकी चिकित्सा की जाती है।

इस्तिस्काऽ तबली (वातोदर)

इसमें लगभग वही ओषधियाँ और चिकित्सा विधियाँ काममें ली जाती हैं जिनका व्यवहार इस्तिस्काऽ लहमी व जिक्कीमें होता है। उनके साथ उदरीय वायुको विलीन एव अनुलोम करनेके लिए वातानुलोमन ओषधियाँ भी, जिनकी सूची गत प्रकरणोंमें दी गयी है, दी जाती हैं।

यरकान—यरकान जर्द

(कामला)

कामलाके हेतु दो समूहोंमें विभक्त हैं। एक प्रकारमें कोई अवरोध नही होता, अपितु कामला अन्य रोगोंके अधीन होती है। दूसरे प्रकारमें पित्तप्रणालियाँ अवरुद्ध होती हैं। पहले प्रकारकी चिकित्सा मूलव्याधिका प्रतिकार करना है। नीचे अवरोधजन्य कामला (यरकान सुद्दी)की ओषधियाँ लिखी जाती हैं—

प्रमाथि या स्रोतोविशोधन और मूत्रजनन ओषधियाँ—हरी मूलीकी पत्तीके रसको फाडकर प्राप्त किया हुआ पानी, हरी कासनीकी पत्तीके रसको फाडकर लिया हुआ पानी, कासनीबीज, खीरा-ककडीके बीज, रेवदचीनी, मूलीके बीज, करफ्सके बीज, सौंफ, अनीसून, नौसादर, लाहौरी नमक, जवाखार, कासनीमूल, गोखरू, गुल गाफिस, तरबूजका रस, शर्बत दीनार, शर्बत बुजूरी, सिकजबीन बुजूरी।

दोषपाचन और सशमन ओषधियाँ—हरी मकोयकी पत्तीके रसको फाडकर लिया हुआ पानी, कसौंदीकी पत्ती, कासनीमूल, गुलबनफ्शा, गावजवान, खतमीबीज, बीज निकाली हुई दाख, आलूबोखारा, इमली आदि।

उष्णताहर—(प्रकृतिकी उष्णता एव ज्वरकी उपस्थितिमें) अनारका रस, तरबूजका पानी, खीरेका रस, इमली, आलूबोखारा, जरिश्क, उन्नाव, गुलनीलूफर, गुलाबका फूल, चदन, वसलोचन, कुलफाके बीज, मीठे कद्दूके बीजका मग्ज, कपूर।

विरेचन और मृदुविरेचन—अमलतासका मग्ज, इमली, आलूबोखारा, तुरजबीन, खमीरा बनफ्शा, रेवद-चीनी, सनाय, सकमूनिया आदि।

वमनद्रव्य—अवरोधज कामलामें कभी-कभी वमन कराया जाता है जिससे कफ निकल जाता है और बद नली खुल जाती है।

यरकान स्याह (कृष्णकामला)—कभी-कभी पीतकामला जीर्ण होकर कृष्णकामला (यरकान स्याह)में परिणत हो जाती है। कभी-कभी अन्य रोगों एव व्याघातोंसे भी शरीरका वर्ण स्याहीमायल हो जाता है।

दूसरे रूपमें मूल व्याधियोंकी चिकित्सा की जाती है और पहले रूपमें पीतकामलाके सिद्धातानुसार, किंतु यरकानस्याहमें दोषपाचन (मुंज्जिज) और विरेचन पर अधिक भार दिया जाता है। उक्त दशामें कोई-कोई रक्त-प्रसादन ओषधियाँ (शाहतराका फाण्ट या नकूअ) भी प्रयोग करते हैं।

अम्‌राज तिहाल (प्लीहाके रोग)

वरम तिहाल (प्लीहाशोथ)

दोषपाचन और सशमन—गुलबनफ्शा, कासनीकी जड, बीज निकाला हुआ मुनक्का, सौंफ, अफसतीन, गावजवान, पीला अजीर, मजीठ, इजखिरकी जड, शुकाई, बिरजासिफ, बादआवर्द, मकोय, सिरका और सिकजबीन प्रभृति।

विरेचन और मृदुविरेचन—गधक, सफेद निसोथ, सनायमक्की, पीली हडका बकला, अमलतासका गूदा, यवासशर्करा आदि।

दोषविलयन (मुहल्लिलात)—सुदावके पत्र, बूरए अरमनी, सूखा पुदीना, उशक, गूगल, बाबूना, एलुआ, केसर, गषक, अमलतासका गूदा, इकलीलुल्मलिक (नाखूना), रेवदचीनी, अजीर, सिरका (बाह्यरूपेण), राई, मकोय, पीला अजीर, नौशादर, सफेद सज्जी, झाऊके पत्र, कलमीशोरा, सुहागा, लाहौरी नमक, मूली क्षार (नमक), कालानमक, अरण्डखरबूजा, जवाखार, कालानमक, कलौंजी, कबरकी जड (आभ्यतररूपेण)।

पाचन—(पाचन सुधारके लिए)—कालीमिर्च, स्याहजीरा, जीरा, पुदीना, सोंठ, सभी प्रकारके नमक आदि।

बल्य ओषधियाँ—हीराकसीस और अन्य फौलाद (लोह), सखिया और कुचिलाके योग और कटुपौष्टिक औषधियाँ, जैसे—शाहतरा (पित्तपापडा), चिरायता, अफसतीन, गुरुच आदि।

ततुसंग्राहक (काबिजात अलियाफ)—झाऊके पत्र, छोटी और बडी माई, कसीस आदि।

अम्‌राज अम्‌आऽ (अन्त्रके रोग)

कब्ज (मलावरोध)

इस रोगमें अवस्थानुसार मृदुविरेचन और विरेचन औषधद्रव्य प्रयोग किये जाते हैं। इनमें साधारण कब्जकी दशामें मृदुविरेचन और तीव्र की दशामें विरेचन औषध प्रयुक्त होते हैं।

मृदुविरेचन ओषधियाँ—समूचा इसबगोल, बीज निकाली हुई दाख (मवीज मुनक्का), गुलाबका फूल, पीला अजीर, बादामका तेल, रेंडीका तेल, गुलकद, सफूफ सरबनफ्शा, शर्बत दीनार, कुर्समुलय्यन, अतरीफल मुलय्यन, अतरीफल जमानी, अतरीफल कश्नीजी, खमीरा बनफ्शा, हब्बतकार, रेंडीका तेल, साबुन, नमक, बादामका तेल, समस्त लुआब आदि (बाह्यरूपमे)।

विरेचन ओषधियाँ—एलुआ, अमलतास, सनायमक्की, सकमूनिया, निसोथ, गारीकून, उसारारेवद, हब्ब उसारा।

सूचना—कुर्स मुलय्यन, अतरीफल मुलय्यन और अतरीफल जमानीकी गणना मृदुविरेचनो (मुलय्यनात)में करनेकी अपेक्षया विरेचनो (मुसहिलात)में करना श्रेष्ठतर है।

इसहाल (अतिसार) व सग्रहणी

इस रोगमें अत्रसग्राहक, दीपन, स्नेहन (मुमल्लिसात) और दोषशुद्धिके लिए विरेचन औषध प्रयोग किए जाते हैं। औषधियोकी सूचीके लिए आमाशयके प्रकरणमें "जरब व खिल्फा" देखे।

जहीर (प्रवाहिका), मगस (उद्वेष्टन, मरोड़), सहज्ज (क्षोभ)

इन तीनोंमें पिच्छिल—फिसलानेवाली (मुजिलकात) एव मृदुविरेचन, स्नेहन (मुमल्लिसात) और अत्रसग्राहक (काबिजात अम्‌आऽ) औषध प्रयोग किए जाते है। अस्तु, प्रारभमें मृदुविरेचन तदुपरात पिच्छिल (मुज्‌लिकात), स्नेहन (मुमल्लिसात) और हलके सग्राही औषध प्रयोग किए जाते हैं।

विरेचन और मृदुविरेचन—रेंडीका तेल, बादामका तेल, अमलतासका मग्ज, गुलकद, गुलबनफ्शा, मरोडफली।

अवरोधज प्रवाहिकामें अवरोधोद्‌घाटनार्थ रेंडीका तेल यद्यपि श्रेष्ठतम वस्तु है, पर कभी-कभी अन्यान्य विरेचन औषधियाँ भी, जैसे—सनाय और निसोथ आदि प्रयोग की जाती है।

पिच्छिल एव स्नेहन (मुज्‌लिकात और मुमिल्लसात)—गोदबबूल, कतीरा, खतमीकी जडका लबाब,

बिहीदानेका लवाब, इसबगोल, तुख्म रैहाँ, तुख्म कनौचा, तुख्म बारतंग, गावजबान, लिटोरा, छिलका उतारा हुआ जौ आदि।

संग्राही और स्तंभी ओषधियाँ—हब्बुल्आस, तुख्म बारतंग, अजबारमूल, खरनूब, आमला, माजू, पीली हड़का छिलका, बेलगिरी, गिल्ल अरमनी, सफूफुत्तीन, वंशलोचन, निशास्ता (गेहूँका सत) और भुना हुआ (बबूलका) गोंद।

ज़हीर मुज़्मिन (जीर्णप्रवाहिका)—जीर्णप्रवाहिकामें अन्नशुद्धिके उपरांत साधारणतया वही ओषधियाँ प्रयोगकी जाती हैं जो जरब व निल्फामें लिखी गई हैं। प्रशमन (तस्कीन) और अन्नकी गतिको कम करनेकी ओर अधिक ध्यान दिया जाता है तथा उक्त प्रयोजनोंके लिए निम्नलिखित ओषधियाँ प्रयुक्त ओषधियोंके अंतर्भूत हैं।

पोस्तेकी डोडी, पीली हड़का छिलका, भुनी हुई काली हड़, राल, कत्था, बेलगिरी, कौंचका बीज, अफीम, भुनी हुई भांगकी पत्ती, अजवायन खुरासानीके बीज, कपूर, माजू, आमला आदि।

कूलिज (शूल)

विरेचन और मृदुविरेचन—रेंडीका तेल, बादामका तेल, तारपीनका तेल (रोगन बिहरोजा), नमक, साबुन, (वस्तिकेरूपमें)।

रेंडीका तेल, गुलकंद, निसोथ, सनायमक्की, सकमूनिया, इन्द्रायनका गूदा, गारीकून, कुसुम बीज, कालादाना (हब्बुन्नील), अमलतासका गूदा, कड़ (तुख्मकुर्तुम), रेवदचीनी, शर्बत दीनार, जुवारिश सफरजली मुसहिल, जुवारिश कमूनी मुसहिल, जुवारिश कुर्तुम, कुर्समुलय्यन, अतरीफल मुलय्यन।

पाचन और वातानुलोमन ओषधियाँ—पुदीना, सुदाब, कालीमिर्च, अजवायन, कुल्या, पीपल, सोंठ, सौंफ, अनीसून, स्याहजीरा, हींग, नौशादर, सुहागा, लवणके भेद, पपीता, जुवारिश जालीनूस, जुवारिश कमूनी, हब्बहिल्तीत, हब्बपपीता, नमक सुलेमानी आदि।

अवसादक और स्वापजनन ओषधियाँ—अफीम, खुरासानी अजवायन, बरशाशा, हब्बुश्शिफा, तिरियाक फारूक आदि।

कूलिज सफरावी (पित्तजशूल)में शोधनोपरांत दोषसंशमनार्थ आलूबोखारा, इमली, शर्बत नीलूफर, जुवारिश तमर हिंदी और सिकंजबीन आदिका उपयोग कृतप्रयोग है।

दीदान शिकम (उदरकृमि)

इस रोगमें कृमिघ्न और कृमिनिःसारक ओषधियाँ प्रयोग की जाती हैं। हर प्रकारके कृमिके लिए खास-खास कृमिनाशक और कृमिनिःसारक ओषधियाँ हैं जिनका विशदोल्लेख द्रव्योंकी गुणकर्मानुसारिणी सूचीमें किया जा चुका है। (दे० 'कातिल दीदान अद्‌विया' की सूची)।

नफ़ख़ शिकम (उदराध्मान)

इसमें वातानुलोमन और पाचन औषध प्रयोग कराते हैं।

वातानुलोमन और पाचन ओषधियाँ—सौंफ, अनीसून, देशी अजवायन, पुदीना, कालानमक, जीरा, कुसूसबीज, जावित्री, हींग, सुहागा, कालीमिर्च, जुवारिश कमूनी, जुवारिश जालीनूस, सजरीनिया, जुवारिश बसबासा, नमक सुलेमानी, नमक शैंबुर्रईस, सफूफुल्हम्लाह, माजून नान्खाह, माजून जजबील, हब्बतकार, हब्ब कबिद नोशादरी, हब्ब पपीता, अर्क बादियान (सौंफ)।

बवासीर (अर्श)

मृदुविरेचन—इसवगोल, बीज निकाला हुआ मुनक्का, अजीर, अतरीफल मुकल, अतरीफल मुलय्यन, हड, हडका मुरब्बा, रेंडीका तेल, जैतूनका तेल, बादामका तेल, यवासशर्करा, गुलकंद प्रभृति।

अन्त्रावसादक (मुसक्किनात अम्आऽ) अर्थात् अन्त्रकी प्रतिसरणीगतिको कम करनेवाली ओषधियाँ—बारतंग बीज, कनौचा बीज, रीहाँ बीज, रेशा खतमी, बिहीदाना, गावजवान, उन्नाव, माउर्राइब (दधिमस्तु—दहीका पानी), कपूर, नीमके बीजका मग्ज, बकाइनके बीजका मग्ज, गदनाबीज, सुहागा, बबूलका गोंद, निशास्ता आदि।

स्तंभी और वेदनास्थापन (बाह्योपयोग)—कपूर, अफीम, खुरासानी अजवायनके बीज, भाँगकी पत्ती, कुचिला, नीम और बकाइनके बीजोंके मग्ज, हलदी, मसीकृत प्रवालमूल, मसीकृत कुचिला, मसीकृत कागज, मसीकृत नारियलके छिलकेके तंतु (जटा), माजू, मुरदासंग, सफेदा, गदनाबीज, रसवत, गूगल, सुहागा, अंडेकी सफेदी, गायका घी, गुलरोगन प्रभृति।

रक्तस्तंभन—रसवत, अजबारकी जड, हब्बुल्आस, गूगल, गदना, आमकी गुठली, पीली हड, आमला, कपूर, गेरू, संगजराहत, गिलअरमनी, सदरूस (चंद्रस), अकाकिया, मुरमक्की (बोल), जहरमोहरा, वंशलोचन, पिस्ताका बाहरी छिलका (पोस्ते बेरूँ पिस्ता), कहरुवा शमई, खूनाखराबा, शर्बत अजबार, तूतीयाए कबीर, मालती-वसंत आदि।

वातानुलोमन और पाचन—सौंफ, अनीसून, बसफाइज, कुसूस बीज, नमकमृगाग, जुवारिश जालीनूस, जुवारिश अनारैन आदि।

बल्य—फौलाद (लोहा)के योग और दवाउल्मिश्क प्रभृति।

बवासीर रीही (वातार्श) अर्थात् बादी बवासीर

बवासीर रीही (वातार्श)में रक्तस्तम्भन और संग्राही ओषधियोंके अतिरिक्त सिद्धान्तत वही औषधियाँ और उपाय कृतप्रयोग हैं जो रक्तार्शमें बरते जाते है।

खुरूज मक्अद (गुदभ्रंश—कांच निकलना)

बाहिनीसंग्राहक—माजू, फिटकिरी, संगजराहत, गुलनार, अकाकिया, अनारका छिलका, जुफ्त बुलूत, मुरदासंग (बाह्यरूपेण)।

सार्वदैहिक बलवर्धन—जिनकी सूची बार-बार दी जा चुकी है।

बवासीर मक्अद (भगन्दर)

इसका और बवासीरका चिकित्सासूत्र और औषधियाँ लगभग एक ही हैं। अंतर केवल यह कि इसमें व्रणकी शुद्धताका विशेषरूपसे ध्यान रखा जाता है।

(अम्राज गुर्दा व मसाना—बस्तिवृक्करोग)

जोफगुर्दा व मसाना (बस्तिवृक्कदौर्बल्य)

बस्तिवृक्कबलवर्धन औषधियाँ—निम्नलिखित ओषधियोंका उपयोग हकीमगण बस्तिवृक्कके बलवर्धनार्थ कराते हैं। भेडका दूध, शिलाजीत, बहमन सुर्ख व सफेद, तोदरी जर्द व तोदरी सुर्ख, दालचीनी, जौजहिन्दी, पिस्तेका मग्ज, बादामका मग्ज, लुबूबकबीर, लुबूबसगीर, लुबूबबारिद, माजून मोमिमाई, माजून फलासफा, माजून कर्लां, माजून जलाली, जुवारिशजरऊनी अंबरी, कुश्ता तिला (सुवर्ण भस्म) आदि।

दर्दे गुर्दा (वृक्कशूल)

वृक्कके मूलव्याधिको ध्यानमें रखते हुए निम्नलिखित वेदनाप्रशमन औषधियोका वाह्याभ्यन्तर रूपसे उपयोग किया जाता है।

वेदनास्थापन—गुलरोगन, रेंडीका तेल, तिलका तेल, कपूर, अंडेकी जर्दी, सिरका, हीग, सोसनकी जड, टेसूके फूल, हसराज, कुलथी, खरबूजेका छिलका, सोआके बीज, मदारका फूल, सूरजान, अफीम, खुरासानी अजवायन (वाह्यरूपसे), अफीम और वरशाशा (आभ्यन्तररूपसे)।

वस्तिशूल (दर्दमसाना)—इसकी और वृक्कशूलकी चिकित्साविधि लगभग एक ही है। अस्तु, इसमे भी उन्ही औषधियोका उपयोग होता है जिनका वृक्कशूल निवारणके लिए होता है।

वरमे गुर्दा (वृक्कशोथ)

विरेचन और मृदुविरेचन—रेंडीका तेल, वादामका तेल, अमलतास और अन्य विरेचनीय एव मृदुविरेचनीय औषधियाँ।

दोषविलयन (मुहल्लिलात)—गुलरोगन, मोम, रोगन वनफशा आदि (वाह्य रूपसे), अलसी वीज, खतमी वीज, मेथी वीज, हरी कासनीके रसको फाडकर लिया हुआ पानी आदि (आभ्यतर रूपसे)।

स्वेदन (मुअरिकात)—पसीना लाना भी वृक्कशोथ चिकित्साका एक अनिवार्य अग है। इसके लिए 'मुअरिकात' की सूची अवलोकन करें।

मूत्रजनन (मुदिर्रात)—खरबूजाका वीज, खीरा-ककडीके वीज, गोखरू, काकनज, कद्दूके वीज, करफ्सके वीज, कुलफाके वीज, शर्वतवुजूरी, वुनादवुल्वुजूर, सिकजवीन वुजूरी आदि (विस्तारके लिए मुदिर्रवौलकी सूची देखें)।

उष्णतावहर—विहीदाना, इसवगोल, उन्नाव, कुलफाके वीज, कासनीके वीज, हरी कासनीके रसको फाडकर लिया हुआ पानी, हरी मकोयके रसको फाडकर लिया हुआ पानी, शर्वत वनफ्शा, शर्वत नीलूफर आदि।

वरमे गुर्दा मुज्मिन (चिरज वृक्कशोथ)—पुराने वृक्कशोथमें मृदुविरेचन और दोषविलयन औषध आदिके साथ सार्वदैहिक बल्यऔषधियाँ, जैसे—माजून खुब्सुल्हदीद, कुश्ताफौलाद, दवाउल्मिस्क आदि प्रयोग की जाती है।

वस्तिवृक्काश्मरि और सिकता

अश्मरिनाशन और मूत्रजनन—कुलथी वीज, दूकू, काकनज, आलूलालू, हजरुल्यहूद (वेरपत्थर), सगसरमाही, हरी मूलीकी पत्ती, मूलीके वीज, खरबूजाके वीज, खीरा-ककडीके वीज, करफ्स वीज, सौंफ, गोखरू, सातरफारसी, गुलदाउदी, जवाखार, मूलीक्षार (नमक तुर्व), कलमीशोरा, नौशादर, जुवारिश जरऊनी, माजून अकरव, वेरपत्थर भस्म (कुश्ता हजरुल्यहूद), बुनादकुल्वुजूर, शर्वत वुजूरी, सिकजवीन वुजूरी, अर्क अनन्नास आदि (आभ्यन्तरीयरूपसे)।

पाचन—अजवायन, लवणके भेद, नौसादर, जवाखार, जाविश्री, कवावचीनी आदि।

वेदनास्थापन—दौरा (आवेग)के समय वेदनाप्रशमनार्थ साधारणतया वही औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं, वृक्कशूलके प्रसगमें जिनका नामोल्लेख किया गया है।

जयाबीतूस (मधुमेह)

इसमें यद्यपि अधोलिखित औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं, किन्तु इनकी कार्यकारणमीमासा एव गुणकर्मके सवधमें विश्वासपूर्वक कुछ कहना कठिन है।

कुलफाके वीज, छिले हुए कद्दूके वीज, धनिया, खटमिट्ठा अनार, लोकाट, सफेद चदन, खीराककडीके वीज,

मीठे कद्दूके बीजका मग्ज, कपूर, कद्दूका पानी, दहीका पानी, अर्कगुलाब, अर्क कासनी, छाछ, बिनौला, गुरुच, मुंडीका फूल, आमला, गोखरू, पखानवेद, मुसली, सतावर, मस्तगी, कुंदुर, जुफ्त बलूत, पोसतेका दाना, अकाकिया, वसलोचन, मोती, गुलनार, गिलअरमनी, शिलाजीत, गिलमख्तूम, बुस्सद अह्मर, जमुर्रद, शादनज अदसी मग्सूल, कुक्कुटाण्डत्वग्भस्म, फौलाद भस्म और फौलादके अन्य योग, माजून कुंदुर, जुवारिश मस्तगी, खमीरा मरवारीद, कुर्सतवाशीर, कुर्सकाफूर आदि।

जयाबीतुसकी विशिष्ट ओषधियाँ—अफीम, जामुनकी गुठलीका मग्ज, कुचिला, सम्यिा।

सलिसुल्बौल (हस्तिमेह भेद)—इसमें लगभग वही औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं, जिनका जयाबीतुस और जोफगुर्दा व मसानाके प्रकरणमें नामोल्लेख किया गया है।

बौलुद्दम (शोणितमेह)

मूल हेतुको ध्यानमें रखकर रक्तस्तम्भन ओषधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

रक्तस्तम्भन औषधियाँ—खूनाखराबा, सगजराहत, गेरू, भुनी फिटकिरी, कुलफाके बीज, अजवारकी जड़, सफेद पोस्तेका दाना, गिलअरमनी, गुलनार फारसी, दूबघास, अकाकिया, सफेद कत्था, कुंदुर, कतीरा, चाकसू, शर्बत अजवार, काफूर सय्याल आदि (अधिकाधिक ओपधियोंके लिए 'हाबिसातदम' की सूची देखें)।

एह्तिबास बौल व उस्रबौल (मूत्रसंग और मूत्रकृच्छ्र)

मूत्रजनन—कलमी शोरा, मूलीका लवण (मूलीखार), जवाखार, खरबूजाके बीज, खीरा ककडीके बीज, गोखरू, शर्बत बुजूरी आदि (अधिक ओषधियोके लिए 'मुदिर्रात बौल'की सूची देखें)।

गुलबाबूना, गुलटेसू, गुलमासफर (कुसुमके फूल), हसराज, मेथीके बीज, सोआके बीज, कलमीशोरा, कपूर, नीलके बीज (प्रलेप और परिषेक—नतूलके रूपमे)।

मृदुविरेचन—रेंडी का तेल, बादामका तेल, अमलतासका गूदा तथा अन्य मृदुविरेचनीय औषधियाँ।

हुर्क़ते बौल (सदाहमूत्र)

मूलहेतुको ध्यानमें रखकर शीतल, मूत्रजनन और उष्णताहर ओपधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

शीतल मूत्रजनन ओषधियाँ—गोखरू, खीरा-ककडीके बीज, खरबूजाके बीज, कद्दूके बीजका मग्ज, तरबूजके बीजका मग्ज, कासनीके बीज, कुलफाके बीज, काकनज, फालसाकी छाल, बुनादकुल्बुजूर, शर्बत बुजूरी, बारिद आदि (अधिक ओपधियोके लिए 'मुदिर्रात बौल'की सूची देखें)।

उष्णताहर—बिहीदाना, उन्नाब, इसबगोल, केलाके तनेका पानी, कपूर, बकरीका दूध, कुलफाके बीज, शर्बत नीलूफर आदि।

शियाफ अब्यज, कपूर, बकरीका दूध आदि (पिचकारीके रूपमे)।

लागरी गुर्दा व बौल जुलाली (वृक्कक्षय और ओजोमेह)

मूल हेतुको ध्यानमें रखते हुए, अधोलिखित औपधियाँ प्रयोग की जाती हैं —

वृंहण ओषधियाँ (मुसम्मिनात)—नारियलका मग्ज, पिस्ताका मग्ज, चिलगोजाका मग्ज, अखरोटका मग्ज, बादामका मग्ज, पोस्तेका दाना, कद्दूके बीजका मग्ज, तरबूजके बीजका मग्ज, बिनौलेका मग्ज आदि।

सशमन और बल्य ओपधियाँ—माजून जालीनूस, माजून फलासफा, जुवारिश जरऊनी, लुबूबकबीर, दवाउल् तुरजबीन, दवाउल्मिस्क, खमीरा गावजबान अबरी, अर्क अबर, सुवर्ण भस्म और फौलाद (लोहा)के योग आदि।

सूजाक (औपसर्गिक पूयमेह)

मूत्रजनन—खीरा ककड़ीके बीज, खरबूजाके बीज, तरबूजके बीज, गोखरू, फालसा दाकरीकी छाल, कबाब चीनी, ममीरा, रेवदचीनी, कलमीशोरा, बिहरोजा, पर्वत बुजूरी, अर्क अनन्नास आदि।

अवसादक या शमन—फालसाकी छाल, चंदनका तेल, धनिया, कुल्फाके बीज, काहूके बीज, बिहीदाना का लुआब, कतीरा, तालमखाना, गम, मेंहदीकी पत्ती, गुरुचका सत, शिलाजीत, वंशलोचन, वंग भस्म, प्रवाल भस्म।

कोथप्रतिबंधक—नीलाथोथा, फिटकिरी, बिरोजा, राल, अफीम, कपूर, नीलकी पत्ती आदि (पिचकारी द्वारा)।

बलसांका तेल, चंदनका तेल, लोबानका सत, हल्दी, राल, फिटकिरी, पारा और संखियाके योग आदि (आभ्यंतररूपसे)।

व्रणरोपण और लेखन—फिटकिरी, माजू, सफेद कत्था, सुरमा, मुरदासंग, संगजराहत, रसवत, राल, बिरोजेका तेल (तारपीन), अफीम, गिलअरमनी, सफेदा काशगरी, रसकपूर, कपूर, भुनी हुई आदि (पिचकारीमें)।

गेरू, संगजराहत, [illegible], फिटकिरी, सफेद कत्था, प्रवाल-भस्म, वंशलोचन, शिलाजीत, कतीरा, बबूलका गोंद, गुलनार, हल्दी आदि (आभ्यंतररूपसे)। प्रारंभिक दशामें जबकि रोग हलका हो, पिचकारी करनेसे बचा जाता है। इसी प्रकार प्रारंभिक सूजाकमें प्रबलमूत्रजनन ओषधियाँ नहीं दी जातीं, अपितु क्षोभ एवं दाहकी शांतिके लिए हल्की अवसादक एवं शमन ओषधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

शमन और रक्तप्रसादन—शाहतरा, चिरायता, सरफोका, मुंडी, उन्नाव, हड़, लालचंदन, गुरुच, उशबा मगरबी, सफेद कत्था, आबनूसका बुरादा, शीशमका बुरादा, नीलकंठी, नीमकी पत्ती, ब्रह्मदंडी, चोबचीनी, कलमीशोरा, गंधक, [illegible], अर्क मुसफ्फी, शर्बत मुसफ्फी, अर्क शाहतरा, अर्क उशबा, चंदनका तेल, बलसांका तेल, रसकपूर, दारचिकना और संखियाके योग आदि।

अमराज तनासुली मर्दाना (पुरुषजननेन्द्रियके रोग)

जोफबाह (कामावसाय, मैथुनासामर्थ्य)

वाजीकर और कामोत्तेजक ओषधियाँ—संखिया तथा इसके योग, हिंगुल, कुचिला, फौलाद (लोहा) और इसके योग, भिलावाँ, गिरियाँ (मग्जियात), शकाकुल, सालममिश्री, दोनों लाल और सफेद बहमन, तोदरी, कस्तूरी, अंबर, मोमियाई, लौंग, जायफल, जावित्री, प्याज आदि, और योगोंमेंसे हब्बअहमर, हब्बजालीनूस, हब्बअंबर मोमियाई, [illegible], माजूनमोमियाई, माजून रेगमाही, माजून प्याज, माजून मुर्रहुल् अरवाह, माजून सालब, माजून आर्द खुर्मा, माजून [illegible], माजून फलासफा, माजून जालीनूस, लुबूबकबीर, माजून हजारकी, सुवर्ण भस्म, रजत (चाँदी) भस्म आदि (अधिक ओषधियोंके लिए 'मुकव्वियात बाह'की सूची अवलोकन करें)।

कामोत्तेजनके लिए स्थानिक ओषधियाँ भी प्रयोग की जाती हैं। उसके लिए पृथक् शीर्षक स्थिर किया गया है।

शुक्रल, शुक्रजनन—इस प्रयोजनके लिए बृंहणीय और बल्य ओषधाहार द्रव्योंके अतिरिक्त निम्नलिखित द्रव्य काममें लिये जाते हैं —

शकाकुल, सालब, सोहागा, मुसली, सिंघाड़ा, सेमल, तालमखाना, प्याजके बीज, गाजरके बीज, शलगमके बीज, गिरियाँ (मग्जियात) आदि, (अधिक द्रव्योंके लिए 'मुवल्लिदात मनी'की सूची देखें)।

शुक्रसाद्रकर—इसबगोल, चुनिया गोंद, बीजबंद, लोध, असगंध, तालमखाना, सतावर, सफेद और काली मुसली, शकाकुल, इमलीके बीज (चियाँ), काहूके बीज, सिरसके बीज, छोटी चँदड (धवल बरुआ), वंगभस्म, यशद भस्म आदि (अधिक द्रव्योंके लिए 'मुगल्लिजात मनी'की सूची देखें)। इसके अतिरिक्त प्राय स्वापजनन और अवसादक ओषधियाँ शुक्रसाद्रकर हैं।

योगोंमेंसे माजून मुगल्लिज, माजून आर्दखुर्मा, माजून मोचरस, माजून इस्पद, माजून सुपारीपाक, माजून नकछिकनी, सफूफ सालब, सफूफ गोंदकतीरा, सफूफ कुश्ता कलई, सफूफ सबूस अस्पगोल, सफूफ मुगल्लिज, कुश्ताकलई (वंगभस्म), कुश्तासेहधाता (त्रिधातुभस्म), कुश्तानुकरा (चाँदी भस्म) आदि।

कामावसायकर, पुंस्त्वोपघाति—कामावसाय (नपुंसक) चिकित्सामें प्राय वातनाडीके उत्तेजन अर्थात् वातप्रकोप और ग्रंथि विशेष (गुद्दद ओइया)के क्षोभ एव शोथ अर्थात् पित्तप्रकोपको कम करनेके लिए कामावसायकर (मुसक्किनात) द्रव्योंकी अपेक्षा होती है। अस्तु, उक्त प्रयोजनके लिए उष्णताहर, स्वापजनन और वातनाडी अवसादक अर्थात् पित्त-वातनाशक ओषधियाँ उपयोग की जाती हैं, जैसे—अफीम, पोस्तेकी डोंडी, पोस्ताके दाने, काहूके बीज, धनिया, इसबगोल, अजवायन खुरासानीके बीज, भाँगकी पत्ती, कपूर, छोटी चदड (धवल बरुआ) आदि। इनके अतिरिक्त लगभग समस्त शुक्रसाद्रकर ओषधियाँ कामावसायकर (मुसक्किनात वाह) हैं (अधिक द्रव्योंके लिए 'मुगल्लिजात मनी' और 'मुसक्किनात व मुखद्दिरात'की सूची अवलोकन करें)।

स्थानिक अवसादक ओषधियोंका नामोल्लेख "स्थानीय चिकित्सा"के प्रसगमें किया गया है।

उत्तमाङ्ग आदिकी बलवर्धनी ओषधियाँ—कामवसाय (जोफबाह)की चिकित्सामें हृदय, मस्तिष्क, यकृत् और आमाशयको शक्ति देने तथा इनके सुधारकी भी अनिवार्य आवश्यकता होती है। इनके लिए मुकव्वियाते कल्ब, मुकव्वियाते दिमाग, मुकव्वियाते जिगर और मुकव्वियाते मेदाकी सूचियाँ—नामावलियाँ अवलोकन करें।

मृदुविरेचन—शुक्रसाद्रकर और अवसादकर (मुसक्किन) ओषधियाँ साधारणतया अन्त्रसंग्राहक (काबिज अमूआऽ) होती हैं। अस्तु, इनके उपयोगके साथ अन्त्रमार्दवकर (सर) ओषधियाँ भी प्रयोग की जातीहैं, जिनकी सूची बारबार दी जा चुकी है।

स्थानीय चिकित्सा—कामावसाय (जोफबाह)की चिकित्सामें प्राय स्थानीय उपचारकी अपेक्षा भी होती है। अस्तु, बढी हुई स्पर्श शक्ति और वातिक प्रकोप (असबी हैजान)को कम करनेके लिए स्वापजनन और अवसादक ओषधियाँ तिला और परिषेक (नतूल) आदिके रूपमें प्रयोग की जाती हैं तथा कामोत्तेजनके लिए उत्तेजक ओषधियाँ लगायी जाती हैं।।

कामावसाद(-य)कर—अफीम, कपूर, लुफाहकी जड, धतूराके बीज, पोस्तेकी डोंडी, फिटकिरी तथा अन्य स्वापजनन ओषधियाँ (तिला और परिषेक आदिके रूपमे)।

कामोत्तेजक—यह वस्तुत शोणितोत्क्लेशक और रक्ताकर्षक होते हैं, जिनके उपयोगसे स्थानीय रूपसे अधिक रुधिर खिंचकर आता है और तत्स्थानीय पोषणमें तीव्रताके साथ उन्नति होती है तथा उस स्थानकी त्वचा लाल हो जाती है। कभी-कभी इन ओषधियोंसे न्यूनाधिक दाने भी निकल आते हैं और कभी तीक्ष्ण ओषधिसे विस्फोट एव छाले भी प्रकट हो जाते हैं। उक्त प्रसगमें साधारणतया निम्न ओषधियाँ प्रयोग की जाती हैं —

संखिया, कुचिला, जमालगोटा, भिलावाँ, शिंगरफ, हडताल, जुदबेदस्तर, कुष्ठ, बीरबहूटी, तेलनीमक्खी (जरारीह), मदारका दूध, थूहडका दूध, कस्तूरी, दालचीनी, घुँघची, लौंग, जायफल. जावित्री, वछनाग, हींग, मालकँगनी, पीपल, केंचुआ, अकरकरा, जिफ्त, आँबाहलदी, हाथीदाँतका बुरादा, कनेरकी जडकी छाल इत्यादि।

दलक-मालिश—कामोत्तेजनके लिए जो मालिश की जाती है, साधारणतया उसके साथ कोई हलकी शोणितोत्क्लेशक एव रक्ताकर्षण करनेवाली ओषधि होती है। यह मालिश बाह्य जननावयव (वृषण, शिश्न, सीवन) पर उदरके निम्न और वक्षण तक की जाती है।

वेदनास्थापन—टेसूके फूल, पोस्तेकी डोडी, तारपीनका तेल (रोगन बिहरोजा) आदि (बाह्यरूपसे)।

उष्णताहर—बिहीदाना, उन्नाव, लिसोढा, गावजवान, शर्बत निलूफर, शर्बत बुजूरी आदि।

विरेचन और मृदुविरेचन—एलुआ, रेवदचीनी, कुसुमके बीज (कुर्तुम), रेंडीका तेल, अमलतासका गूदा, नमक आदि।

कस्रतुतम्स व इस्तिहाजा
(असृग्दर एवं रक्तप्रदर)

रक्तस्तंभन—अजवारकी जड, गेरू, संगजराहत, पोस्तेका दाना, खूनाखराबा, कहरुवाए शमई (तृणकांत), गंधकका चूर्ण, गिल अरमनी, मसीकृत सावरशृंग (शाखगौजन सोख्ता), जलाई हुई सीप, मोती, प्रवालमूल, कपूर, शर्बत अजबार, खमीरा खश्खाश, कुर्स कहरुवा आदि (अधिक द्रव्योंके लिए 'हाबिसात दम'की सूची देखें)।

झाऊका फल, हरा माजू, गुलनार, बरोंह, कुदुर, सुर्मा अस्फहानी, प्रवालमूल, अकाकिया, फिटकिरी, जाज, संगजराहत, खूनाखराबा, गिल अरमनी, मसीकृत कागज, बबूलका गोंद, बारतंग आदि (अवगाह एवं फलवर्ति आदिके रूपमें)।

संशमन और शोणितस्थापन—यदि यह रोग रक्तकी अल्पता एवं रक्तके पतला होनेके कारण हो तो रक्त-संशमन एवं शोणितस्थापन औषधियाँ, जैसे—मण्डूरभस्म, फौलाद (लोहा) भस्म, अर्क फौलाद, अर्क आसव, हीराकसीस, फौलाद अर्थात् लोहेके अन्य योग और सार्वदैहिक बल्य एवं रक्तवर्धक औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

संतापहर—बिहीदाना, उन्नाव, काहूके छिले हुए बीज, तरबूजके बीजका मग्ज, तुख्म खुर्फास्याह, बारतंगके बीज, गुलनीलूफर, फालसा, शर्बत संदल, शर्बत उन्नाव, शर्बत बनफ्शा, शर्बत सेब, शर्बत अनारशीरीं, शर्बत फालसा, शर्बत तमरहिंदी, शर्बत नीलूफर आदि।

सैलानुर्रहिम (श्वेतप्रदर, श्लेष्मला योनि)

संग्राही और स्तंभी औषधियाँ—मोती, सीप, वंसलोचन, कुंदुर, गुलपिस्ता, गुलसुपारी, तज, रूमी-मस्तगी, संगजराहत, गेरू, गिल अरमनी, छोटी माईं, पठानी लोध, सुहागा, सोंठ, समुदरसोख, तालमखाना, मुसली, मजीठ, माजू, गोखरू, धवईका फूल, मोचरस, मौलसिरीका फूल, गुलनार, मसीकृत (सोख्ता) प्रवालमूल, प्रवालशाखा, कहरुवाए शमई (तृणकांत), चुनिया गोंद, सुपारी, गिलमख्तूम, नागकेशर, सिरसका बीज, विलायती मेंहदीका बीज (हब्बुल्आस), अनारका छिलका आदि।

योगोंमेंसे—कुक्कुटाण्डत्वग्भस्म, सीपकी भस्म, त्रिवंग भस्म (कुश्ता मुसल्लस), मण्डूर भस्म, फौलाद भस्म, प्रवालशाखा भस्म, माजून मोचरस, माजून सुपारीपाक, हलवाए सुपारीपाक, सफूफ, सदफ सैलानुर्रहिम, हब्बमरवारीद आदि (इस प्रसंगमें लगभग उन समस्त औषधियोंका उपयोग किया जाता है जिनका उल्लेख 'मुगल्लिजात मनी'की सूचीमें किया गया है)।

सफेद कत्था, अकाकिया, जलाई हुई फिटकिरी, हरामाजू, बालछड, अनारका छिलका, हीराकसीस, तज, पुराना वच, छोटी माईं आदि (फलवर्तिके रूपमें)।

कोथप्रतिबंधक—फिटकिरी, बिरोजा, नीमकी पत्ती, नमक आदि (पिचकारी द्वारा)।

श्वयथुविलयन (मुहल्लिलात)—श्वेतप्रदरके साथ साधारणतः जरायुशोथ भी होता है और उसके लिए श्वयथुविलयन औषधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं (गर्भाशयशोथमें प्रयुक्त होनेवाली औषधियाँ देखें)।

शरीरबलवर्धन—बल्य एवं पुष्टिकर आहारके अतिरिक्त फौलाद (लौह) भस्म, मण्डूर भस्म, मोती भस्म, सुवर्ण भस्म, अर्क फौलाद, अर्क आसव, शर्बत फौलाद, दवाउल्मिस्क आदि।

गर्भाशयबलवर्धन—जाविश्री, सातर, बालछड, कस्तूरी, मोमियाई, गुलाबपुष्प, माजू, तज, माईं, गुलाबके

फूलका जीरा (जरेवर्द), फुकाह इजखिर, रोगन नारदीन आदि। (फलवर्तिके रूपमे), नमक, गरम पानी (पिचकारी द्वारा)।

मृदुविरेचन—गुलकद, अमलतासका गूदा, रेंडीका तेल, बादामका तेल आदि।

वरमे रहिम (गर्भाशय शोथ)

श्वयथुविलयन और दोषविलोमकर (रादेआत)—जौका आटा, रसवत, लालचदन, हरी मकोयका रस, हरी कासनीका रस, अडेकी सफेदी, खतमी बीज, खतमी फूल, मकोय, कासनीके बीज, खिरजासफ, अमलतासका गूदा, बाबूनेका फूल, जदवार, सोआकी पत्ती, इकलीलुल्मलिक (नाखूना), अलसी, मेथीबीज, गरम पानी, मरहम दाखिलयून, मरहम जाफरान (लेप और अवगाहस्वरूप)।

मकोय, खतमी बीज, कासनीकी जड, हरी मकोयके रसको फाडकर लिया हुआ पानी, हरी कासनीके रसको फाडकर लिया हुआ पानी, अर्कमको, अर्क कासनी, अलसी बीज, खिरजासफ, अर्कमाउल्लहम मकोकासनीवाला (आभ्यन्तर रूपसे पेयकी भाँति)।

वेदनास्थापन—टेसूके फूल, बाबूनाके फूल, पोस्तेकी डोंडी, गरम पानी (तापस्वेद एव परिषेककी भाँति)।

उष्णताहर—देखें 'सैलानुर्रहिम'।

गर्भाशय बलवर्धन—देखें 'सैलानुर्रहिम'।

मृदुविरेचन—देखें 'सैलानुर्रहिम'।

वक्तव्य—यदि रजोरोध गर्भाशयशोथका हेतुभूत हो तो आर्तवजनन औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं (कृच्छ्रार्तव और रजोरोध देखें)। यदि शोथ चिरकालानुबधी हो तो दोषपाचन एव विरेचन औषधियाँ देकर शोधन करना उपादेय होता है और शोधनोपरात गर्भाशय-शोधक औषधियाँ, जैसे—नमक, समुदर झाग, वायविडग, सूखा बिरोजा प्रभृति फलवर्तिके रूपमे प्रयुक्त की जाती हैं। इसके पश्चात् वाहिनीसग्राहक एव गर्भाशयबलवर्धन औषधियाँ फलवर्ति तथा शरीर बलवर्धन औषधके रूपमें पेयकी भाँति प्रयुक्त की जाती हैं। चिरकारीशोथके साथ साधारणत योनिस्राव (सैलान) विकार भी हुआ करता है तथा उस दशामें शोथकी स्थानीय चिकित्साके साथ श्वेतप्रदरका उपचार भी किया जाता है (देखो 'सैलानुर्रहिम')।

इख्तिनाकुर्रहिम (अपतंत्रक)

हृदयोत्तेजक औषधियाँ—(जो आवेगके समय आघ्राण अर्थात् शुमूम और प्रधमन नस्य आदिकी भाँति प्रयोग की जाती हैं) जैसे—प्याज, लहसुन, कपूर, कस्तूरी, जुदबेदस्तर, नकछिकनी, जवाशीर, हीग, नौशादर और सिरका अथवा नौशादर और चूनाका योग, गधक और गूगलकी धूनी आदि।

विकासी (अङ्गमर्दप्रशमन)—कस्तूरी, जुदबेदस्तर, कपूर, हीग, लौंग, इजखिर, बालछड, छोटी चदड (सर्पगधा), कायफल, जदवार, ऊदसलीब आदि (मुखद्वारा भक्ष्य रूपमे)।

किसी-किसी दशामें कस्तूरी, कपूर, हीग और बालछड प्रभृति विकासी द्रव्य फलवर्तिके रूपमें भी प्रयुक्त किये जाते हैं।

इस रोगकी चिकित्सामें वातानुलोमन और पाचन औषधियाँ भी प्रयुक्त होती हैं।

इसके साथ रजोरोध हो तो आर्तवजनन और गर्भाशयशोथ हो तो शोथविलयन औषधियाँ, जिनकी नामावली अनेक बार दी जा चुकी है, प्रयुक्त की जाती हैं।

अपतन्त्रकके विषयमें कुछ लोगोका कथन है कि वर्तमानकालतक न तो इसका कोई प्रधान हेतु ज्ञात हो सका है और न कोई विशिष्ट चिकित्सा। एक औषधिसे यदि दस रोगियोको लाभ होता है तो उसी औषधिसे दसको हानि पहुँचती है।

बुसूर रहिम व खारिश रहिम

अवसादक—कपूर, अर्क गुलाब, सीसा, हरी कासनीका रस, इसबगोलका लुआब, सफेदा, खतमीके फूलका लबाब, अडेकी सफेदी, मरहम सफेदा, मरहम काफूर आदि (स्थानीयरूपसे फलवर्ति आदिके रूपमे)।

कोथप्रतिबधक—कमीला, रोगन कमीला, जलाई हुई फिटकिरी, नीलाथोथा, फिटकिरी, माजू, मुरदासग गुलनार, बालछड, अनारका छिलका, हीराकसीस, ताजकलमी, गचकोहना, छोटी माई आदि (फलवर्ति आदिके रूपसे)।

सशमन और रक्तप्रसादन—शाहतरा, सरफोका, चिरायता, मुडी, उन्नाव, उशवा, हड आदि जिनकी नामावली बारबार दी जा चुकी है।

अकर (वन्ध्यात्व, बांझपन)

मूल व्याधिकी चिकित्साके साथ अधोलिखित ओषधियाँ गर्भधारणामें सहायक (गर्भधारक) समझी जाती हैं—

हाथीदांतका बुरादा, बरोंह, धबईका फूल, गुलनीलूफर, पियाबांसाकी जड, असगधकी जड, अफीम, भाँगकी पत्ती, कस्तूरी, केसर, अबर, बायविडग, शिलारस, बालछड, दालचीनी, मस्तगी, गुलाबके फूल, ऊदसलीब, दरुनज अकरबी, नागरमोथा, माजून नुशाराआज, माजून हमलअबरी उलवीखाँ आदि (पेयकी भाँति)

कस्तूरी, केसर, जायफल, भुनी हुई फिटकरी, अनारकी छाल, करजुआ, उसारए बारतग आदि (फलवर्ति—हुमूलके रूपमे)।

यह औषधियाँ बांझपनमें किस प्रकार अपना कार्य करती हैं, इसकी मीमासा आसान नही है।

कसरत इस्कात (प्रायिक गर्भपात)

यदि गर्भपातका भय उत्पन्न हो जाय तो रोगिणीको गर्भपातका अभ्यास हो तो उससे बचनेके लिए सामान्य बलवर्धनके साथ स्तभी एव वाहिनीसग्राहक ओषधियाँ पेय और वर्ति (हुमूल)की भाँति प्रयोग की जाती हैं। पर यदि गर्भपातकी सभावना प्रबल हो जाय तो रोगिणीको अधिक कष्टसे बचनेके हेतु गर्भपातमें सहायक अर्थात् आर्तव-जनन औषधियाँ दी जाती हैं तथा गर्भपातके उपरात उसी चिकित्सासिद्धात पर अधिक सावधानीके साथ व्यवहार किया जाता है, जो प्रसवोपरात व्यवहारमें लाये जाते हैं।

स्तंभी और वाहिनीसंग्राहक औषधियाँ

गेरु, सगजराहत, खूनाखराबा, अजबारकी जड, बबूलका गोद, कतीरा, कहरुवा, मसीकृत प्रवालमूल, कपूर, गिलअरमनी, गिलमख्तूम, शर्बत ख्शखास, शर्बत अञ्जबार, खमीरा मरवारीद, माजून हमल अबरी उलवीखाँ, माजून नुशारा आज आदि (पेयरूपेण), माजू, अफीम, गेरू, फिटकरी, गिलमुलतानी, छालिया, अनारकी छाल, गुलनार, अकाकिया, झाऊका फल आदि (प्रलेप, वर्ति अर्थात् हुमूल और पिचकारीके रूपमे)।

गर्भपात सहायक—समस्त आर्तवजनन द्रव्य गर्भपातमें सहायता करते हैं। यदि प्रायिक गर्भपातका हेतु दुर्बलता हो तो शरीरको बल देनेवाले द्रव्य प्रयोग किये जाते हैं। यदि सूजाक, फिरग या गर्भाशयका कोई अन्य रोग इसका कारणभूत हो तो उसकी चिकित्सा की जाती है।

किल्लतुल्लबन (अल्पक्षीरता)

उत्तम आहार देने तथा मूलहेतुका निवारण करनेके साथ निम्नलिखित औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं—

स्तन्यजनन—तोदरी, स्याहजीरा, सतावर, शकाकुल, असगध, सफेद जीरा, सौंफ, तरबूजके बीजका मग्ज, खरबूजाके बीजका मग्ज, कद्दूके बीजका मग्ज, बिनौलेकी गिरी, बादामकी गिरी, चिलगोजाकी गिरी आदि (प्राय शुक्रजनन ओषधियाँ स्तन्यजनन समझी जाती हैं)।

रेंडीका तेल, जैतूनका तेल, रेंडीकी पत्ती (स्थानीय मालिश एव टकोरके रूपमे)।

यदि क्षीराल्पताका हेतु रोगिणीकी प्रकृतिकी रूक्षता या शोक एव चिंताकी अधिकता हो तो स्निग्ध, हृद्य एव सौमनस्यजनन ओषधियाँ उपयोग की जाती है।

कसरत लबन (अतिदुग्धस्राव)

भोजन कर देनेके साथ स्वापजनन, वाहिनीसग्राहक और क्षीराल्पताजनक ओषधद्रव्य सेवन किये जाते है।

स्वापजनन और वाहिनीसग्राहक—काहूके बीज, सुमाक, अनारदाना, बाकलाका आटा, छिला हुआ मसूर, सिरका, जीरा, लाल, मुरदासग, कपूर, लुफाहकी जड प्रभृति (बाह्यत)।

स्तन्यनाशन (मुकल्लिलात लबन)—अधोलिखित औषधद्रव्य स्तन्यनाशन समझे जाते हैं—सौंफ, अनीसून, गोखरू, हब्बकाकनज, मसूर, काहूके बीज, सुदाब, सँभालूके बीज आदि (दुग्धस्राव कम करनेके लिए प्राय आर्तवजनन ओषधियोका भी उपयोग करते हैं)। स्तन्यजनन और स्तन्यनाशन ओषधियोके विषयमें आश्चर्यजनक परस्पर-विरोधी वचन एव विवरण प्राप्त होते है। बहुतसी ओषधियोका दोनो स्थानोमें नामोल्लेख किया जाता है, जो अवश्यमेव विचारणीय समस्या बन गई है। उदाहरणत खीरा ककडीके बीज, खरबूजेके बीज और जीरा, तथा इसी प्रकार मसूरका अतर्भाव स्तन्यनाशनमें किया जाता है। किंतु प्राय स्त्रियाँ स्तन्यजननार्थ इसकी दाल पकाकर खाती है, और यूनानी वैद्यकीय ग्रथोमें भी मसूरकी दालकी खीरको स्तन्यवर्धक लिखा गया है।

औजाअ मफासिल व निक्रिस

(आमवात और वातरक्त)

दोषपाचन और सशमन—मीठा सूरजान, चिरायता, शाहतरा (पित्तपापडा), उन्नाव, अफनीमून, चोबचीनी, उशवा, गुलबनफ्शा, मकोय, सौंफकी जड, सौफ, बसफाइज, सूरजानके योग, चोबचीनीके योग, उशबाके योग आदि।

मूत्रजनन ओषधियाँ—खीरा ककडीके बीज, खरबूजाके बीज, गोखरू, शर्बत बुजूरी, कलमीशोरा, नौशादर, जवाखार आदि।

विरेचन और मृदुविरेचन—गुलाबका फूल, तुरजबीन, सनाय, अमलतासका मग्ज, मीठा सूरजान, निसोथ, एलुआ, सकमूनिया, गारीकून आदि।

वेदनास्थापन—रेंडका पत्ता, मदारका पत्ता, धतूरका पत्ता, मेंहदीका पत्ता, अफीम, कपूर, हरा धनिया, सफेद चदन, इसबगोल, सिरका, मेथीका आटा आदि (प्रलेप, परिषेक और तापस्वेदके रूपमें)।

स्नेहन (मुरखियात) और दोषविलयन—चिरकालानुबधी आमवातमें साधारणतया सधियोमें कठोरता उत्पन्न हो जाती है, और चिकित्सा द्वारा उस कठोरताको दूर करना अपेक्षित होता है। इस उद्देश्यसे निम्नलिखित ओषधियाँ प्रयोग की जाती हैं—बाबूनाका फूल, मेथीके बीज, अलसीके बीज, गूगल, जवाशीर, राल (रातीनज), अजीर, फरफियून, बकरेके गुर्देकी चर्बी, मोम, जैतूनका तेल आदि (बाह्यरूपसे)।

वातनाडीबलवर्धक—कुचिला, जदवार, भिलावाँ, जुदबेदस्तर, सखिया, माजून इजाराकी, हब्ब इजाराकी, हब्ब जदवार आदि (आभ्यन्तररूपसे)। रोगन कुचिला, रोगन आस, रोगन हफ्त बर्ग, रोगन सुर्ख, रोगन कर्लां, रोगन चहारबर्ग, रोगनकुन्जद (तिलतेल), रोगन सर्शफ (सरसोंका तेल) प्रभृति (बाह्यरूपसे)।

यदि फिरग या सूजाकके पश्चात् आमवात हुआ हो तो इसकी चिकित्साके साथ मूल व्याधिकी चिकित्सा आवश्यक है।

अम्राज जिल्द (त्वचाके रोग)

वह त्वचाके रोग जो रक्तविकारके रोग कहे जाते हैं, जैसे—दाद, खर्जू और व्रण एवं फुंसियों (वुसूर)की चिकित्सामें निम्नलिखित औषधियोंका सामान्यतया उपयोग किया जाता है —

कोथप्रतिबंधक—गंधक, नीलाथोथा, कपूर, मुरदासंग, कमीला, नौसादर, सुहागा, पारा, रसकपूर, दारचिकना, भिलावाँ, नीमकी छाल आदि (वाह्यत)।

रक्तप्रसादन और संशमन—चिरायता, शाहतरा (पित्तपापडा), मुंडी, सरफोका, उन्नाव, हड लालचंदन, उशवा, नीमकी छाल, निगदवावरी, गंधक, संखिया, शिंगरफ, पारा और हड़ताल आदि।

विरेचन और मृदुविरेचन—शरीरशुद्धि एवं रक्तशुद्धिके लिए।

स्वेदन—शरीर शुद्धि और रक्तशुद्धिके लिए।

आतशक (फिरंग)

दोषपाचन, विरेचन—इनकी नामावली गत प्रकरणमें उल्लिखित है।

रक्तसंशमन और रक्तप्रसादन—पारा, रसकपूर, दारचिकना, संखिया, हड़ताल, उशवा मगरवी, चोबचीनी, लालचंदन, शाहतरा (पित्तपापडा), चिरायता, नीमकी छाल, बकाइनकी छाल, कचनालकी छाल, सरफोंका मुंडी, उन्नाव, काली हड, शर्बत उन्नाव, शर्बत मुरक्कब मुसफ्फा, माजून उशवा, माजून चोबचीनी, अतरीफल शाहतरा, जौहर सम्मुल्फार, कुश्ताशिंगरफ, हब्बसम्मुल्फार, हब्बकत्थ, हब्ब लीमूँ आदि।

कोथप्रतिबंधक—पारा, संखिया, रसकपूर, दारचिकना, नीलाथोथा, कमीला, नीमकी पत्ती, मरहम सीमाब, मरहम आतशक, मरहम दारचिकना आदि (वाह्यरूपसे)।

ये औषधियाँ, जिस प्रकार कोथप्रतिबंधक हैं, उसी प्रकार संशमन भी हैं।

विशिष्ट औषधियाँ—पारा, हड़ताल, संखियाके अन्य योग।

जुज़ाम (महाकुष्ठ)

इसकी चिकित्साविधि वही है, जो रक्तविकारके अन्य रोगोंकी। अर्थात् इसकी चिकित्सामें शरीरको शुद्ध करनेवाली तथा रक्तप्रसादन ओषधियाँ प्रयोग की जाती हैं, जिनका विशद नामोल्लेख ऊपर आतशकके प्रकरणमें किया गया है।

यदि आतशकके परिणामस्वरूप कुष्ठवत् अवस्था उत्पन्न हुई हो, जिसको मुख्यतया कुष्ठही समझा जाता है तो इसकी चिकित्सामें फिरंगकी विशिष्ट औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

विशिष्ट ओषधि—चावलमूगरा तथा इसका तेल महाकुष्ठकी विशिष्ट औषधि स्वीकार किया गया है, अर्थात् इस रोगमें यदि कोई औषधि किसी सीमा तक गुणकारी सिद्ध हुई है तो वह चावलमूगरा है।

खनाज़ीर (कंठमाला)

रक्तप्रसादन और संशमन औषधियाँ—चोबचीनी, उशवा मगरबी, अफसतीन प्रभृति, जिनकी नामावली गत पृष्ठोंमें बार-बार दी गयी है।

शोथविलयन—जदवार, सोसनकी जड, मोथी, उशक, गूगल, राल (रातीनज), हीग, कुष्ट, फरफियून, अलसीके बीज, सफेदा, सेंदुर, जरावंद मुदहरज, सफेद मिर्च, शिंगरफ, ईरसा, अफसतीन, बिरजासफ, मुरमक्की (बोल), सूखी मकोय, मरजञ्जोश, मरहम दाखिलयून, मरहम उशक, रोगन साम अबर्स आदि (बाह्यरूपसे)।

दारण औषधियाँ (मुफाज्जिरात)—कभी कंठमालाकी पकी हुई ग्रंथियोंको विदीर्ण करनेके लिए चूना, हड़ताल, सुहागा आदिके समान औषधियाँ बाहरी तौरपर प्रयोग की जाती हैं।

विरेचन और मृदुविरेचन—शरीरबल और दोषसचयको दृष्टिके समक्ष रखकर, उनके शोधनके लिए कभी विरेचन ओषधियाँ भी प्रयोग की जाती है।

इसके अतिरिक्त यदि कठमालाके साथ ज्वर भी हो तो यक्ष्मा और उर क्षतके सिद्धातके अनुसार अवसादक, स्निग्ध (मुरत्तिव) और सतापनिवारक ओषधियाँ प्रयोग की जाती हैं, जिनकी नामावली राजयक्ष्मा और उर क्षत (सिल व दिक)में दी गयी है।

उत्तरकालीनोका मत है, कि कठमाला और उर क्षत इन दोनोके उत्पादक दोषका अतर्भाव एक ही जातिमें होता है, इसलिए चिकित्साविधिमें भी मूलदोषको ध्यानमें रखते हुए साम्य एव सादृश्य है।

हुम्मयात (ज्वर)

ज्वरोकी सामूहिक (समिश्र) चिकित्साविधि

ज्वरचिकित्सामें जो उपाय ग्रहण किये जाते हैं, प्रयोजन और उद्देश्यके विचारसे उनके यह दो भेद है —

(क) कभी इन उपायोका अभिप्राय एव उद्देश्य यह होता है, कि ज्वरके सतापको कम किया जाय और सतापकी तीव्रताको प्रत्यक्षतया शमन किया (शीत-तवदीर) जाय। अस्तु, इस प्रयोजनके लिए शीतल ओषधियाँ और सतापहर ओषधियाँ प्रयोग की जाती है। शीतलजल पिलाया जाता है, शीतल वायुका सेवन किया जाता है। तात्पर्य यह कि वाह्याभ्यतर रूपसे शीतजनन और पिच्छिल ओषधियो (मुर्वरिदात और मुरत्तिबात)के उपयोग द्वारा हर प्रकार सताप (ऊष्मा)को कम करने का यत्न किया जाता है।

(ख) कभी इन उपायोका अभिप्राय यह होता है, कि ज्वरोत्पादक मूलदोषका विच्छेदकर निकाल दिया जाय (इन्जाज व इस्तिफ्राग) जिसके लिए ये साधन काममें लिए जाते हैं, उदाहरणत स्वेदजनन, मूत्रजनन, अतिसरण और वमन आदि।

अधोलिखित समस्त प्रकरण (उन्वानात) इन्ही दोनो भेदोंके अतर्भूत है।

वमन—जैसे, सिक्जवीन, गरम पानी और नमक तथा आवश्यकतानुसार अन्य वमन द्रव्य (नामावलीके लिए 'मुक़इय्यात' देखें)।

स्वेदजनन—गरम पानी, अजीर, गाकसी, करजुआ आदि।

शीतजनन और सतापहर—विहीदानेका लुआब (पिच्छा), खीरा-ककडीके बीजोका शीरा, पानीमें भिगोई हुई इमलीका ऊपर निथरा हुआ पानी (जुलाल), नीबूका रस, आलूबोखाराका जुलाल, तरबूजका पानी, मीठे अनारका स्वरस, खट्टे अनारका रस, हरी कासनीकी पत्तीका रस, हरे कुलफाकी पत्तीका रस, अमलतासका रस, काहूके बीजका शीरा, कुलफाके बीजका शीरा, अर्क नीलूफर, अर्क गुलाब, अर्क वेदसादा, अर्कवेदमुश्क, अर्क केवडा, ठढा पानी आदि।

वलवान् शीतजनन (मुर्वरिदात कविय्या) जो सताप रोधक (मानेआत हरारत) कहलाती हैं, और सहसा सतापकी तीव्रताको खिफ्फतमें परिवर्तित कर देती है—उदाहरणत शीतस्नान, और वह प्रबल कार्यकारी विषौषधियाँ जो आधुनिक रसायनशास्त्रके आविष्कार हैं, तथा जिनका उल्लेख औषधिचिकित्साके प्रकरणमें हो चुका है।

मुर्वरिदात बौल—कासनीके बीज, कुलफाके बीज, खीरा-ककडीके बीज आदि।

ज्वरघ्न (दाफेआत हुम्मा)—कपूर, करजुआ, गाफिस, वसलोचन, गुरुच, अफसतीन, शाहतरा (पित्तपापडा), चिरायता, अभ्रक, वछनाग, अतीस, विरजासफ, शुकाई, बादावर्द, खाकसी, जदवार, बकाइन, ब्रह्मदडी, कुर्स तबाशीर, कुर्सगाफिस, कुर्सकाफूर, कुर्सगिलो, हब्बबुखार, शर्बत अफसतीन, अभ्रक, (कुनैन) और वर्कके योग आदि।

पर्यायनिवारक (मानेआत नौवत)—संखिया, हड़ताल, तुलसीकी पत्ती, करजुवा, अतीस, फिटकिरी, वर्क (कुनैन) और वकके योग आदि।

दोषपाचन—दोषपाचन औषधियों (अदविया मुन्जिजा)की नामावली देखें।

विरेचन और मृदुविरेचन—'अदविया मुसहिला' की सूची देखें।

शोणितस्थापन (मुकव्वियात खून)—फौलाद और संखियाके योग तथा अन्य वलवर्धन एव सशमन ओषधियाँ जिनमेसे अधिकाशके नाम (दाफेआत हुम्मा)के प्रकरणमें उल्लिखित हैं।

संखिया और फौलाद (लोहा)के समान विशिष्ट शोणितस्थापन ओषधियाँ साधारणतया चिरज ऋतुज्वरोमें दिया करते हैं।

तपेदिक (प्रलेपक ज्वर, यक्ष्मा)

स्नेहन (मुरत्तिबात) और सतापहर—गदहीका दूध, वकरीका दूध, छाछ, कपूर, नीलूफर, उन्नाव, विहीदाना, लिसोढा, अर्कशीर मुरक्कव, अर्कमाउल्जुब्न, शर्वत उन्नाव, शर्वत वनफ्शा, शर्वत नीलूफर, कुर्स तवाशीर, कुर्सकाफूर, कुर्ससर्तान (आभ्यतररूपसे खाद्य और पेयकी भाँति)।

शरीरको स्नेहनार्थ पुष्टिकर (वल्य) एव स्निग्ध आहार भी दिये जाते हैं, जिनमें वहुत करके वकरीका दूध, गदहीका दूध और छाछ आदि भी अतर्भूत हैं, तथा प्राय गिरियाँ भी इसी समूहमें अतर्भूत हैं, जैसे मीठे कद्दूके वीजका मग्ज, तरवूजके वीजका मग्ज, मीठे वादामका मग्ज आदि।

उत्तमाङ्गोको बल देनेवाली ओषधियाँ—मोती, सुवर्ण भस्म, चाँदी भस्म, खमीरा वनफ्शा, शीरा उन्नाववाला, खमीरा मरवारीद, शर्वत फौलाद (लोहा), मुफर्रेह वारिद, खमीरा अवरेशम आदि।

इस ज्वरके साथ मूल हेतुके रूपमें साधारणतया उर क्षत भी हुआ करता है, और उक्त दशामें सिलमें उल्लिखित समस्त ओषधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

यक्ष्मा और उर क्षतकी कोई सफल ओषधि जिसे वास्तविक रोग का उपचार कहा जा सके, अवतक ज्ञात नही हो सकी है। शेष उपाय वस्तुत उपद्रवसे सवध रखते हैं, तथा वहुताशमें स्वस्थवृतके नियमोंसे आवद्ध हैं, जिससे विवक्षित केवल शरीरशक्तिकी देख-भाल है।

हुम्मा मिअ्विया (आत्रिक सन्निपात ज्वर, मोतीझरा, टायफॉयड)

हलकी स्वेदन ओषधियाँ—अजीर, खाकसी, गरम पानी प्रभृति।

सतापहर—उन्नाव, गुल नीलूफर, शवत उन्नाव, शर्वत वनफ्शा, शर्वत नीलूफर, शर्वत अनार, अर्क केवडा अर्कगावजवान आदि।

सौमनस्यजनन और हृद्य—चदन, वशलोचन, जहरमोहरा, यशव, मोती, अवर, कस्तूरी, खमीरा मरवारीद, खमीरा गावजवान, खमीरा सदल अर्क गावजवान, अर्क केवडा, अर्क वेदमुश्क, जवाहरमोहरा, मुफर्रेहवारिद, मुफर्रेह याकूती आदि। इन ओषधियोंमें सर्वाधिक श्रेष्ठत्त्व खमीरा मरवारीदको प्राप्त है।

मोतीझरामें विरेचन ओषधियोका उपयोग वर्जित है। अत्यत आवश्यकता होने पर हलके मृदुविरेचन, जैसे वीज निकाला हुआ मुनक्का और अजीर आदि प्रयोग करते हैं।

ताऊन (ग्रथिक सन्निपातज्वर, प्लेग)

इस रोगकी अव्यर्थ महौषधि अभी तक ज्ञात नही हो सकी है। इसका उपचार अधिकतया उपद्रवों (अवारिज)के अनुसार किया जाता है तथा सतापहर, सौमनस्यजनन और हृद्य ओषधियाँ उपयोग की जाती हैं तथा प्लेगोत्पादक दोषकी विषमयता दूर करनेके लिए विशिष्ट सशमन ओषधियाँ व्यवहार की जाती हैं, जिनको अगद ओषधियोके नामसे अभिधानित किया जाता है।

सतापहर—बिहीदाना, उन्नाव, जिरिश्क, सुमाक, अनारका दाना, आलूबोखरा, नीबूका रस, कपूर, वंश-लोचन, शर्वत नीलूफर, शर्वत सदल, शर्वत केवडा, शर्वत लीमूँ, अर्क बेदमुश्क, अर्क सदल, अर्क कासनी, अर्क गावजवान, अर्क गुलाव (पेयकी भाति)।

चदन, सिरका, अर्क गुलाव, हरे धनियाका रस, खीराका पानी, अर्क बेदमुश्क, कपूर इत्यादि (बाह्य रूपसे)।

मन प्रसादकर और हृद्य—जहरमोहरा, वंशलोचन, गिल अरमनी, मोती, यशव, जमुर्रद, प्रवाल, याकूत जदवार, सफेदचदन, दरूनज, कपूर, गावजवान, गुलाब पुष्प, केसर, खमीरा सदल, खमीरा मरवारीद, खमीरा-अवरेशम, मुफर्रेह वारिद, शर्वत अनार, शर्वत नीलूफर, अर्क गुलाव, अर्क केवडा, अर्कबेदमुश्क, अर्कगावजवान, आदि।

विषघ्न ओषधियाँ (अदविया तिर्यकिया)—दरुनज अकरवी, जदवार, नरकचूर, जहरमोहरा, दरियाई नारियल, कपूर, अफीम, पोस्तेकी डोडी, मुरमक्की, एलुआ, केसर, नीमका फूल, नीमकी छाल, नीवू, जिरिश्क, सुमाक, अनारका दाना इत्यादि।

विषनाशनके लिए कोई-कोई रक्तप्रसादन ओषधियाँ, जैसे—शाहतरा (पित्तपापडा), चिरायता, नीमकी पत्ती प्रभृति उपयोग कराते हैं।

स्थानीय ओषधियाँ—ग्रथियोंके ऊपर प्रारभमें अवसादक, जैसे चदन, अर्क गुलाव, सिरका और तदुपरात शोथविलयन एव अवसादक ओषधियाँ, जैसे—जदवार, हरी मकायकी पत्ती, नीमकी पत्तो आदिका लेप करते हैं।

कभी विषपदार्थ के सुधार (इसलाह) एव नाशन (तहलील)के उद्देश्यसे निम्नलिखित द्रव्योका लेप करते हैं — सखिया, धतूरेका बीज, कुचिला, चूना, मीठा तेलिया, अफीम, कपूर, कालीमिर्च और दरूनज अकरवी आदि। पुन ग्रथियों (गिलटियों)के फूट जाने पर शोथनिवारण एव वेदनाशमनके लिए मरहम काफूरी आदि लगाते हैं।

खसरा और चेचक

(रोमातिका और मसूरिका)

इन उभय रोगोंमें सिद्धातत रोगीके बलकी रक्षा की जाती है और बहुत करके इस विषयको प्रकृतिके ऊपर छोड दिया जाता है। इस बीचमें जो मद कार्यकारी ओषधियाँ दी जाती हैं उनसे बहुत करके प्रयोजन यह होता है कि प्रतिदिन खुलकर दस्त होता रहे तथा उससे दानोंके निकलनेमें कुछ सहायता प्राप्त हो।

सतापहर—उग्र सतापकी दशामें अत्यत हल्की सशामक ओषधियाँ, जैसे—खतमी बीज, उन्नाव, गुलावके फूल, शर्वत उन्नाव, प्रभृति प्रयोग की जाती हैं।

सौमनस्यजनन और हृद्य औषधियाँ—मोती, जहरमोहरा, कहरुवाए शमई (तृणकात), जवाहिरमोहरा, खमीरा मरवारीद, मुफर्रेहवारिद, मुफर्रेह शैखुर्रईस, मुफर्रेह आजम, मुफर्रेह याकूती मोतदिल, शर्वत सेव, अर्क गुलाव, अर्क केवडा, अर्क बेदमुश्क आदि।

चदन, कपूर, गुलावपुष्प और अन्य सुगधद्रव्य (आघ्राणकी भाँति)।

उष्णताजनन और हलकी स्वेदन ओषधियाँ—दानोको भली-भाँति प्रकट करनेके लिए उष्णताजनन और स्वेदन, जैसे—खाकसी, अजीर, गरम पानी (पेयकी भाँति) प्रयोग की जाती है तथा भाऊकी पत्तीकी धूनी दी जाती है।

इनमें अतिसरण और मृदुसरणसे परहेज किया जाता है। केवल इस बातका यत्न किया जाता है कि प्रतिदिन साधारण दस्त हो जाया करे। इसके लिए अजीर, मुनक्का, गुलबनफशा प्राय काफी हो जाते हैं। परतु दाने भली-भाँति निकल आनेके उपरात शीरखिश्त और यवासशर्करा जैसी वस्तुएँ भी कब्जवारणके लिए प्रयोग की जाती

हैं। दाने प्रकट हो जानेके पश्चात् यदि विरेक् आने लगें तथा उनसे दुर्बलता बढ जानेकी आशका हो तो विलायती मेंहदीके बीज (हब्बुल्आस), बारतंगके बीज, कहरुवा (तृणकात), जहरमोहरा, वशलोचन, अजबारकी जड, बबूलका गोंद, गिलअरमनी, रुब्बविही, रुब्बअनार, शर्बत हब्बुल्आस, शर्बत अञ्जबार, कुर्स तबाशीर, शर्बत खश्खाश आदि उपयोग किये जाते हैं।

सुर्खबादा (विसर्प)

स्थानीय अवसादक—हरे धनियेका रस, हरी मकोयका रस, सिरका, सूखी मकोय, गिल कीमूलिया, सफेदा, मुरदासख, गिलअरमनी, सुपारी, लाल और सफेद चदन, रसवत आदि (बाह्यरूपसे)।

शोथविलयन—बाबूना पुष्प, खतमी, इकलीकुल्मलिक (नाखूना), सोआ, अलसी बीज, नीमकी छाल आदि (बाह्यत)।

सतापहर—बिहीदानेका लवाब, काहूके बीज, आलूबोखरा, उन्नाब, गुलाबपुष्प, नीलूफरपुष्प प्रभृति (आभ्यतर)।

रक्तप्रसादन और सशमन—हड्का छिलका, शाहतरा (पित्तपापडा), गुलाबपुष्प, मुडी, सरफोका, धनिया, मेंहदीकी पत्ती, धमासा, लालचदन, ब्रह्मदडी, नीलकठी, नीमकी पत्ती, नीमकी छाल, बकाइनके बीजकी गिरी, नीमके बीज (निबौली)की गिरी, रसवत, चाकसू, उशवा, चोबचीनी आदि।

•

यूनानी-द्रव्यगुणादर्श पूर्वार्धके विषयों एव विविध भाषाके शब्दोंकी हिंदी-वर्णानुक्रमणिका

(प)

विषय एव शब्द	पृष्ठाक

●

यूनानी-द्रव्यगुणादर्श पूर्वार्धके अँगरेजी एवं लेटिन शब्दोंकी आंग्ल वर्णानुक्रमणिका